भागवत-दर्शन

*

लेखक

डा० हरबंशलाल शर्मा,
एम० ए०, पी एच० डी०, डी० लिट्
अध्यक्ष
संस्कृत-हिन्दी विभाग
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ

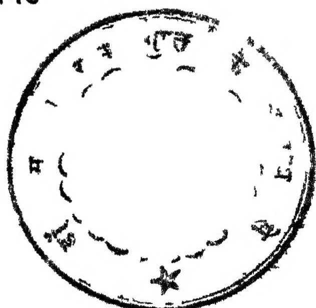
भागवत-दर्शन

आदरणीय डा० माताप्रसाद जी गुप्त
को
सस्नेह भेंट
—ह० प्र० शर्मा

लेखक

डा० हरबंशलाल शर्मा,
एम० ए०, पी एच० डी०, डी० लिट्
अध्यक्ष
सस्कृत-हिन्दी विभाग
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ





प्रकाशक

भारत प्रकाशन मन्दिर

अलीगढ

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ

मूल्य—बारह रुपया

मुद्रक—चन्द्रप्रकाश शर्मा, एम० ए०
आदर्श प्रेस, अलीगढ़ ।

प्रास्ताविकम्

धम और भक्ति की गम्भीर और सत्रग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करने वाला भागवत ग्रथ नि सदेह विशुद्ध रत्न-महोदधि है। इसकी व्याख्या ब्रह्म की भाँति ही असम्भव तथा दुष्कर है। जिस प्रकार ब्रह्म के सभी व्याख्यान नेति नेति' मे परिसमाप्त होते है, उसी प्रकार भागवत की भी कोई टीका या व्याख्या अपने मे पूर्ण नही कही जा सकती। भागवत का रस तो 'गूगे का गुड' है जिसका स्वाद आस्वाद्य है, कथ्य नही। भागवत के सम्बन्ध मे कुछ लिखने की चेष्टा को मै अपनी कुचेष्टा या धृष्टता ही मानता हूँ। यह मेरा कोरा बाल-चापल्य है। परन्तु भागवतकार ने दशम स्कन्ध मे स्वय बाल-चापल्य को बाल लीला के रूप मे प्रोत्साहित किया है, शायद इसी से मुझे भी भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा मिली। बात यह है कि मेरे स्वर्गीय पिताजी भागवत के बडे प्रेमी थे तथा नित्य-प्रति भागवत का पाठ किया करते थे तथा मुझे भी भागवत की कथा सुनने और उसका पाठ करने के लिए विवश किया करते थे। बचपन मे अचेतावस्था के कारण मैं भागवत के महत्व को तो नहीं समझता था, परन्तु मुझे यह लाभ अवश्य हुआ कि बाल्यकाल मे ही भागवत के कुछ सस्कार पड गए। सन् १९४० ई० मे जब मैं मेरठ कालेज मे अध्यापन-काय प्रारम्भ किया तो सूरसागर के सन्दभ म कई बार श्रीमद्भागवत के अनुसरण की चर्चा सामने आयी। इस चचा से पुराने सस्कार उद्बुद्ध हो गए और मैंने श्रीमद्भागवत का अनुशीलन प्रारम्भ किया। स्वतत्र अनुशीलन से इस ग्रन्थ के प्रति पूज्य-भाव जगने लगे। 'सूरसागर तथा श्रीमद्भागवत' विषय को लेकर एक शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किया। शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय ऐसा अनुभव हुआ कि इस रत्न महोदधि म मेरा अभी चच्चु प्रवेश भी नही हो सका है। इसलिए महाकवि सूरदास पर डी० लिट्० की उपाधि के लिए इस ग्रन्थ का कुछ और व्यापक अध्ययन किया। भागवत की कई टीकाएँ देखीं तथा कितने ही सदभ-ग्रन्थो का अनुशीलन किया। जैसे-जैसे इस महासागर मे उतरने का प्रयास करता गया वैसे ही वैसे इसकी अतलस्पर्शिता का बोध होता गया। स्वाध्याय को नियमित करने की इच्छा ने भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा दी। उसी प्रेरणा का फल यह 'भागवत दशन' है।

ग्रन्थ के लिखने म मुझे अपने सहयोगियो तथा शोध-छात्रो से बडी सहायता मिली है। विभाग मे हमने यह निश्चय किया था कि ब्रज-क्षेत्र मे स्थित होने के कारण अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे मध्य युगीन कृष्ण भक्ति के सब पक्षो पर शोध-काय होना चाहिए। फलस्वरूप इस विषय पर कई शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किए गए। दो शोध-प्रबन्धो का साक्षात् सम्बन्ध श्रीमद्भागवत से रहा। एक 'श्री परमानन्द दास और उनका साहित्य' तथा दूसरा श्रीमद्भागवत का हिन्दी के मध्ययुगीन कृष्ण भक्तो पर प्रभाव'। पहला प्रबन्ध डा० गोवधननाथ शुक्ल ने प्रस्तुत किया तथा दूसरा डा० विश्वनाथ शुक्ल ने। इस कडी का एक निबन्ध आलवारो की भक्ति-भावना पर डा० मलिक मोहम्मद ने प्रस्तुत किया। अब तक केवल मध्ययुगीन भक्ति-साधना पर मेरे निर्देशन में लगभग १२ शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा चुके हैं। मुझे यह जानकर बडा ही आश्चय हुआ कि भारतीय भाषाओं का सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति साहित्य

प्रकाशक
भारत प्रकाशन मन्दिर
अलीगढ

मूल्य—बारह रुपया

मुद्रक—चन्द्रप्रकाश शर्मा, एम० ए०
आदर्श प्रेस, अलीगढ़।

प्रास्ताविकम्

धर्म और भक्ति की गम्भीर और सर्वग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करने वाला भागवत ग्रथ नि सदेह विशुद्ध रत्न महोदधि है। इसकी व्याख्या ब्रह्म की भाँति ही असम्भव तथा दुष्कर है। जिस प्रकार ब्रह्म के सभी व्याख्यान नेति-नेति' मे परिसमाप्त होते हैं, उसी प्रकार भागवत की भी कोई टीका या व्याख्या अपने मे पूर्ण नही कही जा सकती। भागवत का रस तो 'गूगे का गुड' है जिसका स्वाद आस्वाद्य है, कथ्य नही। भागवत के सम्बन्ध मे कुछ लिखने की चेष्टा को मै अपनी कुचेष्टा या धृष्टता ही मानता हूँ। यह मेरा कोरा बाल-चापल्य है। परन्तु भागवतकार ने दशम स्कन्ध मे स्वय बाल-चापल्य को बाल लीला के रूप मे प्रोत्साहित किया है, शायद इसी से मुझे भी भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा मिली। बात यह है कि मेरे स्वर्गीय पिताजी भागवत के बडे प्रेमी थे तथा नित्य-प्रति भागवत का पाठ किया करते थे तथा मुझे भी भागवत की कथा सुनने और उसका पाठ करने के लिए विवश किया करते थे। बचपन मे अचेतावस्था के कारण मै भागवत के महत्व को तो नहीं समझता था, परन्तु मुझे वह लाभ अवश्य हुआ कि बाल्यकाल मे ही भागवत के कुछ सस्कार पड गए। सन् १९४० ई० मे जब मैने मेरठ कालेज मे अध्यापन काय प्रारम्भ किया तो सूरसागर के सन्दभ म कई बार श्रीमद्भागवत के अनुसरण की चर्चा सामने आयी। इस चचा से पुराने सस्कार उद्बुद्ध हो गए और मैंने श्रीमद्भागवत का अनुशीलन प्रारम्भ किया। स्वतत्र अनुशीलन से इस ग्रन्थ के प्रति पूज्य-भाव जगने लगे। 'सूरसागर तथा श्रीमद्भागवत' विषय को लेकर एक शोध-प्रबन्ध भी प्रस्तुत किया। शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करते समय ऐसा अनुभव हुआ कि इस रत्न महोदधि मे मेरा अभी चचु-प्रवेश भी नही हो सका है। इसलिए महाकवि सूरदास पर डी० लिट्० की उपाधि के लिए इस ग्रन्थ का कुछ और व्यापक अध्ययन किया। भागवत की कई टीकाएँ देखी तथा कितने ही सदभ ग्रन्थो का अनुशीलन किया। जैसे जैसे इस महासागर मे उतरने का प्रयास करता गया वैसे ही वैसे इसकी अतलस्पर्शिता का बोध होता गया। स्वाध्याय को नियमित करने की इच्छा ने भागवत पर कुछ लिखने की प्रेरणा दी। उसी प्रेरणा का फल यह 'भागवत दशन' है।

ग्रन्थ के लिखने म मुझे अपने सहयोगियो तथा शोध छात्रो से बडी सहायता मिली है। विभाग में हमने यह निश्चय किया था कि ब्रज क्षेत्र मे स्थित होने के कारण अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे मध्य युगीन कृष्ण भक्ति के सब पक्षो पर शोध काय होना चाहिए। फलस्वरूप इस विषय पर कई शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए गए। दो शोध-प्रबन्धो का साक्षात् सम्बन्ध श्रीमद्भागवत से रहा। एक 'श्री परमानन्द दास और उनका साहित्य' तथा दूसरा श्रीमद्भागवत का हिन्दी के मध्ययुगीन कृष्ण भक्तो पर प्रभाव'। पहला प्रबन्ध डा० गोवर्धननाथ शुक्ल ने प्रस्तुत किया तथा दूसरा डा० विश्वनाथ शुक्ल ने। इस कडी का एक निबन्ध आलवारो की भक्ति-भावना पर डा० मलिक मोहम्मद ने प्रस्तुत किया। अब तक केवल मध्ययुगीन भक्ति-साधना पर मेरे निर्देशन म लगभग १२ शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किए जा चुके हैं। मुझे यह जानकर बड़ा ही आश्चय हुआ कि भारतीय भाषाओ का सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति साहित्य

श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित है। भागवत दर्शन के तीन अध्याय इसी विषय पर लिखे गए हैं। दक्षिण की भाषाओ के भागवतानुसारी साहित्य पर लिखने मे मेरी श्री हनुमच्छास्त्री तथा डा० मलिक मोहम्मद ने विशेष सहायता की। इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना मे मुझे कई विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है जिनका मुझे निर्देशक तथा सहयोगी होने का भी सौभाग्य प्राप्त है। मैं विशेषकर डा० गोवधननाथ शुक्ल, डा० विश्वनाथ शुक्ल, डा० मलिक मोहम्मद श्रीधर गोपाल कुण्टे तथा श्री हनुमच्छास्त्री के प्रति मंगलकामनापुरस्सर आभार प्रकट करता हूँ। ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तयार करने मे मुझे डा० परमानन्द तथा श्री हीरावल्लभ गहतौडी ने विशेष सहायता प्रदान की, मैं उनका भी कृतज्ञ हू।

ग्रन्थ का आधे से अधिक अश ४–५ वष पूव ही छप चुका था, परन्तु सन् १९५९ ई० से मै विश्वविद्यालय के शासन-कार्यो मे ऐसा व्यस्त हुआ कि मुझे कुछ भी लिखने का अवसर न मिल सका। मेरे अग्रज तुल्य प० बद्रीप्रसाद शर्मा यदि मेरे पीछे न पडते तो शायद यह ग्र थ पूरण नही हो पाता। यह उन्ही के सतत आग्रह का फल है कि यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका। उनके इस स्नेहमय आग्रह और कभी-कभी दुराग्रह के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। जल्दी के कारण ग्रन्थ मे अनेक छापे की अशुद्धियाँ रह गई है जो दूसरे सस्करण मे सुधार दी जावेंगी। श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे यह मेरा बाल-प्रयास है। मै विद्वानो के सुझावो की प्रतीक्षा करूँगा तथा भगवत्प्रसाद के रूप मे उन्हे ग्रहण कर भूल सुधार की चेष्टा करूँगा।

मधुमास पचमी भौमवार
स० २०२० वि०

भागवतवशवद—
हरबशलाल शर्मा

भूमिका

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ।।

श्रीमद्भागवत पुराण का आविर्भाव भारतीय वाड्मय मे एक दैवी चमत्कार समझना चाहिए। भगवान् अर्थात् वाडमय के अवतार का नाम ही भागवत है। कदाचित् इसीलिए भागवत पुराण को 'ब्रह्मसम्मित' कहा गया है, 'इद भागवत नाम पुराण ब्रह्मसम्मितम्'। इस वचन मे 'ब्रह्म सम्मितम्' का अर्थ श्रीमद्भागवत के विषय के अनुसार परब्रह्म स्वरूप ही ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि भागवतकार ने इस ग्रथ को निगम रूप कल्पतरु का फल अथवा सार बताया है। स्कन्दपुराण के द्वितीय वैष्णवखण्डान्तगत श्रीमद्भागवत माहात्म्य के चतुर्थ अध्याय मे इस भाव को इस प्रकार स्पष्ट किया है —

श्रीमद्भागवतस्याथ श्रीमद्भागवत सदा ।
स्वरूपमेकमेवास्ति सच्चिदानंदलक्षणम् ।।

अर्थात् भगवद्रूप श्रीमद्भागवत का सच्चिदानन्द लक्षण मात्र एक ही स्वरूप है। महर्षि शुकदेव जी ने इस परब्रह्मस्वरूप को अमृतमय, रसमय तथा आस्वाद्य बना दिया है। सम्पूर्ण ग्रथ में भक्तिरस व्यग्य है इसीलिए धर्म की रसात्मक अनुभूति जैसी इस ग्रथ से सम्भव है, वैसी और किसी साधन से नही। अनुभूति व्यक्तिगत विषय है, उसे सामूहिक या सामाजिक रूप देना एक दुष्कर काय है। महर्षि वेदव्यास ने इस कठिन तथा गम्भीर काय का निर्वाह इस अपूव ग्रथ की रचना से किया। विषय के गाम्भीय का अनुमान इसी उक्ति से लगाया जा सकता है, 'विद्यावता भागवते परीक्षा'। धम और भक्ति का वही सम्बन्ध है जो अध्यात्म-जगत् मे ब्रह्म और जीव का तथा भौतिक जगत् मे ज्ञान और विज्ञान का है। इसलिए धम, परब्रह्म और सम्पूर्ण ज्ञान का प्रतीक है तथा भक्ति अखण्ड चेतना तथा सम्पूर्ण विज्ञान का मधुर रूप है। भागवतकार ने धम और भक्ति के लक्षणो मे इस बात को स्पष्ट कर दिया है। भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में धम का लक्षण इस प्रकार है—

'धम प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणा सता
वेद्य वास्तवमत्र वस्तु शिवद तापत्रयोन्मूलनम्।'

धम की यह व्याख्या सावभौम तथा सवजनीन है, इसमे साम्प्रदायिकता तथा सकीणता की गध भी नही है। इस लक्षण मे 'प्रोज्झितकैतव' तथा निमत्सर' ऐसे विशेषण है जो परम विशुद्ध मानवधम की ओर सकेत करते हैं। इस धम का लक्ष्य अथ या काम की प्राप्ति नही है बल्कि उस वास्तविक वस्तु की अनुभूति है जो तापत्रय का उन्मूलन करने वाली तथा परम कल्याण को देने वाली है। वह वस्तु ज्ञानगम्य या बुद्धिगम्य नही है, बल्कि हृदयगम्य है। श्रीमद्भागवत मे ब्रह्मज्ञान तथा आत्मसाक्षात्कार के लिए हृदय को ही प्रधानता मिली है। इसीलिए हम इसे अद्वैतपरक भक्ति ग्रथ मानते है। इस ग्रथ मे सब प्रकार के कम ज्ञान तथा उपासना का बडी मधुरता के साथ विवेचन हुआ है। इसीलिए इसके सम्बन्ध मे कहा गया है कि यह पद पद पर स्वादु है तथा पारमहस्यज्ञान-सुधा की सरिता है।

'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममल ज्ञान पर गीयते।'

भक्ति और धम का जैसा सु दर समन्वय श्रीमद्भागवत मे हुआ है वैसा अन्यत्र दुलभ है। भक्तियोग से ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है—

'वासुदेवे भगवति भक्तियोग प्रयोजित ।
जनयत्याशु वैराग्य ज्ञान च यदहैतुकम्' ।।

धर्म मनुष्य का सामा य आचरण है—जो कर्त्तव्य की ही कोटि मे आता है। भक्ति उस आचरण को दिशा देती है। श्रीमद्भागवद्गीता मे निष्कामकर्म का उपदेश है। वह निष्कामकम ही धम का शुद्ध और सात्विक रूप है। भागवतकार ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है। द्वितीय अध्याय मे भागवतकार ने भक्ति और धम के सम्बन्ध को और भी स्पष्ट कर दिया है—

'स वै पुसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति' ।।

अर्थात् मनुष्यो के लिए सवश्रेष्ठ धर्म वही है जो परब्रह्म मे निष्काम भक्तिभाव जगा सके। भक्ति का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए भागवतकार कहता है कि भक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमे किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। इस प्रकार की निष्काम भक्ति के द्वारा ही पर आनन्द की उपलब्धि होती है। बात यह है कि मनुष्यमात्र का चरमलक्ष्य आनन्दोपलब्धि है। वह आनन्द आपेक्षिक तथा सीमित नही होना चाहिए। सासारिक विषयों के आनन्द उस कोटि तक नही पहुँच पाते। इस प्रकार के आनन्द की उपलब्धि के लिए निष्कामकर्म अनिवाय हैं तथा वे निष्काम कम ही धम के अन्तगत आते हैं। इसलिए यह निष्काम धर्म ही भक्ति है।

'ज्ञान परमगुह्य मे यद्विज्ञानसमन्वितम्। सरहस्य तदङ्ग च गृहाण गदित मया ।।'

धर्म ज्ञान है तथा भक्ति विज्ञान। यह सम्पूण ज्ञान और विज्ञान भागवत के निम्नलिखित चार श्लोको में आगया है—

'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादह यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो माया यथाऽऽभासो यथा तम ।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।।
एतावदेवजिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मन। अन्वयव्यतिरेकाभ्या यत्स्यात् सवत्र सर्वदा ।।

ये चार श्लोक 'चतु श्लोकी भागवत' के नाम से प्रख्यात हैं। इनमे ब्रह्म की व्यापकता, अखण्डता, निर्लिप्तता तथा अनिवचनीयता की ओर सकेत किया गया है। 'अह ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि' दोनो श्रुति-वाक्यो का सार इन श्लोको में आगया है। साथ ही इनमें माया के सत्त्व और असत्त्व का भी प्रतिपादन हुआ है। एक प्रकार से सभी दशन के सिद्धान्तो की सगति इन चार श्लोको से लगायी जा सकती है। भागवत मे इस प्रकार के कितने ही स्थल हैं जिनकी व्याख्या असाधारण बुद्धि से भी सम्भव नही है। शायद इसीलिए भागवत के सम्बन्ध

'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।'

भक्ति और धर्म का जैसा सुन्दर समन्वय श्रीमद्भागवत में हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। भक्तियोग से ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है—

'वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यदहैतुकम्' ।।

धर्म मनुष्य का सामान्य आचरण है —जो कर्त्तव्य की ही कोटि में आता है। भक्ति उस आचरण को दिशा देती है। श्रीमद्भागवद्गीता में निष्कामकर्म का उपदेश है। वह निष्कामकर्म ही धर्म का शुद्ध और सात्विक रूप है। भागवतकार ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है। द्वितीय अध्याय में भागवतकार ने भक्ति और धर्म के सम्बन्ध को और भी स्पष्ट कर दिया है —

'स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति' ।।

अर्थात् मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जो परब्रह्म में निष्काम भक्तिभाव जगा सके। भक्ति का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए भागवतकार कहता है कि भक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। इस प्रकार की निष्काम भक्ति के द्वारा ही परमानन्द की उपलब्धि होती है। बात यह है कि मनुष्यमात्र का चरमलक्ष्य आनन्दोपलब्धि है। वह आनन्द आपेक्षिक तथा सीमित नहीं होना चाहिए। सांसारिक विषयों के आनन्द उस कोटि तक नहीं पहुँच पाते। इस प्रकार के आनन्द की उपलब्धि के लिए निष्कामकर्म अनिवार्य हैं तथा वे निष्काम कर्म ही धर्म के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए यह निष्काम धर्म ही भक्ति है।

'ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्। सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ।।'

धर्म ज्ञान है तथा भक्ति विज्ञान। यह सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान भागवत के निम्न-लिखित चार श्लोकों में आगया है—

'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।।
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ।।
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।।
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।।

ये चार श्लोक 'चतुःश्लोकी भागवत' के नाम से प्रख्यात है। इनमें ब्रह्म की व्यापकता, अखण्डता, निर्लिप्तता तथा अनिर्वचनीयता की ओर संकेत किया गया है। 'अहं ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि' दोनों श्रुति-वाक्यों का सार इन श्लोकों में आगया है। साथ ही इनमें माया के सत्त्व और असत्त्व का भी प्रतिपादन हुआ है। एक प्रकार से सभी दर्शन के सिद्धान्तों की संगति इन चार श्लोकों से लगायी जा सकती है। भागवत में इस प्रकार के कितने ही स्थल हैं जिनकी व्याख्या असाधारण बुद्धि से भी सम्भव नहीं है। शायद इसीलिए भागवत के सम्बन्ध

मे कहा गया है 'विद्याभागवतावधि' स्वय भागवतकार ने द्वादशस्कन्ध मे श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य निम्न शब्दो मे बताया है—

सव वेदान्तसार यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीय तन्निष्ठ कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥

आगे वे कहते है—

"श्रीमद्भागवत पुराणममल यद्वैष्णवाना प्रिय,
यस्मिन् पारमहस्यमेकममल ज्ञान पर गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहित नैष्कर्म्यमाविष्कृतम् ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत तत्त्वज्ञान का एक अपूव ग्र थ है, इसीलिए इसे 'पारमहसी सहिता' नाम से अभिहित किया गया है । इस सहिता मे बारह स्कध तथा १८,००० श्लोक हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में न तो श्रीमद्भागवत की टीका प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और न व्याख्या । इसमे केवल भागवत के महत्व पर विचार किया गया है और महत्वानुशीलन के अर्थ मे ही इस ग्रन्थ का भागवत-दशन नामकरण किया है । सामान्य रूप से 'दशन' शब्द का प्रयोग एक रूढ अथ मे होने लगा है जिससे ब्रह्म, जीव और प्रकृति के विवेचन को ही ग्रहण किया जाता है । यहा इस शब्द का प्रयोग इस रूढ अथ मे नही हुआ है । ग्रन्थ बारह अध्यायों मे लिखा गया है तथा वैदिक वाङ्मय से लेकर मध्ययुगीन भारतीय भाषाओ के साहित्य तक का विवेचन श्रीमद्भागवत के सन्दभ से प्रस्तुत किया गया है । प्रथम अध्याय का शीषक 'भारतीय वाङमय की परम्परा' है । वास्तव मे परम्पराओं का किसी भी राष्ट्र के जीवन मे बडा महत्त्व होता है । उन परम्पराओ की रक्षा कला और साहित्य के माध्यम से होती है । भारतीय वाङ्मय की परम्पराए अत्यन्त प्राचीन है तथा वेद भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ है । पाश्चात्य विद्वान् भारतीय परम्पराओ को काल्पनिक या अतिशयोक्ति पूण मानते हैं । पाश्चात्य विद्वानो का यह दृष्टिकोण एकागी है क्योकि ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पूण भारतीय वाङ्मय और परम्पराओ को समन्वित रूप मे देखने का प्रयास करना चाहिए । यद्यपि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय साहित्य मे इतिहास का अभाव मानते हैं परन्तु हमारा मत है कि इतिहास-पुराण भी भारतीय वाङ्मय का एक प्रधान अग रहा है । यह दूसरी बात है कि आधुनिक आलोचको की दृष्टि में जो इतिहास का लक्षण है उसकी कसौटी पर भारत के इतिहास ग्रन्थ ठीक न उतर सके । वैसे लगभग १६ प्रकार की इतिहास-लेखन प्रणालियाँ हमे भारतीय साहित्य मे मिलती हैं । कौटल्य ने अपने अथशास्त्र मे इतिहास की व्याख्या इस प्रकार की है । "पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरण धर्मशास्त्र चेतीतिहास ।" वैदिक साहित्य मे भी इतिहास और पुराण का साथ साथ निर्देश मिलता है और परवर्ती साहित्य मे तो पुराण को 'पञ्चम वेद' ही कहा है ।

भारतीय वाङमय में पुराण' शीषक द्वितीय अध्याय मे हमने पुराण शब्द के महत्त्व, पुराणो के सामान्य विषय तथा मुख्य मुख्य पुराणो की चर्चा की है । पुराण शब्द के विविध विवेचनो से पता चलता है कि शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द का अभिधेयाथ ही महत्त्वपूर्ण रहा है । कई कारणो से इसका अर्थापकष हो गया और आज यह शब्द अग्रेजी के 'माइथॉलोजी' का समानाथक बन गया । पुराण के रूप और अर्थ मे चाहे जितना परिवत्तन हुआ हो, यह एक तथ्य है कि पुराण का अस्तित्व वैदिककाल में भी था । 'अथर्वसहिता' के अनुसार ऋक्, साम, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ ही उत्पन्न हुए । 'शतपथ ब्राह्मण'

'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममल ज्ञान पर गीयते ।'

भक्ति और धम का जैसा सुन्दर समन्वय श्रीमद्भागवत मे हुआ है वैसा अन्यत्र दुलभ है। भक्तियोग से ही निष्काम ज्ञान और वैराग्य की प्राप्ति होती है—

'वासुदेवे भगवति भक्तियोग प्रयोजित ।
जनयत्याशु वैराग्य ज्ञान च यदहैतुकम्' ॥

धम मनुष्य का सामान्य आचरण है —जो कर्त्तव्य की ही कोटि मे आता है। भक्ति उस आचरण को दिशा देती है। श्रीमद्भागवद्गीता मे निष्कामकम का उपदेश है। वह निष्कामकम ही धम का शुद्ध और सात्विक रूप है। भागवतकार ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है। द्वितीय अध्याय मे भागवतकार ने भक्ति और धम के सम्बन्ध को और भी स्पष्ट कर दिया है —

'स वै पुसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति' ॥

अर्थात् मनुष्यो के लिए सवश्रेष्ठ धम वही है जो परब्रह्म मे निष्काम भक्तिभाव जगा सके। भक्ति का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए भागवतकार कहता है कि भक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमे किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी रहे। इस प्रकार की निष्काम भक्ति के द्वारा ही पर आनन्द की उपलब्धि होती है। बात यह है कि मनुष्यमात्र का चरमलक्ष्य आनन्दोपलब्धि है। वह आनन्द आपेक्षिक तथा सीमित नही होना चाहिए। सासारिक विषयों के आनन्द उस कोटि तक नही पहुँच पाते। इस प्रकार के आनन्द की उपलब्धि के लिए निष्कामकर्म अनिवाय हैं तथा वे निष्काम कम ही धम के अन्तगत आते हैं। इसलिए यह निष्काम धर्म ही भक्ति है।

'ज्ञान परमगुह्य मे यद्विज्ञानसमन्वितम्। सरहस्य तदङ्ग च गृहाण गदित मया ॥'

धर्म ज्ञान है तथा भक्ति विज्ञान। यह सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान भागवत के निम्नलिखित चार श्लोको में आगया है—

'अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम्। पश्चादह यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो माया यथाऽऽभासो यथा तम ॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेवहम् ॥
एतावदेवजिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मन। अन्वयव्यतिरेकाभ्या यत्स्यात् सवत्र सर्वदा ॥

ये चार श्लोक 'चतु श्लोकी भागवत' के नाम से प्रख्यात हैं। इनमे ब्रह्म की व्यापकता, अखण्डता, निर्लिप्तता तथा अनिर्वचनीयता की ओर सकेत किया गया है। 'अह ब्रह्मास्मि' तथा 'तत्त्वमसि' दोनो श्रुति-वाक्यो का सार इन श्लोको में आगया है। साथ ही इनमें माया के सत्त्व और असत्त्व का भी प्रतिपादन हुआ है। एक प्रकार से सभी दशन के सिद्धान्तो की सगति इन चार श्लोको से लगायी जा सकती है। भागवत मे इस प्रकार के कितने ही स्थल हैं जिनकी व्याख्या असाधारण बुद्धि से भी सम्भव नही है। शायद इसीलिए भागवत के सम्बन्ध

मे कहा गया है 'विद्याभागवतावधि' स्वय भागवतकार ने द्वादशस्कन्ध मे श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य निम्न शब्दो मे बताया है—

सव वेदान्तसार यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीय तन्निष्ठ कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥

आगे वे कहते हैं—

"श्रीमद्भागवत पुराणममल यद्वैष्णवाना प्रिय,
यस्मिन् पारमहस्यमेकममल ज्ञान पर गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहित नैष्कर्म्यमाविष्कृतम् ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत तत्त्वज्ञान का एक अपूर्व ग्र थ है, इसीलिए इसे 'पारमहसी सहिता' नाम से अभिहित किया गया है । इस सहिता मे बारह स्कध तथा १८,००० श्लोक है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में न तो श्रीमद्भागवत की टीका प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और न व्याख्या । इसमे केवल भागवत के महत्व पर विचार किया गया है और महत्वानुशीलन के अर्थ मे ही इस ग्रन्थ का भागवत-दशन नामकरण किया है । सामा य रूप से 'दशन' शब्द का प्रयोग एक रूढ अथ मे होने लगा है जिससे ब्रह्म, जीव और प्रकृति के विवेचन को ही ग्रहण किया जाता है । यहाँ इस शब्द का प्रयोग इस रूढ अथ मे नही हुआ है । ग्रन्थ बारह अध्यायों मे लिखा गया है तथा वैदिक वाड्मय से लेकर मध्ययुगीन भारतीय भाषाओ के साहित्य तक का विवेचन श्रीमद्भागवत के सन्दभ से प्रस्तुत किया गया है । प्रथम अध्याय का शीषक 'भारतीय वाडमय की परम्परा' है । वास्तव मे परम्पराओं का किसी भी राष्ट्र के जीवन मे बडा महत्त्व होता है । उन परम्पराओ की रक्षा कला और साहित्य के माध्यम से होती है । भारतीयं वाडमय की परम्पराएँ अत्यन्त प्राचीन है तथा वेद भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ है । पाश्चात्य विद्वान् भारतीय परम्पराओ को काल्पनिक या अतिशयोक्ति पूण मानते हैं । पाश्चात्य विद्वानो का यह दृष्टिकोण एकागी है क्योकि ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पूर्ण भारतीय वाड्मय और परम्पराओ को समन्वित रूप मे देखने का प्रयास करना चाहिए । यद्यपि पाश्चात्य विद्वान् भारतीय साहित्य मे इतिहास का अभाव मानते हैं परन्तु हमारा मत है कि इतिहास-पुराण भी भारतीय वाड्मय का एक प्रधान अग रहा है । यह दूसरी बात है कि आधुनिक आलोचको की दृष्टि मे जो इतिहास का लक्षण है उसकी कसौटी पर भारत के इतिहास ग्रन्थ ठीक न उतर सके । वैसे लगभग १६ प्रकार की इतिहास-लेखन प्रणालियाँ हमें भारतीय साहित्य मे मिलती हैं । कौटल्य ने अपने अथशास्त्र में इतिहास की व्याख्या इस प्रकार की है । "पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरण धर्मशास्त्र चेतीतिहास ।" वैदिक साहित्य मे भी इतिहास और पुराण का साथ साथ निर्देश मिलता है और परवर्ती साहित्य मे तो पुराण को 'पञ्चम वेद' ही कहा है ।

भारतीय वाड्मय में पुराण' शीषक द्वितीय अध्याय मे हमने पुराण शब्द के महत्त्व, पुराणो के सामान्य विषय तथा मुख्य-मुख्य पुराणो की चर्चा की है । पुराण शब्द के विविध विवेचनो से पता चलता है कि शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से इस शब्द का अभिधेयाथ ही महत्त्वपूण रहा है । कई कारणो से इसका अर्थापकष हो गया और आज यह शब्द अग्रेजी के 'माइथॉलोजी' का समानार्थक बन गया । पुराण के रूप और अर्थ मे चाहे जितना परिवत्तन हुआ हो, यह एक तथ्य है कि पुराण का अस्तित्व वैदिककाल मे भी था । 'अथवसहिता' के अनुसार ऋक्, साम, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ ही उत्पन्न हुए । 'शतपथ ब्राह्मण'

तथा 'वृहदारण्यक' आदि कई उपनिषदो मे भी 'पुराण' शब्द का प्रयोग मिलता है। हो सकता है कालान्तर मे पुराण का ऐतिहासिक पक्ष निबल पड गया हो अथवा इतिहास को पुराण से अलग ही एक अग माना जाने लगा हो। 'वायुपुराण' मे इतिहास और पुराण दोनो को ही वेदज्ञान मे सहायक बताया गया है—

'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृ हयेत्।'

सभा मुख्य पुराणो मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाए हैं और वशानुचरित को पुराणो का अभिन्न अग माना है। यह वशानुचरित इतिहास का ही विषय है। यह कहना बडा कठिन है कि पुराण सहिता का आदि रूप क्या था तथा उसका आदि प्रणेता कौन था ? हो सकता है कि यह सहिता भी ब्राह्मण और आरण्यक ग्र थो की भाति ऋषिप्रोक्त ही रही हो तथा द्वापर युग मे वेदव्यास जी ने अन्य भारतीय वाङ्मय के साथ पुराण सहिता का भी सपादन किया हो। 'विष्णुपुराण' मे इस विषय का एक सकेत भी मिलता है। शायद प्राचीन 'पुराण सहिता के अठारह भाग रहे हो जिनके आधार पर कालान्तर मे अठारह पुराणो का निर्माण हुआ और उनके परिशिष्ट रूप म उपपुराण बने। पुराणो के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सब पुराणो मे प्राय एक से ही विषयो की पुनरावत्ति की गयी है और किन्ही पुराणो के तो श्लोक भी ज्यो के त्यो मिल जाते है। परन्तु प्रत्येक पुराण का उद्देश्य पृथक् प्रतीत होता है और सम्भवत इसीलिए प्रत्येक पुराण मे कोई न कोई प्रसग विशेष रूप से आ गया है। धर्म के पुनरुत्थान युग मे जब साम्प्रदायिक प्रचार ही पुराणो का उद्देश्य हो गया तो उनमे परिवतन और परिवद्ध न की कोई सीमा न रही। हिन्दू पुराणो के आधार पर अनेक बौद्ध और जैन पुराण भी निर्मित हुए तथा पुराण रचना की यह प्रक्रिया १५ वी, १६ वी शताब्दी तक चलती रही। एक ही नाम के कई पुराणों की रचना भिन्न भिन्न प्रदेशो मे हुई। यह सब कुछ होते हुए भी पुराणो के ऐतिहासिक महत्व को कम नही किया जा सकता। सामान्य रूप स हिन्दू पुराणो की ब्राह्म, शैव, शाक्त और वैष्णव चार कोटियाँ हैं तथा सभी पुराणो में दो प्रकार की कथाएँ मिलती है।

(१) सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से कही गयी काल्पनिक कथाएँ अथवा अन्योक्ति या प्रतीक रूप मे कथित कथाएँ।

(२) ऐतिहासिक आख्यान।

ऐतिहासिक आख्यानो की दो मुख्य परम्पराएँ है—ब्राह्मण परम्परा तथा क्षत्रिय परम्परा। पुराणो का काल क्रम से वर्गीकरण एक दुष्कर काय है परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि पुराण साहित्य वशावलियो और परम्पराओं की एक निधि हे। उन सबको सम्बद्ध करके भारत वष का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। धम प्रचारको के हाथ मे पडकर पुराणो का रूप बिलकुल ही बदल गया और उनका मूल उद्देश्य धम का व्यापक प्रचार ही बन गया।

धम प्रचार की दृष्टि से मध्ययुग मे भागवत धम को ही विशेष महत्व मिला तथा अधिकाश पुराणो मे भागवत धम की ही प्रतिष्ठा हुई। भागवत धम वैष्णव धम का ही दूसरा नाम है जिसका मूल है, अहिंसा का भाव तथा जिसके अधिष्ठातृ देव विष्णु भगवान् हैं। भगवान् विष्णु तथा उसके अवतारो की चर्चा ही वैष्णव पुराणो का विषय रहा है। भगवान् विष्णु के अवतारो मे कृष्णावतार को सर्वोपरि माना गया है। विभिन्न परिस्थितियों

के कारण मध्ययुग मे जो भक्ति आन्दोलन हुआ उसके फलस्वरूप भागवत धम और विष्णु के कृष्णावतार की ही विशेष प्रतिष्ठा हुई। भागवत धम और भक्ति आन्दोलन विषय का विवेचन हमने इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे किया है।

वैष्णव धम के अनेक नामो मे 'भागवत' नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। भागवत-धम वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आय और निषाद सस्कृतियो का सुन्दर सुखद सगम है। श्रीमद्भगवद्गीता मे इसी धम का सार सगृहीत है। इस धर्म की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत-भू पर फहराती रही। इस धम के मूल स्तम्भ यादव अथवा सात्वत लाग थे जो राजनैतिक कारणो से शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्रमहाभिषेक के प्रसग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बताया गया है। सात्वतो के सम्पक से ही भागवत धम पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य का बहुत महत्त्व है तथा इसकी आज भी अनेक सहिताएँ प्राप्त होती है। इस मत का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के 'शाति पव' मे मिलता है। इस मत मे ज्ञान, योगचर्या आदि विषयो के साथ साथ ब्रह्म, माया, जीव का भी विस्तृत विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो ही भाव इस मत मे स्वीकार किये गए है। अनेक आचार्यों ने अपने-अपने ढग से इस मत की व्याख्या की और धम का एक परमबौद्धिक रूप प्रस्तुत किया। इसी बौद्धिक स्वरूप की प्रतिक्रिया मे भक्ति आन्दोलन उठ खडा हुआ। धम मे रागात्मक तत्त्व का समावेश इस आन्दोलन की माँग थी। भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे केवल वैष्णव सम्प्रदाय ही नही थे, देश का सामान्य वातावरण तथा तज्जन्य अनेक धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ भी अपना काम कर रही थी। साम्प्रदायिक प्रचारको के अतिरिक्त एक ऐसा सन्तो का दल भी समूचे देश मे उठ खडा हुआ था जो हृदय की शुद्धि, आचरण की पवित्रता और ईश्वरीय प्रेम की विह्वलता पर बल देता हुआ सामान्य भाव-भक्ति के आधार पर जाति-पाँति के भेद से परे जनता की भाषा मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार कर रहा था। हेय का त्याग और आदेय का आदान इनकी सरल प्रकृति का प्रमाण है। वास्तव मे इस सम्पूण भक्ति आन्दोलन के मूल में प्रेम और प्रपत्ति की भावना है। इसीलिए वैष्णव सम्प्रदायो मे भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता गया और शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया। भागवत पुराण इसी प्रवृत्ति को रसात्मकता के साथ प्रतिपादित करने वाला एक अपूव ग्रन्थ है। भक्ति की अमृतमयी सरिता को सारे देश मे प्रवाहित करने वाला यही एकमात्र पुराण है। मध्ययुगीन भक्ति साहित्य और धार्मिक प्रवृत्तियो को समझने के लिए भागवत का अनुशीलन परम आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय मे हमने भागवत के वण्य-विषय स्वरूप-निर्धारण, उसकी प्राचीनता, विभिन्न टीकाएँ तथा रचनाविधान आदि पर विचार किया है। पाश्चात्य विद्वानो ने श्रीमद्भागवत को विभिन्न कालों की रचना बताया है और रास-लीला को तो वे १६ वी शताब्दी तक खीच लाये हैं। कुछ विद्वानो ने बोपदेव को जो यादवराज रामचन्द्र के मत्री हेमाद्रि के समकालीन थे श्रीमद्भागवत का रचयिता माना है, परन्तु यह मान्यता अनेक प्रमाणो से गलत सिद्ध हो चुकी है। इस पुराण की रचना ९ वी शताब्दी से आगे किसी भी दशा मे नही खीची जा सकती। भागवत पुराण निश्चित रूप से एक ही व्यक्ति की रचना है। यह दूसरी बात है कि इसके स्कन्ध एक क्रम से न लिखे गये हो। यह बात इस ग्रन्थ की

तथा 'वृहदारण्यक' आदि कई उपनिषदों मे भी 'पुराण' शब्द का प्रयोग मिलता है। हो सकता है कालान्तर में पुराण का ऐतिहासिक पक्ष निबल पड गया हो अथवा इतिहास को पुराण से अलग ही एक अग माना जाने लगा हो। 'वायुपुराण' मे इतिहास और पुराण दोनो को ही वेदज्ञान मे सहायक बताया गया है—

'इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपवृ हयेत्।'

सभी मुख्य पुराणो मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाए है और वशानुचरित को पुराणो का अभिन्न अग माना है। यह वशानुचरित इतिहास का ही विषय है। यह कहना बडा कठिन है कि पुराण सहिता का आदि रूप क्या था तथा उसका आदि प्रणेता कौन था ? हो सकता है कि यह सहिता भी ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो की भाति ऋषिप्रोक्त ही रही हो तथा द्वापर युग मे वेदव्यास जी ने अ य भारतीय वाड्मय के साथ पुराण सहिता का भी सपादन किया हो। 'विष्णुपुराण' मे इस विषय का एक सकेत भी मिलता है। शायद प्राचीन 'पुराण सहिता के अठारह भाग रहे हो जिनके आधार पर कालान्तर मे अठारह पुराणो का निर्माण हुआ और उनके परिशिष्ट रूप मे उपपुराण बने। पुराणो के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सब पुराणो मे प्राय एक से ही विषयो की पुनरावत्ति की गयी है और किन्ही पुराणो के तो श्लोक भी ज्यो के त्यो मिल जाते है। परन्तु प्रत्येक पुराण का उद्देश्य पृथक् प्रतीत होता है और सम्भवत इसीलिए प्रत्येक पुराण मे कोई न कोई प्रसग विशेष रूप से आ गया है। धर्म के पुनरुत्थान युग मे जब साम्प्रदायिक प्रचार ही पुराणो का उद्देश्य हो गया तो उनमे परिवतन और परिवद्ध न की कोई सीमा न रही। हिन्दू पुराणो के आधार पर अनेक बौद्ध और जैन पुराण भी निर्मित हुए तथा पुराण रचना की यह प्रक्रिया १५ वी, १६ वी शताब्दी तक चलती रही। एक ही नाम के कई पुराणों की रचना भिन्न भिन्न प्रदेशो मे हुई। यह सब कुछ होते हुए भी पुराणो के ऐतिहासिक महत्व को कम नही किया जा सकता। सामान्य रूप से हिन्दू पुराणो की ब्राह्म, शैव, शाक्त और वैष्णव चार कोटियाँ हैं तथा सभी पुराणो मे दो प्रकार की कथाएँ मिलती है।

(१) सिद्धान्त प्रतिपादन की दृष्टि से कही गयी काल्पनिक कथाएँ अथवा अन्योक्ति या प्रतीक रूप मे कथित कथाएँ।

(२) ऐतिहासिक आख्यान।

ऐतिहासिक आख्यानो की दो मुख्य परम्पराएं है—ब्राह्मण परम्परा तथा क्षत्रिय परम्परा। पुराणो का काल क्रम से वर्गीकरण एक दुष्कर काय है परन्तु इसमे कोई सदेह नही कि पुराण साहित्य वशावलियो और परम्पराओं की एक निधि है। उन सबको सम्बद्ध करके भारत-वष का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। धम प्रचारको के हाथ मे पडकर पुराणों का रूप बिलकुल ही बदल गया और उनका मूल उद्देश्य धम का व्यापक प्रचार ही बन गया।

धम प्रचार की दृष्टि से मध्ययुग मे भागवत धम को ही विशेष महत्त्व मिला तथा अधिकाश पुराणो मे भागवत धम की ही प्रतिष्ठा हुई। भागवत धम वैष्णव धम का ही दूसरा नाम है जिसका मूल है, अहिंसा का भाव तथा जिसके अधिष्ठातृ देव विष्णु भगवान् हैं। भगवान् विष्णु तथा उसके अवतारो की चर्चा ही वैष्णव पुराणो का विषय रहा है। भगवान् विष्णु के अवतारो मे कृष्णावतार को सर्वोपरि माना गया है। विभिन्न परिस्थितियों

के कारण मध्ययुग मे जो भक्ति आन्दोलन हुआ उसके फलस्वरूप भागवत धर्म और विष्णु के कृष्णावतार की ही विशेष प्रतिष्ठा हुई। भागवत धम और भक्ति आदोलन विषय का विवेचन हमने इस ग्रन्थ के तृतीय अध्याय मे किया है।

वैष्णव धम के अनेक नामो मे भागवत' नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। भागवत-धम वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आय और निषाद सस्कृतियो का सुन्दर सुखद सगम है। श्रीमद्भगवद्गीता मे इसी धम का सार सगृहीत है। इस धर्म की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत भू पर फहराती रही। इस धम के मूल स्तम्भ यादव अथवा सात्वत लोग थे जो राजनैतिक कारणो से शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्रमहाभिषेक के प्रसग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बताया गया है। सात्वतो के सम्पक से ही भागवत धम पाञ्चरात्र मत भी कहलाया। वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य का बहुत महत्त्व है तथा इसकी आज भी अनेक सहिताएँ प्राप्त होती है। इस मत का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के 'शाति पव' मे मिलता है। इस मत मे ज्ञान, योगचर्या आदि विषयो के साथ-साथ ब्रह्म, माया, जीव का भी विस्तृत विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो ही भाव इस मत मे स्वीकार किये गए है। अनेक आचार्यो ने अपने-अपने ढग से इस मत की व्याख्या की और धम का एक परमबौद्धिक रूप प्रस्तुत किया। इसी बौद्धिक स्वरूप की प्रतिक्रिया मे भक्ति आन्दोलन उठ खडा हुआ। धम मे रागात्मक तत्त्व का समावेश इस आन्दोलन की माँग थी। भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे केवल वैष्णव सम्प्रदाय ही नही थे, देश का सामान्य वातावरण तथा तज्जन्य अनेक धार्मिक तथा सामाजिक प्रवृत्तियाँ भी अपना काम कर रही थी। साम्प्रदायिक प्रचारको के अतिरिक्त एक ऐसा सन्तो का दल भी समूचे देश मे उठ खडा हुआ था जो हृदय की शुद्धि, आचरण की पवित्रता और ईश्वरीय प्रेम की विह्वलता पर बल देता हुआ सामान्य भाव-भक्ति के आधार पर जाति-पाति के भेद से परे जनता की भाषा मे अपने सिद्धान्तो का प्रचार कर रहा था। हेय का त्याग और आदेय का आदान इनकी सरल प्रकृति का प्रमाण है। वास्तव मे इस सम्पूण भक्ति आन्दोलन के मूल मे प्रेम और प्रपत्ति की भावना है। इसीलिए वैष्णव सम्प्रदायो मे भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता गया और शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया। भागवत पुराण इसी प्रवृत्ति को रसात्मकता के साथ प्रतिपादित करने वाला एक अपूव ग्रन्थ है। भक्ति की अमृतमयी सरिता को सारे देश में प्रवाहित करने वाला यही एकमात्र पुराण है। मध्ययुगीन भक्ति साहित्य और धार्मिक प्रवृत्तियो को समझने के लिए भागवत का अनुशीलन परम आवश्यक है।

चतुथ अध्याय मे हमने भागवत के वण्य-विषय स्वरूप-निर्धारण, उसकी प्राचीनता, विभिन्न टीकाएँ तथा रचनाविधान आदि पर विचार किया है। पाश्चात्य विद्वानो ने श्रीमद्भागवत को विभिन्न कालों की रचना बताया है और रास-लीला को तो वे १६ वी शताब्दी तक खीच लाये हैं। कुछ विद्वानो ने बोपदेव को जो यादवराज रामचन्द्र के मत्री हेमाद्रि के समकालीन थे श्रीमद्भागवत का रचयिता माना है, परन्तु यह मान्यता अनेक प्रमाणो से गलत सिद्ध हो चुकी है। इस पुराण की रचना ६ वी शताब्दी से आगे किसी भी दशा मे नही खीची जा सकती। भागवत पुराण निश्चित रूप से एक ही व्यक्ति की रचना है। यह दूसरी बात है कि इसके स्कन्ध एक क्रम से न लिखे गये हों। यह बात इस ग्रन्थ की

भाषा और शैली से स्पष्ट हो जाती है। वर्ण्य-विषय पर विचार करने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है क्योकि इसमे एक निश्चित योजना के अनुसार भक्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। दूसरे भागवतकार की समन्वय-प्रवणता स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। विभिन्न दार्शनिक मतों के अतिरिक्त एक ही दर्शन की विविध मा यताओ का भी समन्वय भागवत मे हुआ है। एक यह भी बात लक्ष्य करने की है कि इस ग्रन्थ के रामायण, महाभारत के समान कई सस्करण प्राप्त नही है। सभी प्राप्त प्रतियो मे इसका एकमात्र प्रतिष्ठित रूप ही मिलता है क्षेपक और पाठ भेद भी नही के बराबर है। एक बात अवश्य विचारणीय है कि रचना विधान की दृष्टि से भागवत के दो भाग है–एक, दशमस्कन्ध और दूसरा अन्य स्कन्ध। दशम स्कन्ध धम का व्यावहारिक पक्ष है और शेष स्कन्ध धम के सैद्धान्तिक पक्ष का प्रतिपादन करते है। यह हो सकता है कि लेखक ने ग्रन्थ के सम्पादन के समय दोनो भागों का क्रम निर्धारित किया हो। श्रीमद्भागवत की भाषा पर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है कि यह एक ही कवि की रचना है। साथ ही इसकी समास-प्रधान सक्षिप्त शैली और आलकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य भाषा और शैली मे सरलता और स्पष्टता के स्थान पर आलकारिक प्रयोग प्रतीक-विधान और व्यजना के गूढ साधनो को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। इसमे कोई सदेह नही कि इस ग्रन्थ की रचना दक्षिण भारत मे हुई क्योकि इस ग्रन्थ के वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते है। उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा प्राप्त ज्ञात होता है।

कृष्ण और गोपियो के चरित्र-चित्रण मे भी भागवतकार ने एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही अपनाया है। महाभारत, गीता तथा पुराण, कृष्णचरित्र के तीन चरण है। भागवत-पुराण मे इन तीनो चरणो का समन्वय हुआ है। महाभारत मे श्रीकृष्ण का मानवीय रूप ही हमारे सामने उभर कर आया है और वहाँ हमे भगवान् के वीरत्व विधायक स्वरूप के ही दर्शन होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता यद्यपि महाभारत का ही एक भाग है फिर भी उसमें भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सर्वव्यापक अव्यक्त और अमृततत्व मानकर परमपुरुष कहा गया है जिसके दो स्वरूप हैं, व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी सगुण, सगुण निर्गुण और निर्गुण तीन भेद है। कृष्ण उस परमपुरुष के ही अवतार हैं। श्रीमद्भागवत मे 'एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' कहकर कृष्ण को परमपुरुष ही बताया है। भागवत मे गीता की भाँति ज्ञान कर्म और उपासना का सामञ्जस्य कर पिण्ड, ब्रह्माण्ड के ज्ञान सहित आत्म-विद्या के गूढ तत्त्वो का विवेचन तो हुआ है परन्तु भक्ति को सर्वोपरि ठहराया है। इसीलिए गीता का परमपुरुष भागवत में रसिकेश्वर श्रीकृष्णरूप मे चित्रित हुआ है। सिद्धान्त रूप से इस स्वरूप का निरूपण भागवत के गीतो मे हुआ है जिनमे भागवतकार का हृदय साक्षात्रूप से द्रवित हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतो मे पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है। ये गीत हृदय के ऐसे स्वत प्रवाही स्रोत हैं, जिनका अवरोध कवि नही कर सका है। वे भक्त की अन्तरात्मा की व्यथा और अन्तर्वेदना का साक्षात्रूप हैं तथा प्रेम, विरह की साक्षात् मूर्ति हैं। इस प्रेम तथा विरह को लीलाओ में पूर्ण अभिव्यक्ति मिली है। बात यह है कि भागवतकार का उद्देश्य कृष्ण-चरित्र को चित्रित करना नही है बल्कि उसके द्वारा कृष्ण का परमपुरुषत्व सिद्ध करना है। यह सिद्ध

बडी वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है। बाल लीलाएँ प्रेम को परिपक्व करने वाली है। वे केवल साधन स्वरूपा है। आवरण अभी अवशिष्ट है। साध्य की प्राप्ति मे—पूर्ण समर्पण मे आवरण-भग अनिवार्य है। यह आवरण भग ही चीर-हरण लीला है। साधक के लक्ष्य की पूर्ति रास लीला मे होती है जिसका पर्यवसान 'महारास' मे होता है। भागवतकार ने इस प्रसग में भौतिक, अभौतिक का, प्राकृत और अप्राकृत का तथा भक्त और इष्ट का पूर्ण तादात्म्य किया है। एक ओर शृङ्गार का नग्न चित्रण है तो दूसरी ओर भगवान् के दिव्य मगलस्वरूप की झलक। एक प्रच्छन्न सखी का आयोजन भी सोद्देश्य है। इसी प्रच्छन्न सखी को राधारूप मे स्वीकार किया गया है। रासलीला भगवान् के चिन्मयसकल्प की चिन्मयी लीला है, भगवान् का दिव्य विहार है तथा काम पर विजय का साधन है। भ्रमर गीत के द्वारा भागवतकार ने भक्ति और ज्ञान के सामञ्जस्य का व्यावहारिक पक्ष बडी सरसता और सुन्दरता से प्रतिपादित किया है। भ्रमरगीत का मुख्य उद्देश्य इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियो की आत्मा के रूप मे स्थिर करना है। भागवत मे गोपियो का वर्णन बडे शास्त्रीय ढग से हुआ है जिसके कारण उनके प्रेम की धाराओ मे स्थान-स्थान पर बाँध से लगे प्रतीत होते है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण और गोपियो का चित्रण हमने पचम अध्याय मे किया है। भागवत के इस चित्रण मे यशोदा का पूर्ण व्यक्तित्व सामने नही आ सका। शायद इसीलिए परवर्ती भागवतानुसारी साहित्य मे राधा और यशोदा कवियो के प्रमुख विषय रहे है।

श्रीमद्भागवत एक महापुराण है तथा इसका प्रधान उद्देश्य नैष्कर्म्य भक्ति का प्रतिपादन है। पुराण होने के कारण इस ग्रन्थ मे सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय सभी का विवेचन हुआ है। परन्तु ग्रन्थ का प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व का विवेचन ही ह। आश्रयतत्त्व के सदर्भ मे ही अन्य तत्त्वो का विश्लेषण हुआ ह। यो तो भागवत के प्रत्येक स्कन्ध मे आश्रय का निरूपण किया गया है तथापि सगुण साकार रूप आश्रय का दशम स्कन्ध मे तथा निर्गुण निराकार आश्रय का १२ वे स्कन्ध मे विशेष निरूपण हुआ है। भागवत मे ब्रह्म के विषय मे तीन बातो को प्रधानता दी है—१–अधिष्ठानता, २–साक्षिता और ३–निरपेक्षिता। उस ब्रह्म के तीन रूप है–आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। बात यह है कि तत्त्वत ब्रह्मसूत्र के ब्रह्म, गीता के पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण एक ही वस्तु है। इसका सकेत भागवत के प्रथम स्कन्ध मे ही मिल जाता है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।।

ईश्वर, जीव, जगत् और माया सभी की विस्तृत व्याख्या भागवत मे की गई है तथा आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद तीनो की ही सगति इस ग्रन्थ मे मिल जाती है। भागवतकार का दृष्टिकोण सर्वत्र समन्वयपरक रहा है। किसी एक दर्शन के सिद्धान्तो का विवेचन भागवतकार का लक्ष्य नही है। यही कारण है कि श्रीमद्भागवत से ब्रह्म, जीव और माया के विषय मे निश्चित और सुनियोजित सिद्धान्तो का चयन एक दुस्तर कार्य है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् कहकर भागवतकार निर्गुण और सगुण के विरोध को बडी सफाई से बचा देता है। सगुण भगवान् की लीलाएँ भी अनन्त मे क्रीडा (Playing in the Infinite)

ही समझनी चाहिए। श्रीमद्भागवत से दार्शनिक सिद्धान्तों का विश्लेषण करने का प्रयास हमने प्रस्तुत ग्रन्थ के षष्ठ अध्याय मे किया है।

भागवत के आदि, मध्य और अन्त मे भक्ति के वैशिष्ट्य का ही प्रतिपादन हुआ है। भागवतकार का प्रयोजन भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवृत्त करना है। इसीलिए भागवतकार भक्ति की परिभाषा से ग्रन्थ का प्रारम्भ करता है और भक्त की प्रार्थना से ही समाप्त करता है। ग्रन्थ के बीच बीच मे अनेक प्रकार से भक्ति का विवेचन हुआ है। इस विवेचन की सबसे बडी विशेषता यह है कि ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त नैष्कर्म्य का आविष्कार किया गया है तथा भक्ति सहित ज्ञान का निरूपण हुआ है। भागवतकार की दृष्टि मे ज्ञान और भक्ति मे कोई तात्त्विक भेद नही है। भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति। जहाँ भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बताया गया है वहाँ भक्ति का अर्थ है साधन भक्ति और जहाँ ज्ञान को भक्ति से श्रेष्ठ बताया है वहाँ ज्ञान का अर्थ है परोक्ष ज्ञान। पराभक्ति और परम ज्ञान दोनो एक ही वस्तु हैं तथा दोनो ही अन्तरग भाव हैं। भागवत मे साधन और साध्य इन दो भक्ति प्रकारो को स्वीकार किया गया है। साध्यभक्ति वास्तव मे निर्गुणा भक्ति है जिसे भागवतकार अहैतुकी और अप्रतिहता कहते है। शाण्डिल्य भक्तिसूत्र मे उसे ही ईश्वर मे परानुरक्ति कहा है तथा भक्तिरसामृतसिन्धुकार ने उसे पराभक्ति बताया है। वैधी और रागानुगा साधना-भक्ति के दो भेद है। इससे उच्चकोटि की भक्ति साध्यभक्ति है जिसे भाव-भक्ति या प्रेमाभक्ति कहते है। भागवत के ११ वे स्कन्ध में इसी भाव भक्ति को स्पष्ट किया गया है। गीताकार इसे अनन्याभक्ति कहते है। इस प्रेमलक्षणाभक्ति का जैसा सुन्दर तथा स्पष्ट विवेचन श्रीमद्भागवत मे हुआ है वैसा न तो गीता मे है तथा न ही किसी अन्य भक्ति सूत्र मे। वास्तव मे प्रेमलक्षणाभक्ति ही भागवत का विधेय है जिसका मानवीय मनोविज्ञान के धरातल पर विवेचन हुआ है। इसीलिए वह शाश्वत तथा सार्वभौम है। भागवत की भक्ति का विवेचन ग्रन्थ के सप्तम अध्याय मे हुआ है।

श्रीमद्भागवत केवल दर्शन अथवा भक्ति का ही ग्रन्थ नही है, इसका साहित्यिक महत्त्व भी अवर्णनीय है। यह एक रस-प्रधान भक्ति काव्य है। 'रसात्मक वाक्य काव्यम्' यह लक्षण ठीक श्रीमद्भागवत मे घटता है। अब तक श्रीमद्भागवत का अनुशीलन धर्म और भक्ति की दृष्टि से हुआ है, उसके साहित्यिक महत्त्व का मूल्याङ्कन अभी तक नही हो सका है। वास्तव मे गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरितमानस' की भाति भागवत मे भी पूर्ववर्ती काव्य शैलियो का समावेश है।

श्रीमद्भागवत मे जहाँ एक ओर कालिदासोत्तर अलकृत शैली को प्रश्रय मिला है, वहाँ दूसरी ओर इसमे सस्कृत गीतिशैली का विकसित रूप भी मिलता है। सचमुच, यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो श्रीमद्भागवत में कई काव्य शैलियो का समन्वय प्राप्त होता है। प्रधान-रूप से इसमे चार काव्य-शैलियाँ है —

(१) अलकार प्रधान ऊहात्मक शैली।
(२) अलकार प्रधान भावात्मक शैली।
(३) प्रसादपूर्ण भावात्मक शैली।
तथा (४) इतिवृत्तात्मक शैली।

यद्यपि श्रीमद्भागवत भक्ति और ज्ञान का प्रतिपादक एक आध्यात्मिक ग्रथ है तथापि वर्ण्य-विषय की गरिमा, विस्तार और व्यापकता के कारण यह ग्रन्थ सहज ही एक श्रेष्ठ काव्य के गुणो से अलकृत हो गया है। वास्तव मे यह काव्य लौकिक काव्यो से उच्चतर धरातल पर पहुँचकर 'दिव्य-काव्य' के नाम से अभिहित होने का अधिकारी है। यद्यपि भागवत में भाषा की अपेक्षा भाव को हा प्रमुखता मिली है फिर भी भागवतकार के सहज पाण्डित्य से भाषा का सुन्दरतम और प्राणमय रूप कही भी मन्द नही हुआ है। जान बूझकर भाषा को क्लिष्ट बनाने का प्रयत्न इस ग्रन्थ मे कही नही मिलता। यहाँ तक कि भागवत के इतिवृत्त भी बडे सरस और कवित्वमय है। साहित्यिक दृष्टि से भागवत के गीतो का अत्यन्त महत्त्व है। वर्णन की चित्रात्मकता भावो की कोमल व्यजना, अनुभावो के मनोरम विधान, घटनाओ की भावुकतापूर्ण कल्पना प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण, अलकारो के सतुलित प्रयोग और भाषा के यथा प्रसग सयोजन से भागवत मे उन सब काव्योचित गुणो का समावेश हो गया है जो किसी भी रचना के लिए गौरव का विषय बनकर उसे स्थायी साहित्य की श्रेणी में रख सकते है। भागवत के साहित्यिक महत्त्व का प्रतिपादन हमने ग्रथ के अष्टम अध्याय मे किया है।

श्रीमद्भागवत मे जिन व्यापक सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है, उनको आशिक रूप मे ही विभिन्न वैष्णव-सम्प्रदायो ने ग्रहण किया। सभी वैष्णव सम्प्रदायो के सिद्धान्त तथा आचरण पक्ष श्रीमद्भागवत मे मिल जाते है। यही कारण है कि दक्षिण और उत्तर के सभी वैष्णव सम्प्रदायो के लिए श्रीमद्भागवत एक अपार प्रेरणा-स्रोत रहा है। सम्पूर्ण भागवत में भागवतकार बडी सुन्दरता से अद्वैत को मोड देकर चला गया है तथा भक्ति-साधना की सीधी रेखा मे वे मोड बिल्कुल प्रतीत नही होते। भक्ति-प्रवर्तक आचार्यो मे रामानुज आद्याचार्य माने जाते है। उनके सभी ग्रन्थो मे भागवत की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। उनके प्रशिष्य श्री वीर राघवाचार्य ने तो भागवत को पचमवेद ही स्वीकार किया है तथा उसे ब्रह्म सूत्रो की व्याख्या बताया है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे भी श्रीमद्भागवत को मूलग्रन्थ मानकर प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादन किया गया है, इस सम्प्रदाय मे भागवत की कई टीकाएँ लिखी गयी।

श्रीमद्भागवत के सागोपाङ्ग रहस्यों का उद्घाटन सबसे पहले मध्वाचार्य ने अपने ग्रथ 'भागवत-तात्पर्य-निर्णय' मे किया था। इसी सम्प्रदाय के आचार्य विजयध्वज तीर्थ ने भागवत को लोकप्रिय ग्रन्थ बनाने का महनीय प्रयत्न किया था। माध्वमत की गौडीय शाखा चैतन्य मत मे तो भागवत महापुराण की इतनी मान्यता है कि उसमे सब प्रकार की भक्ति के लिए इस ग्रन्थ को ही साधन ग्रन्थ ठहराया गया है। चैतन्यमत मे जितने भी भक्ति ग्रथ है, उन सबका आधार प्राय श्रीमद्भागवत ही है। अनेक ग्रथो मे भागवत की बडी मार्मिक व्याख्या की गयी है। एक प्रकार से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रचार तथा विवेचन मे माध्वमत तथा चैतन्य सम्प्रदाय अग्रणी है।

चैतन्य सम्प्रदाय की भाँति वल्लभ-सम्प्रदाय का भी एकमात्र प्रेरणा-स्रोत भागवत महापुराण रहा है। आचार्य वल्लभ ने सम्पूर्ण देश मे भ्रमण करके भागवत का प्रचार किया तथा देश के ८४ प्रमुख स्थानो पर इस महापुराण का पारायण किया। महाप्रभु पहले आचार्य थे जिन्होने इस महापुराण को 'व्यास की समाधि भाषा' कहा तथा इसे 'प्रस्थान चतुष्टय' की सज्ञा दी। वल्लभाचार्य ने अपने 'तत्त्व दीप-निबन्ध' तथा 'सुबोधिनी' आदि मे भागवत की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। यहाँ तक कि अपने सम्प्रदाय अर्थात् पुष्टि सम्प्रदाय के

नामकरण की प्रेरणा भी उन्होने श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त की। पुष्टि-सम्प्रदाय का सेवा-मडान भी भागवतानुसारी ही सिद्ध किया गया तथा भागवतोक्त कृष्ण के अष्टसखाओ के आधार पर अष्टछाप की स्थापना हुई। इस प्रकार सभी वैष्णव सम्प्रदायो ने भागवत पुराण को ही अपने सिद्धान्तो का मूल ग्रथ माना है। ग्रथ के नवम अध्याय मे हमने इस विषय पर विचार किया है।

वैष्णव आचार्यों का अधिकाश भक्ति साहित्य सस्कृत भाषा मे है। देश की आधुनिक भाषाओ का विकास प्राय ९ वी शताब्दी के अनन्तर हुआ तथा सत्रहवी शताब्दी तक उनके साहित्य का मूलस्वर भक्ति ही रहा। इसीलिए ६ ७ शताब्दियो का यह साहित्य भक्ति-आदोलन का साहित्य कहा जाता है। इस साहित्य की अपनी एक विशेषता यह है कि यह परम्परागत भारतीय साधना से अविछिन्न नही है। इसकी मूल प्रेरणा को अभारतीय या विदेशी देन कहना तथ्यों की अवहेलना करना है। एक प्रकार से यह सम्पूर्ण साहित्य जन-साहित्य' कहा जा सकता है। इसके मूल तत्त्व है—प्रेम और शृङ्गार। भागवत की भक्ति की भी विशिष्टता प्रेम और शृङ्गार ही है। वास्तव मे श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य ही प्रेम और शृङ्गार का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे है जो धार्मिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियो से अद्वितीय कहा जा सकता है। रूप-माधुरी तथा लीला बिहार इन दोनो तत्त्वो को रूप प्रदान करने वाले भागवतकार ने मानवमात्र का जो उपकार किया है वह विश्व की धर्म-साधना मे अनुपम, अद्वितीय तथा बेजोड है। यही कारण है कि सभी भारतीय भाषाओ का साहित्य श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। श्रीमद्भागवत की रचना से पहले भारतीय धर्म-साधना क्रिया और प्रतिक्रिया के रूप मे अनेक शाखाओ मे विभाजित थी। वैदिक-साधना लोक-साधना न रहकर वर्ग विशेष की साधना बन चुकी थी। पौराणिको ने उसे लोक साधना बनाने का प्रयास किया परन्तु वे सफल न हो सके। बौद्धधर्म तथा जैन धर्म भी वैदिक धर्म साधना की ही प्रतिक्रिया मे खडे हुए थे, परन्तु कालान्तर मे वे दोनों ही जनसाधारण से अलग पड गए। राजनैतिक परिस्थितियो के कारण अनेक अभारतीय धर्म-साधनाओ का भी देश मे प्रवेश हो गया जिसके कारण शास्त्रीय धर्म साधनो का रूप और भी सिमटता गया। धर्म जिसका आधार मनोविज्ञान था कठोर से कठोरतर बन्धनो को अपनाता गया। प्रेम और सौदर्य की ओर स्वभाव से आकृष्ट होने वाला मानव-मन धर्म के कठोर बन्धनो से वितृष्ण हो उठा तथा प्रेम और शृङ्गार की खोज मे भटकने लगा। सिद्धो तथा शाक्तो ने भटकते हुए मानव मन का लाभ तो उठाया, परन्तु वे उसे स्वस्थ न कर सके। तन्त्र साधनाओ से भी उसका समाधान नही हुआ। भागवतकार ने मानव-मन की इस स्थिति को पहिचान कर उसे सात्त्विक प्रेम की ओर मोडने का प्रयास किया। रसिकेश्वर कृष्ण को प्रेम का आश्रय बनाकर भारतीय साधना पद्धति मे भागवतकार ने प्रथमवार प्रेम के सात्त्विक रूप को प्रस्तुत किया। कृष्ण लीलाओ का लौकिक रूप पहले से प्रचलित था ही, भागवतकार ने उन्हे आमुष्मिकता प्रदान कर दी। इस प्रकार वैष्णव धर्म मे प्रेम और शृङ्गार का शास्त्रीय ढगसे समावेश सबसे पहले भागवतकार ने किया। लोकभाषाओ के सगुण भक्ति-साहित्य के साथ निर्गुण भक्ति-साहित्य मे भी हमे भागवत के प्रेमभाव की छाप मिलती है। उत्तर और दक्षिण की सभी भाषाओं मे भागवत के अनुवाद हुए तथा भागवतानुसारी ग्रन्थ लिखे गए। यहाँ तक कि इस युग के सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रश के साहित्य को भी भागवत ने प्रभावित किया।

जब हम भागवतानुसारी साहित्य की बात कहते हैं तो हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि भागवत का अनुसरण करने वाले कवियो ने अपनी रचनाओ मे ज्यों का त्यों भागवत का अनुवाद कर दिया हो। इसका अभिप्राय तो केवल इतना ही है कि भागवत के प्रभाव से कृष्ण भक्ति साहित्य को एक विशेष दिशा मिली तथा भागवतोक्त सामान्य तथा विशिष्ट तत्वो का वैष्णव भक्ति भावना मे समावेश हुआ। वैष्णव आचार्यों के प्रभाव से सम्पूर्ण देश मे कृष्णभक्ति का प्रचार हुआ। सम्प्रदायो मे दीक्षित भक्तो के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी भक्ति-साहित्य की रचना की। भगवान् कृष्ण का लीला-क्षेत्र ब्रज होने के कारण ब्रजभाषा मे सबसे अधिक भागवतानुसारी साहित्य लिखा गया। निम्बाक, सखी, राधावल्लभीय, चैतन्य तथा वल्लभ सभी सम्प्रदायो का विशाल भागवतानुसारी साहित्य आज हमे प्राप्त होता है। प्रत्येक सम्प्रदाय मे अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए तथा उन्होने अनुपम भक्ति-साहित्य की रचना की। वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो को छोडकर अन्य सम्प्रदायो के प्रमुख भक्त कवियों के ब्रजभाषा-साहित्य का निरूपण हमने ग्रथ के दशम अध्याय मे किया है। कृष्ण की रूप-माधुरी और लीलाओ को लेकर इन कवियो ने अपनी अलौकिक कल्पना से अनेक चित्र प्रस्तुत किए है। भक्ति के विभिन्न रूपो और तत्वो की विवेचन भी उनकी रचनाओ मे हुआ है। रचनाओं का मूलस्वर प्रेम और शृङ्गार ही रहा है। शायद इसीलिए इन सम्प्रदायो मे युगल उपासना के लिए राधा को इतना महत्त्व दिया गया।

भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा मे सबसे अधिक और प्राणवान् साहित्य की सर्जना वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों ने की। बात यह है कि वल्लभ सम्प्रदाय का धम-क्षेत्र और काय क्षेत्र प्रधानरूप से ब्रज ही रहा। इस सम्प्रदाय के अधिकाश ब्रजभाषा कवियों की एक यही विशेषता थी कि उनकी मातृभाषा ब्रजभाषा थी। यही कारण है कि उनकी रचनाओ में ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप मिलता है तथा ब्रजक्षेत्र की सास्कृतिक, सामाजिक और साहित्यिक परम्पराओ का भी उनमे यथोचित सन्निवेश है। पुष्टि सम्प्रदाय मे भगवान् की प्रत्येक लीला के लिए एक दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है तथा लीला के उपकरणों को नित्य-स्वरूप प्रदान किया है। कृष्ण की रूपमाधुरी और ब्रज के अलौकिक प्राकृतिक सौदय मे वे उपकरण बडे दिव्य और मनोहारी बन गये हैं। पुष्टि-सम्प्रदाय के कवियो ने उनका वणन बडे कवित्वमय और आकषक ढग से किया है। एक-एक उपकरण को लेकर एक-एक खण्डकाव्य की रचना कर डाली है। पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना इस विशाल साहित्य की सजना का मूल कारण थी। भगवान् की आठ झाँकियो मे नियमित कीर्तन के लिए आठ सगीताचार्य कीतनकार तथा अनेक झालरिया नियुक्त किये गए। अष्टछाप के आठो कीतनकार ठाकुर जी के आठ सखाओ के रूप मे स्वीकृत हुए। साथ ही साथ आचाय वल्लभ के सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने श्रीकृष्ण की उन सात दिव्य मूर्तियो को, जो उन्हे अपने पूज्य पिता से सप्तनिधि के रूप मे प्राप्त हुई थी अलग-अलग अपने सातों पुत्रो को दे दिया जिन्होने उन स्वरूपो की पृथक्-पृथक् सेवा प्रारम्भ की। इन्ही सात स्वरूपो के कारण पुष्टि-सम्प्रदाय मे सात गृह अथवा सप्तपीठ प्रतिष्ठित हुए। इनके माध्यम से पुष्टि सम्प्रदाय मे विशाल ब्रजभाषा साहित्य की सजना हुई। पुष्टि-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियो का राधा-वणन भी एक अलग विशेषता है। ग्रन्थ के एकादश अध्याय मे हमने पुष्टि-सम्प्रदाय के अष्टछापी कवियो के साहित्य का ही विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

ब्रजभाषा के अतिरिक्त भारत की अन्य मध्ययुगीन भाषाओ का साहित्य भी भागवत से कम प्रभावित नही हुआ है। ग्रथ के द्वादश अध्याय मे इस विषय के प्रतिपादन के लिए हमने तेलुगु, तमिल मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, बगला, असमिया, उडिया तथा पजाबी भाषाओ को लिया है। दक्षिण की भाषाओ के मध्ययुगीन-साहित्य मे निश्चित रूप से भक्ति भावना का वेग अधिक है और उनका साहित्य अपेक्षाकृत प्राचीन भी है। परिमाण की दृष्टि से तेलुगु का भक्ति-साहित्य बडा विशाल है तथा उसमे वैष्णव-काव्य की बडी समृद्ध धाराएँ हैं। राम और कृष्ण दोनो ही भगवत्स्वरूपो को लेकर तेलुगु मे विपुल साहित्य की सजना हुई है। रामपरक ग्रन्थो मे भी श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्वो का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। तेलुगु का कृष्ण परक भक्ति साहित्य तो एक प्रकार से भागवत साहित्य ही कहा जा सकता है। मडिकिसिगन्न का भागवत दशमस्कन्ध का अनुवाद कदाचित् सवप्राचीन है। यह अनुवाद १४ वी शताब्दी मे हुआ था। इसी प्रकार बम्मेर पोतन्न की अमरकृति महाभागवत भी तेलुगु साहित्य का एक अत्यन्त प्रदीप्त रत्न है। इन दो प्रमुख कवियो के अतिरिक्त तेलुगु मे कृष्णभक्ति साहित्य की रचना करने वाले उल्लेखनीय कवि है—अन्नमाचाय, महाराजाधिराज श्रीकृष्णदेवराज, श्री तेनालि रामकृष्ण-कवि तथा त्यागराजु। तेलुगु मे राधा-कृष्ण विषयक लोकसाहित्य भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है।

तेलुगु के पश्चात् दक्षिण की भाषाओ मे तमिल का साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव मे भागवतकार का 'द्रविड देश' से अभिप्राय 'तमिल देश' ही लगता है। तमिल का वैष्णव काव्य बहुत प्राचीन है। कहना न होगा कि प्रेमाभक्ति को रूप देने वाला तमिल का प्रबन्ध साहित्य ही था। तमिल साहित्य मे आलवार सतो की भक्ति भावपूर्ण उक्तियो का ही प्राचुय है। इन भक्तो के मधुमय रसायन से ही भक्ति का काया-कल्प हुआ था। आलवार भक्तो मे १२ भक्त विशेष प्रसिद्ध हैं। यह तो नही कहा जा सकता कि इन आलवार भक्तो ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा ग्रहण की परन्तु इतना निश्चित है कि उनके लीला-पद भागवत से बहुत साम्य रखते है। आलवार भक्तो ने भगवद्भक्ति का जो प्रवाह प्रवाहित किया वह सम्पूर्ण देश को सरस बनाता हुआ अक्षयरूप मे बहता रहा। उसे सिद्धान्त और आचार के कूलो मे बाधकर प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीनाथ मुनि यामुनाचाय श्री रामानुज तथा वेदान्त देशिक आदि आचार्यो को है। आलवारो की कथाओ को लेकर अनन्ताचाय ने सस्कृत मे 'प्रपन्नामृत ग्रथ' लिखा। 'दिव्य सूरि-चरितम्' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है। हमे तो ऐसा लगता है कि आलवार भक्तो के पदो से भागवतकार स्वय बहुत प्रभावित हुए हैं। भागवत मे आलवारो की भक्ति-भावना को ही शास्त्रीय रूप देने का प्रयास किया गया है।

मलयालय भाषा मे भी भागवतानुसारी साहित्य पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। अनेक कवियो ने श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर लीला नायक कृष्ण की लीलाओ को लेकर रसपूर्ण रचनाएँ मलयालम भाषा मे प्रस्तुत की है। मलयालम मे भागवत नाम की कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं जो 'भागवत' के अक्षरश अनुवाद तो नही कहे जा सकते, परन्तु उनका क्रम तथा विषय विवेचन भागवत के अनुसार ही है। अनेक रचनाएँ 'भागवत के आख्यानों पर आधारित होते हुए भी स्वतन्त्र तथा मौलिक हैं। मलयालम में यह रचना-क्रम

चौदहवी शताब्दी से ही प्राप्त होता है। भक्त-कवियो मे एलुत्तच्छन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो मलयालम के सूर या तुलसी कहे जा सकते है। एलुत्तच्छन रचित 'भागवतम्' के पदो का गायन आज भी जनता मे बडे प्रेम भाव से किया जाता है। इसी प्रकार 'पून्तानम् नपूतिरि, के पदो मे भी भक्त-हृदय को अनायास ही आकृष्ट करने की सामथ्य निहित है। अठारहवी शती के प्रारम्भ मे कुचन नप्यार' ने भागवतानुसारी विशाल साहित्य की सजना की। उन्होने 'भागवतम् इरुपतिनालुवृत्तम्' नामक ग्रथ मे भागवत की कथावस्तु को चौबीस सर्गों और विभिन्न वृत्तो मे प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मलयालम के मध्ययुगीन-भक्ति-साहित्य मे भागवत निरन्तर प्रेरणा स्रोत रहा है।

कन्नड भाषा का मध्ययुगीन साहित्य भी अधिकाश मे 'भागवत' से अनुप्राणित है। कन्नड के भागवत साहित्य पर मध्वाचाय के द्वैत-सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पडा है। मध्वमतावलम्बी भक्त-कवि, 'हरिदास, कहलाए जो सख्या मे दो सौ के लगभग है। इनमे से अनेक ने भागवत के कथा-प्रसगो को लेकर गेय पदो की रचना की जो सकीतन पद्धति मे है। इनके गेय पदो को गाकर आज भी भक्त-जन आत्म-विभोर हो जाते हैं। श्री प्रसन्नवेकटदास ने तो भजनो के अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध का कन्नड भाषा मे अनुवाद भी किया। इन हरिदास भक्तो के अतिरिक्त कन्नड मे और भी अनेक वैष्णव भक्त-कवि हुए हैं जिन्होने भागवत को आधार मानकर रचनाएँ की है। इनमे रुद्रभट्ट, सोमनाथ और चौण्डरस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १६ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड भाषा मे श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड भाषी जनता के बीच कृष्ण भक्ति के प्रचार मे इस ग्रन्थ का बडा योगदान रहा है। यह देखकर बडा आश्चर्य होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण की जिन लीलाओ का गान किया है, उनका बडा भाव-पूर्ण वर्णन कन्नड के साहित्य मे उनसे पहले ही हो चुका था।

मध्ययुग मे महाराष्ट्र यद्यपि अनेक राजनैतिक क्रान्तियो का गढ रहा है तथा वहाँ का साहित्य सन्त-साहित्य नाम से ही अभिहित किया जाता है, फिर भी यह देखकर आश्चर्य होता है कि मराठी का भागवतानुसारी सगुण-भक्ति साहित्य बडा प्राचीन तथा प्राणवान् है। सत ज्ञानेश्वर से पहले ही श्रीकृष्णोपासना के एक नवीन माग 'महानुभाव पथ' का उदय हो चुका था। गीता तथा भागवत दोनो ही ग्रन्थो का इस पथ मे बडा आदर है तथा दोनो के आधार पर मराठी मे अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। भागवत के आख्यानों के आधार पर अनेक रचनाओं के अतिरिक्त शक ११११६ का कवीश्वर भास्कर रचित 'एकादश स्कन्ध' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सत शिरोमणि ज्ञानेश्वर ने ऐसे अनेक अभग लिखे जिनमे भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओ का वर्णन है। इन अभगो पर 'भागवत' का प्रभाव स्पष्ट है। बारकरी सम्प्रदाय मे कृष्ण की उपासना 'विट्ठल' नाम से होती हैं। इस सम्प्रदाय मे जाति-पाँति का कोई भेद भाव नही है। इसीलिये निम्न जातियो के भक्त कवियो ने भी इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर कृष्ण-लीला का गान किया। सत ज्ञानेश्वर और सत नामदेव दोनों की ही इस सम्प्रदाय में बडी मान्यता है। सत नामदेव भी श्रीकृष्ण रूप विट्ठल के अनन्य भक्त थे। उनके अभगो मे कृष्णलीला का वर्णन हुआ है। बारकरी सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों के अतिरिक्त मराठी मे रचना करने वाले ऐसे अनेक भक्त कवि हुए हैं जिनका साहित्य भागवतानुसारी है। शालिवाहन शक की १४ वी शताब्दी के मध्य मे बहिरा जातवेद नामक कवि ने श्रीमद्भागवत

ब्रजभाषा के अतिरिक्त भारत की अन्य मध्ययुगीन भाषाओ का साहित्य भी भागवत से कम प्रभावित नही हुआ है। ग्रथ के द्वादश अध्याय मे इस विषय के प्रतिपादन के लिए हमने तेलुगु, तमिल मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, बगला, असमिया, उडिया तथा पजाबी भाषाओ को लिया है। दक्षिण की भाषाओ के मध्ययुगीन-साहित्य मे निश्चित रूप से भक्ति भावना का वेग अधिक है और उनका साहित्य अपेक्षाकृत प्राचीन भी है। परिमाण की दृष्टि से तेलुगु का भक्ति-साहित्य बडा विशाल है तथा उसमे वैष्णव-काव्य की बडी समृद्ध धाराएँ हैं। राम और कृष्ण दोनो ही भगवत्स्वरूपो को लेकर तेलुगु मे विपुल साहित्य की सजना हुई है। रामपरक ग्रन्थो मे भी श्रीमद्भागवत के सामान्य तत्वो का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। तेलुगु का कृष्ण परक भक्ति साहित्य तो एक प्रकार से भागवत साहित्य ही कहा जा सकता है। मडिकिसिंगन्न का भागवत दशमस्कन्ध का अनुवाद कदाचित् सर्वप्राचीन है। यह अनुवाद १४ वी शताब्दी मे हुआ था। इसी प्रकार बम्मेर पोतन्न की अमरकृति महाभागवत भी तेलुगु साहित्य का एक अत्यन्त प्रदीप्त रत्न है। इन दो प्रमुख कवियो के अतिरिक्त तेलुगु मे कृष्णभक्ति साहित्य की रचना करने वाले उल्लेखनीय कवि है—अन्नमाचार्य, महाराजाधिराज श्रीकृष्णदेवराज, श्री तेनालि रामकृष्ण-कवि तथा त्यागराजु। तेलुगु मे राधा-कृष्ण विषयक लोकसाहित्य भी प्रचुर मात्रा मे मिलता है।

तेलुगु के पश्चात् दक्षिण की भाषाओ मे तमिल का साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव मे भागवतकार का 'द्रविड देश' से अभिप्राय 'तमिल देश' ही लगता है। तमिल का वैष्णव काव्य बहुत प्राचीन है। कहना न होगा कि प्रेमाभक्ति को रूप देने वाला तमिल का प्रबन्ध साहित्य ही था। तमिल साहित्य मे आलवार सतो की भक्ति भावपूर्ण उक्तियो का ही प्राचुय है। इन भक्तो के मधुमय रसायन से ही भक्ति का काया-कल्प हुआ था। आलवार भक्तो मे १२ भक्त विशेष प्रसिद्ध है। यह तो नही कहा जा सकता कि इन आलवार भक्तो ने श्रीमद्भागवत से प्रेरणा ग्रहण की परन्तु इतना निश्चित है कि उनके लीला-पद भागवत से बहुत साम्य रखते हैं। आलवार भक्तो ने भगवद्भक्ति का जो प्रवाह प्रवाहित किया वह सम्पूर्ण देश को सरस बनाता हुआ अक्षयरूप मे बहता रहा। उसे सिद्धान्त और आचार के कूलो मे बाँधकर प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीनाथ मुनि यामुनाचाय श्री रामानुज तथा वेदान्त देशिक आदि आचार्यों को है। आलवारों की कथाओ को लेकर अनन्ताचाय ने सस्कृत में 'प्रपन्नामृत ग्रथ' लिखा। 'दिव्य सूरि-चरितम्' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है। हमे तो ऐसा लगता है कि आलवार भक्तो के पदो से भागवतकार स्वय बहुत प्रभावित हुए हैं। भागवत मे आलवारो की भक्ति-भावना को ही शास्त्रीय रूप देने का प्रयास किया गया है।

मलयालय भाषा मे भी भागवतानुसारी साहित्य पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। अनेक कवियों ने श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर लीला नायक कृष्ण की लीलाओ को लेकर रसपूर्ण रचनाएँ मलयालम भाषा मे प्रस्तुत की है। मलयालम मे भागवत नाम की कई रचनाएँ प्राप्त होती है जो 'भागवत' के अक्षरश अनुवाद तो नही कहे जा सकते, परन्तु उनका क्रम तथा विषय विवेचन भागवत के अनुसार ही है। अनेक रचनाएँ 'भागवत के आख्यानो पर आधारित होते हुए भी स्वतन्त्र तथा मौलिक है। मलयालम में यह रचना-क्रम

चौदहवी शताब्दी से ही प्राप्त होता है। भक्त-कवियों मे एलुत्तच्छन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो मलयालम के सूर या तुलसी कहे जा सकते है। एलुत्तच्छन रचित 'भागवतम्' के पदो का गायन आज भी जनता मे बडे प्रेम भाव से किया जाता है। इसी प्रकार 'पून्तानम् नपूतिरि, के पदो मे भी भक्त-हृदय को अनायास ही आकृष्ट करने की सामथ्य निहित है। अठारहवी शती के प्रारम्भ मे कुचन नप्यार' ने भागवतानुसारी विशाल साहित्य की सजना की। उन्होने 'भागवतम् इरुपतिनालुवृत्तम्' नामक ग्रथ मे भागवत की कथावस्तु को चौबीस सर्गो और विभिन्न वृत्तो मे प्रस्तुत किय। है। इस प्रकार मलयालम के मध्ययुगीन-भक्ति-साहित्य मे भागवत निरन्तर प्रेरणा स्रोत रहा है।

कन्नड भाषा का मध्ययुगीन साहित्य भी अधिकाश मे 'भागवत' से अनुप्राणित है। कन्नड के भागवत-साहित्य पर मध्वाचाय के द्वैत-सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पडा है। मध्वमताव-लम्बी भक्त कवि, हरिदास, कहलाए जो सख्या मे दो सौ के लगभग है। इनमे से अनेक ने भागवत के कथा-प्रसगो को लेकर गेय पदो की रचना की जो सकीतन पद्धति मे है। इनके गेय पदो को गाकर आज भी भक्त-जन आत्म-विभोर हो जाते है। श्री प्रसन्नवेकटदास ने तो भजनो के अतिरिक्त 'श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के पूर्वार्द्ध का कन्नड भाषा मे अनुवाद भी किया। इन हरिदास भक्तो के अतिरिक्त कन्नड मे और भी अनेक वैष्णव-भक्त-कवि हुए है जिन्होने भागवत को आधार मानकर रचनाएँ की है। इनमे रुद्रभट्ट, सोमनाथ और चौण्डरस विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १६ वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड भाषा मे श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड भाषी जनता के बीच कृष्ण भक्ति के प्रचार मे इस ग्रन्थ का बडा योगदान रहा है। यह देखकर बडा आश्चय होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियो ने कृष्ण की जिन लीलाओ का गान किया है, उनका बडा भाव पूण वणन कन्नड के साहित्य मे उनसे पहले ही हो चुका था।

मध्ययुग मे महाराष्ट्र यद्यपि अनेक राजनैतिक क्रान्तियो का गढ रहा है तथा वहाँ का साहित्य सन्त-साहित्य नाम से ही अभिहित किया जाता है, फिर भी यह देखकर आश्चय होता है कि मराठी का भागवतानुसारी सगुण-भक्ति साहित्य बडा प्राचीन तथा प्राणवान् है। सत ज्ञानेश्वर से पहले ही श्रीकृष्णोपासना के एक नवीन माग 'महानुभाव पथ' का उदय हो चुका था। गीता तथा भागवत दोनो ही ग्र थो का इस पथ मे बडा आदर है तथा दोनो के आधार पर मराठी मे अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती है। भागवत के आख्यानो के आधार पर अनेक रचनाओं के अतिरिक्त शक ११९६ का कवीश्वर भास्कर रचित 'एकादश स्कन्ध' एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सत शिरोमणि ज्ञानेश्वर ने ऐसे अनेक अभग लिखे जिनमे भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओ का वणन है। इन अभगो पर 'भागवत' का प्रभाव स्पष्ट है। बारकरी सम्प्रदाय मे कृष्ण की उपासना 'विट्ठल' नाम से होती हैं। इस सम्प्रदाय मे जाति-पाँति का कोई भेद भाव नही है। इसीलिये निम्न जातियो के भक्त कवियो ने भी इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर कृष्ण-लीला का गान किया। सत ज्ञानेश्वर और सत नामदेव दोनो की ही इस सम्प्रदाय में बडी मान्यता है। सत नामदेव भी श्रीकृष्ण रूप विट्ठल के अनन्य भक्त थे। उनके अभगो मे कृष्णलीला का वणन हुआ है। बारकरी सम्प्रदाय के कृष्ण भक्तों के अतिरिक्त मराठी मे रचना करने वाले ऐसे अनेक भक्त कवि हुए हैं जिनका साहित्य भागवतानुसारी है। शालिवाहन शक की १४ वी शताब्दी के मध्य मे बहिरा जातवेद नामक कवि ने श्रीमद्भागवत

के दशमस्कन्ध पर मराठी मे टीका लिखी थी, जिसे 'भैरवी टीका' भी कहते हैं। सत एकनाथ के पितामह भानुदास ने हिन्दी तथा मराठी दोनो भाषाओं में कृष्ण लीलाओ का बडे विस्तार से वर्णन किया है। १५ वी शताब्दी में भागवत के सबसे बडे प्रेमी भक्त श्री एकनाथ जी हुए जिनकी रचनाओ का प्रारम्भ ही 'चतुश्लोकी भागवत की टीका' से हुआ। महाराष्ट्र मे भागवत धर्म का प्रचार करने वाले सतो और भक्तो मे एकनाथ अग्रगण्य है। उन्होने श्रीमद्-भागवत के एकादश स्कन्ध पर एक विस्तृत टीका भी लिखी। श्रीमद्भागवत के आधार पर उन्होने और भी कई स्वतत्र रचनाएँ की तथा कृष्ण भक्ति परक अनेक अभग तथा पद लिखे। श्री एकनाथ के पश्चात् तो श्रीमद्भागवत पर अनेक टीकाएँ लिखी गयी। इन टीकाकारो मे उल्लेखनीय कवि है—शिवकल्याण, रमावल्लभ, जनीजनार्दन तथा लोलुम्बराज। १६ वी शताब्दी मे वारकरी सम्प्रदाय के आधार स्तम्भ सत तुकाराम जी हुए जिनके सहस्रावधि अभग उपलब्ध है। उनके नाम सकीर्तन परक पदो मे श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, इसीलिए उन्हे 'भागवत मन्दिर का कलश' कहा जाता है। सत तुकाराम के अनन्तर मराठी मे भागवतानुसारी अनेक ग्रथ लिखे गए। शके १६५६ मे कृष्णदयार्णव कवि ने भागवत के दशमस्कन्ध पर टीका लिखी। श्रीधर स्वामी तथा मोरोपत की अधिकाश रचनाओं का आधार भी श्रीमद्भागवत ही है। मराठी मे सम्पूर्ण भागवत पर टीका लिखने वालो मे ज्योतिपत दादा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मराठी का लोक साहित्य भी बहुत कुछ भागवतानुसारी है तथा उसमे अनेक कृष्णलीलापरक लोकगीत तथा लावणियाँ मिलती हैं।

मध्ययुगीन भक्ति भावना की दृष्टि से गुजराती भाषा का साहित्य भी प्रौढ तथा विशाल है। मध्ययुग मे गुजराती भाषा के समर्थ कवि नरसिह मेहता ने बालकृष्णलीलाओ के वर्णन मे अद्भुत कौशल दिखाया है। उनके अध्यात्मपरक पदो पर भी श्रीमद्भागवत का प्रभाव है। नरसिह मेहता के उपरात भागवत के आधार पर रचना करने वालो मे वीरसिंह, केशवदेव कायस्थ, भीम, जनार्दन त्रवाडी, नाकर आदि विशेषरूप से उल्लेखनीय है। लक्ष्मीदास ने भागवत के आधार पर 'रास पञ्चाध्यायी' की रचना की तथा दशम स्कन्ध का गुजराती मे अनुवाद भी किया। सत्रहवी शताब्दी मे भागवतानुसारी रचना करने वालो मे प्रेमानन्द का नाम अग्रगण्य है। पौराणिक साहित्य लिखने वालो मे ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ कवि है। इन्हे 'गुजराती का सूरदास' कहा जाता है। विशुद्ध भागवत के आधार पर इनकी 'दशमस्कन्ध' नाम की अलग ही रचना है। अठारहवी शताब्दी मे तो गुजराती भाषा मे भागवतानुसारी और भी अधिक साहित्य लिखा गया।

राधा और कृष्ण के माध्यम से प्रेमलक्षणा साहित्य की सर्जना का उद्गम बगाल माना जाता है। बौद्धो की सहजयानी शाखा तथा वैष्णव के सहजिया सम्प्रदाय के गीतो मे हमे भक्ति का सहजरूप प्राप्त होता है। इसी सहजरूप की अभिव्यक्ति भागवतकार का चरम उद्देश्य है। बगला मे विशुद्ध भागवतानुसारी साहित्य चैतन्य के प्रभाव से लिखा गया तथा लगभग दो सौ वर्षों तक यह परम्परा चलती रही। बगला के भागवतानुसारी साहित्य की एक बडी विशेषता यह है कि उसमे राधाको बडी मान्यता मिली है। राधा-कृष्ण के प्रेमगीत लिखने वाले बगला मे असख्य कवि हुए। १५ वी शताब्दी का मालाधर बसु का भागवतानुवाद प्रसिद्ध है। १६ वी शताब्दी में माधवाचार्य, रघुनाथ पडित तथा श्यामदास आदि ने भी भागवत के अनुवाद प्रस्तुत किए।

बगला की भाँति असमिया का मध्ययुगीन साहित्य भी गीत-साहित्य ही है। बगला की राधाकृष्ण लीलाओ से असमिया का साहित्य बहुत प्रभावित है। असमिया मे वैष्णव धारा को विशेष बल देने वाले कवि शकरदेव थे, जिन्होने असम मे भागवत-धम का प्रचार किया। भागवतानुसारी अनेक रचनाओ के अतिरिक्त उन्होने भागवतपुराण का रूपान्तर भी असमिया मे प्रस्तुत किया, जो गेय पदो मे है। असमिया के शकरदेव हिन्दी के सूरदास के समकक्ष कहे जा सकते है। असमिया के बडगीत भागवत से बहुत अनुप्राणित है। उनमे बालकृष्ण की लीलाओ तथा यशोदा के वात्सल्य का बडा सुन्दर चित्रण हुआ है। शकरदेव के अतिरिक्त माधवदेव भी असमिया के समथ लेखक हुए। अनतकदली ने भी भागवत के कई स्कन्धो का असमिया मे अनुवाद किया। उनके अतिरिक्त असमिया मे भागवत का अनुवाद करने वाले भट्टदेव, केशवशरण, गोपालशरण आदि प्रसिद्ध है।

उडिया मे भक्ति साहित्य की रचना करने वाले अनेक कवि हुए है। उडिया साहित्य का मध्ययुग 'पचसखा' नाम से प्रख्यात है। इन पच सखाओ मे से जगन्नाथदास ने 'उडिया भागवत' की रचना की जिसका आज भी उडीसा मे बडा मान है। १६ वी शताब्दी के अन तर उडिया का भक्ति-साहित्य चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित हुआ तथा उसमे भागवत के आधार पर अनेक ग्रथों की रचना हुई।

पजाबी का अधिकाश वैष्णव साहित्य हिन्दी मे ही लिखा गया। इसलिए पजाबी की भागवतानुसारी रचनाए ब्रजभाषा के अन्तगत ही आती हैं। १७ वी और १९ वी शताब्दी के बीच पजाब मे कृष्णभक्ति के अनेक ग्रथ लिखे गए। भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर भी पजाब मे कई रचनाएँ हुई।

इस अध्ययन से हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं कि भारतीय धार्मिक-चेतना सदा सास्कृतिक तथा रागात्मक एकता की ओर अग्रसर रही है। भागवतपुराण उस चेतना का ठीक प्रतिनिधित्व करने वाला ग्रथ है। उसमे दशन तथा भक्ति के जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है वे समन्वयात्मक तथा मौलिक है। विभिन्न धर्म-सम्प्रदायों के आचारपक्षो का भी भागवत मे समावेश हुआ है तथा साथ ही उसमे सभी दशनों व धममार्गों मे अविरोध स्थापित करने का सफल प्रयास किया गया है। भागवत पुराण मे सबसे पहले ब्रह्मसूत्रो की सामयिक तथा प्रामाणिक व्याख्या की गयी। प्रेम और शृङ्गार को सात्त्विक रूप प्रदान करने वाला यह एक अद्भुत ग्रन्थ है। भागवत मे जिस धम का प्रतिपादन हुआ है उसे हम मानव-प्रेम का प्रतीक कह सकते है। यही कारण है कि सम्पूण भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे एकमात्र भागवत पुराण ही वैष्णवो का प्रेरणा-स्रोत रहा है तथा देश की सभी भाषाओ मे इतना विशाल भागवतानुसारी साहित्य प्राप्त होता है। १२ वी शताब्दी से आज तक श्रीमद्भागवत की लोकप्रियता बढती ही रही है। कहना न होगा कि भारत की सास्कृतिक तथा धार्मिक एकता मे जितना योगदान भागवतपुराण का है, उतना अन्य किसी एक ग्रन्थ का नही।

सर्वे भवन्तु सुखिन, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्य तु, मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत्॥

प्रकाशकीय

हिन्दी और सस्कृत के यशस्वी लेखक डा० हरवशलाल शर्मा का कृति 'भागवत-दर्शन' विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसमे आष ग्र थ श्रीमद्‌भागवत के सूक्ष्म सिद्धान्तो का सरल तथा प्रसादमयी भाषा मे विवेचन करने का प्रयास किया गया है। अग्रेजी, फारसी, सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्र श के साथ कई आधुनिक भारतीय भाषाओ का ज्ञान होने के कारण लेखक ने भागवत धम तथा भागवतानुसारी साहित्य का बडे अधिकार के साथ सुन्दर विश्लेषण किया है। लेखक ने मध्ययुगीन भक्ति साहित्य का अनेक स्रोतों से अध्ययन किया है जिसका स्पष्ट आभास ग्रथ मे मिलता है। लेखक की मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य पर कई कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'सूर और उनका साहित्य' तथा 'बिहारी और उनका साहित्य' तो लेखक की ऐसी कृतियां है जिनका हिन्दी जगत् मे बडा मान है तथा जिनके अनेक सस्करण हो चुके हैं। प्रस्तुत कृति मे लेखक का दृष्टिकोण साहित्य के माध्यम से भारत की सास्कृतिक तथा रागात्मक एकता का वह समुज्ज्वल रूप प्रस्तुत करना रहा है जो भारतीय धम-साधना के मूल में निहित है। देश की सभी भाषाओ के साहित्य में यह रागात्मक एकता अनवच्छिन्न रूप में अनुस्यूत है। इस तथ्य को व्यक्त करने का इस ग्रथ के द्वारा शायद पहला ही प्रयत्न किया गया है।

लगभग सभी वैष्णव सम्प्रदायो में श्रीमद्‌भागवत की मान्यता है तथा इस पर अनेक साम्प्रदायिक टीकाएँ तथा भाष्य भी हुए है, परन्तु इस ग्रन्थ मे लेखक का दृष्टिकोण सवथा स्वतन्त्र तथा सम्प्रदाय-निरपेक्ष रहा है। ग्रन्थ में साम्प्रदायिक सिद्धान्तो का ओर सकेत भर कर दिया है, जिससे पाठको को भागवत का अध्ययन व अनुशीलन स्वतन्त्र रूप से करने का अवसर मिल सके। वास्तव मे ग्रन्थ का प्रणयन विद्यार्थियो तथा जिज्ञासुओं को दृष्टि मे रखकर किया गया है। स्नातकोत्तर कक्षाओ के हिन्दी के विद्यार्थियो के सामने मध्य-युगीन भक्ति साहित्य सम्बन्धी ऐसी अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं, जिनके उचित समाधान के बिना साहित्य महोदधि मे पैठ सम्भव नही होता। ऐसे छात्रो के लिए यह ग्रन्थ निस्सन्देह उपादेय सिद्ध होगा। साथ ही ग्रन्थ का एक प्रयोजन यह भी है कि आधुनिक भारतीय भाषाओ के विद्यार्थियो में अपनी-अपनी भाषा के साहित्य के साथ अन्य भाषाओ के सम-सामयिक साहित्य को पढने की आवश्यकता का अनुभव तथा रुचि हो। लेखक ने अपने दीर्घ-अध्यापन-काल में इस बात का स्वय अनुभव किया है। हमें आशा है कि भागवतदशन हिन्दी के विद्यार्थियों तथा धम-जिज्ञासुओ का कुछ पथ-प्रदशन अवश्य करेगा।

—प्रकाशक

समर्पण

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरण व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

दिवङ्गत देवोपम श्रद्धेय बापू जी को—

विषय-सूची

———

प्रथम अध्याय

भारतीय वाङ्मय की परम्परा

किसी भी राष्ट्र के जीवन मे परम्पराओ का बडा महत्त्व है। परम्पराएँ साँस्कृतिक और सामाजिक जीवन की मूल चेतना होती हे, और वे ही राष्ट्र-जीवन के मूलभूत स्तम्भ कहे जा सकते है। सब प्रकार की परम्पराओ को सुरक्षित रखने का एकमात्र साधन कला है। साहित्य भी कला का ही एक रूप है और सामूहिक साहित्य का नाम वाङ्मय है जो सम्पूर्ण ज्ञान राशि की अभिव्यक्ति हे। भारतीय परम्पराओ की प्राचीनता के सम्बन्ध मे किसी को विरोध नही है। श्री रामदास गौड अपने 'हिन्दुत्व' नामक ग्रन्थ मे इस परम्परा के विषय मे इस प्रकार लिखते है, "भारत की परम्परा इतनी प्राचीन बतायी जाती है कि यदि उस काल से लेकर आज तक का इतिहास वतमान होता और अत्यन्त सक्षेप से लिखा जाता और सौ-सौ वष के लिये केवल एक-एक पृष्ठ लिखा जाता तो एक करोड ९६ लाख ८६ हजार ४३१ पृष्ठ होते और एक-एक हजार पृष्ठो की एक-एक जिल्द होती, तो १९ हजार ६०८ मोटी-मोटी जिल्दे होती।"[1] भारतीय परम्पराओ के विषय मे यह एक दृष्टिकोण हे। पाश्चात्य दृष्टिकोण तो दूसरा ही ह और भारतीय वाङ्मय की तिथि और क्रम के निर्धारण मे अभी तक इतना गहरा मतभेद है कि विभिन्न मतो के अनुसार तिथियो और वर्षों के अन्तर की कल्पना भी दुरारूढ-सी लगती है। पाश्चात्य विद्वान् भारतीय वाङ्मय की परम्परा को दस हजार वष से अधिक प्राचीन नही मानते और न ही वेदो की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ मे मानते है। भारतीय वाङ्मय मे वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ हे। वेद वास्तव मे ससार भर मे सब प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ हे। पाश्चात्य विद्वान् तो वेदो का रचनाकाल ईसा से ७-८ सहस्र वष पूव से पहले मानने को तैयार नही ह परन्तु वेदो के अन्त साक्ष्य के आधार पर उनकी उत्पत्ति सृष्टि के साथ ही साथ सिद्ध होती है।

ऋग्वेद मे लिखा हे—

तस्माद्यज्ञात् सवहुत ऋच सामानि जज्ञिरे।
छदासि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।
ऋ० म० १० सू० ९० म० ७

यही मन्त्र यजुर्वेद के ३१ वे अध्याय मे भी आया है। अथववेद के दशम काण्ड के २३ वे प्रपाठक के चौथे अनुवाक् का दूसरा मन्त्र यह है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुयस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसोमुखम् ।।

इस प्रकार वेदो के अन्त साक्ष्य के आधार पर उनकी उत्पत्ति परमपुरुष यज्ञ भगवान् से ठहरती है। ज्योतिषियो ने सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर गणना भी की हे। उस गणना के अनुसार आज तक (स० २०१५) एक अरब पिचानवे करोड अट्ठावन लाख पिचासी हजार

१ हिन्दुत्व पृष्ठ १३

उनतीस वर्षों के लगभग होते है। इस गणना के आधार वैज्ञानिक है और नक्षत्रो की गति से उसकी सगति भी लगाई गई है। पाश्चात्य विद्वानो की वैज्ञानिक प्रक्रिया की परख से तो यह गणना बहुत ही अतिशयोक्तिपूर्ण है। वास्तव मे प्राचीन भारतीय साहित्य का आधार परम्पराएँ हैं। ये परम्पराएँ दीर्घकाल से चली आ रही है। यहाँ की परम्पराएँ अन्य देशो की परम्पराओ से बिल्कुल भिन्न है। गणना की भी यह अपनी एक परम्परा है, जो प्राय मन्वन्तर से चलती है। ये परम्पराएँ किसी न किसी रूप मे भारतीय वाङ्मय के प्रत्येक अङ्ग मे मिलती है। यदि इन परम्पराओ के आधार पर आज प्राचीन भारत का इतिहास लिखा जाय तो उसका दूसरा ही रूप होगा। हो सकता है, नये मानदण्डो के द्वारा परीक्षण करने पर भारतीय वाङ्मय की तिथियो मे घटा बढी हो जाय। परन्तु यह विषय अवश्य गवेषणीय है। पाश्चात्य विद्वान् हमारी परम्पराओ को काल्पनिक या अतिशयोक्तिपूर्ण कहकर समाधान करते रहे है और दुर्भाग्यवश हमारे भारतीय विद्वान् भी उन्ही के चरण-चिह्नो पर चलकर अपना सौभाग्य मानते रहे है। इन परम्पराओ मे ऐतिहासिक, धार्मिक, सास्कृतिक आदि अनेक प्रकार की परम्पराएँ है। कुछ पाश्चात्य विद्वानो के मत नीचे उद्धृत करते है। मैक्डॉलन लिखते है—

' History is the one weak spot in Indian literature It is in fact nonexistent The total lack of Historical sense is so characteristic that the whole course of Sanskrit Literature is darkened by the shadow of this defect, suffering as it does from an entire absense of exact chronology "[१]

अर्थात् भारतीय साहित्य मे ऐतिहासिकता का अभाव है। वास्तव मे इसका अस्तित्व है ही नही, और ऐसा यह दोष है, जिसके कारण सारा ही भारतीय साहित्य धूमिल है और इसमे पूर्ण रूप से ठीक-ठीक तिथि-विवरण कही नही है।

कीथ लिखते है—

"To the old Complaint that India has no historians and no historical sense, it has recently been objected doubtless with a major of truth that there is certain amount of writing a number of facts attesting a degree of sense of history In view of the antiquity and the developed character of Indian Civilization, it would indeed be ridiculous to expect to find India destitute of Historical sense But what is really essential is the fact that despite 'of abundance of its literature, history is so miserably represented and that in the whole of the great period of the Sanskrit literature there is not one writer who can be seriously regarded as a critical historian "

कीथ महोदय अपने इस कथन मे यद्यपि यह स्वीकार करते है कि भारतीय वाङ्मय मे ऐतिहासिकता के अभाव का दोषारोपण पूर्णतया सत्य नही है, भारतीय सभ्यता और सस्कृति के विकसित रूप और उसकी प्राचीनता के आधार पर उसमे ऐतिहासिकता न मानना

१ मैकडानल सस्कृत लिटरेचर पृष्ठ १०

2 History of Sanskrit Literature by Keith

वे उपहासास्पद समझते है, परन्तु उनका कहना है कि भारतीय विशद साहित्य मे ऐतिहासिकता को यथायोग्य स्थान नही मिल सका हे और सारे ही साहित्य मे एक भी अच्छा इतिहासकार नही हुआ है। ह्विटने लिखा है —

"All dates given in Indian Literary history are pins set up to be howled down again"

अर्थात् भारतीय साहित्य के इतिहास मे सारा तिथि-निर्धारण बहुत शिथिल है।

आधुनिक आलोचक की दृष्टि से पाश्चात्य विद्वानो के इन कथनो मे बहुत कुछ सार दीख पडता है क्योकि भारतीय वाङ्मय मे इतिहास को आधुनिक ढग से कभी नही लिखा गया। परम्पराएँ ही इतिहास का निर्वाह करती रही है। पार्जिटर ने अपनी पुस्तक मे लिखा है—

'Tradition therefore becomes all important It is the only resource since historical works are wanting, and is not an untrustworthy guide In ancient times men knew perfectly well the difference between truth and falsehood as abundant proverbs and sayings show It was natural therefore that they should discriminate what was true and preserve it, and historical tradition must be considered in this light [1]"

ये परम्पराएँ सारे भारतीय वाङ्मय मे बिखरी पडी है। जो ग्रन्थ धमप्रधान हैं, उनमे सिद्धान्तवाद की अपेक्षा अर्थवाद का प्राधान्य है और ऐतिहासिकता की उपेक्षा है। परन्तु प्राचीन भारत के इतिहास की दृष्टि से सारा ही साहित्य और परम्पराएँ समन्वित रूप से देखे जाने चाहिएँ। इस सम्बन्ध मे पार्जिटर लिखते हैं—

'Hitherto opinions about ancient India have been based on a study of the Veda and Vedic literature without much regard for historical traditions outside that Historical traditions yield very different conclusions to make the former the chief and authoritative basis of historical reconstruction, is much the same as to write European History mainly from theological works—an undertaking that would not receive a moment s, acceptance ' [२]

अर्थात् प्राचीन भारत के सम्बन्ध मे जो मत अभी तक निर्धारित किये गये हैं, उनका आधार वेद अथवा वैदिक साहित्य रहा है। अन्य ऐतिहासिक परम्पराओ की उनमे उपेक्षा की गई है। परन्तु केवल वैदिक साहित्य के आधार पर भारत के इतिहास की रचना ऐसी ही है, जैसे यूरोप के इतिहास को धार्मिक ग्रन्थो के आधार पर लिखना। इस दृष्टि से पुराणो का अपना अलग महत्व हे। पुराणो की प्राचीनता का विवेचन करने से पहले हम प्रसङ्ग वश भारतीय वाङ्मय का कुछ विवरण प्रस्तुत करते है।

1 Ancient Indian Historical Tradition by F E Pargiter P 3

3 F E Pargiter Ancient Indian Historical Tradition

वैदिक साहित्य केवल चारो वेदो के मन्त्रो मे ही सीमित नही समझना चाहिए। इन चारो वेदो के अतिरिक्त इनका पूरा साहित्य भी है, जिसमे वेद-मन्त्रो की व्याख्या और विस्तार किया गया है। वेदो मे मुख्य रूप से तीन विषयो का विवेचन है कर्मकाण्ड, ज्ञान-काण्ड और उपासनाकाण्ड। प्रत्येक वेद इन तीनो काण्डो मे विभक्त समझा जाता है और प्रत्येक मन्त्र का विषय इन काण्डो मे से कोई न कोई है। ये चारो वेद 'संहिता' नाम से प्रचलित हुए। इनका पूरक साहित्य ब्राह्मण ग्रन्थो और उपनिषदो के नाम से प्रख्यात हुआ। प्रत्येक वेद का अपना अलग पूरक साहित्य है और अपने अलग-अलग ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषद् है। ऋग्वेद के दो ब्राह्मण-ग्रन्थ और उपनिषद् है। ऋग्वेद के ब्राह्मण-ग्रन्थ है—ऐतरेय और शाखायन, शाखायन का दूसरा नाम कौशीतकी ब्राह्मण भी है। इन दोनो प्रकार के ब्राह्मण-ग्रन्थो मे बहुत से ऐतिहासिक और भौगोलिक विवरण, आख्यान, गाथा और कारिका है। इन दोनो ब्राह्मण-ग्रन्थो के आरण्यक गन्थ भी है, जिनमे ऋषियो की अनुभूतियो का वर्णन मिलता है। इन ग्रन्थो मे प्राय उपनिषदो के ही अश है। ऐतरेय आरण्यक के आजकल पाच ग्रन्थ पाये जाते है, जिनमे से कुछ ऐतरेय-उपनिषद् नाम से विख्यात है। कौशीतकी आरण्यक के तीन खण्ड है, जिनमे से एक खण्ड 'कौशीतकी उपनिषद्' कहलाता है। इन ब्राह्मण ग्रन्थो को हम ऋग्वेद की प्रथम शाखा कह सकते है। दूसरी शाखा वाष्कल और मैत्रायणी उपनिषदो के रूप मे है और तीसरी शाखा सूत्रो के रूप मे। इनमे से कुछ श्रौत सूत्र है, जिन्हे कल्पसूत्र भी कहते है और कुछ गृह्य सूत्र है तथा एक प्रातिशाख्य सूत्र है। ये सूत्र प्राय अलग-अलग ऋषियो के नाम से प्रचलित है—जैसे, आश्वलायन शाखायन, जैमिनीय, वैशम्पायन आदि। इनके अतिरिक्त ऋक्संहिता की कुछ अनुक्रमणिकाएँ भी है, जिनमे छन्द, देवता और ऋषियो का विवेचन किया गया है।

यजुर्वेद की बहुत-सी शाखाएँ प्रचलित है जिनमे से ८६ शाखाएँ विशेष प्रसिद्ध है। यजुर्वेद दो नामो से प्रचलित है, जो क्रम से कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद कहे जाते है। शुक्ल यजुर्वेद मे वाजसनेयी संहिताएँ आती है और कृष्ण यजुर्वेद मे तैत्तिरीय। दोनो संहिताओ के विषय प्राय एक ही है। यजुर्वेद की एक मैत्रायणी शाखा भी है। यजुर्वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ प्राय शाखाओ से मिलते-जुलते है। तैत्तिरीय ब्राह्मण यजुर्वेद का प्रसिद्ध ब्राह्मण है। तैत्तिरीय आरण्यक के कुछ भाग तैत्तिरीय उपनिषद् के नाम से प्रचलित है। तैत्तिरीय आरण्यक मे अनेक विषयो का समावेश है। यजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाले सूत्रो की संख्या बहुत है, जिनमे श्रौतसूत्र भी है और गृह्यसूत्र भी। कृष्ण यजुर्वेदीय शाखा के शुल्वसूत्र और धर्मसूत्र है। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के ब्राह्मणो मे शतपथ ब्राह्मण बहुत प्रसिद्ध है। यह ब्राह्मण बडा महत्वपूर्ण और विशालकाय ग्रन्थ रहा होगा। इसके कुछ अध्याय बृहदारण्यक उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है। यह अभी तक पूरा ग्रन्थ नही मिल सका है। इसमे बहुत-सी कथाएँ और आख्यान है। यजुर्वेद के प्रातिशाख्य सूत्र और अनुक्रमणी भी मिलती है।

सामवेद भी कई शाखाओ मे विभक्त है और प्रत्येक शाखा के श्रौत, गृह्यसूत्र और प्रातिशाख्य भिन्न-भिन्न है। सामवेद की ऋचाएँ सामगीति' कही जाती है और गाने की दृष्टि से इसके चार भाग है—गेय, आरण्य, ऊह और ऊह्य। सामवेद के कई ब्राह्मण ग्रन्थ है, जिनमे ताण्डय महाब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, सामविधान, आर्षेय ब्राह्मण, देवताध्याय ब्राह्मण और मन्त्र-ब्राह्मण विशेष प्रसिद्ध है। वास्तव मे ये नाम विषयपरक नही है। सामवेदीय

उपनिषद् ग्रन्थो मे छान्दोग्योपनिषद् और केनोपनिषद् प्रसिद्ध है। यह छान्दोग्योपनिषद् छान्दोग्य ब्राह्मण का ही अश है। सामवेद के सूत्र-ग्रन्थो की सख्या बहुत हे, जिनमे श्रौत और गृह्य दोनो ही प्रकार के है। इन सूत्रो के अतिरिक्त सामवेद के कई प्रकार के पद्धति-ग्रन्थ भी है और परिशिष्ट ग्रन्थ भी कई है।

अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थो मे गोपथ ब्राह्मण विशेष प्रसिद्ध है। इसी के आधार पर कुछ सूत्र-ग्रन्थ भी बने, जिनमे अथर्ववेद के विषयो का प्रति-पादन किया गया है। इनमे पॉच विशेष रूप से उल्लेखनीय हे—कोशिकसूत्र, वैतान सूत्र, नक्षत्र कल्पसूत्र और शान्ति कल्पसूत्र। इन सूत्रो मे राज्याभिषेक तथा राजधर्म आदि का विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा गया है और इसीलिये इस वेद के उपनिषदो की सख्या बहुत है। विभिन्न आचार्यो ने इस वेद के विषय मे अलग-अलग मत का प्रतिपादन किया है। प्रधान उप निषद् ये है—

मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न नृसिहतापनी और मुक्तिकोपनिषद्। इनके अतिरिक्त दो सौ से अधिक अथर्ववेद के उपनिषद् और बताये जाते हे।

इस प्रकार वैदिक साहित्य के अन्तर्गत सहिताएँ, ब्राह्मणग्रन्थ, उपनिषद् और सूत्र ग्रन्थ आते है। इनके अतिरिक्त वेद के उपवेद और अङ्ग-उपाङ्ग भी हे। इन सब ग्रन्थो को मिलाकर वैदिक साहित्य बडा विशाल हे। यहाँ हम वेद के उपवेद और अङ्गोपाङ्गो का भी सक्षेप मे परिचय प्रस्तुत करते है। वेद के चार उपवेद है। ऋग्वेद का आयुर्वेद, यजुर्वेद का धनुर्वेद, सामवेद का गान्धर्ववेद और अथर्ववेद का अर्थशास्त्र। आयुर्वेद के ग्रन्थो मे आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद माना है। वेद के अग ६ माने जाते हे—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छद। इनमे शिक्षा को नासिका, ज्योतिष को नेत्र, निरुक्त को कान, व्याकरण को मुख, कल्प को हाथ और छन्दो को पाँव माना है। सहिताओ मे इन सब अङ्गो के सकेत मिलते हे और वास्तव मे वेदो के यथार्थज्ञान के लिये इन उपवेदो और अङ्गो का अध्ययन बडा आवश्यक है।

उपवेद अब पूर्ण रूप मे प्राप्य नही है। या तो अन्य ग्रन्थो मे उनके सकेतमात्र हे या उनके कुछ भाग कुछ पण्डितो को कण्ठाग्र है। यजुर्वेद के उपवेद धनुर्वेद के चार पाद ह और उसके रचयिता विश्वामित्र बताये जाते हे। इस उपवेद मे आयुधो की विस्तृत चर्चा है। वैशम्पायन का भी एक धनुर्वेद प्रसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यवहार मे न आने के कारण धनुर्वेद लुप्त हो गया। सामवेद का उपवेद गाधर्ववेद भी अब नही मिलता है। उसके विषय का विवेचन करने वाले कुछ ग्रथ अवश्य प्राप्य हैं। गान-विद्या का सर्वाङ्गीण विवेचन गान्धर्व वेद मे हुआ हे। गान-विद्या की परम्परा किसी न किसी रूप मे अक्षुण्ण रही हे, इसलिये गान्धर्ववेद के विषयो पर हमे अनेक ग्रन्थ मिलते है। आयुर्वेद के अन्तर्गत आठ अगो का विवेचन है और कहा जाता है कि ब्रह्मा ने आयुर्वेद को आठ अगो मे विभाजित किया था, जो ये है—शल्यतन्त्र,शालाक्यतन्त्र, कायचिकित्सातन्त्र, भूत विद्यातन्त्र, कोमारभृत्यतन्त्र, अगद तन्त्र, रसायन तन्त्र और वाजीकरण तन्त्र।

आयुर्वेद की परम्परा भी भारत मे अक्षुण्ण रही है। इसलिये इस विषय को लेकर भी अनेक ग्रन्थो की रचना हुई।

अर्थवेद या अथशास्त्र का ऐसा कोई उल्लेखनीय प्राचीन ग्रन्थ नही मिलता, जिसका सम्बन्ध शुद्धवैदिक साहित्य से हो। हाँ कुछ पण्डितो को इस वेद के कुछ अश अवश्य कण्ठाग्र है। नि सन्देह अथशास्त्र बडा महत्वपूरण उपादेय उपवेद रहा होगा। इसमे समाजशास्त्र, दण्डनीति और सम्पत्ति शास्त्र तीनो का समावेश है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्मृति ग्रथो का आधार अथशास्त्र का अ ग समाजशास्त्र रहा होगा। स्मृतियो की भाति दण्डनीति और सम्पत्तिशास्त्र सम्ब धी ग्र थ अवश्य प्राप्य है—जैसे नीतिप्रभा, काश्यपीय दण्डनीति, कौटल्य अथशास्त्र आदि।

शिक्षा, व्याकरण आदि जो वेदाङ्ग है, उनके विषय के भी प्राचीन ग्रन्थ अब उपलब्ध नही। शिक्षा एक महत्वपूरण वेदाङ्ग है क्योकि उसमे उच्चारण सम्बन्धी नियम बताये जाते है। वैदिक मन्त्रो के उच्चारण तथा ध्वनिविज्ञान सम्बन्धी ग्रथ प्रातिशाख्य कहलाते थे और और अवश्य ही चारो वेदो से सम्बन्ध रखने वाले प्रातिशाख्य ग्रथो की रचना हुई होगी कि तु अब इन वेदो की कुछ शाखाओ के प्रातिशाख्य ही उपलब्ध है जैसे—ऋग्वेद की शाकल शाखा का ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्वेद की तत्तिरीय शाखा का तैत्तिरीय प्रातिशाख्य तथा वाजसनेयी शाखा का वाजसनेय प्रातिशाख्य। सामवेद की माध्यदिनी शाखा का साम प्रातिशाख्य और अथववेद का अथवप्रातिशाख्य। इन प्रातिशाख्यो मे शिक्षा का विषय ही प्रधान है तथा वरण, स्वर, मात्रा और उच्चारण आदि पर विचार किया गया है। यह विषय बडा महत्वपूरण रहा होगा। इस विषय मे एक उक्ति प्रचलित है—

दुष्ट शब्द स्वरतो वरणतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमान हिनस्ति
यथेन्द्रशत्रु स्वरतोऽपराधात्।

अर्थात् स्वर अथवा वरण के उच्चारण से दूषित शब्द वास्तविक अर्थ का द्योतक नही होता। ऐसा दूषित वाक्य वज्र के सदृश यजमान को ही नष्ट कर देता है, जैसे इन्द्र शत्रु शब्द-स्वर के दोष से यजमान अर्थात् वृत्र को ही मारने वाला हुआ। प्राचीन शिक्षा-ग्रन्थो मे शौनकीय शिक्षा अधिक प्रसिद्ध है क्योकि उसमे वैज्ञानिक ढग से वरण, स्वर, मात्रा आदि पर विचार किया गया है। शिक्षा-ग्रन्थ और भी ऋषियो के नाम से प्रचलित है।

प्रातिशाख्यो मे जिस प्रकार के बहुत से अश आगये है उसी प्रकार कही-कही व्याकरण का भी उल्लेख मिलता है। व्याकरण और शिक्षा का विषय अलग-अलग है। व्याकरण मे भाषा के नियमो का विवेचन और शब्दो का अनुशासन रहता है। आदि वैयाकरण वृहस्पति माने जाते है और फिर इन्द्र का नम्बर आता है। चौदह शिवसूत्र, जिनके आधार पर पाणिनि के व्याकरण की रचना हुई है, वैदिक हे, जिससे पता चलता है कि महेश अथवा शिव भी एक वैयाकरण रहे होगे। पाणिनि ने अपने पूववर्ती वैयाकरणो का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी मे किया है, पर तु उनके ग्रथ अब उपलब्ध नही। सस्कृत के उपलब्ध व्याकरणो मे पाणिनि की अष्टाध्यायी ही अधिक प्रचलित है और उसी के टीकाग्रन्थो का विशेष रिवाज है। निरुक्तकार यास्क भी प्रसिद्ध वैयाकरण हुए हे, पर तु उनके काल-निर्णय मे भी विद्वानो को सन्देह हे।

निरुक्त व्याकरण की भाँति ही एक वेदाङ्ग है। निरुक्त मे केवल वैदिक शब्दो पर विचार किया गया है। निरुक्त के ग्रथ प्राचीनकाल मे अवश्य रहे होगे। आजकल केवल

यास्क का ही निरुक्त मिलता है। वेदो की व्यारया करने के लिए निरुक्त बडा महत्वपूरा है। यास्क ने अपने ग्रन्थ मे कई निरुक्तकारो का उल्लेख किया है।

वेद के चौथे अङ्ग छन्द मे भाषा के लालित्य का विश्लेषण रहता है। छन्दो का बडा महत्व है। वेदाध्ययन के लिए छन्दो का ज्ञान बडा अनिवाय है। ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो मे छन्दो की बहुत-सी कथाएँ आती हे। छन्दो का विवेचन कात्यायन की सर्वानुक्रमणिका मे किया गया है, जिनमे मूल ७ छन्दो को लेकर उनका विस्तार किया गया है। वे सात छन्द ये है—गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, वहती, पक्ति, त्रिष्टुप् जगती। लौकिक छन्दो का विवेचन महर्षि पिङ्गल ने किया है जिन्होने १,६१,७७२१६ प्रकार के वर्णवृतो का उल्लेख किया है।

कल्प भी वेद का एक अङ्ग हे। कल्प विधि को कहते है। कल्प सूत्रो मे कम काण्ड का विषय है और सस्कार के नामकरण, उनकी विधियाँ और यज्ञ यागादि का विवेचन है। इन सब विधियो और समारम्भो के लिये उत्तम मुहूर्तों की आवश्यकता है, जिनका विवेचन वेद का छठा अङ्ग ज्योतिष करता है। ज्योतिर्विज्ञान भारतवष मे एक महत्वपूर्ण विज्ञान रहा है और उस पर अच्छे प्रामाणिक ग्र थ लिखे गये है। ज्योतिष् के ग्र थ भी दो प्रकार के है—वैदिक ज्योतिष और लौकिक ज्योतिष्। लोकिक ज्योतिष के तो बहुत से ग्र थ उपलब्ध है पर वैदिक ज्योतिष् के ग्र थ अब उपलब्ध नही है। ज्योतिष का प्रधान विषय पञ्चागसिद्धि है अर्थात्—तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण। वराहमिहिर एक उच्च कोटि के ज्योतिर्विद् हुए है। उन्होने अपनी पाञ्चसिद्धान्तिका मे सूय सिद्धान्त, पौलिश सिद्धात रोमक सिद्धात, वशिष्ठ सिद्धान्त, वराहमिहिर-सिद्धात और पितामह सिद्धान्त की चर्चा की है। वराहमिहिर से पूव भी कई ज्योतिषाचाय हुए है जिनमे पराशर और गग विशेष उल्लेखनीय है।

उपवेदो और वेदाङ्गो के अतिरिक्त सस्कृत वाडमय के और भी कई महत्वपूर्ण भाग है, जिनमे कुछ वेद के उपाङ्ग बताये जाते है। इन उपाङ्गो की गणना के विषय मे विद्वानो मे कुछ मतभेद है। मधुसूदन सरस्वती पुराण, न्याय, मीमासा और धमशास्त्र को उपाङ्ग मानते हे और कुछ विद्वानो ने इन उपाङ्गो को अगो के ही अ तगत मान लिया है। कुछ विद्वान् इतिहास पुराण को पाचवाँ वेद मानते हे। उपाङ्ग के नाम से अभिहित होने वाले इस विशाल-काय साहित्य को चार भागो मे बाँटा जा सकता है—इतिहास, पुराण, दशन, धमशास्त्र और तन्त्र। पुराण हमारा मुख्य विषय है इसलिए इसका विवेचन हम बाद मे करेगे।

यह सारा ही वाड्मय दो बडे भागो मे विभाजित किया जा सकता है—श्रुति और स्मृति। वेद, ब्राह्मण और उपनिषद् श्रुति ग्र थ कहलाते हे और शेष स्मृति। परन्तु स्मृति का एक विशेष अथ भी है और स्मति से धमशास्त्र का ही बोध होता है। स्मृतियो की सख्या १८ से लेकर ५६ तक गिनाई गई है। मुरय स्मतिकार ये है—

मनु, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विष्णु, हारीत, उशनस, अङ्गिरा, यम, कात्यायन, वृहस्पति, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम, वशिष्ठ, नारद, भगु और शङ्ख। स्मृतियो मे प्रजाधम, समाजधम और सदाचार के नियमो की व्याख्या की गई हे। मनुस्मति सब स्मतियो मे अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसके १२ अध्यायो मे मानव धमशास्त्र की विशद विवेचना हुई है और वास्तव मे मनुस्मति ही अन्य स्मृतियो का आधार है। दूसरी उल्लेखनीय स्मृति याज्ञवल्क्य-स्मृति है, जिसमे आचार, व्यवहार और प्रायश्चित नाम के तीन अध्याय हे। मनुस्मृति का आधार अथशास्त्र उपवेद ही रहा हे।

संस्कृत मे तन्त्र-साहित्य का भी विपुल विस्तार है और हिन्दुओ की भाति बौद्धो के भी बहुत से तन्त्र संस्कृत भाषा मे मिलते है। हिन्दूतन्त्रशास्त्र शिवप्रणीत और बौद्धतन्त्रशास्त्र बुद्धप्रणीत माना जाता है। बौद्ध तन्त्रग्र थो का प्रचार चीन और तिब्बत देशो मे विशेष रूप से है। हिन्दू तन्त्रशास्त्र तीन भागो मे विभक्त है—आगम, यामल और मुख्य तन्त्र। आगमतन्त्र मे सृष्टि, प्रलय, पूजा, विधि विधान आदि का वर्णन रहता है—यामलतन्त्र मे सृष्टितत्व, ज्योतिष् नित्यकर्म, वर्णभेद, युगधर्म आदि का वर्णन होता है और मुख्यतन्त्र मे शेष सब विषय रहते है। तन्त्रशास्त्र प्राय शाक्तो का ही है और उसमे मारण, उच्चाटन, वशीकरण, सिद्धि आदि का विशद वर्णन है। वाराहीतन्त्र मे तन्त्रशास्त्र का विशद विवेचन हुआ है। कलियुग मे इन तन्त्रो का बडा महत्व बताया है और तन्त्र को गुप्त तत्व माना गया है। तन्त्रशास्त्र के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है। इन तन्त्रग्रन्थो के अतिरिक्त उपतन्त्रग्रन्थ भी अनेक मिलते है। अथर्व-संहिता मे मारण, उच्चाटन, वशीकरण विषयक मन्त्र अवश्य है, परन्तु कही तन्त्रो का उल्लेख नही मिलता, इसलिये तन्त्रशास्त्र के प्रारम्भ की तिथि का निर्णय करना बडा कठिन है। तन्त्रशास्त्र नि सन्देह बहुत बाद का है और बौद्धतन्त्र तो छठी-सातवी शताब्दी के बाद के ही प्रतीत होते है। चीनी परिव्राजक फाह्यान ने तान्त्रिक मत का उल्लेख नही किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि तन्त्रशास्त्र का श्रीगणेश बगाल मे हुआ। शाक्त मत का वहा बहुत पहले से प्रचार रहा है। इसलिए गौड देश तन्त्रमत का मूलस्थान माना जा सकता है। काश्मीर और केरल देश के तान्त्रिक भी प्रसिद्ध है। हिन्दू तन्त्रो मे शिव—दुर्गा की पूजा का ही विशेष विधान है और उन्ही को वज्रसत्व और वज्र डाकिनी कहा गया है। बौद्धतन्त्रो मे चण्डी, तारा, वाराही, महाविद्या, योगिनी, डाकिनी भैरव-भैरवी आदि की पूजा की प्रधानता है।

आत्मा, परमात्मा का विवेचन करने वाले ग्रन्थ दर्शन कहलाते है। दर्शन ग्रन्थ आस्तिक भी है और नास्तिक भी है। महामहोपाध्याय प० राधाप्रसाद शास्त्री ने अपने 'प्राच्यदर्शन' नामक ग्रन्थ मे ६ नास्तिक दर्शन माने है और ६ आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शनो मे चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक और अर्हत् गिनाये गये है और आस्तिक दर्शनो मे वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्वमीमासा और वेदान्त गिनाये गये है। आस्तिक और नास्तिक का भेद वेदोक्त परलोको के मानने और न मानने के आधार पर किया गया है। ६ नास्तिक दर्शन चार्वाक हिन्दू-दर्शन, चार बौद्ध दर्शन और एक जैन दर्शन माने गये है। चार्वाक् प्रत्यक्षवादी है और पृथ्वी, जल, तेज और वायु चार ही तत्वो को मानते है। इन चारो के मेल से ही चैतन्य की उत्पत्ति होती है और उनके नाश से चैतन्य स्वय नष्ट हो जाता है। ये चैतन्य-विशिष्ट देह को ही आत्मा मानते है। इनके मत मे केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही मान्य है। स्वर्ग और नरक सब यही है। देह का नाश ही मोक्ष है। ये जन्मान्तर को भी नही मानते और धार्मिक क्रियाओ को पाखण्ड समझते है।

बौद्ध मत के चार दर्शन है—माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। माध्यमिक दर्शन मानने वालो का कथन है कि ससार मे जो कुछ भी सत्ता है या भाव है, वह क्षणिक है। सत् का लक्षण वे इस प्रकार करते है—'अर्थक्रियाकारित्व सत्त्वम्' अर्थात् विषय या वस्तु का क्रिया करना ही सत्ता है। क्रिया के पश्चात् वह समाप्त हो जाती है। सब वस्तु स्वलक्षण है, सब शून्य है। इनके मत से चार प्रकार की भावना से मुक्ति मिलती है—सब क्षणिक है—सब क्षणिक है, दु ख है—दु ख है, स्वलक्षण है—स्वलक्षण है, शून्य है—शून्य है।

इस मत को सवशून्यत्ववादी कहते है। क्योकि इस मत के अनुयायियो ने बुद्ध के केवल आधे ही उपदेश को ग्रहण किया, इसलिये इमे माध्यमिक कहते है। बौद्धो का दूसरा दशन योगाचार है। बुद्ध भगवान् के जो शिष्य माध्यमिक दशन से आगे वढकर योग और आचार मे विश्वास करने वाले हुए, वे इस मत के अनुयायी कहलाते है। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए पयनुयोग या शङ्का उठाना योग कहलाता है और पूव के कहे हुए को अँगीकार करना आचार कहलाता है। इस दशन के अनुसार यद्यपि माध्यमिक दशन की चार भावनाये माय है और बाहर के पदाथ सब शून्य है परतु जो गान्तरिक पदाय हमारे ज्ञान मे रहते है, शून्य नही है। चार प्रकार की भावनाओ के अभ्यास से धीरे-धीरे वस्तु के स्वरूप का नाश होता है और विशद विज्ञान का उदय होता है। इस प्रकार ये लोग आन्तरिक पदाथ के ज्ञान की शङ्का उठाते है और फिर शुद्ध विज्ञान के उदय को मुक्ति मानते हे।

बौद्धमत का तीसरा दशन सौत्रान्तिक दशन हे। इन लोगो का कहना है कि बुद्ध के सूत्र अर्थात् उपदेश वाक्य के अन्त या सिद्धान्त को इन्होने ही ठीक ठीक समझा हे। इसलिए ये अपने को सौत्रान्तिक कहते है। इन लोगो ने 'अहम्' और 'इदम्' रूपात्मक ज्ञान मे भेद करके आन्तरिक वस्तु के ज्ञान को 'अहम्' नाम दिया है। वाह्य अथ के सिद्ध करने मे इन्होने अनुमान का सहारा लिया है और ज्ञान सन्तान को ही आत्मा बताया है, जिसको एक लक्ष्य से उपमित करके उसके पाँच स्कन्ध बताये हे—रूप, विज्ञान, वेदना, सज्ञा और सस्कार। तत्वज्ञान से निर्वाण प्राप्त हो सकता है। तत्वज्ञान के चार उपाय है—दुख, आयतन, समुदाय और माग। पाच स्कन्ध दुख है। पाच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय मन और बुद्धि ये बारह आयतन है अर्थात् दुख के स्थान है। मनुष्यो के हृदय मे उत्पन्न होने वाले राग, द्वेष, मद मान आदि समुदाय है, जो दुख के साधन है। सब क्षणिक हे ऐसी भावना माग है। यही तत्वज्ञान का मूल है। इस प्रकार ये वाह्य और आन्तरिक दोनो प्रकार की वस्तुओ को सत्य मान कर चलते है और आन्तरिक पदार्थो को प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रमाणित करते है तथा वाह्य पदार्थो को अनुमान से।

चौथा बौद्ध दशन वैभाविक दशन है, जो बाह्य पदार्थो को प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध करता है। वैभाषिक मत वालो का कहना है कि हमने ही बुद्धदेव के विरुद्धभाषा के तत्त्व को ठीक समझा है, इसलिये उनका नाम वैभाषिक पडा।

जैन दशन आहत दशन कहलाता है। बौद्धो के विरुद्ध ये जगत को अनादि मानते है और आत्मा को भी स्थायी मानते है। इस मत मे जीव और अजीव दो तत्व है। बोध वाले जीव और अबोध वाले अजीव। इन्ही को चित् और अचित् भी कहते है। इस मत के अनुसार पाँच अस्तिकाय (तत्व) होते है—जीव आकाश, धम, अधम और पुद्गल। इन तत्वो की विस्तृत विवेचना इस मत मे की गई है। कुछ विद्वानो ने सात तत्व माने है और उनका विस्तृत विवेचन किया है। वे तत्व ये हे—जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सवर, निजर और मोक्ष।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है—आस्तिक दशनो की सख्या ६ है। आत्मा के निणय मे नास्तिक दशन विरोधी दल वाले कहे जाते है और आस्तिक दशन सवादी कहे जा सकते है। पहला दशन वैशेषिक दशन है, जिसके प्रणेता कणाद ऋषि है। इस दशन की रचना उन लोगो के लिये हुई, जो पृथ्वी आदि पदार्थो को ही आत्मा मानते है। सबसे पहले

इस दशन मे धम का स्वरूप समझाकर पदार्थज्ञान कराया गया। पदार्थज्ञान के लिये उद्देश्य लक्षण, परीक्षा और उपदेशविशेष की प्रक्रिया को स्वीकार किया और फिर अधिकारियो के लिये आत्मा और अनात्मा का विवेक कराया गया है। फिर अंत मे सारी सृष्टि का नियन्ता और कर्ता ईश्वर को सिद्ध किया गया है और उसकी सिद्धि मे अनुमान और आप्त प्रमाणो को स्वीकार किया गया है। इस दशन मे आत्म और अनात्म दोनो का ही विशद विवेचन हुआ है। इसकी पुष्टि आगे चलकर शास्त्रार्थ की विधि से गौतम ने न्यायदशन मे की है।

न्याय का मुख्य विषय प्रमाण है, जो प्रमा पर आधारित है। गोतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। अनुमान मे पाच अवयव माने हे—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। नयायिका ने मुख्य रूप से १२ पदार्थो का वर्णन किया है—आत्मा, शरीर, इन्द्रिया, अर्थ, मन, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुख और अपवर्ग। नैयायिक प्रमाणवादी है और परमाणुओ के योग से सृष्टि मानते हे।

तीसरा दशन सांख्यदशन है, जिसमे चार प्रकार से पदार्थो को लिया गया है—केवल प्रकृति केवल विकृति, प्रकृति-विकृति-उभयरूप और प्रकृति-विकृति दोनो से अलग। मूल-प्रकृति केवल प्रकृति ही है, जो किसी की विकृति नही हे। महदादि सात तत्व प्रकृति और विकृति है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, पञ्चमहाभूत और मन ये सोलह केवल विकृति है और पुरुष न प्रकृति है और न विकृति। साख्यकार प्रकृति और पुरुष दोनो को ही अनादि मानते हैं—'प्रकृति पुरुष चैव विद्धयनादी उभावपि।' साख्यदशन के रचयिता भगवान् कपिल जी हुए है, जिन्होने ६ अध्यायो मे इस दशन का विवेचन किया है। पहले अध्याय मे विषय, दूसरे मे प्रकृति के कार्य, तीसरे मे विषय से वैराग्य, चौथे मे विरक्त पुरुषो की आख्यायिका, पञ्चम मे परपक्ष का निर्णय और षष्ठ मे अर्थो का सग्रह। सांख्यदर्शन मे २४ तत्व माने है। प्रकृति, सात महदादि-महत्तत्व, अहकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—१६ विकृति—पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत और मन तथा पुरुष। पुरुष अनेक है, जो अन्तकरण-विशिष्ट है, निर्गुण हे, ससार भोग्य है। पुरुष चेतन भोक्ता है और वही आत्मा है। प्रकृति कर्त्री है और पुरुष के पास होने के कारण चेतन की भाँति भासती हे। प्रकृति और पुरुष का अन्धपगु न्याय से सम्बन्ध है। अचेतन प्रकृति अपनी प्रवृत्ति के लिये पुरुष को आश्रय बनाती है और पुरुष अपने भोग के लिये प्रकृति का आश्रय लेता है। पुरुष की निवृत्ति का आधार प्रकृति ही हे।

चौथा दशन योग दर्शन हैं। योग के तत्व वैदिक साहित्य मे भी उपलब्ध होते है, परन्तु योग का वैज्ञानिक, विवेचन सबसे पहले पतञ्जलि ने किया। इस दशन का विषय भी अन्य दशनो की भाँति आत्मा और जगत का विवेचन है। योग दशन मे साख्यदशन की भाँति २५ तत्वो को स्वीकार किया गया है, विशेषता केवल इतनी हे कि इसमे एक २६वाँ तत्व पुरुष विशेष और माना है। यही ईश्वर तत्व है। इस प्रकार योगदशन सांख्य की भाँति अनीश्वरवादी नही कहा जा सकता। पातञ्जलि योगदशन मे चार पाद हे—समाधि, साधन, विभूति और कैवल्य। योगदशन के अनुसार जन्म-जन्मान्तर के हेतु पाच क्लेश है—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। इन पाच प्रकार के क्लेशो से बचने का उपाय योग-

दर्शन प्रस्तुत करता है। ईश्वर नित्यमुक्त एक अद्वितीय और तीनो कालो से परे है। ससार दुखमय और हेय है। चित्त की पाँच भूमिया है—क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र। अन्तिम दो वृत्तियाँ ही योग के काम की है, जिनमे सप्रज्ञात और असप्रज्ञात योग की दो अवस्थाएँ है। सप्रज्ञात मे तो ज्ञेय का रूप प्रत्यक्ष होता है और असप्रज्ञात मे ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते है। केवल सस्कार बाकी रह जाते है। चित्त की वृत्तियो को रोकने के योग-दशन मे ये उपाय बताये है—अभ्यास, वैराग्य, प्रणिधान, प्राणायाम, समाधि और विरक्ति। योग के आठ अङ्ग बताये है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। सृष्टि के सम्बन्ध मे साख्य और योग दोनो एकमत है। आगे चलकर जब योगशास्त्र पर तन्त्र का प्रभाव पडा तो उसके बहुत से भेद कल्पित कर लिये गये और योग के कई सम्प्रदाय चले, जिनमे नाथ-सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध है।

पाँचवाँ दशन मीमासा दशन है। वास्तव मे मीमासा दशन के दो भाग है—पूर्व-मीमासा और उतर मीमासा, जो विद्या के परा औरा अपरा दो भेद मानकर किये गये है। परा विद्यावालो के लिये उत्तर दशन या वेदान्त का विधान है, और अपरा विद्यावालो के लिये पूव दशन का। मीमासा शब्द का अथ ही 'विचार' हे, इसलिये पूव मीमासा शब्द का अथ हुआ पूव विचार। वेदो का विषय मुख्य रूप से कम, उपासना और ज्ञान है। इनमे कम और उपासना का विस्तार बहुत है और ज्ञानकाण्ड वेदो मे सूक्ष्म रूप मे ही आया है। बात भी ठीक है। ज्ञानकाण्ड के अधिकारी तो विरले ही होते हैं। अधिक सख्या कमकाण्ड के अधिकारियो की ही है। कमकाण्ड की विवेचना ही पूव मीमासा का विषय है। पूवमीमासा के सूत्रो के कर्त्ता महर्षि जैमिनि है। उन सूत्रो का भाष्य शबर स्वामी ने किया है। मीमासा दशन मे यज्ञो का विस्तृत विश्लेषण हुआ है। वह १२ अध्यायो मे विभक्त है, इसलिये उसे द्वादशलक्षणी भी कहते है। किसी भी शास्त्र का विवेचन करने के लिये मीमाशा की सात बाते प्रसिद्ध हैं—

उपक्रमोपसहारौ, अभ्यासोऽपूवताफलम्।
अथवादोपपत्ती च लिंगतात्पयनिणये॥

किसी बात का निणय करने मे मीमासक उसे अर्थवाद या सिद्धान्तवाद की कोटि मे रख कर करते है। मीमासा मे वेद-वाक्यो की नित्यता पर ही विचार किया गया है। इसमे ब्रह्म, आत्मा, जगत् आदि का विवेचन नह हैं। मीमासक शब्द को नित्य मानते है, नैयायिक उसे अनित्य मानते हे। साख्य मत की भाति यह भी अनीश्वरवादी कहा जा सकता है।

वेदान्तदशन ज्ञानकाण्ड का दशन है। वास्तव मे कर्मकाण्ड की विवेचना ब्राह्मण ग्रन्थो मे और ज्ञान का विश्लेषण उपनिषदो मे हुआ हे। इसलिए उपनिषदो का विषय वेदान्त ही कहा जाता है। उपनिषदो मे वेदान्त शब्द का प्रयोग ज्ञानपरक ही हुआ है। 'सर्वं ब्रह्म' को लेकर वेदान्त चलता है। उपनिषदो मे ब्रह्म का विषय विभिन्न प्रकार मे समझाया गया है, और उनमे विभिन्न मतो का प्रतिपादन हुआ है। उस विषय को सिद्धान्त रूप से वेदान्त सूत्रो मे बताया गया है। वेदान्त विषय के प्रतिपादक पहले ग्रन्थ तो उपनिषद् ही है। ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौशीतकी तथा श्वेताश्वतर नामक उपनिषद् ब्रह्मविषयक है। इस ब्रह्म विषय के प्रतिपादक वेदान्त सूत्र दूसरी कोटि मे आते है, जिन्हे ब्रह्मसूत्र शारीरक मीमासा और उत्तरमीमासा भी कहते है। इन सूत्रों के

रचयिता का नाम वादरायण अथवा कृष्णद्वैपायन है। वेदान्त दर्शन के चार अध्याय है और प्रत्येक अध्याय चार पादो मे विभक्त है। प्रथम अध्याय का नाम समन्वय है, दूसरे का अविरोध, तीसरे का साधन और चौथे का फल है। वेदान्त दर्शन का तीसरी कोटि का विवेचन ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है। इस प्रकार उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता प्रस्थानत्रयी कहलाते है।

जैसाकि पहले कह चुके है, यहा दर्शनो का विषय ब्रह्म, जीव और जगत् का विश्लेषण है और उनका पारस्परिक सम्बन्ध निर्णय है। वैशेषिक और न्यायदर्शन मे परमाणु को मूलतत्व मानकर उसके तीन विभाग किये है, और ईश्वर को जगत् का कर्ता बताया है। ये परमाणु नित्य है, जिसके सयोग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, और उस सयोग का प्रेरक ईश्वर है। साख्यकारो ने ईश्वर-तत्व को न मानकर केवल दो ही तत्व नित्य माने है—पुरुष और प्रकृति। इस प्रकार उन्हे असख्य चेतन आत्माएँ माननी पडी और प्रकृति को अव्यक्त, फिर अव्यक्त प्रकृति से ही जगत् का विकास बताया। नैयायिको ने उसका खण्डन करके ईश्वर की कल्पना और की, और पुरुष तथा प्रकृति के सयोग से सृष्टि की रचना मानी। वेदान्त दर्शन मे इन सबका खण्डन करके केवल एक ब्रह्म तत्व की स्थापना की गई, और अनेकता को मायाजन्य बताया और ब्रह्म को ही जगत का निमित्त और उपादान कारण सिद्ध किया। वेदान्तियो का विवर्तवाद प्रसिद्ध है जो नैयायिको के आरम्भवाद और साख्यो के परिणामवाद के विरोध मे स्थापित किया गया वेदान्तियो के और भी कई वाद' प्रचलित है, जैसे दृष्टिसृष्टिवाद, आच्छेदवाद विम्ब-प्रतिविम्बवाद और अज्ञातवाद। आगे चलकर ब्रह्म, जीव और प्रकृति के विषय को लेकर बहुत से आचार्यो ने अपने-अपने मतो का प्रतिपादन किया, जिससे कई सम्प्रदाय चल निकले। इनका विशद विवेचन हम आगे करेगे।

भारतीय वाङ्मय के विभिन्न अगो का यह सक्षिप्त परिचय है। हम पहले कह चुके है कि इतिहास-पुराण भारतीय वाङ्मय का एक प्रधान अग है। आधुनिक आलोचको की दृष्टि मे जो इतिहास का लक्षण है, उसकी कसौटी पर तो भारत के इतिहास ग्रथ ठीक नही उतर पाते, परन्तु जैसा कि कीथ ने कहा है कि—'भारतीय वाङ्मय की परम्परा मे इतिहास का न मानना उपहासास्पद है।' हमारा यह मत है कि भारतीय साहित्य मे किसी न किसी रूप मे इतिहास भी एक प्रधान अग रहा है। इतिहास शब्द भी भारतीय साहित्य मे कोई नया नही। लगभग १९ प्रकार की इतिहास-लेखन प्रणालिया हमे भारतीय साहित्य मे मिलती है। आचार्य शौनक ने 'वृहद्देवता' मे लिखा है—

इतिहास पुरावृत्तम् ऋषिभिः परिकीर्त्यते।

शतपथ ब्राह्मण मे भी इतिहास शब्द मिलता है—जूलियस एग्लैन ने उस इतिहास शब्द का अनुवाद ट्रेडिशनल-मिथ या लीजेण्ड किया है। यह बात पक्षपात पूर्ण कही जा सकती है। इतिहास शब्द का अर्थ है—इति ह एवमासीत् इति य कथ्यते स इतिहास। कौटल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे इतिहास की व्याख्या इस प्रकार की है—

"पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरण धर्मशास्त्रमर्थशास्त्र चेतीतिहास।"

इतिहास से मिलता-जुलता दूसरा शब्द ऐतिह्य है । बिना वक्ता के नाम बताए हुए परम्परागत कथन का नाम ऐतिह्य है ।

"ऐतिह्य नामाप्तोपदेशो वेदादि ।"

तीसरा शब्द पुराकल्प है, जिसका अर्थ है पुराना काल या पुराने काल की घटनाएँ । चौथा शब्द है परिकृति या परक्रिया—

"अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधै परिकृति स्मृता ।"

पाँचवाँ शब्द है इतिवृत्त या पुरावृत्त जो लगभग इतिहासपरक है। छठा शब्द है अवदान—'अवदानमितिवृत्ते ।'

सातवाँ शब्द है आख्यान—आख्यानमितिवृत्त स्यादितिहास स एव च । आठवाँ शब्द है आख्यायिका —

आख्यायिका कथावत्स्यात्स्यात्कवेवंशादिकीतनम् ।

नवम शब्द है उपाख्यान—'अन्यप्रबोधनाथ यदुपाख्यातमित्युपाख्यानम्' ।

दसवाँ शब्द है अन्वाख्यान—-

अन्वाख्याने त्वदुद्यत इतिहासे त्वदुद्यते ।

ग्यारहवाँ शब्द है चरित । कौटल्य-अथशास्त्र मे इतिहास और चरित समनार्थक माने हैं। बारहवाँ शब्द है अनुचरित—"वशानुचरित चैव ।"

तेरहवाँ शब्द है कथा—'प्रबन्धकल्पना कथा" । चौदहवाँ शब्द है परिकथा—

पर्यायेण बहूना यत्र प्रतियोगिना कथा
कुशलै श्रूयन्ते शूद्रकवज्जिगीषुभि परिकथा सातु ।

पन्द्रहवाँ शब्द है अनुवशश्लोक । प्राचीन पुराणो की राजवशावलियो के अन्तगत प्रतापी राजाओ के विषय मे कही कही जो श्लोक विशेष मिलते हैं, वे अनुवशश्लोक कहलाते है। सोलहवाँ शब्द है 'गाथा' । भारतीय साहित्य मे गाथाएँ बहुत प्राचीन काल से मिलती है, जो इतिहास मे बडी सहायक है।

सत्रहवाँ शब्द है नाराशसी—"नरा अस्मिन्नासीना शसन्ति-इति नाराशसी" ।

अठारहवाँ शब्द है—राजशासन । याज्ञवल्क्यादि स्मृतियो मे इन राजशासनो का विस्तृत वर्णन मिलता है । उन्नीसवा शब्द है पुराण जो इतिहास का शरीर माना जाता है और एक प्रकार से इतिहास की सूचो प्रस्तुत करता है । पुराण साहित्य के विषय मे हम अगले अध्याय मे विस्तार से विचार करेंगे ।

हमारे इतिहास ग्रथो मे रामायण और महाभारत का विशिष्ट स्थान है। रामायण तो हमे अनेक मिलती है परन्तु महाभारत एक ही है। रामायण और महाभारत के काल के सम्बन्ध मे बडा वाद-विवाद है, और कुछ पाश्चात्य विद्वान् महाभारत को रामायण से पहली रचना मानते हैं। परन्तु यह बात बिल्कुल असगत है। भाषा और तथ्य दोनो की दृष्टि से रामायण महाभारत से बहुत पहली ठहरती है। रामायण की कथा का प्रचार तो महाभारत से बहुत पहले था। महाभारत के अनेक स्थलो पर ऐसे उल्लेख मिलते है, जिनसे इस बात की पूर्ण

पुष्टि हो जाती है। वनपर्व मे रामोपाख्यान को प्रस्तुत करते हुए महाभारतकार इस उपाख्यान को पुरातन शब्द से निर्देश करता है। फिर द्रोणपव मे भी उसे पुरातन ही बताया गया है। रामायण का आदि रूप आज यथावत् उपलब्ध नही होता। जनश्रुति तो यह है कि बाल्मीकि जी ने सौ करोड श्लोको का रामायण ग्रथ बनाया था। वाल्मीकि रामायण के वालकाण्ड के चौथे सग मे चौबीस हजार श्लोको और पाच सो सर्गों का उल्लेख है, परतु यह उल्लेख प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। जो वाल्मीकि रामायण के सस्करण आज प्राप्त है उनमे भी बहुत भेद है। कुछ सस्करण औदीच्य है, कुछ दाक्षिणात्य और कुछ गौडीय। सस्कृत की एक और प्रसिद्ध रामायण अध्या म रामायण है जो शिवजी की रचना बताई जाती है। इसके अतिरिक्त और भी कई रामायण मिलती है यथा—महारामायण, सवृत रामायण, अगस्त्य रामायण, लोमस रामायण, सौपद्य रामायण, सौय रामायण, चान्द्र रामायण, मैन्द रामायण, स्वायभू रामायण सुब्रह्मण्य रामायण, सुवचस रामायण, देव रामायण, श्रवण रामायण और दुरन्त रामायण आदि। रामायण की कथा को लेकर और भी बहुत से ग्रन्थ लिखे गये हे। इन रामायणो मे राम की कथा के अतिरिक्त भारतीय सस्कृति और इतिहास के अच्छे उदाहरण मिलते है, साहित्य इतिहास और धम की दृष्टि से यह एक बडा महत्वपूण ग्रन्थ है। रामायण की कथा प्राय सभी पुराणो मे आई है। ब्रह्माण्ड पुराण मे जो रामायण की कथा है वही अध्यात्म रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। रामायण की कथा त्रेता युग की है। भारतीय गणना के अनुसार तो यह त्रेता काल बहुत पुराना ठहरता है, परतु आधुनिक विद्वानो ने ईसा से तीस हजार वष पूव तक स्वीकार किया है। वाल्मीकि रामायण की रचना के विषय मे बहुत मतभेद है। भारतीय परम्परा के अनुसार उन्हे रामचन्द्र जी का समकालीन माना गया है और महाभारत मे उनका उल्लेख वशिष्ठ आदि प्राचीन ऋषियो के साथ मिलता है, और वाल्मीकि का सम्बन्ध रामकथा से भी है। ऋक्सहिता के दशम मण्डल के ९३।१४ मे जो राम शब्द आया है उससे कुछ लोगो की कल्पना यह भी है कि दशम मण्डल के सम्पादन से पहले ये रामचन्द्र राजा हो चुके थे। ज्योतिष की गणना के अनुसार दशम मण्डल की रचना काल तीन हजार से चार हजार वष ईसा पूव तक माना है।

रामायण का जो वतमान रूप हमे उपलब्ध है वह निश्चित रूप से एक कवि की रचना नही कही जा सकती। कम से कम प्रथम और सप्तम काण्ड तो अवश्य बाद के बने हुए है। रामायण मे साकेत का नाम कही नही आया है, सब जगह अयोध्यापुरी का ही नाम है। इससे पता चलता है कि बुद्ध से बहुत पहले ही रामायण की रचना हो चुकी थी। जिन सामाजिक परिस्थितियो का रामायण मे वणन है उनसे भी उसकी प्राचीनता ही सिद्ध होती है, विशेषकर दक्षिणी भारत की परिस्थितियो से। हो सकता है कि वाल्मीकि रचित मूल रामायण आज उपलब्ध नही हो और उसमे धीरे-धीरे प्रक्षिप्त अश बढते गये हो। यही कारण है कि आज रामायण के तीन प्रकार के सस्करण उपलब्ध है।

इतिहास की दृष्टि से रामायण से भी अधिक महत्वपूण ग्रन्थ महाभारत है। पाश्चात्य विद्वान् भी इसे स्वीकार करते है। यह इतिहास ग्रन्थ सम्भवत महाभारत के युद्ध के पश्चात् लिखा गया, क्योकि इसका नाम पहले जयभारत था और पाण्डवो की विजय का

विवरण प्रस्तुत करना ही इसका मुख्य उद्देश्य रहा होगा। वेदव्यास जी ने तीन वष तक रातदि परिश्रम करके इस ग्र थ को तैयार किया था। महाभारत के अन्त साक्ष्य से पता चलता है कि इस का मूलभूत रूप बहुत छोटा रहा होगा। पाश्चात्य विद्वान् तो उसका पहला रूप आठ हजार आठ सौ ही श्लोको का ग्र थ मानते है, और अपनी मान्यता के प्रमाण मे कूटश्लोकविषयक यह श्लोक प्रस्तुत करते हे—

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अह वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा।

परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार यह श्लोक कूट श्लोको की सख्या बताने वाला ही है। भारत सहिता का मूल रूप तो चौबीस हजार श्लोको का माना गया है जैसा कि महाभारत के श्लोक से पता चलता है—

चतुर्विशतिसाहस्री चक्रे भारतसहिताम्।
उपाख्यानेन विना तावत् भारत प्रोच्यते बुधै।

फिर रोमहषण के पुत्र सोति ने इस ग्रन्थ मे आख्यान और उपाख्यानो का समावेश किया। इस प्रकार महाभारत के तीन सस्करण समझने चाहिये। पहला सस्करण वेदव्यास जी का, दूसरा वादरायण व्यास जी का और तीसरा सोति का।

महाभारत स्मृति अथवा धमग्रन्थ माना जाता है। इसकी भाषा से यह बात स्पष्ट हो जाती हे कि यह महाग्रन्थ एक काल व एक व्यक्ति की रचना नही है। आज जो महाभारत के सस्करण उपलब्ध है उनमे पाठभेद भी है और श्लोकसख्या-भेद भी। उत्तरी भारत मे प्रचलित महाभारत दक्षिणी भारत मे प्रचलित महाभारत से पर्याप्त भिन्न है। मूलग्रन्थ सम्भवत वेदव्यास जी ने ही बनाया था जो पराशर ऋषि के शिष्य थे। महाभारत के समय उनका अस्तित्व सिद्ध भी होता है, दूसरे महाभारत ग्रन्थ से यह बात भी प्रमाणित होती है कि इस ग्रन्थ की रचना चाहे जिस रूप मे हुई हो, महाभारत काल मे ही हुई थी। इस ग्रन्थ के रचनाकाल के विषय मे अनेक मत है। महाभारत का एक लक्ष श्लोक वाला सस्करण तीसरी चौथी शताब्दी तक तो अवश्य ही बन चुका था। इस बात के प्रमाण हमे कई शिलालेखो और सस्कृत ग्र थो से मिलते है। लोकमान्य तिलक ने अपने 'गीतारहस्य' मे वतमान महाभारत को ई० पूव ५०० से प्राचीन ही माना हे। महाभारत के युद्ध के सम्बन्ध मे भी कई कल्पनाएँ है जो १४०० ई० पूव से ३००० ईसवी पूव तक इस युद्ध का समय निर्धारित करती है। ज्योतिर्विद शङ्कर बालकृष्ण दीक्षित ने युद्ध का समय ई० पू० १४०० या १५०० माना हे जबकि प्रसिद्ध इतिहासकार चिन्तामणि राव वैद्य उसका समय ईसा से ३००० वर्ष पूव मानते है। श्री पी० सी० सेन गुप्त ने अपने एक लेख मे जो उन्होने १ जून सन् १९३६ की 'रायल एशिया-टिक सोसाइटी बगाल' के सम्मुख प्रस्तुत किया था, महाभारत के युद्ध को ज्योतिष की गणना के अनुसार ईसा से २४४९ वष पहले १४ अक्तूबर से ३१ अक्तूबर तक माना है। महाभारत मे १८ पव है, जिनमे चद्रवशीय कौरव-पाण्डवो की उत्पत्ति से लेकर पाण्डवो के स्वर्गारोहण तक का वणन है। साथ ही साथ बहुत से उपाख्यान भी है जैसे—शकुतलोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, रामोपाख्यान, सावित्री उपाख्यान, नलोपाख्यान, आदि। इस ग्रन्थ के परिशिष्ट का नाम हरिवश हे, जिसमे हरि अर्थात् कृष्ण के वश का वणन है। इसमे १६००० श्लोक और तीन पव है—हरिवशपव, विष्णु पव, और भविष्य पव। इस ग्रथ मे

पाच रत्न माने गये है। सबसे मुख्य रत्न श्रीमद्भगवद्गीता है जो भीष्मपव का महत्वपूर्ण भाग है। अन्य चार रत्न, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, भीष्मस्तवराज और विष्णुसहस्रनाम है। सस्कृत और प्राकृत साहित्य का बहुत कुछ भाग महाभारत के कथानको पर अवलम्बित है। महाभारत मे कई नीतिया है और कई सम्प्रदायो का इसमे विस्तार से विवेचन हुआ है। शान्ति पव के ३४९ वे अध्याय मे निम्नलिखित श्लोक आया है —

साख्य योग पाञ्चरात्र वेदा पाशुपत तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे ! विद्धि नानामतानि वै।

इस प्रकार उस समय प्रचलित नाना मतो मे से भीष्म ने साख्य, योग, पाँचरात्र वेद और पाशुपत मतो की ही चर्चा की है। महाभारत के कुछ स्थलो की भाषा तो वैदिक भाषा से मिलती-जुलती है। महाभारत पर उपलब्ध लगभग २० टीकाएँ है, जिनमे नीलकण्ठ चतुधर की 'भारतभावदीप' अर्जुनमिश्र की 'भारतार्थदीपिका' और नारायण सवज्ञ की 'भारतार्थप्रकाश' ये तीन टीकाएँ प्रसिद्ध है।

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अङ्ग पुराण हैं। वैदिक साहित्य मे इतिहास और पुराण का निर्देश साथ साथ मिलता है और इन्हे पचम वेद माना है। पुराण-साहित्य का विस्तृत विवेचन हम अगले प्रकरण मे करेंगे।

———

द्वितीय अध्याय

भारतीय वाङ्मय में पुराण

भारतीय वाङ्मय मे पुराणो का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि पुराणो मे साम्प्रदायिकता का वैशिष्ट्य होने के कारण आधुनिक आलोचक पुराण-साहित्य को विशेष महत्व नही देता, फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि परम्पराओ और ऐतिहासिकता की दृष्टि से पुराण से अधिक उपादेय भारतीय वाङ्मय का दूसरा अङ्ग नही हे। वायु पुराण मे ठीक ही लिखा है—

यो विद्याश्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज।
न चेत्पुराण सविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षण॥
इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामय प्रहरिष्यति॥

अर्थात् वह ब्राह्मण जो उपनिषद् और अङ्गो सहित वेदो को जानता है, शास्त्र-निपुण नही कहा जा सकता यदि उसे पुराणो का बोध नही है। उसे अपना वेदज्ञान इतिहास और पुराणो की सहायता से पूर्ण करना चाहिये क्योकि वेद स्वय ऐसे व्यक्ति से जिसका ज्ञान पुराणादि का बोध न होने के कारण कम हे, भय मानता हे कि कही मेरा अनर्थ न हो जाय।[1]

इस प्रकार के वाक्य कई पुराणो के अतिरिक्त और भी ग्रन्थो मे आये हे जिनसे पता चलता है कि पुराण साहित्य प्राचीन काल से ही बडा महत्वपूर्ण रहा है।

पुराण शब्द की व्याख्या

साधारण रूप से पुराण शब्द का अर्थ पुराना है और सम्भवत 'पुराना' शब्द पुराण का ही विगडा हुआ रूप है। पद्मचन्द्र कोष मे लिखा है—[2] 'पुराण पुराभवम्' अर्थात् पहले का। अमरकोष मे पुराण के सम्बन्ध मे लिखा है[3]—"पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरतना"। निरुक्तकार लिखता हे—'पुराण कस्मात् ? पुरानव भवति[4]। अमरकोष मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की हे—पुराभव यद्वा पुरापि नव भवति यद्वा पुरा अतीतानागतो-अर्थौ अणति। पद्म पुराण मे इस शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—'पुरा परम्परा वक्ति पुराण तेन वै स्मृतम्।[5]

पुराण शब्द की इन निरुक्तियो से पता चलता है कि पुराण शब्द का अभिधेय अर्थ ही शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण रहा है। आगे चलकर इस शब्द

१—वायु पुराण १, २००-१
२—रा० गणेशदत्त शास्त्री, संस्करण १९२५, पृष्ठ ३२०
३—भानुदीक्षित की व्याख्या, तृ० का० श्लोक ७६
४—निरुक्ति ३-१९-२४
५—पद्म पुराण १-२-५३

पॉच रत्न माने गये है। सबसे मुख्य रत्न श्रीमद्भगवद्गीता है जो भीष्मपव का महत्वपूर्ण भाग है। अन्य चार रत्न, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष, भीष्मस्तवराज और विष्णुसहस्रनाम है। सस्कृत और प्राकृत साहित्य का बहुत कुछ भाग महाभारत के कथानको पर अवलम्बित है। महाभारत मे कई नीतिया है और कई सम्प्रदायो का इसमे विस्तार से विवेचन हुआ है। शाति पव के ३४९ वे अध्याय मे निम्नलिखित श्लोक आया है—

साख्य योग पान्चरात्र वेदा पाशुपत तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे! विद्धि नानामतानि वै।

इस प्रकार उस समय प्रचलित नाना मतो मे से भीष्म ने साख्य, योग, पॉचरात्र वेद और पाशुपत मतो की ही चर्चा की है। महाभारत के कुछ स्थलो की भाषा तो वैदिक भाषा से मिलती-जुलती है। महाभारत पर उपलब्ध लगभग २० टीकाएँ है, जिनमे नीलकण्ठ चतुवर की 'भारतभावदीप' अर्जुनमिश्र की 'भारताथदीपिका' और नारायण सवज्ञ की 'भारताथप्रकाश' ये तीन टीकाएँ प्रसिद्ध है।

रामायण और महाभारत के अतिरिक्त भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अङ्ग पुराण है। वैदिक साहित्य मे इतिहास और पुराण का निर्देश साथ-साथ मिलता है और इन्हे पचम वेद माना है। पुराण-साहित्य का विस्तृत विवेचन हम अगले प्रकरण मे करेगे।

———

द्वितीय अध्याय

भारतीय वाङ्मय में पुराण

भारतीय वाडमय मे पुराणो का महत्वपूर्ण स्थान है । यद्यपि पुराणो मे साम्प्रदायिकता का वैशिष्ट्य होने के कारण आधुनिक आलोचक पुराण-साहित्य को विशेष महत्व नही देता, फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि परम्पराओ और ऐतिहासिकता की दृष्टि से पुराण से अधिक उपादेय भारतीय वाड्मय का दूसरा अङ्ग नही हे । वायु पुराण मे ठीक ही लिखा है —

> यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विज ।
> न चेत्पुराण सविद्यान्नैव स स्याद् विचक्षण ।।
> इतिहासपुराणाभ्या वेद समुपबृहयेत् ।
> बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामय प्रहरिष्यति ।।

अर्थात् वह ब्राह्मण जो उपनिषद् और अङ्गो सहित वेदो को जानता है, शास्त्र-निपुण नही कहा जा सकता यदि उसे पुराणो का बोध नही हे । उसे अपना वेदज्ञान इतिहास और पुराणो की सहायता से पूर्ण करना चाहिये क्योकि वेद स्वय ऐसे व्यक्ति से जिसका ज्ञान पुराणादि का बोध न होने के कारण कम हे, भय माता हे कि कही मेरा अनर्थ न हो जाय ।[1]

इस प्रकार के वाक्य कई पुराणो के अतिरिक्त और भी ग्रन्थो मे आये हे जिनसे पता चलता हे कि पुराण साहित्य प्राचीन काल से ही बडा महत्वपूर्ण रहा है ।

पुराण शब्द की व्याख्या

साधारण रूप से पुराण शब्द का अर्थ पुराना है और सम्भवत 'पुराना' शब्द पुराण का ही बिगडा हुआ रूप है । पद्मचन्द्र कोष मे लिखा हे —[2] 'पुराण पुराभवम्' अर्थात् पहले का । अमरकोष मे पुराण के सम्बन्ध मे लिखा है[3] —"पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरतना" । निरुक्तकार लिखता हे —'पुराण करमात् ? पुरानव भवति[4] । अमरकोष मे इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—पुराभव यद्वा पुरापि नव भवति यद्वा पुरा अतीतानागतौ-अर्थौ अणति । पद्म पुराण मे इस शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की है—'पुरा परम्परा वक्ति पुराण तेन वै स्मृतम् ।[5]

पुराण शब्द की इन निरुक्तियो से पता चलता है कि पुराण शब्द का अभिप्रेय अर्थ ही शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण रहा है। आगे चलकर इस शब्द

१—वायु पुराण १, २००–१
२—स० गणेशदत्त शास्त्री, सस्करण १९२५, पृष्ठ ३२०
३—भानुदीक्षित की व्याख्या, तृ० का० श्लोक ७६
४—निरुक्त ३–१९–२४
५—पद्म पुराण १–२–५३

का अर्थापकष हो गया। आधुनिक आलोचको की दृष्टि मे जो इसका इतना अर्थ गिर गया है उसका कारण सम्भवत अँगरेजी भाषा का Mythology शब्द है। Mythology शब्द का अर्थ अंग्रेजी मे बडा व्यापक है। इसके अ तगत सभी प्राचीन कथाएं, दन्तकथाएँ, परम्पराएँ, देवताओ और दिव्य पुरुषो की उत्पत्ति प्रसिद्ध व्यक्तियो का इतिहास, सृष्टि की उत्पत्ति आदि सभी बाते आ जाती हे। इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Muthos' या Mythus से हुई है। अग्रेजी मे इस शब्द का मूल Myth हे, जिसका अर्थ होता हे प्राचीनतम मान्यताओ के आधार पर कल्पित अथवा असत्य पर आधारित कहानिया। मैक्समूलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Contribution to the science of Mythology मे सूय आदि प्राकृतिक-शक्तियो की क्रियाओ के मानवीयकरण को Myth माना है। कुछ पुस्तको मे जैसे—Tales of Ancient Greeks and Mythology of Aryan Nations by Andrew Lang आदि मे Myth का आधार जगली जाति की मनोवृत्तिया मानी है। यूरोप की प्राय सभी भाषाओ मे इसी प्रकार Myth की व्याख्या की गई है। Charles Ann A Dale ने अपनी New Popular encyclcpedia Vol I मे इस शब्द की व्याख्या करते हुए ग्रीम, रोम, स्कैण्डिनेविया हिन्द तथा मिश्र की पोराणिक सामग्री को Myth कहा हे। पुराण शब्द के अर्थापकष का दूसरा कारण साम्प्रदायिकता है जैसा कि रायकृष्णदास ने लिखा हे 'बौद्ध, जैनो के प्रारम्भिक साहित्य मे पुराण तुल्य वाङमय नही है। इसका तात्पय यह हुआ कि जिस समय मे ये सम्प्रदाय चले और इनके आरम्भिक साहित्य का निमाण हुआ उस समय तक पुराण सवत्र ऐतिहासिक वाङमय था और उसका किसी मत से सम्बन्ध न था अथात् वह ब्राह्मण श्रमण की समान सम्पत्ति थी अतएव श्रमणो (बौद्ध जैनो) को इस प्रकार के किसी निजी साहित्य की अपक्षा बहुत काल तक न हुई। यह कहना कठिन हे कि पुराण नाम के साहित्य मे साम्प्रदायिकता लाने का पहला काम बौद्ध जैनो का था या वदिक धम के ही विभिन्न मत-मतान्तरो का। बोद्ध जैनो के अतिरिक्त और भी आर्येतर मत-मतान्तर भारतवष मे बहुत दिन से चले आ रहे है जिनका सम्बन्ध आगे चलकर वदिक धम की शाखाओ से हुआ। उन मत-मतान्तरो और सम्प्रदायो मे अनेक अलौकिक घटनाएँ प्रचलित थी, जिनका सम्बन्ध उनके देवी देवताओ से था। हो सकता हे समन्वय काल मे उनमे से बहुत सी घटनाओ का समावेश पुराणो मे हो गया।'

पुराणो की प्राचीनता

आज जिस रूप मे हमे पुराण उपलब्ध होते है उनका वही पहला रूप रहा होगा इसमे सन्देह है परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि पुराण-साहित्य का अस्तित्व किसी न किसी रूप मे वैदिक काल मे भी रहा होगा। अथव सहिता के अनुसार ऋक् साम, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए—

ऋच सामानि च्छन्दांसि पुराण यजुषा सह[1]।

शतपथ ब्राह्मण मे आया हे—अध्वर्युस्तार्क्ष्ये व पश्यतो राजयेत्याह पुराण वेद सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीत[2]। अथात् अध्वयु इस प्रकार कहकर पुराण का कथन

१—अथव० ७१ ७ २४

२—शतपथ, १३ ४ ३ १३

करते थे। वहदारण्यक मे इस प्रकार उल्लेख है—स यथा आर्द्रेन्धाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा-विनिश्चिरन्ति एव वा अरेहस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद्दग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि[1]। अर्थात् जिस प्रकार गीली लकडी मे जलती हुई अग्नि का धुआँ अलग-अलग रूप धारण करके निकलता है, उसी प्रकार महत् तत्व से विश्वास रूप मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान अनुव्याख्यान नि सृत हुए है। छान्दोग्योपतिषद् मे इस प्रकार उक्ति है—स हो वाच ऋग्वेद भग वो अध्येमि यजुर्वेद सामवेदमथवण चतुथमितिहास पुराण पञ्चम वेदाना वेदम्।[2] अर्थात् इतिहास पुराण पाचवा वेद हे। पुराण शब्द के साथ इतिहास शब्द का प्रयोग बहुत पुराना हे, परन्तु जिन स्थलो पर इन शब्दो का प्रयोग हुआ है, उनसे यह स्पष्ट अवश्य हे कि दोनो शब्द समानाथक नही है। प्राय 'इतिहासपुराणौ', इतिहास-पुराणाभ्याम्' आदि प्रयुक्त हुआ है। बृहदारण्यक का भाष्य करते हुए शङ्कराचाय ने दोनो का भेद स्पष्ट किया है—इतिहास इत्युवशीपुरुरवसो सवादादि, उवशी-ह्यप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणमसद्वा इदमग्रे आसीदित्यादि[3]। अर्थात् उवशी पुरुरवा आदि के सवादस्वरूप ब्राह्मणभाग को इतिहास कहते है और पहले असद् या इत्यादि सृष्टि के प्रकरण को पुराण कहते है। इस भाष्य से स्पष्ट होता है कि पुराण नाम की प्राचीन शाखा के दो भाग रहे होगे जो आगे चलकर एक इतिहास नाम मे प्रख्यात हुआ और दूसरा पुराण नाम से अवशिष्ट रह गया। हो सकता है किसी समय दोनो ही भाग स्पष्ट रूप से अलग-अलग प्रचलित रहे हो। पहले एक भाग मे इतिहास या ऐतिहासिक कथाएँ और दूसरे भाग मे सष्टि का वणन रहा हो। आज भी पुराणो मे यह भेद लक्षित किया जा सकता है, परन्तु वह कुछ इतना मिल-जुल गया है कि अब उसका विभाजन बडा कठिन है। प्रारम्भ मे जब पुराण-सहिताओ का निर्माण हुआ होगा, उनमे दोनो ही भागो का समावेश रहा होगा। उस समय इन सहिताओ मे सष्टि की आदि वशावलियाँ और सर्गादि के विवरण रहे होगे। धीरे-धीरे वशावलियाँ बढती गईं इसलिये वशावलियो वाला भाग इतिहास नाम से प्रख्यात हुआ। जब तक यह परम्परा बनी रही इतिहास-पुराण शाखा का महत्व रहा। इस परम्परा के विच्छिन्न होने और साम्प्रदायिकता के आवरण के कारण पुराण-साहित्य का महत्व जाता रहा।

मुख्य मुख्य सभी पुराणो मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाये है—

सगश्च प्रतिसगश्च वशो मन्वन्तराणि च।
वशानुचरित चैव पुराण पञ्चलक्षणम्।

अर्थात् सग, सृष्टि विज्ञान, प्रतिसग, सृष्टि विस्तार, लय और पुन सृष्टि वश अर्थात् सृष्टि की आदि वशावलि, मन्वन्तर, कालक्रम और वशानुचरित अर्थात् राजाओ की वशावलियाँ।

इनमे अन्तिम अर्थात् राजाओ की वशावलिया, इतिहास का विषय रहा होगा। पुराण-सहिता का आदिरूप क्या था, यह कहना बडा कठिन हे और यह पता लगना भी सम्भव नही है कि पुराण-सहिता का आदि प्रणेता कौन था। हो सकता है कि पुराण भी ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थो की भाति ऋषिप्रोक्त रहे हो। मनुसहिता आश्वलायन गृह्यसूत्र

१—वृहदारण्यक २ ४ १० शतपथ, १४ ६ १० ६
२—छान्दोग्य० ७-१ १
३—वृहदारण्यक भाष्य, २ ४ १०

का अर्थापकर्ष हो गया। आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में जो इसका इतना अर्थ गिर गया है उसका कारण सम्भवत अँगरेजी भाषा का Mythology शब्द है। Mythology शब्द का अर्थ अंग्रेजी मे बड़ा व्यापक है। इसके अन्तर्गत सभी प्राचीन कथाएं, दन्तकथाएँ, परम्पराएँ, देवताओं और दिव्य पुरुषों की उत्पत्ति प्रसिद्ध व्यक्तियों का इतिहास, सृष्टि की उत्पत्ति आदि सभी बातें आ जाती है। इस शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'Muthos' या Mythus से हुई है। अंग्रेजी मे इस शब्द का मूल Myth है, जिसका अर्थ होता है प्राचीनतम मान्यताओं के आधार पर कल्पित अथवा अमन्य पर आधारित कहानियां। मैक्समूलर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Contribution to the science of Mythology मे सूर्य आदि प्राकृतिक-शक्तियों की क्रियाओं के मानवीयकरण को Myth माना है। कुछ पुस्तकों मे जैसे—Tales of Ancient Greeks and Mythology of Aryan Nations by Andrew Lang आदि मे Myth का आधार जंगली जाति की मनोवृत्तियां मानी है। यूरोप की प्राय सभी भाषाओं मे इसी प्रकार Myth की व्याख्या की गई है। Charles Ann A Dale ने अपनी New Popular encyclcpedia Vol I मे इस शब्द की व्याख्या करते हुए ग्रीस, रोम, स्कैण्डिनेविया हिन्द तथा मिश्र की पौराणिक सामग्री को Myth कहा है। पुराण शब्द के अर्थापकर्ष का दूसरा कारण साम्प्रदायिकता है जैसा कि रायकृष्णदास ने लिखा है 'बौद्ध, जैनों के प्रारम्भिक साहित्य मे पुराण तुल्य वाङमय नही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस समय मे ये सम्प्रदाय चले और इनके आरम्भिक साहित्य का निर्माण हुआ उस समय तक पुराण सर्वत्र ऐतिहासिक वाङमय था और उसका किसी मत मे सम्बन्ध न था अर्थात् वह ब्राह्मण श्रमण की समान सम्पत्ति थी अतएव श्रमणों (बौद्ध जैनों) को इस प्रकार के किसी निजी साहित्य की अपेक्षा बहुत काल तक न हुई। यह कहना कठिन है कि पुराण नाम के साहित्य मे साम्प्रदायिकता लाने का पहला काम बौद्ध जैनों का था या वैदिक धर्म के ही विभिन्न मत-मतान्तरों का। बौद्ध जैनों के अतिरिक्त और भी आर्येतर मत मतान्तर भारतवर्ष मे बहुत दिन से चले आ रहे है जिनका सम्बन्ध आगे चलकर वैदिक धर्म की शाखाओं से हुआ। उन मत-मतान्तरों और सम्प्रदायों मे अनेक अलौकिक घटनाएँ प्रचलित थीं, जिनका सम्बन्ध उनके देवी देवताओं से था। हो सकता है समन्वय काल मे उनमे से बहुत सी घटनाओं का समावेश पुराणों मे हो गया।'

पुराणों की प्राचीनता

आज जिस रूप मे हमे पुराण उपलब्ध होते है उनका वही पहला रूप रहा होगा इसमे सन्देह है परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि पुराण-साहित्य का अस्तित्व किसी न किसी रूप मे वैदिक काल मे भी रहा होगा। अथर्व संहिता के अनुसार ऋक् साम, छन्द और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए—

ऋचः सामानि च्छन्दांसि पुराणं यजुषा सह[1]।

शतपथ ब्राह्मण मे आया है—अध्वर्युस्तार्क्ष्ये वै पश्यतो राजयेत्याह पुराणं वेद सोऽयमिति किञ्चित्पुराणमाचक्षीत[2]। अर्थात् अध्वर्यु इस प्रकार कहकर पुराण का कथन

१—अथर्व० ७१ ७ २४

२—शतपथ, १३ ४ ३ १३

करते थे। वृहदारण्यक मे इस प्रकार उल्लेख है—स यथा आर्द्रे धाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा-विनिश्चिरन्ति एव वा अरेहस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद्दग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्वाङ्गि रस इतिहास पुराण विद्या उपनिषद श्लोका सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि[1]। अर्थात् जिस प्रकार गीली लकडी मे जलती हुई अग्नि का धुआँ अलग-अलग रूप धारण करके निकलता है, उसी प्रकार महत् तत्व से विश्वास रूप मे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान अनुव्याख्यान नि सृत हुए है। छान्दोग्योपनिषद् मे इस प्रकार उक्ति है—स हो वाच ऋग्वेद भग वो अध्येमि यजुवद सामवेदमथवण चतुथमितिहास पुराण पञ्चम वेदाना वेदम्।[2] अर्थात् इतिहास पुराण पाचवा वेद है। पुराण शब्द के साथ इतिहास शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है, परन्तु जिन स्थलो पर इन शब्दो का प्रयोग हुआ है, उनसे यह स्पष्ट अवश्य है कि दोनो शब्द समानाथक नही है। प्राय 'इतिहासपुराणौ', इतिहास-पुराणाभ्याम्' आदि प्रयुक्द हुआ है। वृहदारण्यक का भाष्य करते हुए शङ्कराचाय ने दोनो का भेद स्पष्ट किया है—इतिहास इत्युवशीपुरुरवसो सवादादि, उवशी-ह्यप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणमसद्वा इदमग्रे आसीदित्यादि[3]। अर्थात् उवशी पुरुरवा आदि के सवादस्वरूप ब्राह्मणभाग को इतिहास कहते है और पहले असद् या इत्यादि सृष्टि के प्रकरण को पुराण कहते है। इस भाष्य से स्पष्ट होता है कि पुराण नाम की प्राचीन शाखा के दो भाग रहे होगे जो आगे चलकर एक इतिहास नाम मे प्रख्यात हुआ और दूसरा पुराण नाम से अवशिष्ट रह गया। हो सकता है किसी समय दोनो ही भाग स्पष्ट रूप से अलग-अलग प्रचलित रहे हो। पहले एक भाग मे इतिहास या ऐतिहासिक कथाएँ और दूसरे भाग मे सृष्टि का वणन रहा हो। आज भी पुराणो मे यह भेद लक्षित किया जा सकता है, परन्तु वह कुछ इतना मिल-जुल गया है कि अब उसका विभाजन बडा कठिन है। प्रारम्भ मे जब पुराण-सहिताओ का निर्माण हुआ होगा, उनमे दोनो ही भागो का समावेश रहा होगा। उस समय इन सहिताओ मे सृष्टि की आदि वशावलिया और सगादि के विवरण रहे होगे। धीरे-धीरे वशावलिया बढती गई इसलिये वशावलियो वाला भाग इतिहास नाम से प्रख्यात हुआ। जब तक यह परम्परा बनी रही इतिहास-पुराण शाखा का महत्व रहा। इस परम्परा के विच्छिन्न होने और साम्प्रदायिकता के आवरण के कारण पुराण-साहित्य का महत्व जाता रहा।

मुख्य-मुख्य सभी पुराणो मे पुराण के पाँच लक्षण गिनाये है—

सगश्च प्रतिसगश्च वशो मन्वतराणि च।
वशानुचरित चैव पुराण पञ्चलक्षणम्।

अर्थात् सग, सृष्टि विज्ञान, प्रतिसग, सृष्टि विस्तार, लय और पुन सृष्टि वश अर्थात् सृष्टि की आदि वशावलि, मन्वन्तर, कालक्रम और वशानुचरित अर्थात् राजाओ की वशावलियाँ।

इनमे अंतिम अर्थात् राजाओ की वशावलिया, इतिहास का विषय रहा होगा। पुराण-सहिता का आदिरूप क्या था, यह कहना बडा कठिन है और यह पता लगना भी सम्भव नही है कि पुराण-सहिता का आदि प्रणेता कोन था। हो सकता है कि पुराण भी ब्राह्मण ओर आरण्यक ग्रन्थो की भाति ऋषिप्रोक्त रहे हो। मनुसहिता आश्वलायन गृह्यसूत्र

१—वृहदारण्यक २ ४ १० शतपथ, १४ ६ १० ६
२—छान्दोग्य० ७-१ १
३—वृहदारण्यक भाष्य, २ ४ १०

और महाभारत सभी से यह पता चलता है कि पुराण संख्या मे कई रहे होगे। फिर द्वापर युग मे वेदव्यास जी अन्य वाङमय के साथ-साथ पुराणो का भी संकलन किया। विष्णु पुराण मे इस सकलन के विषय मे स्पष्ट उक्ति है—

"इसके बाद पुराणार्थ विशारद भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्प-शुद्धि के साथ पुराण संहिता की रचना की। व्यास का सूतजातीय लोमहर्षण नाम का एक विख्यात शिष्य था। महामुनि व्यास ने उसको पुराण संहिता दी लोमहर्षण के ६ शिष्य हुए। उनके नाम सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शासपायन, अकृतव्रण और सावर्णि थे। इनमे से कश्यपवंशीय अकृतव्रण, सावर्णि और शासपायन इन तीनो ने लोमहर्षण से पढ़कर मूलसंहिता के आधार पर एक एक पुराण संहिता की रचना की। उन्ही चार संहिताओं का सार संग्रह करके यह पुराण संहिता रची गई है। सब पुराणो मे सबसे पुराना ब्रह्मपुराण कहलाता है। पुराणविदो ने पुराणो की संख्या १८ निर्दिष्ट की है।"[1] इन १८ पुराणो के अतिरिक्त कुछ उपपुराण भी प्रसिद्ध है। आगे चलकर तो यह निश्चय करना ही कठिन हो गया कि कौन महापुराण है और कौन उपपुराण। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ मे पुराण-संहिता नाम का एक संग्रह रहा होगा, जिसके अठारह विभाग रहे होगे। फिर आगे चलकर उन्ही १८ विभागो के आधार पर १८ बडे-बडे पुराण बन गये होगे और उनके परिशिष्ट के रूप मे बहुत से उपपुराण सकलित हुए होगे। पुराणो के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि सब पुराणो मे प्राय एक-ही विषय की पुनरावृत्ति की गई है, और कि ही पुराणो के तो श्लोक भी ज्यो के त्यो मिल जाते है, परन्तु प्रत्येक पुराण का उद्देश्य पृथक् प्रतीत होता है और सम्भवत इसीलिये प्रत्येक पुराण मे कोई न कोई प्रसग विशेष रूप से आ गया है। जब साम्प्र-दायिक प्रचार ही पुराणो का उद्देश्य हो गया तो उनमे परिवर्तन और परिवर्द्धन की कोई सीमा न रही। हिन्दू पुराणो के आधार पर ही अनेक बौद्ध और जैन पुराण भी निर्मित हुए। जैनो के मुख्य पुराण २४ और बौद्धो के ६ है। पुराण रचना की यह प्रक्रिया १५वी, १६वी शताब्दी तक चलती रही और एक-ही नाम के कई-कई पुराणो की रचना भिन्न भिन्न प्रदेशो मे हुई। यही कारण है कि आज एक-ही नाम के कुछ दाक्षिणात्य और कुछ मध्यदेशीय पुराण मिलते है। इस अव्यवस्था के कारण प्राचीन पुराणो की विषय-शृङ्खला जोडना आज असम्भव है, फिर भी ऐतिहासिकता की दृष्टि से पुराणो का महत्व कम नही किया जा सकता। अनेक प्रकार के कङ्कडो, पत्थरो और भवनो मे ऐतिहासिक परम्परा-रत्न छिपे पडे है।

पुराणों के सामान्य विषय

सामान्य विषय-विवेचन की दृष्टि से हम किसी भी पुराण को दो भागो मे बाट सकते है—(१) अलौकिक और दिव्य घटनाएँ तथा (२) परम्पराए और वंशावलिया। इन दो बातो के साथ-साथ सृष्टि आदि का वर्णन सभी पुराणो मे थोडे बहुत भेद के साथ एकसा है। अलौ-किक घटनाओ के वर्णन मे प्राय सभी पुराणो मे ब्रह्म के सगुण रूप का ही विशद विवेचन हुआ है। यही बात है कि अवतारवाद पुराणो का एक विशेष अग बन गया है। ब्राह्म, शैव, शाक्त, भागवत आदि सभी पुराणो मे ब्रह्म के नाना रूपो की कल्पना कर उनके अवतारो की चर्चा की गई है। उनकी कथाओ और माहात्म्य से पुराण भरे पडे है। एक बडे आश्चर्य की बात यह है कि इन अलौकिक कथाओ के सूत्र वैदिक साहित्य मे भी मौजूद है। इस विषय को उठाकर श्री रामदास गौड ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुत्व' मे एक मत इस प्रकार उद्धृत किया है—

१—हिन्दुत्व, रामदास गौड पृ० १६२

"वैदिक ग्रन्थो मे देवतत्व का जिस प्रकार आभास है, वही पुराणो मे विकृत रूप होकर बड़े पैमाने मे दिखाई पड़ता है। पहले के देवताविशेष अनेकानेक उपाख्यानो मे रूपान्तरित और परिवर्तित हो गये है। जैसे विष्णु शब्द सूर्य के अर्थ मे वेदो मे आया है, परन्तु पुराणो मे सूर्य से बिलकुल भिन्न एक अलग देवता का नाम है, जिसका माहात्म्य पुराणो मे भर दिया गया है और जिसके अवतारो की कथा का विकास कर दिया गया है। भक्तजनो ने दूसरो के सुशोभन अलङ्कारो का अपहरण करके अपने-अपने इष्टदेव का मनमाना शृङ्गार किया है। इस तरह ऊधो की पगड़ी माधो के सिर पहरा कर हिन्दू धर्म का एक नया रूप गढ़ लिया है। इस प्रकार हिन्दू शास्त्र क्रमशः परिवर्तित और विपर्यस्त हो गया।[1]"

यह मत यद्यपि पक्षपातपूर्ण और एकांगी है फिर भी इसमे इतना सत्य अवश्य है कि बहुत-सी पौराणिक कथाओ के सूत्र वैदिक साहित्य मे मिल जाते है। पुराणो मे अवतारो की चर्चा विशेष रूप से की गई है और यह अवतारो की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई है। भागवत धर्म के विकास पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि यह अवतार चर्चा वैदिक काल मे ही होने लगी थी। ऋक्संहिता के अनेक सूत्रो मे विष्णुविषयक मन्त्र है। शिवजी का नाम उसी मे रुद्र गाया है और यजुर्वेद मे तो रुद्र की पूर्ण स्तुति ही की गई है। वाजसनेयी संहिता की शतरुद्री मे शिवजी के अनेक नाम गिनाये है, जैसे शिव, गिरीश, पशुपति, नीलग्रीव, शितिकण्ठ आदि। इसी संहिता मे शिवा और अम्बिका का भी उल्लेख हुआ है।[2] ब्राह्मण ग्रन्थो मे तो अवतार का उल्लेख और भी स्पष्ट है जैसे शतपथ ब्राह्मण मे मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वाराह अवतार और वामनावतार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[3] तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) मे कूर्मावतार का, तैत्तिरीय संहिता (७।१।५।१) और तैत्तरीय ब्राह्मण (१।१।३।५) मे वाराह अवतार का तथा तैत्तरीय आरण्यक (१०।१।६) मे वासुदेव श्रीकृष्ण का उल्लेख हुआ है। उपनिषदो मे भी अवतार विषयक उल्लेख मिलते है। छान्दोग्योपनिषद् (३।१७) मे देवकी पुत्र कृष्ण का उल्लेख है। ऋग्वेद अष्टम मण्डल ७४ वे मन्त्र के द्रष्टा ऋषि कृष्ण बताये गए है और इसी मण्डल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम मण्डल के ४२, ४३, ४४ वे सूक्तो के ऋषि का नाम भी श्रीकृष्ण है। कोशीतकी ब्राह्मण मे भी आङ्गिरस ऋषि और कृष्ण का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार वैदिक साहित्य मे हमे पौराणिक देवताओ की कथाओ के सूत्र मिल जाते है। पुराणो की कथाएँ अधिकतर रूपक है और उनमे कल्पना का योग भी बहुत अधिक है। हमे तो ऐसा लगता है कि कालक्रम से अवतारो के रूप भी बदलते गये है और एक अवतार तथा देवता की कथा को दूसरे अवतार अथवा देवता की कथा से जोड़ दिया गया है। कूर्म और वाराह अवतारो की कथाएँ ब्रह्मा के अवतार की कथा हो गई है फिर थोड़े बहुत अन्तर से वे ही घटनाएँ विष्णु से अथवा सूर्य या शिव से या शक्ति से जोड़ दी गई है। वैदिक साहित्य और पुराण साहित्य को साथ-साथ रख कर पढ़ने से ऐसा लगता है कि वैदिक साहित्य मे जो कथाएँ प्रसंग रूप मे कही गई है, उन्ही का बढ़ा चढ़ा वर्णन पुराण साहित्य मे किया गया है। जब एक छोटी सी कथा बृहदाख्यायिका का रूप धारण करती है तो उसमे बहुत-सी अवान्तर कथाओ का भी समावेश हो जाता है। फिर जब उसी कथा को साम्प्रदायिकता का रूप दे दिया जाता

१ हिन्दुत्व पृ० १६५

२ वाजसनेयी संहिता ३।५।७।१६।८

३ शतपथ ब्राह्मण १।८।१।२ १०, ७।५।३।५, १४।१।२।११ तथा १।२।५।१ ७

है, तो उसमे अनिशयोक्ति का ठिकाना नही रहता और वह कथा एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लेती है।

सभी पुराणो का उद्देश्य साधारण रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूय, गणेश और शक्ति की उपासना और मुख्य रूप से किसी एक देव की उपासना है। ब्रह्मा की उपासना का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया है और ऐसा लगता है कि ब्रह्मा की उपासना का स्थान गणेश ने ले लिया हो। साम्प्रदायिक दृष्टि से १८ पुराणो के विषय मे स्कन्द पुराण के केदारखण्ड के पहले अध्याय मे यह उल्लेख मिलता है कि १० पुराण शैव है, ४ ब्राह्म, २ शाक्त और २ वैष्णव। इसी सम्बन्ध मे इस पुराण के शिवरहस्य खण्ड के अन्तगत सम्भव काण्ड मे इस प्रकार लिखा है कि—शैव, भविष्य माकण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौम, वामन और ब्रह्माण्ड ये १० पुराण शैव है। वैष्णव, भागवत, नारदीग और गरुड ये चार पुराण वैष्णव है। ब्राह्म और पाद्म ये दो पुराण ब्रह्मा के है। अग्नि पुराण अग्नि का और ब्रह्मवैवत सूय का है। जो पुराण जिस देवता से सम्बन्ध रखता है, वह उसी को श्रेष्ठ और अन्य देवताओ का स्रष्टा मानता है। इन पुराणो के सूक्ष्म विवेचन और अध्ययन से पता चलता है कि पहले शिव की उपासना का विशेष महत्त्व रहा होगा। धीरे-धीरे शिव और विष्णु मे साम्य स्थापित हुआ और फिर विष्णु को महत्त्व प्रदान किया गया। इन पुराणो मे भिन्न भिन्न कल्पो की कथाएँ है, और धार्मिक और सास्कृतिक विकास की दृष्टि से ये कथाये बडी महत्त्वपूण है। पुराणो के आकार मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और प्रत्येक पुराण मे शेष १७ पुराणो की नामावलि और श्लोक-सख्या जुडती गई। पुराणो की जो श्लोक सख्या दी गई है वह सबमे अलग अलग है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पुराणो की श्लोक-सख्या मे सवद्धन-काय बराबर चलता रहा।

परम्पराएँ और वंशावलियाँ

पुराणो का दूसरा महत्त्वपूण भाग परम्पराएँ और वशावलियो का विवेचन है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भाग बडा महत्वपूण है। हो सकता है प्रारम्भ मे पुराण सहिता की रचना ही उसी उद्देश्य से हुई हो, क्योकि वैदिक साहित्य तो धार्मिक साहित्य है। ऐतिहासिक परम्पराओ की रक्षा उसका उद्देश्य नही है। धार्मिक कृत्यो अथवा धम के विस्तार के सम्बन्ध मे जो घटनाएँ उल्लेखनीय समझी गइ, उनका सक्षेप मे विवरण वैदिक साहित्य मे मिल जाता है। वीर आर्यो के चरितो का पूण विवेचन धार्मिक साहित्य मे न तो सम्भव ही था और न आवश्यक ही। इसलिए उस विषय के निमित्त पुराण-सहिता की रचना हुई होगी। वैदिक साहित्य, जिसका बहुत-सा अङ्ग आज भी अक्षुण्ण है, इस बात का प्रमाण है कि उस समय के समृद्ध समाज मे इतिहास को सुरक्षित रखने का कोई साधन अवश्य रहा होगा और वह साधन पुराण-सहिता ही प्रतीत होता है। वैदिक साहित्य का निर्माण ऋषियो ने ग्रामो और नगरो से दूर आश्रमो और जगलो मे किया होगा। उनके समय के राजाओ के चरित्र और वशावलियो का उन्हे पूण ज्ञान रहा हो, इसमे सन्देह है। उन सबका सकलन पुराणकारो ने अलग से ही नगरो मे किया होगा। आगे चलकर जब पुराणो को साम्प्रदायिक रूप दिया गया और वे धम की भी व्याख्या करने लगे तो उनका रूप अव्यवस्थित हो गया होगा। रामायण, महाभारत और लगभग १३ अन्य पुराणो मे क्षत्रियो की ही वशावलिया दी गई है। ब्राह्मणो की वशावलिया तो अपूण-सी ही है। ऐसा लगता

है कि प्राचीन काल मे दो प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित थी, क्षत्रिय परम्परा और ब्राह्मण परम्परा। ब्राह्मण परम्परा का वैशिष्टय धार्मिकता मे था और क्षत्रिय-परम्परा का ऐतिहासिकता मे। जब क्षत्रिय परम्परा के सुरक्षित रखने का काय भी ब्राह्मण-विद्वानो के हाथ मे आया तो दोनो के सम्मिश्रण से कुछ व्यवस्था बिगड गई। श्री एफ० ई० पर्जिटर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Ancient Indian Historical Tradition मे इस विषय पर विस्तार से लिखा हे और क्षत्रिय व ब्राह्मण वशावलियो की पुराणो के अनुसार सूचिया भी प्रस्तुत की हे।वैदिक और पौराणिक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हे—

"The Vedic Literature gives us notices of ancient times from the brahmanic and religious points of view and ksatriya tradition enables us to picture ancient India and its political conditions from the ksatriya stand point The ksatriyas manifestly played the most important part in the Aryan Conquest of India, and if we wish to discover and estimate what their position and achievements were it is essential to study their traditions, for as will be shown, the Puranic genealogies and they alone, give an account how the Aila race dominated all the regions to which we assign the Aryan occupation, while the brahmanic literature contains no inkling whatever of that great transformation [१]

अर्थात् वैदिक साहित्य द्वारा जो हमे सूचना मिलती है, उसका आधार ब्राह्मणीय और धार्मिक दृष्टिकोण है। पौराणिक साहित्य द्वारा क्षत्रिय परम्पराओ का पता चलता है और उनसे उसी दृष्टिकोण से भारतवष की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है। आर्यो द्वारा भारत-विजय मे क्षत्रियो का महत्वपूण काय रहा है, और यदि हम उनकी स्थिति और कार्यो का ज्ञान प्राप्त करना चाहते है, तो उनकी परम्पराओ का अध्ययन आवश्यक है। यह पौराणिक वशावलियो के द्वारा हो सकता है। ब्राह्मण साहित्य मे बहुत-सी उन बातो का उल्लेख भी नही हे, जिनका पुराणो मे पूरा विवरण है। जैसे ऐल जाति, जो सारे ही आर्यो के क्षेत्र मे राज्य कर रही थी, उसका नाम तक वैदिक साहित्य मे नही आया है। पार्जिटर ने, जो वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे दोषारोपण किये है, वे पक्षपात पूण और सदोष है। उनकी मान्यता वदिक साहित्य और पौराणिक साहित्य को समकक्ष मानकर चली है और इसीलिये वे वेदो मे भी ऐतिहासिकता की खोज करते हे। वस्तुस्थिति तो यह है कि वेदो मे जिन राजाओ का उल्लेख हे, वे पुराण सहिता के निर्माण-काल से बहुत पहले के है और पुराणो की बहुत-सी कथाओ का निर्माण उनके आधार पर हुआ है। पार्जिटर का यह कथन अवश्य विचारणीय है कि वैदिक और पौराणिक परम्पराओ को सुरक्षित रखने के साधन अलग-अलग थे। हो सकता हे कि पौराणिक परम्पराओ की रक्षा प्रारम्भ मे सूतो और भाटो के द्वारा ही की जाती हो और आगे चलकर यह काम भी विद्वान ब्राह्मणो द्वारा ही होने लगा हो। यह कहना बडा कठिन है कि वेदो का प्रारम्भ किस रूप मे हुआ था ? सहिताओ का जो रूप आज उपलब्ध है, उसके सम्बन्ध मे पौराणिक परम्परा यह है कि

1 Ancient Indian Historical Tradition by F E Pargiter Page 8 9

है, तो उसमे अतिशयोक्ति का ठिकाना नही रहता और वह कथा एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लेती है।

सभी पुराणो का उद्देश्य साधारण रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूय, गणेश और शक्ति की उपासना और मुख्य रूप से किसी एक देव की उपासना है। ब्रह्मा की उपासना का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया है और ऐसा लगता है कि ब्रह्मा की उपासना का स्थान गणेश ने ले लिया हो। साम्प्रदायिक दृष्टि से १८ पुराणो के विषय मे स्कन्द पुराण के केदारखण्ड के पहले अध्याय मे यह उल्लेख मिलता हे कि १० पुराण शैव हे, ४ ब्राह्म, २ शाक्त और २ वैष्णव। इसी सम्बन्ध मे इस पुराण के शिवरहस्य खण्ड के अन्तगत सम्भव काण्ड मे इस प्रकार लिखा है कि—शैव, भविष्य माकण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौम, वामन और ब्रह्माण्ड ये १० पुराण शैव हे। वैष्णव, भागवत, नारदीय और गरुड ये चार पुराण वैष्णव है। ब्राह्म ओर पाद्म ये दो पुराण ब्रह्मा के है। अग्नि पुराण अग्नि का और ब्रह्मवैवत सूय का है। जो पुराण जिस देवता से सम्बन्ध रखता हे, वह उसी को श्रेष्ठ और अन्य देवताओ का स्रष्टा मानता है। इन पुराणो के सूक्ष्म विवेचन और अध्ययन से पता चलता है कि पहले शिव की उपासना का विशेष महत्त्व रहा होगा। धीरे-धीरे शिव और विष्णु मे साम्य स्थापित हुआ और फिर विष्णु को महत्त्व प्रदान किया गया। इन पुराणो मे भिन्न भिन्न कल्पो की कथाएँ है, ओर धार्मिक और सास्कृतिक विकास की दृष्टि से ये कथाये बडी महत्त्वपूण हे। पुराणो के आधार मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई और प्रत्येक पुराण मे शेष १७ पुराणो की नामावलि ओर श्लोक-सख्या जुडती गई। पुराणो की जो श्लोक सख्या दी गई है वह सबमे अलग अलग हे। इससे यह सिद्ध हो जाता हे कि पुराणो की श्लोक-सख्या मे सवद्धन-काय बराबर चलता रहा।

परम्पराएँ ओर वशावलियाँ

पुराणो का दूसरा महत्त्वपूण भाग परम्पराएँ ओर वशावलियो का विवेचन हे। ऐतिहासिक दृष्टि से यह भाग बडा महत्वपूण हे। हो सकता है प्रारम्भ मे पुराण सहिता की रचना हो उसी उद्देश्य से हुई हो, क्योकि वैदिक साहित्य तो धार्मिक साहित्य है। ऐतिहासिक परम्पराओ की रक्षा उसका उद्देश्य नही है। धार्मिक कृत्यो अथवा धम के विस्तार के सम्बन्ध मे जो घटनाएँ उल्लेखनीय समझी गइ, उनका सक्षेप मे विवरण वैदिक साहित्य मे मिल जाता है। वीर आर्यो के चरितो का पूण विवेचन धार्मिक साहित्य मे न तो सम्भव ही था और न आवश्यक हो। इसलिए उस विषय के निमित्त पुराण-सहिता की रचना हुई होगी। वैदिक साहित्य, जिसका बहुत-सा अङ्ग आज भी अक्षुण्ण हे, इस बात का प्रमाण है कि उस समय के समृद्ध समाज मे इतिहास को सुरक्षित रखने का कोई साधन अवश्य रहा होगा और वह साधन पुराण-सहिता ही प्रतोत होता है। वैदिक साहित्य का निर्माण ऋषियो ने ग्रामो और नगरो से दूर आश्रमो और जगलो मे किया होगा। उनके समय के राजाओ के चरित्र और वशावलियो का उन्हे पूण ज्ञान रहा हो, इसमे सन्देह है। उन सबका सकलन पुराणकारो ने अलग से ही नगरो मे किया होगा। आगे चलकर जब पुराणो को साम्प्रदायिक रूप दिया गया ओर वे धम की भी व्याख्या करने लगे तो उनका रूप अव्यवस्थित हो गया होगा। रामायण, महाभारत और लगभग १३ अन्य पुराणो मे क्षत्रियो की ही वशावलिया दी गई है। ब्राह्मणो की वशावलिया तो अपूण-सी ही है। ऐसा लगता

है कि प्राचीन काल मे दो प्रकार की परम्पराएँ प्रचलित थी, क्षत्रिय परम्परा और ब्राह्मण परम्परा। ब्राह्मण परम्परा का वैशिष्ट्य धार्मिकता मे था और क्षत्रिय-परम्परा का ऐतिहासिकता मे। जब क्षत्रिय परम्परा के सुरक्षित रखने का काय भी ब्राह्मण-विद्वानो के हाथ मे आया तो दोनो के सम्मिश्रण से कुछ व्यवस्था बिगड गई। श्री एफ० ई० पर्जिटर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Ancient Indian Historical Tradition मे इस विषय पर विस्तार से लिखा हे और क्षत्रिय व ब्राह्मण वशावलियो की पुराणो के अनुसार सूचिया भी प्रस्तुत की हे।वैदिक और पोराणिक साहित्य का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हे—

"The Vedic Literature gives us notices of ancient times from the brahmanic and religious points of view and ksatriya tradition enables us to picture ancient India and its political conditions from the ksatriya stand point The ksatriyas manifestly played the most important part in the Aryan Conquest of India, and if we wish to discover and estimate what their position and achievements were it is essential to study their traditions, for as will be shown the Puranic genealogies and they alone, give an account how the Aila race dominated all the regions to which we assign the Aryan occupation, while the brahmanic literature contains no inkling whatever of that great transformation"[१]

अर्थात् वैदिक साहित्य द्वारा जो हमे सूचना मिलती है, उसका आधार ब्राह्मणीय और धार्मिक दृष्टिकोण है। पौराणिक साहित्य द्वारा क्षत्रिय परम्पराओ का पता चलता है और उनसे उसी दृष्टिकोण से भारतवष की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है। आर्यो द्वारा भारत-विजय मे क्षत्रियो का महत्वपूण काय रहा है, और यदि हम उनकी स्थिति और कार्यों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हे, तो उनकी परम्पराओ का अध्ययन आवश्यक है। यह पोराणिक वशावलियो के द्वारा हो सकता है। ब्राह्मण साहित्य मे बहुत-सी उन बातो का उल्लेख भी नही है, जिनका पुराणो मे पूरा विवरण है। जैसे ऐल जाति, जो सारे ही आर्यो के क्षेत्र मे राज्य कर रही थी, उसका नाम तक वैदिक साहित्य मे नही आया हे। पार्जिटर ने, जो वैदिक साहित्य के सम्बन्ध मे दोषारोपण किये है, वे पक्षपात पूण और सदोष है। उनकी मान्यता वैदिक साहित्य और पौराणिक साहित्य को समकक्ष मानकर चली हे और इसीलिये वे वेदो मे भी ऐतिहासिकता की खोज करते हे। वस्तुस्थिति तो यह है कि वेदो मे जिन राजाओ का उल्लेख है, वे पुराण सहिता के निर्माण-काल से बहुत पहले के है और पुराणो की बहुत-सी कथाओ का निर्माण उनके आधार पर हुआ हे। पार्जिटर का यह कथन अवश्य विचारणीय है कि वैदिक और पोराणिक परम्पराओ को सुरक्षित रखने के साधन अलग-अलग थे। हो सकता हे कि पोराणिक परम्पराओ की रक्षा प्रारम्भ मे सूतो और भाटो के द्वारा ही की जाती हो और आगे चलकर यह काम भी विद्वान ब्राह्मणो द्वारा ही होने लगा हो। यह कहना बडा कठिन हे कि वेदो का प्रारम्भ किस रूप मे हुआ था? सहिताओ का जो रूप आज उपलब्ध है, उसके सम्बन्ध मे पोराणिक परम्परा यह हे कि

1 Ancient Indian Historical Tradition by F E Pargiter Page 8 9

द्वापर मे पराशर के पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास द्वारा उनका सम्पादन हुआ था। महाभारत, वायुपुराण विष्णु पुराण और कूर्मपुराण— सभी मे इस कथन को दोहराया गया है, परन्तु वैदिक साहित्य मे इस प्रकार की उक्ति कहा नही मिलती। यहा तक कि व्यास का नाम भी तत्तिरीय आरण्यक मे दूसरे ही रूप मे आया है। पौराणिक परम्पराओ का जहा तक सूत और मागधो से सम्बन्ध है, कई पुराणो मे उसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पार्जिटर के के आधार पर इस सूत मागध वाली परम्परा को हम सक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते है।

वायु और पद्म पुराणो से ज्ञात होता है कि सूत लोगो ने किस प्रकार वशानुगत कथाओ और वीरगीतो को सुरक्षित रखा। उक्त पुराणो मे सूत के कर्तव्यो का भी उल्लेख है। वायु पुराण[1] के अनुसार पुरातन सत्पुरुषो ने सूत का धर्म देवताओ, ऋषियो, अतीव तेजस्वी भूपतियो एव प्रसिद्ध महात्माओ की, जिनका उल्लेख इतिहास पुराणो मे ब्रह्म-वादियो ने किया है, वशपरम्परा की रक्षा से निश्चित किया है। यही बात पद्म पुराण मे मे इस प्रकार कही गई है—

एष धर्मस्तु सूतस्य सद्भिर्दृष्ट सनातनै।
देवतानामृषीणा च राज्ञाममिततेजसाम्।
तद्वशकारण कार्यं स्तुतीना च महात्मनाम्।
इतिहास पुराणेषु द्रष्टा ये ब्रह्मवादिन।[2]

अर्थात् प्राचीन आप्त पुरुषो के अनुसार सूत का धर्म देवताओ ऋषियो और तेजस्वी राजाओ के वश का वर्णन और उन महात्माओ की स्तुति करना है जो इतिहास और पुराणो मे ब्रह्मवादी माने गये है।

यहाँ पर सूत शब्द से उस जाति विशेष से तात्पर्य नही है, जो क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी माता के सयोग से उत्पन्न हुई[3]। सूत शब्द का इस अर्थ मे प्रयोग बहुत पीछे हुआ। यहा सूत शब्द का प्रयोग 'मागध' की भाति भाट विशेष के अर्थ मे हुआ है। सूत और मागध दोनो की ही उत्पत्ति वेन के पुत्र पृथु के समय मे बताई गई है।[4] प्रथम सूत और मागध की उत्पत्ति पृथु के यज्ञ मे हुई और उसने अनूप अथवा सूतप्रदेश सूत को तथा मागधप्रदेश मागध को दिया। इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि सूत अनूप अर्थात् बगाल या सूत (मगध के उत्तर का जनपद) के निवासी थे और मागध मगध के। इस सूत-जाति से मनु द्वारा प्रतिपादित सूत जाति का स्पष्ट पार्थक्य दिखाया गया है। मूल सुतो के कार्य को पीछे की वर्णसकर जाति को सुपुर्द करने के कारण ही उसका सूत नाम पडा। इसके अतिरिक्त

१ स्वधर्म एव सूतस्य सद्भिर्दृष्ट पुरातनै।
देवतानामृषीणा च राज्ञा चामिततेजसाम्।
वशाना धारणा च कार्यं श्रुताना च महात्मनाम्।
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभि॥ वायु० पु० १ ३१ २

२ पद्म पुराण ६ १ २७-८

३ मनु० १० ११ १७

४ देखिये वायु पु० ६२ १३७ ४८ पद्म पु० २ २७-६५ ८६

इन्हे रथादि हाकने और चिकित्सा के जघन्य काय भी दिये गये। कौटल्य के अर्थशास्त्र मे भी इन दोनो सूत-जातियो का स्पष्ट शब्दो मे अन्तर बताया गया है। क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण की सतति सूत का उल्लेख करके कौटल्य ने कहा है—

"पौराणिकस्त्वन्य सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद् विशेष ।"

अर्थात् पुराणो मे प्रसिद्ध सूत और मागध ब्राह्मणी और क्षत्रिय से प्रसूत सूत से भिन्न है।

इन सूतो का काय परम्परा के अनुमार देवो, कवियो और राजाओ की वशपरिपाटी को अक्षुण्ण बनाये रखना था। परम्परा का सकेत स्मृति' (याद किया हुआ) 'अनुशुश्रम' (हमने परम्परा से सुना है) 'इति न श्रुतम्' (यह हमने सुना है) 'इति श्रुतम्' (यह सुना गया है) और 'इति श्रुति' शब्दो से मिलता है। यद्यपि 'श्रुति' शब्द का सामान्य अथ 'पवित्र लेख' अथवा पवित्र परम्परा है तथापि पुराणो मे श्रुति शब्द 'सामान्य परम्परा' का द्योतक है। पुराणो मे 'इति श्रुति' का प्रयोग अनेक स्थलो पर हुआ है और जिन-जिन विषयो के सम्बन्ध मे इन का प्रयोग हुआ है उनका उल्लेख वैदिक साहित्य मे नही मिलता। वायु और हरिवश पुराणो मे सगर के साठ सहस्र पुत्रो की उत्पत्ति की कथा आई है जिसका प्रतिपादन 'इति श्रुति' शब्दो से किया गया है परन्तु वैदिक साहित्य रस विषय मे मौन है।[1]

वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु और भागवत पुराणो मे पुराणो के मूल आविर्भाव का वणन तीनो से सवथा पृथक् है। प्रथम तीन पुराणो के अनुसार कृष्णद्वैपायन ने वेद को चार भागो मे विभाजित किया और उनका सम्पादन किया इसी लिये उन्हे 'व्यास' कहा जाता है। वेद के इन चारो भागो को उन्होने अपने चार शिष्य पैल, वैशम्पान जैमिनि और सुमन्तु के सुपुर्द किया। इसके पश्चात् अनेक शताब्दियो से चले आते हुए आख्यानो, उपाख्यानो, गाथाओ और कल्प विषयक उक्तियो से पुराण[2] का सग्रह कर उन्होने इतिहास के साथ-साथ उसे अपने पाँचवे शिष्य 'सूत रोमहष' या 'लोमहषण' को पढाया। महाभारत की रचना उन्होने पुराणो के पश्चात् की जैसा कि इस श्लोक से स्पष्ट भी है[3]—

अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुत ।
भारताख्यान मखिल चक्रे तदुपबृंहितम् ।

अर्थात् सत्यवती के पुत्र व्यास ने अठारह पुराणो की रचना करके उन्ही से सम्बन्धित 'महाभारत' की रचना की। कुछ भी हो इस उल्लेख से उस सामग्री का तो पता चलता ही है जिससे पुराणो का सग्रह किया गया। यह कहा जा चुका है कि सूत लोग अति पुरातन काल से ही देवताओ, ऋषियो और राजाओ की वशपरम्परा को अन्धकार के गत मे जाने से बचाते आ रहे थे। अनेक परम्पराएँ तथा सुप्रसिद्ध महापुरुषो के प्रशस्तिगीतो को वे पैतृक-सम्पत्ति के रूप मे निरन्तर प्राप्त करते आ रहे थे और यही वह सामग्री थी जिससे

१ देखिये, वृश्रु पुराण ८, ५८ तथा हरिवश १५—८०२
२ आख्यानै श्चाप्युपाख्यानै गाथाभि, कल्पजक्तिभि ।
पुराण सहिता चक्रे पुराणार्थविशारद ।
३ ब्रह्माण्ड०२—३४—२१, वायु० ६०—२१ तथा विष्णु० ३—६—१६

पुराणो का सकलन हुआ । धार्मिक मन्त्रो के वेदो मे सकलित होने के पश्चात् यह स्वाभाविक ही था कि तदतिरिक्त प्राचीन कथानको और गाथाओ का सग्रह पुराण मे किया जाता ।

व्यास द्वारा निर्मित पुराण सहिता के रोमहषण ने ६ पाठान्तर किये और उन्हे अपने ६ शिष्यो को पढाया जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हे । यद्यपि ये सभी पाठान्तर आज उपलब्ध नही तथापि उक्त व्यक्तियो मे से रोमहषण के अतिरिक्त अन्य कई वक्ता अथवा प्रश्नकर्त्ता के रूप मे कुछ पुराणो और महाभारत मे दीख पडते हे । सार्वर्णि, काश्यपेय और वैशम्पायन वायु और ब्रह्माण्डपुराण मे आते है[1] जो प्राचीनतम पुराणो म से है और मूल रूप मे एक ही थे । जिन प्रसङ्गो मे इन व्यक्तियो का उल्लेख है वे उन प्राचीन पुराणो के अवशेष हा सकते है जिनका इन दिनो मे अ तर्भाव हो गया है । रोमहषण ने व्यास द्वारा प्रणीत मूल पुराण को अपने पुत्र सौनि उग्रश्रवा,[2] को पढाया जो वत्तमान कतिपय पुराणो मे वक्ता रूप मे भी आता है ।[3] इस समय तक जीविका के लिये पुराणो की कथा कहना सूतो का अधिकार था[4] कि तु जैसा कि रोमहषण के ६ शिष्यो मे से कम से कम पाँच ब्राह्मण थे । इस प्रकार सूतो से यह ब्राह्मणो के हाथ मे आ गया । कालक्रम से से मूल पुराण विकसित होता हुआ अनेक पुराणो के रूप मे परिणत हो गया, सस्कृत की विद्वत्ता ब्राह्मणो के ही बाँटे पडी तथा नि सकोच नवीन साम्प्रदायिक पुराणो की रचना हुई ।

पुराण के उल्लिखित मूल उद्गम की पुष्टि तत्तत् पुराणो मे आये हुये अनेक सकेतो से भी होती है । अतीव प्राचीन काल से अनुश्रुत विषयो के बहुत से सकेत वायु और ब्रह्माण्ड आदि पुराण मे खोजे जा सकते हे । यह सामग्री पुराण का सकलन होने से भी बहुत प्राचीन समय की है । ययाति की कथाये[1], और माधाता[2], कातवीर्य अजु न[3], अलर्क[4], रन्तिदेव[5], नृग[6] तथा अन्य ऐसे ही नृपतियो की प्रशस्तियाँ उदाहरण के रूप मे रखी जा सकती है । इस बात के अनेक प्रमाण मिलते है कि ऐसे व्यक्तियो का जिनका काय प्राचीन वशपरम्पराओ, और आख्यान आदि का ज्ञान रखना था, यत्र-तत्र प्राचीन घटनाओ के विषय मे अधिकारी के रूप मे उल्लेख भी मिलता है तथा अनेक परिभाषिक शब्द भी, जो उनके लिये प्रयुक्त हुए है, इस तथ्य का समथन करते है । उदाहरणाथ 'पुराविद्' शब्द को ही लीजिये । यह शब्द वायु और ब्राह्मण पुराण मे उन व्यक्तियो के लिए आया है जिन्होने यादव राजा शशबिन्दु की वश परम्परा का वणन किया और पितरो[8] के गीत गाये ।

१ ब्रह्माण्ड० २ ३५—६३ ७० तथा वायु ६१—५४ ६२
२ ब्रह्माण्ड ४ ४ ६७, पद्म० ५ १ २ १४, महाभारत १ ५—८६३ ६७
३ हरिवश १ ११ १४, पद्म० ५ १ ११ ब्रह्मवै ६
४ कूम०—१ १४ १५

१ ब्रह्माण्ड०, ३,—६८,६६ १०३, वायु ६३, ६४ १६१, ब्रह्म० १०,३६ ४६, हरि० ३० १६३८ ४५
२ ब्रह्माण्ड २, ६३, ६६ ७०, वायु० ८८, ६७ ६
३ ब्रह्माण्ड ३, ६६ १६, वायु० ६४ १६
४ ब्रह्माण्ड० ३, ६७–७० ७१, वायु० ६२, ६६ ६७, हरि० २६ १५८८ ६०
५ य० भा० ७, ६७–२२६६ ७३
६ य० भा० ३, ८८–८३२६ ३०
७ वायु० ६५ १६, ब्रह्माण्ड ३, ७०, २०
८ ब्रह्माण्ड ३, १६, ६, वायु ८३, १०

बाद मे इस शब्द का प्रयोग पुराण के अतिरिक्त स्तुति-गायको के लिये भी होने लगा। भागवत मे इस शब्द का प्रयोग कृष्ण चरित का गान जिन्होने किया उनके लिये हुआ है।[1] पुराणज्ञ, पुराणविद्' पौराणिक और पुराणिक शब्द यद्यपि सामान्य रूप से पुराणवेत्ता के लिए आये है तथापि कभी कभी प्राचीन आख्यानो और कथाओ को जानने वाले के लिए भी इनका प्रयोग हुआ है।[2] पौराण शब्द प्राय प्राचीन के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है परन्तु कभी कभी पुराण सम्बन्ध के अर्थ मे भी आया है।[3] इन सब बातो से प्रकट होता है कि वेदो के साथ साथ प्राचीन वशावलि और कथाओ का भी अध्ययन किया जाता था किन्तु ब्राह्मणो ने अपनी जाति और सिद्धान्तो के सर्वातिशय प्रभाव तथा राजनैतिक वातावरण का लाभ उठा कर वैदिक साहित्य को उठाया जिसके कारण धार्मिकातिरिक्त साहित्य का ह्रास अवश्यम्भावी था।

पुराणो के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि उनमे बहुत से ऐसे समानार्थक शब्दो का प्रयोग हुआ है जिनसे पता चलता है कि पुराण विभिन्न परम्पराओ के व्यक्तियो की कृतियाँ हैं। भूत और मागधो के हाथ से जब पौराणिक परम्पराओ का काम ब्राह्मणो के हाथो मे पहुँचा तो उन्होने पुराणो को धार्मिकता से पूर्ण करना प्रारम्भ कर दिया और एक समय ऐसा था जबकि 'पुराणवित्' ब्राह्मणो को वेदविद् विद्वानो से निकृष्ट कोटि का समझा जाता था। इसलिए अन्त साक्ष्य और बहि साक्ष्य से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर पुराणो की तिथि निश्चित की जा सकती है। वायु पुराण सन् ६२० से पूर्व अवश्य ही वर्तमान था क्योकि बाण ने अपने हर्ष चरित मे इसका उल्लेख किया है।[4] नैपाल के राजकीय पुस्तकालय मे स्कन्दपुराण की जो पाण्डुलिपि मिली है उससे भी यही ज्ञात होता है कि वह पुराण भी उस समय वर्तमान था। सन् ५०० ई० के कुछ भूमिदान पत्रो पर जो श्लोक मिले हैं वे केवल पद्म, भविष्य और ब्रह्म पुराण मे ही मिलते है अत ये पुराण सन् ५०० ई० से पूर्व कालीन सिद्ध होते है। सन् ४७५-७६ तथा सन् ४८२-८३ के भूमिदान पत्रो पर जो श्लोक मिले है वे व्यास के महाभारत से उद्धृत बताये गये है किन्तु बहुत खोज के बाद भी वे महाभारत मे नही मिलते। ये श्लोक केवल पद्म और भविष्य पुराण मे ही प्राप्त होते है। भूमिदान पत्र की यह त्रुटि इस बात का सकेत करती है कि पुराण तथा महाभारत व्यास रचित ही माने जाते थे तथा महाभारत की प्रसिद्धि अधिक थी। इस प्रमाण को आधार मानकर भी हम इसी निर्णय पर पहुँचते है कि पदमपुराण अथवा भविष्यपुराण या दोनो ही सन् ४७५ ई० से पूर्व वर्तमान थे। यही बात ब्रह्मपुराण के विषय मे भी कही जा सकती है।

मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण मे कलियुग के राजवशो का जो वर्णन है उसके सम्बन्ध मे इन पुराणो मे यह उल्लेख मिलता है कि उन्होने यह सामग्री भविष्य पुराण से ली है। इन तीनो पुराणो के अन्त साक्ष्य के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि भविष्यपुराण ईसा की तृतीय शताब्दी के मध्य मे विद्यमान था। मत्स्यपुराण ने तृतीय

१ भागवत–१२, ७,२३
२ देखिये वायु० ८८, ६६ तथा ७०, ७६ ७ और ब्रह्माण्ड ३, ८, ८३
३ म० भा० १, २, ५४३ तथा १२, १४६, १३५२५
४ हर्षचरित उच्छ्वास ३, पैराग्राफ ४।

शताब्दी की समाप्ति से पूव तथा वायु और ब्रह्माण्ड पुराण ने चतुथ शताब्दी मे भविष्य पुराण से यह राजवशी सम्ब धी सामग्री प्राप्त की। वतमान काल मे श्री वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा प्रकाशित भविष्य पुराण जिस रूप मे मिलता है। उसमे राजवश सम्बन्धी वह सामग्री विद्यमान नही है। यह वास्तव मे मूल भविष्य पुराण का विकृत रूप है क्योकि इसमे समय-समय पर प्रक्षिप्त ग्रश जोडे जाते रहे है। आपस्तम्बीय धमसूत्र के अध्याय तीन मे भी भविष्य पुराण का उल्लेख मिलता है। पुराणो की रचना आपस्तम्ब से बहुत पहले प्रारम्भ हो चुकी थी। ब्हूलर के मतानुसार आपस्तम्ब धमसूत्र का रचनाकाल ईसा पूर्व तृतीय शताब्दी के पश्चात् का नही है इसकी रचना सम्भवतया इस काल से १५०–२०० वर्ष पूव हुई। इस धमसूत्र मे भविष्यपुराण के उद्धरण मिलने से यह सिद्ध होता है कि उस समय तक भविष्य पुराण काफी ख्याति प्राप्त कर चुका था। इस ख्याति की प्राप्ति करने मे न्यूनतम अध शताब्दी अवश्य लगी होगी। अत भविष्य पुराण को ईसा पूव तृतीय शताब्दी के बाद का नही माना जा मकता। यदि आपस्तम्ब धमसूत्र का रचनाकाल और भी १५०–२०० वष पूव का मान लिया जाय तो हम इस निणय पर पहुँचते है कि पुराणो का अस्तित्व ईसा पूव पाँचवी शताब्दी के प्रारम्भ मे था।

कौटल्य ने सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद को वेदत्रयी माना है। उसने लिखा है कि अथववेद तथा इतिहास वेद भी वेद है अर्थात् कौटल्य ने इतिहास और वेद को समकक्ष माना है और अथववेद को इतिहास के साथ गिना है। इतिहास की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए कौटल्य ने उसे पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उद्धरण, धमशास्त्र और अथशास्त्र मे अन्तर्भूत किया है। इस प्रकार कौटल्य ने पुराण के महत्त्व पर अधिक बल दिया है। आगे भी कई स्थलो पर राजकुमारो की शिक्षा के सम्वन्ध मे पुराण और पौराणिक शब्दो का प्रयोग किया है। यह पौराणिक निश्चित रूप से सूत और मागध से भिन्न रहा होगा। पौराणिक ब्राह्मण जाति का पुराणवेत्ता विद्वान् होता था। इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा पूव चौथी शताब्दी तक पौराणिक परम्परा विद्वान् ब्राह्मणो के हाथ आ चुकी थी और सूत और मागध नाम पुराने पड चुके थे। इस प्रकार पुराणो का अस्तित्व कौटल्य से भी बहुत पुराना ठहरता है। वैदिक साहित्य मे इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिल जाते है।

पुराणो की रचना कब तक होती रही यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। महाभारत तक की घटनाओ का पुराणो मे विस्तार से वणन मिलता है, पर श्रीकृष्ण और पाण्डवो के अनन्तर जिन राजवशो का उल्लेख विशेषता से पुराणो मे हुआ है, उनमे प्रधान रूप से हस्तिनापुर, अयोध्या और मगध के राजवश हैं। बुद्धकालीन राजवशो की चर्चा भविष्य मे होने वाले राजवशो के रूप मे की गई है। इससे सिद्ध होता है कि महाभारत काल से लगभग सौ वर्षों तक पुराणो की रचना होती रही, और पुराण-परम्परा मुख्य रूप से सूतो और मागधो के हाथो मे रही। इसके अनन्तर यह परम्परा ब्राह्मणो के हाथो पडी। ब्राह्मण परम्परा के पुराणो मे ऐतिहासिकता की अपेक्षा धार्मिकता का पुट अधिक मिलता है। इस समय उपलब्ध पुराणो के विभिन्न सस्करणो के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है। पुराणो मे दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं—(१) सिद्धात प्रतिपादन की दृष्टि से कही गई, काल्पनिक कथाएँ अथवा अन्योक्ति वा प्रतीक रूप मे कथित कथाएँ (२) ऐतिहासिक आख्यान। ऐतिहासिक आख्यानो मे भी कुछ कथाएँ वशिष्ठ, विश्वामित्र, नारद आदि ऋषियो से सम्बद्ध हैं, कुछ

शुद्ध क्षत्रियोपाख्यान हैं, और कुछ मिश्रित है। क्षत्रिय उपाख्यानो मे भी महत्व ब्राह्मणो का ही है। ऐसी परिस्थिति मे पुराणो से शुद्ध ऐतिहासिक तथ्य खोजना बडा दुस्कर काय है। कुछ वशावलियो और परम्पराओ का परिचय पुराणो से अवश्य मिल सकता है। पुराण-साहित्य मे स्पष्ट ऐतिहासिकता के अभाव का मूल कारण ब्राह्मणो की दाशनिकता और अध्यात्म परक प्रवृत्ति ही है। ब्राह्मणो के हाथ मे पडकर पुराणो का उद्देश्य इतिहास निरूपण न होकर धर्म और अध्यात्म निरूपण हो गया, इसलिए एक ही नाम के पात्र से सम्बद्ध कथाओ मे बहुत अधिक भेद हो गया है। इस प्रकार के वैभिन्न और भेदवाली बहुतमी कथाओ के उदाहरण पुराणो से प्रस्तुत किये जा सकते है। कई स्थलो पर तो ऐतिहासिक राजाओ और ऋषियो का सम्बन्ध प्रतीकात्मक राजाओ और ऋषियो से हो गया है। यही कारण है कि पुराणो के बहुत से पात्र देश और काल की दृष्टि से सारी बौद्धिक सीमाओ को पार करते हुए एक समस्या बन जाते है। इस प्रकार ऐतिहासिकता पर ब्राह्मणो की उवरा कल्पना का ऐसा रग चढा कि वह आज तक फीका नही हो पाया है। कथाओ और आख्यानो की अव्यवस्था के साथ-साथ देश और काल की भी पूण अव्यवस्था हुई। एक स्थान और काल मे उत्पन्न हुए राजा अथवा ऋषि का सम्बन्ध न जाने किन-किन स्थानो और कालो से जोड दिया गया। इसलिए पुराणो से ठीक-ठीक भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करना भी कठिन कार्य है। इतना होते हुए भी पौराणिक आख्यानो और कथाओ मे से ऐतिहासिकता और भौगोलिकता अवश्य खोजी जा सकती है।

प्राय सभी प्राचीन पुराणो मे वशावलियो का उल्लेख है। वराह, वामन, स्कन्द, नारदीय, ब्रह्मवैवर्त्त तथा भविष्य पुराण मे सुदूर अतीत का वणन अपेक्षाकृत कम है। महाभारत और रामायण से भी बहुत सी वशावलियो का विवरण प्राप्त होता है। रामायण और महाभारत के अतिरिक्त सुदूर अतीत का वणन करने वाले पुराण, वायु, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, हरिवश, मत्स्य और विष्णु हैं। इनमे वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण सबसे अधिक महत्त्वपूण है। इन पुराणो के सस्करण भी अधिक नही हुए है और विषय भी समान ही है। ऐसा लगता है कि ये दोनो पुराण एक ही सहिता के दो रूप हैं। अन्य पुराणो मे दी हुई पुराणो की सूची से भी यह बात सिद्ध हो जाती है क्योकि उनमे वायु पुराण का उल्लेख नही मिलता। कूम पुराण मे वायवीय ब्रह्माण्ड का उल्लेख मिलता है। केवल वायु पुराण और गरुड पुराण मे दोनो का अलग से उल्लेख हुआ है। दोनो पुराण वायु-पोक्त कहे गये है। विषय की दृष्टि से ये दोनो पुराण अति प्राचीन कहे जा सकते है वायु और ब्रह्माण्ड की भाति ब्रह्म पुराण और हरिवश पुराण मे भी विषयगत समानता है। इन दोनो पुराणो के भी कई सस्करण उपलब्ध होते हैं। सस्करणो की विभिन्नता के कारण इनके काल का निणय करना बडा कठिन है। अन्त साक्ष्य के आधार पर कहा जा सकता है कि इन दोनो पुराणो की रचना, या कम से कम उपलब्ध सस्करण वायु पुराण से बाद के है। मत्स्य पुराण मे भी वशावलियो का विवरण है जिनका विचार तीन खण्डो मे किया जा सकता है—(१) इक्ष्वाकु शर्याति तथा अन्य मनु के पुत्रो का वणन (२) ऐलो से लेकर ययाति तक का वणन और (३) यादव कौरव आदि ऐल जातियो का विवरण। तीसरी कोटि का विवरण वायु पुराण से मिलता-जुलता है जबकि पहली और दूसरी श्रेणी का वायु पुराण मे कुछ नामो मे भी भेद है और विस्तार मे भी। पद्म पुराण का विवरण मत्स्य पुराण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। विष्णु पुराण मे गद्य का प्राधान्य है। यत्र-तत्र पद्य का समावेश है। इसके विवरण वायु तथा हरिवश पुराण से

मिलते है। पद्म पुराण मे ब्राह्मणत्व का आरोप स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। ऐसा लगता है कि इस पुराण की रचना समग्ररूप मे हुई होगी औह किसी निश्चित योजना के आधार पर इसे लिखा गया होगा। बुद्ध और जैन धम के विवरण इस बात को प्रमाणित करते हैं कि इसकी रचना बहुत बाद की है। गरुड, अग्नि और भागवत पुराणो से प्राय सभी वशावलियो का उल्लेख है। ऐसा लगता है कि इन पुराणो का नये सिरे से सम्पादन हुआ हो। श्रीमद्भागवत की चर्चा हम विस्तार से आगे करेगे। इन पुराणो मे वशवालियो का परिचय बडे सक्षिप्त रूप मे दिया गया है। गरुड और भागवत पुराण मे परम्पराएँ वायु पुराण के समान है और अग्नि पुराण मे मत्स्य पुराण के समान है। ऐतिहासिक दृष्टि से इन तीनो पुराणो का अपना महत्त्व है क्योकि इन पुराणो मे विशेषकर भागवत पुराण—मे वशावलियो के सकेत और सन्दभ सब पुराणो से अधिक है लिङ्ग पुराण का आधार वायु पुराण ही है और कही कही तो दोनो पुराणो के श्लोक भी समान ही है, कही-कही मत्स्य पुराण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होना है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए लिङ्ग पुराण का बडा महत्त्व है। कूर्म पुराण मे वायु ओर मत्स्य दोनो का सम्मिश्रण प्राप्त होता है। ब्राह्मण परम्परा की इसकी कथाओ के पूण समावेश है। इसीलिए देश और काल की सगति इस पुराण मे नही बैठती। शिव पुराण मे मनु और उसकी सन्तान इक्ष्वाकु और शर्याति का विवरण है। आधार हरिवश पुराण है पर न तो हरिवश पुराण के समान विस्तार ही है और न व्यवस्था। माकण्डेय पुराण मे मनु की सन्तान और वैशाल वश का वणन है। सास्कृतिक दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का बडा महत्त्व है।

इन पुराणो मे जिस प्रकार क्षत्रियो की वशावलियाँ दी गई हैं उसी प्रकार कुछ पुराणो मे प्रधान प्रधान ब्राह्मण वशो का विवरण भी दिया हुआ है। ब्रह्माण्ड, वायु और मत्स्य पुराण इस दृष्टि से बडे महत्त्वपूण है। लिग, कूम और माकण्डेय पुराणो मे भी वशावलियो के सकेत हैं। ब्राह्मण वशावलियो का सम्बन्ध अधिकाश मे वैवस्वत मन्वन्तर से है और कुछ का स्वायम्भू मन्वन्तर से। ब्राह्मण वशावलियो मे कल्पना और धार्मिकता का इतना अधिक पुट है कि उनसे ऐतिहासिकता खोजना दुस्तर काय है। पुराणो मे शुद्ध क्षत्रिय और ब्राह्मण वशावलियो के अतिरिक्त क्षत्रोपेत द्विजातियो अथवा क्षत्रिय-ब्राह्मणो की भी वशावलियाँ हैं। क्षत्रिय से ब्राह्मण होने की अनेक कथाएँ पुराणो मे भरी पडी है।

इस प्रकार पुराण साहित्य वशावलियो और परम्पराओ का एक निधि है परन्तु इन सबको सम्बद्ध करके भारतवष का क्रमिक इतिहास प्रस्तुत करना एक महत्त्वपूण काय है। श्री एफ० ई० पार्जीटर ने पहली बार इन सब सूत्रो को सम्बद्ध करने का प्रयास अपनी पुस्तक (Ancient Indian Historical traditions) मे दिया है पर इस प्रयास को महत्त्वपूण समझते हुए भी मै अपूण ही मानता हूँ क्योकि पार्जीटर महोदय ने पुस्तक के प्रारम्भ मे ही अपना दृष्टिकोण एक विशिष्ट प्रकार का बना लिया है। ब्राह्मण परम्पराओ के प्रति वे एक अनास्थाभाव लेकर चले है दूसरे काल-निर्णय मे वे पाश्चात्य विद्वानो के मत से ही अधिक प्रभावित रहे है। तीसरे पुराणो के अतिरिक्त इतिहास सम्बन्धी अन्य भारतीय वाङ्मय की उन्होने उपेक्षा सी की है। फिर भी पार्जीटर महोदय का प्रयत्न विशेषरूप से सराहनीय है।

हम पहले ही कह चुके हे कि प्राय सभी पुराणो के मूल विषय समान ही है केवल उद्देश्य भेद से उनमे भेद हो गया है। पुराणो के जो सस्करण इस समय उपलब्ध हैं उनमे प्राधान्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूय, शक्ति, गणेश आदि देवताओ के कीतन का है पर इतिहास, सभ्यता, सस्कृति और धम की दृष्टि से भी उनका बडा महत्व है। इसमे कोई सन्देह नही कि पुराणो के अनेक सस्करण और सकलन हुए है। जिसके कारण उनके विवरण मे इतना भेद आगया है, और वे अलग-अलग सम्प्रदायो के पुराण बन गए है। वैष्णव पुराणो मे विष्णु के तथा शैव पुराणो मे शकर के इसी प्रकार अन्य पुराणो मे अन्य देवताओ के अवतारो की चर्चा है और उन्ही के माहात्म्यो से पुराण भरे पडे है। यह हम पहले ही कह चुके है कि अवतारो तथा उनके माहात्म्यो के मूल सूत्र वैदिक साहित्य मे मिल जाते है। इसमे कोई सन्देह नही कि पुराणो के अधिकाश उपाख्यान रूपक मे प्रस्तुत हुए है। लगभग प्रत्येक पुराण के अन्त मे शेष सत्तरह पुराणो की नामावली दी गई है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह नामावली वाला अश बहुत बाद मे जोडा गया है। सभी पुराणो मे पञ्चदेवोपासना का प्राधान्य है। (विष्णु, शिव, सूय, गणेश और शक्ति) ब्रह्मा का प्राधान्य उत्तरोत्तर कम होता गया। प्रत्येक पुराण का मूल उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि इन पाच देवताओ मे से एक को प्रधान माना जाय और शेष को गौण। ब्रह्मा की उपासना का स्थान शायद गणेश जी ने लिया। पाँचो देवताओ का काय विभाग भी अलग-अलग बताया गया है। पुराणो की कथाओ मे जो भेद है, उसका कारण कल्पभेद बताया गया है। बँगला विश्वकोष मे सब पुराणो की विषय-सूची दी गई है। पुराणो के कई सस्करण उपलब्ध है। कुछ पुराणो का सक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है।

ब्रह्म पुराण—

इस पुराण की श्लोक सख्या कुछ पुराणो के अनुसार दस हजार और कुछ के अनुसार १३ हजार है। विषय-सूची भी भिन्न-भिन्न रूप से आई है। किसी सस्करण मे किन्ही कथाओ का विस्तार है और किसी सस्करण मे किन्ही का। देवी भागवत के मतानुसार ब्रह्मपुराण पाँचवाँ पुराण है। इस पुराण मे विस्तारपूवक तो श्रीकृष्ण की ही कथा दी गई है, पर कही-कही शिव और राम की कथाएँ भी हैं। इस पुराण के चौथे एव तेतीसवे अध्याय मे ब्रह्मा का उल्लेख विशेष रूप से किया गया हैं। परन्तु समस्त जगत को उत्पत्ति सूय के द्वारा बताकर उसे ही सब देवताओ से अधिक महत्त्व दिया गया है। पहले यह पुराण ब्रह्मा माहात्म्य-सूचक माना जाता था, जिसका प्रमाण स्कन्द पुराण मे मिलता है। परन्तु इसी पुराण के अन्त मे २४५व अध्याय के २०वे श्लोक मे इसे वैष्णव पुराण माना गया है और इस पुराण मे वैष्णव अवतारो की कथा की विशेषता और जगन्नाथ जी के माहात्म्य का कथन भी है, जो इस बात की पुष्टि करता है कि वह वैष्णव पुराण ही है, बगला विश्वकोष के अनुसार ब्रह्म-पुराण के अन्तगत २४५ अध्याय है, जिनमे से प्रमुख अध्याय निम्नलिखित है—

१—मङ्गलाचरण, नेमिषारयवणन, सृष्टिकथनारम्भ।
२—देवादि की उत्पत्ति, दक्ष द्वारा षष्ठि कन्या-सृष्टि इत्यादि।
३—ब्रह्म द्वारा देवगण का अपने-अपने प्रदेश मे अभिषेक और पृथु चरित।
४—मन्वन्तर कथारम्भ, महाप्रलय और अल्पप्रलथ कथन।
५—हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ का विवरण, गगा का भाथीरथी—नाम-करण।

६—भूगोल मे सप्तद्वीप वर्णन ।
७—भारतवर्ष-वर्णन ।
८—पातालादि-सप्तलोक वर्णन ।
९—रौरवादि नरक, स्वर्ग-नरक व्याख्या ।
१०—कृष्ण-द्वैपायन सवाद ।
११—पार्वती स्वयवर कथन, स्वयवर मे देवादि का आगमन, शिव-पार्वती विवाह ।
१२—दक्षयज्ञारम्भ, उमामहेश्वर सवाद, दक्ष यज्ञ भग, शिव को यज्ञ भाग आदि ।
१३—विष्णुकृत सृष्टि वर्णन इत्यादि ।
१४—कृष्ण की स्नान विधि और स्नान माहात्म्य ।
१५—विष्णुलोक वर्णन ।
१६—रावण द्वारा कुबेर पराभव और कुबेर द्वारा शिव स्तुति ।
१७—पुरुरवा उर्वशी सवाद, सरस्वती को ब्रह्मा का शाप और स्त्री-स्वभाव-वर्णन ।
१८—कृष्ण चरितारम्भ तथा कृष्ण सम्बन्धित अनेक कथाएँ ।
१९—वाराहावतार, नृसिंहावतार, वामनावतार, दत्तात्रेयावतार, जामदग्न्यावतार दाशरथि-रामावतार, श्रीकृष्णावतार और कल्कि अवतार वर्णन ।
२०—महाप्रलय वर्णन और कलिगत भविष्य-कथन ।

केवल श्रीकृष्ण से सम्बन्धित कथाएँ ही इस पुराण के लगभग पैंतीस अध्यायो मे फैली हुई है । बँगला विश्वकोष की सूची से बम्बई मे छपे सस्कृत ब्रह्मपुराण की विषय सूची कुछ भिन्न है ।

पद्म पुराण—

पद्म पुराण के वर्तमान रूप मे पाँच खड है—(१) सृष्टि खड, (२) भूमि खड, (३) स्वर्ग खड (४) पाताल खड और (५) उत्तर खड । सृष्टि खड मे ८२, भूमिखड मे १२५ स्वर्ग खड मे ३९, पाताल खड मे ११३ तथा उत्तरखड मे २८२ अध्याय है । पाताल खड मे श्रीकृष्ण चरित दिया गया है, तथा उत्तर खड मे अवतारो के वर्णन, अनेक माहात्म्य और फिर कृष्ण चरित दिया हुआ है । इसी खड के तीसरे अध्याय से उन्नीसवे अध्याय तक जालन्धर का उपाख्यान है, जिसे खड मे ९८वे अध्याय से १०६ अध्याय तक पुन ज्यो का त्यो दुहराया गया है ।

पद्म पुराण मे प्राय ५५००० श्लोक है, पर ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पद्म पुराण के श्लोको की सख्या ५९००० है । विष्णु पुराण की सूची के अनुसार इस पुराण का सब पुराणो मे दूसरा स्थान है । इस पुराण मे सृष्टि की उत्पत्ति हिरण्मय पद्म से बतलाई गई है । इस लिए इस पुराण को बुधजनपाद्म भी कहा जाता है । ससार की उत्पत्ति हिरण्मय पद्म से हुई हैं, इसकी पुष्टि सृष्टि खड के ३९वें अध्याय से भी होती है, जिसमे हिरण्मय पद्म की कथा है, तथा ससार की उत्पत्ति का सविस्तार उल्लेख है । सृष्टि खड के प्रथम अध्याय के ५४ से ६०वे श्लोक तक जो वर्णन है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासदेव ने पद्मपुराण के इन ५५००० श्लोको को पाँच पर्वो मे विभक्त किया था ।

(१) पौष्कर पव (२) तीथ पव (३) प्रभूत दानकारी राजगण विवरण (४) वैशानुचरित तथा (५) मोक्षतत्व और सवज्ञ का निरूपण। प्रथम पव मे नौ प्रकार से सृष्टि का वणन किया गया है एव पितृगण, देवता, मुनियो आदि की कथा है। द्वितीय पव मे सप्तद्वीप, सप्तसागर, पवतो आदि का उल्लेख है। तृतीय पव मे रुद्रसग और दक्ष शाप आदि का वणन है। चतुथ सग मे वशानुकीतन एव राजगण की उत्पत्ति है एव पचम एव अन्तिम पव के अन्तगत मोक्षशास्त्र का परिचय आता है। इन पर्वों का समथन नारद पुराण से भी होता है। इस समस्त पुराण मे वैष्णव सप्रदायो की विशेषताये भी मिलती हैं। पद्म पुराण के मुख्य रूप से दो सस्करण प्राप्त होते है। (१) गौडीय सस्करण एव (२) दाक्षिणात्य सस्करण। इन दोनो सस्करणो के विषय क्रम मे अन्तर है तथा अध्याय सख्या मे भी अन्तर है। पद्म पुराण मे वैष्णव-सम्प्रदाय की विशेष-विशेष बाते मायावाद निंदा, तामस-पुराण वणन, पखडी लक्षण, ऊध्व-पुण्डादि वैष्णव चिह्न धारण आदि भी दी गई हैं। पद्म पुराण मे शैव, पाशुपति, बौद्ध, जैन, एव प्रच्छन्न बौद्ध शास्त्रो को तामस बताया गया है। इन मतो की निन्दा भी की गई है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवत, माकण्डेय, भविष्य, वामन, और ब्राह्म इन छै पुराणो को राजस घोषित किया गया है। तथा वैष्णव, नारदीय, भागवत, गरुण, पाद्म और वाराह ये छै पुराण सात्विक बताये गये हैं इस भाँति अठारहो पुराणो का पद्म पुराण मे तामस, सात्विक और राजस रूप से विभाजन कर दिया गया है। पद्म पुराण के अन्तगत लगभग ६८ और छोटे छोटे ग्रन्थ भी आ जाते हैं, जिनकी कथाये उसी से सम्बन्धित है।

विष्णु-पुराण—

विष्णु पुराण मे छै अश है। प्रथमाँश मे २२, द्वितीयाश मे १६, तृतीयाँश मे १८, चतुर्थांश मे २४, पचमाश मे ३८ तथा छठे अश मे ८ अध्याय है। इन छै अशो के पश्चात् विष्णुधर्मोत्तर खड है। चौथे अश के १५ वे अध्याय से श्री कृष्ण के जन्म का तथा पचमाश मे उनकी लीलाओ का वर्णन है। चतुथ अश के शेष भाग मे विभिन्न वशावलियो का उल्लेख है। कुछ वशावलियाँ प्रथम अश मे भी है।

प्राय सभी पुराण इस बात मे एक मत है कि पुराणो मे विष्णु पुराण का तृतीय स्थान है। देवी-भागवत पुराण ही एक ऐसा पुराण है, जिसने विष्णु पुराण को दसवाँ स्थान दिया है। विष्णु पुराण के अन्तगत अनेक छोटी-छोटी पोथिया है, जिनमे निम्नलिखित मुख्य हे—कन्या कृष्ण माहात्म्य, कलिस्वरूपाख्यान, कृष्ण ज माष्टमी-व्रतकथा। जड-भरताख्यान, देवी-स्तुति, महादेव स्तोत्र, विष्णु-पूजन, सूय-स्तोत्र, लक्ष्मी-स्तोत्र आदि। विष्णु पुराण के श्लोको की सख्या २३००० मानी जाती हे। वतमान रूप मे जो विष्णु पुराण मिलता है, उसके श्लोको की सख्या ब्रह्मोत्तर खड के मिला देने पर भी, केवल १६००० ही होती है। इसके अन्तगत (जो विष्णु पुराण से ली गई मालूम होती है) जो पोथियाँ आती हैं, उनके विषय मे ऐसा विश्वास किया जाता है कि इनमे विष्णु पुराण के खोये हुए ७००० श्लोक ही है। कुछ लोग इन्हे आधुनिक भी बताते है।

शिव-पुराण—

शिवपुराण सात सहिताओ मे विभाजित है।

(१) विद्येश्वर सहिता, जिसमे २५ अध्याय है।

(२) रुद्र सहिता जिसमे सृष्टि खड, सती खड, पावती खड, कुमार खड, युद्ध खड ये पाँच खड हैं, एव १८७ अध्याय हे।

(३) शतरुद्र सहिता। इसमे ४२ अध्याय है।

(४) कोटिरुद्र सहिता, जिसमे ४३ अध्याय है।

(५) उमा सहिता, जिसके अन्तगत ५१ अध्याय है।

(६) कैलास सहिता, जिसमे २३ अध्याय है। तथा

(७) वायवीय सहिता, जिसमे पूव और उत्तर दो खड है एव ७६ अध्याय है।

शिव पुराण मे शिव के उपाख्यानो का ही आधिक्य है। केवल रुद्र सहिता के ५४वें अध्याय, शतरुद्र-सहिता के २९, ३७ और ४१वे अध्याय मे तथा उमा सहिता के प्रथम तीन अध्यायो मे साधारण रूप से कृष्ण का उल्लेख है, जो प्राय शिव भक्ति के प्रसग मे ही आ गया है। वायवी सहिता मे भी पुत्र प्राप्ति की कामना से शिव के पास श्रीकृष्ण के जाने का उल्लेख है।

इस शिव पुराण मे २४००० श्लोक है। परतु प० रामनाथ शैव ग्रन्थ विशारद ने सन्देह-भेदिका मे शैव महापुराण के दो ग्रथो का उल्लेख किया है।

एक शिव पुराण मे एक लाख श्लोक हैं, तथा उसमे विद्येश्वर, रौद्र, वैनायक, औम, मातृपुराण, एकादश रुद्र, कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्रकोटिरुद्र, वायवीय एव धम ये बारह सहिताएँ हैं। कहा जाता है कि ये एक लाख श्लोक भगवान शकर द्वारा रचित है। प० रामनाथ शैव ने अपनी इसी भूमिका के अत मे लिखा है कि इसी एक लक्ष श्लोक वाले शिव पुराण का सक्षिप्तीकरण व्यास जी ने २४००० श्लोको के रूप मे किया। कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि शिव पुराण और वायु पुराण एक ही पुराण के नाम है, पर उनका ऐसा सोचना गलत है। दोनो पुराण भिन्न हैं। उनकी श्लोक सख्या, विषय क्रम आदि सब भिन्न हैं। भगवान् शकर के चरित तथा उनसे सम्बन्धित कथाओ से ही शिव पुराण आच्छादित है।

श्रीमद्भागवत-महापुराण—

इस पुराण का विस्तार से विश्लेषण आगे के अध्यायो मे हुआ है।

वायु-पुराण—

कुछ लोग शिव पुराण और वायु पुराण को एक ही समझते है। बहुधा वायु पुराण का नाम विकल्प की तरह आता है। बगला विश्वकोष मे ऐसा ही लिखा है। पर शिव पुराण के अन्तर्गत हम बता आये है कि दोनो पुराण नितान्त भिन्न है। वायु पुराण मे ११२ अध्याय है, तथा १०९५१ श्लोक है। इस पुराण मे देश-देशान्तर एव अनेक द्वीपो का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त राजवशो का वणन भी है। इस पुराण के अन्तिम आठ अध्यायो मे गया का माहात्म्य वर्णित है। सग, प्रतिसग, वश और मन्वन्तर आदि का उल्लेख भी वायु पुराण मे कही-कही कर दिया गया है।

अग्नि-पुराण—

इस पुराण की अध्याय सख्या ३८३ है। इसकी विषय सूची नारदीय पुराण मे दी हुई है। यह पुराण इस कारण विशेष महत्त्वपूण है कि इसमे प्राय सभी विषयो पर लिखा

गया है। धनुर्वेद, गान्धववेद, आयुर्वेद, अथशास्त्र, वेदान्त तथा अठारह विद्याओ का इसमे वरणन किया गया है। रामायरण, महाभारत, हरिवश आदि का भी सार है। दर्शनो के विषयो को भी पुराणकार ने नही छोडा है। पुराण के अन्त मे काव्याङ्ग वरणन भी बडा अच्छा किया गया है।

कौमार व्याकरण के नाम से एक छोटा सा व्याकरण, एकाक्षर कोष तथा लिगानुशासन भी अग्नि पुराण मे दिया हुआ है। हिन्दू साहित्य, सस्कृति और सभ्यता के दृष्टिकोण से अग्नि पुराण का महत्त्व बहुत अधिक है। इससे प्राचीन सस्कृति, साहित्य और सभ्यता आदि का ज्ञान बडी सरलतापूवक प्राप्त किया जा सकता है। यदि इसे हिन्दू-सस्कृत का विश्वकोष कहे तो कुछ अत्युक्ति न होगी। इस पुराण के बारहवें अध्याय मे श्रीकृष्ण के अवतार की कथा दी गई है। इसकी श्लोक सख्या पन्द्रह हजार से कुछ अधिक ही है।

नारदीय-महापुराण—

इस पुराण मे दो खड है। पूर्व खड और उत्तर खड। पूर्व खड मे १२५ और उत्तर खड मे ८२ अध्याय हैं। इस भाति समस्त पुराण मे २०७ अध्याय हैं। इस पुराण की विशेषता है कि इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त मे श्लोको की सख्या दी हुई है। नारद पुराण के अनुसार इस पुराण मे २५००० श्लोक होने चाहिये। परन्तु अध्यायो के अन्त मे दिये गये श्लोको की सख्या को जोडने पर १८११० श्लोक ही आते है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण का कुछ अश (लगभग ७००० श्लोक) तो अवश्य ही लुप्त हो गये है। कार्तिक-माहात्म्य, दत्तात्रेय स्तोत्र, पार्थिवलिंग-माहात्म्य, यादवगिरि-माहात्म्य, श्रीकृष्ण माहात्म्य, सकट-गणपति-स्तोत्र, मृग व्याध कथा इत्यादि अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ नारद पुराण के ही अग प्रतीत होते हैं। बृहन्नारदीय-पुराण तथा लघुबृहन्नारदीय पुराण के नाम से भी दो ग्रन्थ छपे हैं।

नारदीय महापुराण वैष्णव पुराण है। इसमे प्राय सभी पुराणो की सक्षिप्त विषय सूची श्लोक रूप मे दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि इस पुराण का यह अश तो कम से कम अवश्य ही पुराणो के बाद का है।

ब्रह्म-वैवर्त-महापुराण—

यह पुराण भी वैष्णव पुराण है। इसके अर्धभाग मे तीन खड हैं।

१—ब्रह्म खड जिसमे ३० अध्याय है।

२—प्रकृति खड जिसमे ६७ अध्याय है तथा

३—गणपति खड, जिसमे ४६ अध्याय है।

इस पुराण के शेष अधभाग मे श्रीकृष्ण जन्म खड का पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध है। इन दोनो मे क्रमश ५४ और ७९ अध्याय है। इसमे भी प्रत्येक अध्याय के अन्त मे श्लोक सख्या दे दी गई है। इस पुराण के भी दो सस्करण मिलते है। गौडीय एव दाक्षिणात्य। कुछ पुराणो मे इसे सौर पुराण भी कहा गया है, किन्तु विषय की दृष्टि से यह पूणत वैष्णव पुराण ही ज्ञात होता है। स्कन्द पुराण के अनुसार यह पुराण सूय भगवान की महत्ता का प्रतिपादन करता है। मत्स्य पुराण, यह ब्रह्मा की मुख्यता की ओर इशारा करता है। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है स्वय ब्रह्म-वैवर्त-पुराण मे विष्णु को ही महत्ता प्रतिपादित है। शिव पुराण, श्रीमद्भागवत आदि पुराणो मे इसकी श्लोक सख्या १८ हजार लिखी है।

कृष्ण स्तोत्र, गगा स्तोत्र, अलकार दानविधि, अहिशकुहि-माहात्म्य, आदि रत्नेश्वर-माहात्म्य, एकादशी माहात्म्य, गणेश कवच, परशुराम प्रति शकरोपदेश, मुक्तिक्षेत्र माहात्म्य, राधा-उद्धव सवाद, श्री गोष्ठी माहात्म्य, काशी-केदार-माहात्म्य आदि छोटे-छोटे ग्रन्थ भी ब्रह्म-वैवत पुराण के ही अन्तगत आते है ।

मत्स्य, शिव और नारदीय पुराणो मे इस पुराण के विषयो का जो क्रम दिया गया है, वह इसके क्रम से मेल नही खाता । ऐसा ज्ञान होता है कि उत्तरोत्तर परिवर्तन और परिवधन के कारण इस पुराण का स्वरूप परिवर्तित हो गया है । इसके ब्रह्म खड मे श्रीकृष्ण को परमात्मा और समस्त जगत का कारण माना है । कृष्ण जन्म खड मे श्रीकृष्ण से सम्बन्धित लीलाओ का उल्लेख किया गया है ।

स्कन्द-पुराण—

स्क द पुराण, पुराणो मे सबसे बडा है । इसमे इक्यासी हजार एक सौ श्लोक बताये जाते हैं । इसकी अनुक्रमणिका 'नारदीय पुराण' मे मिलती है । प्राचीन भारतवष का इसमे बडा सु दर वणन मिलता है जो इसे भौगोलिक दृष्टि से भी महत्वपूण प्रमाणित करता है । असख्य तीर्थों का वणन भी इसमे दिया गया है । स्कन्द पुराण, नारदादि पुराणो के अनुसार 'शैव पुराण' है । परन्तु इसके अनुशीलन से ऐसा ज्ञात होता है कि इसमे अन्यान्य सम्प्रदाय वालो का भी योग है । इस पुराण मे अनेक माहात्म्य दिये हुए हैं । इस पुराण का प्रचार दक्षिण मे बहुत अधिक है । उत्तर भारत मे श्री सत्यनारायण व्रत कथा का बडा माहात्म्य है । प्रत्येक पोथी के अन्त मे 'इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे' आदि दिया हुआ है । स्कन्दपुराण के इतने विशालकाय होने से यह अनुमान होता है कि सत्यनारायण व्रत कथा माहात्म्य की भाति सहस्रो अन्य माहात्म्य आदि की पुस्तकें जो स्कन्द पुराण से ही उद्धृत मानी जाती है, वास्तविक स्क दपुराण भी हो सकती है । विश्व कोशकार ने इस प्रकार की साठ-सत्तर पुस्तको का नाम दिया है । भारत के दक्षिणी भाग के समस्त मन्दिरो तथा तीर्थों के माहात्म्य स्कन्दपुराण के ही अन्तगत समझे जाते है । स्कन्द भगवान को सुब्रह्मण्य नाम से दक्षिण के प्राय सभी प्रदेशो मे पूजा जाता है । वहाँ सत्यनारायण के मन्दिर भी है ।

वराह-पुराण—

इस वराह पुराण मे अध्यायो की सख्या २१८ हैं । उसके अनुसार श्लोक सख्या भी २४००० होती है । पर श्लोक लगभग १०००० ही मिलते है । नारदादि कई पुराणो मे लिखा है कि वराह पुराण मे मनुष्य-कल्प की कथा वर्णित है ।

चातुर्मास्य माहात्म्य, त्र्यम्बक-माहात्म्य, भगवद्गीता माहात्म्य, विमान-माहात्म्य, वेकट-गिरि माहात्म्य आदि छोटी छोटी अनेक पोथियाँ वराह पुराण की ही अग है ।

मार्कण्डेय-पुराण—

आज जिस रूप मे मार्कण्डेय पुराण प्राप्त है, वह निर्विवाद रूप से मौलिक ही समझा जाता है । इसकी अध्याय सख्या १३४ है । तथा श्लोक सख्या ९००० है । परन्तु उपलब्ध प्रतियो मे केवल ६९०० श्लोक ही मिलते है । नारदीय पुराण मे इसकी जो विषय-सूची दी हुई है, उसके अनुसार ३१ वे अध्याय के अनन्तर इक्ष्वाकु-चरित, तुलसी चरित,

रामकथा, कुश-वश, सोमवश, पुरुरवा, नहुष और ययाति का वर्णन, यदुवश, श्रीकृष्ण की लीलाएँ, द्वारिका चरित, सारव्या कथा, प्रपञ्चसत्व और मार्कण्डेय चरित भी दिया गया है। इस पुराण की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह साप्रदायिक प्रभावो से मुक्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध लोग भी इस पुराण का आदर करते थे। मार्कण्डेय पुराण का प्रमुख अश 'दुर्गा सप्तशती' है, जो हिन्दू-मात्र के घर मे बडी पवित्र मानी जाती है। प्रत्येक घर मे नवरात्रियो मे इसका पाठ होता है। पुराण के अठहत्तरवे अध्याय से नब्बे वे अध्याय तक इसका अश है। मार्कण्डेय पुराण का केवल 'दुर्गा सप्तशती' वाला अश ही अलग से प्रकाशित हुआ है।

वामन-पुराण—

इसमे ९५ अध्याय एव दस सहस्र श्लोक है। नारद पुराण की विषय सूची से मिलता जुलता ही यह पुराण है। मत्स्य पुराण मे लिखा है कि जिस पुराण मे चतुर्मुख ब्रह्मा ने त्रिविक्रम वामन के कथा प्रसग मे त्रिवग विषयक कथन किया हे, और फिर शिवकल्प का वर्णन किया गया है वह दस सहस्त्र श्लोको वाला वामन पुराण है। वामन पुराण मे विशेषत दुर्गा, पार्वती और शिव के उपाख्यान है। नारद और पुलस्त्य के सवाद ही इसमे मिलते हैं। कक चतुर्थी-कथा, कापज्ज्वली-व्रत-कथा, गगा मानसिक स्नान, गगामाहात्म्य-दधि-वामन स्तोत्र, वराह माहात्म्य आदि कई छोटे छोटे ग्रथ वामन पुराण के अन्तर्गत ही आते है।

कूर्म-पुराण—

कूर्म पुराण पूर्वार्द्ध और उत्तराध दो भागो मे विभाजित है। प्रथम भाग मे ५३ तथा उत्तरार्ध मे ४६ अध्याय है। इसकी श्लोक सख्या सत्तरह हजार बताई जाती है, परन्तु वर्तमान कूर्म पुराण मे केवल ६ हजार श्लोक ही प्राप्त है। ऐसा भी प्रतीत होता है कि कूर्म पुराण के कुछ अश तत्र-ग्रन्थो मे मिला दिये गये हैं। इस पुराण मे यदुवश का वर्णन, श्रीकृष्ण द्वारा शिवजी की आराधना और श्रीकृष्ण के पुत्रो की कथा हैं।

मत्स्य-पुराण—

मत्स्य पुराण की अध्याय सख्या २९० है। अन्तिम अध्याय मे सम्पूर्ण मत्स्यपुराण की कथा आदि विषयो की क्रम-बद्ध सूची मात्र है। केवल इसी अध्याय के देख लेने से यह ज्ञात हो जाता है कि मत्स्य पुराण मे क्या लिखा है। नारदीय पुराण के अनुसार मत्स्य पुराण के श्लोको की सख्या पन्द्रह हजार है, पर रेवा माहात्म्य, श्रीमद्भागवत आदि के अनुसार इसके श्लोको की सख्या १४००० ही है। इस पुराण मे मनुजी और मत्स्य जी के उपाख्यान है, देवताओ एव देवमन्दिरो की पूजा, अर्घपाद्य आदि विविध प्रकार की दान विधियाँ एव वशावलियाँ आदि है। मत्स्यपुराण को प्राय प्राचीन एव मौलिक माना जाता है।

गरुड-पुराण—

गरुड पुराण भी एक लोकप्रिय पुराण है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर इसका पाठ किया जाता है, तथा इसका सुनना श्राद्ध कर्म का ही एक अग माना जाता है। मत्स्य पुराण के अनुसार गरुड पुराण के श्लोको की सख्या अठारह हजार है पर श्रीमद्भागवत,

रेवा माहात्म्य आदि के अनुसार यह सख्या उन्नीस हजार है। इस पुराण मे प्रेत-कम, प्रेत-योनि, प्रेत-श्राद्ध, यम-यातना, नरक आदि का उल्लेख विशेष रूप से है। १४४ वे अध्याय मे श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओ का भी उल्लेख है। गरुड-पुराण के आचार काड मे श्रीकृष्ण की रुक्मिणी, सत्य भामा आदि आठ पत्नियो तथा गोपियो का नाम तो है, पर राधा का नाम कही भी नही है। यह बडे आश्चय की बात है। ब्रह्म काड के अन्तर्गत हव्यवाह की कन्या नीला, भद्रा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, जाम्बवती, सोमपुत्री आदि की तपस्याओ का उल्लेख भी है।

त्रिवेणी-स्तोत्र, पचपर्व माहात्म्य, विष्णुधर्मोत्तर, वैंकटगिरि माहात्म्य, सुन्दरपुर माहात्म्य आदि अनेक छोटे छोटे ग्रन्थ गरुण पुराण के ही अङ्ग बताये जाते है।

ब्रह्माण्ड-पुराण—

इस पुराण मे १०९ अध्याय है तथा लगभग बारह हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्ड पुराण मे ही ललितोपाख्यान है। विश्वकोष मे लिखा हुआ है, कि ब्रह्माण्ड पुराण मे से रामायणी कथा, जिसके कारण कि इसका महत्व है, 'अध्यात्म रामायण' के नाम से अलग कर ली गई है। वैसे तो राम की कथा अन्य पुराणो मे भी है, पर अध्यात्म रामायण मे राम कथा का अधिक विस्तार है। बीसवे अध्याय मे श्री कृष्ण के आविर्भाव एव उनसे सम्बन्धित कथाओ का समावेश है। नारदीय पुराण की सूची मे रामायण की चर्चा नही है। इससे यह अनुमान होता है कि परशुराम की कथा के बाद ही राम की कथा रही होगी, जिसे रामायण के रूप मे अलग कर लिया गया होगा।

ब्रह्माण्ड पुराण के अन्तगत अग्नीश्वर, अञ्जनाद्रि, अनन्तशयन, अर्जुनपुर, अष्ट-नेत्र स्थान, आदिपुर, आननिलय, कठोरगिरि, कालहस्ती, कामाक्षी विलास, कार्तिक, कावेरी, कुम्भकोण, गोदावरी, गोपुरी, क्षीरसागर, गोमुखी, चम्पकारण्य, ज्ञानमण्डप, नन्दगिरि, लक्ष्मी-पूजा, नरसिंह, शिवगगा, कन्ची, श्रीरग, गणेशकवच, हनुमत कवच आदि छोटे-छोटे ग्रन्थ भी आते है।

देवी-भागवत-पुराण—

देवी भागवत पुराण मे भागवत के समान ही बारह स्कन्ध तथा १८००० श्लोक हैं। श्री मद्भागवत और देवी भागवत के विषय मे इस बात का मतभेद है कि दोनो मे से महापुराण कौन सा है? अन्य महापुराणो मे जहाँ कही भी चर्चा आयी है, वहाँ केवल 'भागवत' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। श्री मद्भागवत के जितने भी सस्करण है उनमे से किसी मे भी सम्पादको ने उसे महापुराण सिद्ध करने का प्रयत्न नही किया है, पर देवी भागवत पुराण के प्रत्येक सस्करण मे उसे महापुराण प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है। कुछ भी हो, विषय के महत्व की दृष्टि से प्राय दोनो ही बराबर प्रतीत होते है। श्रीमद्भागवत मे विष्णु भक्ति का उत्कष है, तथा देवीभागवत पुराण मे परमात्मा की पराशक्ति का उत्कर्ष है। कुछ पुराणो के प्रमाणो से तो देवीभागवत पुराण उपपुराण ही ठहरता है। पर शाक्त ग्रन्थो तथा तन्त्र ग्रन्थो से देवीभागवत ही महापुराण सिद्ध होता है। इस पुराण के चतुर्थ स्कन्ध मे भी श्रीकृष्ण की कथा आई है।

लिङ्ग पुराण—

लिंग पुराण को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध मे १०८ अध्याय एव उत्तरार्द्ध मे ५५ अध्याय है। रेवामाहात्म्य, श्री मद्भागवत, नारदीय पुराण, मत्स्य पुराण आदि के मतानुसार लिंगपुराण ग्यारहवा पुराण है। इसमे ग्यारह हजार श्लोक है। मत्स्यपुराण और नारद पुराण के अनुसार लिंग पुराण मे अग्निकल्प की कथाएँ होनी चाहिये। परन्तु प्राय लिंगपुराण मे ईशान कल्प की कथाएँ है।

अरुणाचलमाहात्म्य, गौरी कल्याण, पञ्चाक्षरमाहात्म्य, रामसहस्रनाम, रुद्राक्ष-माहात्म्य, सरस्वती स्तोत्र आदि अनेक छोटे-छोटे ग्रन्थ लिंग पुराण के ही अग माने जाते है।

भविष्य-पुराण—

भविष्य पुराण भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागो मे विभाजित है। पूर्वार्द्ध मे १४१ और उत्तरार्द्ध मे १७१ अध्याय हैं। यह पुराण भी महत्वपूर्ण पुराणो मे से एक है। 'विश्व-कोष में चार भविष्य पुराणो का उल्लेख आया है। प्रथम मे १३३ दूसरे मे २८७ (तीसरे की अध्याय सख्या अप्राप्य) तथा चौथे मे १९९ अध्याय हैं। नवलकिशोर प्रेस लखनऊ से मुद्रित 'भविष्य पुराण' मे पहले और चौथे भविष्य पुराणो का सग्रह ही पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध रूप मे है। नारद पुराण मे जो सूची दी गई है उस सूची से चारो मे से एक भी भविष्य पुराण पूर्ण रूप से नही मिलता।

भविष्य पुराण की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे शाक द्वीपी मग-ब्राह्मणो का वर्णन है। इसमे उनकी सस्कृति और सभ्यता का विस्तार से वर्णन किया गया है। इनको लाने वाले कृष्ण पुत्र साम्ब कहे जाते हैं। वर्णन से ज्ञात होता है कि जरथुस्त्र के पूर्व या उन्ही के समकालीन सूर्योपासक आर्य जातियाँ भारतवर्ष से पश्चिम प्रदेशो मे रहती थी। इन मग-ब्राह्मणो का रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि पारसियो से मिलते जुलते है। आज भी फारसी साहित्य मे मगो के आचार्यो का नाम "पीरे-मुगाँ" सैकडो स्थानो पर पाया जाता है। यह सब वर्णन बडा महत्वपूर्ण है, अत ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह पुराण बडे महत्व का हुआ। तीसरे भविष्य पुराण मे 'उद्भिज्ज विद्या' का उल्लेख है। जो आधुनिक वैज्ञानिको के लिए बडा महत्वपूर्ण और ज्ञातव्य विषय है। इस पुराण मे अनेक माहात्म्य और अनेक प्रकार के दान आदि का विधान है।

हरिवंश-पुराण—

हरिवशपुराण महाभारत का परिशिष्ट माना जाता है। कुछ आलोचक इसे महाभारत के बाद की रचना मानते है। हरिवश पुराण विभिन्न पर्वो मे विभाजित है। पूर्वार्द्ध मे हरिवश पर्व जिसमे पचपन अध्याय है तथा विष्णुपर्व जिसकी अध्याय सख्या ८१ है। उत्तरार्द्ध मे १२८ अध्याय एव इसी के अन्तर्गत भविष्य पर्व मे १३५ अध्याय है। हरिवश पुराण मे विस्तार पूर्वक विष्णु भगवान का चरित, श्री कृष्ण की कथा तथा ब्रज आदि मे की गई उनकी विभिन्न क्रीडाओ का मनमोहक वर्णन है। विष्णु सम्बन्धी कथाओ का भी बडे विस्तार से उल्लेख किया गया है। हरिवश पर्व मे मन्वन्तरो का वर्णन, मनु का वर्णन, वाराह उत्पत्ति की कथा, एव दैत्यो और देवताओ के युद्ध आदि का उल्लेख है। इसी पर्व के ३४ वे अध्याय मे वृष्णि-वश वर्णन है, और ३५ वे अध्याय मे श्री कृष्ण जन्म वर्णन है। विष्णु

पव मे श्रीकृष्ण से सम्बंधित कथाये है, एव भविष्य पव मे दैत्यो और देवताओ का युद्ध समुद्र मन्थन, विष्णु सम्बन्धी कथाये एव कुछ अवतारो आदि का वणन है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हरिवश पुराण की गणना उप-पुराणो मे ही है।

जैन और बौद्ध पुराण—

जैन और बौद्धो की सख्या भारत मे जिस अनुपात से है, उसी अनुपात से उनके ग्रन्थो की भी उपलब्धि होती है। वास्तव मे साहित्य तो इनका विशाल है, पर उसका प्रचार कम है। जन और बौद्धो के पुराण भी मिलते है। जैनो के पुराण पचलक्षण नही होते, अपितु वे तो प्राचीन कथाओ को ही पुराण कहते है। जैनो के चौबीस महात्मा तीथकर कहे जाते है। दिगम्वर जैनियो ने इन्ही चौबीस तीथकरो की कथा के प्रसग मे चौवीस महापुराण रचे है।

(१) आदि पुराण—इसमे प्रथम तीथकर ऋषभदेव की कथाये है। (२) अजितनाथ पुराण (३) सम्भवनाथ पुराण (४) अभिनन्दी पुराण (५) सुमतिनाथ पुराण, (६) पद्म प्रभ पुराण (७) सुपाश्व पुराण (८) चन्द्र-प्रभ पुराण (९) पुष्पदन्त पुराण (१०) शीतलनाथ पुराण (११) श्रेपाँश पुराण (१२) वासुपूज्यका पुराण (१३) विमलनाथ पुराण (१४) अनन्तजित पुराण (१५) धमनाथ पुराण (१६) शान्तिनाथ पुराण (१७) कुण्डनाथका पुराण (१८) अरनाथ पुराण (१९) मल्लिनाथ पुराण (२०) मुनिसुव्रत पुराण (२१) नेमिनाथ पुराण (२२) नेमिनाथका पुराण (२३) पाश्वनाथका पुराण (२४) सम्मति पुराण।

रविषेण का पद्म पुराण, जिनसेन का आरिष्टनेमि पुराण, जिसे हरिवश भी कहा जाता है, और आदि पुराण तथा गुणभद्र का उत्तर पुराण, प्रधानत इही चारो प्रमुख पुराणो का पाठ करने से दिगम्बर जैनियो का पौराणिक महत्त्व जाना जा सकता है। इन्ही चारो पुराणो का आधार लेकर पीछे के जैन कवियो ने नाना पुराणो की रचना की। विश्वकोष से ज्ञात होता है कि दक्षिण के जैन समाज मे प्राचीन कर्णाटकी भाषा मे भी अनेक पुराण मिलते है। जैनियो के इन पुराणो मे विशेषत तीर्थंकरो का ही वणन है।

बौद्ध-पुराण—

जैन पुराणो की भाति बौद्ध पुराण भी है, पर उनकी सख्या कम ही है। नैपाली बोद्धो मे स्वतन्त्र बौद्ध पुराणो का प्रचार है, पर प्राचीन बौद्ध ग्रथो मे पुराणो का कोई उल्लेख नही मिलता। आज के नैपाली बौद्ध नौ पुराण मानते है, जिन्हे 'नवधम' भी कहा जाता है। पुराण निम्नलिखित है—

१—प्रज्ञापारमिता पुराण—इसमे आठ हजार श्लोक है।

२—गण्डव्यूह पुराण—इसकी श्लोक सख्या बारह सौ है और इसमे सुधनकुमार का चरित वर्णित हैं।

३—समाधिराज पुराण—इसमे तीन हजार श्लोक है तथा जप द्वारा समाधि की विधि व्यवस्था वर्णित हैं।

४—लकावतार पुराण—इसमे भी तीन हजार श्लोक है।

५—तथागत-गुह्यक पुराण।

६—सद्धम पुण्डरीक पुराण।

७—बुद्ध वा ललितविस्तर पुराण—इसकी श्लोक सख्या सात हजार है। इसमे बुद्ध भगवान का चरित विस्तार पूवक वर्णित है।

८—सुवर्णप्रभा पुराण—इसमे सरस्वती एव पृथ्वी की कथा है, तथा इनके द्वारा बुद्ध की पूजा का उल्लेख है।

९—दशभूमीश्वर पुराण—इसके श्लोको की सख्या दो हजार है। इसमें दस भूमियो का विस्तार से वर्णन है।

इन नौ पुराणो के अतिरिक्त बृहत और मध्यम नाम से दो स्यम्भु पुराण भी है। इन पुराणो मे नैपाल के इन प्रसिद्ध तीर्थो, स्वयभुव क्षेत्र तथा स्वयभुव चैत्य का वर्णन है।

इस भाँति जैन और बौद्धो के पुराण मिलते तो है पर न तो उनकी सख्या ही अधिक है, और न ही वे सब विषयो से सम्बन्धित ही है।

जसा कि पहले कहा जा चुका है पुराणो का दृष्टिकोण उत्तरोत्तर बदलता गया और धम विश्लेषण तथा अवतार चर्चा उनका प्रधान विषय बन गया। पुराणो मे महाभारत के अनन्तर भागवत धम की विशिष्ट प्रतिष्ठा हुई तथा सस्कृत वाड्मय मे श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना से यह प्रतिष्ठा पूर्णता को पहुची। भागवत धम का मूल अहिंसा का भाव है और इसके अधिष्ठातृ देवता विष्णु भगवान् है। भागवत धम के तत्व और विष्णु भक्ति की भावना हमे वेदो से ही मिलने लगती है। भगवान् का विष्णु रूप वैदिक साहित्य मे पूर्णरूप से प्रतिष्ठित है उदाहरण के लिए निम्नलिखित मत्रो को देखिए—

य आपिर्नित्य वरुण प्रिय सन्
त्वामागासि कृणवत् सखा ते।
मा त एनस्व तो यक्षिन भुजेम्
यन्धिष्मा विप्र स्तुवते वरूथम्॥ ऋ० स० ७।८८।६

तमु स्तोतार पूर्व्यं यथाविद
ऋतस्य गर्भ जनुषा पिपतन।
आस्य जानन्तो नाम चिद् विविक्तन
महस्ते विष्णो सुमर्ति भजा महे॥ ऋ० स० १।१५६।३

ऋग्वेद मे विष्णु को सोर देवता माना गया हे। निरुक्ति मे विष्णु शब्द की व्युत्पत्ति सूयपरक ही की गई है।

अथ यद् विषितो भवति तद् विष्णुभवति। विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा—

यास्क निरुक्ति १२।१६

यदा रश्मिभिरति शयेनाय व्याप्तो भवति, व्याप्नोति वा रश्मिभिरय सवम्, तदा विष्णुरादित्यो भवति। दुर्गाचाय २।३

विष्णु के पराक्रम का वर्णन ऋग्वेद मे स्पष्ट रूप से किया गया हे।

इद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्
समूढमस्य पासुरे—ऋग् १।२२।२७
तद् विष्णो परम पद सदा पश्यन्ति सूरय।
दिवीव चक्षुराततम्—ऋग् १।२२।२०

प्रतद् विष्णु स्तवते वीर्येण
मृगो न भीम कुचरो गिरिष्ठा —ऋग् १।१५४।२

यह भी एक विचित्र बात है कि विष्णु का सम्बन्ध वैदिक साहित्य मे गायो के साथ विशेष रूप मे देख पडता है और उन्हे इसी सम्बन्ध से गोप सज्ञा दी गई है, विष्सुर्गोपा अदाम्य । ऋग्वेद १ । २२ । १८

तथा

ता वा वास्तून्युश्मसि गमध्यै ।
यत्र गावो भूरिश्रृंगा अयास ।। ऋग्वेद १ । १५४ । ६

ब्राह्मणो तथा उपनिषदो मे भी विष्णु का महत्व कम नही है। विष्णु को यज्ञ का समानाथक माना गया है।

यज्ञो वै विष्णु

पुराणो मे तो विष्णु के नाना अवतारो को व्यवस्थित रूप ही दे दिया गया। वामन बराह, मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के ही नाना अवतार माने गये है। ब्राह्मणो के हाथ मे पड कर पुराणो का विषय ही बदल गया। और धम का व्यापक प्रचार ही उनका मूल उद्देश्य बन गया। ब्रह्म का स्वरूप भी बदला, सत्य रूप और ज्ञान रूप अनन्त ब्रह्म प्रेम रूप बन गए। लगभग आधे पुराणो का सम्बन्ध भागवत धम से जोडा गया कुछ पुराणो का तो नामकरण ही विष्णु के अवतारो पर हुआ तथा कुछ मे विष्णु के आध्यात्मिक रूप तथा चरित्र का विवेचन हुआ। अन्य पुराणो मे भी किसी न किसी रूप मे विष्णु अथवा उनके अवतारो को महत्व दिया गया। भगवान विष्णु के चरित्र चित्रण की दृष्टि से नारद, ब्रह्मवैवत, पद्म, विष्णु तथा श्रीमद्भागवत बडे महत्वपूण पुराण है इन पाँचो पुराणो मे भी सबसे ऊँचा स्थान श्रीमद्भागवत का है। दूसरा स्थान विष्णु पुराण का कहा जा सकता है क्योकि वैष्णव सिद्धान्तो के मूल तत्त्व हमे इसी पुराण मे प्राप्त होते है। विष्णु भक्ति का व्यावहारिक पक्ष पद्म पुराण मे विशेष रूप से बताया गया है। श्री मद्भागवत विष्णु भक्ति का चरमोत्कष है। वास्तव मे भागवत धर्म का पूर्ण ज्ञान श्री मद्भागवत के अनुशीलन के बिना सभव नही है इसलिए आगे के अध्यायो मे हमने इस ग्रन्थ मे भागवत का ही विभिन्न दृष्टियो से विवेचन किया है। भगवान विष्णु के अवतारो मे कृष्णावतार ही सर्वोपरि कहा जा सकता है। मध्य युग तक आते आते विभिन्न परिस्थितियो के कारण भक्ति का एक व्यापक आन्दोलन उठा। भागवत धर्म के सन्बन्ध मे उस आन्दोलन से परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। तीसरे अध्याय मे हम भागवत धम के इसी भक्ति आन्दोलन पर विचार करेगे। यह भक्ति आन्दोलन विक्रम की सोलहवी शताब्दी मे पूणता को प्राप्त हुआ। इसके मूल मे वैष्णव धम की भावना ही रही है।

अध्याय ३

भागवत धर्म और भक्ति आन्दोलन

विक्रम की १६ वी शताब्दी विश्व के इतिहास मे एक विशिष्ट महत्व रखती है। प्राय सम्पूर्ण ससार की भाषाओ के साहित्य मे इस शताब्दी मे एक विशेष क्रान्ति हुई। धार्मिक भावना को लेकर वह साहित्य सजना उस समन्वयात्मक रूप को प्रस्तुत करती हुई दृष्टिगोचर होती है जिसके पीछे शताब्दियो और सहस्राब्दियो तक की परम्पराए निहित हैं। मानवता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति का यह अद्भुत उपाय था। अन्त और बाह्य साधनाओं का जैसा सुन्दर सामजस्य इस शताब्दी के साहित्य मे दीख पडा वैसा पहले कभी प्रस्तुत नही हो सका और न ही आज तक सभव हो सका है। भारतीय साहित्य का यह अद्भुत युग था। साहित्य धर्म और नीति की त्रिवेणी का पावन तीथराज इसी शताब्दी मे सभव हो सका। विभिन्न युगो के अभेद स्तरो के बीच से मन्द-मन्द किन्तु अव्याहत गति से बहती हुई अनेक दिशाओ से उल्टी-सीधी बह कर आने वाली विविध विचार धाराओ को आत्मसात् करती हुई, भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो की सिद्धान्त-सार-सुधा से प्राणियो के अन्त करण को तृप्त करती हुई भारतीय साधना की इस त्रिवेणी ने साहित्य-सागर को इतना लबालब भर दिया कि आज भी उसकी तरल-तरगो मे मज्जन और अवगाहन करने से चिरशान्ति प्राप्त होती है।

भारतीय साहित्य मे इतनी उदारता, इतनी मानवता, इतना स्थायित्व और इतनी सर्वांगीणता का एक मात्र कारण केवल वैष्णवता है। भारतवष को धर्म प्राण देश कहा गया है। यहाँ धम के नाम पर अनेक पाखण्डो का प्रचार भी हुआ। वास्तव मे धर्म का एक मात्र प्रतिमान मानवीय वृत्तियो का परिष्कार और समाज का उन्नयन है।

जिस धम के द्वारा मानव वृत्तियो का परिष्कार होता है जिससे हृदय मे सत्य, शील और सौदय की प्रतिष्ठा होती है, सरसता, स्निग्धता, सहिष्णुता और मधुरता का सचार होता है वही धर्म उदार है। इसलिए वैष्णव धम अवश्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा जा सकता है। जाति-पॉति के बन्धन से परे सामाजिक भेद-भावो को तोड कर मानव मानव को एक धरातल पर खडा करने वाला यह वैष्णव धम मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति का प्रतिफल है। हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है। अनेक विदेशियो ने इस धर्म को स्वीकार कर गौरव और गव का अनुभव किया। हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुलकस, आभीर, यवन, खस आदि जातियो के पुरुष भी इस धम ध्वज के आश्रय मे पवित्र माने गए है। श्री मद्भागवत मे स्पष्ट निर्देश है—

किरात-हूणान्ध्र-पुलिन्द पुलकसा ।
आभीर-कका-यवना खसादय ॥
येऽन्येत्र पापा यदुपाश्रयाश्रया ।
शुध्यन्ति तस्यै प्रभविष्णवे नम ॥

'बसुधैव कुटुम्बकम्' इस धम का मूलम त्र हे, अहिसा इसका आधार हे, और मानवता मे ईश्वरत्व का आरोप इसकी साधना है। अपनी विकृत अवस्था मे वैष्णव धम चाहे जैसा रहा हो, पर उसने अपने मूल मन्त्र के आधार की ओर साधना को नही छोडा। मानव मात्र के कल्याण की भावना से अनुप्राणित यह वैष्णव धम मगलात्मक मनोहर कला का स्रष्टा रहा है।

वैष्णव धम को अनेक नामो से अभिहित किया गया है। उनमे भागवत नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। वैदिक काल से लेकर आज तक का धम का इतिहास एक प्रकार से भागवत धम का इतिहास हे। यह नामकरण कब हुआ यह विचारणीय विषय नही है, पर इस भागवत धम के तत्व वेदो मे भी मिलते है, इसमे सन्देह का स्थान नही। महाभारत धार्मिक क्रान्ति की आधार शिला है जिस पर समाविस्थ होकर मनुष्य भागवत धम की विभिन्न परम्पराओ का साक्षात्कार कर सकता है। वैष्णव धम और भारतीय सस्कृति का यह पहला विश्व कोष है। शान्ति पव के नारायणीयोपाख्यान मे इस भागवत धम का बडा सुन्दर विवेचन हुआ है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की धार्मिक क्रान्तियो का सुन्दर समन्वित रूप नारायणीयोपाख्यान मे प्रस्तुत किया गया हे। भागवत धम वैदिक तत्वज्ञान को सव-जन सुलभ करने का सुन्दर उपाय प्रस्तुत करता है। वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आय और निषाद सस्कृतियो का सुन्दर सुखद सगम भागवत धम है। श्री मद्भगवद्गीता मे इस धम का सार सगृहीत है। भागवत धम की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत भू पर फहराती रही। बोद्ध धम के आगमन से फिर विषमताये उत्पन्न हुईं, जो शताब्दियो तक समानान्तर चलती रही। धम मे फिर एक बडी क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। बौद्ध धम निवृत्तिपरक था और भागवत धम प्रवृत्ति परक। इस निवृत्ति और प्रवत्ति के अतर को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयास हुए। बौद्ध धम की महायान शाखा उन्ही प्रयत्नो मे एक भागीरथ प्रयत्न कहा जा सकता है। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप प्रत्येक धम और सम्प्रदाय मे जन साधारण के कल्याण के कुछ समान माग निकाले गये जो केवल नाम भेद से शताब्दियो तक चलते रहे। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायो ने इन प्रयत्नो मे योगदान दिया। हमारा पुराण साहित्य इसी युग की कृति है। यह देख कर आश्चर्य होता है कि वैष्णव, शैव, ब्राह्म, सौर आदि सब पुराणो मे एक ही भावना मिलती है, केवल नाम का भेद है। इतना ही नही जैन और बौद्ध पुराण भी उसी भावना से अनुप्राणित है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने रघुवश मे लिखा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थान सिद्धिहेतव।
त्वय्येव निपतत्यौघा जाह्नवीया इवार्णवे॥

ईसा के आविर्भाव के लगभग धर्म क्षेत्र मे एक और बडी क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति सभवत उस समय हुई जब शको और हूणो के आक्रमण उत्तरी भारत पर होने लगे थे। इस क्रान्ति का इतिहास अभी तक अन्धकार मे है। परन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि भागवत के मूल स्तम्भ यादव या सात्वत लोग शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। उनके साथ साथ बहुत से जैन और बौद्ध धर्मानुयायी भी दक्षिण मे पहुँचे और दक्षिण देश को उन्होने अपने धम-प्रचार का क्षेत्र बनाया। इतिहासकारो

मे इस विषय पर बडा बिवाद है कि सात्वत लोग उत्तरी भारत को छोड कर दक्षिण मे कब आए। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बतलाया गया।[1]

के० एस० आयगर ने 'परम सहिता' की भूमिका मे और 'सात्वत' नामक लेख मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला है और बताया है कि जब मागध जरासध ने सात्वतो पर आक्रमण किया तो वे शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के पश्चिमी समुद्र तट और दक्षिण मे जाकर बस गए। डा० कृष्ण स्वामी आयगर ने यही निर्देश किया है कि द्रविड देश के अनेक राजाओ ने जो अपनी वश परम्परा सात्वत वशीय कृष्णचन्द्र से बताई है उसका मूल कारण यही है। यदि ऐतरेय ब्राह्मण का रचना काल हम दशम शताब्दी ईसा पूव माने तो हमे यह भी मानना पडेगा कि दशम शताब्दी ईसा पूव से भी बहुत पहले सात्वत लोग दक्षिण मे जा चुके थे। सात्वतो के सम्पक से सम्भवत भागवत धम पाञ्च रात्र मत भी कहलाया। हमारा अभिप्राय यहा भागवत धम का इतिहास प्रस्तुत करना नही है, हम केवल यह बतलाना चाहते है कि यह भागवत धम सम्पूण भारतवर्ष मे फैल गया था और कई शाखाओ मे विभक्त हो गया था। शको और हूणो ने भी इस धम को स्वीकार किया जिसके प्रमाण आज भी उपलब्ध होते हे। बेसनगर का शिला लेख और घोसुन्दी का शिला लेख इस तथ्य के प्रमाण है। भागवत धम के उपास्य महाभारत काल से ही वासुदेव रहे है जो स्वय विष्णु और नारायण रूप है। विष्णु के वासुदेव रूप मे भी भागवत के विग्रह की कल्पना पूण हुई जान पडती है। षाड्गुण्यविशिष्ट विग्रह को ही भगवद्विग्रह वासुदेव कहा गया है।

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वय वीय-तेजास्यशेषत ।
भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयै गुणादिभि ।

पाञ्चरात्र का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के शान्ति पव मे हुआ है। फिर इसकी व्याख्या अनेक पञ्चरात्र ग्रन्थो मे अनेक प्रकार से की गई है। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए शकराचाय ने भी पञ्चरात्र मत का उल्लेख किया है।[2] उन्होने इस मत का कुछ अश त्याज्य और कुछ उपादेय माना हे। परन्तु आगे के वैष्णवाचार्यो ने पञ्चरात्र मत की एक परम्परा सिद्ध की है और उसका सम्बन्ध वेद से जोडा है। कुछ भी हो, वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य बडा महत्व पूण है। इस मत की अनेक सहिताएँ आदि उपलब्ध होती है। कपिजल साहित्य मे २१५ सहिताओ का उल्लेख है। बहुत सी सहिताओ की रचना उत्तर मे हुई और बहुत सी की दक्षिण मे। इन सहिताओ का तिथि-निणय बडा दुस्तर काय है। मुख्य रूप से इन सहिताओ मे ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यादि विषयो का विवेचन हुआ है। ब्रह्म माया और जीव का भी बडे विस्तार से विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निगुण दोनो ही भाव स्वीकार किये गए हैं। सगुण रूप मे भगवान षाडगुण्य विग्रह वाले है। इन षड् गुणो मे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और शेष शक्ति आदि ५ गुण ज्ञान से सम्बद्ध है। भगवान की शक्ति लक्ष्मी हैं जो दो रूप धारण करती

१ ऐतेरेय ब्राह्मण ८।३।१४
२ शारीरक भाष्य २-२, ४२, ४५ सूत्र

'बसुधैव कुटुम्बकम्' इस धम का मूलमन्त्र हे, अहिसा इसका आधार हे, और मानवता मे ईश्वरत्व का आरोप इसकी साधना है। अपनी विकृत अवस्था मे वैष्णव धर्म चाहे जैसा रहा हो, पर उसने अपने मूल मन्त्र के आधार को और साधना को नही छोडा। मानव मात्र के कल्याण की भावना से अनुप्राणित यह वैष्णव धम मगलात्मक मनोहर कला का स्रष्टा रहा है।

वैष्णव धम को अनेक नामो से अभिहित किया गया है। उनमे भागवत नाम परम प्रसिद्ध और आख्येय है। वैदिक काल से लेकर आज तक का धम का इतिहास एक प्रकार से भागवत धम का इतिहास हे। यह नामकरण कब हुआ यह विचारणीय विषय नही है, पर इस भागवत धम के तत्व वेदो मे भी मिलते है, इसमे सन्देह का स्थान नही। महाभारत धार्मिक क्रान्ति की आधार शिला है जिस पर समाविस्थ होकर मनुष्य भागवत धम की विभिन्न परम्पराओ का साक्षात्कार कर सकता है। वैष्णव धम और भारतीय सस्कृति का यह पहला विश्व कोष है। शान्ति पव के नारायणीयोपाख्यान मे इस भागवत धर्म का बडा सुन्दर विवेचन हुआ है। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक की धार्मिक क्रान्तियो का सुन्दर समवित रूप नारायणीयोपाख्यान मे प्रस्तुत किया गया है। भागवत धम वैदिक तत्वज्ञान को सब जन सुलभ करने का सुन्दर उपाय प्रस्तुत करता हे। वैदिक और अवैदिक ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर, आय और निषाद सस्कृतियो का सुन्दर सुखद सगम भागवत धम है। श्री मद्भगवद्गीता मे इस धम का सार सगृहीत है। भागवत धम की विजय-वैजयन्ती शताब्दियो तक भारत भू पर फहराती रही। बोद्ध धम के आगमन से फिर विषमतायें उत्पन्न हुई, जो शताब्दियो तक समानान्तर चलती रही। धम मे फिर एक बडी क्रान्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। बौद्ध धम निवृत्तिपरक था और भागवत धम प्रवृत्ति परक। इस निवृत्ति और प्रवत्ति के अतर को समाप्त करने के लिए अनेक प्रयास हुए। बौद्ध धम की महायान शाखा उन्ही प्रयत्नो मे एक भागीरथ प्रयत्न कहा जा सकता है। इन प्रयत्नो के फलस्वरूप प्रत्येक धम और सम्प्रदाय मे जन साधारण के कल्याण के कुछ समान माग निकाले गये जो केवल नाम भेद से शताब्दियो तक चलते रहे। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन और बौद्ध सभी सम्प्रदायो ने इन प्रयत्नो मे योगदान दिया। हमारा पुराण साहित्य इसी युग की कृति है। यह देख कर आश्चय होता है कि वैष्णव, शैव, ब्राह्म, सौर आदि सब पुराणो मे एक ही भावना मिलती है, केवल नाम का भेद है। इतना ही नही जैन और बौद्ध पुराण भी उसी भावना से अनुप्राणित है। कवि-कुल-गुरु कालिदास ने रघुवश मे लिखा है—

बहुधाप्यागमैर्भिन्ना पन्थान सिद्धिहेतव ।
त्वय्येव निपतत्यौघा जाह्नवीया इवार्णवे ।।

ईसा के आविर्भाव के लगभग धर्म क्षेत्र मे एक और बडी क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति सभवत उस समय हुई जब शको और हूणो के आक्रमण उत्तरी भारत पर होने लगे थे। इस क्राति का इतिहास अभी तक अन्धकार मे है। परतु इसमे कोई सन्देह नही कि भागवत के मूल स्तम्भ यादव या सात्वत लोग शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के दक्षिण और पश्चिम मे चले गये थे। उनके साथ साथ बहुत से जैन और बौद्ध धर्मानुयायी भी दक्षिण मे पहुँचे और दक्षिण देश को उन्होने अपने धम-प्रचार का क्षेत्र बनाया। इतिहासकारो

मे इस विषय पर बडा बिवाद है कि सात्वत लोग उत्तरी भारत को छोड कर दक्षिण मे कब आए। ऐतरेय ब्राह्मण मे ऐन्द्र महाभिषेक के प्रसग मे सात्वतो का निवास दक्षिण भारत बतलाया गया।[१]

के० एस० आयगर ने 'परम सहिता' की भूमिका मे और 'सात्वत' नामक लेख मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला है और बताया है कि जब मागध जरासध ने सात्वतो पर आक्रमण किया तो वे शूरसेन प्रदेश छोडकर भारत के पश्चिमी समुद्र तट और दक्षिण मे जाकर बस गए। डा० कृष्ण स्वामी आयगर ने यही निर्देश किया है कि द्रविड देश के अनेक राजाओ ने जो अपनी वश परम्परा सात्वत वशीय कृष्णचन्द्र से बताई है उसका मूल कारण यही है। यदि ऐतरेय ब्राह्मण का रचना काल हम दशम शताब्दी ईसा पूव माने तो हमे यह भी मानना पडेगा कि दशम शताब्दी ईसा पूव से भी बहुत पहले सात्वत लोग दक्षिण मे जा चुके थे। सात्वतो के सम्पर्क से सम्भवत भागवत धम पाञ्च रात्र मत भी कहलाया। हमारा अभिप्राय यहा भागवत धम का इतिहास प्रस्तुत करना नही है, हम केवल यह बतलाना चाहते है कि यह भागवत धम सम्पूण भारतवर्ष मे फैल गया था और कई शाखाओ मे विभक्त हो गया था। शको और हूणो ने भी इस धम को स्वीकार किया जिसके प्रमाण आज भी उपलब्ध होते हे। बेसनगर का शिला लेख और घोसुन्दी का शिला लेख इस तथ्य के प्रमाण है। भागवत धम के उपास्य महाभारत काल से ही वासुदेव रहे हे जो स्वय विष्णु और नारायण रूप है। विष्णु के वासुदेव रूप मे भी भागवत के विग्रह की कल्पना पूण हुई जान पडती है। षाड्गुण्यविशिष्ट विग्रह को ही भगवद्विग्रह वासुदेव कहा गया है।

ज्ञान-शक्ति-बलैश्वय वीय-तेजाँस्यशेषत ।
भगवच्छब्दवाच्यानि बिना हेयै गुणादिभि ।

पाञ्चरात्र का सबसे पहले प्रतिपादन महाभारत के शान्ति पर्व मे हुआ है। फिर इसकी व्याख्या अनेक पञ्चरात्र ग्रन्थो मे अनेक प्रकार से की गई है। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए शकराचाय ने भी पञ्चरात्र मत का उल्लेख किया है।[२] उन्होने इस मत का कुछ अश त्याज्य और कुछ उपादेय माना हे। परन्तु आगे के वैष्णवाचार्यो ने पञ्चरात्र मत की एक परम्परा सिद्ध की है और उसका सम्बन्ध वेद से जोडा है। कुछ भी हो, वैष्णव भक्ति के सम्बन्ध मे पाञ्चरात्र साहित्य बडा महत्व पूण है। इस मत की अनेक सहिताएँ आदि उपलब्ध होती है। कपिजल साहित्य मे २१५ सहिताओ का उल्लेख है। बहुत सी सहिताओ की रचना उत्तर मे हुई और बहुत सी की दक्षिण मे। इन सहिताओ का तिथि-निणय बडा दुस्तर काय है। मुख्य रूप से इन सहिताओ मे ज्ञान, योग, क्रिया और चर्यादि विषयो का विवेचन हुआ है। ब्रह्म माया और जीव का भी बडे विस्तार से विवेचन हुआ है। ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनो ही भाव स्वीकार किये गए है। सगुण रूप मे भगवान षाडगुण्य विग्रह वाले हे। इन षड् गुणो मे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान है और शेष शक्ति आदि ५ गुण ज्ञान से सम्बद्ध है। भगवान की शक्ति लक्ष्मी है जो दो रूप धारण करती

१ ऐतेरेय ब्राह्मण ८।३।१४
२ शारीरक भाष्य २ २, ४२, ४५ सूत्र

है—क्रिया शक्ति और भूति शक्ति। इन ६ गुणो मे से दो-दो गुणो की प्रधानता होने पर ३ व्यूहो की सृष्टि होती है। अर्थात् ज्ञान और बल की प्रधानता से सकर्षण, ऐश्वय और वीर्य की प्रधानता से प्रद्युम्न तथा शक्ति और तेज की प्रधानता से अनिरुद्ध। वासुदेव को मिलाकर इन्हे चतुर्व्यूह कहा जाता है। पाञ्चरात्र मत मे अवतार भावना का वैशिष्ट्य है। विभव को अवतार कहा गया है जो सख्या मे ३९ माने गये है। जीव भी भगवन्मय ही है। जिसके माध्यम से भगवान् इस विश्व मे लीला करते है। सष्टि स्थिति, विनाश, निग्रह तथा अनुग्रह भगवान् का सुदशन चक्र है। निग्रह शक्ति के कारण जीव के वास्तविक आधार ऐश्वय तथा ज्ञान का निरोभाव हो जाता है। यह निग्रह-शक्नि ही अविद्या, महामोह, महातमिस्र, हृदय ग्रन्थि आदि कहे जाते है। इन्ही से बधकर जीव मलयुक्त और सबन्ध हो जाता है। जीव के कष्टो से आद्र होकर भगवान् की कृपा का आविर्भाव होता है जो अनुग्रह शक्ति कहलाती है, जिससे जीव का कल्याण होता है और जिसके अवलम्बन से उसे परम धाम की प्राप्ति होती है। इस अनुग्रह की प्राप्ति को ही पाञ्चरात्रमत मे साधना माग कहा है। उसकी प्राप्ति का एक मात्र उपाय शरणागति और प्रपत्ति है। जिसका पारिभाषिक नाम 'न्यास' है और यह एक मानसिक भावना है। साधना की पूर्ति पर जीव को ब्रह्म-भावापत्ति होती है। जिसको प्राप्त कर वह परमधाम मे भगवान् के साथ विचरण करता है। पाञ्चरात्रमत मे साधना पद्धति के भेद से अनेक आगम और सहिताओ का निर्माण हुआ, परतु मूल भावना एक ही रही। पाञ्चरात्र मत मे वैखानस आगमो का भी महत्वपूण स्थान है।

पाञ्चरात्र मत वैष्णव सम्प्रदाय का ही एक रूप है। दक्षिण मे इस सम्प्रदाय का जब इतना शास्त्रीय विवेचन हो रहा था और इतनी सहिताओ का निर्माण हो रहा था, बौद्ध, जैन, शैव और शक्ति सम्प्रदाय भी अपने-अपने सिद्धान्तो के प्रचार और निर्माण मे सलग्न थे। शैवो की आचार्य परम्परा वैष्णवो की आचार्य परम्परा के समान पुष्ट नही थी, इसलिए उसका प्रचार जन-आन्दोलन के रूप मे था। वास्तव मे शव-सन्तो से ही भक्ति-आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप मिला। इन शैव सन्तो की सख्या ६४ मानी गई है। जिनमे माणिकवाचक, सम्बन्धवागीश और सुन्दर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सन्तो के गीत आज भी सुरक्षित है। इन सग्रह ग्रन्थो मे देवरम् और तिलकवा-चकम् नामक सग्रह महत्त्वपूण है। इन शैव सतो के समकक्ष वैष्णव सन्त भी अपने हृदय की पुकार लेकर जनता जनादन के सम्मुख उपस्थित हुए। भक्ति का शास्त्रीय विवेचन इनका उद्देश्य नही था। इनकी दृष्टि मे भगवान् के दरबार मे जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नही था। सम्भवत शास्त्रीय-भक्ति-निरूपण की प्रतिक्रिया मे इन अलवार भक्तो ने अपनी आवाज जनता मे उठाई और अपने हृदय के सच्चे उद्‌गारो से मानव मात्र को प्रभावित किया। इनके उद्‌गार आज भी नालायिर प्रबन्धम् मे सुरक्षित हैं। इनके गीत वेदग्रन्थो के समकक्ष माने जाते है।

प्रबन्धम् को तामिल वेद कहा जाता है। इन सन्त भक्तो की भक्ति के अजस्र प्रवाह मे सारा दक्षिण प्रान्त सरावोर हो गया और परम्परागत सस्कृत आचार्यों को यह फिक्र पडी कि कही इनके सम्प्रदाय इस प्रवाह के शिकार न बन जायँ। इसलिए इन्होने 'तमिल वेद' का भली-भाँति अध्ययन कर अपने शास्त्रो से सगति बैठाने का प्रयत्न किया। यही कारण

है कि ये आचाय 'उभय-वेदान्ती' कहलाते हे। यही से भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात समझना चाहिए। इससे पूव भक्ति का प्रचार आन्दोलन के रूप मे नही था। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे एक और भी महत्वपूर्ण घटना थी। ९वी शताब्दी मे स्वामी शकराचार्य ने जाति-पाँति की सकीर्ण परिधि को हटाने और सामाजिक विषमता दूर करने और बौद्धमत के विकृत रूप के निष्कासन का भगीरथ प्रयत्न किया था। बौद्ध और जैन मत के मूल-सिद्धान्तो की सगति अद्भुत तर्क शैली के द्वारा उन्होने वैदिक धम मे सिद्ध की और अपनी दिव्य प्रतिभा के प्रभाव से चतुर्दिक् प्रचलित बौद्ध एव जैन मत का खण्डन कर अपने मत की स्थापना की। यह परम्परागत दोषो को दूर कर समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का सराहनीय कार्य था। दूसरी क्रान्ति के कारण जो प्रवृत्ति और निवृत्ति माग का एकीकरण हुआ था वह कालान्तर मे समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुआ। इसलिए उन्होने श्रुति, स्मृति, वेद विहित वैदिक धम का पुनरुत्थान करके निवृत्ति माग के वैदिक सन्यास धम को कलिकाल मे पुनर्जन्म दिया। अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए उन्होने परमाथ दृष्टि से ब्रह्म को सगुण स्वीकार नही किया था। माया मिथ्यात्व के कारण उपासना गौण हो गई। शकर के विचारो का प्रवाह देश के सभी प्रान्तो और भाषाओ मे बडे वेग से प्रवाहित हुआ। समस्त वैष्णव सम्प्रदायो पर शकर का आतक जम गया। इसलिए परवर्ती वैष्णवाचार्यो के लिए एक समस्या बन गई कि समाज धम की पुन स्थापना किस प्रकार की जाय, परन्तु मानव की स्वाभाविक रागात्मिका भक्ति-भावना के ऊपर धम का वह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के प्रस्तरो को फोडकर निर्झरिणी के रूप मे फूट निकला।

शकर के मायावाद का प्रचार सम्पूर्ण भारत मे हो चुका था, पर साथ ही साथ भक्ति के बीज के लिए भी उपयुक्त भूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। नवी शताब्दी से लेकर सोलहवी शताब्दी तक का भारतवष का धार्मिक इतिहास भक्ति आन्दोलन का इतिहास है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे आचाय-युग कह सकते है। इस युग के आचाय वैष्णव आचाय कहलाए। समस्त वैष्णव सम्प्रदायो मे परम आचाय श्रीकृष्ण माने गए है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपने चार शिष्यो को वैष्णव तत्त्व का उपदेश दिया था जिसका उल्लेख पद्म पुराण मे इस प्रकार है—

श्री ब्रह्मरुद्र सनका वैष्णवा क्षितिपावना।
चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात्।

'प्रमेय-रत्नावली' मे इन चारो सम्प्रदायो के प्रवतक-आचार्यो का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

रामानुज श्री स्वीचक्रे मध्वाचार्य चतुमुख।
श्री विष्णुस्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन।

इस प्रकार रामानुजाचाय श्री सम्प्रदाय के, मध्वाचाय ब्रह्म सम्प्रदाय के, विष्णु स्वामी रुद्र सम्प्रदाय के और श्री निम्बार्काचाय सनक सम्प्रदाय के प्रवतक माने जाते है। श्री रामानुजाचाय पहले वैष्णव आचाय है जिन्होने मायावाद के विरोध मे भक्ति के सिद्धान्त की शास्त्रीय प्रतिष्ठा की। इनके प्रयत्नो से वैष्णव धम का सम्पूर्ण भारतवष मे—विशेषतया दक्षिण प्रदेश मे खूब प्रचार और प्रसार हुआ। इनके सम्प्रदाय का नाम विशिष्टाद्वैत हुआ। चित्, अचित् और ईश्वर तीन पदार्थों मे चित् को ये भोक्ता जीव मानते है, अचित् को भोग्य जगत्

और ईश्वर को अन्तर्यामी परमेश्वर। इनके मत मे निगु ण मत की कल्पना ही असभव है। निगु ण ब्रह्म का अथ केवल इतना ही है कि वह प्राकृत तथा लौकिक गुणो से रहित है, ईश्वर चित्, अचित् का नियमन करता हे इसलिए विशेष्य कहलाता हे। जीव जगत् नियम्य होने से विशेषण कहलाते है। विशेष्य की सत्ता पृथक रूप से सिद्ध है विशेषण की नही इस प्रकार विशेषणो से युक्त विशेष्य की एकता आचाय जी स्वीकार करते है, इस तरह यह सिद्धान्त अद्वैत होता हुआ भी विशिष्टाद्वैत है। आचाय जी ने शकर के मायावाद का युक्ति पूवक खण्डन किया और बताया कि जब जगत् कर्त्ता ब्रह्म नित्य है तो कारण रूप जगत अनित्य किस प्रकार हो सकना है। जीव और ब्रह्म मे भी उन्होने अश-अ शी भाव माना है। तत्वमसि जैसे महा वाक्य की व्याख्या आचाय जी ने बडे विचित्र ढग से की। तस्य त्वमसि (दास)। इस प्रकार भगवान् और जीव का सम्बन्ध इन्होने सेव्य-सेवक रूप मे माना जिसे शेष शेषी भाव भी कहा गया है। नारायण इसके उपास्य हुए। अपने स्वामी नारायण को आत्म-समर्पण करना ही जीव के लिए सबसे बडी साधना है। उसमे उन्होने दास्य भाव की भक्ति को महत्त्व दिया और 'प्रपत्ति को भक्ति का सार बताया'। प्रपत्ति द्वारा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है और भगवत्कृपा से नारायण की।

दक्षिण भारत का दूसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदाय है जिसके प्रवतक मध्वाचाय थे। इस सम्प्रदाय के द्वारा भक्ति-भावना को विशेष बल मिला। वस्तुत व्यवहार पक्ष मे यह भक्तिवादी सम्प्रदाय है और अध्यात्म पक्ष मे भेदवादी या द्वैतवादी। रामानुजाचाय ने मायावाद का खण्डन करते हुए भी अपना सम्बन्ध अद्वैतवाद से नही तोडा था। अद्वैतवेदान्त का खण्डन माध्वमत के आचार्यो ने भी खुल्लमखुल्ला रूप से किया। माध्वमत के सिद्धान्तो का सार इस प्रकार है—

श्रीमन्मध्वमते हरि परतट सत्य जगत् तत्त्वतो।
भेदो जीवगणा हरेरनुचरा नीचोच्चभाव गता।
मुक्तिर्नैजसुखानुभूतिरमला भक्तिश्च तत्साधाम्।
ह्यक्षादित्रितय प्रमाणमखिलाम्नायकवेद्यो हरि।

इस सम्प्रदाय का प्रचार दक्षिण भारत—विशेषकर कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रदेश—मे हुआ। उत्तर भारत मे बगाल इस सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र बना। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय इसी का बँगला रूप है। कहा जाता है कि व्रज मण्डल को इतना गौरव इसी सम्प्रदाय के कारण प्राप्त हुआ है।

सनक सम्प्रदाय के प्रवत्तक आचाय निम्बाक (११६२ ई०) माने जाते है। निम्बाक वैष्णवो का प्रचार-स्थल वृदावन रहा। गोवद्धन के पास निम्बग्राम आज भी उनका तीथ स्थान है। इस सम्प्रदाय को कुछ विद्वान् सभी वैष्णव सम्प्रदायो मे प्राचीनतम मानते है। वास्तव मे अन्य वैष्णव सम्प्रदायो मे तो शकर के मायावाद का खण्डन किया गया है किन्तु इस सम्प्रदाय मे मायावाद का खण्डन नही हुआ। इसका सिद्धान्त द्वैताद्वैत कहलाता है। निम्बार्काचाय के सिद्धान्त बडे सूक्ष्म और सरल है। केवल दस श्लोको मे उनके सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। इन्होने भी प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। ये सबसे पहले आचाय थे जिन्होने उत्तर भारत मे राधाकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया।

रुद्र सम्प्रदाय के प्रवत्तक विष्णु स्वामी का इतिहास अभी तक अधकार मे है। कहा जाता है कि भगवान् के साक्षात् दशन करने की उत्कट इच्छा से स्वामी जी ने घोर तपस्या की और उसके सफल न होने पर अन्न जल छोड दिया। सान्वे दिन भगवान् श्याम सुन्दर ने वेणु-वादन करते हुये शृगारयुत किशोर मूर्ति मे आपको दशन दिए और बाल-कृष्ण रूप मे उन्हे उपदेश दिया। तभी से ये बालकृष्ण की उपासना करने लगे। विष्णु स्वामी का समय कोई कोई विद्वान् तो ईसा से छटी शताब्दी पूव मानते हैं। इस सम्प्रदाय के आचाय बिल्वमगल ने महाप्रभु वल्लभाचाय को स्वप्न मे विष्णु स्वामी की शरण मे आने का उपदेश दिया था। विष्णु स्वामी के ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, और वे अपनी ह्लादिनी सवित् के द्वारा आश्लिष्ट हे, माया उनके अधीन रहती हे। ईश्वर के नृसिह रूप को इस सम्प्रदाय मे महत्व दिया गया है, पर कहा जाता है कि विष्णु स्वामी नृसिह तथा गोपाल दोनो के उपासक थे। रुद्र सम्प्रदाय को नवीन स्फूर्ति और शक्ति महाप्रभु वल्लभाचाय के सम्पक से प्राप्त हुई। महाप्रभु के उपास्य कुल देवता गोपाल कृष्ण थे। इन्होने भक्ति-सिद्धान्त की बडे व्यवस्थित ढग से व्याख्या की, और वैदिककाल से चली आती हुई भक्ति परम्परा का शास्त्रीय ढग से उन्नयन किया। उनकी सिद्धि और आध्यात्मिकता से न केवल तत्कालीन समाज ही प्रभावित हुआ, अपितु दिल्ली के मुसलमान बादशाह सिकन्दर लोदी ने भी उनके प्रभाव मे आकर अपने दृष्टिकोण को बदल दिया। कृष्णदेव राय की विशाल सभा का कनकाभिषेक वल्लभ-सम्प्रदाय की महत्त्वपूण घटना है। शकर के मायावाद का खण्डन अभी तक कोई आचाय नही कर सका था। विष्णु स्वामी के सम्प्रदाय को नवीन साचे मे ढालकर इसका नाम उन्होने शुद्धाद्वैत रखा। आचाय शकर के अद्वैत से भिन्नता प्रकट करने के लिए ही उन्होने 'शुद्ध' विशेषण लगाया। शकर ने मायायुक्त ब्रह्म को जगत् का कारण माना था। परन्तु इन्होने शुद्ध ब्रह्म को जगत् का कारण माना। ब्रह्म का परिणाम रूप ही जगत् और जीव की सत्ता का कारण है। शकर ने निगुण ब्रह्म को सगुण ब्रह्म की अपेक्षा महत्ता प्रदान की, परन्तु महाप्रभु जी ने ब्रह्म के दोनो रूपो को सत्य माना, वह एक ही समय मे निगुण भी रहता है और सगुण भी। यही उसका विरुद्ध धर्माश्रयत्व है। इसीलिए वह कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तु समथ है। वह अविकृत और अविकारी होते हुए भी भक्तो पर कृपा करने के लिए परिणामशील होता है। भगवान् श्रीकृष्ण स्वय पूण ब्रह्म स्वरूप है। जब वे अपनी आत्मा मे आन्तर रमण करते है तब आत्मानन्द कहलाते है। बाह्य रमण की इच्छा से जब वे अपनी शक्तियो का प्रकाशन करते है तब पुरुषोत्तम कहलाते है। और इसी रूप मे वे आनन्दमय अगणितानन्द और परमानन्द कहलाते है। आचाय वल्लभ का यह सिद्धात परम्परागत सभी भक्ति-सम्प्रदायो के मेल मे है इसमे कोई सन्देह नही। पाञ्चरात्र-मत की यह सवश्रेष्ठ व्याख्या कही जा सकती हे। भगवान् अपनी शक्तियो से वेष्टित होकर व्यापी वैकुण्ठ मे नित्य लीला करते हे। यह व्यापी वैकुण्ठ विष्णु धाम से भी ऊपर है और गोलोक भी इसका अश मात्र है। भगवान् की शक्तिया भी पुष्टि, गिरा, कान्त्या आदि उनके अधीन रहती है। लीला के निमित्त वे सपरिवार इस लोक मे उतरते है। तब व्यापी वैकुण्ठ ही इस लोक मे विराजता है और उनकी वे शक्तिया भी, स्वामिनी चन्द्रावली, राधा, यमुना आदि के रूप मे अवतीण होती है। श्रुतियाँ इस रस का आनन्द लेने के लिए गोपियो के रूप मे अवतीण होती है। यह लीला नित्यरूप मे आविभूत होती है।

आचाय वल्लभ का दाशनिक सिद्धान्त श्रीमद्भगवद्गीता के बिलकुल अनुकूल है।

जिस प्रकार भगवद्गीता मे ब्रह्म के तीन स्वरूप है आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक। इसी प्रकार इनके मत मे भी जगत् क्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम ब्रह्म के तीन परिणाम है। अक्षर ब्रह्म मे आनन्दाश का कुछ तिरोधान रहता है। और परब्रह्म मे आनन्द पूर्ण रहता है। अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति विशुद्ध ज्ञान के द्वारा होती है जबकि परब्रह्म की प्राप्ति का साधन एकमात्र भक्ति है।

पुरुष स पर पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया। गीता ८।२१

पुरुषोत्तम के अधिकारी केवल भक्त ही है। जीव रूप मे भी भगवान् स्वय ही आते हैं। इसमे केवल भगवान् की इच्छा ही कारण है आनन्दादि अशो का तिरोधान हो जाता है। ऐश्वय के तिरोधान से दीनता, यश के तिरोधान से हीनता, श्री के तिरोधान से आपत्ति-भाजनता, ज्ञान के तिरोधान से देहाध्यासता होती है। जीव का आविर्भाव ब्रह्म से इस प्रकार होता है जैसे अग्नि से स्फुलिग। भगवान् के अविकृत चिन्तन से जीव का आविर्भाव होता है और उनके अविकृत सदेश से जड का। जीव मे केवल आनन्द का तिरोधान है और जड मे चित् और आनन्द दोनो का। आनन्दाश के तिरोधान होने से ही जीव का सम्बन्ध अविद्या से हो जाता है और उसकी सज्ञा सचारी हो जाती है। पहले यह विशुद्ध रहता है। भगवान् की कृपा से ससारी जीव मे जब आनन्द का आविर्भाव होता है तो वह स्वय मुक्त होकर सच्चिदानन्द हो जाता है। भगवत्कृपा का साधन ही पुष्टि मार्ग है। इस प्रकार महाप्रभु भी अविकृत परिणामवाद को मानने वाले है अर्थात् निर्गुण सच्चिदानन्द ही अविकृत भाव से जगद्रूप मे परिणत हो जाते हैं। आचार्य चरण जगत् की उत्पत्ति और विनाश नही मानते। केवल आविर्भाव और तिरोभाव ही मानते है। जगत् और ससार का आचार्य चरण ने बडा सूक्ष्म भेद किया है। भगवान् के सदश से प्रादुर्भूत पदार्थ जगत है, परन्तु अविद्या के कारण जीव के द्वारा कल्पित व्यावहारिक पदार्थ ससार है। जगत् जीव और ईश्वर की भाँति नित्य है। साधना-पक्ष मे महाप्रभु जी ने शास्त्र सम्मत वैदिक मार्ग का प्रवर्तन किया और उन्होंने सभी परम्पराओ का समन्वय बडे सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया। पुष्टि मार्ग, प्रवाह मार्ग और मर्यादा मार्ग तीनो मार्गों की सुन्दर विवेचना करते हुए आचार्य जी ने सभी भक्ति पद्धतियो का सुन्दर विवेचन किया मर्यादा मार्ग को वे वैदिक मार्ग बताते है जो अक्षर ब्रह्म की वाणी से उत्पन्न हुआ है। परन्तु पुष्टिमार्ग साक्षात् पुरुषोत्तम के शरीर से ही निःसृत हुआ है। इसलिए मर्यादा भक्ति मे फल की इच्छा रहती है। इस मार्ग का भक्त सायुज्य भक्ति को अपना ध्येय मानता है। परन्तु पुष्टि मार्गी केवल भक्ति चाहता है। वास्तव मे पुष्टि मार्ग जैसा सुलभ और सरल मार्ग अभी तक दूसरा नही था। वर्ण, जाति, देश, सम्प्रदाय आदि भेदो से परे जीव मात्र के लिए कलिकाल मे आनन्द प्राप्ति का यही एक मात्र साधन है।

पुष्टि मार्गीय भक्ति का आचार्य जी ने बडे विस्तार से शास्त्रीय विवेचन किया है। इस मार्ग मे भक्त को किसी साधन की अपेक्षा नही रहती।

'निस्साधन भजनीये, भावतनौ मे मतिर्भूयात्'।

—नवनीताष्टक

भक्तो पर कृपा करने के लिए ही भगवान् अपनी लीला करते है। लीला उनकी विलास की इच्छा मात्र है।

'लीला नाम विलासेच्छा' —सुबोधिनी भाग ३ स्कन्ध।

अनुग्रह भगवान् की नित्य लीला का अन्यतम विलास है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है तभी उसकी मुक्ति हो जाती है। यही भगवान् के आविर्भाव का प्रयोजन है। भगवान् के अनुग्रह से ही रागानुगा भक्ति की प्राप्ति होती है। उस अनुग्रह की सिद्धि सेवा, एकान्त निष्ठा तथा शुद्ध अनुराग से होती है। वह सेवा तीन प्रकार की है—तनुजा, वित्तजा एव मानसी। अनुग्रह बिना उत्कट प्रेम के सभव नही। इस उत्कट प्रेम का परिचय विरह के द्वारा ही होता है, इसलिये पुष्टि सम्प्रदाय मे विरह भावना का बडा महत्व है और उसके लिए गृह-त्याग भी करना पडता है। भगवत्-प्रेम की प्राप्ति के लिए भक्त को तीन अवस्थाओ मे होकर गुजरना पडता है—स्नेह, आसक्ति और व्यसन। प्रेम की इन तीनो श्रेणियो का विवेचन आचार्य चरण ने बडे मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। आज के पीडित मानव के लिए पुष्टिमाग का आचरण रामबाण हो सकता है। ब्रह्म सम्बन्ध के पीछे एक बडा व्यवहारी दशन है। इसका विधान आचार्य चरण के सिद्धान्त-रहस्य नामक स्तोत्र मे बताया है। गुरु आत्म-निवेदन मन्त्र से ब्रह्म सम्बन्ध कराता है। कहा जाता है कि यह आत्म-निवेदन मत्र स्वय श्री कृष्ण जी ने आचार्य जी को बताया था।

भगवत् अनुग्रह की चर्चा प्राचीन ग्रथो मे भी मिलती हे। 'नायमात्मा प्रवचनेन लम्य।' तथा तमक्रतु पश्यति वीतशोको' धातु प्रसादान् महिमानमात्मान' आदि श्रुति वाक्य इस बात का उद्घोष करते है कि भगवत् कृपा का सिद्धान्त बहुत पुराना है।

श्री, ब्रह्म, रुद्र एव सनक इन चार सम्प्रदायो का पुनरुत्थान दक्षिण मे हुआ। श्री सम्प्रदाय की प्रचार भूमि विशेष रूप से दक्षिण रही, पर उत्तर मे भी रूपान्तर से इसका प्रचार हुआ और भक्ति के प्रचार मे इस सम्प्रदाय ने अपना विशिष्ट योग दान दिया।

ब्रह्म तथा सनक सम्प्रदायो का भी उत्तर भारत मे अपना विशिष्ट स्थान है। परतु रुद्र सम्प्रदाय का पुष्टि सम्प्रदाय नाम से प्रचार और प्रसार उत्तरी भारत मे बहुत अधिक हुआ। इन सभी सम्प्रदायो ने भक्ति-आन्दोलन को जन-आदोलन बनाने का महत्त्व-पूण काय किया है। इस आन्दोलन की व्यापकता और त्वरित गति से प्रभावित होकर ही सभवत पाश्चात्य विद्वानो ने इसे 'बिजली की चमक' बताया है। सभी भारतीय भाषाओ के साहित्य को समृद्ध और प्राणवान् बनाने का श्रेय इस आन्दोलन को है। १० वी शताब्दी से लेकर १८ वी शताब्दी तक भारतीय साहित्य की मूल प्रेरणा इन्ही सम्प्रदायो से अनुप्राणित होती रही ह। भक्ति-आन्दोलन के जन-आन्दोलन के स्वरूप का विवेचन करने से पूव हम यह बतलाना आवश्यक समझते है कि दक्षिण की भाषाओ के साहित्य को किस प्रकार इस वैष्णव धम ने समृद्ध किया है। कहने की आवश्यकता नही कि वैष्णव धम के प्रभाव से सभी भाषाओ का साहित्य सौदय और माधुय से ओत-प्रोत हो गया। जीवन की दिशाएँ बदल गई और साहित्य मे वह सरसता, मधुरता, लालित्य, शिवत्व और सौदय आ गया जिनके कारण वैष्णव साहित्य सदा के लिए अमर हो गया। आश्चय है कि आज भी वही साहित्य सुन्दरतम है। सूर और तुलसी की तुलना का कोई दूसरा कवि अभी तक हिन्दी मे नही हो सका है। तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, बगला, आसामी, उडिया मराठी, गुजराती, हिन्दी आदि का वैष्णव साहित्य आज भी इन भाषाओ के साहित्य का हृदय-स्थानीय है।

तमिल साहित्य मे यद्यपि शैव साहित्य की प्रधानता है, परन्तु भावना वही वैष्णव धम की है। वैष्णव भक्त आलवारो की रचनाएँ कम महत्वपूण नही। ये रचनाएँ आज भी तमिल वेद के नाम से पुकारी जाती है। सुप्रसिद्ध आलवार भक्त विष्णु स्वामी का 'दिव्य-प्रबन्धम्' आज भी तमिल साहित्य को विशिष्ट निधि है। कहना न होगा कि तेलुगु साहित्य का भी वैष्णव-भक्ति-साहित्य आज अनुपमेय है। महाकवि पोताना का भागवत पुराण तेलेगु का महत्वपूण ग्रन्थ है। इसी प्रकार और कितने ही ग्रन्थ तेलुगु साहित्य मे रत्नरूप से विराजमान है। कृष्णदेव राय का विष्णु चित्तीय काव्य और महाकवि वेदना और तिमन्ना के काव्य तेलुगु साहित्य के अलकार है। कन्नड भाषा मे भी वैष्णव साहित्य की कमी नही है। रामानुजाचाय के प्रभाव से कन्नड भाषा मे ऐसे साहित्य का निर्माण हुआ जिसके कारण वह युग कन्नड भाषा का 'स्वण युग' कहा जाता है। कुमार व्यास, कुमार बाल्मीकि तथा चाटु विठ्ठलनाथ के प्रसिद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त उन वैष्णव-सन्तो का, जो दास नाम से साहित्य मे विख्यात है, साहित्य भी बहुत ही उच्च कोटि का है। पुरदरदास कनकदास, विठ्ठलदास, वेकटदास, विजयदास, तथा कृष्णदास के पद आज भी चिर नवीन है। लक्ष्मीश का जैमिनि भारत एक महत्त्वपूण ग्रथ है। मलयालम भाषा मे भी वैष्णव काव्यो का प्राचुय है। इस दृष्टि से सम्भवत मलयाली साहित्य सबसे अधिक सम्पन्न है। त्रावणकोर के महाराजा का रामचरित एक महत्त्वपूण काव्य है। इसी प्रकार चेरुस्सेरी नम्बद्री की कृष्ण गाथा काव्य और तुञ्जन कवि का भागवत बडे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। पोन्तान कवि अपने समय के गोस्वामी तुलसीदास कहे जा सकते है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भक्ति-आदोलन विजली की चमक की भाँति सारे भारतवष मे फैल गया। दक्षिण के वैष्णव आचार्यो का प्रभाव उत्तर मे भी बहुत व्यापक रहा, पर इसका अभिप्राय यह नही है कि उत्तर भारत, मध्यभारत अथवा पूर्वी भारत मे भक्ति आन्दोलन का श्री गणेश दक्षिण के वैष्णव आचार्यो के द्वारा ही हुआ हो। उत्तर भारत मे पौराणिक धम का प्रचार पहले ही से था। शैव भक्ति का प्राधान्य था। कृष्णावतार तथा रामावतार की भी व्यापकता थी। दशावतार-चरित सम्बन्धी तो कई ग्रन्थ उपलब्ध होते है। पृथ्वीराज रासो का दसम वास्तव मे दशावतार चरित ही है, राम और कृष्ण सम्बन्धी साहित्य प्राय लोक परक था। दक्षिण के आचार्यों के सम्पक से उसमे नई शक्ति आ गई और वह ईश्वरोन्मुख हो गया। लीला गान की परम्परा के उदाहरण उत्तर-भारत के साहित्य मे मिलते है। यह लीला-गान की परम्परा भागवत परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न थी। अपभ्रश साहित्य मे हमे कृष्ण-लीला सम्बन्धी अनेक गेय पद प्राप्त होते है। सिद्धो और नाथो ने जिस गेय परम्परा को अपनाया, वह अवश्य वैष्णव धम मे रही होगी और यह परम्परा सम्पूण उत्तर-भारत मे प्रचलित थी। जयदेव का गीत-गोविन्द भागवत वाली परम्परा से निश्चित रूप से भिन्न परम्परा का है। विद्यापति और चण्डीदास के पद जयदेव की परम्परा के है। नाथ सिद्ध पश्चिमी भारत मे अड्डा जमाए थे तो बौद्ध-सिद्धो की प्रचार भूमि पूर्वी भारत था। काश्मीर मे शैव मत का बोल बाला था। सभवत बौद्ध सिद्धो के प्रभाव से बगाल मे सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। बौद्धो का सहजभाव सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय से बहुत बातो मे मिलता जुलता है। वज्रयानी सिद्धो ने महासुख की उपलब्धि के लिए अनेक उपायो का वणन

किया है। नाथ सिद्धो और बौद्ध सिद्धो की शब्दावली भी बहुत कुछ मिलती-जुलती है। सहजयान वज्रयान का ही दूसरा नाम है। सहजावस्था की प्राप्ति मे ही ये सिद्धि की पूर्णता मानते है। सहजिया वैष्णव सम्प्रदाय मे सहज शब्द की व्याख्या को बिल्कुल बदल दिया था। ये लोग रागानुगा प्रेमाभक्ति के अनुयायी बने और प्रेम को परमात्मा का सहजगुण या सहज रूप बतलाया। इसी प्रेम के द्वारा मनुष्य सहज भाव प्राप्त कर सकता है। रूप जब स्वरूप को प्राप्त कर लेता है तभी मनुष्य सहज भाव को प्राप्त होता है। मनुष्य के अन्तर्गत भागवत का आध्यात्मिक तत्त्व ही स्वरूप है और जो निम्नतर भौतिक तत्व है वह रूप है। रूप पर स्वरूप के आरोप से पार्थिव प्रेम को अपार्थिव रूप मे परिणत करना होता है, किन्तु बिना रूप की सहायता के स्वरूप की उपलब्धि नही हो सकती। इसीलिए अपार्थिव प्रेम की अनुभूति के लिए ये परकीया प्रेम को महत्त्व देते है। सहज रूप मनुष्य को प्रेमा भक्ति से ही प्राप्त हो सकता है। तभी उसमे शुद्ध सत्त्व की प्रतिष्ठा होती है और वह समभाव को प्राप्त होता है। सहजिया सम्प्रदाय की साधना का गूढ तत्त्व यह है कि पुरुष स्वय को स्त्री समझकर भगवान् की उपासना करे। ऐसा करने से वह यौन सम्बन्ध का परित्याग कर सकता है। इस सम्प्रदाय मे भगवान् आनन्द, माधुर्य और सौन्दर्य के उत्स है। राधाकृष्ण प्रकृति और पुरुष है। इनमे आश्रयाश्रयी भाव है। सहजिया सम्प्रदाय एक तान्त्रिक मार्ग कहा जा सकता है परन्तु शुद्ध तान्त्रिक मत से साधना पक्ष मे इसकी पर्याप्त भिन्नता है।

मध्वाचार्य के सम्प्रदाय का बगाल पर बडा प्रभाव पडा था जिसके फलस्वरूप बगाल मे गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय की परम्परा चली। गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय मे सख्य, दास्य तथा वात्सल्य भावो को भी उपासना मे उपादेय माना है किन्तु सहजिया वैष्णव केवल माधुर्य भाव की उपासना को ही श्रेष्ठ समझते है। गौडीय वैष्णवो मे तो परकीया तत्त्व को सिद्धान्त रूप से ही स्वीकार किया था पर सहजिया वैष्णवो ने इस तत्व को व्यावहारिक रूप भी दिया। वास्तव मे सहजिया वैष्णवो के सिद्धान्त बौद्ध सहजयान के सिद्धान्तो से बहुत मिलते-जुलते है। चण्डीदास की उपास्य वाशुली देवी वज्रयानियो की वज्रधात्वीश्वरी का ही दूसरा रूप है। सहजिया सम्प्रदाय के अतिरिक्त बगाल मे आउल, बाउल, साई, दरवेश आदि कई सम्प्रदायो का भी प्रचार था। बाउल तो सहजिया वैष्णवो से भी एक कदम और आगे थे। सहजिया लोगो का प्रेम राधा और कृष्ण दो व्यक्तियो की अपेक्षा रखता है जबकि बाउलो का प्रेम 'मनेर्मानुस' के प्रति होता है। उनका कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अलौकिक प्रेमपात्र है। उसे उसी के प्रति प्रेम करना चाहिए।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, बगाल की गौडीय शाखा माध्व सम्प्रदाय की ही एक शाखा कही जा सकती है, पर इसका व्यावहारिक पक्ष माध्व सम्प्रदाय से भिन्न है। चैतन्य महाप्रभु के आविर्भाव को भक्ति क्षेत्र मे एक चमत्कार समझना चाहिए। इस भक्ति आन्दोलन के युग मे उत्तर भारत के वैष्णवाचार्यो मे चैतन्य महाप्रभु का नाम अग्रगण्य है। यह एक विचित्र घटना है कि चैतन्य महाप्रभु की कर्म-भूमि बगाल ही रही पर उनके सम्प्रदाय का ब्रजभूमि से विशेष सम्बन्ध रहा। वास्तव मे चैतन्य मत का शास्त्रीय विवेचन ब्रजभूमि मे ही हुआ। माध्वमत के अनुयायियो मे माधवेन्द्रपुरी, गौडीय सम्प्रदाय और माध्व सम्प्रदाय के बीच सेतु का कार्य करने वाले है। चैतन्य महाप्रभु इन्ही के पट्ट शिष्य

ईश्वरपुरी के शिष्य थे, यद्यपि दीक्षा उन्होने केशव भारती से ली थी। भक्ति के प्रचार और प्रसार मे चैतन्य महाप्रभु ने बडा योग दान दिया। उन्होने भारतवष के सभी विख्यात तीर्थ स्थानो की यात्रा की। दक्षिण के तीर्थों के दर्शन से इनकी प्रवृत्ति वृन्दावन के उद्धार की ओर झुकी। वैष्णव धर्म के प्रचार मे इन्हे नित्यानन्द जैसे सहयोगी मिले और दोनो ने मिलकर समस्त उत्तरी भारत को विशेषकर बंगाल को भक्ति स्रोत से आप्लावित कर दिया। ब्रज, विशेषकर वृन्दावन के उद्धार का श्रेय बहुत कुछ चैतन्य महाप्रभु को है। यह विषय यद्यपि अभी तक विवादास्पद बना हुआ है फिर भी वृन्दावन के उद्धार मे चैतन्य महाप्रभु का जो योग दान है वह कम महत्त्व का नही है। माधवेन्द्रपुरी उनसे पहले वृन्दावन मे गोपाल की मूर्ति स्थापित कर चुके थे, चैतन्य महाप्रभु ने वृन्दावन के उद्धार के लिए अपने दो प्रधान शिष्यो को भेजा। ये दो भक्त थे लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भाचार्य। चैतन्य के सहयोगियो मे अद्वैताचार्य का नाम भी उल्लेखनीय है। चैतन्य मत को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय चैतन्य के शिष्य षट गोस्वामियो को है जिनके नाम है रूप सनातन, रघुनाथदास, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी।

माध्वमत की शाखा होने पर भी चैतन्य मत का दार्शनिक दृष्टिकोण स्वतन्त्र है। माध्व सम्प्रदाय का मूलाधार द्वैतवाद है जबकि चैतन्य का अचिन्त्य भेदाभेद। अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण परमतत्त्व है और उनकी अनन्त शक्तियाँ है। शक्ति और शक्तिमान् मे न भेद होता है और न अभेद। उनका सम्बन्ध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है, चैतन्यमत मे प्रेम को ही महान् पुरुषार्थ माना गया है और यह प्रेमाभक्ति धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अतिरिक्त पाँचवाँ पुरुषार्थ है। गौडीय वैष्णवो के सम्बन्ध मे एक बात यह भी विचारणीय है कि उन्होने साहित्य जगत् मे भक्ति को रस की कोटि तक पहुँचाया। 'भक्ति रसामृत सिन्धु' भक्ति रस का सुन्दर ग्रन्थ है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य पाच भावो से भगवान् कृष्ण की भावमयी गोलोक लीला सम्बन्ध रखती है। रति की निम्न कोटि शान्त मे है और चरमोत्कर्ष माधुर्य मे। यह माधुर्य भाव-रति तीन प्रकार की बताई गई है, साधारणी रति, समञ्जसा रति और समर्था रति। इनमे समर्था रति सर्वोपरि है जिसका एकमात्र लक्ष्य भगवान् का ही आनन्द है। उसके लिए भक्त मर्यादा का भी उल्लघन कर सकता है। गोपीभाव इस रति का दृष्टान्त है। यह गोपी-भाव ही अपने उत्कर्ष मे राधा भाव पर पहुँच जाता है। गौडीय वैष्णवो के इस रतिभाव मे और पुष्टि सम्प्रदाय के ब्रह्म सम्बन्ध मे इतना साम्य है। यह बडे आश्चर्य की बात है।

चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव बंगाल के अतिरिक्त उत्कल मे भी पडा। यो तो उत्कल भक्ति भावना का पहले से ही केन्द्र रहा है। पर जगन्नाथ जी के मन्दिर के निर्माण के पश्चात् तो यह प्रदेश वैष्णव भक्ति का महत्त्वपूर्ण पुण्य स्थल बन गया। भगवान् जगन्नाथ के आविर्भाव की कथा नारद पुराण, ब्रह्म पुराण, स्कन्द पुराण तथा कपिल संहिता आदि ग्रथो मे मिलती है। दारु-ब्रह्म का उल्लेख शाङ्खायन ब्राह्मण मे भी मिलता है, कुछ इतिहासकारो का कथन है कि इस प्रदेश मे शबरो का राज्य था। इसलिए यहाँ लकडी की मूर्ति बनाई गई। कुछ भी हो, जगन्नाथ जी की पूजा इस प्रदेश मे प्राचीन काल से होती आई है। अनेक बार उत्कल के मन्दिरो पर विदेशियो के आक्रमण हुए है और उनके ध्वंस चिह्नमात्र अवशिष्ट रह गए है। ह्वेनसाग ने अपनी यात्रा के प्रसग मे इस तथ्य की ओर सकेत किया है। इस प्रदेश के मन्दिरो और मूर्ति कला के सम्बन्ध मे यह बात लक्ष्य करने की है कि यहाँ

वैष्णव धम के माध्यम से कई सस्कृतियो का सगम हुआ है। चतन्य महाप्रभु ने राजा प्रताप रुद्र (१५०३ ई०) के समय मे नीलाँचल क्षेत्र को अपना प्रचार क्षेत्र बनाया और तभी से इस क्षेत्र का महत्त्व बढ गया। पुरी के सम्बन्ध मे इतिहासकारो का यह भी मत है कि यहाँ की जगन्नाथ की मूर्ति पर बौद्ध प्रभाव हे। इसमे कोई सन्देह नही कि उत्कल प्रान्त बौद्धो का अड्डा रहा है। कटक जिले के रत्नगिरि नामक स्थान मे आज भी बौद्ध महाविद्यालय पुष्प गिरि के भग्नावशेष मिलते है और स्थान स्थान पर अवलोकितेश्वर, वज्रपाणि, आयतारा आदि बौद्ध देवता पाए जाते हैं। साँची से प्राप्त धम ग्रथो से इस मूर्ति की बडी समानता है। कुछ लोगो का कहना हे कि जगन्नाथ जी की रथ यात्रा भी बौद्ध प्रभाव का फल हे। उडिया की कुछ पुस्तको मे जगन्नाथ जी बुद्ध के ही रूप माने गए है। जगन्नाथ जी को हम पूरा बौद्ध विग्रह तो मानते हे पर इसमे हमे कोई सन्देह नही हे कि यहाँ के विधि-विधान, वास्तु कला, मूर्ति कला आदि इस बात को प्रमाणित करते है कि जगन्नाथपुरी मे शबर, बौद्ध और ब्राह्मण सस्कृतियो का सुन्दर समन्वय हुआ हे। वैष्णव धम उत्कल प्रान्त मे बहुत प्राचीन काल से प्रचलित था। इसके प्रमाण कुछ शिला लेखो से मिलते है। हाथी गुफा का शिला लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चैतय के प्रभाव से उत्कल साहित्य मे पाँच महान् वैष्णव कवि हुए जो 'पच-सखा' कहे जाते है—बलरामदास, अनन्तदास, यशवन्तदास, जगन्नाथदास और अच्युतानन्ददास। इन सखाओ ने उडिया भाषा मे अनेक ग्रन्थ रचे और ये सखा चैतन्य महाप्रभु के लीला परिकर माने जाते हे। उन्होने प्रेमाभक्ति का प्रचार इस प्रदेश मे किया। इनके उपदेश सन्तो की ही भाति थे और इनका दशन कबीर आदि सन्तो के दशन से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। इन्होने ब्रह्म के सगुण और निगुण दोनो रूपो का निरूपण किया है किन्तु परम तत्त्व निराकार शून्य को माना है। इनके सिद्धान्तो मे वैष्णव, तान्त्रिक और बौद्ध तत्त्वो की त्रिवेणी दशनीय है। बगाल से आगे असम प्रदेश मे भी महाप्रभु चैतन्य के वैष्णव धम का प्रभाव पडा। असम प्रदेश प्राचीन काल से शाक्तो का गढ रहा है। कामाख्या पीठ कामरूप मे ही है। वैष्णव धम की यह बडी भारी विजय थी कि शाक्त प्रभाव वाले देश मे आज भी इतनी बडी सख्या मे वैष्णव पाये जाते हे। वैष्णव धम का प्रचार यहाँ शकरदेव और माधवदेव ने किया। शकरदेव महापुरुष कहलाते थे, इसलिए उनसे प्रचारित धर्म को आज भी महाधम या महापुरुष धम कहते हे। सिद्धान्त रूप से तो ये अद्वैतवादी थे और आचरण रूप मे पूण भक्त। इनका भक्ति रत्नाकर और भक्ति रत्नावली ग्रथ बडे अद्भुत है। असमियाँ भाषा मे असख्य कीतन पदो की रचना शकरदेव ने की। कुछ ग्रन्थ ब्रजबुलि मे लिखे गए। हिन्दी के भक्ति-साहित्य का अध्ययन भक्ति भाव की दृष्टि से ब्रजबुलि-साहित्य के अध्ययन के बिना अधूरा ही है।

वैष्णव धम के ऐतिहासिक विवेचन मे महाराष्ट्र के वैष्णव पथो का उल्लेख भी आवश्यक है। महाराष्ट्र का बडा पुराना वैष्णव पथ महानुभाव या मान भाव या महात्मा पथ है। गुजरात मे इसे अच्युत पथ कहते हे और पजाब मे जयकृष्ण पथ। इस पथ के अनुयायी अपनी सभी बातो को गोपनीय रखने मे विश्वास रखते है। लोकमान्य तिलक ने इस पथ को प्रकाश मे लाने का कुछ प्रयत्न किया। प्रसिद्ध इतिहासकार राजवाडे, प्रसिद्ध लेखक भावे और यशवन्त पाण्डे ने इस पथ के विषय मे सराहनीय काय किये है। प्रत्येक बात को गुप्त रखने की भावना के कारण इस पथ के अनुयायियो को यहा कुछ अश्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। एक कहावत भी प्रसिद्ध है 'करणी कसावाची बोलणी मानुभावाची'। इस पथ के उपास्य देवता श्रीकृष्ण

और दत्तात्रेय है। कुछ ऐसे ऐतिहासिक कारण बने जिनसे ये हिन्दू धर्म विरोधी समझे जाने लगे थे, परन्तु अब परिस्थिति कुछ बदल रही है। इस पथ का उदय तेरहवी शताब्दी मे हुआ और इसके आद्य आचाय गोविन्द प्रभु माने जाते है, परन्तु पथ का प्रवतन श्री चक्रधर द्वारा हुआ और प्रचार उनके शिष्य श्री नागदेवाचाय द्वारा। इस पथ मे स्त्री और पुरुष दोनो को ही सन्यास की दीक्षा दी जाती है। इस पथ के कतिपय लीलापरक ग्रन्थ मराठी भाषा मे मिलते है। कुछ मगल गीत भी है। हिन्दुओ की जाति व्यवस्था के विरोध मे इस पथ का उदय हुआ था। इनका सिद्धान्त दृष्टि द्वैताद्वैत की ओर है और भक्ति भावना योग से समन्वित। श्री मद्भगवद्गीता इनका मान्य ग्रन्थ है और इस पथ के आचार्यो ने श्रीमद्भगवद् गीता की गई टीकाएँ लिखी है। इस पथ का प्रचार पजाब और अफगानिस्तान तक हुआ और मराठी भाषा का प्रचार सुदूर प्रदेशो मे हुआ।

महाराष्ट्र का वास्तविक वैष्णव सम्प्रदाय 'बारकरी पथ' कहलाता है। इस पथ के उपास्य विठ्ठलदेव जी है जो कृष्णचन्द्र के बाल रूप है। पण्ढरपुर इनका तीर्थ स्थान है जहाँ एक ईंट पर खडे हुए विठ्ठल जी की मूर्ति है और साथ ही रुक्मिणी जी भी विद्यमान है। विठ्ठल शब्द की व्याख्या विद्वानो ने कई प्रकार से की है। सस्कृत के विद्वान् इसका विग्रह इस प्रकार करते है—विदा ज्ञानेन, ठान् शून्यान्, लाति गृह्णाति इति विठ्ठल। कोई कोई विठ्ठल को विटस्थल का अपभ्रश मानते है अर्थात् इट पर खडा होने वाला और किसी ने विष्णु का अपभ्रश विठोवा माना है। सन्त तुकाराम जी के अनुसार वि गरुड और ठोवा वाहन, इस प्रकार विठोवा की व्युत्पत्ति की है। इस पथ को मालकरी पथ और भागवत पथ भी कहते है। तुलसी की माला इस पथ का विशिष्ट चिह्न है। विठोवा का ही दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। इस पथ के मान्य ग्रन्थ भागवत और भगवद्गीता है। महाराष्ट्र प्रान्त की भक्ति भावना बडी पुरानी है पर पण्ढरपुर मे विठ्ठल जी का आविर्भाव पुण्डरीक के समय मे हुआ। सन्त ज्ञानदेव ने इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप दिया और उन्होने गीता की ज्ञानेश्वरी टीका लिखी। पाण्डुरग की उपासना तो और भी पुरानी ठहरती है। शकराचाय ने अपने पाण्डरङ्गाष्टक मे पुण्डरीक के लिए पाण्डुरङ्ग के आविर्भाव का सकेत किया है। कुछ भी हो इस मत का प्रचार ज्ञानदेव जी के समय से अधिक हुआ। इस मत मे अद्वैतवाद के साथ कृष्ण भक्ति का अच्छा सामञ्जस्य हुआ है और साथ ही साथ योग भावना का भी पूर्ण सम्मिश्रण इस मत मे दीख पडता है। ज्ञानदेव को आज भी लोग सिद्ध योगी मानते है। ज्ञानदेव के साथ साथ नामदेव का नाम भी उल्लेखनीय है। नामदेव ने सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामञ्जस्य किया है। नामदेव का कबीर की वाणियो से बहुत साम्य है। इनके कारण महाराष्ट्र प्रा त मे भागवत सम्प्रदाय बहुत व्यापक हुआ और अनेक सन्त इसके प्रचार मे प्रवृत्त हुए। इन सन्तो मे सब जाति के लोग थे। विसोवा जोगी थे और गोरा कुम्हार, सावता माली, धोखा कम्हार, सेना नाई, नरहरि सुनार जैसे सन्त इसी सम्प्रदाय की देन है। साथ ही साथ कई भक्तिने भी हो गई है। जिनमे जनाबाई, कान्हूयाना, सखूबाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस पथ की सन्त परम्परा मे एक नाथ (१५३३ ई०) बडे प्रसिद्ध है। इनके विषय मे कितनी ही अलौकिक घटनाएँ आज भी महाराष्ट्र मे प्रचलित है। इनका नाथ-भागवत एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके अतिरिक्त इनका रुक्मिणी स्वयवर और भाव रामायण भी भक्ति के श्रेष्ठ ग्रन्थो मे गिने जा सकत है। सन्त तुकाराम भी इस सम्प्रदाय के महनीय व्यक्ति थे। ये अभग मराठी साहित्य के रत्न माने जाते है तथा भक्तो के

शिरोमणि तुकाराम शिवाजी के समकालीन थे। इस मत मे अन्य भी बहुत से सन्त हुए है जिन्होने अपनी अमर-वाणी से मराठी साहित्य को समृद्ध किया। बारकरी मत मे चार सम्प्रदाय माने जाते हैं—चैतन्य, स्वरूप, आनन्द और प्रकाश। इन चारो सम्प्रदायो मे कोई तात्विक भेद नही है। बारकरी पथ पूर्ण रूप से वैदिक है और वर्णाश्रम धर्म मे आस्था रखता है। सिद्धान्त रूप से अद्वैतवाद का पक्षपाती होता हुआ भी व्यवहार पक्ष मे यह सगुण-भक्ति का पोषक है। तुलसी की माला और एकादशी व्रत का माहात्म्य इस मत मे बहुत अधिक है। तुकाराम जी ने अपने मत का सार शिवाजी के पास इस प्रकार लिख कर भेजा था –

आम्ही तेणे सुखी म्हाडा विट्ठल विट्ठलमुखी।
कण्ठी मिरवा तुलसी व्रत करा एकादशी।

इस पथ मे भक्ति और ज्ञान दोनो का सुन्दर समन्वय हुआ है। युगल उपासना मे राधा के स्थान पर रुक्मिणी को रक्खा गया है जिससे यह मत लोक सग्रही हो गया। महाराष्ट्र मे बारकरी सम्प्रदाय के अतिरिक्त रामदासी सम्प्रदाय का भी प्रचार है जिसके प्रवर्तक शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास जी थे। इस सम्प्रदाय मे समाज की ऐहिक और पारलौकिक दोनो प्रकार की उन्नति को महत्व दिया गया है। स्वामी जी के प्रसिद्ध ग्रथ दासबोध मे इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। स्वामी जी के उपास्य राम थे और उन्होने रामभक्ति मे ब्रह्म-ज्ञान और कर्म-काण्ड दोनो का सामञ्जस्य किया।

महाराष्ट्र प्रान्त की भाति गुजरात मे भी स्वतन्त्र रूप से वैष्णव धर्म का विकास हुआ। ऐतिहासिक तथ्यो से यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि गुजरात मे भागवत धर्म का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। गुजरात के दो वैष्णव पीठ प्रसिद्ध है—द्वारका और डाकोर जी। द्वारका मे तो शकराचार्य जी ने आठवी शताब्दी मे ही अपना पीठ स्थापित किया था। तेरहवी शताब्दी से तो गुजरात मे वैष्णव धर्म का प्रचार बहुत ही अधिक बढ गया था। मध्य युग मे राधाकृष्ण की भक्ति के प्रचार का श्रेय नरसी मेहता और मीराबाई को है। जब से पुष्टि मार्ग का प्रचार गुजरात मे हुआ तब से तो मानो गुजरात भक्ति का पीठ ही बन गया और समस्त गुजरात मे श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति फैल गई। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने पुष्टिमार्ग के प्रचार के लिये छै बार गुजरात की यात्रा की।

यहाँ प्रसग वश वृन्दावन के कुछ वैष्णव सम्प्रदायो की चर्चा भी आवश्यक है।

वैष्णवाचार्यों के प्रभाव से ब्रजभूमि मे परिनिष्ठित सम्प्रदायो के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्प्रदाय भी प्रचलित हुए। यह पहले कहा जा चुका है कि वृन्दावन मे निम्बार्क सम्प्रदाय सब से पुराना है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे सब से पहले राधा जी को इतना महत्व मिला था। उनके सम्पर्क से वृन्दावन मे कुछ भक्तो ने कुछ परिवर्तन के साथ राधा की भक्ति-भावना का प्रचार किया। कुछ विद्वानो का मत है कि ऐसे सम्प्रदायो का प्रचलन वृन्दावन मे चैतन्य के प्रभाव से हुआ। राधा के सम्बन्ध मे निम्बार्क और चैतन्य सम्प्रदायो मे मौलिक भेद यह है कि निम्बार्क सम्प्रदाय मे तो राधा के स्वकीयात्व को ही महत्व दिया गया है जब कि गौडीय सम्प्रदाय मे इस भाव की पूर्ण स्पष्टता नही है। श्री जीव गोस्वामी ने परकीयात्व को केवल रस विशेष के पोषण के लिए ग्रहण किया था पर उज्ज्वल नीलमणि के टीकाकार श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस भाव की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया है। हमे तो ऐसा लगता है कि वृन्दावन के इन

छोटे-छोटे सम्प्रदायो पर निम्बाक, वल्लभ और चत ग सभी सम्प्रदायो का प्रभाव है। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय को तो निम्बाक मत की ही एक शाखा मान सकते हे। इस शाखा के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास जी थे। इसमे गोपी भाव का वशिष्ट्य है। सखी सम्प्रदाय मे सिद्धात पक्ष पर बल नही दिया गया हे इसका केवल साधना पक्ष ही महत्वपूर्ण है। इस सम्प्रदाय की उपासना सखी भाव की हे। स्वामी हरिदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के उपासक थे और उनकी ललित लीलाओ का दर्शन सखी भाव से किया करते थे। सगीत कला मे निपुण होने के कारण वे अपने सगीत के द्वारा ही राधाकृष्ण की उपासना करते थे। हरिदास जी की पदावली मे उनके सिद्धात और व्यवहार दोनो का विवेचन हे। उनके पदो का एक सग्रह केलिमाला नाम से विख्यात है। इस सम्प्रदाय के भक्तो ने, जो टट्टी सस्थान के भक्त कहलाते है, माधुर्य और प्रेम से भरे अनेक पदो की रचना की है। हरिदास जी से लेकर आज तक टट्टी सस्थान के भक्तो की परम्परा चली आ रही हे।

राधा को केन्द्र मानकर वृदावन का दूसरा सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय है। उसके प्रवतक श्री हित हरिवश जी थे जो मुरली के अवतार माने जाते है। हितहरिवश जी भी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे और उन्होने कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा रानी को ही अपनी उपासना मे अधिक महत्त्व दिया है। इनकी उपासना मधुर भाव की उपासना कही जा सकती है। राधा की अनन्य उपासना, राधा की चाकरी ही उनकी भक्ति भावना का मुख्य तत्त्व है, इस तत्त्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन काय है। इन्होने भी अध्यात्म पक्ष का विवरण कम दिया हे। इनको उपासना मे विरह भावना का महत्त्व नही है। वह केवल सयोग पक्ष को ही लेकर चलती है। स्वामी जी के राधानिधि और हित चोरासो ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त आशास्तव, चतु श्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधा तन्त्र ग्रन्थ भी उन्ही के बताए जाते है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के पोषको मे हितहरिवश जी के पश्चात् श्री हरिराय जी व्यास का नाम उल्लेखनीय है। ये वास्तव मे हित हरिवश जी के ही समकालीन थे और आगे चलकर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचाय कहलाए। व्यास जी के दो ग्रन्थ प्राप्त होते है जिनमे एक सस्कृत का ग्रन्थ नवरत्न अप्रकाशित है और दूसरा ग्रन्थ 'व्यास वाणी' प्रकाशित हो चुका हे' भक्ति भावना की दृष्टि से इनके पद परमोच्च कोटि के हे जो भक्ति भावना से ओत-प्रोत हृदय के उद्गार कहे जा सकते है। राधाकृष्ण की लीला का वर्णन बडे विस्तार के साथ किया हे। व्यास जी के अनन्तर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्यों मे ध्रुवदास जी का नाम उल्लेखनीय हे। जिन्होने चालीस से अधिक ग्रन्थ लिखे। भक्त नामावली नामक उनका ग्रन्थ बडा महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ मे उन्होने बहुत से भक्तो का परिचय दिया है। इन्होने हित हरिवश के सिद्धान्तो का पूर्ण विवेचन किया है और अपने मत की साधना प्रणाली को बडा गूढ एव रहस्यमय बताया हे। इस मत की उपासना का तत्त्व सब सम्प्रदायो से विलक्षण है। नित्य मिलन को ही इन्होने विशेष महत्व दिया है। इस मिलन मे भी विरह सदृश उत्कण्ठा रहती हे। स्वकीया, परकीया, विरह-मिलन तथा स्व-पर भेद से रहित नित्य विहार रस ही इस सम्प्रदाय का इष्ट तत्त्व है। इस सम्प्रदाय को वास्तव मे रस सम्प्रदाय कहा जा सकता हे। राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व के प्रतीक है। श्री राधा जी सर्वत्र प्रकृति रूप मे व्याप्त हे। वही सखियो के रूप मे है और वही गोपियो के साथ मे। प्रत्येक जीव प्रेम रूपा गोपी हे। अपने स्वरूप को भूलकर ही जीव नाना प्रकार के कष्ट भोगता है इसलिए उसे अपने स्वरूप का

अनुसधान करना चाहिये। उनके कृष्ण निगु ण-सगुण से परे है और ईश्वरो के भी ईश्वर हैं। आदि पुरुष और नारायण के भी कारण है, सब अवतारो के मूल है और स्वय रस रूप है। भगवत्तत्त्व केवल एक ही है। लीला और क्रियाओ के अनुसार उसके दो भेद हो गए है। इस तत्त्व का नाम ही श्री राधावल्लभलाल है जो वृ दावन मे नित्य विहार करते हैं। उनके नित्य विहार के परिकर के चार अग है—श्री राधा, श्री कृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियाँ परन्तु मूल भूत तत्त्व एक ही है। श्री वृन्दावन दिव्य धाम है जहाँ यह नित्य विहार होता है। यह नित्य-विहार प्रेम-केलि मात्र है। युगल किशोर एक प्रेम के ही दो रूप है। प्रेम तत्त्व निवननीय है और एक होकर भी अनेक रूपो मे विलास करता है।

वृ दावन के इन सम्प्रदायो ने भी वैष्णव भक्ति भावना के प्रचार और प्रसार मे बडा योग दिया और हिन्दी के भक्ति साहित्य सरोवर को प्रेमामृत से लबालब भर दिया। कृष्ण भक्ति का प्रचार भक्ति-आन्दोलन के युग मे वैष्णव धम का प्रधान अग रहा है। उत्तर भारत मे यह भक्ति आन्दोलन जितना सफल हुआ सभवत दक्षिण मे उतना न हो सका। इसके कई कारण थे। उत्तरी भारत मे राजनैतिक परिस्थितियो के कारण भक्ति भावना के प्रचार के उपयुक्त वातावरण बन चुका था। वैष्णव धम के मूलाधार राम और कृष्ण अवतारो की जन्म-भूमि उत्तर मे ही थी। सिद्धो और नाथो ने उत्तर भारत की भूमि को अपने शुष्क सम्प्रदायो से इतना रौद डाला था कि प्रत्येक भावुक भक्त किसी सरस और शीतल पवन के झोके की प्रतीक्षा मे था। इसके अतिरिक्त दक्षिण मे शैव धम का प्रचार होने के कारण वैष्णव धम के प्रचार के अवसर कम थे वहाँ वैष्णवो को शैवो से लोहा लेना पडता था। शैवो की भक्ति भावना वैष्णवो से कम सरस नही थी। शैव धम का प्रचार उत्तर मे भी था, पर उसका प्रचार करने वाला उत्तर मे कोई ऐसा आचाय नही हुआ जो उनकी सामयिक सावभौम सत्ता स्थापित करने मे समर्थ होता। पौराणिक मत भी रूढियो से ग्रस्त था। वग लोकधम न रहकर व्यक्ति धर्म होता जा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ और पाखण्ड का प्रचार था। सूफी सन्त जनता मे अपने प्रेम का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत की इन परिस्थितियो के सकेत हमे तत्कालीन रचनाओ मे पर्याप्त मात्रा मे मिल जाते हे। उत्तर भारत के वैष्णव धम के आन्दोलन का विवेचन करते समय यह बात नही भूलनी चाहिये कि इस धम का बीजारोपण सब प्रथम काशी मे ही हुआ था और वैष्णव धम के उपास्य कृष्ण न होकर राम थे। कबीर के नाम से एक साखी प्रचलित है—

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानन्द
परगट करी कबीर ने सात दीप नौ खण्ड।

यह साखी प्रामाणिक हो या न हो, पर इसमे सन्देह नही कि स्वामी रामानन्द जी का वैष्णव भक्ति के प्रचार मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भारत मे विष्णु भक्ति के प्रचार के दो स्थान थे—काशी और मथुरा। काशी राम-भक्ति के प्रचार का केन्द्र थी और मथुरा कृष्ण-भक्ति के प्रचार का। स्वामी रामानन्द जी की जन्म तिथि का प्रश्न अभी तक विवादास्पद है। भण्डारकर और ग्रियसन ने उनका जन्म सन् १२९९ मे माना है और ये दोनो ही महानुभाव उन्हे रामानुजाचार्य से चतुथ आचाय मानते हे। डा० ताराचन्द ने रामानन्द को रामानुज की परम्परा मे बाईसवाँ आचाय मानकर उनका जन्म चौदहवी शताब्दी के अन्त मे माना है। उनकी मृत्यु तिथि के

छोटे-छोटे सम्प्रदायो पर निम्बार्क, वल्लभ और चैतन्य सभी सम्प्रदायो का प्रभाव है। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय को तो निम्बार्क मत की ही एक शाखा माना जाता है। इस शाखा के प्रवर्तक स्वामी हरिदास जी थे। इसमे गोपी भाव का वैशिष्ट्य है। सखी सम्प्रदाय मे सिद्धान्त पक्ष पर बल नही दिया गया है इसका केवल साधना पक्ष ही महत्वपूर्ण है। इस सम्प्रदाय की उपासना सखी भाव की है। स्वामी हरिदास जी राधाकृष्ण के युगल रूप के उपासक थे और उनकी ललित लीलाओ का दर्शन सखी भाव से किया करते थे। संगीत कला मे निपुण होने के कारण वे अपने सगीत के द्वारा ही राधाकृष्ण की उपासना करते थे। हरिदास जी की पदावली मे उनके सिद्धान्त और व्यवहार दोनो का विवेचन है। उनके पदो का एक सग्रह केलिमाला नाम से विख्यात है। इस सम्प्रदाय के भक्तो ने, जो टट्टी सस्थान के भक्त कहलाते है, माधुर्य और प्रेम से भरे अनेक पदो की रचना की है। हरिदास जी से लेकर आज तक टट्टी सस्थान के भक्तो की परम्परा चली आ रही है।

राधा को केन्द्र मानकर वृदावन का दूसरा सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय है। उसके प्रवर्तक श्री हित हरिवश जी थे जो मुरली के अवतार माने जाते है। हितहरिवश जी भी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति के उपासक थे और उन्होने कृष्ण की अपेक्षा श्री राधा रानी को ही अपनी उपासना मे अधिक महत्त्व दिया है। इनकी उपासना मधुर भाव की उपासना कही जा सकती है। राधा की अनन्य उपासना, राधा की चाकरी ही उनकी भक्ति भावना का मुख्य तत्त्व है, इस तत्त्व को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इन्होने भी अध्यात्म पक्ष का विवरण कम दिया है। इनकी उपासना मे विरह भावना का महत्त्व नही है। वह केवल सयोग पक्ष को ही लेकर चलती है। स्वामी जी के राधानिधि और हित चोरासी ग्रन्थ प्रसिद्ध है। इनके अतिरिक्त आशास्तव, चतु श्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधा तत्र ग्रन्थ भी उन्ही के बताए जाते है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय के पोषको मे हितहरिवश जी के पश्चात् श्री हरिराय जी व्यास का नाम उल्लेखनीय है। ये वास्तव मे हित हरिवश जी के ही समकालीन थे और आगे चलकर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्य कहलाए। व्यास जी के दो ग्रन्थ प्राप्त होते है जिनमे एक सस्कृत का ग्रन्थ नवरत्न अप्रकाशित है और दूसरा ग्रन्थ 'व्यास वाणी' प्रकाशित हो चुका है। भक्ति भावना की दृष्टि से इनके पद परमोच्च कोटि के है जो भक्ति भावना से ओत प्रोत हृदय के उद्गार कहे जा सकते है। राधाकृष्ण की लीला का वर्णन बडे विस्तार के साथ किया है। व्यास जी के अनन्तर राधावल्लभीय सम्प्रदाय के आचार्यों मे ध्रुवदास जी का नाम उल्लेखनीय है। जिन्होने चालीस से अधिक ग्रन्थ लिखे। भक्त नामावली नामक उनका ग्रन्थ बडा महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ मे उन्होने बहुत से भक्तो का परिचय दिया है। इन्होने हित हरिवश के सिद्धान्तो का पूर्ण विवेचन किया है और अपने मत की साधना प्रणाली को बडा गूढ एव रहस्यमय बताया है। इस मत की उपासना का तत्त्व सब सम्प्रदायो से विलक्षण है। नित्य मिलन का ही इन्होने विशेष महत्व दिया है। इस मिलन मे भी विरह सदृश उत्कण्ठा रहती है। स्वकीया, परकीया, विरह-मिलन तथा स्व-पर भेद से रहित नित्य विहार रस ही इस सम्प्रदाय का इष्ट तत्त्व है। इस सम्प्रदाय को वास्तव मे रस सम्प्रदाय कहा जा सकता है। राधा और कृष्ण एक ही तत्त्व के प्रतीक है। श्री राधा जी सर्वत्र प्रकृति रूप मे व्याप्त है। वही सखियो के रूप मे है और वही गोपियो के साथ मे। प्रत्येक जीव प्रेम रूपा गोपी है। अपने स्वरूप को भूलकर ही जीव नाना प्रकार के कष्ट भोगता है इसलिए उसे अपने स्वरूप का

अनुसधान करना चाहिये। उनके कृष्ण निगु ण-सगुण से परे है और ईश्वरो के भी ईश्वर हैं। आदि पुरुष और नारायण के भी कारण है, सब अवतारो के मूल है और स्वय रस रूप है। भगवत्तत्त्व केवल एक ही है। लीला और क्रियाओ के अनुसार उसके दो भेद हो गए है। इस तत्त्व का नाम ही श्री राधावल्लभलाल है जो वृ दावन मे नित्य विहार करते है। उनके नित्य विहार के परिकर के चार अग है—श्री राधा, श्री कृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियाँ परन्तु मूल भूत तत्त्व एक ही है। श्री वृन्दावन दिव्य धाम है जहाँ यह नित्य विहार होता है। यह नित्य विहार प्रेम-केलि मात्र है। युगल किशोर एक प्रेम के ही दो रूप है। प्रेम तत्त्व निवचनीय है और एक होकर भी अनेक रूपो मे विलास करता है।

वृ दावन के इन सम्प्रदायो ने भी वैष्णव भक्ति भावना के प्रचार और प्रसार मे बडा योग दिया और हिन्दी के भक्ति साहित्य सरोवर को प्रेमामृत मे लबालब भर दिया। कृष्ण भक्ति का प्रचार भक्ति-आदोलन के युग मे वैष्णव धम का प्रधान अग रहा है। उत्तर भारत मे यह भक्ति आदोलन जितना सफल हुआ सभवत दक्षिण मे उतना न हो सका। इसके कई कारण थे। उत्तरी भारत मे राजनैतिक परिस्थितियो के कारण भक्ति भावना के प्रचार के उपयुक्त वातावरण बन चुका था। वैष्णव धम के मूलाधार राम और कृष्ण अवतारो की जन्म-भूमि उत्तर मे ही थी। सिद्धो और नाथो ने उत्तर भारत की भूमि को अपने शुष्क सम्प्रदायो से इतना रौद डाला था कि प्रत्येक भावुक भक्त किसी सरस और शीतल पवन के झोके की प्रतीक्षा मे था। इसके अतिरिक्त दक्षिण मे शैव धम का प्रचार होने के कारण वैष्णव धम के प्रचार के अवसर कम थे वहाँ वैष्णवो को शैवो से लोहा लेना पडता था। शैवो की भक्ति भावना वैष्णवो से कम सरस नही थी। शैव धम का प्रचार उत्तर मे भी था, पर उसका प्रचार करने वाला उत्तर मे कोई ऐसा आचार्य नही हुआ जो उनकी सामयिक सावभौम सत्ता स्थापित करने मे समथ होता। पौराणिक मत भी रूढियो से ग्रस्त था। वग लोकधम न रहकर व्यक्ति धम होता जा रहा था। अध्यात्म के नाम पर दम्भ और पाखण्ड का प्रचार था। सूफी सन्त जनता मे अपने प्रेम का प्रचार कर रहे थे। उत्तर भारत की इन परिस्थितियो के सकेत हमे तत्कालीन रचनाओ मे पर्याप्त मात्रा मे मिल जाते है। उत्तर भारत के वैष्णव धम के आदोलन का विवेचन करते समय यह बात नही भूली जानी चाहिये कि इस धम का बीजारोपण सब प्रथम काशी मे ही हुआ था और वैष्णव धम के उपास्य कृष्ण न होकर राम थे। कबीर के नाम से एकसाखी प्रचलित है—

भक्ति द्राविड उपजी लाए रामानन्द
परगट करी कबीर ने सात दीप नौ खण्ड।

यह साखी प्रामाणिक हो या न हो, पर इसमे सन्देह नही कि स्वामी रामानन्द जी का वैष्णव भक्ति के प्रचार मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उत्तरी भारत मे विष्णु भक्ति के प्रचार के दो स्थान थे—काशी और मथुरा। काशी राम-भक्ति के प्रचार का केन्द्र थी और मथुरा कृष्ण-भक्ति के प्रचार का। स्वामी रामानन्द जी की जन्म-तिथि का प्रश्न अभी तक विवादास्पद है। भण्डारकर और ग्रियसन ने उनका जन्म सन् १२९९ मे माना है और ये दोनो ही महानुभाव उन्हे रामानुजाचाय से चतुथ आचाय मानते है। डा० ताराचन्द ने रामानन्द को रामानुज की परम्परा मे बाईसवाँ आचाय मानकर उनका जन्म चौदहवी शताब्दी के अन्त मे माना है। उनकी मृत्यु तिथि के

सम्बन्ध मे भी इसी प्रकार मतभेद है। भण्डारकर उनका देहावसान सन् १४११ मे मानते हैं। कुछ भी हो, स्वामी रामानन्द जा राम भक्ति के सव प्रथम आचाय माने जाते है और कहा जाता है कि वे दक्षिण से ही राम भक्ति को उत्तर मे लाए थे। वास्तव मे राम भक्ति के सदभ मे रामानन्द की अपेक्षा उनके गुरु राघवानन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रचार का काय चाहे रामानन्द जी ने किया हो, पर सिद्धात-निरूपण की आधार शिला का न्यास स्वामी राघवानन्द जी के कर कमलो द्वारा ही हुआ था। वे दक्षिण तथा उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलनो के सयोजक व्यक्ति कहे जा सकते है। नाभादास जी ने अपने 'भक्तमाल' मे राघवानन्द जी और रामानन्द जी दोनो का ही उल्लेख किया है। अनन्त स्वामी-रचित 'हरिभक्ति-सिन्धुवेला' मे राघवानन्द जी का स्मरण इस प्रकार किया गया है—

वन्दे श्री राघवाचाय रामानुजकुलोद्भवम्।
याम्यादुत्तरमागत्य राममत्र प्रचारकम् ॥

राघवान द जी की साधना योग और भक्ति के समन्वित रूप मे थी। उत्तर-भारत मे उस समय नाथ-योगियो का जोर था और योग-समन्वित भक्ति ही सफल हो सकती थी। स्वामी जी ने अपनी भक्ति साधना मे हठयोग तथा वैष्णव भक्ति का पूर्ण सामञ्जस्य प्रस्तुत किया। आगे चलकर उनकी भक्ति पद्धति को उनके शिष्य रामानन्द जी ने जन-आन्दोलन का रूप दिया। रामानन्द जी के शिष्य दो कोटि के थे—एक तो सुधारवादी और दूसरे प्राचीन भक्ति-परम्परा के भक्त। रामान द जी के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक द त-कथाये प्रचलित है। उनके ग्र थो के सम्ब ध मे भी मतभेद है। 'वैष्णव मताब्ज भास्कर" ही उनका एक मात्र प्रामाणिक ग्र थ माना जा सकता है। सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो के कारण स्वामी रामान दजी ने रामभक्ति को नवीन साचे मे ढालकर जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। श्री शकराचाय का ज्ञान और निवृत्तिपरक अद्वैतवाद साधारण जनता को सान्त्वना देने मे असमथ सिद्ध हो चुका था। आचाय कुमारिल के कम माग तथा प्रवृत्ति पथ से भी लोग ऊब चुके थे। नाथ-पथियो का योग माग वैयक्तिक साधन के कारण सकुचित होता जा रहा था। भगवान् के परोक्ष अथवा अन्तर्यामी रूप आत-समाज के दुख निवारण मे असमथ थे। धार्मिक क्षेत्र मे अध्यात्म और वेद-वाद के नाम पर जनता को ठगने वाले पाखडियो की कमी नही थी। इस प्रकार ज्ञान, कम और भक्ति—तीनो के ही स्वरूप धुँधले हो चुके थे। ऐसी परिस्थिति मे, शील, शक्ति और सौ दर्य-समन्वित पुरुषोत्तम भगवान् की दिव्य झाँकी दिखाने का सुन्दर प्रयास स्वामी रामानन्द जी ने किया। स्वामी जी सम वय वादी थे। भक्ति के क्षेत्र मे उ होने जाति-पाँति को कोई महत्त्व नही दिया। इनके सुधारवादी शिष्य छोटी जातियो के ही व्यक्ति थे, जिनकी सख्या लगभग छै थी। उस समय जब भारतीय समाज मे जाति प्रथा का इतना महत्त्व था, रामानन्द जी का यह अद्भुत साहस बडा ही सराहनीय था।

स्वामी जी की दष्टि बडी ही उदार और व्यापक थी। वे सबसे पहले आचाय थे, जि होने भक्ति का द्वार अन्त्यजो तक के लिये समान भाव से मुक्त कर दिया था। इन्होने लक्ष्मी-नारायण के स्थान पर सीताराम को अपना इष्ट देव स्वीकार किया क्योकि लक्ष्मी-नारायण क्षीर सागर मे शयन करने के कारण साधारण मानव की पहुँच से बहुत दूर पडते थे।

इस प्रकार सोलहवी शताब्दी तक यह भक्ति आन्दोलन पूर्ण रूप से जन आन्दोलन बन गया। इस आन्दोलन के नेताओ ने सस्कृत के स्थान पर प्रान्तीय भाषाओ को अपने प्रचार का माध्यम बनाया, जिसके फलस्वरूप प्रातीय भाषाओ का साहित्य बडा समृद्ध और शक्तिशाली बन गया जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके है। राम और कृष्ण के पावन चरितो को लेकर अनेक ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। रामचरित को लेकर लिखने वाले भक्त कवियो ने अवधी भाषा को ही विशेष रूप से अपनी भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया, जबकि कृष्ण धारा के कवियो ने ब्रज-भाषा को अपनाकर अपने मधुर काव्य की रचना की। ब्रज भाषा ने वैष्णव सम्प्रदायो को एकता के सूत्र मे बाँधने का महनीय काय किया। यह भक्ति आन्दोलन भारतीय भाषाओ, विशेषकर हिदी, की साहित्य-सर्जना मे बडे महत्त्व का है। हमने यहाँ राम भक्ति आन्दोलन की बात केवल प्रसगवश ही कही है। हमारा अभिप्राय कृष्ण भक्ति आन्दोलन की ही पृष्ठ भूमि प्रस्तुन करना है। कृष्ण-भक्ति आन्दोलन का विवरण प्रस्तुत करते हुए श्रीमद्भागवत का उल्लेख बडा आवश्यक है। कृष्ण-भक्ति के सभी सम्प्रदायो को श्रीमद्भागवत से प्रेरणा मिली है और सारा कृष्ण-भक्ति साहित्य किसी न किसी रूप मे श्रीमद्भागवत से प्रभावित है। इसलिए श्री मद्भागवत के सम्बन्ध मे कुछ कहना आवश्यक प्रतीत होता है।

भागवत पुराण के सम्बन्ध मे भागवत कार लिखते है—

निगमकल्पतरोगलित फल
शुकमुखादमृतद्रव सयुत
पिबत भागवत रसमालय
मुहुरहो रसिका भुवि भावुका

—भागवत १। १। २

चैतन्य और वल्लभ दोनो सम्प्रदायो मे भागवत की विशेष मान्यता है। महाप्रभु वल्लभाचाय ने तो अपने 'तत्त्व दीप निबध' मे भागवत को चतुर्थ प्रस्थान माना है—

वेदा श्रीकृष्ण वाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम्॥

—त० नि०, श्लोक ७

हमारी दृष्टि मे कृष्ण भक्ति आन्दोलन को इतना व्यापक बनाने का श्रेय महाप्रभु वल्लभाचाय जी को है। उन्होने जिस सम्प्रदाय की स्थापना की उसका आधार भी भागवत को ही स्वीकार किया है। पुष्टि भक्ति का नामकरण भी उन्होने भागवत के ही आधार पर किया। सिद्धात रहस्य नामक ग्रथ की विवृत्ति मे हरिराय जी ने लिखा है कि पुष्टि, मर्यादा और प्रभाव भेद से भक्ति तीन प्रकार की होती है। प्रवाह भक्ति का प्रतिपादन तो वेद और पुराणो मे हुआ है तथा मर्यादा एव पुष्टि भक्ति के प्रतिपादन के उद्देश्य से श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव हुआ। पुष्टि माग मे भक्ति को ही सर्वोपरि माना है। श्री वल्लभाचाय जी ने 'तत्त्व दीप न्बि ध के' भागवतार्थ प्रकरण मे सब स्कन्धो और अध्यायो को प्रकरणो मे विभाजित किया है और उनके भाँति-भाँति से अथ लिए है। छठे स्कन्ध को उन्होने पुष्टि स्कन्ध बताया है और पुष्टि भक्ति का सूत्र इसी स्कन्ध से ग्रहण किया

है। इस स्कन्ध मे पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्वो का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर का है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन की प्रेरणा का मूल स्रोत रहा है। इसलिए सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायो मे भागवत का महत्त्व स्वीकार किया गया है। पुष्टि-सम्प्रदाय मे भागवत की विविध प्रकार से व्याख्या करके वैष्णव भक्ति के सभी तत्वो की सगति भागवत से लगाई गई है। विभिन्न वष्णव सम्प्रदायो मे बाह्य रूप से चाहे जितना वैषम्य हो, उनके मूल तत्वो मे कोई बडा भारी भेद नही है। सभी वैष्णव सम्प्रदाय भगवत्तत्त्व को सगुण और साकार मानते है पर उसके मूल मे निगु ण और निराकार ब्रह्म भी विद्यमान रहता है। भगवान् भक्तो पर अनुग्रह करने के लिए अपनी लीला का विस्तार करता हे और अपने भगवद्धाम मे विग्रह धारण करता है जो छ गुणो से युक्त है। भगवान् स्वभाव से ही स्वामी, विभु और शेषी हे जबकि जीव स्वभाव से ही दास, अणु और शेष हे। प्राय सभी वैष्णव सम्प्रदायो मे इन सिद्धान्तो की मान्यता हे। भक्ति के मूल तत्त्व भी सब सम्प्रदायो मे एक से है। ज्ञान, कम और उपासना तीनो ही धर्माङ्गो को महत्त्व प्रदान किया गया हे। पर ज्ञान और कम अग रूप से आते ह और भक्ति अगी रूप से। कम चित्त-शुद्धि का साधन है और ज्ञान आत्मबोध का हेतु। परम तत्त्व की प्राप्ति भक्ति के द्वारा ही होती है और वह भक्ति भगवान् के अनुग्रह से ही प्राप्त होती है। भक्ति साधन रूपा भी है। प्राय सभी कृष्ण-भक्ति-सम्प्रदायो मे साध्यभक्ति को ही महत्त्व दिया गया है। शरणागति भी सभी सम्प्रदायो मे मान्य है और भगवान् के अनुग्रह को सभी ने सर्वोपरि माना हे। मुक्ति के प्रकार वैष्णव सम्प्रदायो मे अलग और साध्य रूपा अलग माने अवश्य गए हे परन्तु मूल भावना सवत्र एक ही है। सभी सम्प्रदायो ने शकर के मायावाद का खण्डन किया हे। ईश्वर जीव और जगत् के सम्बन्ध मे वैष्णव सम्प्रदायो की मान्यताएँ कुछ अलग-अलग है। चैतन्य महाप्रभु भगवान् मे अचिन्त्य शक्ति मानकर अचिन्त्य भेदाभेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है। आचाय वल्लभ माया सम्बन्ध से रहित शुद्ध ब्रह्म मे विश्वास रखते हे। मध्वाचार्य जीव और ईश्वर मे द्वैतभाव मानते है। और रामानुजाचाय चित् तथा अचित् को भगवान् के ही विशेषण मानकर उभय विशिष्ट ब्रह्म की कल्पना करते है। निम्बार्काचार्य अवस्था भेद से चित् और अचित् को ईश्वर से भिन्न और अभिन्न मानकर भेदाभेद सिद्धान्त का प्रतिपादन करते है। भगवान् की लीला के सम्बन्ध मे भी मतभेद हे। यह मतभेद वास्तव मे भगवान् के गुणा की कल्पना पर आधृत है। लक्ष्मीनारायण अथवा सीताराम मे ऐश्वय गुण की प्रधानता के कारण उनके भक्त दास्य भक्ति मे विशिष्ट आस्था रखते है। आगे चलकर सीताराम की उपासना मे भी माधुय भाव और सखी भाव की कल्पना कर ली गई। यद्यपि कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय के भक्तो मे माधुय भाव पर विशेष बल है, परन्तु उनकी उपासना पद्धति मे भी सूक्ष्म भेद विद्यमान है। निम्बार्क मत मे सख्यभाव की प्रधानता हे तो वल्लभाचाय के मत मे बाल भाव की। शृङ्गार और माधुय-भावना दोनो ही मतो मे है। चैतन्य सम्प्रदाय मे माधुयभाव को ही प्रधानता दी गई हे। राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे तो आह्लादिनी शक्ति राधा को कृष्ण से भी अधिक महत्त्व दिया गया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पन्द्रहवी शताब्दी के पश्चात् यह भक्ति-आन्दोलन जन-आन्दोलन के रूप मे सारे भारतवष मे फैल गया था। भारतवष की प्राय सभी भाषाओ

के साहित्य की अभिवृद्धि इस आदोलन के द्वारा हुई, परतु ब्रजभाषा मे तो इस आदोलन ने मानो चार चाद ही लगा दिए। कही ब्रजभाषा के नाम पर तो कही ब्रजबुलि के नाम पर विशाल भक्ति-साहित्य की सर्जना हुई। खेद है कि आज हिन्दी के विद्वानो का उस ब्रज भाषा-साहित्य की ओर विशेष ध्यान नही गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय मे जहा एक ओर वैष्णव साधना के सभी तत्त्वो का समावेश था वहाँ दूसरी ओर इसके द्वारा ब्रज भाषा-साहित्य की भी विशेष उन्नति हुई। कहा जाता है कि वल्लभाचार्य जी ने स्वय भी ब्रजभाषा मे रचनाएँ की। उनकी चौरासी अपराध नाम की एक ब्रजभाषा की रचना प्रकाशित भी हो चुकी है। उन्होने स्वय ब्रजभाषा मे चाहे कुछ न लिखा हो पर उनके शिष्यो ने ब्रजभाषा के सँवारने और समृद्ध करने मे जो योगदान दिया है वह वास्तव मे अपूर्व है। इसमे तो कोई सन्देह नही कि आचार्य चरण अपने सम्प्रदाय का प्रचार ब्रजभाषा के माध्यम से किया करते थे और इसे वे 'पुरुषोत्तम भाषा' कहते थे। उनकी शिष्य परम्परा मे ऐसे अनेक अज्ञात कवि है जिनकी रचनाएँ आज भी अन्धकार के गर्त मे छिपी हुई है। हरिराय जी की लीला भावना वाली चौरासी वैष्णवन की वार्ता मे ऐसे अनेक कवियो का उल्लेख किया गया है। पुष्टि सम्प्रदाय और उसके माध्यम से ब्रजभाषा साहित्य के प्रचार और प्रसार का श्रेय वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी को है। उन्होने इस सम्प्रदाय की ठीक प्रकार से व्यवस्था की और पुष्टि मार्गीय सेवा भावना को विस्तार से क्रियात्मक रूप दिया है।

वैष्णव सम्प्रदायो के विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि इनमे भक्ति की भावना उत्तरोत्तर बढती गई, भक्ति के रागात्मक पक्ष को विशेष बल मिलता गया और शास्त्रीय पक्ष का ह्रास होता गया। प्रपत्ति अर्थात् शरणागति और समर्पण की भावना को विशेष बल मिला। भक्ति आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे केवल ये वैष्णव सम्प्रदाय ही नही थे इनके अतिरिक्त देश का सामान्य वातावरण तथा तज्जन्य अनेक धार्मिक और सामाजिक प्रवृत्तियाँ थी। इन साम्प्रदायिक मत मतान्तरो के प्रचारको के अतिरिक्त देश मे एक ऐसा भी वर्ग था जो मनुष्य की सामान्य भाव-भूमि के आधार पर जाति-पाति के भेद-भाव से परे साम्प्रदायिकता के आवरण को दूर फेक कर एक ईश्वर की निष्ठा का प्रतिपादन कर रहा था। ऐसे सन्त-महात्मा देश के प्रत्येक प्रान्त मे वर्तमान थे। हृदय की शुद्धि, आचरण की उच्चता और ईश्वरीय प्रेम की विह्वलता को ही प्रधानता देने वाले ये मस्तमौला सन्त जनता की भाषा मे ही अपने सिद्धान्तो का प्रचार करते थे। हेय का त्याग और आदेय का दान इनकी सरल प्रकृति का प्रमाण है। इस सारे भक्ति-आन्दोलन का मूलतत्त्व प्रेम और प्रपत्ति है। इन मूल तत्त्वो के आधार पर ही श्रीमद्भागवत पुराण की रचना हुई, इसलिए हम इस पुनीत ग्रन्थ को भक्ति-शास्त्र का सर्वस्व कह सकते है। सब पुराणो मे इसका स्थान ऊँचा है। भक्ति की अमृतमय सरिता को सारे देश मे प्रवाहित करने वाला यही एक मात्र ग्रन्थ है। मध्ययुगीन भक्ति-साहित्य और धार्मिक प्रवृत्तियो को समझने के लिए भागवत का अनुशीलन परम आवश्यक है। इसलिए आगे के अध्यायो मे हम इस महापुराण के विभिन्न पक्षो का अनुशीलन प्रस्तुत करेगे।

निगम कल्पतरोर्गलित फल शुकमुखादमृतद्रव-सयुतम्।
पिबत भागवत रसमालय मुहुरहो रसिका भुवि भावुका ॥

—भागवत १।१।२

———

अध्याय ४

श्रीमद्भागवत महापुराण

स्वरूप-निर्धारण (बहिस्साक्ष्य)

आज श्रीमद्भागवत जिस रूप मे उपलब्ध होता है उसमे १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय तथा १४६१५ श्लोक हैं। स्कन्ध तथा अध्यायो की सगति तो प्राय सभी तद्विषयक ग्रन्थो से मिल जाती है परन्तु श्लोक सख्या के विषय मे कुछ गडबडी सी है। श्री नारदीय पुराण, पद्म पुराण, कौशिक सहिता, गौरी तन्त्र, स्कन्द पुराण, पचरात्र निबन्ध, सात्वत तन्त्र आदि आदि ग्रथो मे श्रीमद्भागवत का उल्लेख है तथा विवरण भी है। प्राय सभी ग्रन्थो मे १२ स्कन्ध, ३३५ अध्याय तथा १८ सहस्र श्लोक सख्या मानी गई है। पद्म पुराण मे श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धो का भागवत के बारह अङ्गो के रूप मे वर्णन किया गया है और फिर उसी का विवेचन करते हुए लिखा है—'द्वात्रिंशत्त्रिशत च यस्य विलसच्छाखा' अर्थात् भागवत पुराण की ३३२ शाखाएँ सुशोभित हैं। श्रीमद्भागवत के प्राचीन टीकाकार चित्सुखाचार्य ने भी 'द्वात्रिंशत्त्रिशत पूर्ण-मध्याया' को उद्धृत करके श्रीमद्भागवत के ३३२ ही अध्याय माने है। सम्भवत इसी आधार पर कुछ आचार्यों ने श्रीमद्भागवत मे तीन अध्याय प्रक्षिप्त माने हैं। श्री वल्लभाचार्य जी ने दशम स्कन्ध उत्तरार्ध के तीन अध्याय, ८८, ८९ और ९० प्रक्षिप्त माने है और उन्हे निकाल कर ही अपने 'तत्त्वदीप निबन्ध' के 'भावगतार्थ प्रकरण' मे रूपक बाँधा है। इसी प्रकार और भी कई आचार्यो ने दशम स्कन्ध के १२, १३ और १४ वे अध्याय प्रक्षिप्त माने है। परन्तु श्री जीव गोस्वामी ने श्रीभागवत षट् सन्दर्भ मे बारहवे अध्याय की टीका के प्रारभ मे लिखा है, 'जो इन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानते हे उनके ऐसा मानने का कोई कारण नही है क्योकि सब देशो मे वे प्रचलित है और 'वासना भाष्य' सम्बन्धोक्ति, विद्वत्कामधेनु, शुक मनोहरा, परमहस प्रिया' आदि प्राचीन एव आधुनिक टीकाओ मे इनकी व्याख्या की गई है। यदि अपने सम्प्रदाय मे अस्वीकृत होने के कारण ही वे उन्हे अप्रामाणिक मानते है तो दूसरे सम्प्रदायो मे स्वीकृत होने के कारण प्रामाणिक ही क्यो नहीमानते? यदि 'द्वात्रिंशत् त्रिशत च' को प्रामाणिक माना है तो द्वन्द्वैक्य स्वीकार करके उन पदो का अर्थ ३३५ हो सकता है अर्थात् 'द्वात्रिंशत् च त्रिपञ्च-शतानि च' व्याख्या से ३३५ अर्थ हो जाता है। इस प्रकार ३३५ अध्याय सख्या मानकर तत्तत्पुराणो की सगति लग सकती है। इसी प्रकार १८ हजार श्लोको के विषय मे भी कुछ वाद विवाद है। जैसा कि हम पहले कह चुके है विभिन्न ग्रन्थो मे श्रीमद्भागवत की श्लोक सख्या अठारह हजार मानी गई है।[1] परन्तु आजकल की प्रतियो मे जो श्लोक उपलब्ध है उनकी सख्या १४६१५ बैठनी है। श्लोको की सख्या के विषय मे आचार्यों का तो मतभेद नही है परन्तु

१ 'ग्रथोष्टादश साहस्रो द्वादश स्कन्ध सम्मित ॥'

—नारद पचरात्र ज्ञानामृत सार सहिता, द्वितीय रात्र सप्तम अध्याय। अर्थात् "यह ग्रथ १२ स्कन्ध १८ हजार श्लोकों में लिखा गया है।"

लगभग ३३८५ श्लोको की सगति आजकल की प्रतियो मे कैसे लगाई जा सकती हे ? इसके विषय मे बहुमत यही है कि श्रीमद्भागवत एक आशीर्वादात्मक और मत्रात्मक ग्रन्थ है और इसमे एक-एक श्लोक एक एक पद और एक एक शब्द का मत्र की भाति पाठ किया जाता है। इसलिये मत्र-ग्रथ होने के कारण प्रत्येक 'उवाच' को एक श्लोक एव अध्याय की पुष्पिका को डेढ श्लोक मान लेने पर श्लोक सख्या पूरी हो जाती हे। दुर्गा सप्तशती की भाति श्रीमद्-भागवत के पाठ मे 'इति' 'अथ' आदि को छोडा नही जाता। श्रीमद्भागवत की 'अन्विताथ प्रकाशिका' टीका के रचयिता श्री गगासहाय जी जरठ महोदय ने लिखा है—"मैने तीन वार श्रीमद्भागवत का अक्षर-अक्षर गिना है। उन्होने सत्रह हजार नौ सौ साढे अट्ठानवे श्लोक गिने हे। इस प्रकार केवल डेढ श्लोक की कमी बैठती है, जो 'उवाच' आदि के पाठ भेद के कारण हो सकती है। इस प्रकार १८ हजार श्लोक सख्या भी पूरी हो जाती है।

श्रीमद्भागवत की प्राचीनता

श्रीमद्भागवत के रचना काल के विषय मे भी बडा विवाद हे। जैसा कि हम पहले कह चुके है, भारतोय साहित्य मे प्रामाणिक तिथियो के अभाव के कारण पाश्चात्य विद्वानो ने ग्रन्थो के निर्माण काल के विषय मे अनेक ऊटपटाग अनुमान लगाए है। उन अनुमानो के सत्यासत्य पर विचार करना न तो हमारा विषय है और न ही इस अवसर पर आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वानो ने श्रीमद्भागवत को विभिन्न कालो की रचना बतलाया है और रामलीला को तो सोलहवी शताब्दी तक खीच लाए है। उन्होने श्रीमद्भागवत का रचयिता श्री वोपदेव को माना है जो हेमाद्रि के समकालीन थे और जिनकी प्रसन्नता के लिए वोपदेव ने अनेक ग्रन्थो की रचना की थी। हेमाद्रि देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र के मत्री थे, जिनका राजत्वकाल सन् १२७१ ई० से १३०६ ई० तक माना गया है। इस प्रकार वोपदेव १३वी शताब्दी मे ठहरते है। श्रीमद्भागवत्त को वोपदेव रचित मानना अन्याय ही नही, ऐतिहासिक प्रमाणो की भी अवहेलना करना है। श्री मध्वाचाय ने भी इस बात का खण्डन किया है।[1] सम्भवत श्री वोपदेव का 'हरि लीलामृत' ग्रथ ही श्रीमद्भागवत के वोपदेव कृत माने जाने का आधार है। यदि हम उन सभी पुराणो को जिनमे श्रीमद्भागवत का उल्लेख है, बाद की रचना माने तो भी भागवत की तिथि वोपदेव से बहुत पहले की ठहरतो है। वैष्णव सम्प्रदाय के प्राय सभी आचार्यो ने किसी न किसी रूप मे श्रीमद्भागवत का उल्लेख किया हे। द्वैतवाद के उपर्युक्त प्रसिद्ध आचाय श्री मध्वाचाय (१२वी शताब्दी) ने श्रीमद्भागवत पर 'भागवत तात्पय निणय' नामक टीका लिखी है। विशिष्टा द्वैत एव श्री सम्प्रदाय के आचाय श्री रामानुज (११वी शताब्दी) ने भावगत का कई ग्रन्थो मे उल्लेख किया है और 'वेदाथ सग्रह' नामक निबन्ध मे सात्त्विक पुराणो मे श्रीमद्भागवत की गणना की है।

श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी हेमाद्रि से पहले हुए है क्योकि हेमाद्रि ने उनका उल्लेख किया है। श्री श्रीधर स्वामी ने विष्णु पुराण की टीका मे चित्सुखाचाय का उल्लेख किया है। अद्वैत सम्प्रदाय मे चित्सुखाचाय शकर से तीसरे आचाय माने जाते है। इसलिए श्रीमद् भागवत का रचना काल वोपदेव से बहुत पहले का है। बनारस के 'सरस्वती भवन' पुस्तकालय मे श्रीमद्भागवत की जो हस्तलिखित प्रति सुरक्षित

१ वोपदेव कृतत्वे तु वोपदेव पुराभवै।
कथ टीका कृता सस्युहनुमच्चित्सुखादिभि।

है और जिसके विषय मे महामहोपाध्याय प० गोपीनाथ जी कविराज का वक्तव्य भी प्रकाशित हुआ है तथा जिसके एक पृष्ठ का फोटो गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' के 'भागवताक' मे दिया गया है, उसके आधार पर भागवत की रचना वोपदेव से बहुत पहले की है क्योकि उस प्रति का लिपिकाल ही १२वी शताब्दी है।

साख्य कारिका पर माठराचाय की टीका के आधार पर सिद्ध होता हे कि श्रीमद् भागवत ५वी शताब्दी मे विद्यमान था। इस टीका का अनुवाद परमाथ नामक वौद्ध पण्डित ने ईसवी सन् ५५७ और ५५६ के बीच किया था। उसने श्रीमद् भागवत के पहले स्कन्ध के छठे अध्याय का ३५ वाँ तथा ८वे अध्याय का ५२वा श्लोक उद्धृत किया है। अनुवाद से कम से कम १०० वष पहले वह टीका लिखी गई होगी।

श्री शकराचाय ने स्वय श्रीमद्भागवत के आधार पर कई ग्र थ लिखे हे तथा उनको गुरु परम्परा मे श्री गौड पादाचाय ने अपने ग्रन्थ मे भागवत का उल्लेख किया हे। 'राधा' शब्द का अभाव भी श्रीमद्भागवत की प्राचीनता मे प्रमाण रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। अस्तु यह एक स्वतत्र विषय है। हमारा प्रयोजन तो केवल यही सिद्ध करना हे कि श्रीमद्भागवत वोपदेव से बहुत पहले की रचना है।

श्रीमद् भागवत के पुराण होने म स देह तथा अर्वाचीन काल की रचना होने के भ्रम मे देवी भागवत पुराण भी एक कारण है क्योकि बहुत से विद्वानो ने १८ पुराणो मे देवी भागवत की गणना की है श्रीमद्भागवत की नही। उन्होने अपने मत की पुष्टि मे प्रमाण भी उपस्थित किये है। श्रीमद्भागवत के रचयिता के विषय मे कोई एतिहासिक प्रमाण उपस्थित नही किए जा सकते। 'व्यास' एक ऐसा नाम है जो गद्दी से चलता हे, आज भी कथावाचक पडित प्राय इसी नाम से प्रसिद्ध होते है। पौराणिक गाथा के अनुसार प्रत्येक द्वापर युग के अन्त मे भगवान् विष्णु व्यास रूप से अवतीर्ण होते है और जन साधारण के हिताथ वेदो के चार भाग कर देते है। इस प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक द्वापर मे भिन्न-भिन्न 'व्यास' होते है। वैवस्वत मन्वन्तर के २८वे द्वापर मे महर्षि पराशर के पुत्र श्री कृष्ण द्वैपायन ही व्यास हुए।[1]

श्रीमद्भागवत की विभिन्न प्राचीन प्रतियाँ

श्रीमद्भागवत की जो प्रति बनारस गवनमेट सस्कृत कालिज के सरस्वती पुस्तकालय मे सुरक्षित है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके है। इसका लेखककाल १२ वी शताब्दी है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी कविराज के कथनानुसार यह अब तक प्राप्त भागवत की सर्वाधिक प्राचीन प्रति है।

लन्दन के इण्डिया ऑफिस की लाइब्रेरी मे श्रीमद्भागवत की अनेक प्रतियाँ सुरक्षित है, किन्तु एक भी प्रति समस्त भागवत की नही है। विभिन्न स्कन्ध मूल अथवा श्रीधरी आदि टीकाओ सहित विभिन्न लिपियो मे लिखे हुए है। ये प्रतियाँ भोजपत्र, तालपत्र, कागज आदि पर लिखी गई है। नीचे हम उनका सक्षिप्त विवरण दे रहे है।

(क) यह प्रति दो भागो मे है—प्रथम भाग मे प्रथम तीन स्कन्ध सम्पूर्ण और चतुर्थ स्कन्ध दशम अध्याय श्लोक ६ तक है। प्रति का यह भाग १६वी शताब्दी के प्रारम्भ मे लिखा

१ दे० विष्णु पुराण ३, ३।

गया था। द्वितीय भाग मे पचम, षष्ठ और सप्तम स्कन्ध है। यह भाग १८५०-६० ई० के लगभग लिखा गया था। इस प्रति की लिपि बगला है और बादामी कागज पर लिखी गई है।

(ख) भागवत चतुथ स्कन्ध—यह प्रति उडिया लिपि मे १८ वी शताब्दी मे लिखी गई थी। प्रति शुद्ध नही है किन्तु लेख सुन्दर है। यह प्रति खजूर की पत्तियो पर लिखी गई है और १८६७ की पेरिस प्रदशनी मे रखी गई थी।

(ग) भागवत स्कन्ध-५, ६, ७, ८ और नवम—यह प्रति बँगला लिपि मे लगभग १६५० ई० मे लिखी गई थी। लिखावट सुन्दर है।

(घ) भागवत स्कन्ध-६, ७, ८, ६, १०, ११ और द्वादश—यह प्रति पुस्तकाकार है और विदेशी कागज़ पर लिखित है। यह 'ग्रथ' लिपि मे १८६५ की लिखी हुई है। भूल से इस प्रति पर 'देवी भागवत पुराण' लिख दिया गया है कितु यह प्रति है श्रीमद्भागवत की।

(ङ) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति ताड-पत्रो पर बँगला लिपि मे है। इसका लिपि काल १७ वी शती का उत्तराध है।

(च) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति भी ताड पत्रो पर बँगला लिपि मे है। इसका लिपिकाल १७१२ ई० है। इस पर लेखन काल शकाब्द १६३४ भी लिखा है।

(छ) भागवत दशम स्कन्ध का कुछ अश—यह प्रति बादामी कागज पर बँगला लिपि मे लिखी हुई है। इसका लेखन काल लगभग १८७० है।

(ज) भागवत दशम स्कन्ध अध्याय २७ एव २८, अपूर्ण-श्रीधर कृत दीपिका सहित—यह प्रति कागज़ पर देवनागरी लिपि मे १८ वी शती मे लिखी गई थी।

(झ) भागवत दशम स्कन्ध का कुछ अश—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगु लिपि मे १८ वी शताब्दी मे लिखी गई थी। यह प्रति सावधानी से लिखी गई है और प्राय शुद्ध है।

(ञ) भागवत दशम स्कन्ध—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे लिखी गई है। यह शुद्ध नही है। इसका लिपि काल १८ वी शती है। यह १८६७ मे पेरिस प्रदशनी मे रखी गई थी।

(ट) श्रीमद्भागवत—इस प्रति के पृष्ठ खो गये है और यह काफी जीर्ण है। यह खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे १८ वी शती मे लिखी गई थी।

(ठ) भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय १२ पयन्त—यह प्रति खजूर के पत्तो पर नन्दिनागरी लिपि मे १७७३-७४ मे लिखी गई थी। लेखक ने अपना नाम वेकटेश दिया है।

(ड) भागवत (कुछ प्रसगो का सग्रह) यह प्रति बादामी कागज पर पुम्तक लिखी गई है। इसकी लिपि 'शारदा' और लेखन-काल १८वी शती है। यह पुस्तक चार वर्गों मे विभाजित है।

(ढ) भागवत स्कन्ध १-२, श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे १८वी शती मे लिखी गई थी।

(ण) भागवत स्कन्ध-३ श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे १८ वी शताब्दी मे लिखी गई थी।

(त) भागवत स्कन्ध–४–५ श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे है। इसका लिपि काल लगभग १८१० ई० है।

(थ) भागवत स्कन्ध–५–६ श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर लिखी गई है। लिपि उडिया है। लेखन काल सम्भवत १७५० ई० है। इसके लेखक 'दयानिधि' है। यह प्रति १८६७ की पेरिस प्रदशनी मे रखी गई थी।

(द) भागवत स्कन्ध ७—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर की पत्तियो पर उडिया लिपि मे है। इसका लिपिकाल १८ वी शताब्दी और लेखक कोई वैद्यनाथ है। पुष्पिका मे यह श्लोक है—

"श्री श्री कृष्णपदाम्भोजे मतिरस्तु सदा मम।
व्यलेखि सप्तमस्कन्धो वैद्यनाथद्विजेन वै।"

("श्री कृष्ण के चरण कमलो मे मेरी बुद्धि सदा लगी रहे। यह सप्तम स्कन्ध वैद्यनाथ शर्मा ने लिखा।")

(ध) भागवत स्कन्ध ७–८–९—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे लगभग १८१० ई० मे लिखी गई।

(न) भागवत स्कन्ध ८, ९—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे १८ वी शताब्दी की लिखी हुई है।

(प) भागवत स्कन्ध १०—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर तेलुगू लिपि मे लगभग १८१० मे किन्ही शकर नारायण द्वारा लिखित है।

(फ) भागवत स्कन्ध ११–१२—श्रीधरी टीका सहित—यह प्रति खजूर के पत्तो पर उडिया लिपि मे १८ वी शताब्दी की लिखी हुई है। लिपिकार कोई मधुसूदन है।

विभिन्न टीकाएँ

श्रीमद्भागवत एक महापुराण है। इसके आदि मध्य एव अन्त मे वैराग्योत्पादक आख्यान है। यह भगवान् की लीला कथाओ के अमृत से सन्तो और देवताओ को आनन्दित करने वाला है। समस्त वेदान्तो का सार ब्रह्म और आत्मा की एकता रूप अद्वितीय वस्तु इसका प्रतिपाद्य है। कैवल्य मुक्ति इसके निर्माण का प्रयोजन है (श्रीमद्भागवत, स्कन्ध १२, अ० १३ श्लो० ११-१२)

इस प्रकार श्रीमद् भागवत श्रौत अर्थ का प्रतिपादन करने वाला एक पूर्ण ग्रन्थ है। इसके प्रयोजन तथा विषय की विस्तृत विवेचना हम आगे करेगे।" श्रीमद्भागवत वेद रूप कल्पवृक्ष का सुस्वादु रस रूप फल है। श्रुतियो के अनुकूल श्रीमद्भागवत के भी तीन अर्थ लिए गए है। १ याज्ञ २ दैवत और ३ अध्यात्म। यही कारण है कि वैष्णव सम्प्रदाय के सभी आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदाय के अनुकूल श्रीमद्भागवत की टीकाएँ की है। सब प्रसिद्ध और मान्य टीका श्रीधरी टीका है जिसके विषय मे एक लोकोक्ति है—

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति वा न वा।
श्रीधर सकल वेत्ति श्री नृसिंह-प्रसादत॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत का अथ व्यास जी और शुकदेव जी ठीक ठीक समझते है। राजा परीक्षित् के समझने मे सन्देह है परन्तु नृसिह जी के प्रसाद से श्रीधर पूर्णतया समझते है। श्रीधर ने हनुमत् तथा श्री चित्सुखाचाय का टीकाकारो के रूप मे उल्लेख किया है। परन्तु ये टीकाएँ अब उपलब्ध नही है। श्री चैतय महाप्रभु ने श्रीधरी टीका को ही माना है और श्री चैतन्य चरितामृत की अन्त्य लीला के ७ वे परिच्छेद मे इस बात की पुष्टि भी कई गई है। श्री चैतन्य के अनुयायिओ ने श्रीमदभागवत को आधार मानकर अनेक ग्र थो की रचना की है।

सुदर्शन सूरि और राघवाचाय—विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के आचाय श्रीरामानुज की लिखी तो कोई टीका उपलब्ध नही है परन्तु इस सम्प्रदाय के अन्य आचार्यो की टीकाएँ श्रीमद्भागवत पर उपलब्ध है। जैसे श्री सुदशन सूरि की 'शुक पक्षीया' टीका और राघवाचाय की 'भागवत च द्र च द्रिका' आदि आदि।

मध्वाचाय—श्री मध्वाचाय ने 'भागवत तात्पर्य निर्णय' नाम का ग्रथ लिखा। उनके अनुयायी श्री विजयध्वज तीथ ने 'पदरत्नावलो' नाम की टीका लिखी है।

शुकदेव—श्री निम्बाक सम्प्रदाय का प्रधान ग्रथ भी श्रीमद्भागवत ही है। परन्तु इस सम्प्रदाय वालो की टीकाएँ बहुत ही सक्षिप्त हैं। इस मत के आचाय श्री शुकदेव जी की श्रीमद्भागवत पर 'सिद्धान्त प्रदीप' नाम की व्याख्या है। वैसे भागवत को आधार मानकर इस सम्प्रदाय मे कई रस पूर्ण निबन्ध तथा टीका टिप्पणियाँ लिखी गई है।

श्री वल्लभाचाय—साम्प्रदायिक टीकाओ मे पुष्टि माग के आचाय श्रीवल्लभ 'सुबोधिनी' नामक टीका बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके अनुसार आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं राजस तामस आदि भेद से श्रीमद्भागवत का कई रूपो मे विभाजन किया गया है और इसके प्रकरण बाधकर नए नए अथ किए गए है। 'सुबोधिनी' के प्रारम्भ मे श्रीमद्भागवत का वर्णन करते हुए वल्लभाचाय ने कहा है कि वाकपति भगवान् वैश्वानर के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के अथ-निर्णय की शक्ति और किसी मे नही है। भगवान् विष्णु ने शरीर धारण करके व्यास के समान ही कृपा करके मुझे भी आज्ञा दी है। इस कारण व्यास और भगवान् के प्रिय अनेक प्रकार के गूढाथ मे प्रकट कर रहा हूँ।[1]

श्रीवल्लभाचाय के अतिरिक्त उनके वशजो ने भी श्रीमद्भागवत पर टीकाएँ लिखी है। इन प्रसिद्ध टीकाओ के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत पर अनेकानेक टीकाएँ है। विस्तारभय से हम उनका उल्लेख नही करेगे।

श्रीमद्भागवत की साम्प्रदायिक टीकाएँ हमारे लिए साम्प्रदायिक दृष्टि कोण समझने मे सहायक होती है और हम उपासना के उस रूप तक पहुँच जाते है जिसका प्रवतन इन विभिन्न आचार्यो ने किया था। इन टीकाओ से तत्कालीन परिस्थितियो का भी ज्ञान हो जाता है।

श्री मद्भागवत-विषय-सार

श्री मद्भागवत के प्रतिपाद्य विषय पर तो हम आगे लिखेगे। यहा हम दिखाना चाहते है कि भागवत का वण्य विषय क्या है। नीचे हम भागवत के स्कन्धो का पृथक्-पृथक्

१ सुबोधिना

सक्षिप्त वण्य विषय दे रहे है। पद्म पुराण मे ६ अध्यायो मे श्री मदभागवत का माहात्म्य दिया गया है। उसका भी यहा उल्लेख करते है क्योकि धार्मिक महत्त्व के अतिरिक्त यह माहात्म्य भक्ति के विकास को समझने मे भी सहायक होता है।

पद्म पुराणान्तर्गत भागवत-माहात्म्य[1]

भगवत्कथा श्रवण करने की इच्छा से एक बार शौनक ऋषि ने सूतजी से भक्ति ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न करने वाली कथा कहने की प्राथना की तब सूत जी ने उन्हे श्री-मद्भागवत की कथा सुनाई थी और भागवत के सप्ताह श्रवण का महत्व बतलाया था। एक बार देवर्षि नारद ने यमुना तट पर भक्ति और उसके दो पुत्रो—ज्ञान और वैराग्य को देखा। वे सभी कलिकाल से महान् दुखी थे। श्री नारद ने सनकादि मे उनकी दुःख-निवृत्ति का उपाय पूछा तो उन्होने उसका एक मात्र उपाय श्रीमद्भागवत की कथा का श्रवण ही बताया। उसके प्रभाव से कलियुग मे नष्ट-प्राय क्षीण काय भक्ति पुन अपने पुत्रो से पुष्ट हो गई और विष्णु भक्तो का हृदय उसने अपना स्थान चुन लिया। गोकरण नामक एक ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ने श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुनाकर धुन्धुकारी नामक पतित ब्राह्मण को प्रेत योनि से मुक्त कर दिया। सनकादि ऋषियो ने नारद को भागवत के सप्ताह पारायण की विधि बताई।

श्री मद्भागवत प्रथम स्कन्ध

एक बार नैमिषारण्य मे शौनकादि ऋषियो ने सूत जी से मनुष्य के आत्यन्तिक श्रेय का साधन जानना चाहा तो उन्होने अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप पर ब्रह्म श्री कृष्ण की भक्ति को ही एक मात्र उपाय बताया और श्रीमद्भागवत को उसकी प्राप्ति का साधन बतलाया। सूतजी ने भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य सुनाकर शौनकादि को भगवान् के बाईस (अथवा २४) अवतारो की कथा सुनाई। शौनकादि ने सूत जी से शुकदेव जी द्वारा परीक्षित् के प्रति कथित श्री मद्भागवत की कथा सुननी चाही तो उन्होने बताया कि महाभारत और सत्रह पुराणो की रचना करने पर जब वेदव्यास जी को आत्म शान्ति न मिली तो नारद ने उन्हे भगवान् के निमल यश और अलौकिक लीलाओ का गान करने का आदेश दिया। वही श्रीमद्भागवत है। नारद जी ने अपने पूव जन्म के चरित का वणन कर बताया कि केवल भक्ति ही मनुष्य को आत्मशान्ति प्रदान कर सकती है।

महाभारत के युद्व मे अश्वत्थामा ने द्रोपदी के सोते हुए पाँचो पुत्रो के सिर काट लिए थे। श्रीकृष्ण की आज्ञा से अश्वत्थामा के मस्तक की मणि केशो सहित उतार ली गई। यही उसका बध समझा गया। युद्ध के उपरान्त पाण्डवो ने अपने आत्मीयो का तपण किया। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को राज्य पर अधिष्ठित किया। श्रीकृष्ण ने उत्तरा के गभ मे स्थित परीक्षित् की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा की। कुन्ती ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और युधिष्ठिर ने महाभारत युद्ध मे हुई महान् हिंसा के लिए आत्मग्लानि प्रकट की। युधिष्ठिर अपने कत्तव्योपदेश के लिये हस्तिनापुर से भीष्म के पास कुरुक्षेत्र गये और उनसे समस्त धम-रहस्य सुना। भीष्म ने भी कृष्ण स्मरण पूवक अपना देह त्याग कर दिया। युधिष्ठिर धम पूवक शासन करने लगे। अपने बान्धवो और वहिन सुभद्रा का

प्रिय करने की इच्छा से श्रीकृष्ण कुछ महीने हस्तिनापुर रहे और फिर द्वारका चले गये। वहाँ उनका महान् स्वागत हुआ। पीछे हस्तिनापुर मे परीक्षित का जन्म हुआ। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ किया। विदुर जी के उपदेश से धृतराष्ट्र और गान्धारी वन को चले गए। अर्जुन जब श्रीकृष्ण के साथ द्वारका जाकर बहुत दिनो तक हस्तिनापुर से न लौटे तो युधिष्ठिर को बहुत अपशकुन हुए तभी सहसा अर्जुन आ गये। वे बहुत ही विषण्ण मानस थे। उन्होने युधिष्ठिर को यादवो के सहार और श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन का समाचार सुनाया। तब युधिष्ठिर परीक्षित को राज्य सौपकर भाइयो सहित स्वग को चले गये। तदनन्तर परीक्षित ने दिग्विजय किया और वृषभ रूप धम और गौ रूप धारिणी पृथ्वी का सवाद सुनकर उन्होने कलि का दमन किया। दैवात् शमीक ऋषि के गले मे मरा हुआ साँप डालने के कारण परीक्षित् को शृगी ने तक्षक नाग के काटने से सातव दिन मृत्यु को प्राप्त होने का शाप दे दिया। परीक्षित अपने पुत्र जनमेजय को राज्यभार सौप कर मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए भगवच्चिन्तन मे मग्न होकर गगा तट पर स्थित हो गये। इसी समय वीतराग अवधूत वेष श्री शुकदेव जी उनके पास आ पहुँचे।

द्वितीय स्कन्ध

परीक्षित् ने शुकदेव जी से अपना श्रेयस्कर कतव्य पूछा तो उन्होने मरण के लिये प्रस्तुत राजा को भगवद् ध्यान की विधि बताई और भगवान् के विराट् रूप का वणन किया। साधक भगवान् के स्थूल अग प्रत्यगो का चिन्तन करते हुए प्रेम भाव भक्ति योग प्राप्त करे और ब्रह्म मे स्थित हो जाय। यदि ब्रह्मलोकादि को जानने की इच्छा हो तो मन और इन्द्रियो को साथ लेकर जाय। इस प्रकार सद्योमुक्ति और क्रम मुक्ति दो सनातन वेदोक्त माग है। विभिन्न कामनाओ की सिद्धि के लिए विभिन्न देवताओ की उपासना का विधान करते हुए शुकदेव जी ने सर्वोच्च स्थान भगवद्भक्ति को ही दिया। परीक्षित् ने भगवान् मे मन को एकाग्र कर शुकदेव जी से भगवन्माया से रचित सृष्टि के विधान का क्रम पूछा और शुकदेव जी ने उसका सविस्तार वैज्ञानिक वणन किया। भगवान् के विराट् रूप का वणन कर भगवान् कच्छप नृसिह परशुराम आदि लीला अवतारो की कथा कही। नारद जी ने ब्रह्मा जी से भागवत जी सक्षिप्त कथा सुनी थी और ब्रह्मा जी ने ब्रह्म कल्प के आरम्भ मे साक्षात् नारायण से वही भागवत सुनी थी। वही शुकदेव ने परीक्षित को सुनाई। सृष्टि के आदि मे ब्रह्मा जी के तप से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हे अपना परम (वैकुण्ठ लोक) दिखाया और चतु श्लोकी भागवत का उपदेश दिया। उसी का विशद रूप-सग विसग आदि दश लक्षण सम्पन्न भागवत ब्रह्मा जी ने नारद जी को सुनाया।

तृतीय स्कन्ध

महाभारत युद्ध से पूव ही विदुर घर बार छोडकर तीर्थाटन के लिए निकल गए थे। मत्स कुरुजागलादि देशो को पार करके वे यमुना तट पर भक्त प्रवर उद्धव से मिले। सब का कुशल क्षेम बताने के अनतर उद्धव ने श्रीकृष्ण के बाल चरित तथा अन्य चरित सुनाए। उद्धव जी के कथनानुसार कृष्ण के स्वरूप के गूढ रहस्य जानने के लिए विदुर जी मैत्रेय मुनि से मिले। उनसे विदुर ने अनेक प्रश्न किये और उन्होने सृष्टि क्रम वणन, विराट् शरीर की उत्पत्ति, चेतन मात्र निर्विकार निगुण ब्रह्म के साथ क्रिया की सगति विदुर को समझाई और

शेष द्वारा सनकादि के प्रति कथित भागवत पुराण उन्हें सुनाया। ब्रह्मा जी की उत्पत्ति और ब्रह्म कृत भगवत्स्तुति के उपरान्त मैत्रेय ने दश विध सृष्टि, मन्वन्तरादि काल-परिमाण, सृष्टि विस्तार, का वर्णन किया। सनकादि के शाप से भगवत्पार्षद जयविजय दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए। हिरण्याक्ष के चंगुल से भगवान् वराह ने जलमग्न पृथ्वी का उद्धार किया और उस पर ब्रह्मा जी ने विविध सृष्टि की। स्वायम्भुव मनु की पुत्री देवहूति से कर्दम प्रजापति द्वारा साँख्य शास्त्र के प्रणेता भगवान् कपिल देव का जन्म हुआ। कपिल ने अपनी माता देवहूति को भक्ति योग, प्रकृति पुरुष विवेक, अष्टांग योग और महदादि तत्त्वों की उत्पत्ति का विषय समझाया और अन्त में देह गेह में आसक्त पुरुषों की अधोगति का वर्णन, मनुष्य योनि को प्राप्त हुए जीव की गति का वर्णन और धूम मार्ग तथा अर्चिरादि मार्ग से जाने वाले लोगों की गति का वर्णन कर उन्होंने भक्तियोग की उत्कृष्टता का ही प्रतिपादन किया जिससे देवहूति को ज्ञान लाभ और मोक्ष पद की प्राप्ति हुई।

चतुर्थ स्कन्ध

मैत्रेय ने विदुर से कहा कि देवहूति के अतिरिक्त स्वायभुव मनु की आकूति और प्रसूति दो कन्याएँ और थीं। आकूति का विवाह रुचि प्रजापति और प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से हुआ। दक्ष ने अपनी कन्या सती का विवाह शंकर के साथ किया था। दक्ष कुछ कारण वश शंकर से द्वेष करने लगा था। सती ने पिता द्वारा शंकर के अपमान किये जाने पर प्राण त्याग कर दिया और शंकर ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया। बाद में उन्होंने ही दक्ष को क्षमाकर उसका यज्ञ पूर्ण किया। कन्याओं के अतिरिक्त स्वायभुव मनु के दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने विमाता से अपमानित होकर भगवत्प्राप्ति के लिए वन में जाकर घोर तपस्या की और श्री हरि कृपा से अचल ध्रुव लोक प्राप्त किया। सम्राट् ध्रुव ने अपने भाई उत्तम के वध का बदला लेने के लिए यक्षों से घोर युद्ध किया था अन्त में स्वायभुव मनु ने उन्हें विरक्त किया। ध्रुव के वंश में आगे चलकर क्रूर-कर्मा राजा वेन उत्पन्न हुआ। जब उसके अत्याचारों से सब तंग आगए तो ऋषियों ने अपने हुँकार मात्रा से उसका प्राणान्त कर दिया। उसकी देह के मंथन से भगवदंश महाराज पृथु उत्पन्न हुए जिन्होंने पृथ्वी का दोहन किया। पृथु के अश्वमेघ यज्ञ से इन्द्र ने घोडा चुरा लिया अतः वे इन्द्र को मारने के लिए उद्यत हुए किन्तु ब्रह्मा जी ने उनके यज्ञों का फल अक्षुण्ण बनाकर इन्द्र से उनकी मैत्री करादी। विष्णु भगवान् ने प्रसन्न होकर पृथु को भक्ति का वरदान दिया। पृथु ने अपनी राजधानी में आकर प्रजा जन को आदर्श जीवन का उपदेश दिया और सनकादिक ने पृथु को निश्रेयस् का मार्ग बताया। पृथु ने तपस्या द्वारा ब्रह्म पद की प्राप्ति की। पृथु के वंश में राजा प्राचीन बर्हि के प्रचेता नामक दस पुत्र हुए। सृष्टि के लिए उद्यत प्रचेताओं को भगवान् रुद्र ने भगवान् नारायण के 'योगादेश' नामक स्तोत्र का उपदेश किया। प्रचेतागण उस स्तोत्र का जप करते हुये दस सहस्र वर्ष तक जल में खडे तपस्या करते रहे। इसी समय नारद ने कर्म में आसक्त राजा प्राचीन वर्हि को आत्मतत्त्व का ज्ञान करने वाला रहस्यमय, प्रतीकात्मक पुरजनोपाख्यान सुनाया पुरजन नामक राजा वास्तव में 'जीव' है और उसका 'अज्ञात' नामक मित्रईश्वर है। 'जीव और ईश्वर' के स्वरूप का दिग्दर्शन कराना ही पुरजनोपाख्यान का तात्पर्य है। प्रचेताओं ने 'रुद्र गीत' द्वारा संतुष्ट हुए भगवान् हरि की कृपा से पृथ्वी का सार्वभौम

राज्य भोगा। तदनन्तर अपने पुत्र दक्ष को राज्य-भार सौप वे विरक्त हो गये और नारद के उपदेश से उन्होने परमपद प्राप्त किया।

पञ्चमस्कन्ध

मैत्रेय जी से इतनी कथा सुनकर विदुर अपने जाति बन्धुओ को देखने के लिए हस्तिनापुर को चले गए। शुकदेव जी ने परीक्षित् को मनु के दूसरे पुत्र प्रियव्रत का चरित्र सुनाया वे अखण्ड भूमण्डल के एकच्छत्र सम्राट् थे। उनके रथ के पहियो से सप्त सागर बन गए और पृथ्वी सप्त द्वीपो मे विभक्त हो गई। प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रो को एक-एक द्वीप का राजा बना दिया। प्रियव्रत के ज्येष्ठ पुत्र आग्नीध्र जम्बू द्वीप के राजा थे। उनके नाभि आदि नौ पुत्र थे जो जम्बूद्वीप के नो वर्षो (भूखण्डो) के राजा थे। भगवान् ने नाभि के यहा पुत्र रूप से 'ऋषभावतार लिया। ऋषभदेव अपना राज्य भार पुत्रो को सौपकर बाद मे 'अवधूत हो गए थे। उ होने अपने पुत्रो को सुन्दर उपदेश दिया। ज्येष्ठ पुत्र भरत' को राज्य देकर वे स्वरूप मे लीन हो गये। भरत बडे भगवद्भक्त थे। एक मृगशावक के मोह के कारण उहे मृगयोनि मिली। फिर उन्होने ब्राह्मण कुल मे ज म लिया और विरक्त होकर 'जड भरत' हो गए। सिन्धु सौवीर देश के राजा रहूगण से उनकी भेंट हुई और उन्होने रहूगण को आध्यात्मिक उपदेश दिया। जड भरत ने इस ससार को एक भयकर बन (भवाटवी) का रूपक दिया और फिर उसका स्पष्टाथ किया। भरत के वश मे 'गय और विरज नामक अत्यन्त प्रतापी सावभौम राजा हुए। राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से प्रियव्रत के रथ के पहियो से बने सप्तसागरो और द्वीपो का परिमाण पूछा और शुकदेव जी ने समस्त भुवन कोश का वणन किया। विष्णुपदी (गगा) का विवरण देकर शुकदेव जी ने शकर कृत सकषण देव की स्तुति का वणन किया। भिन्न-भिन्न वर्षों का वणन करते हुए शुकदेव जी ने बताया कि वहा के शासक और निवासी भगवान् के भिन्न-भिन्न रूपो की उपासना करते है। भद्राश्वखण्ड मे भद्रश्रवागण भगवान् की हयग्रीव मूर्ति का, हरिवर्ष के निवासी नृसिह रूप का, केतुमालखण्ड मे कामदेव रूप का रम्यक खण्ड मे मत्स्य-रूप का, हिरण्मय खण्ड मे कूम रूप का, उत्तर कुरु वष मे वराह रूप का, किम्पुरुष वर्ष मे सीतापति राम का और भारतवष मे नर-नारायण रूप का ध्यान और उपासना करते है। फिर प्लक्ष, शाल्मली आदि द्वीपो के प्रमाण, लक्षण, स्थिति और लोकालोक पवत का वणन किया गया है। इसी प्रकार आगे सूय के रथ और गति, भि न-भिन्न ग्रहो की स्थिति और गति, शिशुमार चक्र आदि ज्योतिष्पिण्डो का वणन है। फिर अतल, वितल आदि नीचे के सात लोको का वणन किया गया है। सबसे नीचे पाताल लोक मे अन त नामक भगवान् की तामसी नित्य कला है। यही सकषण है। नारद ने उनकी स्तुति की है। सबसे अन्त मे तमिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, कुम्भीपाक आदि अट्ठाईस नरको का वणन तथा उनमे गिरने वाले लोगो की गति का वणन है।

षष्ठ स्कन्ध

नरको और उनमे गिरने वालो की अधोगति का वणन सुनकर परीक्षित् ने शुकदेव से वह उपाय जानना चाहा जिससे नरक प्राप्ति न हो। इसका सर्वोत्कृष्ट उपाय उन्होने भगवद्भक्ति ही बताया और इस सम्बन्ध मे विष्णु और यमदूतो का सम्बाद और अजामिल की कथा कही। विष्णु-दूतो ने भागवत धम का निरूपण किया। यमराज ने विष्णु भक्तो को नरक या यम

लोक मे लाने के लिए अपने भटो से निषेध कर दिया। परीक्षित् ने शुकदेव जी से स्वायम्भुव मन्वन्तर मे सक्षेप से वर्णित सष्टि का विस्तृत विवरण सुनना चाहा। शुकदेव जी ने बताया कि जब प्रचेताओ ने समुद्र से निकलकर देखा तो सम्पूण भूमण्डल भाड भखाडो से भरा हुआ था। प्रचेताओ ने सोम की आज्ञा से प्रम्लोचा की कया से विवाह किया। उनके पुत्र दक्ष प्रजापति ने सष्टि की कितु जब वह वृद्धि-गत न हुई तो उन्होने 'हँसगुह्य' नामक स्तोत्र से भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने उहे बताया कि दाम्पत्य धम से ही प्रजा-सृष्टि हो सकती है। दक्ष ने अपने 'हयश्व' और 'शवलाश्व' नामक पुत्र गण को सृष्टि की आज्ञा दी किन्तु वे नारद जी के उपदेश से अन्तमु ख हो गए। दक्ष ने नारद को शाप दे दिया। तब दक्ष ने साठ कन्याऐ उत्पन्न की जिनकी सतति समस्त लोक मे व्याप्त है। एक बार इन्द्र ने देवगुरु बृहस्पति का अपमान किया जिससे गुरु ने उनका त्याग कर दिया। देवता ऐश्वय भ्रष्ट हो गए। उन्होने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित बनाया। विश्वरूप ने 'नारायण कवच' विद्या से देवताओ का गत वैभव पुन लौटा लिया। किन्तु विश्वरूप ने गुप्तरीति से असुरो के पक्ष का भी समथन किया था। अत जब इन्द्र ने विश्वरूप का वध किया तो उहे ब्रह्म हत्या लगी और वृत्रासुर का जन्म हुआ। दधीचि ऋषि की अस्थियो से बने वज्र से वृत्र मारा गया। इन्द्र को फिर ब्रह्म हत्या लगी और वे भीत होकर १ सहस्र वष मानसरोवर मे रहे। तब तक नहुष ने स्वग का शासन किया। इद्र अश्वमेघ द्वारा ब्रह्म हत्या से मुक्त हुए। वृत्रासुर पूव जम मे राजा चित्रकेतु थे और अत्यन्त भगवत्परायण थे, पावती के शाप से आसुरी योनि को प्राप्त हो गये थे। फिर शुकदेव जी ने अदिति और दिति की सन्तानो तथा मरुद्गण की उत्पत्ति का वणन किया तथा कश्यप द्वारा दिति को उपदिष्ट पु सवन व्रत की विधि बताई।

सप्तम स्कन्ध

परीक्षित् ने शुकदेव से पूछा कि समदर्शी भगवान् ने विषम दृष्टि पुरुषो के समान देवो के लिए दैत्यो का वध क्यो कराया, तो शुकदेव जी ने बताया कि काल-क्रम से जब सत्त्व गुण की वृद्धि होती है तो भगवान् सत्त्व प्रधान देवगणो का उत्कष और रजस्तम प्रधान असुरो का सहार करते से जान पडते हैं। शुकदेव ने बताया कि राजसूय यज्ञ मे शिशुपाल की सायुज्य मुक्ति हुई देख युधिष्ठिर ने नारद जी से साश्चय प्रश्न किया कि भगवद् वैरी की ऐसी शुभ गति कैसे हुई। नारद ने बताया कि शिशुपाल और दन्तवक्र विष्णु पाषद जय विजय थे जो सनकादि के शाप से क्रमश पुनजन्म मे हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष और रावण कुम्भकण भी रहे थे। हिरण्यकशिपु ने घोर तपकर ब्रह्मा जी से अजर अमर होने का वर प्राप्त किया और त्रिलोकी का निष्कण्टक राज्य करने लगा। उसका पुत्र प्रह्लाद परम भागवत था। हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद का वध करना चाहा तो भगवान् ने नृसिह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध कर दिया। प्रह्लाद को राजपद पर अभिषिक्त कर दिया। फिर नारद जी ने युधिष्ठिर को चारो वर्णों तथा स्त्रियो के धर्मो का उपदेश किया। ब्रह्मचय और वानप्रस्थ आश्रम के नियम बतलाए। यति-धर्मों और गृहस्थ के सदाचारो का निरूपण किया और गृहस्थो के लिए मोक्षधम की विस्तृत व्याख्या की।

अष्टम स्कन्ध

हरि कथा शुश्रूषु परीक्षित् ने शुकदेव से स्वायभुव मन्वन्तर के अनन्तर हुए अन्य मन्वन्तरो की कथा सुनाने की प्राथना की। चतुथ मन्वतर मे भगवान् ने गजेन्द्र को ग्राह से

मुक्त किया था। गजेन्द्र ने आर्त होकर भगवान् की स्तुति की थी। गज और ग्राह पूर्व जन्म मे क्रमश एक राजा और गन्धव थे। चाक्षुष मन्वन्तर मे असुरो से पराजित देवताओ के पुनरुत्थान के लिए भगवान् ने समुद्र मथन कराया और मोहिनी रूप धारण कर दैत्यो को अमृत से वचित कर दिया। इस पर घोर देवासुर सग्राम हुआ, जिसे नारद ने रोका। भगवान् शिव भगवान् के मोहिनी रूप पर मुग्ध हो गए तब भगवत्कृपा से वे मोह पाश से मुक्त हुए।

इसके उपरात आगामी सात मन्व तरो का वर्णन और मनु आदि के पृथक्-पृथक् कर्मों का निरूपण है। शुक्राचाय ने दैत्यराज बलि को विश्वजित् यज्ञ के प्रभाव से इन्द्र पद पर अधिष्ठित कर दिया। तब देव-माता अदिति ने अपने पदच्युत पुत्रो का वैभव पुन प्राप्त करने के लिए कश्यप जी से प्रसिद्ध पयोव्रत ग्रहण किया। उसके प्रभाव से भगवान् अदिति के यहाँ वामन रूप से अवतरित हुए और बलि से तीन पग पृथ्वी मागने के व्याज से विश्वरूप धारण कर समस्त पृथ्वी और स्वग दो पगो मे ही नाप डाला, तब तीसरे पग का स्थान न मिलने के कारण बलि को बाँध लिया। तब बलि ने आत्म सम्पण कर तीसरा पग शिरोधाय किया। भगवान् ने उसे देव दुलभ सुतल लोक को भेज दिया तथा स्वय 'उपेन्द्र' पद पर अभिषिक्त हुए। इसके उपरान्त मत्स्यावतार की कथा है।

नवम स्कन्ध

अब परीक्षित् ने वैवस्वत मनु के वश और उसमे उत्पन्न नृपति गण के चरित्र की शुश्रूषा प्रकट की तो शुकदेव जी ने बताया कि वैवस्वत मनु के पुत्र सुद्युम्न, इक्ष्वाकु, पृषध्र शर्याति आदि हुए। शर्याति की पुत्री सुकन्या का विवाह च्यवन ऋषि से हुआ था। शर्याति के वशज राजा ककुद्मी की कन्या रेवती का विवाह बलराम से हुआ। मनु के प्रपौत्र महाराज अम्बरीष परम भगवद् भक्त हुए जिनका अहित करने के कारण दुर्वासा को महान् कष्ट उठाना पडा। इक्ष्वाकु के वश मे मान्धाता चक्रवर्ती सम्राट् हुए। उनकी पुत्रियो का विवाह सौभरि ऋषि से हुआ था। मान्धाता के वशज त्रिशकु और हरिश्चन्द्र हुए। हरिचन्द्र के वश मे सगर हुए। सगर के वशज भगीरथ गगा को पृथ्वी तक पर लाने मे सफल हुए। भगीरथ के ही वश मे खट्वाग और उनके वशज दिलीप, रघु, अज, दशरथ और भगवान् राम आदि हुए। यहाँ रामचरित जरा विस्तार से कहा गया हे। फिर इक्ष्वाकु वश के शेष राजाओ का वश वर्णित है। इक्ष्वाकु के पुत्र निमि हुए जिनके पुत्र जनक हुए, यही मिथिला के राजा है। इनके वश मे अनेक राजा हुए। यह सूयवश है। चन्द्रवश मे बुध के पुत्र पुरूरवा हुए। ऋचीक ऋषि के पुत्र जमदग्नि और उनके पुत्र भगवान् परशुराम हुए जिन्होने सहस्रार्जुन को मारा और पृथ्वी को नि क्षत्रिय बना दिया था। पुरुरवा के वश मे गाधि हुए जिनके पुत्र विश्वामित्र हुए। पुरुरवा के वश मे नहुष क्षत्र-वृद्ध आदि हुए। नहुष का पुत्र ययाति हुआ और ययाति के यदु, पुरु आदि पुत्र हुए। पुरू के वश मे दुष्यन्त और उनके पुत्र भरत हुए। परोपकारी रन्तिदेव भी भरतवश मे हुए। भरत के वश मे अजमीढ, कुरु आदि हुए। आगे शन्तनु हुए जिनके भीष्म और चित्रागद और विचित्रवीय हुए। दाश कन्या सत्यवती से पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन हुए, और उनके पुत्र धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर। पाण्डु के पाँचो पाण्डव हुए और धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि। अर्जुन के सुभद्रा से अभिमन्यु और अभिमन्यु के उत्तरा से परीक्षित् पुत्र हुए। ययाति के पुत्र यदु, अनु, द्रुह्य, तुवसु, का यश बडा विस्तृत हुआ यदुकुल मे वृष्णि, चित्ररथ, देवमीढ आदि हुए। देवमीढ के पुत्र शूर थे और शूर के वसुदेव हुए। वसुदेव की पत्नी देवकी थी जिनसे साक्षात् भगवान श्री कृष्ण का जन्म हुआ।

दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध)

परीक्षित् ने शुकदेव जी से यदुवश मे उत्पन्न विष्णु (श्रीकृष्ण) के चरित्र सुनाने की प्राथना की तो उन्होने कहा कि जब उन्मत्त राजाओ के रूप मे असरय दैत्यगणो का अत्याचार बढने लगा तो भगवान् ने श्रीकृष्ण रूप से अवतार लिया। कस के भय से श्रीकृष्ण को मथुरा से गोकुल पहुँचा दिया गया। वही उनका प्रारभिक जीवन व्यतीत हुआ और उन्होने अपनी बाल लीलाएँ की। बाल्यावस्था मे ही उन्होने पूतना और तृणावत का वध और शकट भजन किया। ऊखल बधन के समय यमलार्जुन का उद्धार किया। वत्सासुर, बकासुर और अघासुर का वध किया। एक समय ब्रह्मा जी ग्वालो और बछडो को चुरा ले गए तब भगवान् ने अपने ऐश्वर्य से उनकी स्वतत्र रचना करली। ब्रह्मा जी का मोह दूर हो गया और उन्होने कृष्ण की स्तुति की। भगवान् ने धेनुक का बध किया और कालिय नाग से बालको की रक्षा की और ब्रजवासियो तथा गौओ को दावानल से बचाया, प्रलम्बासुर को मारा। वर्षा के पश्चात् शरत्काल मे भगवान् ने वेणुवादन और चीर हरण किया। यज्ञपत्नियो पर कृपा की। इन्द्र का दप चूरण करने के लिये इन्द्र यज्ञ भग कर गोवधन धारण किया। तब इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक किया। नन्द को एक बार वरुण के दूत पकड ले गए तो भगवान् उन्हे छुडाकर लाए। शरत्कालीन रात्रियो मे भगवान् ने अपना विश्व विमोहन रास किया। बीच मे जब भगवान् अन्तर्धान हो गए तो गोपियो ने करुण गीत से उनका आह्वान किया, तव भगवान् ने प्रकट होकर 'महारास' किया। फिर भगवान ने सुदशन नामक विद्याधर का उद्धार किया और शखचूड नामक कुबेर सेवक अरिष्टासुर केशी और व्योमासुर को मारा। नारद ने भगवान् की स्तुति की। इसी बीच कस की आज्ञा से अक्रूर राम कृष्ण को मथुरा लिवा लाए। वहाँ कुब्जा पर कृपा की, कुवलयापीठ मारा और अनेक मल्लो के साथ अन्त मे मामा कस को भी मार डाला। इसके पश्चात् भगवान् का यज्ञोपवीत और विद्याध्ययन हुआ। श्रीकृष्ण ने फिर अपने प्रिय मित्र और मत्री उद्धव को ब्रजवासियो की सान्त्वना के लिए ब्रज मे भेजा। वहाँ गोपियो का प्रेम देखकर वे अपना तत्वज्ञानोपदेश भूले भूले से होकर मथुरा लौट आए। श्रीकृष्ण ने तब हस्तिनापुर मे कौरव पाण्डवो की स्थिति के ज्ञान के लिए वहा अक्रूर को भेजा।

दशमस्कन्ध-उत्तरार्ध

कस की मृत्यु से क्रुद्ध हो जरासघ ने मथुरा पर घोर आक्रमण किया किन्तु वह पराजित हो गया। इसी समय श्रीकृष्ण ने द्वारका दुग निर्माण कराया। इस समय कालयवन ने कृष्ण पर आक्रमण किया किन्तु श्रीकृष्ण कौशल से उसे एक गुफा मे ले गए जहाँ सोये हुये मान्धाता पुत्र मुचुकुन्द की दृष्टि से वह भस्म हो गया। यवन सेना को परास्त कर भगवान् द्वारका चले गए। इसके उपरान्त भीष्मक कन्या रुक्मिणी द्वारा विवाह के लिये आहूत होने पर शिशुपाल आदि का पराभव करते हुए उन्होने उससे राक्षस विवाह किया। रुक्मिणी से श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न हुए जिन्होने शम्बरासुर मारा। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने स्यमन्तक मणि प्राप्त की और जाम्बवती, सत्यभामा आदि ८ महारानियो से परिणय किया, फिर भौमासुर को मार कर सोलह सहस्र एक सौ राज कन्याओ से विवाह किया। प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का विवाह बाणासुर की पुत्री ऊषा से हुआ था। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने शापग्रस्त राजा नृग का उद्धार किया। बलभद्र जी अपने बाधवो को देखने ब्रज मे आए वहाँ उन्होने द्विविद का वध किया और श्रीकृष्ण ने आकर पौण्ड्रक नामक दुशील राजा को

मारा। जाम्बवती से उत्पन्न कृष्ण-पुत्र साम्ब ने अपने पराक्रम से दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा से विवाह किया। इस समय जरासन्ध द्वारा ब दी राजाओ ने श्रीकृष्ण के पास अपना कष्ट निवारण करने के लिये सदेश भेजा। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करना चाहते थे अत श्रीकृष्ण भीम द्वारा युक्ति से जरासन्ध का वध करा उनके यज्ञ मे सम्मिलित होने इन्द्रप्रस्थ आए। जब यज्ञ मे श्रीकृष्ण की अग्रपूजा हुई तो शिशुपाल ने श्रीकृष्ण का अपमान किया। श्रीकृष्ण ने वही उसका वध कर दिया। शिशुपाल के मित्र शाल्व से यादवो ने घोर युद्ध किया। श्रीकृष्ण ने शाल्व द तवक्त्र विदूरथ आदि का वध कर दिया। जब महाभारत युद्ध की तैयारी हो रही थी तो बलराम तटस्थ रहने के विचार से तीर्थाटन के लिये निकल गये। नैमिषारण्य मे रोमहर्षण द्वारा उनको अभ्युत्थानादि न मिलने के कारण बलराम जी ने उनका शिरश्छेदन कर दिया और उनके पुत्र सूत को वक्ता नियुक्त किया। बलराम ने फिर बब्वल नामक राक्षस का वध किया। जब श्रीकृष्ण द्वारका मे सम्राट् थे तो उनके बाल्य-सहपाठी मित्र सुदामा उनसे मिलने आये। श्रीकृष्ण ने उन्हे अतुल समृद्धिशाली बना दिया इसके उपरान्त श्रीकृष्ण सपरिवार सूय ग्रहण पर द्वारका से कुरुक्षेत्र आए और गोपो से मिले। वहाँ कृष्ण की पत्नियो—रुक्मिणी आदि ने द्रौपदी को कृष्ण के साथ अपने अपने विवाह की घटनाएँ सुनाइ। फिर वसुदेव जी ने देवऋण से मुक्त होने के लिये यज्ञानुष्ठान किया। श्रीकृष्ण ने अपने छहो पूव मृत भाइयो को जीवित रूप मे माता देवकी को लाकर दिया। सुभद्रा का विवाह जिस प्रकार अर्जु न से हुआ वह शुकदेव ने परीक्षित् को सुनाया। फिर भगवान् ने मिथिला मे जाकर जनक बहुलाश्व और श्रुतिदेव को दशन और उपदेश दिया। परीक्षित ने शुकदेव से जिज्ञासा की कि गुणमय वेद निगु ण परमात्मा का प्रतिपादन कैसे कर सकते है तब इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये शुकदेव ने परीक्षित् को पूर्व काल मे हुए नारद और नारायण का सवाद सुनाया था जिसमे वेद द्वारा भगवान् की स्तुति की गई है। फिर उन्होने शकर द्वारा वृकासुर को भस्म करने का वरदान दिया जाने और अन्त मे विष्णु द्वारा शकर की रक्षा और उस दैत्य के स्वय अपने ही द्वारा भस्म होने की कथा सुनाई और भृगु द्वारा अनुभूत त्रिदेवो मे विष्णु की श्रेष्ठता प्रतिपादन करने वाला आख्यान सुनाया और अन्त मे भगवान् के लीला विहार का वर्णन किया।

एकादश स्कन्ध

महाभारत के उपरान्त भगवान् ने ऋषियो के शाप के बहाने से उच्छृ खल अपने यादव कुल का भी सहार कर डाला। वसुदेव जी ने एक बार नारद से इस भव प्रपच से मुक्त होने का उपाय पूछा तो उन्होने राजा विदेह और नौ ऋषभ पुत्रो का प्राचीन सवाद सुनाया। उन ऋषभ पुत्रो ने क्रमश भागवत धम, भक्त के लक्षण, माया, ब्रह्म, कम, भगवदवतार, भक्ति हीन पुरुषो की गति और पूजा विधि का वर्णन किया। श्रीकृष्ण ने जब परमधाम जाने का निश्चय किया तो उद्धव भी उनके साथ चलने के लिए आग्रह करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने उन्हे तत्त्व ज्ञान मयअवधूतोपाख्यान सुनाया। फिर भगवान् ने ससार का मिथ्यात्व निरूपण, बद्ध मुक्त और भक्तो के लक्षण, सत्सगमहिमा, कर्मानुष्ठान, कम त्याग की विधि, आत्म तत्त्व बोधक हसोपाख्यान, ध्यान योग, सिद्धियो, विभूतियो, वर्णाश्रम धम, ज्ञान योग, कमयोग, भक्ति योग, द्रव्य, देश आदि के गुण दोषो, साख्य योगादि का सविस्तार वर्णन किया। वैराग्योत्पादक अन्य उपाख्यान सुनाने के उपरान्त श्रीकृष्ण ने उद्धव को

बदरिकाश्रम भेज दिया। यादव कुल परस्पर युद्ध कर समाप्त हो गया और भगवान् स्वधाम चले गए।

द्वादश-स्कन्ध

परीक्षित् ने फिर शुकदेव जी से पूछा कि श्रीकृष्ण के निजधाम जाने पर पृथ्वी मे किसका वश हुआ। तब शुकदेव ने बृहद्रथ, नन्दिवधन, नन्द आदि भविष्यवर्ती राजाओ के वश का वरान किया। युग धर्मों और कलियुग मे हरि नाम सकीर्तन का माहात्म्य तथा प्रलय और परमाथ का निरूपण किया। इसके पश्चात् तक्षक-दश से परीक्षित् का देहान्त हो गया और जनमेजय ने सप सत्र किया। सूत ने फिर शौनकादि ऋषियो को पुराणादि के लक्षण और माकण्डेय ऋषि की कथा सुनाई। भगवान् के अगो उपाङ्गो और आमुखो का वरान करने के बाद श्रीमद्भागवत के विषयो का सक्षिप्त विवरण और विभिन्न पुराणो की श्लोक सख्या बताकर श्रीमदभागवत का महत्त्व प्रति पादन करते हुये ग्रथ की समाप्ति की गई है।

अन्तःसाक्ष्य

वर्ण्य-विषय—

श्रीमद्भागवत के वर्ण्य विषय का सम्यक् निरीक्षण करने से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ एक निश्चित और सुयोजित भक्ति-सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। प्रत्येक स्कन्ध मे एक सिद्धान्त का क्रमिक विकास होता गया है। वह सिद्धान्त है प्रेमलक्षणा भक्ति[1]। यद्यपि भागवत मे भक्ति का अत्यन्त विस्तृत और पूर्ण विवेचन है और वैधी-भक्ति, नवधा भक्ति निर्गुण भक्ति[2] आदि का भी सागोपाग वरान है, तथापि साधक का परम श्रेय भगवान् की प्रेमलक्षणा भक्ति से ही सिद्ध होता है, यह बात भागवत मे अनेक स्थलो पर दुहराई गई है[3]। कोरे ज्ञान और दार्शनिक दृष्टि एव यज्ञादि कर्म काण्ड की तो निन्दा की गई है—

धर्म स्वनुष्ठित पुसा विष्वक्सेनकथासु य।
नोत्पादयेद्यदि रति श्रम एव हि केवलम् ॥१–२–८॥
क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिन ॥१०–२३–९
धिग्जन्म नस्त्रिवृद्विद्या धिग्व्रत धिग्बहुज्ञताम्।
धिक्कुल धिक् क्रिया-दाक्ष्य विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥१०–२३–३९

श्रीमद्भागवत की प्रमुख विशेषता है—इसकी समन्वय-प्रवणता। इसमे साख्य, मीमासा, योग, न्याय, वेदान्त आदि सभी दर्शनो का स्वस्थ समन्वय कर भक्ति मे उनका पर्यवसान

१ नष्ट प्रायेष्वभद्रेषु नित्य भागवत सेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ श्रीमद्भागवत १–२–१८
अनर्थोपशम साक्षाद् भक्तियोगमधोक्षजे।
लोकस्याजानतो विद्वाश्चक्रे सात्वतसहिताम् ॥ श्रीमद्भागवत १–१–६

२ श्रीमद्भागवत ३–२–१२

३ स वै पुसा परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥
वासुदेवे भागवति भक्तियोग प्रयोजित।
जनयत्याशु वैराग्य ज्ञान यत्तदहैतुकम् ॥ श्रीमद्भागवत १–२–६–७

किया गया है। कपिल का अपनी माता के प्रति साख्य शास्त्र के अतिरिक्त अष्टाग योग और भक्ति का बडे विस्तार से कथन है।[१] सारय के आचाय कपिल ने भी अपने मत को भक्ति मे ही पयवसित कर भक्ति को सवश्रेष्ठ श्रेय साधन कहा है और मुक्ति से भी गरीयसी ठहराया है। जठरानल जिस प्रकार भक्षितान्न को भस्म कर देता है उसी प्रकार यह भक्ति भी शीघ्र ही कम सस्कार के भण्डार रूप लिग शरीर को नष्ट कर देती हे।[२]

विभिन्न दाशनिक मतो के समन्वय के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत मे एक ही दशन के विभिन्न मतो का भी सम वय हुआ है। उदाहरणाथ कपिल के साख्य शास्त्र के तत्वो की विभिन्न सरयाएँ। श्रीमद्भागवत मे साख्य तत्वो की अधिकतम सरया अट्ठाईस कही गई है[३] किन्तु फिर प्रश्न और शका भी उठाई गई है कि कोई आचाय छब्बीस, पच्चोस सात, नौ, छ, चार, ग्यारह, सत्रह, सोलह और कोई तेरह तत्त्व बतलाते है, उसकी सगति किस प्रकार बिठाई जाय[४] ? किन्तु भागवतकार ने कहा है कि इस विषय मे ब्राह्मण लाग जो कुछ कहते है वह सभी ठीक है, क्योकि सब तत्त्व सब जगह अन्तभू त है। भगवन्माया का आश्रय लेकर कहने वालो के लिए कोई बात कहना कठिन नही है।[५]

इस विवरण से इतना तो स्पष्ट ही है कि साख्य के चार तत्वो मे अट्ठाईस तत्वो तक पहुँचने मे विकास क्रम से पर्याप्त समय लगा होगा, और भागवत मे उसके विकसिततम रूप का विवेचन है। सम्भवत नवी शताब्दी तक समस्त आस्तिक और नास्तिक भारतीय दशनो का पूण विकास हो चुका था। श्रीमद्भागवत मे समस्त दशनो का अ तिम रूप दृष्टि-गोचर होता है।

अत श्रीमद्भागवत अपने अन्तिम रूप मे—अपने सुसगठित समन्वय प्रवण रूप मे—उसके बाद ही प्रस्तुत हुआ। शकराचार्य (प्रादुर्भाव ८४५ विक्रमीय सवत्) ने अपने समय तक प्रचलित समस्त दाशनिक मतो का खण्डन कर अद्वैतवाद (वेदान्त) की दिगन्त-व्यापिनी दुन्दुभि बजाई। उस महाप्रभविष्णु युवा सन्यासी के तेज से एकवारगी ही समस्त विश्व के नेत्र चौधिया गए। भारत मे बौद्धो का पराभव तो शकर की दिग्विजय का ही परिणाम है। इस वेदान्त-केसरी ने अन्य समस्त दशनावलम्बी जम्बुको को पलायित कर दिया, किन्तु इसका समन्वय के साथ प्रतिवाद किया भागवतकार ने। भागवत की भक्ति के घन-निनाद और

१ तत्वाम्नाय यत्प्रवदन्ति सारय प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम्। ३–२५–३१

२ अनिमित्ता भागवता भक्ति सिद्धे गरीयसी।
जरयत्याशु या कोश निगीर्णमनलो यथा॥ ३–२५–३३

३ कति तत्वानि विश्वेश सरयाता,यृषिभि प्रभो।
नवैकादश पञ्चत्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम॥ १३–२२–१

४ केचित्षड्विशति प्राहुरपरे पचविशतिम्।
सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे॥
केचित्सप्तदश प्राहु षोडशैके त्रयोदश।
एतावत्त्वहि सरयानामृषयो यद्विवक्षया।
गायन्ति पृथगायुष्मन्निद नो वक्तुमर्हसि॥ १३–२२–२–३

५ युक्त च सन्ति सर्वत्र भाष ते ब्राह्मणा यथा।
माया मदीयामुद्गृह्य वदता किं नु दुघटम्॥ ११–२२–४

विद्युच्छटा ने शकर के अद्वैत से शुष्क हृदय-देश को उल्लसित ओर प्रकाशित कर दिया। शकर ने अद्वैतवाद का इतना सूक्ष्म और बुद्धिग्राह्य विवेचन किया कि वह केवल वाणी के कथन, मनन और चिन्तन का विषय रह गया। केवल शास्त्र ज्ञानी पडितजन ही उसके मम को समझ सकते थे। आचरण मे लाना उनके भी वश की बात न थी। केवल सिद्धान्त ही श्रेयस्कर नही होता। एक अच्छा सिद्धान्त जब क्रियात्मक रूप धारण कर जनसाधारण के आचरण मे उतर आता है तभी वह ठोस लाभ पहुँचाता है। शकर मे केवल सिद्धान्त पक्ष ही प्रबल था। आचरण पक्ष की दुबलता उन्हे स्वय ही अनुभव होने लगी थी। सभवत इसीलिए उन्होने अपने निगुण ब्रह्म को उपासना का विषय बताने के लिए उसमे सगुणता का आरोप किया और अनेक भक्ति पूण स्तोत्रो की रचना की। किन्तु उनका वेदान्ती रूप जनता के हृदय मे इतनी गहराई से पैठ चुका था कि भक्तरूप उसके सामने नगण्य था। सभव है शकर ने अपने उत्तर जीवन मे भक्ति दशन के पक्ष को विकसित करने का विचार किया हो, किन्तु युवावस्था मे ही उनका तिरोभाव हो जाने से ऐसा न हो सका। आगे चलकर श्रीमद्-भागवत ने ही शकर के काय को पूरा किया। श्रीमद्भागवत एक प्रकार से शकराचाय के महान् सिद्धान्त का पूरक ग्रन्थ है।

वस्तुत महाभारत काल मे भी अनेक दाशनिक मत ओर सम्प्रदाय पर्याप्त प्रचार पा चुके थे। उनमे से पाच बहुत प्रसिद्ध थे। महाभारत शान्ति पव मे भीष्म ने साख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद और पाशुपत मतो की चर्चा की है।[1] वेद मत से कुछ विद्वानो का मत केवल वेदान्त है और कतिपय विद्वानो का मत है कि वेद-सम्मत कमकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड तीनो ही 'वेद' मत से अभिप्रेत है। दूसरा मत ही व्यापकता की दृष्टि से अधिक समीचीन मालूम होता है। साख्य और योग का वणन तो गीता मे ही प्रस्तुत हे और उससे उक्त दोनो मतों के रूप का ज्ञान हो जाता हे। गीता मे साख्य और योग के समन्वय का प्रयत्न किया गया है और दोनो को समान फलदायी बताया गया हे।[2] आज साख्य और योग का प्राचीन रूप तिरोहित हो चुका है ओर उनका जो परवर्ती रूप विकसित हुआ उसके दशन हमे श्री मद्भागवत मे होते हे। साँख्य के आचाय कपिल ने अपने मत का पयवसान भी भक्ति मे ही किया है। आगे चलकर कपिल ने अष्टाग योग का वणन किया हे। और भगवान् के दिव्य-विग्रह के ध्यान का ही उपदेश दिया हे।[3]

पाञ्चरात्र मत तो एक प्रकार से श्रीमद्भागवत का प्रधान मत ही है। भगवान की विधि पूवक उपासना का वणन पाञ्चरात्रादि तन्त्रो मे ही पाया जाता है। उसके अनुसार

१ सारय योग पाञ्चरात्र वेदा पाशुपतम् तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै॥
महाभा० शातिपव अभ्याय ३४९

२ सारय योगौ पृथग्बाला प्रवदन्ति न पण्डिता।
एकमप्यास्थित सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्॥
श्री मद्भगवद्गीता ५-४

३ यदा मन स्व विरज योगेन सुसमाहितम्।
काष्ठा भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकन॥
श्री मद्भागवत ३ २८ १२

'क्रिया योग' का आश्रय लेकर मरण धर्मा मानव अमरत्व प्राप्त करता है।[1] जिस प्रकार नारदपाँचरात्र शाडिल्यसहिता अहिबुध्न्य सहिता आदि वैष्णव उपासना के ग्रन्थ हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी पुराण सहिता हे पाशुपत मत शैव मत का आद्य रूप है। महाभारत मे अर्जुन के भगवान् श्री शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की कथा वर्णित है। 'पशुपति' भगवान् शिव का ही नाम है। भागवत मे शिव की महिमा अनेक स्थलो पर गाई गई है उन्हे परम भागवत और वैष्णव कहा गया है। शिव ही समस्त विद्याओ के प्रवर्त्तक समस्त प्राणियो के प्रभु और साधु जनो के एक मात्र आश्रय है। वे त्रिलोकी के एक मात्र गुरु है।[2] इस प्रकार श्री मद्भागवत मे समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त मत को भी श्री मद्भागवत मे कम महत्व नही दिया गया, अपितु भागवत का चरम प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व निगुण ब्रह्म ही है। यद्यपि श्रीमद्भागवत का चरम प्रतिपाद्य जीव के आत्यन्तिक कल्याण का साधन तत्त्व ज्ञान (अद्वैत प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञान) ही है।[3] तथापि इस तत्त्व ज्ञान का अनन्य तम साधन प्रेम लक्षणा भगवद्भक्ति ही भागवत का चरम वक्तव्य है। श्री मद्भागवत मे सर्वाधिक प्रबल दाशनिक मत (वेदान्त) का जिस तक पूण किन्तु सरस शैली मे भक्ति के साथ समन्वय किया गया है, वह विश्व-साहित्य मे अद्वितीय है। दशवी शताब्दी से पूव ही भक्ति की धारा दक्षिण से प्रवाहित हो चली थी और उसे रामानुजाचाय के श्री भाष्य और श्री मद्भागवत से बहुत बल मिला शकर ने विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण अपने ग्रन्थो मे दिये है किन्तु उन्होने श्री मद्भागवत का उल्लेख कही नही किया। अत अनुमान होता है किसी न किसी रूप मे भागवत का सभावित अस्तित्व रहते हुये भी अपने वतमान रूप मे उस समय प्रस्तुत नही था।

श्रीमद्भागवत का रचना-विधान

ग्रन्थ के रचना विधान को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि इसके स्कन्ध क्रमश नही लिखे गये। इसका तात्पय यह कदापि नही कि भागवत विभिन्न व्यक्तियो की रचना है। यह निश्चय ही एक व्यक्ति और उसी के जीवन काल के विभिन्न खडो मे लिखी गई रचना है। भागवत की भाषा और शैली से स्पष्ट होता है कि यह अनेक कवियो की रचना नही है। प्रारम्भ से जिस प्रौढ और पाण्डित्य पूण भाषा और व्यास शैली का आश्रय

१ अथेममर्थं पृच्छामो भव त बहुवित्तमम्।
समस्ततत्रराद्धा ते भवा भागवत तत्ववित्॥
तात्रिका परिचयाया केवलस्य श्रिय पते।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्प कल्पयन्ति यथा च यै॥
तन्नो वणय भद्र ते क्रिया योग बुभुत्सताम्।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम्॥
श्री मद्भागवत १२। ११। १, २, ३

२ ईशान सर्वविद्यानामीश्वर सव देहिनाम्। १२, १०, ८
रुद्र त्रिलोकैक गुरु नमाम शिरसा मुनि॥ १२, १०, १४

३ अत्र ब्रह्म पर गुह्य जगत प्रभवाप्ययम्।
ज्ञान च तदुपारयान प्रोक्त विज्ञानसयुतम्॥ १२-१२-४

विद्युच्छटा ने शकर के अद्वैत से शुष्क हृदय-देश को उल्लसित और प्रकाशित कर दिया। शकर ने अद्वैतवाद का इतना सूक्ष्म और बुद्धिग्राह्य विवेचन किया कि वह केवल वाणी के कथन, मनन और चिन्तन का विषय रह गया। केवल शास्त्र ज्ञानी पडितजन ही उसके मम को समझ सकते थे। आचरण मे लाना उनके भी वश की बात न थी। केवल सिद्धान्त ही श्रेयस्कर नही होता। एक अच्छा सिद्धान्त जब क्रियात्मक रूप धारण कर जनसाधारण के आचरण मे उतर आता है तभी वह ठोस लाभ पहुचाता है। शकर मे केवल सिद्धान्त पक्ष ही प्रबल था। आचरण पक्ष की दुबलता उन्हे स्वय ही अनुभव होने लगी थी। सभवत इसीलिए उन्होने अपने निगुण ब्रह्म को उपासना का विषय बताने के लिए उसमे सगुणता का आरोप किया और अनेक भक्ति पूण स्तोत्रो की रचना की। किन्तु उनका वेदान्ती रूप जनता के हृदय मे इतनी गहराई से पैठ चुका था कि भक्तरूप उसके सामने नगण्य था। सभव है शकर ने अपने उत्तर जीवन मे भक्ति दशन के पक्ष को विकसित करने का विचार किया हो, किन्तु युवावस्था मे ही उनका तिरोभाव हो जाने से ऐसा न हो सका। आगे चलकर श्रीमद्भागवत ने ही शकर के काय को पूरा किया। श्रीमद्भागवत एक प्रकार से शकराचाय के महान् सिद्धान्त का पूरक ग्रन्थ है।

वस्तुत महाभारत काल मे भी अनेक दाशनिक मत और सम्प्रदाय पर्याप्त प्रचार पा चुके थे। उनमे से पाच बहुत प्रसिद्ध थे। महाभारत शाति पव मे भीष्म ने साख्य, योग, पाञ्चरात्र, वेद और पाशुपत मतो की चर्चा की है।[1] वेद मत से कुछ विद्वानो का मत केवल वेदान्त है और कतिपय विद्वानो का मत है कि वेद-सम्मत कमकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञान काण्ड तीनो ही 'वेद' मत से अभिप्रेत है। दूसरा मत ही व्यापकता की दृष्टि से अधिक समीचीन मालूम होता है। साँख्य और योग का वणन तो गीता मे ही प्रस्तुत है और उससे उक्त दोनो मतों के रूप का ज्ञान हो जाता है। गीता मे साख्य और योग के समन्वय का प्रयत्न किया गया है और दोनो को समान फलदायी बताया गया है।[2] आज साख्य और योग का प्राचीन रूप तिरोहित हो चुका है और उनका जो परवर्ती रूप विकसित हुआ उसके दशन हमे श्री मद्भागवत मे होते है। साँख्य के आचाय कपिल ने अपने मत का पयवसान भी भक्ति मे ही किया है। आगे चलकर कपिल ने अष्टाग योग का वणन किया है। और भगवान् के दिव्य-विग्रह के ध्यान का ही उपदेश दिया है।[3]

पाञ्चरात्र मत तो एक प्रकार से श्रीमद्भागवत का प्रधान मत ही है। भगवान की विधि पूवक उपासना का वणन पाञ्चरात्रादि तन्त्रो मे ही पाया जाता है। उसके अनुसार

१ साख्य योग पाञ्चरात्र वेदा पाशुपतम् तथा।
ज्ञानान्येतानि राजर्षे विद्धि नाना मतानि वै॥
महाभा० शातिपव अध्याय ३४९

२ साख्य योगौ पृथग्बाला प्रवदति न पण्डिता।
एकमप्यास्थित सम्यगुभयोर्विदते फलम्॥
श्री मद्भगवद्गीता ५–४

३ यदा मन स्व विरज योगेन सुसमाहितम्।
काष्ठा भगवतो ध्यायेत्स्वनासाग्रावलोकन॥
श्री मद्भागवत ३ २८ १२

'क्रिया योग' का आश्रय लेकर मरण धर्मा मानव अमरत्व प्राप्त करता है।[1] जिस प्रकार नारदपाँचरात्र शाडिल्यसहिता अहिबु ध्न्य सहिता आदि वैष्णव उपासना के ग्रन्थ है, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत भी पुराण सहिता हे पाशुपत मत शैव मत का आद्य रूप है। महाभारत मे अर्जुन के भगवान् श्री शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की कथा वर्णित है। 'पशुपति' भगवान् शिव का ही नाम है। भागवत मे शिव की महिमा अनेक स्थलो पर गाई गई है उन्हे परम भागवत और वैष्णव कहा गया है। शिव ही समस्त विद्याओ के प्रवत्तक समस्त प्राणियो के प्रभु और साधु जनो के एक मात्र आश्रय है। वे त्रिलोकी के एक मात्र गुरु है।[2] इस प्रकार श्री मद्भागवत मे समन्वय का प्रयत्न किया गया है।

वेदान्त मत को भी श्री मद्भागवत मे कम महत्व नही दिया गया, अपितु भागवत का चरम प्रतिपाद्य आश्रय तत्त्व निगु ण ब्रह्म ही है। यद्यपि श्रीमद्भागवत का चरम प्रतिपाद्य जीव के आत्यन्तिक कल्याण का साधन तत्त्व ज्ञान (अद्वैत प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञान) ही है।[3] तथापि इस तत्त्व ज्ञान का अनन्य तम साधन प्रेम लक्षणा भगवद्भक्ति ही भागवत का चरम वक्तव्य है। श्री मद्भागवत मे सर्वाधिक प्रबल दार्शनिक मत (वेदान्त) का जिस तक पूर्ण किन्तु सरस शैली मे भक्ति के साथ समन्वय किया गया है, वह विश्व-साहित्य मे अद्वितीय है। दशवी शताब्दी से पूव ही भक्ति की धारा दक्षिण से प्रवाहित हो चली थी और उसे रामानुजाचाय के श्री भाष्य और श्री मद्भागवत से बहुत बल मिला शकर ने विष्णु पुराण से अनेक उद्धरण अपने ग्रन्थो मे दिये है किन्तु उन्होने श्री मद्भागवत का उल्लेख कही नही किया। अत अनुमान होता है किसी न किसी रूप मे भागवत का सभावित अस्तित्व रहते हुये भी अपने वतमान रूप मे उस समय प्रस्तुत नही था।

श्रीमद्भागवत का रचना-विधान

ग्रन्थ के रचना विधान को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि इसके स्कन्ध क्रमश नही लिखे गये। इसका तात्पय यह कदापि नही कि भागवत विभिन्न व्यक्तियो की रचना है। यह निश्चय ही एक व्यक्ति और उसी के जीवन काल के विभिन्न खडो मे लिखी गई रचना है। भागवत की भाषा और शैली से स्पष्ट होता है कि यह अनेक कवियो की रचना नही है। प्रारम्भ से जिस प्रौढ और पाण्डित्य पूर्ण भाषा और व्यास शैली का आश्रय

१ अथेममर्थं पृच्छामो भव त बहुवित्तमम्।
समस्ततत्रराद्धा ते भवा भागवत तत्ववित्॥
तान्त्रिका परिचर्याया केवलस्य श्रिय पते।
अङ्गोपाङ्गायुधाकल्प कल्पयन्ति यथा च यै॥
तन्नो वर्णय भद्र ते क्रिया योग बुभुत्सताम्।
येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम्॥
श्री मद्भागवत १२। ११। १, २, ३

२ ईशान सर्वविद्यानामीश्वर सव देहिनाम्। १२, १०, ८
रुद्र त्रिलोकैक गुरु नमाम शिरसा मुनि॥ १२, १०, १४

३ अत्र ब्रह्म पर गुह्य जगत प्रभवाप्ययम्।
ज्ञान च तदुपाख्यान प्रोक्त विज्ञानसयुतम्॥ १२-१२-४

लिया गया है, अन्त तक उसका प्रवाह अक्षुण्ण है।[1] सूक्ष्म निरीक्षण से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवत के दो स्पष्ट भाग है—

(१) प्रथम स्कन्ध से नवम स्कन्ध और एकादश तथा द्वादश स्कन्ध।

यही वह भाग है जिसमे श्री मद्भागवत का चरम वक्तव्य ज्ञान और भक्ति का समन्वय है।

(२) दशम स्कन्ध—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध—इसमे भक्ति के आधार पर भगवान् की लीलाओ का वर्णन है। इस प्रकार २ खण्डो मे यह ग्रन्थ सम्पादित किया गया है। एक विशेष योजना और विचार पद्धति से इन आगे पीछे लिखे गये स्कन्धो का सम्यक् क्रम निर्धारित किया गया है।

एक और ध्यान देने की बात है—पुनरावृत्ति की प्रवृत्ति। एक ही विषय और तथ्य को अनेक स्थलो मे अनेक बार कहा गया है। उदाहरणत सृष्टि क्रम विकास तथा भगवदवतारो का वर्णन। किन्तु यह सब इस कौशल के साथ किया गया है कि पुनरावृत्ति होते हुए भी नवीनता और सरसता का अनुभव होता है। भागवत के कुछ पुनरावृत्ति विषय ये है—

(१) भगवत्कथा और भगवद्भक्ति का माहात्म्य।

(२) भगवान् के अवतारो का वर्णन।

(३) भगवान् के विराट् रूप का वर्णन।

(४) सृष्टि वर्णन। (जिसमे कई प्रकार की सृष्टि का वर्णन है, जैसे—दशविध सृष्टि, मन्वन्तर वर्णन, महदादि तत्त्व-वर्णन)

(५) वंशानुचरित आदि।

श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध मे एक बात यह भी विशेष महत्त्व की है कि जहाँ अन्य भारतीय ग्रन्थो—रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणो के अनेक संस्करण प्राप्त होते हैं वहाँ श्रीमद्भागवत के संस्करण नही हुये है। काफी प्राचीन काल से ही इसका एक मात्र वर्तमान रूप ही प्रतिष्ठित है। इस ग्रन्थ मे विशेष पाठ भेद भी नही है। नारदीय पुराण मे श्रीमद्भागवत के जिस रूप का उल्लेख है और प्रत्येक स्कन्ध मे जिन कथाओ का निर्देश है वे सभी वर्तमान भागवत मे ज्यो की त्यो मिलती है। क्षेपको का आक्षेप भी श्रीमद्भागवत

१ आरम्भ—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञ स्वराट्।
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरय ॥
तेजो वारिमृदा यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहक सत्य पर धीमहि ॥ १, १, १

उपसहार—

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञान प्रदीप पुरा।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्भक्ताय कारुण्यत
स्तच्छुद्ध विमल विशोकममृत सत्य पर धीमहि ॥ १२–१३–१४

मे नही के बराबर है । दशम स्कन्ध मे ही कुछ आचार्यों ने प्रक्षिप्त अश माने हैं। अन्य स्कन्धो की प्रामाणिकता मे कोई मन भेद नही है। द्वादश स्कन्ध मे अवश्य भविष्यपुराण की परम्परा का अनुसरण कर कलियुग के राजवशो के वर्णन मे भविष्य कथन किए गए है । वास्तव मे यह एक पौराणिक परम्परा है ।

भाषा

श्री मद्भागवत की भाषा पर विचार करने से भी यही सिद्ध होता है कि यह एक ही कवि की रचना है । साथ ही इसकी समास-प्रधान सक्षिप्त कथन शैली और आलकारिकता से पता चलता है कि यह ऐसे समय की रचना है जब काव्य भाषा और शैली मे सरलता और स्पष्टता के स्थान पर अलकारिक प्रयोगो, प्रतीक-प्रधान और व्यजना के गूढ साधनो को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था। बाण (७ वी शती) के समय से ही यह प्रवृत्ति बढने लगी थी, जैसा कि कादम्बरी की भाषा और शैली से स्पष्ट है श्रीमद्भागवत मे केवल पद्य रचना ही नही है। अनेक स्कन्धो मे अत्यन्त प्रौढ ललित और प्रवाह पूर्ण गद्य भागवत की भाषा को एक नया रूप प्रदान करता है। यह गद्य कादम्बरी के गद्य की स्मृति जगा देता है। वर्णनात्मक प्रसगो मे यहा उपन्यास का सा वातावरण निर्मित हो जाता है और अनुमान होता है कि इस प्रकार की रचना कही कथा और आख्यायिका की परम्परा मे तो नही है—

"मघुरपि परेणैव प्रतिसधितमनोरथ सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिबिषमविषयविषजलाशया शाया उपरराम । श्रीमद्भागवत ५–१–२२

उपर्युक्त उदाहरण मे गद्य काव्य की समस्त पदावली और अनुप्रास का सौन्दर्य द्रष्टव्य है ।

दसवी शताब्दी (राज शेखर का काल) मे यह प्रवृत्ति अपनी सीमा पर पहुँच चुकी थी । छन्दो का वैविध्य भी हो चला था। श्रीमद्भागवत की भाषा अन्य सभी पुराणो से प्रौढ, दुरूह, सक्षिप्त और 'आलकारिक (Ornate) है। तभी पण्डितो मे "विद्यावतां भागवते परीक्षा" वाली उक्ति का प्रचार हुआ। उपमा रूपक और अतिशयोक्ति का बहुल प्रयोग इसे एक सुन्दर काव्य का रूप सहज ही प्रदान कर देता है। यहाँ इसकी काव्यमयी ललित भाषा का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

ललित-गति-विलास-वल्गु-हास
प्रणय-निरीक्षण-कल्पितोरुमाना ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धा
प्रकृतिमगान्किल यस्य गोपबध्व ॥ १–९–४०

श्रीमद्भागवत मे जहाँ भगवान् की स्तुतियाँ है, वहाँ उनकी भाषा विचित्र रूप से परिवर्तित हो जाती है और उसमे से एक सुन्दर प्रवाह उत्पन्न हो जाता है। ऐसे स्थल अनेक हैं। ये स्तुतियाँ इतिवृत्तात्मक मरुभूमि मे एक मनोहारी शाद्वल-भूमिखण्ड का कार्य करती हैं। कुन्ती कृत भगवत्स्तुति मे भाषा का लालित्य और प्रवाह दर्शनीय है—

श्रीकृष्ण कृष्ण सख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग,
राजन्यवंश दहनानपवर्गवीय ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार
योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।। १–८–४३

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि भक्ति के प्रवाह मे लिखे गए स्तोत्र-साहित्य की परम्परा श्रीमद्भागवत मे विद्यमान है । इस प्रकार का विपुल साहित्य नवी शताब्दी मे भक्ति आन्दोलन के समय ही लिखा गया होगा ऐसा अनुमान होता है ।

भागवत का रचना-स्थल—

भागवत के अन्त साक्ष्य के आधार पर ज्ञात होता है कि इसका रचना-स्थल दक्षिण भारत है । इसके वर्णन दक्षिण भारत के नैसर्गिक रूप से अधिक मेल खाते हे । उत्तर भारत का वर्णन प्रत्यक्ष दर्शन की अपेक्षा श्रुत और परम्परा-प्राप्त ज्ञात होता है । ब्रज का वर्णन भी श्रुति परम्परा से आया मालूम होना है और उसमे उत्तरी भारत के दृश्य की अपेक्षा दक्षिण भारत का दृश्य ही अधिक प्रतिबिम्बत होता है—

वनौकस प्रमुदिता वनराजीमधुच्युत
जलधारा गिरेर्नादानामन्ना ददृशे गुहा ।।
क्वचिद्वनस्पति क्रोडे गुहायाँ चाभिवर्षति ।
निर्विश्य भगवान्रेमे कंदमूलफलाशन ।।

—श्रीमद्भागवत १०–२०–२७–२८

भील किरातादि जातियो का निवासस्थान तथा गिरिकंदराओ का बाहुल्य ब्रजभूमि की अपेक्षा दक्षिण भारत मे ही अधिक है यह स्पष्ट ही है । नदो, पर्वतो, घनेवनो, खर्जूर आदि वृक्षो का आधिक्य दक्षिण प्रायद्वीप और विन्ध्याचल के आसपास ही है ।

पुष्पो के वर्णन से भी श्रीमद्भागवत का रचना स्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है अनेक स्थलो पर ऐसे ही पुष्पो की नामावली आयी है, जो अधिकतर दक्षिण भारत मे ही पाये जाते हैं—

कच्चित्कुरबकाशोक नाग पुन्नाग चम्पका ।
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मित ।। १०–३०–६
मालत्यदर्शि व कच्चिन्मल्लिके जातियूथिके ।
प्रीति वो जनयन्यात करस्पर्शेण माधव ।। १०–३०–८

इस प्रकार कुरबक, अशोक, नाग, पुन्नाग, चम्पक, मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका आदि पुष्पो के उल्लेख से स्पष्ट हैं कि इनकी बहुल उत्पत्ति दक्षिण भारत मे ही होती है । कवि को जिन पदार्थों का दर्शन प्रत्यक्ष और सुलभ होता है वे ही उसकी रचनाओ मे वर्णित होते है यह नितान्त स्वाभाविक है । अत श्रीमद्भागवत के विविध वर्णनो और भौगोलिक ज्ञान के आधार पर इसका रचना स्थल दक्षिण भारत ही प्रतीत होता है ।

तिथि निर्णय

समस्त भारत मे विभिन्न लिपियो मे श्रीमद्भागवत की जो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं तथा भारत की समस्त भाषाओ मे इसके जो अनुवाद प्राप्त हुए है, उससे श्रीमद्भागवत की प्रसिद्धि,

प्राचीनता और लोकप्रियता सिद्ध होती है। भारतीय ही नही फारसी अँग्रेजी आदि विदेशी भाषाओ मे भी इस ग्रन्थ के अनुवाद और तत्तत् लिपियो मे इसकी प्रतियाँ उपलब्ध है। किन्तु दुर्भाग्यवश इस ग्रन्थ के रचना काल के सम्बन्ध मे कोई अन्तिम निर्णय अभी तक नही दिया जा सका है। विल्सन मैकडानल, कोलब्रुक आदि विदेशी विद्वान् श्रीमद्भागवत को १३वी की रचना मानते है, उनके मत का खण्डन अनेक भारतीय विद्वान् कर चुके है। अधिकतर विद्वानो का मत है कि श्रीमदभागवत ९वी शताब्दी की रचना है।[१] अलबेरूनी ने 'वासुदेव भागवत' का उल्लेख कर अपनी १८ पुराणो की सूची मे श्रीमद्भागवत का स्थान स्पष्ट कर दिया है, क्योकि श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य भागवत पुराण भी १८ पुराणो की सूची मे गिने जाने के लिए उसकी प्रतिद्वद्विता मे खडे होने लगे थे। अत श्रीमद्भागवत का समय अल-बेरूनी से इतना पूव अवश्य रहा होगा कि इसको स्थिति स्पृहणीय हो गई थी। इस स्थिति तक पहुँचने के लिए श्रीमद्भागवत की रचना ८०० ई० से बाद की नही हो सकती। यह तो निर्विवाद है कि भागवत धम महाभारत के 'सात्वतधम' का ही पर्याय है जिसकी स्थिति चौथी शताब्दी ईसवी मे थी और ५वी शताब्दी मे गुप्तो के शासन काल मे जिसका पूर्ण अभ्युदय हुआ था। उसी समय या उसके पश्चात् ही श्रीमद्भागवत की रचना हुई होगी। माठर वृत्ति मे प्राप्त श्रीमद्भागवत के समानान्तर दो श्लोको[२] की चर्चा श्री बी० एन० कृष्णमूर्ति शर्मा ने की है। किन्तु ये श्लोक माठर वृत्ति के परमाथ पडित कृत चीनी अनुवाद मे उपलब्ध नही है। माठर वृत्ति का मूलभाग सदिग्ध है। इस अनुवाद का समय छठी शताब्दी है। यदि माठर वृत्ति का रचना काल हम अनुवाद से १०० वष पूव माने जिसके मूल भाग मे उक्त दो श्लोक नही थे, तब श्रीमद्भागवत की उपस्थिति छठी शती के पूर्वाध तक सिद्ध नही होती, किन्तु यह भी सम्भव है कि भागवत के परिवर्धित सस्करण मे वे श्लोक बढ गए हो अन्य पुराणो के आकार और विषय की भाँति श्रीमद्भागवत पुराण मे समय समय पर परिवतन हुआ है, किन्तु वे स्थल इतनी सावधानी से सम्मिलित किए गए है कि उन्हे पृथक् करना कठिन है। विद्वानो का मत है कि तमिल वैष्णवो के उल्लेख और हूण आदि जातियो के वैष्णव धम स्वीकार करने के सकेतो से ज्ञात होता है कि श्रीमद्भागवत का रचना काल ५वी शती से पूर्व नही है। ६०० ई० को हम इसकी निम्न सीमा रेखा मान सकते है जिसका अतिम रूप नवी शताब्दी के उत्तराध तक प्रस्तुत हो चुका था।

---

१ दे०—J B B R A S 1935 144 ff
Pargiter Ancient Indian Historical Tradition p 80

२ श्रीमद्भागवत १–८–५२ और १–६–३५

अध्याय ५

श्रीमद्भागवत के कृष्ण और गोपियां

कृष्ण का ऐतिहासिक विवेचन

कृष्ण (भाव) का विकास—

भारतीय वाङमय का कृष्ण पात्र जितना विवादास्पद है उतना सम्भवत और कोई पात्र नही है। इसका एक मुख्य कारण वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य मे कृष्ण और उसके चरितो का अस्तित्व है। कुछ पाश्चात्य विद्वानो ने कृष्ण को ऐतिहासिक पात्र ही नही माना है तथा आग्ल भाषा विशारद अनेक भारतीय भी उन्ही के पद चिह्नो पर चलने मे ही अपना सौभाग्य समझते है और बहुत सी भारतीय वस्तुओ को अभारतीय कहने मे नही हिचकते। इस विवाद का दूसरा कारण कृष्ण के विभिन्न स्वरूप और उनका एक मे समाहार है। गोपाल सहस्र नाम, विष्णु सहस्र नाम तथा पुरुषोत्तम सहस्र नाम आदि अनेक स्तोत्रो मे भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक नाम गिनाए गये है तथा पुराणो मे अनेक देवो की कल्पना कर उनकी स्तुति की गई है तथा प्राय सभी देवो को भगवान् के अवतार या अ श ही माना गया है। इस विषय पर अनेक ग्रन्थो की रचना हो चुकी है और अनेक शोध प्रबन्धो मे पृष्ठ-भूमि के रूप मे इस विषय पर आज भी बहुत कुछ लिखा जा रहा है। इसलिए इस विषय पर बहुत ही सक्षेप मे हम विचार करेंगे।

मैत्रायण्युपनिषद् मे ब्रह्म का निरूपण करते हुये कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इन्द्र निशाकर, मनु, यम, पृथ्वी तथा अच्युत तुम्हारे ही नाम है।[1] इस प्रकार के ब्रह्म निरूपक अनेक पद हमे वेदो तथा उपनिषदो मे मिलते हैं जिनसे विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित होता है। भागवत धम के प्रधान देवता वैदिक काल मे विष्णु रहे है। ब्राह्मण काल के अन्त मे नारायण को परम देवता माना जाने लगा। इस काल की उपासना मे मनुष्य को अखिल व्यापक परोक्ष शक्ति के स्वरूप का अधिक परिचय मिला और उपासना पद्धति मे व्यक्तित्त्व का तथा हृदय का सयोग हुआ। नारायण को नरप्रकृतिस्थ सगुण ब्रह्म कहा गया है। पौराणिक काल मे नारायण और विष्णु की एकता स्थापित हो गई। नारायणीय धम के मूल का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण मे है। इस पाचरात्र या नारायणीय धम के कई पक्ष थे। भगवान् का जो स्वरूप नर नारायण के रूप मे पूर्व कल्प मे प्रकट हुआ था, वह इस कल्प मे वासुदेव कृष्ण के रूप मे प्रकट हुआ अर्थात् इस कल्प मे नारायण और वासुदेव कृष्ण एक ही शक्तियुग विशेषो मे अलग अलग नाम हुए। महाभारत मे शान्ति पव के अ तगत नारायणीयोपाख्यान मे भागवत धम की परम्परा बतलाई गई है, जिसके अनुसार इम धम का रहस्य विवस्वान् ने मनु को बताया तथा मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को बताया—

१ दे० मैत्रामण्युपनिषद्—४।१२।१३

इम विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥[1]

अर्थात् श्रीकृष्ण कहते है कि हे अर्जुन ! मैने इस अविनाशी योग को कल्प के प्रारभ मे सूय के प्रति कहा था। सूय ने अपने पुत्र मनु के प्रति और मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के प्रति कहा।

इसी नारायणीय उपाख्यान मे क्षीर समुद्र के मध्य श्वेत द्वीप का वणन किया गया है और बताया गया है कि वहाँ के निवासी वासुदेव भगवान् की उपासना करते थे। इस नारायणीय उपाख्यान की सगति सात्वत सहिता से भी लग जाती है जिसमे भक्तितत्व को रहस्याम्नाय और उपासना को क्रियामाग कहा है। सात्वत यादव क्षत्रियो का एक वग है और इसी जाति मे श्रीकृष्ण ने जन्म लिया था। जब सात्वतो मे वासुदेव की पूजा प्रधान हो गई तो वासुदेव और नारायण को एक ही देवता समझा जाने लगा। इस प्रकार, विष्णु, नारायण और वासुदेव कृष्ण एक हो गए।

इस कल्प के भागवत धम के तत्त्वज्ञान मे परमेश्वर को वासुदेव, जीव को सकषण, मन को प्रद्युम्न तथा अहकार अनिरुद्ध कहा गया है। इनमे वासुदेव तो स्वय श्रीकृष्ण का नाम है सकषण उनके ज्येष्ठ भ्राता बलराम का नाम है तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध क्रमश उनके पुत्र एव पौत्र के नाम है। परन्तु भागवत धम से वासुदेव का सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ और कब हुआ यह विषय विचारणीय है। सात्वत सहिता मे वासुदेव की पूजा का विधान है और इसी क्षत्रिय कुल मे कृष्ण का जन्म हुआ था इसलिए सम्भवत कृष्ण मे वासुदेवत्व का आरोप हो गया हो। नारायणीय उपाख्यान मे जो नारायण और नारद का सवाद है उसमे श्रीकृष्ण का नाम नही है। हाँ महाभारतकार ने कृष्ण को सात्वत धम का उपदेष्टा अवश्य कहा है। इस 'वासुदेव' शब्द का कृष्ण से कब समन्वय हुआ यह अभी विवाद का विषय बना हुआ है। श्रीकृष्ण का देवता रूप से वणन सबसे पहले हरिवश पुराण मे आया है, जिसका समय भण्डारकर ने सन् ईसवी की तीसरी शताब्दी माना है[2], परन्तु वासुदेव कृष्ण का सम्बन्ध और भी पुराना है। पाणिनि और पतञ्जलि वैयाकरणो के सूत्र और भाष्य मे हमे यह सम्बन्ध मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद् मे कृष्ण को देवकी पुत्र और घोर आङ्गिरस ऋषि का शिष्य बताया गया है। छान्दोग्य उपनिषद् से आगे जो उपदेश है वह भी गीता के श्लोक से मिलता जुलता है। कौशीतकी ब्राह्मण मे भी श्रीकृष्ण और आँगिरस का उल्लेख है। कुछ विद्वान् इन्ही उल्लेखो के आधार पर इस निष्कष पर पहुँच गए है कि ये ही ऐतिहासिक कृष्ण थे जिनके पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी था और जो घोर आँगिरस ऋषि के शिष्य थे। उन्होने ही सात्वत सम्प्रदाय की स्थापना की और उनकी ईश्वर रूप से उपासना होने लगी। निश्चित ऐतिहासिक व्यौरो के अभाव मे हम इस मत को नही मान सकते।

वासुदेव और कृष्ण के सम्बन्ध वाली समस्या से भी अधिक गुत्थी गोपाल कृष्ण वाली है, क्योकि श्रीमद्भागवत मे तो वासुदेव कृष्ण और गोपालकृष्ण एक ही है। महाभारत मे श्रीकृष्ण को वसुदेव नन्दन कई स्थलो पर कहा गया है और द्वारकावासी होने का भी उल्लेख

१ दे० श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ४ श्लोक १, ३

२ दे० Vaishnavism and Shaivism P 37

किया गया है परन्तु प्रामाणिक महाभारत मे न तो गोपालकृष्ण का कही उल्लेख है और न गोकुल वाली कथा का ही समावेश है। हाँ सभा पर्व मे गोकुल वाली कथा का आभास अवश्य मिलता है। यद्यपि भण्डारकर ने तो महाभारत के उतने अश को प्रक्षिप्त कहकर 'गोपाल' शब्द या 'गोकुल' शब्द की सगति पूर्णतया ही उडानी चाही है, परन्तु पर्याप्त प्रमाणो के अभाव मे हम भण्डारकर की इस मान्यता से कैसे सहमत हो सकते है? पुराणो मे अवश्य हमे गोपालकृष्ण सम्बन्धी कथाएँ मिलती है। कृष्ण चरित को कहने वाले मुख्य पुराण ये है—

ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, श्रीमद्भागवत, वायु पुराण, अग्नि पुराण, लिग पुराण, देवी भागवत और हरिवश पुराण। ब्रह्म पुराण और विष्णु पुराण मे तो कथाएँ प्राय एकसी है और दोनो मे एक से ही श्लोक मिलते है। विष्णु पुराण मे कही-कही पात्र भेद भी है और ब्रह्म पुराण की अपेक्षा श्लोक सख्या भी कुछ अधिक है। अन्य पुराणो मे कथा तो एक ही है, पर श्लोक अलग-अलग है। ब्रह्म वैवर्त मे एक नई बात यह है कि उसमे 'राधा' का वर्णन विशेष रूप से हुआ है और राधा को कृष्ण की एक सखी के रूप मे चित्रित किया गया है। वायु पुराण मे भिन्न-भिन्न राजवशो का वर्णन है और उसी प्रसग मे कृष्ण चरित का वर्णन है। हरिवश पुराण मे, जो महाभारत का ही एक परिशिष्ट है केवल श्रीकृष्ण की ही कथा का वर्णन है। कहा जाता है कि महाभारत मे जो कृष्ण चरित का अभाव है, उसी की पूर्ति करने के लिए हरिवश पुराण का निर्माण हुआ है। इन सभी पुराणो मे कृष्ण चरित की कथा कुछ अतर के साथ एक सी ही है। महाभारत मे श्रीकृष्ण का प्रथम उल्लेख द्रोपदी स्वयवर के प्रसग मे आता है, जहा कि अन्य राजाओ की भाति वे भी दिखाए गए है। फिर समय-समय पर कृष्ण के दर्शन होते है किन्तु कोई शृङ्खला बद्ध कृष्ण चरित नही है। महाभारत से केवल इतना ही पता चलता है कि भागवत, सात्वत अथवा ऐकातिक धर्म एक ही धर्म के रूप है। शान्ति पर्व मे इसका लक्षण इस प्रकार दिया है।

नारायण परो धर्म पुनरावृत्ति-दुर्लभ ।
प्रवृत्ति लक्षणश्चैव धर्मो नारायणात्मक ॥[1]

अर्थात् धर्म, नारायण का ही स्वरूप है। प्रवृत्ति-मूलक निवृत्ति-मूलक दोनो ही धर्म नारायण परक है।

फिर आगे चलकर वैशम्पायन जनमेजय से कहते है—

यतीना चाऽपि यो धर्म स ते पूर्व नृपोत्तम ।
कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पत ॥

अर्थात् "जनमेजय, गीता मे सन्यासियो का धर्म कहते समय मैने सक्षेप मे इस धर्म का वर्णन पहले तुम से कर दिया है।"

इस प्रकार महाभारत तक हमे केवल नारायणीय वासुदेव का उल्लेख मिलता है। पातञ्जलि महाभाष्य मे इसी अवतार का उल्लेख है, गोपाल कृष्ण का नही। श्रीमद्भागवत मे परब्रह्म वासुदेव कृष्ण और गोपाल कृष्ण एक ही है। इससे सिद्ध होता है कि भागवत के

१ दे० महाभारत शान्तिपर्व अ० ३४७ श्लोक ८०

रचना काल तक यह अभिन्नता स्थापित हो चुकी थी। श्रीमद्भागवत के बारहवे स्कन्ध मे इन पुराणो के नाम गिनाए गए है, जिससे सिद्ध होता है कि उनकी रचना भागवत से पहले हो चुकी थी। पुराणो की निर्माण तिथि अभी अन्धकार मे है। इसलिए इस विषय पर अधिक नही कहा जा सकता। पाश्चात्य विद्वानो ने इन पुराणो के रचना काल के विषय मे बहुत सी कल्पनाये की है। श्रीमद्भागवत के विषय मे हम पीछे लिख चुके है कि कोलब्रुक, बनफ विल्सन, आदि प्रारम्भिक यूरोपीय विद्वान् भागवत का रचयिता वोपदेव (१२६०–१३०६ ई०) को मानते है। इस ओर बडी खोज की आवश्यकता है।

अब हम गोपाल कृष्ण के विषय मे कुछ पाश्चात्य विद्वानो के मत सक्षेप मे देते है। पाश्चात्य विद्वानो की खोज तथा मत हमे निम्नलिखित पुस्तको से प्राप्त होते है—

१—भण्डारकर-कृत—Vaishnavism, Shaivism & Minor religious Systems

२—Journal of Royal Asiatic Society के लेख।

३—Indian Antiquary के लेख।

४—Encyclopedia of Religion and Ethics के लेख।

५—पाश्चात्य विद्वानो के कुछ इतिहास ग्रथ।

Vaishnavism, Shaivism and minor religious systems मे भण्डारकर ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गोपाल कृष्ण आभीर नामक जाति के बाल देवता हैं। वतमान अहीर इन्ही आभीरो की सन्तान हे। महाभारत मे इन्हे डाकू और म्लेच्छ कहा गया है। केनेडी ने भी इसी प्रकार अपना मत प्रकट किया है तथा वतमान जाट गूजरो को उनकी सन्तान माना है। केनेडी ने आभीरो का राज्यकाल पाँचवी छठी शताब्दी माना है। वेवर, ग्रियसन, केनेडी तथा भण्डारकर आदि विद्वान् ईसा से पश्चात् आभीरो के बाल देवता श्रीकृष्ण का होना सिद्ध करना चाहते है और अपने विभिन्न लेखो मे उन्होने ऐसा ही दिखाने का प्रयत्न किया है। ऐसा सिद्ध करने से उनका अभिप्राय यह है कि बाल कृष्ण की कथाएँ ईसा की कथाओ का रूपान्तर है। भण्डारकर ने तो यहाँ तक अनुमान लगाया है कि 'कृष्ण' 'क्राइस्ट' का ही रूपान्तर है। कई भारतीय विद्वानो ने पाश्चात्य विद्वानो के इन मतो का खण्डन किया है।

पाश्चात्य विद्वानो का कृष्ण सम्बन्धी मत एकागी, पक्षपात-पूण और नितान्त असगत है। 'कीथ' 'मेकडॉनाल्ड आदि पाश्चात्य विद्वानो ने भी इसका खण्डन किया है और गोपाल कृष्ण की कथाओ को ईसवी सन् से पहले का बताया है। अब और भी पर्याप्त प्रमाण इसको पुष्टि मे दिये जा सकते है कि ईसा से बहुत पूव बालकृष्ण की कथाएँ प्रचलित थी। यदि हम आभीरो से ही बालकृष्ण की लीलाओ की सगति लगाएँ तो भी उनका अस्तित्व ईसा से पहले सिद्ध होता है। इसके पक्ष मे ये युक्तियाँ दी जा सकती है—

१—काठियावाड मे पाई जाने वाली लिपि, जिसके अनुसार आभीरो का राज्यकाल शक सवत् १०२ ठहरता हे।

२—वायु पुराण तथा हरिवश पुराण मे आभीरो का उल्लेख, तथा वायु पुराण मे आभीर राजाओ की वशावली।

३—आभीरो का द्रविड शब्द से सम्बन्ध[1]।

४—भास के नाटको तथा अन्य सस्कृत ग्रन्थो मे कृष्ण चरित का होना।

५—बाल कृष्ण से ईसा निरपेक्ष बहुत सी गोपी सम्बन्धिनी कथाओ का सम्बन्ध।

इन सब युक्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोपाल कृष्ण समन्वित वासुदेव कृष्ण का रूप ईसा के बहुत पहले बन चुका था।

केनेडी ने जनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी सन् १९०७ के 'कृष्ण, ईसाईमत और गूजर' शीषक लेख मे कृष्ण के तीन रूप माने है। (१) द्वारका का राजा कृष्ण। (२) सिन्ध उपत्यका का अनाय वीर कृष्ण जो आधा देवता था और (३) मथुरा का बाल कृष्ण। जैकोबी, भण्डारकर तथा विण्टरनित्ज ने भी इसी प्रकार अपने मत प्रकट किए है। प्रोफेसर विण्टरनित्ज लिखते हैं—

'It is difficult to believe that Krishna, the friend and Councillor of Pandavas, the herald of the doctrine of the Bhagwat-Gita, the youthful hero of the cowherds and finally Krishna, the incarnation of God Vishnu was one, and the same person"

अर्थात्—"यह विश्वास करना कठिन है कि पाण्डवो के मित्र और मत्री, श्रीमद्भगवद्गीता के सदेशदाता, गोपियो के शृङ्गारी नायक तथा अतत विष्णु भगवान् के अवतार, कृष्ण एक ही व्यक्ति थे।"

जैकोबी का कहना है कि ब्राह्मण युग के अत मे एक श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा हो चुकी थी जिसमे घोर आङ्गिरस के शिष्य देवकी पुत्र और वासुदेव कृष्ण का समावेश था फिर इस कृष्ण मे मथुरा के बाल कृष्ण तथा वृष्णियो के नायक राजपूत कृष्ण आ मिले। जैकोबी लिखते हैं—

'The story of Krishna being son of a Krisna Vasudeo is not true, and the name of father seems to have been developed from his very name Vasudeo"

अर्थात्—"कृष्ण वसुदेव के पुत्र कृष्ण की कथा सत्य नही हे और पिता का नाम उनके स्वय के नाम 'वासुदेव' से विकसित हुआ मालूम पडता है।" इसी प्रकार भण्डारकर लिखते है—

"The story of Vrishni prince Vasudeo being brought up in a cow-settlement in iscongruous with his latter career as depicted in Maha-Bharat"

अर्थात्—"वृष्णि राज वासुदेव, जो गोकुल (ब्रज) मे लालित हुए थे, की कथा उनके महाभारत मे चित्रित आगे के जीवन से मेल नही खाती।"

इस विवेचन से ज्ञात होता है कि कृष्ण का चरित और व्यक्तित्व कितना विवादास्पद है। वास्तव मे "कृष्ण का वतमान रूप नाना वैदिक, अवैदिक, आर्य, अनार्य

१ दे० Early History of Vaishnavism (राय चौधरी)

धाराओ के मिश्रण से बना है। परन्तु फिर भी हम यह नही कह सकते कि कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति नही हैं। अवतारत्व का आरोप हो जाने पर बहुत सी अतिमानवीय घटनाओ से अवतार का जीवन घुल-मिल जाता है।" अब हम इस निष्कष पर पहुँचते है—

१—महाभारत मे जिस भी कृष्ण का वणन है, वह ऐतिहासिक व्यक्ति है तथा महाभारत काल मे ही श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का आरोप हो गया था। इस कृष्ण का सम्बन्ध मथुरा से भी था, और द्वारका से भी। ब्रज की कथाओ का भी कुछ सम्बन्ध कृष्ण से था जिनका आभास हमे शिशुपाल की बातो से मिल जाता है। वसुदेव और देवकी से भी सम्बन्ध महाभारत मे मिलता है।

२—बाल लीलाओ का समावेश अवश्य आभीर जाति अथवा अन्य स्थानीय कारणो से हो सकता है पर उसका मूल ऐतिहासिक कृष्ण के चरित मे अवश्य है।

३—श्रीमद्भागवत मे भी कृष्ण के सारे रूपो का एक मे सुदर समन्वय है। हाँ, छान्दोग्य उपनिषद् मे जो भी कृष्ण का उल्लेख है केवल उसकी सगति कठिन जान पडती है और वास्तव मे इसी उल्लेख ने अनेक सशयो को जन्म दिया है। वहाँ लिखा है कि देवकी पुत्र श्रीकृष्ण को आङ्गिरस घोर ऋषि ने शिक्षा दी कि जब मनुष्य का अन्तिम समय आवे तो उसे इन तीन वाक्यो का उच्चारण करना चाहिए—(१) ईश्वर! आप अविनश्वर है (२) आप ही एक रहने वाले है। (३) आप प्राणियो के जीवन दाता हैं। श्रीकृष्ण इस शिक्षा को सुनकर अपिपास होगये—" त घोर आङ्गिरस कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वा वाचाऽपिपास एव स बभूव"[1] श्रीकृष्ण का एकत्व स्थापित करने के लिए इस शका के केवल दो ही समाधान हो सकते हैं—

१—छान्दोग्य उपनिषद् मे वर्णित यह श्रीकृष्ण ऐतिहासिक श्रीकृष्ण से भिन्न हैं। केवल श्रीकृष्ण को अवतारत्व प्रदान करने के अनन्तर ऐतिहासिक श्रीकृष्ण का सम्बन्ध उपनिषद् के श्रीकृष्ण से जोड दिया गया है। अथवा (२) उपनिषद् का वह अ श प्रक्षिप्त है। या उसका सम्पादन कृष्ण के जीवन काल मे हुआ है।

हमने ऊपर ऐतिहासिक श्रीकृष्ण के अवतारत्व का उल्लेख किया है। महाभारत और श्रीमदभागवत को सामने रखकर हम कृष्ण के अवतारत्व पर विचार करते हैं। भागवत' कार सब अवतारो मे श्रीकृष्ण की विशेषता दिखलाते हुए कहते है।

"एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्" अर्थात् अन्यान्य अवतार भगवान् के अ श है किन्तु श्रीकृष्ण स्वय भगवान् हैं।[2]

हम ऊपर कृष्ण-भाव के विकास मे नर नारायण वाली बात कह आए हैं। महाभारत के उद्योग पव १६।१५ मे लिखा है कि प्राचीनकाल मे नर और नारायण नामक दो महात्माओ ने गधमादन पवत पर घोर तपस्या की थी—

श्रूयते तौ महात्मानौ नर नारायणावुभौ। तपो घोरमनिर्देश्य तप्येते गन्धमादने।[3] यह पवत हिमालय का अ ग है और उसी पर बदरिकाश्रम है जो नर नारायण का तपस्या—

१ छादोग्य उपनिषद् प्र० ३ ख० १७

२ श्रीमद्भागवत १-३-२८

३ महाभारत उद्योगपव ६६-१५

स्थान कहा जाता है—बदरीमाश्रम पुण्य गन्धमादन पवते। बदर्यां तप्तवानुग्र तपो वर्षा-युतान्बहून्।[1] आज भी सबसे पहले इन्ही नर-नारायण ऋषि का स्मरण किया जाता है—"नारायण नमस्कृत्य नर चैव नरोत्तमम्।" महाभारत तथा भागवत आदि पुराणो मे स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यही नर नारायण ऋषि द्वापर के शेष मे अर्जुन और श्रीकृष्ण रूप से अवतीर्ण हुए। भीष्म पव मे लिखा है कि 'वही पुरातन अमित तेज सम्पन्न ऋषि श्रेष्ठ नर नारायण इस मनुष्य लोक मे आविभू त हुए है—

नर नारायणो यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती॥[2]

फिर उद्योग पव मे भी यही बात पाई जाती है।" ये वीरोत्तम पुरुष श्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण वही नर नारायण ऋषि है—"

नर नारायणौ यौ तौ तावेवार्जु नकेशवौ।
विजानीहि महाराज प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ॥[3]

फिर वही श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है—'हे अर्जुन! तुम दुर्धर्ष नर हो, मैं नारायण हरि हूँ। हम वही नर नारायण ऋषि है और काल क्रम से इस भूमण्डल पर अवतीर्ण हुए है—

नरस्त्वमपि दुर्धर्षो हरिर्नारायणो ह्यहम्।
काले लोकमिम प्राप्तौ नरनारायणावृषी॥[4]

महाभारत के स्वर्गारोहण पव मे लिखा है—य स नारायणो नाम देवदेव सनातन। तस्यांशो वासुदेवस्तु कमणोऽन्ते विवेशह। अर्थात्—यह नारायण का अंश भूत वासुदेव अपनी लीलाएँ करके नारायण मे ही प्रविष्ट हो गया।

फिर आगे चलकर श्रीकृष्ण को नारायण का कृष्ण केश कहा है—

"कृष्णो द्वितीय केशव सबभूव केशो योऽसौ वर्णत कृष्ण उक्त[5] अर्थात्—कृष्ण जो भगवान् के कृष्ण केश है और वर्ण से कृष्ण केशव रूप से अवतीर्ण हुए है।"

श्रीमदभागवत मे इन्ही दोनो बातो की प्रति ध्वनि देखिये—फिर मैं अपने अंश भाग से देवकी के गभ मे प्रवेश करूँगा और नन्द पत्नी यशोदा के गभ से तुम जन्म लोगे—"अथाहमंशभागेन देवक्या पुत्रता शुभे। प्राप्स्यामि त्व यशोदाया नन्दपत्न्या भविष्यसि[6] फिर श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे लिखा है—"नारायण के एक कृष्ण और एक शुक्ल केश असुर मर्दित पृथ्वी का भार उतारने के लिए श्रीकृष्ण और बलराम रूप से अवतीर्ण हुए है—

१ महाभारत व० प० ४०–१
२ महाभारत भी० प० ६६, ११
३ महाभारत उद्योग पर्व
४ महाभा० उ० प० ६६, ४६
५ महाभा० स्वर्गा० प० १६७, ३३
६ श्रीमद् भा० १०–२–६

"भूमे सुरेतर-वरूथ विमर्दिताया क्लेशव्ययाय कलया सित कृष्ण केश । जात करिष्यति जनानुपलक्ष्यमाग कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥"[1] श्रीमद्भागवन मे नारायण को पुरुषावतार या आदि अवतार कहा है। प्रथमस्कन्ध के तीसरे अध्याय का पहला ही श्लोक है—"भगवान् ने आदि मे लोक सृष्टि की इच्छा से महत्तत्त्वादि सम्भूत षोडश कलात्मक पुरुषावतार धारण किया। फिर एकादशस्कन्ध के चौथे अध्याय के तीसरे श्लोक मे लिखा है, "भगवान् ने ही पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश इन पाँच भूतो को अपने आप से अपने आप मे सृष्टि की है। जब वे इनके द्वारा विराट् शरीर ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमे लीला से अपने अश अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करते है, तब उन आदि देव को पुरुष नाम से कहते है यही उनका पहला अवतार है।" फिर आगे के श्लोको मे नर नारायण की शक्ति का वर्णन किया है। दशमस्कन्ध के चौदहवे अध्याय के चौदहवे श्लोक मे ब्रह्म-स्तुति मे कहा गया है, हे अधीश क्या आप नारायण नही ह? आप अवश्य ही नारायण हैं। क्योकि आप ही सब जीव समूह के आत्मा और अखिल साक्षी है। इसी प्रकार अन्य पुराणो मे भी नारायण आर वासुदेव कृष्ण की सगति लगाई गई है। इसी प्रकार बैकुण्ठ-वासी चतुर्भुज नारायण (महाविष्णु, श्वेतद्वीप पति विष्णु) नारायण ऋषि तथा वासुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण तथा वृन्दावन बिहारी नन्दनन्दन एक ही भगवान् के विभिन्न रूप बताए गए हैं। श्री जीव गोस्वामी ने लघु भागवतामृत के पूर्व पटल मे इसका सामजस्य स्थापित किया है और कहा है कि—'पुराणो मे कोई श्रीकृष्ण को नारायण ऋषि कोई वामन, कोई क्षीरोदशायी, कोई सहस्रशीर्षा और कोई वैकुण्ठनाथ नारायण कहता है। ब्रह्माण्ड पुराण ने इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है कि 'जो वैकुण्ठ मे चतुर्भुज नारायण, जो श्वेत द्वीप पति नर नारायण ऋषि है वे ही वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण है।

ख—श्रीमद्भागवत में कृष्ण के विभिन्न रूप

ऊपर के विवेचन से सिद्ध हो गया कि श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण का व्यापक रूप लिया गया है। सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि महाभारत, गीता और श्रीमद्भागवत के कृष्ण के रूप मे उत्तरोत्तर विकास है। महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमे लिखे हुए आख्यानो मे ही भगवत्तत्व निरूपण हुआ है। यदि उन आख्यानो को अलग-अलग कर दिया जाय तो श्रीकृष्ण का मानवीय रूप ही हमारे सामने आता है। यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वानो ने महाभारत मे बहुत से अश प्रक्षिप्त माने है। परन्तु उन आख्यानो मे जो भागवत धर्म और तत्त्व का निरूपण हुआ है वह बडा महत्त्वपूर्ण है। श्रीमद्भगवद्गीता उसी तत्त्व को वैज्ञानिक रूप से समन्वित करके प्रस्तुत करती है। फिर श्रीमद्भागवन मे भक्ति की दृढता के लिए इसी तत्त्व की व्याख्या की गई है। श्रीमद्भागवत मे आयी हुई पृथु, प्रियव्रत, प्रह्लाद आदि भक्तो की कथाएँ तथा निष्काम कर्म के वर्णनो से यह बात भली भाँति प्रकट हो जाती है कि महाभारत का नारायणीय धर्म और श्रीमद्भागवत का भागवत धर्म आदि मे एक ही है, पर दोनो ग्रन्थो मे प्रधानता भिन्न सिद्धान्तो की है। उसमे श्रीकृष्ण का रूप लोक रक्षक भी है और लोक रजक भी। फिर गीता मे महाभारत के सिद्धान्तो की व्याख्या है। गीता महाभारत का एक भाग है। दोनो ग्रन्थो को आद्योपान्त पढने से यह बात सिद्ध हो जाती है। निष्काम

१ श्रीमद्भागवत २—७—२६

कम युक्त प्रवृत्ति तत्त्व का ही दोनो मे विवेचन हुआ है। सम्भवत इसीलिए भागवत की रचना हुई और यह सिद्ध किया गया कि भक्ति के बिना निष्काम कम सम्भव नही है। भागवत का मुख्य उद्देश्य भक्ति का प्रतिपाद्य है।

गीता मे भगवान् को प्रकृति और पुरुष से भी परे एक सवव्यापक अव्यक्त और अमृततत्व माना गया है और परम पुरुष कहा गया है, जिसके दो स्वरूप है, व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त के भी सगुण, सगुण निगुण और निगुण तीन भेद किए गए है। कृष्ण उस परम पुरुष के मूर्तिमान् अवतार है और यही कारण है कि गीता मे भगवान् कृष्ण ने अपने विषय मे उत्तम पुरुष का निर्देश स्थान-स्थान पर किया है।[1]

गीता मे भगवान् ने अपना विश्वरूप दशन अर्जुन को दिखाया है और उसको यही उपदेश किया है कि अव्यक्त से व्यक्त रूप की उपासना करना अधिक सहज है। इसी प्रकार के विश्वरूप का वणन महाभारत मे नारद के सम्बन्ध मे आता है। महाभारत मे शान्ति पव मे भगवान् ने नारद को अपना रूप बतलाया है।[2] इससे यह निष्कष निकलता है कि सिद्धात रूप से महाभारत गीता और भागवत मे परब्रह्म को एक ही रूप दिया गया है। परन्तु महाभारत और गीता मे इतना अन्तर है कि महाभारत मे श्रीकृष्ण का परब्रह्म से तादात्म्य इतने व्यापक रूप से नही मिलता जितना गीता तथा भागवत मे। महाभारत मे पाण्डव उन्हे अवश्य विष्णु का अवतार मानते थे, परन्तु यह बात सवसाधारण नही थी। श्रीमद्भागवत मे कृष्ण का वही स्वरूप है जो गीता मे है, अन्तर केवल इतना है कि गीता मे ज्ञान कम और उपासना का सामजस्य स्थापित किया गया है और साथ ही साथ पिण्ड ब्रह्माण्ड के ज्ञान सहित आत्मविद्या के गूढ और पवित्र तत्त्वो को भी समझाया गया है। श्रीमद्भागवत मे इन सब का निरूपण विशेष रूप से करके भक्ति को सर्वोपरि ठहराया गया है। श्रीमद्भागवत मे अनेक प्रकार के अवतारो का वर्णन है किन्तु "एते चाशकला पुस कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्"[3] कह कर कृष्ण को सर्वोपरि भगवान् कहा गया है। पुराणो मे अवतारो की बडी सुदर व्याख्या है। अवतार तीन प्रकार के माने गए है। १—पुरुषावतार, २—गुणावतार और ३—लीलावतार। भगवान् के चार व्यूह माने गए है श्रीवासुदेव, सकषण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। गुणावतारो मे विष्णु ब्रह्मा और रुद्र माने गए हैं। लीलावतार २५ माने गए है। इनके अतिरिक्त १४ मन्वन्तरावतार होते है जो स्वायम्भुव आदि १४ मन्वन्तरो मे होते है।

श्रीमद्भागवत मे कृष्ण को अवतारी माना है। देवकी ने श्रीकृष्ण की स्तुति मे कहा है— 'हे आद्य! जिसके अश (पुरुषावतार) का अश प्रकृति है, उसके अश (सत्त्वादि गुण) के भाग परमाणु आदि द्वारा इस विश्व की सृष्टि, स्थिति, और प्रलय हुआ करती है, मैं आपकी

१ गीता अ० ६ श्लोक ८
,, ९ ,, ३४
,, १० ,, २०
,, १० ,, ४१
,, १५ ,, ७

२ दे० महाभारत शान्ति पव अ० ३३६ श्लो० २१—२८

३ श्रीमद्भागवत १ ३ २८

शरण हूँ ।[1] गीता मे भी इस प्रकार के वाक्यो को दुहराया गया है जैसे, 'विष्टभ्याहमिद-कृत्स्नमेकाशेन स्थितो जगत्' अर्थात्—"मै अपनी माया के एक अश मात्र से इस जगत् को व्याप्त करके स्थित हूँ" तथा मत्त परतर नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय। अर्थात्—'हे अर्जुन इस विश्व मे मुझ से परे कुछ भी नही है'[2] इस प्रकार गीता तथा भागवत मे भगवान् श्री कृष्ण को ज्ञान, शक्ति बल, ऐश्वय, वीय, और तेज इन छ गुणो से विशिष्ट माना है। श्रीमद्भागवत मे कुन्तीकृत कृष्ण-स्तुति मे उनका स्वरूप तथा भगवान् के अवतार का प्रयोजन भी बतलाया गया है। अन्त मे कुन्ती कहती है—हे भगवन् कोई लोग कहते है कि आपने पुण्य श्लोक राजा यदु का यश बढाने के लिए ही यदु वश मे जन्म लिया है इत्यादि।[3] इसके पश्चात् कुन्ती कहती है—जो लोग आपको प्रेम तथा भक्ति-भाव से भरी हुई अदभुत लीलाओ को वक्ताओ से सुनते है, श्रोताओ को सुनाते है तथा स्वय गाकर और स्मरण करके आनन्दित होते हैं वे शीघ्र ही उस जन्म मरण रूपी सासारिक प्रबल प्रवाह के शान्त करने वाले आपके श्री चरण कमलो का दशन प्राप्त करते है।[4] श्रीकृष्ण के ब्रह्मरूप की व्याख्या हम अगले प्रकरण मे करेगे।

भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी रूप आ गए है जैसे— (१) अदभुतकर्मा असुर-सहारी श्रीकृष्ण (२) बाल कृष्ण, (३) गोपी-बिहारी श्रीकृष्ण (४) राजनीति-वेत्ता कूटनीति-विशारद श्रीकृष्ण (५) योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा (६) परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण।

हम मुख्य रूप से श्रीकृष्ण के तीन स्वरूप देखते है—(१) महाभारत के कृष्ण (२) गीता के कृष्ण (३) तथा भागवत के कृष्ण। भगवान् के वीरत्व विधायक स्वरूप के दशन महा-भारत मे, परब्रह्म स्वरूप के गीता मे, तथा रसिकेश्वर स्वरूप के भागवत मे होते है। वैसे भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी स्वरूपो का विवेचन हुआ है, परन्तु प्रधानता रसिकेश्वर स्वरूप की है। भगवान् के असुर सहारी राजनीति-वेता तथा कूटनीतिज्ञ स्वरूप का वर्णन हमे दशमस्कन्ध के उत्तराध मे मिलता है। दशम स्कन्ध पूर्वार्ध मे जो असुरो के वध की कथाये है वे भगवान् के बाल रूप की है, इसलिए वे श्रीकृष्ण के अलौकिक चरित मे आती है। कसबध तक की लीलाएँ बाल लीलाये है, किशोरावस्था के कम है। उनके राजपद की प्रतिष्ठा जरासन्ध के युद्ध के अनन्तर द्वारका दुग के निर्माण के साथ होती हैं। गीता की 'परित्राणाय साधूनाम्' वाली उक्ति की चरितार्थता यही से आरम्भ होती है। इस स्कन्ध मे श्रीकृष्ण के पराक्रम को प्रदर्शित करने वाली वीर रस पूण अनेक रोमाञ्चकारी घटनाएँ है। पर तु बीच-बीच मे अलौकिकता का भी समावेश है। कृष्ण की बाल लीलाओ को छोड कर शेष श्रीमद्भागवत को चार भागो मे विभाजित किया जाता है—(१) घटनात्मक, (२) उपदेशात्मक (३) स्तुत्यात्मक तथा (४) गीतात्मक। श्रीमद्भागवत के वे स्थल घटना-प्रधान स्थल है, जो ऐतिहासिक घटनाओ का वणन करते है। कि तु जैसे गोस्वामी तुलसी-दास मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम के चरित को चित्रित करते हुए राम चरित मानस मे ग्रन्थ के प्रधान सूत्र भक्ति को नही छोडते और उसी भावना से अभिभूत होकर अनजाने

१ श्रीमद्भाग० १०—८५—३१

२ श्रीमद्भगवद्गीता १०—४२

३ ,, ,, ७–७

४ श्रीमद्भाग० प्रथम स्क ध अ० ८ श्लो० ३२—३५ तथा आगे।

मे राम के चरित्र मे अलौकिकता का समावेश कर जाते है, उसी प्रकार व्यास जी का लक्ष्य भी भागवत तत्त्व निरूपण के द्वारा भक्तिरस का परिपाक ही है। इसलिये भागवतकार ने इस घटनात्मक स्कन्ध मे भी भगवान् के दिव्य मगलस्वरूप की कई बार स्तुति कराई है, जैसे भोमासुर के वध के समय, बाणासुर सग्राम के अवसर पर तथा वेद स्तुति आदि मे। इन घटनाओ मे अलौकिक घटनाओ का भी सम्मिश्रण है जैसे स्वर्ग से कल्प वृक्ष लाना, देवकी के मृत पुत्रो को लाना इत्यादि। इन स्थलो पर कवि की प्रतिभा सजग हो उठती है और वह भगवान् के स्वरूप मे इतना तन्मय हो जाता है कि अन्य सब भाव अभिभूत हो जाते है तथा हृदयानुभूति रागात्मिकता वृत्ति के साथ उन स्तुतियो और स्तोत्रो के रूप मे साक्षात् रूप धारण कर लेती है। श्रीमदभागवत मे जहा जहा भी इन घटनाओ का उल्लेख है, वही-वही कवि की इस अनुभूति का परिचय मिलता है। इस घटनात्मक भाग मे भागवतकार का उद्देश्य भी भक्ति की दृढता ही है।

श्रीमदभागवत के उपदेशात्मक भाग मे हमे श्रीकृष्ण योगेश्वर उपदेष्टा तथा विज्ञानी के रूप मे मिलते है। श्री मदभागवत मे दो प्रकार के उपदेश है। (१) साधारण (२) विशेष। साधारण उपदेश वे है जो साधु महात्मा ने अथवा गुरुजनो या मित्रो ने दिये है। इन उपदेशो का अभिप्राय कर्त्तव्य कर्म का अनुष्ठान करते हुए भगवदभक्ति है। विशेष उपदेशो के रूप मे वे स्थल आते है, जहा उपदेश विशेष रूप से दिए गये है जैसे उद्धव के प्रति भगवान् के उपदेश, ध्रुव के प्रति नारद का उपदेश, चतुश्लोकी भागवत तथा कपिल गीता आदि। ये उपदेश बडे महत्त्वपूर्ण है। क्योकि इनमे दो बातो की व्याख्या हुई है—(१) परम तत्त्व की तथा (२) ज्ञान भक्ति तथा कर्म की।

श्री मदभागवत का स्तुत्यात्मक भाग भी बडा महत्त्वपूर्ण है क्योकि इसके द्वारा भी कृष्ण के वास्तविक रूप की व्याख्या की गई है। ये स्तुतिया दो प्रकार की है। (१) सकाम (२) निष्काम। सकाम स्तुतिया वे है जो किसी कामना से प्रेरित होकर की गई है, जैसे कारागार से मुक्त होने के लिए अथवा किसी आपत्ति—दैविक, दैहिक भौतिक तापो—की निवृत्ति के लिए। श्रीमदभागवत की निष्काम स्तुतियाँ भी दो कोटि की है। (१) वे जिनमे तत्त्व ज्ञान की प्रधानता है (२) वे जिनमे साधन की प्रधानता है। वेद स्तुति तत्त्व ज्ञान प्रधान कही जायगी क्योकि इसमे सब तत्त्वो का पर्यवसान एक ही तत्त्व मे दिखाया गया है। प्रह्लाद, अम्बरीष, ब्रह्मा, ध्रुव आदि की स्तुतियाँ साधना प्रधान कही जायेगी, क्योकि इनमे भक्त मुक्ति की अभिलाषा न कर केवल भगवान के रूप तथा लीला के स्मरण कीर्तन मे आनन्द लेता है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित एक ग्रन्थ 'भागवत स्तुति' मे इस प्रकार की स्तुतियो का सग्रह है।

श्रीमद्भागवत का चौथा भाग गीतात्मक है। इन गीतो मे ग्रन्थकार का हृदय साक्षात् रूप से द्रवित हुआ प्रतीत होता है। उसकी अन्तरात्मा इन गीतो मे पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है। ये गीत हृदय के वे स्वत प्रवाही स्रोत है जिनका अवरोध कवि नही कर सका है। ये उसकी अन्तरात्मा की व्यथा और अन्तर्वेदना के साक्षात् रूप है। ये गीत प्रेम और विरह के मूर्तिमान स्वरूप है। ऐसे गीतो की सख्या भागवत मे अधिक नही है। पाँच गीत गोपियो के है, तथा एक गीत द्वारका की कृष्ण पत्नियो का है। ये छ गीत दशमस्कन्ध मे

आए है। दो गीत एकादश स्कन्ध मे भी है। एक पिगला का और एक भिक्षुब्राह्मण का। पिगला का गीत निर्वेद-गीत है जो ससार की कटुता के अनुभव से हृदय मे जो व्यथा होती है उसकी अभिव्यजना करता है। ब्राह्मणभिक्षु के गीत मे भी निर्वेद की झलक है क्योकि वह सात्त्विक और सदाचारी होने पर भी लोगो से अपमानित होता है। कृष्ण की पत्नियो का गीत दशमस्कन्ध के ९०वे अध्याय मे है। उनका मन भगवान् की लीला मे इतना तन्मय हो जाता है कि वे अपने को भूल जाती है। उन्हे दिनरात का कोई विवेक नही रहता और इस अनिवचनीय अवस्था मे उनके हृदय से स्वत भाव नि सृत होने लगते है। समस्त प्रकृति उन्हे कृष्णमयी लगती है तथा वे प्रकृति के सब पदार्थो को सम्बोधित करके उनका सम्बन्ध कृष्ण से स्थापित करती है। वे यह भी भूल जाती हैं कि कृष्ण उनके पास है अथवा नही।

गोपी-गीतो का विषय तो वर्णन से परे है। उनके पाच गीतो मे अनुपम प्रेम की झलक है। मानो उनका प्रेम ही स्वय वाणी के रूप मे फूट निकला है। गोपियो के गीत मे जो रस है वह अनुवाद मे कभी नही आ सकता। उसकी कुछ अनुभूति तो मूलपाठ मे ही हो सकती है श्रीमद्भागवत मे 'कृष्णस्तुभगवान्स्वयम्' तथा 'जन्म कम च मे दिव्यम्' आदि की पूर्णतया सिद्धि हुई है। इस विषय को लेकर पडितो ने बडी विवेचनाएँ की है और गीता एव भागवत के कृष्ण मे एकता स्थापित की है। विभिन्न पुराणो मे श्रीकृष्ण का पूर्ण अवतार सिद्ध हुआ हे और भगवान् शब्द के लक्षणो की सगति श्रीकृष्ण मे पूर्ण रूप से लगाई गई है। कृष्ण शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है—

कृषिर्भूवाचक शब्दो 'ण'श्च निर्वृति-वाचक।
विष्णुस्तद्भाव योगाच्च कृष्णो भवति सात्वत।

अर्थात्—'कृष्ण' शब्द मे कृष् शब्द सत्तावाचक है। 'ण' आनन्द वाचक है। इन दोनो का मिला हुआ अर्थ सवव्यापक आनन्दमय विष्णु परब्रह्म हुआ। वही सात्वत (यादव) कृष्ण है।

श्रीमद्भागवत मे सब पुराणो, महाभारत, गीता तथा कृष्ण सम्बन्धी अन्य सभी ग्रन्थो मे दिए हुए भावो का समन्वय है। श्रीमद्भागवत के कृष्ण पाण्डवो के सखा है जो कुरुक्षेत्र महायुद्ध के नियामक थे और जिनका वीर रूप महाभारत मे यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वे गीता के उपदेष्टा श्रीकृष्ण है जो साधुओ के परित्राण, पापियो के विनाश और धम की स्थापना के लिए प्र येक युग मे अपने को प्रकट करते है तथा जो गीता मे भक्ति, ज्ञान और कम का सामजस्य स्थापित कर निष्काम कम योगीके रूप मे उपस्थित हुए है। मथुरा और द्वारका के महावीर महायोद्धा राज-राजेश्वर श्रीकृष्ण है तथा गोकुल ब्रज और वृन्दावन मे विहार करने वाले नन्दनन्दन रसिक-शिरोमणि वे गोपाल कृष्ण भी है।

हमने पीछे श्रीकृष्ण के 'योगेश्वर' विशेषण का उल्लेख किया है। गीता मे तो इस शब्द की आवृत्ति अनेक बार हुई है। परन्तु श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण का योगेश्वर रूप पूर्णतया चित्रित किया गया है। महाभारत के द्रोणपव मे सजय के प्रति धृतराष्ट्र की जो उक्ति है उसे पढने से महाभारत और भागवत के कृष्ण की एकता स्थापित होती है परन्तु वह स्थल अधिकतर विद्वानो ने प्रक्षिप्त माना है। परन्तु जहाँ तक योगेश्वर शब्द का सम्बन्ध है, उस पर किसी को शका का स्थान नही है। क्योकि हम श्रीकृष्ण के योगेश्वरत्व का

सम्बन्ध उसके परब्रह्मत्व से स्थापित करते हे। श्रीमद्भागवत मे योगेश्वर शब्द की आवृत्ति कई बार हुई हे। भगवान् की रासलीला को काम-लीला न मानकर योगमयी पवित्र लीला ही माना गया है। महारास के प्रारम्भ मे ही दशमस्कन्ध के ३३वे अध्याय मे लिखा हे कि 'सम्पूर्ण योगो के स्वामी श्रीकृष्ण दो दो गोपियो के बीच मे प्रकट होगए और उनके गले मे अपना हाथ डाल दिया। यह उनकी योगमाया का ही फल था कि ब्रज के गोप वह समझते थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हे। श्रीकृष्ण ने अपने योगबल से हजारो स्थूल और हजारो सूक्ष्म शरीर निर्माण कर लिए।

योग दर्शन, उपनिषदो तथा अन्य योग-परक ग्रथो मे योग की इस प्रकार की शक्तियो का वर्णन है कि स्वरूपस्थ जीवन मुक्त योगी यदि अपने प्रारब्ध कर्म को शीघ्र भोगकर समाप्त करना चाहे तो अनेक स्थूल तथा अनेक सूक्ष्म शरीर धारण करके भोग सकता है। श्रीमद्भागवत मे राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से रासलीला के प्रसग मे यही प्रश्न किया है कि 'हे ब्रह्मन् श्रीकृष्ण धर्म-मर्यादा के बनाने वाले और उपदेशक थे फिर उन्होने धर्म के विपरीत परस्त्रियो का स्पर्श कैसे किया ? "श्री शुकदेव जी ने परीक्षित् को यही उत्तर दिया कि भगवान् कृष्ण अपने भक्तो की इच्छा से अपना चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करते हे। उनमे कर्म बन्धन की कल्पना नही की जा सकती इत्यादि।[1] श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ब्रह्म का निरूपण इसी प्रकार से किया गया है कि तुम स्त्री हो, पुरुष हो, कुमार हो या कुमारी हो अर्थात् तुम्हारे विभिन्न स्वरूप है। भगवान् कृष्ण के योगेश्वर रूप के दर्शन हमे उस स्थल पर भी होते है, जब उन्होने स्वय अपने वशजो को पाप से आवृत्त देखकर उनका नाश करा दिया। योगेश्वर मोह से आच्छन्न नही होता। उसकी सृष्टि तो मानसी होती हे—'मनसा प्रजा असृजन्त' भगवान् कृष्ण भागवत के अनुसार अनन्त कर्म, अनन्त चेष्टा तथा अनन्त लीलाओ के भीतर भी पूर्ण निश्चिन्त, पूर्ण निर्लिप्त रहे और यही उनका योगेश्वरेश्वर पूर्ण स्वरूप हे जिसको जानकर मुमुक्षगण ससार सिन्धु सतरण कर सकते हे।

महाभारत मे भगवान् श्रीकृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का विशेष विवेचन किया गया है। परन्तु श्रीकृष्ण की राजनीति दूसरे प्रकार की थी। उनकी राजनीति धर्म का स्वरूप था। अर्थात् जो पापी है, नराधम है, नृशस है, वह दण्ड का पात्र है। फिर चाहे वह अपना भाई ही क्यो न हो। महात्मा गाँधी ने भी एक बार कहा था कि "यदि आवश्यकता पडे तो मै अपने लोगो से भी असहयोग करूँगा।" वास्तव मे जो व्यक्ति प्रकृति के मार्ग मे रोडे अटकाता हो, जो व्यक्ति मानव-कल्याण का घातक हो, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। श्रीकृष्ण ने राजनीति का उपयोग राजधर्म निभाने के लिए किया। वह राजधर्म न्याय और सत्य का पोषक था। यही कारण था कि उन्होने अपने कुटुम्बियो का भी घोर विरोध किया। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण के चरित को इस प्रकार तो चित्रित नही किया गया, जैसे महाभारत मे किया गया हे किन्तु भक्ति का पुट देकर और कृष्ण को सर्वेश्वर तथा योगेश्वर मानकर राजनीति के सब विषयो का उल्लेख किया गया है।

कृष्ण लीलाएँ—

अब हमे देखना है कि श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ को किस प्रकार चित्रित किया गया है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम अध्याय मे भगवान् के लीला-

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ३३

वतारो की कथा है तथा २६वे श्लोक से कृष्ण और बलराम के अवतारो की ओर सकेत है। यह वर्णन केवल सकेत रूप से है। भगवान् की बाल-लीलाओ की सूची तृतीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे तथा अन्य लीलाओ का वर्णन तृतीय अध्याय मे किया गया है। सूक्ष्म रूप से दी हुई लीलाओ का विशद-वर्णन दशम स्कन्ध मे है। श्रीकृष्ण के बाल-चरित और गोपी-विहार का स्थल दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। हम सक्षेप से यहाँ उसका वर्णन करेगे।

भागवत का बालकृष्ण सब कलाओ मे पूर्ण है कोरा उपदेशक नही। वेदान्त सुनाता हुआ भी असुरो का सहर्त्ता महावीर भी मोहन है। वह मुरली बजाता, नाचता गाता और हँसता है। न जाने कितने भक्त उसकी इस बाल-छबि पर मुग्ध है और जिन्होने उसके स्वरूप की एक झाकी पर अपना सब कुछ निछावर कर दिया है। ब्रज मे भी कृष्ण का मथुरा वाला रूप-किशोर रूप भक्तो को उतना प्रिय नही है जितना उनका बाल पौगण्ड रूप है। उसी रूप पर उनकी परमासक्ति है। वास्तव मे इसका कारण यह है कि भक्त समुदाय ब्रह्मानन्द से भी ऊँची कक्षा का आनन्द परमानन्द चाहता है। ससार मे सब से नीच, निकृष्ट आनन्द विषयानन्द है। उससे उत्तम विद्यानन्द है। उससे महान् आनन्द आत्मानन्द है तथा आत्मरति, आत्म काम, आत्मतृप्त यतिराट् जिस अखण्ड सच्चिदानन्द को अहर्निश प्राप्त करता है वह ब्रह्मानन्द है। यही पराकाष्ठा, परागति और मुक्ति मानी गई है। परन्तु भगवान् के निष्काम उपासक अनन्य प्रेमी भक्त भगवदानन्द की खोज करते है जो केवल आत्मा से ही नही, बुद्धि से मन से तन से और रोम-रोम से अनुभूति मे आता है और इसलिए परम दयालु प्रेम धन परब्रह्म परमात्मा सगुण साकार होकर अवतार धारण करता है जिसके साक्षात्कार से ब्रह्म-सुख सर्वागीण होकर प्राप्त होता है। इसलिए यह आनन्द परमानन्द है और ब्रह्मानन्द से विलक्षण है। भागवत का बाल कृष्ण ही परमानन्द है। ब्रज का ब्रह्म परमानन्द है। जैसे जगत् की ८४ लाख योनियो मे ब्रह्म व्यापक है वैसे ही ८४ कोस ब्रज मे वेदान्त का परम सिद्धान्त ब्रह्म परमानन्द नाच रहा है। भागवत मे कई स्थलो पर इस परमानन्द की ओर सकेत हुआ। इस परमानन्द की प्राप्ति भक्त को प्रभु से पृथक् रहकर सेवक रूप मे ही होती है। इसी से वह कैवल्य मुक्ति स्वीकार न कर भजनान्दी ही बना रहता है। भागवत मे वर्णित भगवान् कृष्ण की लीला मे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सभी भाव भरे है। परन्तु मुख्य रूप से भगवान् के प्रेम विह्वल भक्तो की परमानन्दता ही है।

इन बाल लीलाओ को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते है। १—बाल चरित, २—अलौकिक कर्म, ३—और गोपी-विहार अथवा रास-क्रीडा। श्रीमद्भागवत मे इन तीनो का वर्णन बडे विस्तार और भावुकता के साथ किया गया है। भक्ति नामक भाव को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा कर भक्ति रस मे परिणत करना ही उन स्थलो का उद्देश्य है। भगवान् के दिव्य मगल स्वरूप को तीन गुणो से विभूषित किया जा सकता है। अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दर्य तथा अनन्त शील। इस त्रिविधात्मक आनन्त्य-विशिष्ट भगवत्स्वरूप की जैसी प्रतिष्ठा हम श्रीमद्भागवत मे देखते है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। भक्ति का आधार श्रद्धा है और श्रद्धा मे इष्ट के महत्त्व की स्वीकृति निहित है। श्रद्धा का पूर्व भाव आकर्षण है जिसका स्थैर्य प्रेम पर अवलम्बित है। इस लिए भक्ति नामक भाव की सत्ता हम प्रेम के बिना नही मानते। यदि हम प्रेम को भक्ति का प्रथम सोपान कहे तो अत्युक्ति न होगी, प्रेम नामक भाव सौन्दर्य से जागृत होता है और यदि वह आनन्त्य-विशिष्ट है तो प्रेम की सत्ता स्थिर

सम्बन्ध उसके परब्रह्मत्व से स्थापित करते हे। श्रीमद्भागवत मे योगेश्वर शब्द की आवृत्ति कई बार हुई है। भगवान् की रासलीला को काम-लीला न मानकर योगमयी पवित्र लीला ही माना गया है। महारास के प्रारम्भ मे ही दशमस्कन्ध के ३३वे अध्याय म लिखा हे कि 'सम्पूरण योगो के स्वामी श्रीकष्ण दो दो गोपियो के बीच मे प्रकट होगए और उनके गले मे अपना हाथ डाल दिया। यह उनकी योगमाया का ही फल था कि ब्रज के गोप वह समझते थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हे। श्रीकृष्ण ने अपने योगबल से हजारो स्थूल और हजारो सूक्ष्म शरीर निर्माण कर लिए।

योग दशन, उपनिषदो तथा अन्य योग-परक ग्रथो मे योग की इस प्रकार की शक्तियो का वरणन है कि स्वरूपस्थ जीवन मुक्त योगी यदि अपने प्रारब्ध कम को शीघ्र भोगकर समाप्त करना चाहे तो अनेक स्थूल तथा अनेक सूक्ष्म शरीर धारण करके भोग सकता है। श्रीमद्भागवत मे राजा परीक्षित् ने शुकदेव जी से रासलीला के प्रसग मे यही प्रश्न किया है कि 'हे ब्रह्मन् श्रीकृष्ण धम-मर्यादा के बनाने वाले और उपदेशक थे फिर उन्होने धम के विपरीत परस्त्रियो का स्पश कैसे किया ? "श्री शुकदेव जी ने परीक्षित् को यही उत्तर दिया कि भगवान् कृष्ण अपने भक्तो की इच्छा से अपना चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करते है। उनमे कम बन्धन की कल्पना नही की जा सकती इत्यादि।[1] श्वेताश्वतर उपनिषद् मे ब्रह्म का निरूपण इसी प्रकार से किया गया है कि तुम स्त्री हो, पुरुष हो, कुमार हो या कुमारी हो अर्थात् तुम्हारे विभिन्न स्वरूप है। भगवान् कृष्ण के योगेश्वर रूप के दशन हमे उस स्थल पर भी होते है, जब उन्होने स्वय अपने वशजो को पाप से आवृत्त देखकर उनका नाश करा दिया। योगेश्वर मोह से आच्छन्न नही होता। उसकी सष्टि तो मानसी होती हे—'मनसा प्रजा असजत' भगवान् कृष्ण भागवत के अनुसार अनन्त कम, अनन्त चेष्टा तथा अनन्त लीलाओ के भीतर भी पूरण निश्चिन्त, पूरण निर्लिप्त रहे और यही उनका योगेश्वरेश्वर पूरण स्वरूप हे जिसको जानकर मुमुक्षगण ससार सिन्धु सतरण कर सकते है।

महाभारत मे भगवान् श्रीकृष्ण के राजनीतिज्ञ स्वरूप का विशेष विवेचन किया गया है। परन्तु श्रीकृष्ण की राजनीति दूसरे प्रकार की थी। उनकी राजनीति धर्म का स्वरूप था। अर्थात् जो पापी है, नराधम है, नृशस हे, वह दण्ड का पात्र है। फिर चाहे वह अपना भाई ही क्यो न हो। महात्मा गाँधी ने भी एक बार कहा था कि "यदि आवश्यकता पडे तो मैं अपने लोगो से भी असहयोग करूँगा।" वास्तव मे जो व्यक्ति प्रकृति के माग मे रोडे अटकाता हो, जो व्यक्ति मानव-कल्याण का घातक हो, उससे दूर रहना ही श्रेयस्कर है। श्रीकृष्ण ने राजनीति का उपयोग राजधम निभाने के लिए किया। वह राजधम न्याय और सत्य का पोषक था। यही कारण था कि उन्होने अपने कुटुम्बियो का भी घोर विरोध किया। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण के चरित को इस प्रकार तो चित्रित नही किया गया, जसे महाभारत मे किया गया हे किन्तु भक्ति का पुट देकर और कृष्ण को सर्वेश्वर तथा योगेश्वर मानकर राजनीति के सब विषयो का उल्लेख किया गया है।

कृष्ण लीलाएँ—

अब हमे देखना हे कि श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ को किस प्रकार चित्रित किया गया है। भागवत के द्वितीय स्कध के सप्तम अध्याय मे भगवान् के लीला-

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कध अध्याय ३३

वतारो की कथा है तथा २६वे श्लोक से कृष्ण और बलराम के अवतारो की ओर सकेत है। यह वर्णन केवल सकेत रूप से है। भगवान् की बाल-लीलाओ की सूची तृतीय स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे तथा अन्य लीलाओ का वर्णन तृतीय अध्याय मे किया गया है। सूक्ष्म रूप से दी हुई लीलाओ का विशद-वर्णन दशम स्कन्ध मे है। श्रीकृष्ण के बाल-चरित और गोपी-विहार का स्थल दशमस्कन्ध पूर्वार्द्ध है। हम सक्षेप से यहाँ उसका वर्णन करेगे।

भागवत का बालकृष्ण सब कलाओ मे पूर्ण है कोरा उपदेशक नही। वेदान्त सुनाता हुआ भी असुरो का सहर्त्ता महावीर भी मोहन है। वह मुरली बजाता, नाचता गाता और हँसता है। न जाने कितने भक्त उसकी इस बाल-छवि पर मुग्ध है और जिन्होने उसके स्वरूप की एक झाँकी पर अपना सब कुछ निछावर कर दिया है। ब्रज मे भी कृष्ण का मथुरा वाला रूप-किशोर रूप भक्तो को उतना प्रिय नही है जितना उनका बाल पौगण्ड रूप है। उसी रूप पर उनकी परमासक्ति है। वास्तव मे इसका कारण यह है कि भक्त समुदाय ब्रह्मानन्द से भी ऊँची कक्षा का आनन्द परमानन्द चाहता है। ससार मे सब से नीच, निकृष्ट आनन्द विषयानन्द है। उससे उत्तम विद्यानन्द है। उससे महान् आनन्द आत्मानन्द है तथा आत्मरति, आत्म काम, आत्मतृप्त यतिराट् जिस अखण्ड सच्चिदानन्द को अहर्निश प्राप्त करता है वह ब्रह्मानन्द है। यही पराकाष्ठा, परागति और मुक्ति मानी गई है। परन्तु भगवान् के निष्काम उपासक अनन्य प्रेमी भक्त भगवदानन्द की खोज करते है जो केवल आत्मा से ही नही, बुद्धि से मन से तन से और रोम-रोम से अनुभूति मे आता है और इसलिए परम दयालु प्रेम धन परब्रह्म परमात्मा सगुण साकार होकर अवतार धारण करता है जिसके साक्षात्कार से ब्रह्म-सुख सर्वांगीण होकर प्राप्त होता है। इसलिए यह आनन्द परमानन्द है और ब्रह्मानन्द से विलक्षण है। भागवत का बाल कृष्ण ही परमानन्द है। ब्रज का ब्रह्म परमानन्द है। जैसे जगत् की ८४ लाख योनियो मे ब्रह्म व्यापक है वैसे ही ८४ कोस ब्रज मे वेदान्त का परम सिद्धान्त ब्रह्म परमानन्द नाच रहा है। भागवत मे कई स्थलो पर इस परमानन्द की ओर सकेत हुआ। इस परमानन्द की प्राप्ति भक्त को प्रभु से पृथक् रहकर सेवक रूप मे ही होती है। इसी से वह कैवल्य मुक्ति स्वीकार न कर भजनान्दी ही बना रहता है। भागवत मे वर्णित भगवान् कृष्ण की लीला मे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक सभी भाव भरे है। परन्तु मुख्य रूप से भगवान् के प्रेम विह्वल भक्तो की परमानन्दता ही है।

इन बाल लीलाओ को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते है। १—बाल चरित, २—अलौकिक कर्म, ३—और गोपी-विहार अथवा रास-क्रीडा। श्रीमद्भागवत मे इन तीनो का वर्णन बडे विस्तार और भावुकता के साथ किया गया है। भक्ति नामक भाव को चरमोत्कष पर पहुँचा कर भक्ति रस मे परिणत करना ही उन स्थलो का उद्देश्य है। भगवान् के दिव्य मगल स्वरूप को तीन गुणो से विभूषित किया जा सकता है। अनन्त शक्ति, अनन्त सौन्दय तथा अनन्त शील। इस त्रिविधात्मक आनन्त्य-विशिष्ट भगवत्स्वरूप की जैसी प्रतिष्ठा हम श्रीमद्भागवत मे देखते है वैसी अन्यत्र दुलभ है। भक्ति का आधार श्रद्धा है और श्रद्धा मे इष्ट के महत्त्व की स्वीकृति निहित है। श्रद्धा का पूव भाव आकषण है जिसका स्थैय प्रेम पर अवलम्बित है। इस लिए भक्ति नामक भाव की सत्ता हम प्रेम के बिना नही मानते। यदि हम प्रेम को भक्ति का प्रथम सोपान कहे तो अत्युक्ति न होगी, प्रेम नामक भाव सौन्दर्य से जाग्रत होता है और यदि वह आनन्त्य-विशिष्ट है तो प्रेम की सत्ता स्थिर

हो जाती है। प्रेम नामक भाव मे आत्म-समपरण का भाव निहित है और सौन्दर्य मे नव-भावोन्मेष-शालिता।

'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपेति, तदेव रूप रमणीयताया" उस अनन्त सौन्दय मे यदि अनन्त शक्ति का समावेश हो तो जिसमे क्षमा दया उदारता आदि गुणो का सनिवेश रहता है तथा जो व्यभिचरित नही होता, वहाँ प्रेम उत्कष को प्राप्त होता हुआ लक्षित होता है और आत्मसमपरण की भावना द्विगुणित हो जाती है। अब यदि सौन्दय मे कुछ शक्ति का भी समावेश हो, ऐसी शक्ति जिसके मूल मे निग्रह-अनुग्रह की क्रियाओ का समावेश हो, ऐसी शक्ति जो अनन्त हो तथा जिसका उपयोग परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्' हो, तो उस शक्ति के प्रति, जा शील समन्वित सौन्दय युक्त हे, भक्त की भावना एक-निष्ठ हो जाती है और उसके आत्म-समपरण का भाव लोक तथा वेद की मर्यादा का अतिक्रमण करता हुआ ऐसी स्थिति मे पहुँच जाता है जो लोकोत्तर तथा लोकातीत है। इसी लोकोत्तर तथा लोकातीत स्थिति का उत्पन्न करना भागवतकार का प्रयोजन है। हम तो कृष्ण भक्ति को प्रेमाश्रित ही मानते है। भगवान् कृष्ण के लोक-रजन और लोक-रक्षक दोनो रूपो की प्रतिष्ठा श्रीमद्भागवत मे हुई है। भगवान् के सौन्दय के चित्र भागवत मे बिखरे पडे है। उन चित्रो को खीचता हुआ भी कवि भगवान् के उस स्वरूप को नही भूलता जिसका चित्र उपस्थित करना उसका उद्देश्य है। नन्दालय की लीला गाते हुए कवि कहता है, 'भगवान् कृष्ण समस्त जगत् के एकमात्र स्वामी है। उनमे ऐश्वय, माधुय, वात्सल्य, सभी अनन्त है। वे जब नन्द बाबा के ब्रज मे प्रकट हुए उस समय उनके जन्म का महान् उत्सव मनाया गया उसमे बडे बडे और मगलमय बाजे बजाए गए।[1] भगवान् की लीलाओ का वरणन करते हुए उसके विश्वेश्वर अनन्त रूप की धारणा भागवतकार के मन मे है। इन बाल लीलाओ के बीच मे जो भगवान् की सहार-लीलाऐ है वे भी उनके उसी रूप की प्रतिष्ठा करने वाली हैं, जिनसे भक्तो के प्रेम की वृद्धि होती है[2]—"य एतत् पूतनामोक्ष कृष्णस्याभकमद्भुतम्। शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम्॥" अर्थात् जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण की इस 'पूतना वध' नामक बाल लीला का श्रद्धा पूवक श्रवण करता है उसे भगवान् के चरणो मे भक्ति प्राप्त होती है।" आठवे अध्याय मे नामकरण सस्कार, घुटनो के बल चलना, माता पिता का प्रसन्न होना आदि का वरणन है। भागवतकार ने कृष्ण और बलदेव दोनो की बाल लीलाओ का वरणन साथ साथ किया है। कृष्ण-चरित तथा उनका व्यक्तित्व सारे स्कन्ध मे पूर्णतया व्याप्त है और हम किसी भी पात्र का अध्ययन कृष्ण के सम्बन्ध के बिना नही कर सकते क्योकि सबके भावो के आधार वे ही है। यो तो गोपियो का सकेत दशम-स्कन्ध के प्रारम्भ मे ही उनके अवतार की चर्चा करके किया गया है तथा कही कही उन्हे श्रुतिरूपा बताया है परन्तु भौतिक रूप से कृष्ण और गोपियो का सम्बन्ध कृष्ण के कुछ बडा होने पर ही होता है। वेणुलीला, गोपी आदि के आध्यात्मिक सकेतो का विवरण हम आगे देगे। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण गोपियो के आकषरण के विषय बने है। गोपियाँ यशोदा माता को उपालम्भ देने के लिए आती है क्योकि कृष्ण गाय दुहने का समय न होने पर भी उनके बछडो को खोल देते हैं और जब वे डाँटती है तो वे ठटा-ठटा कर हँसते है। सारा दही वानरो को बाँट देते है। बच्चो को रुलाकर भाग जाते है इत्यादि। इस प्रकार

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अ० ५, श्लोक १३-१६

२ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अ० ६ श्लोक ४४

गोपियाँ कहती जाती है और श्रीकृष्ण के भी चकित नेत्रो से युक्त कमल मुख को देखती जाती है। उनकी यह दशा देख कर नन्दरानी यशोदा जी उनके मन का भाव ताड लेती है और उनके मन मे स्नेह और आनन्द की बाढ आजाती है और वे इस प्रकार हँसने लगती है कि अपने प्यारे कन्हैया को उलाहना भी नही दे पाती, डाँटना तो अलग बात रही। पद्मपुराण के पातालखण्ड मे ऐसे बहुत से ऋषियो का वर्णन है, जिन्होने अनेक कल्प कठिन तपस्या करके गोपी रूपो को प्राप्त किया था। पद्मपुराण के अतिरिक्त अन्य पुराणो मे भी गोपियो के अवतारो की चर्चा है। कुछ गोपिया भगवान् के नित्य परमधाम मे अभिन्न रूप से नित्य निवास करने वाली नित्यसिद्धा गोपिया है। कुछ साधन सिद्धा है, कुछ पूर्वजन्म की देव कन्याएँ है। कुछ श्रुतियाँ है, कुछ तपस्वी ऋषि है, कुछ अन्य भक्त-जन। इनके अतिरिक्त मिथिला की गोपी, कौशल की गोपी, अयोध्या को गोपी, पुलिन्द गोपी, रमा, वैकुण्ठ आदि श्वेत द्वीप की गोपियाँ, जालधरी गोपी आदि गोपियो के अनेक यूथ थे जिनको बडी तपस्या करके भगवान् से वरदान पाकर गोपी रूप मे अवतीर्ण होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इसी प्रकार और भी बहुत सी गोपियो के पूर्व जन्म की कथाऐ पुराणो मे बिखरी पडी हैं।

हम पहले कह चुके है कि श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओ मे तीन प्रकार की लीलाओ का समावेश है। बाल, पौगण्ड और कैशोर। इनमे पहले दो प्रकार की लीलाएँ ब्रज मे हुई तथा तीसरी मथुरा मे। कृष्ण की बाल लीलाओ से प्रधानता यशोदा के वात्सल्य, कृष्ण का नटखटपन, तथा गोप गोपिकाओ का विनोद सम्मिलित है। माखन-चोरी की लीला इसी काल की है। इस माखन-चोरी-लीला का वर्णन, अनेक प्रकार से किया गया है और उसके दार्शनिक अर्थ लगाए गये है। मृत्तिका-भक्षण वाली लीला भी इसी बाल्यकाल की है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-सी अलौकिक लीलाएँ हैं। जो श्रीकृष्ण ने पाँच वर्ष की अवस्था तक की। इन बाल लीलाओ मे श्रीमद्भागवतकार ने भगवान् के अवतारत्व को स्थान-स्थान पर प्रधानता दी है। जिसके कारण इन लीलाओ मे अलौकिकता का पुट इतना अधिक है कि कही-कही वे अस्वाभाविक सी लगती है। बीच-बीच मे जब नन्द यशोदा अथवा गोपियाँ बालक कृष्ण की भगवान् रूप मे स्तुति करने लगती है तो साधारण पाठक को वह रसानुभूति नही होती, जो सूरसागर के अध्ययन मे बालक श्रीकृष्ण के मानवीय चित्रण पढने मे होती है। भागवत का वर्णन शास्त्रीय ढग का है उसमे मनोवैज्ञानिकता भी नही है जो स्वतत्र तथा शास्त्र निरपेक्ष वर्णन मे होती है। बात यह है कि भागवत मे शुकदेव जी ने परीक्षित् को श्रीकृष्ण का चरित सुनाया है, जिसके कारण परीक्षित् द्वारा अनेक शकाएँ उन लीलाओ के तारतम्य को तोड देती हे। श्रीकृष्ण की बाल लीलाओ का स्थल गोकुल है किन्तु जब बडे बूढे गोपो ने देखा कि उस महावन मे बडे-बडे उत्पात होने लगे है तो उन्होने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। वृन्दावन मे उनकी पौगण्ड लीलाओ का वर्णन है। वृन्दावन मे हमे भगवान् कृष्ण के गोपाल रूप के दर्शन होते है। यशोदोत्सग-लालित नन्दनन्दन अब गोपाल है। यहाँ आने पर वे गाय और बछडे चराने लगे है। परन्तु अभी तक उनको गौओ को लेकर दूर जाने की आज्ञा नही थी, इसी गोचारण के समय भागवतकार ने ब्रह्मा जी द्वारा वत्सहरण लीला का वर्णन किया है जिस लीला को आधार मानकर कुछ आचार्यो ने कृष्ण चरित के दोषो का परिहार किया है। भागवतकार ने १५वे अध्याय के आरभ मे लिखा है कि जब बलराम और श्रीकृष्ण ने पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष मे प्रवेश किया

तब उन्हे गौएँ चराने की स्वीकृति मिल गई। वे अपने सखा ग्वाल बालो सहित गौएँ चराते हुए वृ दावन मे जाते और अपने चरणो से वृन्दावन को पावन करते। श्रीकृष्ण की इस गोचारण-लीला का वर्णन भागवतकार ने बडी सु दरता से किया हे परन्तु बीच-बीच मे उनकी अलौकिक लीलाओ का समावेश किया हे। गोपियो का सम्बन्ध साधारण रूप से आया हे। विशेषकर उन स्थलो पर जब श्रीकृष्ण अपनी अलौकिक लीला करते हे तो गोपियाँ उनकी ओर आकृष्ट होती है तथा उनका प्रेमभाव बढता जाता हे।

२०वे अध्याय मे वर्षा और शरदऋतु का वर्णन श्रीमद्भागवत मे उच्चकोटि का हुआ है। इसमे प्रकृति के सुन्दर चित्रण हे, यह वर्णन गोस्वामी तुलसीदास के वर्षा वर्णन की भाँति उपदेशात्मक भी है। सम्भव हे गोस्वामी जी ने अपने प्रकृति वर्णन का सूत्र यहा से लिया हो। बादलो का गर्जन सुनकर मेढक इस प्रकार टर टर करते हे, जैसे गुरु की आज्ञा पाकर ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करते हो। वर्षा और शरदऋतु का वर्णन श्रीमद्भागवत की पृष्ठ भूमि प्रस्तुत करना है क्योकि प्रकृति की इस रम्य स्थली मे श्रीकृष्ण ने उस वेणु गीत का आरभ किया जिसका विश्लेषण आचार्यो ने अनेक प्रकार से किया हे। वास्तव मे श्रीकृष्ण का रसिक शिरोमणि रूप यही से आरभ होता है। यही रसिक शिरोमणि गोपाल रासलीला मे रति नागर हो गए है। बाल रूप मे कृष्ण गोपियो को मुग्ध करते थे। माखन चोरी मे निकटतम सम्बन्ध स्थापित किया और अलौकिक लीलाएँ करके गोपियो के प्रेम को स्थायित्व प्रदान किया। अब वेणुगीत से उस प्रेम मे रसात्मकता भी भर दी। सगीत ने उस प्रेम को गुदगुदाया और वशी की ध्वनि सुनते ही उन्हे श्रीकृष्ण की मधुर चेष्टाओ, प्रेम पूर्ण चितवन, भृकुटियो के सकेत तथा मधुर मुस्कान आदि की याद हो आई और वे मन से भगवान् के पास जा पहुँची। इस वेणु का नाद व्यापक नाद हैं। इसके दार्शनिक तत्त्व का विवेचन हम आगे करेंगे। इस सम्बन्ध मे एक बात यह उल्लेखनीय है कि गोपियो ने उनकी मुरली का वर्णन अनेक प्रकार से किया है और सूत्र रूप से उन बातो की ओर सकेत किया हे जिनका आधार लेकर सूर ने मुरली से अनेक अठखेलियाँ की है।

चीर हरण

अब गोपियो का प्रेम परिपक्व हो रहा है और श्रीकृष्ण को पतिरूप मे प्राप्त करना चाहती है। ब्रज की कुमारियाँ कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करती हे। यहाँ भागवत-कार ने गोपियो मे विवेक किया हे क्योकि पहलीबार हमे गोपियो के सम्बन्ध मे 'कुमारी' शब्द का प्रयोग मिलता है। "जब हेमन्त ऋतु आई उसके पहले ही महीने मे नन्दबाबा के ब्रज की कुमारिया कात्यायनी देवी की पूजा और व्रत करने लगी। वे केवल हविष्यान्न ही खाती थी।[१] भागवतकार ने इन गोपियो को कुमारिका सज्ञा देकर मर्यादा की रक्षा की है। दशमस्कन्ध के २१वे अध्याय मे ऐसा वर्णन आया हे कि भगवान् की रूप माधुरी, वशी-ध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख सुनकर गोपिया मुग्ध हो गई। २२वे अध्याय मे वे उसी प्रेम की शान्ति प्राप्त करने के लिए साधन मे लगगई है। इसी अध्याय मे आकर भगवान् ने उनकी साधना पूर्ण की है। यही चीरहरण लीला का प्रसग हे। इस चीरहरण लीला के विषय मे भी अनेक दार्शनिक विश्लेषण हे। ब्रज-कुमारिकाएँ निरावरण रूप से श्रीकृष्ण के सामने नही जारही थी। उनमे थोडी झिझक थी। उनकी यही झिझक दूर

१ श्रीमदभागवत दशमस्कन्ध अ० २२ श्लोक १

करने के लिए—उनकी साधना, उनका समपरा पूरा करने के लिए—उनका आवरण भग कर देने की आवश्यकता थी उनका यह आवरण रूप चीर हरलेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्ण ने किया। इत्यादि । अनेक रूप से इस चीरहरण लीला की व्याख्या की गई है। इस लीला के अन्त मे श्रीकृष्ण उन कुमारियो से कहते ह कि अब तुम अपने घर लौट जाओ। आने वाली शरद रात्रियो मे तुम मेरे साथ विहार करोगी।[1] इस श्लोक मे भागवतकार ने रास लीला की ओर सकेत किया हे। आनेवाली शरदऋतु की रात्रियो तक श्रीकष्ण ने कई लीलाएँ की जिनमे गोवधन लीला मुख्य है। गोवधन लीला के समय भागवतकार ने कृष्ण की आयु सात वष की बतलाई है।

रास लीला

दशमस्कन्ध २९वे अध्याय से ३३व अध्याय तक के पाँच अध्याय भागवत मे 'रास पचाध्यायी' के नाम से प्रसिद्ध हे। रास लीला को लेकर विभिन्न आचार्यो ने बडी-बडी बौद्धिक क्रीडाएँ की है और भाति-भाति से उनका दाशनिक विवेचन किया है। इसके दाशनिक पक्ष का विवेचन हम आगे करेगे। कुछ विद्वानो ने भागवत मे रास पचाध्यायी को प्रक्षिप्त माना है और ग्रन्थ की पूर्वापर-सगति से यह सिद्ध किया हे कि रास पचाध्यायी भागवत का विषय नही है अपितु किसी सम्प्रदाय के आचाय ने इसका समावेश भागवत मे कर दिया हे। दण्डी स्वामी श्री सहजानन्द सरस्वती ने 'कल्याण' के 'श्रीकृष्णाङ्क' मे 'श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण चरित्र' नामक लेख लिखा था उसमे उनका कथन है—काशी मे 'सरस्वती' नाम की जो लाइब्रेरी हे उसके भूतपूव 'लाइब्रेरियन प० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी से एक बार लेखक की बाते इस सम्बन्ध मे हुई थी। उस समय उन्होने बताया था कि एशियाटिक सोसाइटी के पुस्तकालय मे रखी हुई एक बहुत ही प्राचीन हस्तलिखित श्रीमद्भागवत की प्रति मिलती हे जिसमे रास पचाध्यायी नही है जो बोपदेव से बहुत पहले की है।"

इस रास प्रसग मे भागवतकार ने प्रकृति की सजगता और उसका गोपियो से तादात्म्य बडी सुन्दरता के साथ दिखाया है। प्रकृति उद्दीपन का काय कर रही थी। सयोग शृगार का पूरा साज प्रस्तुत था। गोपिकाएँ अपने काय कलाप को ज्यो का त्यो छोडकर वशी-नाद को सुनते ही उस प्रेम यात्रा के पथ पर अग्रगामिनी होगई। स्वजन तथा लोकमर्यादा उनके माग मे बाधक न होसके। गोपियो की यह आतुरता, आत्मा की परमात्मा से मिलने की आतुरता थी। प्रकृति का पुरुष से सयोग था। साधक के लक्ष्य की पूर्ति थी। भागवतकार ने इस प्रसग मे भौतिक और अभौतिक का, प्राकृत और अप्राकृत का बडा सुन्दर समन्वय किया हे। एक ओर शृगार का नग्न चित्रण इस रास लीला मे है और दूसरी ओर भगवान् के दिव्य मगलस्वरूप की झलक है। परीक्षित् द्वारा प्रश्न किए जाने पर शुकदेव जी ने यह उत्तर दिया है कि भगवान् प्रकृति सम्बन्धी वृद्धि, विनाश प्रमाण प्रमेय और गुण गुणी भाव से रहित हे। वे अचिन्त्य, अनन्त, अप्राकृत, परम कल्याण स्वरूप और गुणो के एकमात्र आश्रय हे। उनकी लीलाओ का प्रयोजन इतना ही हे कि जीव उनके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे। भगवान् से केवल सम्बन्ध होजाना चाहिये वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो क्योकि वृत्तियाँ उस सम्बन्ध से भगवन्मय हो जाती है और उनका परिष्कार हो जाता है। इसी सम्बन्ध की ओर सकेत भागवतकार का लक्ष्य है।

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय २२ श्लोक २७

भगवान् कृष्ण अपनी अनुपम विभूति स्वरूप गोपियो को अपने वाकचातुय से मुग्ध करते है और मर्यादा का उपदेश देकर माया की अनेक कल्पनाओ द्वारा उन्हे घर लौट जाने को कहते है किन्तु गोपिया अनन्य भाव से कृष्ण मे अनुरक्त हो चुकी थी—आत्मा को परमात्मा की झलक मिल चुकी थी। अब भक्त को माया का आवरण प्रिय नही था। भक्त के सारे सम्बन्ध भगवान् से हो चुके थे। गोपियाँ कृष्ण के वचनो से बडी दु खित होती हे और अपन हृदय की वेदना भाति-भाति से प्रकट करती है। श्रीकृष्ण उनकी व्यथा और व्याकुलता से भरी वाणी को सुनकर दयाद्र होकर उनकी इच्छाओ को पूण करने के लिए उनसे क्रीडा प्रारम्भ करते है परन्तु भक्तो के सर्वस्व भगवान् भक्तो की अहबुद्धि को सहन नही कर सकते। इसलिए उस अहभाव को दूर करने के लिए जो गोपियो मे उत्पन्न हो गया था, श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो जाते हे। अहता और ममता का त्याग भक्ति का सबसे बडा साधन है। गोपिया ममता का त्याग कर चुकी थी। अब यह अहता का त्याग था। भगवान् के अन्तर्धान होने पर गोपियो का हृदय विरह की ज्वाला मे जलने लगा। यह विरह वणन बडी उच्चकोटि का हुआ है, प्रेम की पराकाष्ठा—तन्मयता—के चित्र हमे यहाँ मिलते हे। प्रेम से उन्मत्त हुई गोपियाँ प्रकृति के प्रत्येक पदाथ से कृष्ण के विषय मे पूछती है। विरह की सब दशाओ का वणन विस्तार के साथ यहा हुआ है। यहाँ उन्माद की वह दशा दिखाई गई हे जब विरही अपनी सत्ता को ही भूल जाता है। गोपियो के हृदय की व्यथा को देखकर करुणानिधि भगवान् का हृदय द्रवित होता है और वे गोपियो के आश्वासन के लिए अपने चरण चिह्नो का लक्ष्य उन्हे करा देते है। उन चरण चिह्नो के साथ-साथ गोपियाँ ब्रजवल्लभ को खोजती है।

इसी स्थल पर भागवतकार ने उस प्रच्छन्न स्वरूपा सखी का उल्लेख किया हे जिसे बाद मे 'राधा' नाम से अभिहित किया गया है। श्रीकृष्ण के साथ किसी ब्रज युवती के चरण चिह्न को देखकर गोपियाँ आपस मे कहने लगी, "जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गई हो, वैसे ही श्यामसुन्दर के साथ उनके कन्धो पर हाथ रखकर चलने वाली किस बडभागिनी के ये चरण चिह्न है? अवश्य ही वह सव शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की 'आराधिका' होगी। इसलिए इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्याम सुन्दर ने हमे छोड दिया है और इसे एकान्त मे ले गए है।"[1] इसके आगे भागवतकार ने इस गोपी का वणन और चलाया है और गोपियो द्वारा विविध रूप से उसका वणन कराया है। इतना ही नही बल्कि एक स्थल पर गोपी के पैरो को अदृष्ट तथा कृष्ण के चरणो को बालू मे धसे दिखाकर गोपियो की इस कल्पना को भी जन्म दिया है कि कृष्ण ने अपनी प्रेयसी को कन्धे पर चढा लिया होगा। फिर उस गोपी के प्रसग मे श्रीकृष्ण भगवान् के अन्तर्धान होने का भी वणन है और फिर वह गोपी भी विरहिणी की भाति दिखाई गई है। वास्तव मे विरह-भाव प्रेम की परीक्षा का काल है। यह वह साधना है जिसमे प्रेम की तपश्चर्या पूण होती है। अब ये विरहिणी गोपियाँ उस अन्यतमा गोपी से मिलकर भगवान् की खोज करने लगी, और सब मिलकर कृष्ण के गुणो का गान करने लगी। यह 'गोपिकागीत' उनके विरह की चरमावस्था है। इसमे उनके हृदय के वे उद्गार है जिनसे उनकी तन्मयता, एकाङ्गिता और आत्म-समपण के भाव फूटे पडते है। उनकी अन्तर्वेदना से अश्रुओ के रूप मे प्रवाहिता होने लगी है। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण उनकी साधना को पूरी समझ कर प्रकट हुए। यही भक्ति की पूण

१ दशमस्कन्ध अध्याय ३० श्लोक २७–२८

सिद्धि थी। भगवान् का सान्निध्य था। सान्निध्य का फल है परमानन्द की प्राप्ति, जिसके लिए भगवान् उन्हे यमुना के किनारे ले आए। अब गोपिया पूर्णकामा है और उनके हृदय की सब आधि-व्याधि मिटगई है। यहा भागवतकार ने सात गोपियो का वर्णन किया है जो सिद्ध योगियो के समान परमान द मे लीन हुई। किसी किसी ने इन सात गोपियो को गणना परक न मान कर सख्या परक माना है अर्थात् भागवत मे आए हुए 'एका' तथा 'काचित्' शब्दो का कोई-कोई अर्थ किया है। फिर भगवान् कृष्ण ने गोपियो को प्रेम का महत्त्व समझाया है और उन्हे सबसे वडी प्रेम पात्राओ के रूप मे ग्रहण किया है। वे कहते है—मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे कारण घरगृहस्थ की उन बेडियो को तोड डाला है जिन्हे बडे-बडे योगी-यती भी नही तोड पाते। मुझसे तुम्हारा सम्बन्ध निर्दोष है। यदि मैं अमरशक्ति से तुम्हारे त्याग और प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तोभी नही चुका सकता।[1]

इसके अनन्तर श्रीमद्भागवत मे उस महारास का उपक्रम होता है, जिसको हम 'महामिलन' कह सकते है। प्रत्येक गोपी भगवान् कृष्ण के सान्निध्य का अनुभव करती है। दो-दो गोपियो के मध्य मे कृष्ण प्रकट हो गए और उनके गले मे अपना हाथ डाल लिया। भागवतकार ने बडे आलकारिक ढग से इस महारास का भौतिक रूप दिखाया है। रास के अन्त मे थकान दूर करने के लिए जलक्रीडा का वर्णन है। देवताओ के द्वारा पुष्पवृष्टि और स्तुति कराकर कवि ने इस लीला के अलोकिक पक्ष की ओर सकेत किया है। फिर भगवान् ने उसी शरद् रात्रि मे जिसमे अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत होगई थी, अपनी प्रेयसी गोपियो के साथ विहार किया। भागवनकार यहा भी एक चेतावनी देता है कि यह भगवान् के चिन्मय सकल्प की ही चिन्मयी लीला है जिसमे काम-भाव को उ होने अपने अधीन कर रखा था।[2] परीक्षित् द्वारा प्रश्न किए जाने पर शुकदेव जी ने भगवान् को परब्रह्म स्वरूप बताते हुए साथ-साथ यह भी कह दिया है कि सूय, अग्नि आदि ईश्वर, कभी-कभी धम का उल्लघन और साहस का काम करते देखे जाते हे परन्तु अग्नि की भाँति उन तेजस्वी पुरुषो को कोई दोष नही होता।"—

"तेजीयसा न दोषाय वन्ह्वे सवभुजो यथा।"[3]

शुकदेव जी ने यह भी समाधान किया है कि ब्रजवासी गोप कृष्ण की योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि उन की पत्नियाँ उनके पास ही है। गोपी विहार-विषयक यह चि मय रास-विलास गोपियो के प्रेम का उत्कष है। अब गोपिया भगवन्मय हो चुकी है। चीरहरण लीला मे तो केवल अविवाहित गोपिया ही थी, परन्तु इस रास लीला मे वे नित्य सिद्धा गोपिया भी थी जो लोकदृष्टि मे विवाहिता थी। इस प्रकार भागवत मे स्वकीया और परकीया का प्रश्न उपस्थित नही होता क्योकि शुकदेव जी ने परीक्षित् के उत्तर मे स्पष्ट कर दिया है कि गोपी, गोपियो के पति उनके पुत्र, सगे सम्बन्धी और जगत् के समस्त प्राणियो के हृदय मे आत्मारूप से जो प्रभुस्थित है, वही श्रीकृष्ण है। गोपियो मे परकीया भाव अवश्य था। परकीया भाव मे तीन बातें होती है। १—अपने प्रियतम का निरन्तर चिन्तन, २—मिलन की उत्कण्ठा, ३—दोष-दृष्टि का अभाव। स्वकीया और

१ दशमस्कन्ध अध्याय ३२, श्लोक २२
२ दशमस्कन्ध अध्याय २६ श्लोक २६
३ दशमस्क ध अध्याय ३३ श्लोक ३०

परकीया के इस विषय को लेकर बडा साम्प्रदायिक वाद-विवाद हे। श्रीमद्भागवत मे इस वाद-विवाद के लिए स्थान नही हे। भागवत की गोपियो मे परकीया भाव उतना ही माना जा सकता है कि स्वकीया मे जो एक विशेष महत्त्व का भाव रहता है, जिसको सकाम भाव कह सकते हैं, वह इन गोपियो मे नही हे।

रासपञ्चाध्यायी पर अब तक अनेक भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी है। किसी ने इसे काम पर विजय बताया है, किसी ने भगवान् का दिव्य विहार बताया है और किसी ने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। इन पक्षो का साकेतिक विवेचन हम अगले प्रकरणो में करेंगे। अब गोपिया कृष्णमय हो चुकी है और उन्ह ससार मे कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नही सूझता। उनकी सारी दिनचर्या कृष्णमयी है। भगवान् कृष्ण जब जगल मे गौओ को चराने के लिए चले जाते है तो उनका मन भी कृष्ण के साथ चला जाता है और वे अपना समय भगवान् के यशोगान मे बिताती हे। इस प्रकार से अनेक चित्र भागवनकार ने भागवत मे चित्रित किए हैं। 'युगलगीत'[1] मे गोपियो की दस प्रकार की चेष्टाओ का वर्णन है।

श्रीकृष्ण की इस पौगण्ड लीला मे शृ गार-रस के सयोग पक्ष का विशद विवेचन हुआ है। अब कृष्ण १० वर्ष के हो चुके है और उनकी किशोर लीला का प्रारम्भ होता है। किशोर लीला का प्रारम्भ मथुरा गमन से मानना चाहिये। इसका प्रारम्भ भागवत मे दशमस्कन्ध के २९ वे अध्याय मे किया गया है। इससे पहले भागवतकार ने श्वफल्क नन्दन अक्रूर के भक्ति-भाव का बडा सुन्दर और भावपूर्ण वर्णन किया है। कृष्ण के मथुरा जाते समय गोपियो की वेदना का भी बडा हृदयस्पर्शी वर्णन भागवतकार ने किया है। उस समय गोपियो के करुणक्रन्दन को सुनकर पाषाण हृदय भी द्रवित हो जाते है। गोपिया अनेक प्रकार से कृष्ण को उपालम्भ भी देती है और कहती है कि इस नन्द-नन्दन को नए नए लोगो से नेह करने की चाट पडगई है। श्रीकृष्ण ने उनको सान्त्वना देने के लिए, 'मैं आऊँगा' ऐसा प्रेमसदेश भेजा। कृष्ण के मथुरा-गमन को पढकर तुलसी के राम वनगमन की याद आजाती है। अब यहा से श्रीकृष्ण की मथुरा लीला आरम्भ हो जाती है। इस मथुरा लीला मे कृष्ण का असुर-निकन्दन तथा भक्तोद्धारक स्वरूप आता है जिसका विवेचन हम पहले कर चुके है।

भ्रमरगीत

सयोग वर्णन के अतिरिक्त भागवतकार ने गोपियो का विरह वर्णन भी किया है जिसे 'भ्रमरगीत' के नाम से पुकारा जाता हे। यह भ्रमरगीत गोपियो के वियोग काल का ही वर्णन नही हैं वरन् यह शृ गार पक्ष का वह विप्रलम्भ पक्ष है जिसके बिना शृ गार रस अपूर्ण है और भक्ति रस विकलाग। भागवत के भ्रमरगीत का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है। अपने माता पिता और गोपियो को विरह वेदना से मुक्त करने के लिए अपने भाई उद्धव को कृष्ण ब्रज मे भेजते है। उद्धव जी भी उनके आदेश को सुनकर गोधूलि-वेला मे ब्रज मे पहुँचते हैं। ब्रज के बडे-बडे सुन्दर चित्र भागवतकार ने उपस्थित किए है। नन्द आदि गोपो ने कृष्ण के चरित उद्धव के सम्मुख प्रस्तुत किए और उनकी आँखो से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उद्धव जी गोधूलि के समय ब्रज मे पहुँचे थे। वे रात्रि भर नन्द जी को समझाते रहे कि श्रीकृष्ण प्रधान पुरुष है और बलराम उनकी प्रकृति। वे अजन्मा और

१ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ३५

गुणातीत है तथा भक्तो के लिए अवतार धारण करते हे। वे अपने ही नही अपितु सबके हैं। इस प्रकार बात कहते कहते रात्रि व्यतीत हो जाती है। प्रात काल जब व्रजागनाओ ने देखा कि नन्द बाबा के द्वार पर सोने का एक रथ खडा है तो वे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करने लगी। परन्तु जब नित्य कम से निवृत्त होकर उद्धव जी उनकी ओर गए तो वे व्यग्य पूर्ण वचनो से उन पर उतर पडी। अब वे कृष्ण को ब्रजनाथ न कह कर यदुनाथ कहती हैं और कहती है कि उनके लिए नन्द गाँव मे क्या आकर्षण है। अब हमारे पास क्या रखा है। जब तक अपना मतलब नही निकल जाता तभी तक प्रेम का स्वाँग किया जाता है। भृङ्गो का पुष्पो से और पुरषो का स्त्रियो से ऐसा ही स्वाथ सम्बन्ध होता हैं। इस प्रकार की अनेक व्यग्य पूर्ण उक्तियाँ गोपियो के मुख से निकलती है। उन्हे श्रीकृष्ण की सारी बाते याद आ गइ और उनमे से एक एक को याद कर वे फूट-फूट कर रोने लगी। प्रवासी प्रिय के सन्देश से पुरानी स्मृति का सजग होना स्वाभाविक है। वे श्रीकृष्ण की मिलन-लीलाओ का स्मरण करने लगी। इतने मे ही किसी गोपी ने देखा कि एक भ्रमर गुनगुना रहा है। गोपी ने समझा कि रुष्ट समझ कर मानो कृष्ण ने उन्हे मनाने के लिए उस भ्रमर को दूत बना कर भेजा है। वे भौरो से इस प्रकार कहने लगी—"अरे भ्रमर! तू कपटी का सगा है अत तू भी कपटी है। तेरे अन्दर जो पीला रग है वह श्री कृष्ण के हृदय की जो वनमाला है, हमारी सपत्नियो के वक्ष से मसली हुई है, उसका है। तू स्वय भी किसी कुसुम से प्रेम न कर यहाँ से वहाँ उडा फिरता है। जैसे तेरे स्वामी हैं वैसा ही तू है। मधु पति श्रीकृष्ण मथुरा की मानिनी नायिकाओ को मनाया करे, उनका वह कु कुम रूप प्रसाद जो यदुवशियो की सभा मे उपहास के योग्य है, अपने ही पास रखे। जैसा तू काला है वैसे वे भी है। तू हम लोगो के समक्ष श्रीकृष्ण के गुणो का गान क्यो करता है? हम तो वनवासिनी हे, तेरी चापलूसी हमारे सामने नही चल सकती। तेरे स्वामी वडे कृतघ्न तथा विश्वासघाती है। राम रूप मे उन्होने बाली को व्याध के समान निर्दयता से मारा शूपणखा को विरूप किया। बलि को छला। उनका स्वभाव तो कौए जैसा है। अनिच्छा होते हुए भी हम उनकी चर्चा करती रहती है।" इस प्रकार अनेक उक्तियाँ गोपियो के मानस से अनेक स्रोतो के रूप मे नि सृत होती है। अन्त मे वे भ्रमर से पूछती है—अच्छा तुम यह तो बताओ कि श्रीकृष्ण सुख से तो है। वे हमे कभी याद करते है? क्या वे कभी यहा फिर आवेगे? इत्यादि। उद्धव गोपियो के व्यग्य भरे क्रदन को सुनकर उन्हे सान्त्वना देते है और उनकी भक्ति की प्रशसा करते हुये भगवान् कृष्ण का स देश उन्हे सुनाते है। यह स देश बडा महत्त्वपूर्ण है क्योकि यह श्रीकृष्ण के परब्रह्म स्वरूप को व्यक्त करता है। भगवान् का सन्देश है—"मैं सबका उपादान कारण होने से सबका आत्मा हूँ। सबमे अनुगत हूँ। इसलिए मुझसे तुम्हारा वियोग कभी नही हो सकता। जैसे ससार के सभी भौतिक पदार्थों मे पाँचो तत्त्व व्याप्त है, उन्ही से सब वस्तुएँ बनी है, वैसे ही मैं भी मन, प्राण, पचभूत इन्द्रियो और उनके विषयो का आश्रय हूँ। वे मुझमे है और मैं उनमे हूँ। आत्मा माया और माया के कार्यों से पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है। तुम शरीर से दूर रहने पर भी मन से मेरी सन्निधि का अनुभव करो।"[1] अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का यह सदेश सुनकर गोपियो को बडा आनन्द हुआ। उनके सदेश से उन्हे श्रीकृष्ण के स्वरूप और उनकी एक एक लीला याद आने लगी। परन्तु श्रीकृष्ण के प्रिय सदेश को सुनकर

१ श्री ‹ अध्याय ४७ श्लोक २९–३७

उनकी विरह व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप मे सवत्र स्थित मान चुकी थी। उद्धव भी गोपियो की प्रेम-विकलता, तन्मयता और प्रेम-चेष्टाओ को देख कर प्रेम-विभोर हो गये और गोपियो की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।" इस पृथ्वी पर केवल गोपियो का ही जीवन सफल है। इन्हे श्रीकृष्ण के स्वरूप की प्राप्ति हो गई है। वे धन्य हैं। भगवद्वाणी श्रुतिया और उपनिषद् भगवान् के स्वरूप को खोजते है, किन्तु इन्हे तो साक्षात् भगवान् ही प्राप्त हो गये है।" अन्त मे वे गोपियो की चरण-धूलि की कामना करते है। इस प्रकार कई महीने ब्रज मे रहकर उद्धव जी ने मथुरा-प्रस्थान किया। चलते समय का दृश्य भी एक अद्भुत दृश्य था। ब्रज की गोपियाँ भगवान् के चरणो मे रति चाहती है, मुक्ति नही। उद्धव ने मथुरा पहुँच कर श्रीकृष्ण को ब्रजवासियो की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होने देखा था, कह सुनाया।

भागवत के भ्रमरगीत का आधार लेकर अनेक कवियो ने बडी सुन्दर सुन्दर रचनाये की है। भागवत के भ्रमरगीत मे दो बाते उल्लेखनीय है। (१) गोपियो के हृदय की अवस्था का चित्रण। (२) ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य। जहाँ तक गोपियो के हृदय की व्यथा का सम्बन्ध है, उसका आधार तो गोपियो का वह प्रेम हे, जो भक्ति रस का स्थायी भाव है। गोपियो का यह विरह व्यापक विरह है। सारी प्रकृति उस विरह से व्यथित प्रतीत होती है। सयोग मे जो प्राकृतिक चित्र दृश्य, मनोहर और सुखद प्रतीत होते थे। वियोग मे वे ही दृश्य भयावने से प्रतीत होते है। इस भ्रमर गीत की यह एक विशेषता है कि सारे वृन्दावन धाम को गोपियाँ कृष्ण के विरह मे कृष्णमय ही देखती है। वास्तव मे यही विरह की चरमावस्था है। भक्ति और ज्ञान का सामञ्जस्य भी इस भ्रमर-गीत मे अच्छा हुआ है। भागवतकार का उद्देश्य इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियो की आत्मा के रूप मे स्थिर करना है। इसीलिए उद्धव के उपदेश से गोपियो को कुछ शान्ति मिली। भगवान् श्रीकृष्ण ने यही प्रयत्न उस समय भी किया, जब वे पर्व के समय द्वारका से कुरुक्षेत्र आए और व्रज के नन्दादि गोप और गोपियाँ उनसे मिलने आई थी। उस समय भगवान् के उपदेश की स्मृति से गोपियो का जीव कोष और लिंग शरीर नष्ट हो गया और वे सवदा के लिए भगवान् को प्राप्त हो गई। इस प्रकार भागवतकार एक ओर उद्धव जी द्वारा गोपियो के हृदय मे ज्ञानस्थिति कराता है तो दूसरी ओर उनकी भक्ति की उनके द्वारा सराहना ही नही कराता बल्कि उद्धव का व्रजभूमि मे महीनो निवास कराकर भक्ति का वैशिष्ट्य भी प्रतिपादित करता है।

भागवत के कृष्ण के इतने विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कष पर पहुँचते है—

१—भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी रूपो का विवेचन हुआ है परन्तु उनकी बाल लीलाओ को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। श्रीकृष्ण का चरित प्राय सभी स्थलो पर अतिमानवीय है। यही कारण है कि भागवत मे श्रीकृष्ण का अवतार चतुर्व्यूह रूप मे चित्रित हुआ है और बलदेव का उनके साथ प्राय सयोग रहा है।

२—भागवतकार का उद्देश्य कृष्ण चरित को चित्रित करना नही है बल्कि उसके द्वारा कृष्ण का परम पुरुषत्त्व सिद्ध करना है। श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय यही है। उस परम तत्त्व को चाहे कोई कृष्ण कहे, ब्रह्म कहे या भगवान कहे। भागवत के अनुसार इसका

उत्तर देना भी कठिन है। इसमे भगवान् के विविध स्वरूपो का वर्णन है—निर्विशेष, सविशेष निराकार, साकार—इन सब का एक ही सूत्र मे समन्वय किया गया है—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"। भागवत मे पुराणो के भी सब लक्षणो का यथावत् पालन हुआ है।

३—भागवत मे गोपियो का वर्णन भी बडे शास्त्रीय ढग से है। जिसके कारण उनके प्रेम की धाराओ मे स्थान-स्थान पर बाँध से लगे प्रतीत होते है। यदि हम रास पचाध्यायी को प्रक्षिप्त माने तो गोपियो का चरित ही विकलाङ्ग हो जाता है। भागवत मे राधा की केवल कल्पनामात्र है। न तो उसका कही नामोल्लेख है और न विशद चित्रण ही। यशोदा मे यद्यपि वात्सल्य भाव के दर्शन होते है, तथापि उसका चित्रण इतना थोडा है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सामने नही आ पाता। भागवतकार यशोदा के पूर्वजन्म की कथा कहकर तथा यशोदा पर कृष्ण की अलौकिकता प्रकट करके उस स्वाभाविक वात्सल्य मे ठेस सी पहुँचा देता है। भागवत मे यशोदा के चरित का उतना मनोवैज्ञानिक विस्तार भी नही जितना होना चाहिये था। यशोदा की अपेक्षा नन्द के वात्सल्य का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है।

उनकी विरह व्यथा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप मे सवत्र स्थित मान चुकी थी। उद्धव भी गोपियो की प्रेम-विकलता, तन्मयता और प्रेम-चेष्टाओ को देख कर प्रेम-विभोर हो गये और गोपियो की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे।" इस पृथ्वी पर केवल गोपियो का ही जीवन सफल है। इन्हे श्रीकृष्ण के स्वरूप की प्राप्ति हो गई है। वे धन्य है। भगवद्वाणी श्रुनियाँ और उपनिषद् भगवान् के स्वरूप को खोजते है, किन्तु इन्हे तो साक्षात् भगवान् ही प्राप्त हो गये है।" अन्त मे वे गोपियो की चरण-धूलि की कामना करते है। इस प्रकार कई महीने ब्रज मे रहकर उद्धव जी ने मथुरा-प्रस्थान किया। चलते समय का दृश्य भी एक अद्भुत दृश्य था। ब्रज की गोपियाँ भगवान् के चरणो मे रति चाहती है, मुक्ति नही। उद्धव ने मथुरा पहुँच कर श्रीकृष्ण को ब्रजवासियो की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होने देखा था, कह सुनाया।

भागवत के भ्रमरगीत का आधार लेकर अनेक कवियो ने बडी सुन्दर सुन्दर रचनाये की है। भागवत के भ्रमरगीत मे दो बाते उल्लेखनीय है। (१) गोपियो के हृदय की अवस्था का चित्रण। (२) ज्ञान और भक्ति का सामञ्जस्य। जहाँ तक गोपियो के हृदय की व्यथा का सम्बन्ध है, उसका आधार तो गोपियो का वह प्रेम है, जो भक्ति रस का स्थायी भाव है। गोपियो का यह विरह व्यापक विरह है। सारी प्रकृति उस विरह से व्यथित प्रतीत होती है। सयोग मे जो प्राकृतिक चित्र दृश्य, मनोहर और सुखद प्रतीत होते थे। वियोग मे वे ही दृश्य भयावने से प्रतीत होते है। इस भ्रमर गीत की यह एक विशेषता है कि सारे वृन्दावन धाम को गोपिया कृष्ण के विरह मे कृष्णमय ही देखती है। वास्तव मे यही विरह की चरमावस्था है। भक्ति और ज्ञान का सामञ्जस्य भी इस भ्रमर-गीत मे अच्छा हुआ है। भागवतकार का उद्देश्य इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को गोपियो की आत्मा के रूप मे स्थिर करना है। इसीलिए उद्धव के उपदेश से गोपियो को कुछ शान्ति मिली। भगवान् श्रीकृष्ण ने यही प्रयत्न उस समय भी किया, जब वे पर्व के समय द्वारका से कुरुक्षेत्र आए और व्रज के नन्दादि गोप और गोपियाँ उनसे मिलने आई थी। उस समय भगवान् के उपदेश की स्मृति से गोपियो का जीव कोष और लिंग शरीर नष्ट हो गया और वे सवदा के लिए भगवान् को प्राप्त हो गई। इस प्रकार भागवतकार एक ओर उद्धव जी द्वारा गोपियो के हृदय मे ज्ञानस्थिति कराता है तो दूसरी ओर उनकी भक्ति की उनके द्वारा सराहना ही नही कराता बल्कि उद्धव का व्रजभूमि मे महीनो निवास कराकर भक्ति का वैशिष्ट्य भी प्रतिपादित करता है।

भागवत के कृष्ण के इतने विवेचन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते है—

१—भागवत मे श्रीकृष्ण के सभी रूपो का विवेचन हुआ है परन्तु उनकी बाल लीलाओ को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। श्रीकृष्ण का चरित प्राय सभी स्थलो पर अतिमानवीय है। यही कारण है कि भागवत मे श्रीकृष्ण का अवतार चतुर्व्यूह रूप मे चित्रित हुआ है और बलदेव का उनके साथ प्राय सयोग रहा है।

२—भागवतकार का उद्देश्य कृष्ण चरित को चित्रित करना नही है बल्कि उसके द्वारा कृष्ण का परम पुरुषत्त्व सिद्ध करना है। श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय यही है। उस परम तत्त्व को चाहे कोई कृष्ण कहे ब्रह्म कहे या भगवान् कहे। भागवत के अनुसार इसका

उत्तर देना भी कठिन है। इसमे भगवान् के विविध स्वरूपो का वर्णन है—निर्विशेष, सविशेष निराकार, साकार—इन सब का एक ही सूत्र मे समन्वय किया गया है—

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"। भागवत मे पुराणो के भी सब लक्षणो का यथावत् पालन हुआ है।

३—भागवत मे गोपियो का वर्णन भी बडे शास्त्रीय ढग से है। जिसके कारण उनके प्रेम की धाराओ मे स्थान-स्थान पर बाँध से लगे प्रतीत होते है। यदि हम रास पचाध्यायी को प्रक्षिप्त माने तो गोपियो का चरित ही विकलाङ्ग हो जाता है। भागवत मे राधा की केवल कल्पनामात्र है। न तो उसका कही नामोल्लेख है और न विशद चित्रण ही। यशोदा मे यद्यपि वात्सल्य भाव के दर्शन होते है, तथापि उसका चित्रण इतना थोडा है कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व सामने नही आ पाता। भागवतकार यशोदा के पूर्वजन्म की कथा कहकर तथा यशोदा पर कृष्ण की अलौकिकता प्रकट करके उस स्वाभाविक वात्सल्य मे ठेस सी पहुँचा देता है। भागवत मे यशोदा के चरित का उतना मनोवैज्ञानिक विस्तार भी नही जितना होना चाहिये था। यशोदा की अपेक्षा नन्द के वात्सल्य का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है।

अध्याय ६

श्रीमद्भागवत के दार्शनिक सिद्धान्त

क—श्रीमद्भागवत एक महापुराण है—

श्रीमद्भागवत, भागवत धम का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। भागवत धम पर वतमानकाल मे जो ग्रन्थ उपलब्ध है उनमे गीता के अतिरिक्त मुख्य ग्रन्थ ये है—

१—महाभारतान्तगत नारायणीय उपारयान, २—अनेक पाचरात्रसहिताएँ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, ३—श्रीमद्भागवत पुराण, ४—नारदपचरात्र तथा ५—नारद भक्ति सूत्र। इनके अतिरिक्त साम्प्रदायिको के और भी कई ग्रन्थ है। चैतन्य महाप्रभु के शिष्यो ने विशेषकर 'रूप' और सनातन' ने भागवत भक्ति पर कई सुन्दर ग्रन्थ लिखे है। परन्तु इन सब ग्रन्थो मे श्रीमद्भागवत ही सर्वोच्च कोटि का ग्रन्थ है। यहा हम सब ग्रन्थो का विवेचन कर केवल श्रीमद्भागवत पर ही प्रकाश डालेगे।

भागवत पुराण की रचना का उद्देश्य, जैसा कि स्वय भागवतकार ने लिखा है, यह है कि जब व्यास जी ने देखा कि महाभारत मे नैष्कर्म्य-प्रधान धम का जो निरूपण किया गया है, उसमे भक्ति का यथावत् वणन नही है तो उनका मन उदास हुआ और उन्होने नारद की प्रेरणा से भागवत की रचना की।[1] इसलिये इस उक्ति से श्रीमद्भागवत भक्ति प्रधान ग्रन्थ ठहरता है। नारद पाचरात्र मे भी भक्ति का प्राधान्य है और उसमे भागवत, ब्रह्मवैवत पुराण, विष्णु पुराण तथा गीतादि ग्रन्थो का उल्लेख है। नारद सूत्र और शाण्डिल्य सूत्र बहुत बाद की रचनाएँ है 'पाँचरात्र सहिताएँ' सिद्धान्त और आचरण दोनो पर बल देती है पर उनमे क्रिया-पक्ष की ही प्रधानता है। इसलिए भागवत को ही भागवत धर्म का सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ कहा गया है। भागवत के मगलाचरण के प्रथम तीन श्लोको मे यह सकेत है कि श्रीमद्-भागवत वेदान्ताथ तथा ब्रह्म सूत्रो का भाष्य है। पहले श्लोक मे 'सत्य पर धीमहि' कहागया है अर्थात् भागवतकार ग्रन्थ रचना के पहले भगवान के उस सत्य स्वरूप का ध्यान करते हैं, जिससे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय होती है क्योकि वह सभी सद्रूप पदार्थो मे अनुगत है और सभी असत् पदार्थो से पृथक है। वह जड नही चेतन है, परतत्र नही स्वय प्रकाश है, जो ब्रह्म तथा हिरण्यगभ नही प्रत्युत उन्हे अपने सकल्प से ही जिसने वेदज्ञान दिया है, जिसके सम्बन्ध मे बडे-बडे विद्वान् भी मोहित हो जाते है। जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियो मे जल का, जल मे स्थल का और स्थल मे जल का भ्रम होता है वैसे ही जिसमे यह त्रिगुणमयी जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत हो रही है और जो अपनी स्वय प्रकाश ज्योति से सवदा माया और माया कार्य से मुक्त है।

फिर दूसरे श्लोक मे कहा गया है कि इस भागवत महापुराण मे मोक्षपयन्त फल की कामना से रहित परम धम का निरूपण हुआ है। तीसरे श्लोक मे कहा गया है कि यह

१ श्रीमद्भागवत प्रथमस्कध अध्याय ४—५

श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। श्रीशुकदेव रूपी शुक (तोते) के मुख का सम्बन्ध हो जाने से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण हो गया है। इसमे छिलका गुठली आदि त्याज्य अश तनिक भी नही है। यह मूर्तिमान् रस है। जब तक शरीर मे चेतना रहे, तब तक इस दिव्य भागवत रस का निरन्तर पान करते रहो। इन तीनो श्लोको मे ही भागवत का तत्त्व आ गया है। इसलिए इस ग्रन्थ को समस्त श्रुतियो का सार कहा गया है। आचाय वल्लभ ने भागवत की समाधि भाषा को वेद, ब्रह्मसूत्र और गीता की भाति ही प्रामाणिक माना है। भागवत मे ही भागवत का प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार कहा गया है। इसके आदि मध्य और अन्त मे वैराग्य उत्पन्न करने वाली बहुत सी कथाएँ है उनके सेवन से सत्पुरुषो और देवताओ को बडा आनन्द मिलता है। यह समस्त उपनिषदो का सार है। यह ब्रह्म और आत्मा का एकत्व प्रतिपादक ग्रन्थ है। यही श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माण का प्रयोजन है एकमात्र कैवल्य मोक्ष।[1] फिर आगे कहा गया है कि जो इस वेदान्त सार रूप भागवत के रस से तृप्त हो जाता है, वह फिर और कही नही रम सकता।

श्रीमद्भागवत की प्रतिपादन शैली पक्षपात शून्य है। यही कारण है कि स्कन्दपुराण, गरुडपुराण आदि मे भागवत की बडी प्रशसा की गई है। पाचरात्र निबन्धो मे भी भागवत का बडा मान देखा जाता है। नारद पाचरात्र मे भागवत की बडी प्रशसा की गई है।[2] सात्वत तत्र के द्वितीय पटल मे भगवदवतारो का परिगणन करते हुए शुकावतार का प्रयोजन यही बताया गया है कि वह वेदो के सार भूत भागवत तत्त्व को सुनाएँगे, जिससे कलियुग के व्यक्ति भी शान्ति प्राप्त कर सकेंगे। सम्भवत इसलिए वल्लभाचाय ने अपने 'तत्त्वदीप निबन्ध' मे लिखा है—

वेदा श्रीकृष्णवाक्यानि, व्याससूत्राणि चैव हि।
समाधि भाषा व्यासस्य, प्रमाण तच्चतुष्टयम्॥

अर्थात् "वेद, गीता ब्रह्मसूत्र और भागवत यह प्रमाण चतुष्टय है।"

ग्रन्थ के उपक्रम, उपसहार, अभ्यास, अपूवता, फल, अथवाद और उपपत्ति का विवेचन करने से यही निर्णय होता है कि ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित परब्रह्म स्वरूप नैष्कर्म्य का आविष्कार करने के लिए ही श्रीमद्भागवत का प्रकाश हुआ है। भागवत मे शुकदेव ने परीक्षित् से ब्रह्म स्वरूप मे स्थित होने का आदेश दिया है—'तुम इस प्रकार चिन्तन करो कि मै सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मै ही हूँ। इस प्रकार तुम अपने आप को अपने वास्तविक एकरस अनन्त, अखण्ड, स्वरूप मे स्थिर करलो। उस समय अपनी विषैली जीभ लपलपाते हुए और तुम्हारे पैरो को डसते हुए तक्षक की भी तुम्हे कोई परवाह नही होगी। तुम इस शरीर को तो क्या सारे विश्व को भी अपने से पृथक् न देखोगे।"[3] इसके अनन्तर परीक्षित् कहते है कि "आपके उपदेश से मेरा अज्ञान नष्ट होगया है और आपने मुझे भगवान् के परम कल्याणमय स्वरूप का दशन करा दिया है[4] इस प्रकार

१ श्रीमद्भागवत स्कन्ध १२, अध्याय १३ श्लोक ११, १२

२ नारद पाचरात्र, ज्ञानामृतसार सहिता, द्वितीय रात्र, अध्याय ७

३ भागवत १२ स्कध, अ० ५, श्लोक ११, १२

४ भागवत १२ स्कध अ० ६ श्लोक ७

भागवत श्रवण के अनन्तर परीक्षित् ब्रह्मभूत महायोगी, नि सग और छिन्न-भिन्न सशय हो जाते हैं। भागवत मे इस परम तत्त्व का नाम कही परमात्मा और कही श्रीकृष्ण रूप मे अविकारी अपने भावानुरूप ग्रहण कर लेता है। हम पहले कह चुके है कि भागवत श्रौत ग्रथ का प्रतिपादक ग्रथ है और जिस प्रकार श्रुतियो के यज्ञादि अथ होते है उसी प्रकार श्रीमद्भागवत के भी तीन अथ होते है। श्रीमद्भागवत की टीकाओ का उल्लेख हम पहले कर चुके है। हम कह आए है कि श्रीमद्भागवत एक महापुराण है और उसमे भगवान् के विविध रूपो का वणन हुआ है। भागवत के अनुसार यह पुराण ब्राह्म कल्प के आरभ मे स्वय भगवान् ने ब्रह्मा जी को सुनाया था। ब्रह्मा जो ने इस दस लक्षण वाले पुराण को नारद के प्रति कहा। नारद ने व्यास को सुनाया और व्यास ने अपने पुत्र शुकदेव को सुनाया। अन्त मे शुकदेव ने राजा परीक्षित् के प्रति कहा। प्रस्तुत भागवत शुकदेव और परीक्षित् का सवाद है। शुकदेव ने कहा है कि—इस भागवत पुराण मे, सग, विसग, स्थान, पोषण ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय इन दस विषयो का वणन है। इनमे जो दसवाँ आश्रयतत्त्व है उसी का ठीक ठीक निश्चय करने के लिए कही श्रुति से कही तात्पय से और कही दोनो के अनुकूल अनुभव से महात्माओ ने अन्य नौ विषयो का बडी सुगम रीति से वर्णन किया है। इस प्रकार ईश्वर जीव जगत् और माया इन सबकी विस्तृत व्याख्या श्रीमद्भागवत मे हो गई है। अब हम सक्षेप से इन दस विषयो का वणन करते है।

भागवत में सर्ग विसर्गादि के लक्षण

१—सग—ईश्वर की प्रेरणा से गुणो मे क्षोभ होकर रूपान्तर होने से जो आकाशादि पचभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ अहकार और महत्तत्त्व की उत्पत्ति होती है। इसको 'सग' कहते है। 'सग' का अथ है 'सृष्टि' जिसका वणन श्रीमद्भागवत मे कई रूपो मे आया है। द्वितीय स्कन्ध के पाँचवे अध्याय मे भागवतकार ने सृष्टि का वणन किया है। वहाँ भगवत्तत्व को प्रधानता देते हुआ लिखा है कि ब्रह्म नारायण की दृष्टि से प्रेरित होकर सृष्टि रचना करते है। माया के गुणो से रहित श्रीभगवान् को रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण, द्रव्य ज्ञान और क्रिया का आश्रय लेकर सृष्टि स्थिति और प्रलय के लिए कर्त्तापन के अभिमान से बाँध लेते है। मायापति भगवान् के एक से बहुत होने की इच्छा करने पर अपनी माया से अपने स्वरूप मे स्वय प्राप्त काल-स्वभाव को स्वीकार कर लेते है। भगवान् की शक्ति से ही काल ने तीनो गुणो मे क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभाव ने उन्हे रूपान्तर दे दिया और कर्म ने महत्तत्त्व को जन्म दिया। रजोगुण और तमोगुण की वृद्धि का जो विकार हुआ उससे ज्ञान क्रिया और द्रव्यरूप तम प्रधान विकार हुआ वह अहकार कहलाया। विकार को प्राप्त हो यह अहकार तीन प्रकार का होगया—वैकारिक, तैजस और तामस। यह क्रम से ज्ञान-शक्ति, क्रिया-शक्ति और द्रव्यशक्ति प्रधान है। तामस अहकार मे विकार होने से आकाश, आकाश मे विकार होने से जल और जल मे विकार होने से पृथ्वी उत्पन्न हुई। वैकारिक अहकार से मन की और इन्द्रियो के दस अधिष्ठातृ देवताओ की उत्पत्ति हुई। दिशा, वायु सूय, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। तेजस अहकार के विकारो से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुई और ज्ञान-शक्ति रूप बुद्धि और क्रिया शक्ति रूपी प्राण भी उत्पन्न हुए। फिर भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर ये तत्त्व एक दूसरे से मिलगए और कायकारण भाव स्वीकार करके इन्होने व्यष्टि समष्टि रूपपिण्ड ब्रह्माण्ड की रचना की।

उसी ब्रह्माण्ड रूप अण्डे से विराट् पुरुष की उत्पत्ति हुई। इस विराट् पुरुष की कल्पना भागवतकार ने बडा सुन्दर रूप बाधकर प्रस्तुत की है और विराट् पुरुष की सारी विभूतियो का वर्णन किया है।[1] सूत्ररूप से सृष्टि की उत्पत्ति का यही प्रकार भागवत मे है। सृष्टि के क्रम का विस्तार भी दिया गया है।[2]

सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे वेदो, उपनिषदो, दर्शन तथा पुराणो मे अनेक प्रकार की प्रक्रियाएँ मिलती है। परन्तु इस विषय मे तीन मत बहुत प्रसिद्ध हे—आरम्भवाद, विवर्तवाद और परिणामवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनो मे परिणामवाद स्वीकार किया गया है। परिणामवाद मानने वाले कई आचार्य है, जिन्होने इसको कई रूपो मे स्वीकार किया है। मध्वाचार्य परमात्मा से प्रकृति को सर्वथा भिन्न मानते है इसलिए ये प्रकृति को ही जगत् का कारण मानते है। रामानुजाचार्य प्रकृति, जीव और ईश्वर इन तत्त्वो को मानते हुए भी सबको ब्रह्म ही कहते है। इसलिए उनके मत से ब्रह्म ही अंश विशेष मे प्रकृति रूप मे परिणत हो जाता है और वही जगत् बनता है। शंकर ने विवर्तवाद माना है सत्य वस्तु मे वास्तविक परिवर्तन को परिणाम कहते है और अवास्तविक होने पर भी भ्रम से दीख पडने वाले परिवर्तन को विवर्त्त कहते है। इसी विवर्त्त को माया कहते है, जो वास्तव मे कोई तत्त्व नही। उनके सिद्धान्त मे सृष्टि आदि का वर्णन अध्यारोप दृष्टि से अपवाद के द्वारा परम तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके उसी स्वरूप मे स्थित होने के लिए है।

श्रीमद्भागवत मे इन तीनो ही वादो की संगति लगाई जा सकती है। अव्यक्त से व्यक्त होना, एक से अनेक होना, निराकार से साकार होना, सूक्ष्म का स्थूल होना सृष्टि है। यह परिणाम प्रकृति का है। भागवत मे अनेक स्थानो पर माया और प्रकृति को एकार्थक बताया गया है। अनेक स्थलो पर भगवान् की इच्छा को ही प्रकृति कहा है। प्रकृति जीव और विविध कार्यो के रूप मे स्वयं भगवान् ही प्रकट होते है। उसमे प्रविष्ट न होने पर भी प्रविष्ट से प्रतीत होते है। वे स्वयं ही अपने आप को अपने आप में अपने आप से ही सृष्ट करते है। वे ही स्रष्टा, सृष्टि और सृज्य है। उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नही। दीख पडने वाली विभिन्नता मायिक एवं असत् है। जैसे स्वप्न मे कुछ न होने पर भी बहुत कुछ दीखता है, वैसे ही दृश्य न होने पर भी दृश्यमान हो रहा है। इस प्रकार के अनेक वचन श्रीमद्भागवत मे मिलते है। इससे जान पडता है कि सभी प्रकार के सृष्टिक्रम भागवत को अभिमत है। भागवत मे परमाणुओ के संयोग से ही सृष्टि का वर्णन मिलता है।[3] एक स्थान पर शुकदेव कहते हे कि श्रुतियाँ स्पष्ट रूप से सगुण का ही निरूपण करती है, परन्तु विचार करने पर उनका तात्पर्य निर्गुण ही निकलता है। भगवान् ने जीवो के लिए बुद्धि इन्द्रिय मन और प्राणो की सृष्टि की है। इनके द्वारा वे स्वेच्छा से अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष का अर्जन कर सकते हे।[4] अर्थात् प्राणो के द्वारा जीवन धारण, श्रवण आदि इन्द्रियो द्वारा महावाक्य आदि का श्रवण, मन के द्वारा मनन और बुद्धि के द्वारा निश्चय करने पर श्रुतियो के तात्पर्य निर्गुण स्वरूप का साक्षात्कार हो सकता हे। इसलिए करुणा सागर भगवान् अज्ञान की निद्रा मे सोते हुए जीवो को पुरुषार्थ के लिए और मोक्ष के लिए

१ भागवत द्वितीयस्कन्ध, अध्याय ६

२ ,, तृतीय स्कन्ध, अ० ५, १०, २६

३ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अध्याय ११

४ श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० अध्याय ८७, श्लोक २

जगाते है। भाव की दृष्टि से सृष्टि की उत्पत्ति रमण करने के लिए है। जैसा कि श्रुति मे कहा है—

"स एकाकी नारमत ततो द्वितीयमसृजत् स र तुमैच्छत्" अर्थात् "उसे अकेला अच्छा नही लगा। इसलिए उसने दूसरे की सृष्टि की, क्योकि वह रमण करना चाहता था।"

ज्ञान-दृष्टि से भी सृष्टि की उत्पत्ति बताई गई है। अर्थात् यह प्रतीतिमात्र प्रतिक्षण अपने भावाभाव के साक्षी चिन्मात्र अधिष्ठान का बोध कराया करता है। विभिन्न कल्पो के भेद से भी सृष्टि वर्णन मे भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार सृष्टि का यह विषय बडा व्यापक है।

२—**विसर्ग**—विसर्ग का लक्षण भागवतकार ने यह दिया है कि उस विराट् पुरुष से उत्पन्न ब्रह्मा जी द्वारा जोकि भिन्न चराचर सृष्टियो का निर्माण होता है उसका नाम 'विसर्ग' है अर्थात् प्रकृति के गुण वैषम्य से जो विराट सृष्टि होती है उसका नाम तो 'सर्ग' है तथा विराट के अण्ड मे ब्रह्मा के द्वारा जो व्यष्टि सृष्टि अथवा विविध सृष्टि होती है, उसका नाम 'विसर्ग' है। यह विसर्ग सृष्टि ब्रह्मा की मानसिक सृष्टि होती है। श्रीमद्भागवत मे ब्रह्मा की इस मानसिक सृष्टि का भी बडा विस्तृत वर्णन है। पहले तो द्वितीय-स्कन्ध के दशम अध्याय मे भागवतकार ने विराट पुरुष के स्थूल रूप का वर्णन किया है जो बाह्य रूप से पाँचो तत्त्व, अहकार, महत्तत्त्व और प्रकृति इन आठ आवरणो से घिरा हुआ है। वास्तव मे भगवान् के स्थूल और सूक्ष्म व्यक्त और अव्यक्त रूप माया रचित है। अत विद्वान् पुरुष इन दोनो ही रूपो को स्वीकार नही करते। भागवत मे उन दस प्रकार की सृष्टियो का वर्णन है जिसके कर्त्ता ब्रह्मा है।[1] फिर आगे वश और मन्वन्तरादि का काल विभाग वर्णित है और यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि भगवान् हरि ही ब्रह्मा के रूप से प्रत्येक कल्प के आदि मे रजोगुण से व्याप्त होकर स्वय ही जगत् के रूप मे अपनी रचना करते है। उसी स्कन्ध मे महदादि विभिन्न तत्त्वो की उत्पत्ति बताई गई है जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य कारण रूप है तथा स्वय निर्विशेष होकर भी समस्त विशेष धर्मो का आश्रय है। उस प्रधान नामक तत्त्व को ही प्रकृति कहते है। पाँच महाभूत, पाच तन्मात्राएँ, चार अन्त करण और दस इन्द्रियाँ इन चौबीस तत्त्वो के समूह को विद्वान् प्रकृति का कार्य मानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाच महाभूत है। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँच तन्मात्राएँ है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाद, उपस्थ और वायु ये दस इन्द्रिया है। मन, बुद्धि, चित्त और अहकार इन चार के रूप मे एक ही अन्त करण अपनी सकल्प, निश्चय चिन्ता और अभिमान रूपा चार प्रकार की वृत्तियो से लक्षित होता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषो ने सगुण ब्रह्म के सन्निवेश स्थान इन चौबीस तत्त्वो की सख्या बताई है। इसके बाद 'काल' को पच्चीसवाँ तत्त्व माना गया है। कुछ लोग काल को पुरुष से भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुष का प्रभाव अर्थात् ईश्वर की सहारकारिणी शक्ति कहते हैं। इस प्रकार जो अपनी माया के द्वारा सब प्राणियो के भीतर जीवरूप से और बाहर कालरूप से व्याप्त है, वे भगवान् पच्चीसवे तत्त्व है।

ब्रह्मा की इस मानसिक सृष्टि का वर्णन श्रुतियो मे महाभारत मे तथा पुराणो मे भी आया है। मनुस्मृति मे भी मानसिक सृष्टि का वर्णन है। यह 'विसर्ग' भगवान् के सर्वोत्कृष्ट

१ श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३, अध्याय १०

ज्ञान सर्वोत्कृष्ट शक्ति और सर्वोत्कृष्ट क्रिया का बोधक है। श्रीमद्भागवत मे इस तत्त्व का वर्णन इसलिए हुआ है कि लोग इसके द्वारा आश्रयभूत भगवान् को ढूँढ निकाले और प्राप्त करे।

३—स्थान—स्थान का लक्षण भागवत मे 'स्थितिर्वैकुण्ठविजय'[1] कहकर बताया गया है। तात्पर्य है कि प्रतिपद नाश की ओर बढने वाली सृष्टि को मर्यादा मे स्थिर रखने से भगवान् विष्णु की जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम स्थान है। सृष्टि वर्णन के पश्चात् उसकी स्थिति का वर्णन होना चाहिये। अर्थात् एक ब्रह्माण्ड मे कितने लोक, उनमे कौन-कौनसी मर्यादाये है, लोको का विस्तार कितना है और उनका धारण किस प्रकार होता है। इत्यादि बाते 'स्थान' प्रकरण मे आती है। भागवत के पाँचवे स्कन्ध के चौबीसवें अध्याय मे इन लोको का वर्णन है। यहा ऋषियो ने अनेक वर्षो तक योग साधना करके विशिष्ट शक्ति सम्पन्न होकर सूक्ष्म तत्त्वो और स्थानो का अनुभव प्राप्त किया था। उन्होने समाहित बुद्धि से उनका नामकरण भी किया है। जम्बू द्वीप' के नव वर्षों मे से एक 'भारतवष' है। ब्रह्माण्ड मे चौदह लोक है। उनमे भूर्लोक भी एक है जिसमे सात द्वीप हैं जिनमे एक जम्बू द्वीप है। पाँचवे स्कन्ध के उन्नीसवे अध्याय मे भारतवष का वर्णन है। विष्णु पुराण और मत्स्य पुराण मे भी इनका बडे विस्तार के साथ वर्णन हुआ है। भागवत मे तीन प्रकार की स्थितियो का वर्णन है। पृथ्वी लोक की स्थिति, ऊध्व लोक की स्थिति और अधोलोक की स्थिति पृथ्वी लोक मे चार प्रकार के स्थान है। मनुष्य लोक, नर लोक, प्रेत लोक और पितृ लोक। मनुष्य लोक मे चार प्रकार के शरीर है। उद्भिज्ज स्वेदज, अण्डज, और जरायुज। इस प्रकार भागवत मे लोक-लोकान्तर का वर्णन करके उस सव नियन्ता परमेश्वर की शक्ति का वर्णन किया गया है।

पोषण—

पोषण का लक्षण बताते हुए भागवत कार ने कहा है—"पोषण तदनुग्रह"[2] अर्थात् अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टि मे भक्तो पर भगवान् को जो कृपा होती है, उसका नाम 'अनुग्रह' है। श्रीमद्भागवत मे भगवान् के अनुग्रह की अनेक कथाये है। वास्तव मे यह तत्त्व श्रीमद्भागवत मे उतना ही व्याप्त है, जितना 'आश्रय' तत्त्व। परन्तु फिर भी जिस प्रकार अन्य तत्वो का भागवत मे वैज्ञानिक रूप से विभाजत है उसी प्रकार पोषण तत्त्व भागवत के छठे स्कन्ध मे विशेष रूप से कहा गया है। हम पीछे दिखा चुके है कि पचम स्कन्ध मे 'स्थान तत्त्व' का विवेचन हे। इसलिए उस क्रम से छठे स्कन्ध मे 'पोषण' का विशेष रूप से विवेचन हे। इस स्कन्ध मे मनुष्य देवता और दैत्य तीनो पर ही भगवान् के अहैतुक अनुग्रह का दिग्दशन कराया गया है। यहा परीक्षित् शुकदेव से पूछते है कि हे महाभाग! अब मे वह उपाय जानना चाहता हूँ जिसके अनुष्ठान से मनुष्य को अनेकानेक भयकर यातनाओ से पूरा नरक मे न जाना पडे।[3] शुकदेव जी ने परीक्षित् को यही कहा है कि भगवान् की शरण मे रहने वाले भक्त जन विरले ही होते है। केवल भक्ति के द्वारा वे अपने सारे पापो को इस प्रकार भस्म कर देते है जैसे सूय कुहरे को। पापी आदमी

१ श्रीमद्भाग० स्क० २ अध्या० १० श्लोक ४
२ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अध्याय १० श्लोक ४
३ ,, ,, षष्ठ स्क० ,, १ श्लो० ६

की जैसी शुद्धि भगवान् को आत्म समपरण करने और उनके भक्तो का सेवन करने से होती है, वैसी तपस्या आदि के द्वारा नही होती। जगत् मे भक्ति का यह पथ ही सब श्रेष्ठ, भय-रहित, और कल्याणमय है। इस माग पर भगवत्परायण सुशील साधु जन चलते है।[1] भागवत के इस स्कन्ध मे भगवान् के अनुग्रह का बडा व्यापक और विशद विवेचन है। इस स्कन्ध की विशेषता यह है कि इसमे मनुष्य, देव, और दैत्य सभी पर भगवान् के अनुग्रह को प्रदर्शित किया गया है। मनुष्यो मे 'अजामिल' का आख्यान हे। अजामिल जैसे पापी ने मृत्यु के समय पुत्र के बहाने भगवान् का स्मरण किया और उसे बैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई। इसलिए शुकदेव परीक्षित् से कहते है कि बडे बडे पापो का सर्वोत्तम और अन्तिम तथा पाप वासनाओ को भी निमूल कर डालने वाला प्रायश्चित यही है कि केवल भगवान् के गुणो और नामो का कीतन किया जाय। इसी से ससार का कल्याण हो सकता है।[2] इसी प्रकार भगवान् ने देवताओ मे इन्द्र पर अनुग्रह किया है। जब ब्रह्म-हत्या ने देवराज इन्द्र का पीछा किया और वे उसके भय से दिशाओ और आकाश मे भागते फिरे तब अन्त मे सत्य के परम पोषक भगवान् का ध्यान करने से उनके पाप नष्ट हुए। दैत्यो मे वृत्रासुर पर भी इसी प्रकार भगवान् ने अनुग्रह किया। वृत्रासुर ने भगवान् का प्रत्यक्ष अनुभव किया और भगवान् की प्राथना की है।[3] इसी प्राथना को आधार मानकर पुष्टि सम्प्रदाय वालो ने अपनी पुष्टि भक्ति का प्रासाद खडा किया है जिसका विवेचन हम आगे करेगे।

५—ऊति—पोषण के वणन के अनन्तर स्वभावत यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब भगवान् का अनुग्रह देव दनुज और मानवो के कष्ट दूर करने वाला है तथा 'अहैतुक' है तो ससार के जीव इस दुख पारावार मे क्यो डूबते उतराते रहते है। इसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए भागवत मे 'ऊति' का वणन हुआ है। "ऊतय कमवासना"[4] अर्थात् जीव की वे वासनाये जो काय के द्वारा उसे बन्धन मे डाल देती है, 'ऊति' नाम से ही कही जाती है। कम बन्धन के कारण ही जीव भगवान् को भूल जाता है। वासना दो प्रकार की होती है, शुभ और अशुभ। श्रीमद्भागवत के ७ वे स्कन्ध मे इन वासनाओ का बडे विस्तार से वणन है। इस स्कन्ध के छठे अध्याय मे प्रह्लाद ने असुर बालको को जो उपदेश दिया है, उसका सार यही है कि आसक्ति ही हमारे बन्धन का कारण है और वासना ही हमारे गले की रस्सी है। समपण ही सबसे बडी उपासना है। वासनाओ के चक्कर मे पडा हुआ मनुष्य विभिन्न योनियो मे भ्रमता है। हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद के उपाख्यानो से इस सम्बन्ध मे यही सिद्ध किया गया है। फिर उनमे मानव धम, वण धम और स्त्री धम का विवेचन करके अन्त मे मोक्ष धम का निरूपण किया गया है जिसका भाव यही है कि आसक्ति और वासनाओ का त्याग ही सच्ची मुक्ति है।

६—मन्वन्तर—"मन्वन्तराणि सद्धम[5] अर्थात् मन्वन्तरो के अधिपति जो भगवद्-भक्ति और प्रजा पालन रूप शुद्ध धम का अनुष्ठान करते है, उसे मन्वन्तर कहते है।

१ श्रीमद्भागवत स्क० ६ अध्या० १ श्लो० १५, १६, १७
२ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ३ ,, ३१, ३२
३ ,, ,, ,, ,, ,, ,, ११
४ ,, ,, स्कध २ ,, १० श्लो० ४
५ श्रीमद्भागवत स्क० २ अ० १० श्लो० ४

मन्वन्तर वास्तव मे एक काल परिमाण है। मनुष्य वर्षो के हिसाब से ४३२०००० वर्षा की एक चतुर्युगी होती है और ७१ चतुयुगियो का एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरो का एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्मा का एक दिन है और इतनी ही बडी ब्रह्मा की एक रात्रि होती है। इसी हिसाब से जब ब्रह्मा के १०० वष हो जाते है तो उनकी आयु पूरा हो जाती है। ब्रह्मा के एक दिन मे १४ मनु बदल जाते है। वतमान श्वेत वाराह कल्प मे स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामक छ मनु व्यतीत हो चुके है। वतमान मनु सातवे 'वैवस्वत मनु' है। इनके बाद सात मनु और होगे जिनके नाम है—सावर्णि, दक्ष सावर्णि, ब्रह्म सावर्णि, धम सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि और इन्द्र सावर्णि। प्रत्येक मनु के समय मे विशेष देवता, उनके पुत्र इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान् के अवतार हुआ करते है। इन सब का वर्णन भागवत मे बडे विस्तार के साथ किया गया है। अष्टम स्कन्ध मे इन मन्वन्तरो का विशेष वर्णन है। मन्वन्तरो की गणना को वैज्ञानिक बताया गया है। 'शतपथ ब्राह्मण' मे भी इस गणना का उल्लेख है और विभिन्न पुराणो मे भी यही गणना मिलती है।

७—ईशानुकथा—"अवतारानुचरित हरेश्चास्यानुवर्तिनाम्। सतामीशकथा प्रोक्ता नानास्थानोपबृंहिता।"[1] अर्थात्—भगवान् के विभिन्न अवतारो और उनके प्रेमीभक्तो के विविध आख्यानो से युक्त कथाएँ 'ईशानुकथा' कहलाती है। इस सृष्टि का प्रवाह परम्परा से सतत् प्रवहमान जीवो को ऊपर उठने के लिए भगवान् का आश्रय ही एकमात्र साधन है। इसलिए भागवत मे ईशानुकथा का विशेष वर्णन है। भागवत के प्रथम स्कन्ध मे कुन्ती की स्तुति मे भगवान् के अवतार के अनेक कारण और उसके समथन मे अनेक युक्तियाँ दी गई है। स्थान-स्थान पर अवतारो की सूची, उनके चरित और महिमा का वर्णन किया गया है, जिनके श्रवण से अन्त करण शुद्ध होता है और हृदय भगवन्मय हो जाता है। भागवत के नवम स्कन्ध मे भगवान् और उनके भक्तो की कथाएँ विशेष रूप से दी गई है। वैसे भागवत मे स्थान-स्थान पर भक्तो के चरित्र दिए हुए है।

८—निरोध—"निरोधोऽस्यानुशयनमात्मन सहशक्तिभि।"[2] अर्थात् जब भगवान् योग निद्रा स्वीकार करके शयन करते है तब इस जीव का अपनी उपाधियो सहित उनमे लीन हो जाना निरोध कहलाता है। परमात्मा के अतिरिक्त जो कुछ स्थावर और जगमात्मक जगत् दृश्यमान है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार लेकर भगवान् उसकी विपरीत गति का निरोध तो करते ही रहते है, परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ जाता है तब भगवान् नवीन रूप से सात्त्विक सृष्टि करने के लिए जगत् का प्रलय किया करते है। भागवत मे प्रलय का विस्तार से वर्णन किया गया है।[3] प्रलय चार प्रकार का होता है। नित्य नैमित्तिक प्राकृत और आत्यन्तिक। नित्य प्रलय के दो अथ है, एक तो ससार मे जो नित्य क्षय हो रहा है, वह नित्य प्रलय है और दूसरा जब नित्य प्रति निद्रा के समय सारी सृष्टि अज्ञान मे विलीन हो जाती है। किसी भाव विशेष का अनुभव नही होता तो उसे नित्य प्रलय कहते है। नैमित्तिक प्रलय भी दो प्रकार का होता है—एक आशिक और दूसरा पूर्ण नैमित्तिक। एक मन्वन्तर समाप्त होने पर अथवा कभी-कभी भगवान् की इच्छा से मन्वन्तर के बीच मे ही जब समस्त पृथिवी

१ श्री मद्भागवत स्कध २, अ० १०, श्लोक ५
२ ,, ,, ,, ६
३ १२ अ० ४

जलमग्न हो जाती है और भूर्लोक, स्वर्लोक सब विच्छिन्न हो जाते है, परन्तु महर्लोक आदि ज्यो के त्यो बने रहते है तब आशिक प्रलय होता है। जब एक कल्प के अन्त मे ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर वे अपनी सष्टि को लेकर घोर निद्रा मे सो जाते है, तो पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। प्राकृत प्रलय मे ब्रह्मा की आयु पूर्ण हो जाती है और यह ब्रह्माण्ड सर्वथा प्रकृति मे विलीन हो जाता है। सृष्टि के समय रहने वाले लोको की कल्पना और स्थिति भी नही रहती तथा जिस अवस्था का तर्क के द्वारा अनुमान करना असम्भव है, उसी अवस्था का नाम प्राकृत प्रलय है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनो की शक्तियाँ काल के प्रभाव से क्षीण हो जाती है और विवश होकर अपने मूल रूप मे विलीन हो जाती है।

आत्यन्तिक प्रलय का कोई समय नही है। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवण मनन निदिध्यासन रूप अन्तरग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूप का ध्यान करता है, तभी ससार का आत्यतिक प्रलय हो जाता है। जब जीव विवेक के खड्ग से मायामय अहकार का बन्धन काट देता है तब यह अपने एक आत्म स्वरूप के साक्षात्कार मे स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यतिक प्रलय कही जाती है।

पुराणो के अतिरिक्त दर्शन मे भी प्रलय का अस्तित्व स्वीकृत किया गया है। प्राचीन नैयायिको ने खण्ड प्रलय और महाप्रलय नाम के दो प्रलय माने है। वे जन्म द्रव्य के अधिकरण मात्र के अभाव को खण्ड प्रलय कहते है और जन्म भाव के अधिकरण मात्र के अभाव को महा प्रलय कहते हैं। साख्यवादियो के अनुसार प्रकृत्ति मे दो प्रकार के परिणाम होते है। एक स्वरूप परिणाम दूसरा विरूप परिणाम। सत्त्व, रज, तम ये तीनो गुण जब स्वरूप मे स्थित होते है, अर्थात् सत्व सत्व मे, रज रज मे और तम तम मे, तब प्रलय हो जाता है और जब वे विकृत हो जाते है अर्थात् उनमे वैषम्य हो जाता है तब विरूप परिणाम के कारण सृष्टि उत्पन्न होती है।

९—मुक्ति—भागवतकार ने आत्यन्तिक प्रलय को मोक्ष का स्वरूप बतलाया है। जैसे प्रलय महाप्रलय स्वभाव से ही प्रकृति मे होते रहते है, वैसे आत्यन्तिक प्रलय नही होता। इसकी प्राप्ति भगवततत्व ज्ञान से अभिन्न भगवत्-प्रेम की प्राप्ति होने पर अथवा भगवत्प्रेम से अभिन्न भगवत्तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर ही मोक्ष मिल सकता है। सभी जीव एक साथ मुक्त नही हो सकते किन्तु मुक्त होने मे समय का व्यवधान भी नही है। वेदान्त की दृष्टि से मुक्ति केवल एक ही प्रकार की है—वह है कैवल्य मुक्ति जिसकी प्राप्ति अविद्या के नाश से ही सम्भव है। कारण यह है कि अविद्या ही अनेक प्रकार के नामो और रूपो को उत्पन्न करके उनकी कामना से भटकाने वाली है। अविद्या का नाश पराविद्या अथवा परम ज्ञान से हो सकता है। ज्ञान का उदय अन्त करण की शुद्धि से होता है। अन्त-करण की शुद्धि निष्काम कर्म उपासना आदि से होती है। मुक्ति का लक्षण भागवत मे इस प्रकार लिखा है —

मुक्तिर्हित्वान्यथा रूप स्वरूपेण व्यवस्थित ।[1] अर्थात् अज्ञान कल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्म भाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा मे स्थिर होना ही मुक्ति है। इसी को हम कैवल्य मुक्ति कह सकते है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे क्रम मुक्ति और सद्योमुक्ति का वर्णन है। सासारिक पदार्थो से विरक्त हो जाने पर अपने हृदय

१ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अ० १० श्लोक

मे विराजमान स्वत सिद्ध आत्म स्वरूप परम प्रियतम परम सत्य भगवान् का जब भक्त प्रेम और आनन्द से दृढ निश्चय करके भजन करता है तो जन्म मृत्यु के चक्कर मे डालने वाले अज्ञान का नाश हो जाता है।[1] और वह मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। श्रीमद्-भागवत मे पाच प्रकार की मुक्ति मानी गई है—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। भगवान् के नित्य चिन्मय धाम मे रहना सालोक्य मुक्ति है, उनके समान ऐश्वय प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है भगवान् के समीप रहना सामीप्य मुक्ति है। भगवान् के समान रूप प्राप्ति कर लेना सारूप्य और उनके चरणो मे समा जाना सायुज्य मुक्ति है। श्री मद्भागवत् मे इन पाचो प्रकार की मुक्तियो के अनेक उदाहरण है। परन्तु श्रीमद्भागवत मे मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। जो भगवान् के सच्चे प्रेमी है मुक्ति की इच्छा नही रखते। वे भगवान् के प्रेम को मुक्ति से ऊँचा मानते है।

न्याय और वशेषिक दशनो मे प्रमाण प्रमेय आदि षोडश द्रव्य अथवा द्रव्य गुण कम आदि सप्त पदार्थो के ज्ञान से एकविंशति प्रकार के दुखो का ध्वस होकर मुक्ति सिद्ध होती है। साँख्य दशन मे प्रकृति और पुरुष के विवेक से पुरुष का अपने असग रूप मे स्थिर हो जाना ही मुक्ति बताया गया है। योग दशन मे विवेक के साथ ही साथ मुक्ति के लिये समाधि की आवश्यकता भी स्वीकृत हुई है। भक्ति दशन मे भगवत्कृपा को ही मुक्ति का हेतु माना गया है। क्योकि भक्ति को अमृत रूप बताया है। पूव मीमासा दशन स्वर के अतिरिक्त और किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नही करता। श्री मद्भागवत मे इन सब शास्त्रो के सिद्धान्तो को अपनाया है केवल पूव मीमासा का मत ही नही के तुल्य है। इन सब शास्त्रो से परे भागवत मे एक और स्थिति बताई गई है जो वास्तविक मुक्ति है। वह स्थिति है 'निरपेक्ष स्थिति' अर्थात् साधक यह विचार ही नही करता कि कौनसी युक्ति वाछ-नीय है अथवा मुक्ति का क्या स्वरूप है।

१०—आश्रय तत्त्व—आभासश्च निरोधश्च यतश्चाव्यवसीयते।
स आश्रय परब्रह्म परमात्मेति शब्दचते॥
योऽध्यात्मिकोऽय पुरुष सोऽसावेवाधि दैविक।
यस्तत्रोभयविच्छेद पुरुषो ह्याधिभौतिक॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितय तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय॥[2]

अर्थात् इस चराचर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते है वह परब्रह्म ही आश्रय हे। शास्त्रो मे उसी को परमात्मा कहा हे। जो नेत्र आदि इन्द्रियो का अभिमानी द्रष्टा जीव है वही इन्द्रियो के अधिष्ठाता देवता सूर्यादि के रूप मे भी है और जो नेत्र गालक आदि से युक्त दृश्य देह है वही उन दोनो को अलग-अलग करता है। इन तीनो मे यदि एक का भी अभाव हो जाय तो दूसरे की उपलब्धि नही हो सकती। जो इन तीनो को जानता है वह परमात्मा ही सबका अधिष्ठान और आश्रय तत्त्व है।

भागवत मे नारायण को कृष्ण से निम्न कोटि का माना गया है। सृष्टि की उत्पत्ति का वणन करते हुए भागवतकार लिखते है—जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्ड को फोडकर निकला

१ श्रीमद्भाग॰ द्वितीय स्क॰ अध्याय २ श्लोक ६
२ श्रीमद्भागवत स्क॰ २ अ॰ १० श्लोक ७–८–९

जलमग्न हो जाती है और भूर्लोक, स्वर्लोक सब विच्छिन्न हो जाते है, परन्तु महर्लोक आदि ज्यो के त्यो बने रहते है तब आशिक प्रलय होता है। जब एक कल्प के अन्त मे ब्रह्मा का दिन पूरा होने पर वे अपनी सष्टि को लेकर घोर निद्रा मे सो जाते है, तो पूरा नैमित्तिक प्रलय होता है। प्राकृत प्रलय मे ब्रह्मा की आयु पूरा हो जाती हे और यह ब्रह्माण्ड सवथा प्रकृति मे विलीन हो जाता है। सृष्टि के समय रहने वाले लोको की कल्पना और स्थिति भी नही रहती तथा जिस अवस्था का तक के द्वारा अनुमान करना असम्भव है, उसी अवस्था का नाम प्राकृत प्रलय है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनो की शक्तिया काल के प्रभाव से क्षीरा हो जातो है और विवश होकर अपने मूल रूप मे विलीन हो जाती है।

आत्यन्तिक प्रलय का कोई समय नही है। साधन चतुष्टय सम्पन्न होकर श्रवरा मनन निदिध्यासन रूप अन्तरग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूप का ध्यान करता है, तभी ससार का आत्यतिक प्रलय हो जाता है। जब जीव विवेक के खडग से मायामय अहकार का बन्धन काट देता है तब यह अपने एक आत्म स्वरूप के साक्षात्कार मे स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यतिक प्रलय कही जाती है।

पुराणो के अतिरिक्त दशन मे भी प्रलय का अस्तित्व स्वीकृत किया गया है। प्राचीन नैयायिको ने खण्ड प्रलय और महाप्रलय नाम के दो प्रलय माने है। बे जन्म द्रव्य के अधिकरण मात्र के अभाव को खण्ड प्रलय कहते है और जन्म भाव के अधिकरण मात्र के अभाव को महा प्रलय कहते हैं। साख्यवादियो के अनुसार प्रकृत्ति मे दो प्रकार के परिणाम होते हैं। एक स्वरूप परिणाम दूसरा विरूप परिणाम। सत्त्व, रज, तम ये तीनो गुरा जब स्वरूप मे स्थित होते है, अर्थात् सत्व सत्व मे, रज रज मे और तम तम मे, तब प्रलय हो जाता है और जब वे विकृत हो जाते है अर्थात् उनमे वषम्य हो जाता है तब विरूप परिणाम के कारण सृष्टि उत्पन्न होती है।

६—**मुक्ति**—भागवतकार ने आत्यन्तिक प्रलय को मोक्ष का स्वरूप बतलाया है। जैसे प्रलय महाप्रलय स्वभाव से ही प्रकृति मे होते रहते है, वैसे आत्यन्तिक प्रलय नही होता। इसकी प्राप्ति भगवततत्व ज्ञान से अभिन्न भगवत्-प्रेम की प्राप्ति होने पर अथवा भगवत्प्रेम से अभिन्न भगवत्तत्त्व ज्ञान प्राप्त होने पर ही मोक्ष मिल सकता है। सभी जीव एक साथ मुक्त नही हो सकते किन्तु मुक्त होने मे समय का व्यवधान भी नही है। वेदान्त की दृष्टि से मुक्ति केवल एक ही प्रकार की है—वह है कैवल्य मुक्ति जिसकी प्राप्ति अविद्या के नाश से ही सम्भव है। कारण यह है कि अविद्या ही अनेक प्रकार के नामो और रूपो को उत्पन्न करके उनकी कामना से भटकाने वाली है। अविद्या का नाश पराविद्या अथवा परम ज्ञान से हो सकता है। ज्ञान का उदय अन्त करण की शुद्धि से होता है। अन्त-करण की शुद्धि निष्काम कम उपासना आदि से होती है। मुक्ति का लक्षरा भागवत मे इस प्रकार लिखा है —

मुक्तिर्हित्वान्यथा रूप स्वरूपेरा व्यवस्थित ।[1] अर्थात् अज्ञान कल्पित कतृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्म भाव का परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मा मे स्थिर होना ही मुक्ति है। इसी को हम कैवल्य मुक्ति कह सकते है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे क्रम-मुक्ति और सद्योमुक्ति का वरान है। सासारिक पदार्थो से विरक्त हो जाने पर अपने हृदय

१ श्रीमद्भाग० द्वितीय स्क० अ० १० श्लोक

मे विराजमान स्वत सिद्ध आत्म स्वरूप परम प्रियतम परम सत्य भगवान् का जब भक्त प्रेम और आनन्द से दृढ निश्चय करके भजन करता है तो जन्म मृत्यु के चक्कर मे डालने वाले अज्ञान का नाश हो जाता है।[१] और वह मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। श्रीमद्-भागवत मे पाँच प्रकार की मुक्ति मानी गई है—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। भगवान् के नित्य चिन्मय धाम मे रहना सालोक्य मुक्ति है, उनके समान ऐश्वय प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है भगवान् के समीप रहना सामीप्य मुक्ति है। भगवान् के समान रूप प्राप्ति कर लेना सारूप्य और उनके चरणो मे समा जाना सायुज्य मुक्ति है। श्री मद्भागवत् मे इन पाचो प्रकार की मुक्तियो के अनेक उदाहरण है। परन्तु श्रीमद्भागवत मे मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को प्रधानता दी गई है। जो भगवान् के सच्चे प्रेमी हे मुक्ति की इच्छा नही रखते। वे भगवान् के प्रेम को मुक्ति से ऊँचा मानते है।

न्याय और वशेषिक दशनो मे प्रमाण प्रमेय आदि षोडश द्रव्य अथवा द्रव्य गुण कम आदि सप्त पदार्थो के ज्ञान से एकविशति प्रकार के दुखो का ध्वस होकर मुक्ति सिद्ध होती है। साँख्य दशन मे प्रकृति और पुरुष के विवेक से पुरुष का अपने असग रूप मे स्थिर हो जाना ही मुक्ति बताया गया है। योग दशन मे विवेक के साथ ही साथ मुक्ति के लिये समाधि की आवश्यकता भी स्वीकृत हुई है। भक्ति दशन मे भगवत्कृपा को ही मुक्ति का हेतु माना गया है। क्योकि भक्ति को अमृत रूप बताया है। पूव मीमासा दशन स्वर के अतिरिक्त और किसी प्रकार की मुक्ति स्वीकार नही करता। श्री मद्भागवत मे इन सब शास्त्रो के सिद्धान्तो को अपनाया है केवल पूव मीमासा का मत ही नही के तुल्य है। इन सब शास्त्रो से परे भागवत मे एक और स्थिति बताई गई है जो वास्तविक मुक्ति हे। वह स्थिति है 'निरपेक्ष-स्थिति' अर्थात् साधक यह विचार ही नही करता कि कौनसी युक्ति वाछ-नीय है अथवा मुक्ति का क्या स्वरूप है।

१०—आश्रय तत्त्व—आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रय परब्रह्म परमात्मेति शब्दचते॥
योऽध्यात्मिकोऽय पुरुष सोऽसावेवाधि दैविक।
यस्तत्रोभयविच्छेद पुरुषो ह्याधिभौतिक॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितय तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रय॥[२]

अर्थात् इस चराचर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्व से प्रकाशित होते है वह परब्रह्म ही आश्रय है। शास्त्रो मे उसी को परमात्मा कहा हे। जो नेत्र आदि इन्द्रियो का अभिमानी द्रष्टा जीव है वही इन्द्रियो के अधिष्ठाता देवता सूयादि के रूप मे भी है और जो नेत्र गालक आदि से युक्त दृश्य देह है वही उन दोनो को अलग-अलग करता है। इन तीनो मे यदि एक का भी अभाव हो जाय तो दूसरे की उपलब्धि नही हो सकती। जो इन तीनो को जानता है वह परमात्मा ही सबका अधिष्ठान और आश्रय तत्त्व है।

भागवत मे नारायण को कृष्ण से निम्न कोटि का माना गया है। सृष्टि की उत्पत्ति का वणन करते हुए भागवतकार लिखते है—जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्ड को फोडकर निकला

१ श्रीमद्भाग॰ द्वितीय स्क॰ अध्याय २ श्लोक ६
२ श्रीमद्भागवत स्क॰ २ अ॰ १० श्लोक ७-८-९

तब वह अपने रहने का स्थान ढूँढने लगा और स्थान की इच्छा से उस शुद्ध सकल्प पुरुष ने अत्यन्त पवित्र जल की सृष्टि की। विराट् पुरुष रूप नर से उत्पन्न होने के कारण जल का नाम नार पडा और अपने उत्पन्न किए 'नार' मे वह पुरुष एक हजार वर्षों तक रहा इसी कारण उसका नाम नारायण हुआ।[1] श्री मद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय यही आश्रय-तत्त्व है। अन्य नौ विषयो का वरणन इसी की सिद्धि के लिये किया गया है। आश्रय शब्द का अर्थ जीवो के शरण लेने योग्य भगवान् अथवा व्यक्त, अव्यक्त आभास और निरोध का अधिष्ठान निरपेक्ष साक्षी ब्रह्म है। जैसाकि पहले कहा गया हे श्री मद्भागवत का उद्देश्य भक्ति मे भक्त को प्रतिष्ठित करना है तथा सर्ग विसर्ग आदि के वरणन द्वारा भगवान् की अनन्त महिमा तथा ब्रह्म की साक्षिता का बोध करा कर उसके स्वरूप मे स्थित कर देना है।

यो तो भागवत के प्रत्येक स्कन्ध मे आश्रय का निरूपण किया गया है तथापि सगुण साकार रूप आश्रय का दशम स्कन्ध मे, तथा निर्गुण निराकार आश्रय का १२ वे स्कन्ध मे विशेष निरूपण हुआ है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध के नवे अध्याय मे भागवान ने स्वय ब्रह्मा को अपने रूप का ज्ञान दिया है। जिन चार श्लोको मे स्वरूप का वरणन है उन्हे चतुःश्लोकी कहा जाता है ये श्लोक ३२, ३३, ३४, ३५ हे इनका सारांश यह है—

"सृष्टि के पूर्व केवल मै ही मै था। मेरे अतिरिक्त न स्थूल था और न सूक्ष्म और न इन दोनो का कारण अज्ञान। जहाँ पर सृष्टि नही हे वहा मे ही मे हूँ और इस सृष्टि के रूप मे जो कुछ प्रतीत हो रहा है वह भी मै ही हूँ और जो कुछ बच रहेगा वह भी मै ही हूँ ॥३२॥

वास्तव मे न होने पर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मा मे दो चन्द्रमाओ की तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है अथवा विद्यमान होने पर भी आकाश मण्डल के नक्षत्रो मे राहु की भांति जो मेरी प्रतीति नही होती उसे मेरी माया समझना चाहिये ॥३३॥

जैसे प्राणियो मे पञ्चभूत रचित छोटे छोटे शरीरो मे आकाशदि पच महाभूत उन शरीरो के कार्य रूप से निर्मित होने के कारण प्रवेश भी करते है और पहले से ही उन स्थानो और रूपो मे कारण रूप से विराजमान रहने के कारण प्रवेश भी नही करते वैसे ही उन प्राणियो के शरीर की दृष्टि से मै उनमे आत्मा के रूप से प्रवेश किये हुए हूँ और आत्म दृष्टि से अपने अतिरिक्त कोई वस्तु न होने के कारण उनमे प्रविष्ट नही भी हूँ ॥३४॥

"यह ब्रह्म नही, यह ब्रह्म नही, इस प्रकार निषेध की पद्धति से और 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार' इस अन्वय की पद्धति से यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एव सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित है, यही वास्तविक तत्त्व है, जो आत्मा और परमात्मा का तत्त्व जानना चाहते है उन्हे केवल इतना ही जानने की आवश्यकता है। ३५।

इसी आश्रय तत्त्व की विवेचना भागवत मे स्थान-स्थान पर हुई है। श्रीमद्भगवद्गीता मे जिस ब्रह्म का निरूपण हुआ है उसी का प्रतिपादन भागवत मे हुआ है। १२ वें स्कन्ध मे

१ श्रीमद्भागवत स्क० २, अध्याय १० श्लोक १०–११

इस तत्त्व की बडी विस्तृत विवेचना हुई है। इसी प्रकार ११वे स्कन्ध मे मुक्ति और बन्धन से परे जिस तत्त्व का उपदेश किया गया है वह यही तत्त्व है।

भागवत मे ब्रह्म के विषय मे तीन बातो को प्रधानता दी है —

१—अधिष्ठानता, २—साक्षिता, ३—निरनेक्षिता।

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक ये उस पुरुष के तीन रूप है। आध्यात्मिक पुरुष का अर्थ है नेत्रादि इन्द्रियो का अभिमानी जीव, आधिदैविक पुरुष का अर्थ है नेत्रादि इन्द्रियो का अधिष्ठातृदेवता और आधिभौतिक पुरुष का अर्थ है नेत्रगोलक आदि वाला स्थूल शरीर। ये तीनो सापेक्ष है। इन तीनो के भाव और अभाव को देखने वाला आत्मा इनका निरपेक्ष साक्षी है। जागृन, स्वप्न सुषुप्ति आदि अवस्थाओ मे विश्व तेजस तथा प्राज्ञ के रूप मे उनका अनुभव करने वाला एव मूर्च्छादि अवस्था मे उनके प्रभाव का अनुभव करने वाला और समाधि अवस्था मे उनसे परे रहने वाला आत्मा ही आश्रय है। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण और ब्रह्म को एक ही माना गया है। ब्रह्मसूत्र के ब्रह्म, गीता के पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत मे इस कृष्णरूप ब्रह्म के विषय मे लिखा है—

वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते॥[1]

अर्थात् तत्त्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द रूप ज्ञान को ही तत्त्व कहते हैं। उसको कोई 'ब्रह्म' कोई 'परमात्मा' नाम से पुकारते है। प्रथम स्कन्ध मे 'नारायण' 'वासुदेव' 'सात्वतपति' और 'कृष्ण' आदि सभी ब्रह्म के नाम आगए हे। भागवत के अनुसार भगवान् मे शरीर और शरीरी का भेद नही है। जीव अपने शरीर से पृथक् होता है। शरीर उसका ग्रहण किया हुआ है और वह उसे छोड सकता है। परन्तु भगवान् का शरीर जड नही चिन्मय होता है। उसमे हेय और उपादेय का भेद नही होता। वह सम्पूर्णत आत्मा ही है। शरीर की भाति भगवान् के गुण भी आत्मस्वरूप ही होते हे। जीवो के गुण तो प्राकृत होते है और वे उनका त्याग कर सकते है। भगवान् का शरीर और गुण जीवो की ही दृष्टि मे होते है, भगवान् की दृष्टि मे नही। भगवान् तो निज स्वरूप मे—समत्व मे स्थित रहते है क्योकि वहाँ गुण और गुणी का भेद नही। इस प्रकार श्रीकृष्ण ही परब्रह्म स्वरूप 'आश्रयतत्त्व' है।

श्रीमद्भागवत मे प्राय सभी दर्शनो का समन्वय और सामजस्य हो जाता है। यही कारण है कि भागवत सब सम्प्रदायो मे मान्य है।

माया

श्रीमद्भागवत मे 'माया' का वर्णन बडे विस्तार से किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति और विस्तार का वर्णन करते हुए भागवतकार ने स्थान-स्थान पर माया का उल्लेख किया है। परन्तु एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय मे माया का सविस्तार वर्णन है। राजा निमि ने भगवत्प्रेमी योगीश्वर अन्तरिक्ष जी से प्रश्न किया[2], हे भगवन्! मै विष्णु भगवान् की उस माया का स्वरूप जानना चाहता हूँ, जो बडे-बडे मायावियो को भी मोहित कर

१ श्रीमद्भागवत स्क० १, अध्याय २, श्लोक ११

२ श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय ३

देती है। इस पर योगीश्वर ने उत्तर दिया, 'हे राजन् भगवान् की माया स्वरूप से अनिर्वचनीय है इसलिए उसके कार्यो के द्वारा ही उसका निरूपण होता है। आदि पुरुष परमात्मा जिस शक्ति से सम्पूर्ण भूतो के कारण बनते हे, और उनके विषय भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासको की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पच भूतो के द्वारा देव, मनुष्य आदि नाना प्रकार के शरीरो की सृष्टि करते हे। उसी शक्ति को माया कहते है। इस प्रकार पच महाभूतो के द्वारा बने हुए प्राणि-शरीरो मे उन्होने अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किया और अपने को ही पहले एक मन के रूप मे ओर उसके बाद पाच ज्ञानेन्द्रिय और पाच कर्मेन्द्रिय इन दस रूपो मे विभक्त कर दिया तथा उन्ही के द्वारा विषयो का भोग कराने लगे। यह देहाभिमानी जीव अ तर्यामी के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियो के द्वारा विषयो का भोग करता है और पचभूतो के द्वारा निर्मित इस शरीर को आत्मा अपना स्वरूप मानकर उसी मे आसक्त हो जाता है। यही भगवान् की माया हे। भगवान् की इस माया का काय-क्रम वडो विस्तृत है। मनुष्यो के आवागमन मे यह कारण है। प्रलय भी इसी के कारण होता है। यह माया सृष्टि, स्थिति ओर सहार करने वाली त्रिगुण मयी है। इस प्रकार भागवत मे माया भगवान् की एक शक्ति के रूप मे कही गई हे। इसके सत् और असत् दोनो ही रूप है। भागवत मे वर्णित माया के स्वरूप मे दशनो मे दिये हुए सभी लक्षणो का समन्वय और सामजस्य हो जाता हे।

श्रीमद्भागवत की लीलाओ का आध्यात्मिक पक्ष तथा प्रतीकार्थ—

हम पहले कह चुके है कि श्रीमद्भागवत को प्राय सभी सम्प्रदायो ने आधार माना है और अपने अपने सिद्धान्तो के अनुकूल उसकी व्याख्या की है। भगवान् की त्रिविधात्मक शक्ति का स्रोत तो विष्णु-पुराण से लिखा गया है, परन्तु ब्रह्म के स्वरूपो का विस्तार और समन्वय श्रीमद्भागवत से ही लिया गया है। वैष्णव धम मे श्रीमद्भागवत को प्रामाणिक माना गया है। विशेषकर बगाल के सभी वैष्णव सम्प्रदाय भागवत को लेकर चले है। वेदान्त सूत्रो की व्यारया भी भागवत मे मानी जाती है। भक्ति का भी प्रधान स्रोत श्रीमद्भागवत है। इसलिए श्रीमद्भागवत की कृष्ण लीलाओ का दाशनिक रूप-दियाजाना स्वाभाविक ही है। भागवत की लीलाओ को लेकर चतन्य महाप्रभु के शिष्य वृन्दावन के गोस्वामियो ने बडे रूपक बाघे है। 'सनातन गोस्वामी' के 'वृहद् भागवतामृत' तथा 'रूप गोस्वामी' के लघु भागवतामृत मे कृष्ण लीलाओ के अध्यात्म पक्ष पर विचार किया गया है। लघु भागवतामृत मे अवतारो का बडा विशद विवेचन हे और रूप गोस्वामी ने कृष्ण को पूर्ण अवतार माना है। इसके पश्चात् इस ग्रन्थ मे कृष्ण लीलाओ को नित्य लीला माना गया है। 'जीव गोस्वामी' के श्रीकृष्ण सन्दभ मे इस विषय को विस्तार से कहा गया है। भगवान् की नित्य लीला प्रकट और अप्रकट दोनो रूपो मे रहती है। प्रकट लीला मे भगवान् भक्तो के सम्मुख प्रकट होते है। यह लीला भगवान् की शक्ति ही का काय है। प्रकट लीला मे भगवान् वृन्दावन, मथुरा और द्वारका मे विहार करते है। परन्तु नित्य लीला मे अपने नित्य धाम वृन्दावन मे रहते है। वृदावन मे उनका केवल द्विभुज रूप है और वह केवल अपनी शक्ति स्वरूप एक गोपी से विहार करते है। मथुरा मे वासुदेव हो जाते है। द्वारका मे उनके 'प्रद्युम्न' और 'अनिरुद्ध' रूप हो जाते है। वे यशोदा के नित्य पुत्र है और देवकी के पुत्र वे प्रकट लीला मे ही होते है। वृन्दावन से उनका वियोग

कभी नही होता। वृन्दावन उनका गोलोक है। इस प्रकार भागवत के उदाहरण दे देकर कृष्ण के पूर्णावतार होने की बात कही गई है। इसी प्रकार जीव गोस्वामी के सन्दर्भो मे कृष्णतत्व का विवेचन किया गया है। श्रीकृष्ण सन्दभ मे जीव गोस्वामी ने लीला के अध्यात्म-पक्ष पर बडे विस्तार के साथ विचार किया है तथा अनेक धम ग्रन्थो से उदाहरण देकर अपने मत की पुष्टि की है। लीला को दैवी शक्ति का ही एक स्वरूप बताया है और उसके 'प्राकृत' और 'अप्राकृत' दो भेद भी किये हे। श्रीमदभागवत से उद्धरण देकर लीला का नित्यत्त्व सिद्ध किया गया है। वृन्दावव से कृष्ण का वियोग केवल प्राकृत लीला मे है जा केवल स्थूल वियोग के रूप मे माना गया हे। सूक्ष्म रूप से प्राकृत लीला मे भी वृन्दावन से उनका नित्त्य सम्बन्ध है। प्राकृत लीला का यह नित्य सम्बन्ध दो प्रकार का बताया है, 'आविर्भाव' और 'अगति'। अप्राकृत लीला मे वृन्दावन से कृष्ण का नित्य सम्बन्ध रहता है। वृन्दावन मे ही माधुय भाव की पूरणता बताई गई हे। इस माधुय भाव मे कृष्ण का ऐश्वय, क्रीडा, वेणु तथा स्वरूप सम्मिलित है।

रूप गोस्वामी के लघु भागवतामृत मे भक्तो की कोटियाँ गिनाई गई है तथा पद्म पुराण और श्रीमदभागवत का आधार लेकर भक्ति-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् कृष्ण के स्वरूप की भाति उनके परिकरो का भी पूरण विवेचन है। द्वारका तथा मथुरा मे भगवान् के परिकर यादव है तथा वृदावन और गोकुल मे गोप गोपियाँ। ये परिकर भी कृष्ण की भाति प्राकृत और अप्राकृत है। गोकुल और वदावन मे गोप-गोपियो का सम्बध नित्य सम्बन्ध है जिनमे अलौकिकता का भाव है। जीव गोस्वामी ने कृष्ण और गोपियो के सम्बन्ध को शुद्ध सात्विक सम्बन्ध माना है और 'जार बुद्धि' का विश्लेषण इसी रूप मे किया है।

चैतन्य महाप्रभु के शिष्यो ने वैष्णव सम्प्रदाय को शास्त्रीय रूप देने मे बहुत योग दिया हे। यो तो वृदावन के छ गोस्वामी उनके शिष्य थे, और सभी का इस विषय मे पूरा पूरा योग हे। परन्तु 'सनातत' 'रूप' और 'जीव' का कार्य बडा महत्त्वपूरण है। जिस समय ये वैष्णव धम सम्बन्धी इस महत्त्वपूरण काय को कर रहे थे, उस समय ब्रज मे अन्य सम्प्रदाय भी कृष्ण भक्ति मे योग दे रहे थे। सनातन गोस्वामी और रूप गोस्वामी सहोदर थे और जीव गोस्नामी उनके भ्रातृज। सनातन गोस्वामी तथा रूप गोस्वामी ने १५ वी शताब्दी के अतिम वर्षो मे ग्रन्थ लिखने प्रारम्भ किये और १६ वी शताब्दी के मध्य तक उनका यह लेखन काय चलता रहा। वृन्दावन के प्राय सभी सम्प्रदाय उनसे प्रभावित हुए। कृष्ण लीला का अध्यात्म-पक्ष प्राय चैतन्य सम्प्रदाय से लिया गया है। कही कही थोडा सा अतर किया गया है। वल्लभ सम्प्रदाय मे भागवत को बहुत महत्त्व दिया गया है तथा वेद, गीता और ब्रह्मसूत्रो की भाति श्रीमद्भागवत की प्रामाणिकता स्वीकार की गई है। वल्लभाचाय ने श्रीमद्भागवत को समाधिभाषा कह कर व्यवस्थित रूप से उसे प्रस्थान चतुष्टय मे सम्मिलित कर लिया हे।

'तत्त्वदीप निबन्ध' का सव निर्णय काव्य प्रकरण तथा विशेषकर भागवताथ प्रकरण दशम स्कन्ध की अनुक्रमणिका तथा 'सुबोधिनी' मे श्रीवल्लभाचाय ने श्रीमद्भागवत का रहस्य प्रतिपादित किया है। उन्होने सात प्रकार के अथ भागवत मे बताए है। चार प्रकार के अथ भागवताथ प्रकरण मे तथा तीन प्रकार के अथ सुबोधिनी मे हुए है। भागवताथ प्रकरण मे चार प्रकार के अथ ये है—(१) समस्त ग्रन्थ का सक्षेप मे रहस्य। (२) ग्रन्थ

के बारह स्क धो मे कौन से स्कन्ध मे क्या रहस्य है। (३) किस स्कन्ध मे कितने प्रकरण है उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है और उनका क्या रहस्य है। (४) किस प्रकरण मे कौन-कौन से अध्याय है और उनमे प्रत्येक अध्याय का क्या अथ है। अध्यायो मे वर्णित भिन्न-भिन्न उपाख्यानो की परस्पर क्या सगति है और उनका क्या अथ है। उन्होने सुबोधिनी नाम्नी टीका मे जिन अर्थों का विवेचन किसा है, वे ये हे। (१) मूल श्लोको का अक्षराथ, (२) प्रत्येक वाक्य के अथ और शब्दो का रहस्य, (३) प्रत्येक पद के अन्तगत अक्षरो का अथ। दशम स्कन्ध को सारे ग्र थ का रहस्य होने के कारण वल्लभाचाय ने उसे हृदय माना है। अर्थात् यह भगवान् के हृदय का साक्षात् प्रतिबिम्ब है। सम्पूर्ण ग्रन्थ भगवान् का मूर्तिमान स्वरूप है। पहला स्कन्ध अधिकार स्क ध है। दूसरा 'साधन स्क ध' है। ये दोनो भगवान् के चरण युगल है। तीसरा 'सग स्क ध' और चौथा विसग स्कन्ध भगवान् के बाहु युगल है। पाचवाँ 'स्थान स्क ध' और छठा शोषण स्क ध भगवान् की जाँघ है। सातवा ऊति स्क ध' भगवान् की दाहिनी हथेली, आठवाँ 'मन्वन्तर कथा स्कन्ध' और नवाँ 'ईशानुकथा स्कन्ध भगवान् के स्तन है। दशम 'निरोध स्कन्ध' एकादश 'मुक्ति स्क ध' मस्तक तथा द्वादश 'आश्रय स्कन्ध' भगवान् की बाई हथेली है। दशम स्कन्ध के अध्यायो की भी सगति श्री वल्लभाचाय ने लगाई है। अतिम तीन अध्यायो को प्रक्षिप्त मानकर उन्होने केवल सतासी अध्याय माने है और सारे स्कन्ध को पाँच प्रकरणो मे विभाजित किया है। जन्म प्रकरण, तामस प्रकरण, राजस प्रकरण, सात्विक प्रकरण और गुण प्रकरण। इनमे तामस प्रकरण सबसे विस्तृत है। वल्लभाचाय ने इस प्रकरण मे आध्यात्मिकता का पूण रूप से आरोप किया है। तामस प्रकरण के चार अन्तर्विभाग है, प्रमाण, प्रमेय, साधन और फल। 'युगल गीत' तक का विषय उन्होने तामस प्रकरण मे माना है। भगवान् कृष्ण को पूर्णावतार मान कर वल्लभ सम्प्रदाय मे भी उनके चार व्यूह माने गये है। वासुदेव सकषण, प्रद्युम्न, और अनिरुद्ध। इन चारो के काय अलग-अलग है। पूण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का इन्होने दो जगह अवतार माना है। श्री वासुदेव देवकी के यहाँ तथा श्रीनन्द यशोदा के यहाँ, दोनो जगह श्रीकृष्ण का जन्म व्यूह सहित ही है। कही व्यूह के काय से प्राकट्य है, कही स्वरूप से प्राकट्य है न द यशोदा के यहा तीन रूप काय से प्रकट है। बसुदेव देवकी के यहाँ चारो व्यूह स्वरूप से प्रकट है। अर्थात् भगवान् ने ब्रज मे अपने व्यूहो का स्वरूप छिपा रखा है, किन्तु व्यूहो का काय किया है। मथुरा मे भगवान् ने अपने व्यूहो का स्वरूप भी प्रकट किया है और काय भी किया है। अतएव भगवान् ने वसुदेव जी के यहाँ अपने चतुर्भु ज रूप का दशन कराया है।

श्रीहरिरायजी के 'स्वरूप निर्णय' मे कृष्ण के सयोग विप्रयोगात्मक श्रृ गार रस रूप स्वरूप की व्याख्या विस्तार से की गई है तथा गोपियो के वास्तविक रूप को भी बताया गया है। गोपियाँ नित्य सिद्धा श्रुति रूपा और अग्नि कुमार स्वरूपा बताई गई है। इस प्रकार भगवान् की लीलाओ को आध्यात्मिक रूप दिया गया है।

प्रतीकार्थ :

राधा, गोपी, मुरली तथा रास

राधिका भगवान् की आह्लादिनी शक्ति है चैतन्य सम्प्रदाय मे राधा को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। चैतन्य महाप्रभु को राधा और कृष्ण का सयुक्त रूप माना गया है।

वल्लभाचाय के सिद्धान्त ग्रन्थो मे राधा का इतना विवेचन नही है, जितना उनके पश्चात् लिखे गये सम्प्रदाय ग्रथो मे। सम्भवत यह प्रभाव चैतन्य तथा निम्बाक सम्प्रदायो का हो। निम्बाक सम्प्रदाय मे युगल रूप की उपासना की जाती है। 'भागवत सदभ' मे जीव गोस्वामी ने राधिका को भगवान् की स्वरूप शक्ति माना है। यह स्वरूप शक्ति भगवान् के विभिन्न लीला-स्थानो पर विभिन्न स्वरूप धारण करती है। मथुरा तथा द्वारका मे इस स्वरूप शक्ति का नाम 'महिषी' है जो सोलह हजार रानियो के लिए आया है इन सोलह हजार मे से आठ पट्ट महिषी हे। वृन्दावन मे भगवान् की स्वरूप शक्ति ब्रज देवियो के रूप मे प्रकट हुई है तथा जो भगवान् की आह्लादिनी शक्ति राधिका के शरीर से ही उन्पन्न हुई है इस प्रकार राधिका को जीव गोस्वामी ने बहुत प्रधान स्थान दिया है। 'प्रीति सदभ' मे राधिका को प्रेमोत्कष पर माना है। राधा को सवश्रेष्ठ भक्त अथवा परिकर के रूप मे लिया गया है। जीवगोस्वामी ने भगवान् की अन्यतम सखी को राधा ही माना है।

हम पहले लिख चुके है कि गोपिकाओ के विषय मे पुराणो तथा उन पर आधृत वैष्णव सम्प्रदायो मे इसी प्रकार के आरोप किए गए है। पद्म पुराण मे गोपियो के सम्बन्ध मे यही कहा गया है कि वे श्रुति स्वरूपा तथा मुनिम्वरूपा है।[1] भागवत मे इस प्रकार के अनेक सकेत है, और विभिन्न पुराणो मे उनकी कथाएँ बिखरी पडी है, जिनका सकेत हम पहले कर चुके है। वास्तव मे भगवान् के समान ही गोपिया भी परम रसमयी तथा सच्चिदा-नन्दमयी है। साधना की दृष्टि से भी उन्होने न केवल जड शरीर का त्याग कर दिया है अपितु, सूक्ष्म शरीर से प्राप्त होने वाले स्वग तथा कैवल्य से अनुभव होने वाले मोक्ष की भी उपेक्षा कर दी। भागवतकार ने लीलामय कृष्ण का त्रिविध प्रकार माना है। कुरुक्षेत्र मे श्रीकृष्ण पूण सत् और ज्ञान शक्ति प्रधान है। द्वारका और मथुरा मे श्रीकृष्ण पूण चित् और क्रिया प्रधान है। इसलिये लीला को हम 'Playing in the infinite' (अनन्त क्रीडा) कह सकते है।

भगवान् कृष्ण की सभी लीलाओ मे अध्यात्म का आरोप किया गया है। श्रीमद्भागवत मे इस अध्यात्म तत्त्व का निर्देश स्थान-स्थान पर मिलता ही है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् की सारी लीलाएँ प्रच्छन्न रूप से किसी न किसी उद्देश्य को लेकर की जा रही थी। गोप-गोपिकाएँ आदि सभी प्रच्छन्न रूप मे असाधारण अथवा अतिमानव थे। यहाँ तक कि असुर भी किसी विशेष प्रयोजन से उस लीला पुरुषोत्तम नटवर के सम्पक मे आते थे। माखन-चोरी, उलूखल-बन्धन, दामोदर-लीला, चीरहरण लीला, वेणुवादन आदि सब पर ही आध्यात्मिक आरोप हुए है। गोपियो के पूव जन्म की कथाएँ तो पुराणो मे भरी पडी है। इन गोपियो ने भगवान् के लिये कल्पो तक साधना करके गोपी-तन प्राप्त किया था और उनकी अभिलाषा पूण करने के लिये ही भगवान् ने लीलाएँ की थी। श्रीमद्भागवत मे दशम स्कन्ध के ३२ वे अध्याय के २२ वे श्लोक मे स्वय भगवान् ने गोपियो से कहा है—

"हे गोपियो, तुमने लोक परलोक के सारे बन्धनो को काट कर मुझ से निष्कपट प्रेम किया है, यदि मै तुम मे से प्रत्येक के लिये अलग अलग अनन्त काल तक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेम का बदला चुकाना चाहूँ तो भी नही चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। तुम अपने साधु स्वभाव से ऋण रहित मान कर और भी ऋणी बनादो।"

१ पद्म पुराण, पाताल खण्ड, अ० ४३

चीर हरण लीला और रासलीला को साम्प्रदायिको ने बडा महत्त्व दिया है और वेणु से भगवान् कृष्ण का अविच्छिन्न सम्बन्ध दिखाया है इनके ऊपर भी हम थोडा सा विचार करेगे।

सुबोधिनी मे वल्लभाचाय ने दशम स्कन्ध के पाँच प्रकरण माने है। जैसाकि हम पहले कह चुके है, तामस प्रकरण उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण है क्योकि इस प्रकरण मे ज्ञानादि साधनो से रहित भक्तो का श्रीकृष्ण ने उद्धार किया है। वेणुगीत का विषय इसी तामस प्रकरण के अन्तर्विभाग प्रमेय प्रकरण मे आया है। पहले प्रकरण मे प्रभु अपने नि साधन भक्तो के निरोध के लिये उ हे प्रेमदान देते है, फिर प्रमेय मे वही प्रेम विकसित होकर आसक्ति रूप बन जाता है और साधन मे भक्ति मार्गीय साधन द्वारा वह व्यवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस अवस्था मे शुद्ध भक्ति का फल प्रभु के साथ रमण अर्थात् रास लीला होती है। इस प्रकार वल्लभाचाय ने तामस प्रकरण के चार अन्तर्विभागो की परस्पर सगति दिखाई है। उन्हे भक्ति की चार अवस्थाएँ अर्थात् स्नेह, आसक्ति, व्यसन और त मयता कहा जा सकता है। वेणुगीत ब्रज भक्तो की आसक्ति के बहिगमन कराने का प्रयास है। सगीत, काव्य और भक्ति सभी दृष्टियो से वेणुगीत का बडा महत्त्व है। इस सूत्र को ग्रहण करके हिन्दी, मराठी और गुजराती के कवियो ने न जाने कितने काव्य लिखे है।

भक्ति माग का अति उत्तम सिद्धा त इस गीत मे गूँथा गया है। इसमे भगवान् स्वय अपने शब्द द्वारा चराचर सष्टि को तल्लीन करते हे। सगीत का महत्त्व और प्रभाव जगत् के सम्पूण साहित्य मे बताया गया है। ग्रीक साहित्य मे Oxphense का वणन है, जो सगीत के प्रभाव से चराचर जगत् को हिला देता, वायु के वेग को रोक सकता और पवतो को गति दे सकता था। मिल्टन ने अपने 'पैराडाइज लॉस्ट' मे भी यही लिखा है कि जब ईश्वर ने इस सष्टि की रचना की तो उसने पहले बिखरे हुए महाभूतो को सगीत के द्वारा एकत्र किया और सृष्टि की रचना की। ड्राइडन इसी बात को अपने 'सेन्ट असीलिया' की प्राथना मे दिखलाता हैं कि सगीत मे केवल वस्तु के सृजन करने की ही नही कि तु लय करने की भी शक्ति है। स्टीवेन्सन ने अपने 'पैन्स् पाइप्स' नामक लेख मे वशी बजाते हुए पैन अथात् प्रकृति देव की कल्पना की है। भागवतकार ने भी इसी प्रकार वेणुगीत मे सगीत की अलौकिक शक्ति का परिचय कराया है। सूरदास ने मुरली सम्बन्धी इतने पद लिखे है कि वह अलग खण्ड काव्य का रूप धारण कर सकते है।

वेद मे भगवान् के दो स्वरूप बतलाए गए है। नाम और रूप। वेणु गीत भगवान् के नामात्मक स्वरूप का बोध कराता है। 'वेणु' शब्द मे 'व' 'इ' 'अणु' इस प्रकार तीन अक्षर है। 'व' का अथ ब्रह्म सुख, 'इ' का अथ काम का सुख, और 'अणु' का अथ है 'तुच्छ'। अर्थात् जिस सुख के सामने सासारिक तथा आध्यात्मिक सुख 'अणु' अर्थात् तुच्छ हो जाते है उसे वेणु' कहते है। वेणु मे सात छेद है। उनमे से छ छेद तो भगवान् के ऐश्वय, वीय, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्य के द्योतक है एव सातवा उपयु क्त ६ धर्मों से युक्त अप्राकृत देहधारी स्वय भगवान् का बोध कराता है। श्रीवल्लभाचाय ने अपनी सुबोधिनी टीका मे वेणुगीत का बडे विस्तार से अथ किया है और सारे ही गीत को उन प्रभु मे आसक्ति द्वारा निरोध सिद्ध कराने के लिए बताया है। इस गीत के कुल बीस श्लोक है। पहले श्लोक मे वर्णित वृन्दावन प्रवेश, दूसरे मे वेणु कूजन, ये गोपियो की आसक्ति को उद्दीप्त

करने वाले है। 'वृन्दा' का अर्थ है 'भक्ति' और 'वन' का अर्थ है 'प्रवेश' अत वृन्दावन का अर्थ हुआ भक्ति का प्रवेश। अपने स्वरूप के प्रति गोपियो की आसक्ति कराने के लिए भगवान् भी ज्ञान और कम को छोडकर भक्ति के प्रदेश मे प्रवेश करते है। इसलिए पहले श्लोक मे वृन्दावन प्रवेश का वर्णन है। वहा प्रवेश करके भगवान् गोपियो को अलौकिक साधन से आसक्ति का दान करते है। इस प्रकार पहले दो श्लोको का स्थान और साधन की अलौकिकता बतलाकर तीसरे श्लोक मे आसक्ति जागृत होने पर गोपिया भगवान् के स्वरूप और लीला का वर्णन करती हैं। यह वर्णन विद्या अर्थात् स्वरूप और लीला के ज्ञान के बिना नही हो सकता। इसलिए फिर विद्या का वर्णन है। वल्लभाचाय ने विद्या के पाँच प्रकार माने है। साख्य, योग, तप, वैराग्य और भक्ति। 'रस घन प्रभु ही मेरे सवस्व हे' इस निश्चय का नाम ही साख्य है। अन्त करण की वृत्ति मात्र का प्रभु मे लगा रहना ही 'योग' है। भगवान् के विरह मे ताप और क्लेश का अनुभव करना 'तप' है। एक प्रभु को छोडकर अपर वस्तु मे चित्त का न जाना ही 'वैराग्य' है। ऐसी आसक्ति जिसमे लेशमात्र भी आसक्ति न हो भक्ति कहलाती है। इस विद्या के फल प्रभु है तथा उन प्रभु के स्वरूप का वर्णन वेणु गीत मे दिया गया है।[1] वेणु गीत का तात्पय भक्तिमाग की स्थापना मे है। भागवत मे वेणु गीत मे वेणु का प्रभाव बतलाते हुए लिखा है—

"अस्पन्दन गतिमता पुलकस्तरूणाम्"[2] अर्थात् बाँसुरी की तान से मनुष्यो की तो बात ही क्या सभी चलने वाले पशुपक्षी और जड नदी आदि स्थिर हो जाते है, तथा अचल वृक्षो को भी रोमाञ्च हो आता है।

चीर हरण लीला के विषय मे भी अनेक प्रकार से आध्यात्मिकता का आरोप किया गया हे। यद्यपि श्रीकृष्ण की आयु चीर हरण लीला के समय केवल आठ नौ वष की थी और उस समय कामोत्तेजना का प्रश्न उपस्थित नही होता परन्तु आध्यात्मवादी लोग इन लीलाओ को भौतिक रूप मे नही देखते। वे तो कृष्ण को आत्मा के रूप मे देखते है और गोपियो को वृत्तियो के रूप मे। वृत्तियो का आवरण नष्ट होना ही 'चीर हरण लीला' है और उनका आत्मा मे रम जाना ही 'रास' है। गोपिया ब्रह्मानुवेषकारिणी भक्तिसाधिका है। अनेक जन्मो के पुण्य-फल स्वरूप उन्हे परमात्मा श्रीकृष्ण प्राप्त हुए हैं। उनकी अह बुद्धि को छुडाने के लिए भगवान् ने यह लीला की और इसलिए भगवान् अन्त मे गोपियो से कहते हे—

"यानाबला ब्रज सिद्धा मयेमा रस्यथ क्षपा ।
यदुद्दिश्य व्रतमिद चेरुरार्याचन सती ।।[3]

अर्थात् 'हे कुमारियो ! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गई है। तुम आने वाली शरद् रात्रियो मे मेरे साथ विहार करोगी। इसी उद्देश्य से तुमने यह व्रत और कात्यायनी देवी की पूजा की थी।

१ श्रीमद्भागवत दशम स्क ध वेणु गीत श्लोक ७–२०

२ वही श्लोक १६

३ श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध अध्याय २२ श्लोक २७

भगवान् ने चीर हरण लीला मे गोपियो की साधना को पूर्ण किया है। गोपिया कृष्ण के प्रति पूर्ण आत्म समर्पण चाहती थी परन्तु उनके समर्पण मे कमी थी। वे निरावरण रूप से श्रीकृष्ण के सम्मुख नही जारही थी। उनमे कुछ झिझक थी। उनकी साधना को पूर्ण बताने के लिए उन्हे निरावरण करना आवश्यक था। भक्ति की दृष्टि से भी वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति मे है और रागात्मिका भक्ति की परिणति पूर्ण आत्मसमर्पण मे है। गोपियो ने वैधी भक्ति का अनुष्ठान किया था और उनका हृदय रागात्मिका भक्ति से परिपूर्ण था। चीर हरण लीला से पूर्ण आत्मसमर्पण का कार्य सम्पन्न हुआ। गोपियो की इस दिव्य लीला का जीवन उच्चकोटि के साधक के लिए आदर्श जीवन है। श्रीकृष्ण जीव के एकमात्र प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हे। उनकी यह लीला अपार और अप्राकृत है। श्रीकृष्ण उनके वस्त्रो के रूप मे उनके समस्त सस्कारो के आवरण अपने हाथ मे लेकर पास ही कदम्ब के वृक्ष पर चढकर बैठ गए। गोपियाँ जल मे थी। वे जल मे सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् से मानो अपने को प्रच्छन्न समझ रही थी। यह उनकी भूल थी। इसी का सुधार श्रीकृष्ण करना चाहते थे। हम ससार के अगाध जल मे आकण्ठ मग्न है और भगवान् को भूल गये है। भगवान् यही बतलाते है कि भक्तो! सस्कार शून्य होकर निरावरण होकर, माया का परदा हटाकर मेरे पास आओ। तुम्हारा मोह का परदा मैने छीन लिया है अब तुम परदे के मोह मे क्यो पडे हो। यह परदा ही तो परमात्मा और जीव के बीच बडा व्यवधान है यह केवल भगवत्प्रेम से ही दूर हो सकता है। भगवान् के सम्पर्क से यह परदा भी प्रसाद रूप हो जाता है। यही चीर हरण लीला का आध्यात्मिक पक्ष है।

रास लीला के विषय मे भी इसी प्रकार विचार किया जा सकता है। रास लीला की व्याख्या भी कई प्रकार से की गई है। ब्रज लीला की पराकाष्ठा रास लीला मे है। आत्माराम श्रीकृष्ण की आत्मा राधिका है। वशी उनकी प्रेम रूपिणी है। जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्ब के साथ क्रीडा करता है उसी प्रकार कृष्ण ने बहुधा विभक्त आत्मा-रूपिणी ब्रज गोपिकाओ के साथ रास लीला करने के लिए सुखमयी रजनी मे सुन्दर यमुना पुलिन पर प्रेम वशी के शब्द से सकेत ध्वनि की। 'रास' शब्द का मूल 'रस' है, और रस स्वय भगवान् श्रीकृष्ण ही है। 'रसो वै स'। जिस दिव्य क्रीडा मे अनेक रस एक ही रस मे होकर अनन्त अनन्त रस का आस्वादन करे, एक रस ही रस समूह के रूप में प्रकट होकर स्वय आस्वाद्य आस्वादक लीला धाम और विभिन्न आलम्बन एव उद्दीपन के रूप मे क्रीडा करे उसका नाम रास है। विश्व की नियम बद्ध गति को भी रास कहा गया है। विश्व मे गति ही प्रधान है। यह गति नियम बद्ध होती है। इसी नियम बद्ध गति से विश्व का प्रादुर्भाव और इसी मे विलय है जो इसका रहस्य समझता हुआ इसमे प्रवृत्त होता है वही इसके सच्चे आनन्द का अनुभव कर सकता है। भगवान् अपने मधुर आह्वान से प्रत्येक व्यक्ति को रास के लिए बुलाते है जो अपना अहभाव छोड कर इस ओर अग्रसर होता है वही इस आनन्द की प्राप्ति करता है।

योग की दृष्टि से भी रास का महत्त्व इसी प्रकार समझा जा सकता है। अनाहत नाद ही भगवान् श्रीकृष्ण की वशी ध्वनि है। अनेक नाडियाँ ही गोपिका है। कुल कुण्डलिनी ही राधा है और मस्तिष्क का सहस्र दल कमल ही वह वृन्दावन है जहाँ आत्मा और परमात्मा

का सुखमय मिलन होता है। जहा पहुँचकर ईश्वरीय विभूति के साथ जीवात्मा की सम्पूर्ण शक्तियाँ सुरम्य रास रचती हुई नृत्य किया करती हे। आचाय वल्लभ ने रास पचाध्यायी को समाधि भाषा मे लिखा कहा है। अत इसका रहस्य अनेक दृष्टियो से समझा जा सकता है। भगवान् कृष्ण आनन्दानुभूति की पूण अभिव्यक्ति है और यह रास परमउज्ज्वल रस का एक प्रकार है। साम्प्रदायिको ने रास को केवल एक रूपक या कल्पना मात्र ही नही माना है बल्कि उसे सत्य स्वीकार किया है। भेद केवल इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री पुरुषो का मिलन न था। उसके नायक ये सच्चिदान द-विग्रह पूणतया स्वाधीन और निरकुश स्वेच्छाचारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन और उनकी नायिका थी स्वय उनकी आह्लादिनी शक्ति राधिका और उनकी काय व्यूह रूपा घनीभूत मूर्तिया श्री गोपीजन। इसलिए उनकी यह लीला अप्राकृत थी। शुकदेव जी ने परीक्षित् के प्रश्नो के उत्तर मे इस बात का समथन किया हे।[1]

रास लीला को एक वैज्ञानिक स्वरूप भी दिया गया है। एक मुख्य केन्द्र के आकषण के अनुसार उसके चारो ओर गतिमान् श्रुतियो की जो गति होती है उसे 'रास' कहते है। जसे सौर जगत् मे सूय केन्द्र हे उसके आसपास ग्रह और उपग्रहो की मण्डली है जो अपने केन्द्र सूय के आकर्षणानुसार अपनी विशेष गति से गतिमान् है। उनकी यह गति उनकी रास लीला है। सौर जगत् की ही भाति मनुष्य के अन्दर भी रास लीला हुआ करती है। मनुष्य के शरीर मे उसका हृदय केन्द्र है और विभिन्न अग उससे शक्ति लाभ करते हुए समग्र शरीर की रक्षा के लिए अपने अपने जो कतव्य करते है, वह भी एक रास-लीला है। इसी प्रकार विश्व रूप वृत मे भगवान् श्रीकृष्ण परम केन्द्र है, प्रकृति उसकी परिधि है और जीवात्मा गण इस प्राकृतिक चक्र मे पडकर अपने केन्द्र को बिलकुल भूल गए है। पीछे ज्ञान के द्वारा उनकी आत्मविस्मृति दूर होती है और ये जीवात्मा रूप सरल रेखाएँ परिधि को त्याग कर अपने केन्द्र से आकृष्ट होकर केन्द्र की ओर जाती है। यह अपने केन्द्र की ओर आना ही विश्व की आध्यात्मिक रास लीला है जो नित्यप्रति होती रहती है। इसी नित्य रास लीला का अभिनय ब्रज मे रासोत्सव के रूप मे किया गया यह अभिनय गोपी रूप जीवात्माओ का अपने परमकारण परमात्मरूप श्रीकृष्ण के साथ युक्त होता था। यह आत्मा और परमात्मा का मिलन था न कि दो स्थूल शरीरो का। इसलिए इस रास लीला मे प्रवेश करने का अधिकार उसी को है जिसने प्राकृतिक नानात्व की वासना और ममता तथा स्वकीय अहभावरूप पुरुषभाव को सवथा त्याग दिया है और अपनी आत्मा को भगवान् की शक्तिमात्र मानकर उनकी दी हुई वस्तु उन्ही को समर्पित करने के लिए सदा लालायित रहता है। यही गोपी भाव हे। इस गोपी भाव मे पगे हुए अपने भक्त के बिना भगवान् को चैन नही पडता और जब यथासमय वे उसका आह्वान करते है तो दोनो का मिलन होता है जिसे रास-लीला कहते है। रास-लीला को भगवान् श्रीकृष्ण ने भविष्य के भक्तो के हिताथ बाह्य रूप मे भी अभिनय करके दिखलाया, जहा गोपिया आत्मसमपण की मूर्तिया थी और भगवान् श्रीकृष्ण स्वय परमेश्वर थे। यह आत्मा परमात्मा का मिलन बाहर से बाँह पकडने के समान है जिससे दोनो मुक्त हो जाते है। जिस प्रकार श्री भगवान् ने रास-लीला मे गोपियो के हाथो को अपने हाथो मे लेकर उनसे नृत्य कराया, उसी प्रकार समर्पित-आत्मा भक्त की सारी चेष्टाएँ और क्रियाएँ भगवान् के द्वारा ही सचालित होती है।

१ श्रीमद्भागवत दशाम स्क ध अध्याय २६ श्लोक १३-१६

दोनो की भावगति एक हो जाती है। उनका कोई स्वतत्र व्यक्तित्त्व नही रहता। भगवान् उसका निमित्त रूप से विश्व लीला मे विश्व हिताथ यत्रवत् उपभोग करते है। यही रास-लीला का यथाथ भाव और रहस्य है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्ति ग्रन्थ है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, आचाय-चरणशङ्कर के अद्वैत ने बुद्धि पक्ष को इतने उत्कष पर पहुँचा दिया कि उसके अवलम्ब के बिना हृदय पक्ष का विवेचन सम्भव ही नही था। श्रीमद्भागवत मे उसी अद्वैत सिद्धा त को भक्ति की परिधि मे बाधने का सु दर प्रयास किया है। साथ ही साथ भागवतकार का दृष्टिकोण समन्वय परक रहा है। इसलिए प्राय सभी दशनो के मूल तत्त्वो का विवेचन किसी न किसी रूप मे इस महनीय ग्रन्थ मे हो गया है। किसी एक दाशनिक सिद्धान्त का विवेचन भागवतकार का लक्ष्य नही है। यही कारण है कि ब्रह्म, जीव और माया के विषय मे भागवतकार की कोई निश्चित और सुनियोजित धारणा खोजना कठिन काय है। इस प्रकार के समन्वयात्मक प्रयास भारतीय वाङ्मय मे पहले भी होते रहे है। वास्तव मे प्रस्थानत्रयी के ग्रन्थ इसी परम्परा के है। श्रीमद्भागवत मे पुराणत्व का समावेश होने से उसका रूप बदल गया है। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्, कहकर भागवतकार निगु ण और सगुण के विरोध को बडी सफाई से बचा देता है।

सप्तम अध्याय

'श्रीमद्भागवत में भक्ति'

श्रीमद्भागवत एक अलौकिक ग्रथ है। इसमे वर्णाश्रम धम, मानव-धर्म, कमयोग, अष्टाङ्ग योग-ज्ञान योग और भक्ति-योग आदि भगवत्-प्राप्ति के सभी साधनो का बडा विशद वर्णन है, परन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके है कि इस महापुराण मे भगवद्भक्ति का ही विशेषरूप से निरूपण है। भागवत का प्रयोजन ही भक्ति का उत्कर्ष दिखाकर मनुष्य को उस ओर प्रवत्त करना है। जैसा कि हम अभी देखेंगे। ग्रन्थ के आदि मध्य और अन्त मे भक्ति का ही विवेचन हुआ है। भागवत के माहात्म्य मे भक्त के कष्ट की निवत्ति के लिये ही भागवत की रचना बताई है। भक्ति का विषय बडा व्यापक तथा महत्त्व-पूर्ण है। वैदिक काल से लेकर पौराणिक युग तक भक्ति अनेक स्वरूपो मे दिखाई देती है। भक्ति के विकास का विषय बडा ही विस्तृत है जो हमारे प्रस्तुत निबन्ध के बाहर की वस्तु है। हम बहुत सक्षेप मे भक्ति का विकास दिखाने का प्रयास करेगे।

भक्ति का विकास

भारतीय धम पद्धति मे लोक धर्म के तीन अवयव हैं, कम, ज्ञान, और उपासना। प्राचीन काल से ही ये तीनो अवयव भारतीय धम-साधना मे प्रतिष्ठित है। वास्तव मे ये तीनो ही मानव जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक है। परन्तु देश काल की परिस्थितियो के अनुकूल इनमे से कभी एक का प्राबल्य रहता है तो कभी दूसरे का। इनके अनुपात को सुव्यवस्थित और सुमर्यादित बनाना ही भारतीय धम साधना की मौलिकता रही है। वैदिक काल मे हमे तीनो अवयवो के दर्शन होते है। वेदो मे प्राकृतिक शक्तियो को दैवी रूप दिया गया है और उनकी उपासना के अनेक मन्त्र वेदो मे मिलते है। ज्ञान पक्ष मे सब देवताओ को एक ही ब्रह्म के नानारूप बताया गया है।

इन्द्र मित्र वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान्।
एक सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यम मातरिश्वानमाहु।
ऋग्वेद १–२। १६४–६४

एक और वेदो मे जहा इस प्रकार ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा है दूसरी ओर द्रव्य-यज्ञ का भी विधान है जो एक प्रकार से उपासना का ही बाह्यरूप है। बहुत से काम्य और नमित्तिक यज्ञो का विधान वेदो मे है। देवताओ के निमित्त इन यज्ञो का विधान हुआ है और इनके साथ साथ वैदिक ऋषियो ने अपनी सहृदयता और भावुकता का भी परिचय दिया है जो देवताओ की स्तुति, नदियाँ, ऊषा इत्यादि के सम्बन्ध मे सौन्दर्य भावना और शुद्ध अनुराग द्वारा प्रेरित रमणीय उक्तियो के रूप मे प्रकट हुई है। वैदिक काल मे ही ब्रह्म की निराकार भावना उत्पन्न हो चुकी थी। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त मे ईश्वर की भावना पुरुष के रूप मे

की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थो मे इसी भावना को और विशेष रूप दिया गया है जहाँ यह कल्पना पुरुष नारायण के रूप मे हो गई है। यह कहा जा सकता है कि मन्त्र काल या वैदिक काल मे परमेश्वर की विभि न शक्तियो का साक्षात् करके उनको एक समष्टि शक्ति के रूप मे ग्रहण किया गया और फिर ब्राह्मण काल मे बुद्धि और कल्पना के बल पर उस शक्ति के स्वरूप का परिचय दिया गया। शतपथ ब्राह्मण मे इस प्रकार के अनेक विधान मिलते है जहाँ पुरुष नारायण की कल्पना की गई है। इसे हम ज्ञान और उपासना का योग कह सकते है अथवा बुद्धि और हृदय की समन्वित क्रिया। उपनिषदो मे भी इस प्रकार की भावना स्पष्ट लक्षित होती है, जसे ब्रह्म को अ नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय अ ौर आनन्दमय देखना उसे अपनी अन्त सत्ता के बाहर बाह्य-जगत् मे देखने का विधान है—

अन्न ब्रह्मे ति व्यजानात्। प्राणो ब्रह्मे ति व्यजानात्। मनो ब्रह्मे ति व्यजानात्। विज्ञान ब्रह्मे ति व्यजानात्। आन दो ब्रह्मे ति व्यजानात्।

तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली।

इसी अन्नोपासना की पद्धति से ब्रह्म की भावना विष्णु रूप मे प्रतिष्ठित हुई। ब्रह्म के भिन्न-भिन्न प्रतीक माने गये। मत्र काल की समष्टि शक्ति बुद्धि और कल्पना का योग पाकर अनेक नाम रूपो मे सामने आई। इसलिए उपनिषद् काल मे दो माग दिखाई देते है, (१) निवत्ति परिज्ञान माग—वृहदारण्यक तथा कठोपनिषद् आदि मे तथा (२) कम परिज्ञान माग ईशावास्यादि उपनिषद मे। इसी कम परिज्ञान माग से भक्ति माग का विकास हुआ। इस माग मे बुद्धि और हृदय दोनो का सयोग है। वृहदारण्यक उपनिषद् मे आया है कि ब्रह्म के मूत्त और अमूत्त, मत्य और अमृत, स्थित और चल दोनो ही रूप है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर उप िषद् मे आत्मा को अणु से अणु और महान् से महान् बताया है।

अणोरणीयान् महतोमहीयान्,
आत्मा गुहाया निहतोऽस्य जन्तो। (श्वेत० ३–२०)

उपनिषदो मे इस प्रकार की अनेक कथाएँ हैं जिनमे ब्रह्म के मूत्त और अमूत्त दोनो ही रूपो की व्याख्या की गई है, और अन्त मे उसे मूत्त और अमूत्त दोनो ही से परे बताया है। याज्ञवलक्य ने उसे नेति नेति कहा है जो अव्यक्त का विश्लेषण है, 'नेति नेति हो वाच याज्ञवलक्य'। वृहदारण्यक २–१ मे गाग्य बालाकि ने अज्ञात शत्रु को पहले ब्रह्म को मूर्त्त बतलाया है। फिर अमूत्त और फिर अ त मे दोनो से परे उसकी सत्ता बतलाई है। उपनिषदो मे विशुद्ध तत्त्व ज्ञान के लिए ब्रह्म को निगु ण और अव्यक्त कहा गया है पर उपासना के लिए उसका सगुण रूप ही सामने रक्खा गया है। तात्त्विक रूप से ब्रह्म की भावना एकत्व विशिष्ट ही थी जैसे—

त्व ब्रह्मा त्व च वै विष्णुस्त्व रुद्रस्त्व प्रजापति।
त्वमग्निवरुणो वायुस्त्वमिन्द्रस्त्व निशाकर॰॥
त्व मनुस्त्व यमश्च त्व पृथ्वी त्वमथाच्युत।
स्वार्थे स्वाभाविकेऽथ च बहुधा तिष्ठते दिवि॥

मैत्रायण्युपनिषद् ४।१२–१३

परन्तु उपासना के लिए उसको सगुण और व्यक्त माना गया। किसी एक व्यक्ति को उस अव्यक्त का प्रतीक मान कर उस पर आस्था रखना विधि ठहराई गई। वैदिक काल की पूजा जो केवल द्रव्य यज्ञ द्वारा ही सम्पादित होती थी और जिसमे भय लोभ या कृतज्ञता के ही भाव रहते थे, अब कुछ परिष्कृत हुई क्योकि ब्रह्म के स्वरूप का कुछ बोध हुआ और उस पूजा ने श्रद्धा समवित उपासना का रूप धारण किया तथा द्रव्य-यज्ञ का स्थान अब ज्ञान-यज्ञ ने लिया जिसका अभिप्राय बुद्धि और हृदय का योग है। छादोग्य उपनिषद् के अनुसार यह यज्ञ-विद्या घोर अङ्गिरस द्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को बतलाई गई। द्रव्य यज्ञ से इस ज्ञान यज्ञ की श्रेष्ठता का उल्लेख श्रीमद्भगवद् गीता मे भी है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञ परतप।

गीता ४—३३

इस यज्ञ मे ज्ञान और कम दोनो का सम वय है। मन की बोध वृत्ति और रागात्मिका वृत्ति दोनो सम्मिलित है। धीरे-धीरे मन की रागात्मिका वृत्ति को प्रधानता मिलती गई और भागवत धम की प्रतिष्ठा हुई। विष्णु नारायण वासुदेव कृष्ण आदि विभिन्न स्वरूप उस ब्रह्म के हुए। इसका विवेचन हम दूसरे प्रकरण मे कर चुके है। श्रीकृष्ण भागवत धम के मुख्य आधार रहे है। प्रारम्भ मे कृष्ण मे लोक रञ्जक और लोक रक्षक दोनो रूपो का समन्वय था। धीरे-धीरे कृष्ण का लोक रक्षक रूप तिरोहित होता गया और केवल ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा की प्रवृत्ति बढती गई जो अत्यन्त घनिष्ट प्रेम का आलबन हो सके। श्रीमद्भागवत इसी प्रवृत्ति का मधुर फल है जिसमे भागवत की माधुय विभूति को प्रधानता दी गई है। गीता मे भक्ति का कम-ज्ञान-समन्वित रूप है परन्तु भागवत मे तो कर्म और ज्ञान से अलग भक्ति का ही एक स्वतन्त्र क्षेत्र तैयार किया गया है। इस भक्ति के स्वतन्त्र क्षेत्र का विवेचन भी पूण रूप से हुआ है। शाण्डिल्य सूत्र, नारद सूत्र, तथा नारद पञ्चरात्र आदि मे भक्ति के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। सभवत ये तीनो ही ग्रन्थ भागवत के बाद के हैं। शाण्डिल्य सूत्र पहले का हो सकता है। नारद पचरात्र मे यत्र-तन्त्र का भी समावेश है परन्तु श्रीमद्भागवत मे ज्ञान या स्वरूप बोध के लिए तत्त्व चिन्तन की स्वाभाविक पद्धति ही स्वीकृत है। आगे चलकर वैष्णव सम्प्रदायो ने इस भक्ति पद्धति को और भी महत्त्व प्रदान किया। भागवत को आधार मानकर साम्प्रदायिक आचार्यों ने भक्ति का विशाल भवन उपस्थित किया। इन सम्प्रदायो मे भक्ति को शास्त्रीय रूप देने वाले दो ही सम्प्रदाय है, चैतन्य सम्प्रदाय तथा वल्लभ सम्प्रदाय। चैतन्य सम्प्रदाय के रूप गोस्वामी ने 'भक्ति रसामृत सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल नीलमणि' नामक ग्रन्थ लिखकर भक्ति रस की स्थापना की। इन ग्रथो को हम भक्ति रस शास्त्र भी कह सकते है। इनमे भक्ति रस की विवेचना आलकारिक ढग से हुई है। वल्लभ सम्प्रदाय मे भी वल्लभाचार्य ने स्वय भक्ति को पुष्टिमार्गीय रूप देकर उसकी विशद विवेचना की है। उनके बाद विट्ठलनाथ जी के समय मे भक्ति का स्वरूप और भी व्यापक तथा वैज्ञानिक हुआ। इन सम्प्रदायो के भक्ति ग्रन्थो मे यद्यपि मुख्य रूप से ब्रह्म सूत्र श्रीमद्भगवद् गीता तथा कुछ पुराण ही आधार हैं। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद पञ्चरात्र तथा नारद भक्ति सूत्र आदि भक्ति परक ग्रथो का भी इन्होने पूरा-पूरा उपयोग किया है। वास्तव मे इन दोनो ही सम्प्रदायो मे भागवत की नवधा भक्ति के अतिरिक्त प्रेमाभक्ति को विशेष महत्त्व दिया है।

क्ति की व्याख्या

भक्ति शब्द भज सेवायाम् धातु से क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनाया है जिसका अर्थ है ग्रोन् का सेवा प्रकार। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र मे भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर मे परम अनुरक्ति ही भक्ति है—शाण्डिल्य भक्ति भक्ति चन्द्रिका, सम्पादक श्री गोपीनाथ कविराज पृष्ठ ५। नारद भक्ति सूत्र मे भक्ति नक्षण इस प्रकार बताया है—

(१) सात्वस्मिन् परम प्रेमरूपा (२) अमृत स्वरूपा (३) यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो न, अमृतो भवति, तृप्तो भवति, (४) यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति न द्वेष्टि न नोत्साही भवति (५) यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति। र्—वह भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा भी है। जिस परम रूप और अमृत रूप भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है अमर हो जाता है। जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा है, न शोक करता है, न किसी वस्तु मे आसक्त होता है और न उसे विषय-भोगो की मे उत्साह होता है तथा जिसको प्राप्त करके मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो है और आत्माराम बन जाता है।

श्रीमद्भागवत मे भक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है—

स वै पुसा परोधर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्य प्रतिहता ययाऽऽत्मा सप्रसीदति।। १–२–६

अर्थात् मनुष्यो के लिए सर्व श्रेष्ठ धर्म वही है जिससे भगवान् श्रीकृष्ण मे भक्ति भक्ति भी ऐसी जिसमे किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य निरन्तर बनी ऐसी भक्ति से हृदय आनन्द स्वरूप परमात्मा की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो है।

भक्ति रसामृत सिन्धु मे भक्ति की बडी विस्तृत व्याख्या की गई है, इस ग्रन्थ के विभाग है, पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर। पूर्व विभाग मे चार लहरी है। प्रथम मे सामान्य भक्ति का स्वरूप बताया गया है और उसे उत्तमा भक्ति से, जो अन्याभिलाष ानुकूल्येन कृष्णानुशीलन स्वरूपा है, भिन्न बताया है। दूसरी लहरी मे साधना का स्वरूप बताया है और साधना भक्ति के वैधी और रागानुगा दो भेद बताये है। नहरी मे भाव भक्ति का विवेचन है और चतुर्थ मे प्रेम भक्ति का।

वल्लभाचार्य ने शास्त्रार्थ प्रकरण मे भक्ति का लक्षण इस प्रकार कहा है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ सर्वतोऽधिक।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा।।

त० दी० नि० ज्ञानसागर बम्बई श्लोक ४६ पृष्ठ १२७।

अर्थात् भगवान् मे माहात्म्यज्ञान पूर्वक सुदृढ और सतत स्नेह ही भक्ति है मुक्ति सरल उपाय नही है। इन सभी लक्षणो मे दो बातो पर जोर दिया गया है—ग्वर के प्रति अनन्य प्रेम तथा (२) अन्य सासारिक वस्तुओ से वैराग्य। और भी अनेक ने भक्ति के लक्षण किए है, परन्तु हमारा अभिप्राय तो केवल श्रीमद्भागवत की भक्ति ान है। श्रीमद्भागवत की भक्ति का हम तीन प्रकार से निरूपण करेंगे,

(१) श्री मद्‌भागवत मे विशुद्ध भक्ति, (२) श्रीमद्‌भागवत मे नवधा भक्ति तथा (३) श्री मद्‌भागवत मे प्रेमा भक्ति ।

श्रीमद्‌भागवत में विशुद्ध भक्ति

जैसा कि हम पहले कह चुके है श्रीमद्‌भागवत के आदि मध्य और अन्त मे भक्ति का ही वैशिष्ट्य है । प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय मे भागवतकार ने भक्ति का स्वरूप बतलाया है, फिर बारहवे स्कन्ध के अन्त मे कहा गया है, "देवताओ के आराध्यदेव सर्वेश्वर आप ही हमारे एकमात्र स्वामी और सवस्व है, अब आप ऐसी कृपा कीजिए कि बार-बार जन्म ग्रहण करते हुए भी आपके चरण कमलो मे हमारी भक्ति बनी रहे । जिन भगवान् के नामो का सकीतन सारे पापो को सवथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान् के चरणो मे आत्म-समपरण तथा प्रणति सवदा के लिए सब प्रकार के दु खो को शान्त कर देती है उन्ही परम तत्त्व रूप श्रीहरि को मे नमस्कार करता हूँ ।"

भागवत स्कन्ध १२ अध्याय १३ श्लोक २२, २३

इस प्रकार भागवतकार भक्ति की परिभाषा से ग्रन्थ का प्रारम्भ करता है और भक्ति की प्राथना पर ही समाप्त करता है । बीच-बीच मे भक्ति के अनेक विवेचन भागवतकार ने किए है । श्रीमद्‌भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अध्यायो का विषय एक प्रकार से भक्ति ही है । तृतीय स्कन्ध के २५वे अध्याय मे भक्ति योग की महिमा का वणन और २९ व अध्याय मे भक्ति का मम बतलाया गया है । चतुथ और पञ्चम अध्याय मे भगवान् की भक्ति का क्रियात्मक स्वरूप हे जो स्तुति और स्तोत्रो से प्रकट होता है । षष्ठ स्कन्ध को भक्ति का केन्द्र बताया जाता है क्योकि उसमे नर देव और दैत्य सभी पर भगवान् ने अनुकम्पा की है । सप्तम स्कन्ध भक्त-शिरोमणि प्रह्लाद के आख्यान द्वारा भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित करता है । अष्टम तथा नवम स्कन्ध मे भी भागवतकार ने भक्ति का महत्त्व प्रदर्शित किया है । दशम स्कन्ध तो भगवान् कृष्ण की लीलाओ का स्कन्ध होने के कारण साक्षात् भक्ति का स्वरूप ही है । फिर एकादश स्कन्ध मे भागवतकार ने भक्ति की पूणरूप से व्याख्या की है । अब हम भागवत के भक्ति-सम्बन्धी मुख्य मुख्य स्थलो का निर्देश करेगे । एकादश स्कन्ध के १४वे अध्याय मे भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव जी से कहते है, "उद्धव ! मेरी बढी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान, न धम, न वेदो का स्वाध्याय न तप और न दान ही करा सकता है । मै सन्तो का प्रिय आत्मा हूँ, एक मात्र श्रद्धा सम्पन्न भक्ति से ही मेरी प्राप्ति सुलभ है । दूसरो की तो बात ही क्या कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डालादिको को भी मेरी भक्ति पवित्र कर देती है, मनुष्य मे सत्य और दया से युक्त धम हो तथा तपस्या से युक्त विद्या भी हो, पर तु मेरी भक्ति न हो तो वे धम और विद्या उनके अन्त करण को पूणरूप से पवित्र नही कर सकते । मेरे प्रेम से जब तक शरीर पुलकित नही हो जाता, हृदय द्रवित नही हो उठता, आनन्द के आँसुओ की झडी नही लग जाती तब तक ऐसी मेरी भक्ति के बिना अन्त करण कैसे शुद्ध हो सकता है । भक्ति के आवेश मे जिसकी वाणी गद्-गद् हो गई है, चित्त द्रवित हो गया है जो कभी रोता है, कभी हँसता है, कभी सकोच छोडकर ऊँची आवाज से गाने लगता है और कभी नाच उठता है ऐसा मेरा भक्त स्वय पवित्र है इसमे तो कहना

ही क्या, वह तीनो लोको को पवित्र कर देता है। जिस प्रकार अग्नि से तपाए जाने पर सोना मैल को त्याग कर अपने स्वच्छ स्वरूप को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार मेरे भक्तियोग के द्वारा आत्मा भी कमवासना से मुक्त होकर मुझ भगवान् को प्राप्त हो जाता है।"[१] भगवान् स्वय इस प्रकार के भक्तो के पीछे-पीछे फिरा करते है जैसा कि हमने इसी अध्याय मे कहा है, मै उन भक्तो के पीछे पीछे सदा इसलिए फिरा करता हूँ, कि उनकी चरणरज से पवित्र हो जाऊँ।[२] नवे स्कन्ध मे भी भगवान् ने अपने को भक्तो के अधीन होने की घोषणा की है। वे दुर्वासा जी से कहते है, हे दुर्वासा! मे सदैव भक्तो के अधीन हूँ, मुझे तनिक भी स्वतत्रता नही है, मेरे सीधे-सादे सरल भक्तो ने मेरे हृदय को अपने हाथ मे कर रक्खा है, भक्त जन मुझे प्यार करते है और मैं उनको। ब्रह्मन्! अपने भक्तो का एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ, इसलिए अपने साधुस्वभाव भक्तो को छोडकर न मै अपने आप को चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मी को ही, जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण धन, इहलोक और परलोक को छोडकर मेरी शरण आगए है उन्हे छोडने का सकल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ। जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत से सदाचारी पति को वश मे करलेती है वैसे ही मेरे साथ अपने हृदय को प्रेमवन्धन से वाध रखने वाले समदर्शी साधु भक्ति के द्वारा मुझे अपने वश मे कर लेते है। मेरे अनन्य प्रेमी भक्त सेवा से ही अपने को परिपूर्ण-कृतकृत्य-मानते है। मेरी सेवा के फलस्वरूप जब उ हे सालोक्य, सारूप्य आदि चारो मुक्तियाँ प्राप्त होती है तब वे उन्हे भी स्वीकार करना नही चाहते। फिर समय के फेर से नष्ट हो जाने वाली वस्तुओ की तो बात ही क्या? दुर्वासा जी! मैं आपसे और क्या कहूँ मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय है और उन प्रेमी भक्तो का हृदय स्वय मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नही जानते और मै उनके अतिरिक्त और कुछ नही जानता[३]।

भक्त्या त्वन यया शक्य अहमेवविधोऽर्जु न।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्त्वेन प्रवेष्टु च परन्तप।[४]

अर्थात्—अनन्य भक्ति के द्वारा हे अर्जु न! मुझे प्रत्यक्ष भी देखा जा सकता है, तत्त्व से जाना जा सकता है तथा एकीभाव से जाना जा सकता है। इसी प्रकार गीता के दशम अध्याय मे भी यही कहा गया है कि मेरे भक्त निरन्तर मुझ मे मन लगाने वाले, मुझ मे ही अपने प्राणो को अपण करने वाले मेरी भक्ति की चर्चा,द्वारा आपस मे मेरे भाव को जानते हुए और मेरा कथन करते हुए सदा स तुष्ट होते हे और मुझ मे ही निरन्तर रमण करते हैं। ऐसे निरन्तर ध्यान मे लगे हुए और प्रेम-पूवक मुझे भजने वाले भक्तो को मै वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूँ जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते है। भगवान् की भक्ति से काम क्रोधादि दोष स्वय ही नष्ट हो जाते है और भक्त साधु और धर्मात्मा हो जाता है जैसा कि छटे स्क ध मे शुकदेव जी कहते है, 'जो मोक्ष के स्वामी भगवान् श्री हरि की भक्ति करता है वह तो अमृत के समुद्र मे खेलता है छोटी तलैया मे भरे गन्दे जल के सदृश किसी भी भोग मे या स्वर्गादि मे उसका मन कभी चलायमान नही होता।[५] गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी एक चौपाई मे कहा है—

१ भागवत ११-१४, २०-२५
२ भागवत ११-१४-१६
३ भागवत स्कन्ध ९ अध्याय ४-६३—६८।
४ गीता ११।५४
५ भागवत ६-१२-२१

बसहि भगति मनि जिहि उरमाही। खल कामादि निकट नहि जाही ॥

इसी प्रकार गीता मे भी आया है।

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामन्यभाक्।
साधुरेव स मतव्य सम्यग्व्यवसितो हि स ॥
क्षिप्र भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्ति निगच्छति।
कोन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ॥[1]

अर्थात्—यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझ को निरन्तर भजता हे तो वह साधु ही मानने योग्य है क्योकि वह यथाथ निश्चय वाला है। शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अजु न ! तू निश्चय जान, मेरा भक्त नष्ट नही होता।

श्रीमद्भागवत की यह विशेषता है कि इसमे ज्ञान वैराग्य और भक्ति से मुक्त नैष्कम्य का आविष्कार किया गया है तथा भक्ति सहित ज्ञान का निरूपण हुआ है। श्रीमद्भागवत के तीसरे, चोथे, सातवे और बारहव स्कन्धो मे जहाँ कही ज्ञान का प्रसग आया है वहा बडी युक्ति और अनुभव की भाषा मे निगु ण तत्त्व का विवेचन हुआ है। ज्ञान की अन्तरग साधना मे श्रवण, मनन निदिध्यासन को विशेष स्थान देने पर भी, 'न तत्रोपायसहस्राणाम्' इत्यादि कहकर भक्ति को ही मुरय माना हे इसका कारण यह है कि ज्ञान का आविर्भाव होने के लिए शुद्ध अन्त करण की आवश्यकता होती है और भगवत काम रूप भक्ति अन्य समस्त कामनाओ को नष्ट करने का कारण होने से अ त करण शुद्धि का प्रधान साधन है। ज्ञान और भक्ति का सामजस्य भागवतकार ने प्रथम स्कन्ध मे भगवत् स्वरूप निरूपण मे किया है,

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मे ति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥[2]

ये तीन नाम पृथक-पृथक तत्त्वो के नही है। यह एक ही परमतत्त्व की दृष्टि भेद के अनुसार त्रिविध अनुभूतिमात्र है। ज्ञानरश्मि के उदय काल मे भगवत् तनु का जो आलोक साधक के शुद्ध सात्त्विक हृदय पटल पर प्रतिफलित होता है उसे ही ब्रह्म कहते है। यही आलोक पुञ्ज जब विश्वरूप से साधक के हृदयाकाश मे प्रतीत होता है तब उसे परमात्मा नाम से कहते है। योगीजन इसका प्रदेशमात्र अर्थात् अँगूठे के समान दीपकलिका के समान दशन करते है और इसे जगत् का अ तयामी मानते है। ये ब्रह्मानुभव और परमात्मदर्शन दोनो ही भगवत् तत्त्व के खण्ड या अश बोध मात्र है। इस ब्रह्म के प्रतिष्ठान एव परमात्मा के अधिष्ठान भूत परमतत्त्व का भक्तो को जो श्री श्यामरूप मे दशन होता है वह भगवान् नाम से निर्देशित किया जाता है। इस दशन से जो अनुभव होता है वही भगवान् का विज्ञान-समन्वित परमगुह्य ज्ञान है और यह भक्तिभावित नेत्रो से ही परिज्ञात होता है। भगवान् ने स्वय ब्रह्मा को अपना तात्त्विक रूप बतलाते हुए कहा है—

१ गीता ६। ३० ३१
२ भागवत १, २, ११

भागवत के शब्दो मे "भक्त्या सजातया भक्त्या" अर्थात् भक्ति की साधना से प्रेमभक्ति का उदय होने पर वे परमात्मा को प्राप्त होकर कृतकृत्य हो जाते है और उ हे सवदा सवत्र सव रूप मे भगवान् के ही दशन होने लगते है। जो कठोर हृदय के अधिकारी हे वे साधन भक्ति का अनुष्ठान करके धीरे-धीरे आत्म शुद्धि सम्पादन करते ह और फिर श्रवण मनन और निदिध्यासन के द्वारा आत्म-साक्षात्कार करके कृतकृत्य हो जाते है। उनकी दृष्टि मे शरीर और ससार का अस्तित्व नही रहता। वे विशुद्ध चेतन के रूप मे सदा के लिए स्थित हो जाते है।

वास्तव मे ज्ञान और भक्ति मे कोई तात्त्विक भेद नही हे, भवित की पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति है। जहा भक्ति को ज्ञान से श्रेष्ठ बतलाया गया हे वहा भक्ति का अथ साधन भक्ति हे और जहाँ ज्ञान को भक्ति से श्रेष्ठ बताया गया है वहा ज्ञान का अथ परोक्षज्ञान है। पराभक्ति और परम ज्ञान दोनो एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत मे स्थान-स्थान पर भक्ति और ज्ञान का वणन हुआ है। ज्ञान और भक्ति दोनो ही अन्तरङ्ग भाव है। इसीलिए अ तरग मे रहने वाले परमात्मा का साक्षात्कार करते हे। श्रीमद्भागवत में कहा गया है—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य पर मन ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु स ।।[1]

अर्थात् इन्द्रियो से परे मन और मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा है जो साधन जितना ही अन्तरग होगा वह उतना ही भगवान् के निकट होगा। इस दृष्टि से इन्द्रियो से होने वाले कम ज्ञान अथवा भक्ति सहायक होकर ही परमात्मा की भक्ति मे साधन होते है। वे स्वय साक्षात् रूप से भक्ति के साधन नही हे, चाहे स्वाध्याय, मनन, आचाय सेवन आदि कर्मों के द्वारा ज्ञान की साधना की जाय अथवा कत्तव्य पूजा-पाठ आदि द्वारा भक्तियोग की साधना की जाय, कर्म इन्ही का साधन होगा। जहा निष्काम कमयोग का निष्ठा के रूप मे वणन आया है वहाँ निष्कामता की ही प्रधानता हे, इसलिए वह निष्कामता भक्तियोग के ही अन्तगत है क्योकि भगवदथ कम ही निष्काम कम हे। कम प्राय तीन प्रकार के माने गए है, निष्काम, सकाम और निरथक। निरथक कम तो निरथक ही है। सकाम काय दो प्रकार के होते है, शास्त्रानुकूल तथा शास्त्र प्रतिकूल। शास्त्र प्रतिकूल कम कुछ काल के लिए इस लोक मे सफल हो सकते है पर तु आगे चलकर उनके फलस्वरूप आसुरी योनि और नरक प्राप्त होता है। शास्त्र के अनुकूल जो सकाम कम है।

एतावदेव जिज्ञास्य तत्त्वजिज्ञासुनात्मन ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्या यत्स्यात् सर्वत्र सवदा ।।[2]

अर्थात् अन्वय व्यतिरेक तथा प्रत्यक्ष अनुमानादि के द्वारा ही भगवान् के स्वरूप का बोध होता है। भागवत के द्वितीय स्कन्ध मे इस प्रक्रिया का इस प्रकार विश्लेषण किया है, "जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवत् भक्तो के सेवन से अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं

१ गीता ३ । ४२

२ भागवत स्क ध २ अध्याय ९ श्लोक ३५

तो पवित्र कीर्त्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति स्थायी प्रेम की प्राप्ति होती है, तब रजोगुण तमोगुण के भाव—काम और लोभ—शान्त हो जाते है और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुण मे स्थित एव निमल हो जाता हे। इस प्रकार भगवान् की प्रेममयी भक्ति से जब ससार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती है, हृदय आन द से भर जाता है तब भगवान् के तत्त्व का अनुभव अपने आप हो जाता है। हृदय मे आत्मस्वरूप भगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रथि टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हे और कम-बन्धन क्षीण हो जाता है। इसी से बुद्धिमान लोग नित्य निरन्तर बडे आनन्द से भगवान् कृष्ण के प्रति प्रेम-भक्ति करते हे जिससे आत्मप्रसाद की प्राप्ति होती हे।[१]

परन्तु इस विवेचन से यह न समझना चाहिए कि श्रीमद्भागवत मे भक्ति का वणन साधन रूप मे ही हुआ है। कई स्थलो पर तो भागवतकार ने ज्ञान और मुक्ति से बढकर भक्ति को बतलाया है। पञ्चम स्कन्ध मे शुकदेव जी परीक्षित् से कहते है—

मुक्ति ददाति कर्हिचित्स्म न भक्ति योगम्।[२]

अर्थात् भगवान् भक्त को मुक्ति भी सहज ही मे दे देते है परन्तु भक्ति-योग को वे सहज मे नही देते। इसी प्रकार भगवान् के भक्त भी चारो प्रकार की मुक्ति मे से किसी प्रकार की मुक्ति को स्वीकार करना नही चाहते, वे केवल भगवान् की सेवा ही करना चाहते हे। तीसरे स्कन्ध मे भगवान् कपिल ने अपनी माता देवहूति को जो भक्तो की महिमा बताई है उससे यही सिद्ध होता हे कि भक्ति साध्य भी है और साधन भी। 'अद्वैत सिद्धि' कार श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने भक्ति रसायन मे साध्य-साधन रूप भक्ति की सगति अधिकारी भेद से लगाई हे। वे कहते है कि साधन भक्ति का अनुष्ठान सभी को करना पडता है। उसके करने पर अधिकारी भेद प्रकट हो जाता है। दो प्रकार के अधिकारी होते हे, एक तो कोमल हृदय के और दूसरे कठोर हृदय के। कोमल हृदय के अधिकारी वे है जो भगवान् की लीला, दयालुता उदारता, आदि का वणन सुनकर ही द्रवित हो जाते है। उनकी आँखो से आसू बहने लगते हे, गला रुँध जाता है और शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। ऐसे अधिकारियो के जीवन मे साधन भक्ति के फलस्वरूप साध्य भक्ति का उदय होता है। उनसे इस लोक और परलोक मे सुख की प्राप्ति होती है, परन्तु भगवत् प्राप्ति नही होती है। भगवत् प्राप्ति होती है निष्काम कर्मों से, जो सवदा शास्त्रानुकूल ही होते है। इसीलिए श्रीमद्भागवत मे निष्काम भगवत् कम को ही निष्काम माना गया है। वास्तव मे भागवत मे ऐसे कर्मों को कम ही नही माना गया है उनको निगुण कहा गया है। वे भक्ति के अन्तगत हे अथवा स्वय भक्ति ही है। श्रीमद्भागवत मे ज्ञान और वैराग्य को भक्ति के साथ जोडा गया हे परन्तु प्रधानता भक्ति को ही दी है। भागवत माहात्म्य मे भक्ति नारद से कहती है कि, "मेरा नाम भक्ति है, ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र है।"[३] फिर आगे चलकर वह अपना परिचय देती है, "मै द्रविड देश मे उत्पन्न हुई, कर्नाटक मे बढी, कही-कही महाराष्ट्र मे सम्मानित हुई किन्तु गुजरात मे मुझको बुढापे ने आ घेरा, वहाँ घोर

१ भागवत प्रथम स्कध अध्याय २ श्लोक १८ से २२

२ भागवत पचम स्कध अध्याय ६ श्लोक १८

३ भागवत माहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४५

कलियुग के प्रभाव से पाखण्डियो ने मुझे अग-भग कर दिया। चिरकाल तक यह अवस्था रहने के कारण मैं अपने पुत्रो के साथ दुबल और निस्तेज हो गई। अब जब से मै वृदावन आई तब से पुन परम सुन्दरी रूपवती नवयुवती हो गई हूँ।[1] इसके उत्तर मे नारद ने कहा कि, "सत्य त्रेता और द्वापर इन युगो मे ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन ने किन्तु कलियुग मे तो भक्ति ही ब्रह्म सायुज्य की प्राप्ति कराने वाली है।"[2] फिर वे आगे कहते है कि, "भगवान् तप वेदाध्ययन ज्ञान और कम किसी भी साधन से बस मे नही किए जा सकते, वे केवल भक्ति से ही वशीभूत होते है। इसमे गोपीजन प्रमाण है। मनुष्यो को सहस्रो जन्म के पुण्य प्रताप से भक्ति मे अनुराग होता है, कलियुग मे केवल भक्ति ही सार है, भक्ति से तो साक्षात् श्रीकृष्णचद्र सम्मुख उपस्थित हो जाते है जो लोग भक्ति से द्रोह करते हैं वे तीनो लोको मे दु ख ही दु ख पाते है, पूवकाल मे भक्त का तिरस्कार करने वाले दुर्वासा ऋषि को बडा कष्ट उठाना पडा था, बस व्रत, तीथ, योग, यज्ञ, ज्ञान-चर्चा आदि बहुत से साधनो की आवश्यकता नही है, एकमात्र भक्ति ही मुक्ति देने वाली है।"[3] नारद के इन वचनो मे भागवत का सारा सार आगया है। श्रीमद्भागवत मे भगवद् भक्ति ही को एकमात्र लोक-मगल का हेतु बताया है और ज्ञानी योगी और भक्त का सामञ्जस्य करके भागवतकार ने भक्ति की महिमा प्रतिपादित की हे। श्रद्धा के साथ श्रीमद्भागवत के श्रवण से ज्ञान और वैराग्य से युक्त भक्ति की प्राप्ति होती है और भक्ति से ही अपने हृदय मे महात्मागण परमतत्त्व रूप परमात्मा का साक्षात्कार करते है। इस सावन और सा०यरूपा भक्ति को हम इस प्रकार कह सकते है कि मन की एकाग्रता से भगवान् का नित्य-निरन्तर श्रवण कीत्तन और आराधन आदि भक्ति का साधन पक्ष है और भगवान् मे परानुरक्ति अथवा अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिभावना प्रेम भक्ति उसका सा०य पक्ष है। भागवत मे दोनो ही पक्षो का विवेचन हुआ है। पहले प्रकार की साधन रूपा भक्ति को नवधा भक्ति अथवा वैधी भक्ति कहते है तथा दूसरे प्रकार की साध्यरूपा भक्ति को प्रेमा भक्ति अथवा रागानुगा या रागात्मिका भक्ति कहते है। वैधी भक्ति को कुछ लोग लोक मर्यादा भक्ति भी कहते है। 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' मे वैधी और रागानुगा दोनो ही भक्तियो को साधन भक्ति कहा है और पराभक्ति को साध्य भक्ति कहा है,

वैधी रागानुगा चेति सा द्विधा साधनाभिधा।
यत्र रागानवाप्तत्त्वात् प्रवृत्तिरुपजायते ॥[4]

इस ग्रन्थ मे भक्ति गौणी तथा परा भेद से दो प्रकार की मानी गई है। गौणी भक्ति के दो भेद किए है, वैवी और रागानुना। रागानुगा के दो भेद है, कामरूपा और सम्बन्ध रूपा। यह भक्ति साधन भक्ति है और जब सब कामनाओ से रहित होकर भक्त की ईश्वर मे परानुरक्ति हो जाती है वह पराभक्ति कहलाती है। भक्ति ग्रन्थो मे भक्ति की भाँति-भाँति से व्याख्या की गई है, उसका विवेचन हमारा उद्देश्य नही है। हमतो केवल यही दिखाना चाहते है कि श्रीमदभागवत मे साधन और साध्य रूपा दोनो ही भक्तियो का विस्तार से विवेचन हुआ है।

१ भागवत माहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४८
२ भागवत माहात्म्य अध्याय २ श्लोक ४
३ भागवत माहात्म्य अ'याय २ श्लोक १८ से २० तक
४ हरिभक्ति रसामृत सिन्धु पूर्व विभाग, लहरी २ श्लोक ३

साधन रूपा भक्ति के पाच अ ग माने गये हैं।

(१) उपासक—

(२) उपास्य—भगवान् और उसके स्वरूप की कल्पना जैसा भागवत मे लिखा है,

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ॥[1]

भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को पूजा की तीन विधियाँ बतलाई है, वैदिक तान्त्रिक और मिश्रित, और अपनी सुविधानुसार इनमे किसी को भी अपनाने का आदेश दिया है। इसी वैधी भक्ति के सम्बन्ध मे भगवान् के पाँच प्रकार के अवतारो का वर्णन हुआ है। १—अर्चावतार—जगन्नाथ रामेश्वर आदि स्थायी विग्रह आदि शालिग्राम नर्मदेश्वर आदि अन्य विग्रह २—विभवावतार—मत्स्य, कच्छप परशुराम आदि अशावतार ३—व्यूहावतार—वासुदेव सकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध अथवा राम लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न जो परमात्मा जीव मन और अहकार के प्रतिरूप है। ४—परावतार—राम-कृष्ण आदि पूर्णावतार जो परमात्मा और सर्वान्तिर्यामी होते हुए भी व्यक्तित्व विशिष्ट है। ५—अ तर्यामी।

(३) पूजा द्रव्य—उपास्य के पश्चात् तीसरा अग पूजा द्रव्य है, इसमे कलश, दीप घण्टी आदि तथा पचामृत, वस्त्र, यज्ञोपवीत, पुष्प, चन्दन ताम्बूल आदि सम्मिलित है।

(४) पूजा विधि—मानसिक पूजा के लिए ध्यानादि तथा मूर्ति पूजा के लिए षोडश उपचार, आह्वान, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चन्दन अक्षतादि पुष्प, तुलसी आदि धूप, दीप, नैवेद्य, जल आचमन, ताम्बूल, फल नीराजना परिक्रमा आदि।

(५) मन्त्र जप—इस विधान मे अनेक मन्त्रो की सृष्टि हुई है। आगे चलकर मत्र जप मे पच तत्त्वो को बडा महत्त्व दिया गया है। विशेषकर तन्त्र ग्रथो मे इनका विस्तार से वर्णन हुआ है। वे पाँच तत्त्व ये है, गुरु तत्त्व, म त्र तत्त्व तनस्तत्व, देव तत्त्व और ध्यान-तत्व। निर्वाण तन्त्र मे लिखा है—

तत्त्वज्ञानमिद प्रोक्त वैष्णवे शृणु यत्नत।
गुरुतत्व मन्त्रतत्त्व मनस्तत्त्व सुरेश्वरी।
देव-तत्त्व ध्यानतत्त्व पच तत्व वरानने।

तथा तन्त्र सार मे, 'पञ्चतत्त्व विहीनाना कलौ सिद्धिन जायते' लिखा है। तन्त्र ग्रन्थो मे भक्ति को मन्त्र योग का एक अग माना है और चित्तवृत्ति के निरोध के लिए उसका सहारा लिया है जिससे म त्र योगी भाव समाधि मे जाकर ईश्वर का साक्षात्कार करता है।

हम पहले कह चुके है कि रूप गोस्वामी ने वैधी और रागानुगा दोनो ही भक्तियो को साधन भक्ति कहा है तथा साधन भक्ति से परे पराभक्ति को साध्य भक्ति माना है। साधारण रूप से यह पराभक्ति प्रेमभक्ति कहलाती है। वल्लभाचार्य के मतानुसार इस भक्ति की अवस्था प्राप्त करने के पश्चात् फिर भक्त को किसी साधन नियम की आवश्यकता नही है। इस प्रकार आचार्यो ने भक्ति का भाँति भाँति विवेचन किया है। कुछ लोगो ने साधन भक्ति को वैधी और प्रेम-भक्ति को रागात्मिका माना है। श्रीमद्भागवत मे भक्ति के

१ भागवत एकादश स्कन्ध अध्याय २७ श्लोक १२

सभी प्रकार दिए हुए है। भागवत के तृतीय स्कन्ध मे कपिल मुनि देवहूति से प्रसन्न होकर कहते है, "माता जी! साधको के भाव के अनुसार भक्ति योग का अनेक प्रकार से प्रकाश होता है क्योकि स्वभाव और गुणो के भेद से मनुष्यो के भावो मे भी विभिन्नता आ जाती है। जो भेददर्शी को भी पुरुष हृदय मे हिसा, दम्भ अथवा मात्सय का भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है वह मेरा तामस भक्त है। जो पुरुष विषय, यश, और ऐश्वय की कामना से प्रतिमादि मे मेरा भेद भाव से पूजन करतो हे वह राजस भक्त है। जो व्यक्ति पापो का क्षय करने के लिए परमात्मा को अपण करने के लिए और पूजन करना कत्त व्य है—इस बुद्धि से मेरा भेदभाव से पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है। जिस प्रकार गगा का प्रवाह अखण्ड रूप से समुद्र की ओर बहता रहता है, इसी प्रकार मेरे गुणो के श्रवणमात्र से मन की गति का तैलधारवत् अविच्छिन्न रूप से मुझ सर्वान्तर्यामी के प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तम मे निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निगु ण भक्ति योग का लक्षण कहा गया है। ऐसे निष्काम भक्त, दिए जाने पर भी मेरी सेवा को छोडकर सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य और सायुज्य मोक्ष तक नही लेते। भागवत सेवा के लिए मुक्ति का तिरस्कार करने वाला यह भक्ति योग ही परम पुरुषाथ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनो गुणो को लाँघकर मेरे भाव को—मेरे प्रेमरूप अप्राकृतिक स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।"[1]

यहाँ भक्ति के चार प्रकार माने है, सात्त्विकी, राजसी, तामसी और निगु ण। भागवत के सप्तम स्कन्ध मे प्रहलाद जी ने विष्णु भगवान् की भक्ति के नव भेद बताए है।

श्रवण कीत्त न विष्णो स्मरण पादसेवनम्।
अचन वदन दास्य साख्यमात्मनिवेदनम् ॥
इति पु सार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥[2]

अर्थात्—भगवान् की भक्ति के नौ भेद है। भगवान् के गुण लीला नामादि का श्रवण, उन्ही का कीत्त न, स्मरण, उही के चरणो की सेवा अर्चा बन्दन दास्य सख्य और आत्म-निवेदन। यदि भगवान् के प्रति समपण के भाव से यह नौ प्रकार की भक्ति की जाय तो मै उसी को उत्तम अध्ययन समझता हूँ। यह नो प्रकार की भक्ति से नवधा भक्ति कही जाती है जिसको वैधी अथवा साधन भक्ति भी कह सकते है। यह भी सकाम और निष्काम दो प्रकार की होती है। निष्काम वैधी भक्ति ही रागात्मिका भक्ति तक भक्त को ले जाती है। इन साधनो का श्रीमद्भागवत मे वणन हुआ है। इनके द्वारा कम-ग्रन्थि छिन्न हो जाती है, अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जातो है, रजोगुण एव तमोगुण के भाव तिरोहित हो जाते है और सत्त्वगुण का उद्रेक हो जाता है। हृदय के सत्त्व गुण मे स्थित होने से भगवान् की प्रेमस्वरूपा भक्ति का उदय होता है, तथा ससार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती है।

इन नौ साधनो के तीन भाग किए जा सकते है। श्रवण कीत्तन और स्मरण जो श्रद्धा और विश्वास की वृत्ति के सहायक है। पाद सेवन अचन और वन्दन रूप सम्बन्धी

१ भागवत तृतीय स्क ध, अध्याय २६ श्लोक ७ से १४।
२ भागवत सप्तम स्क ध, पञ्चम अध्याय श्लोक २३, २४।

साधन हे जो वैवी भक्ति के विशेष अग हे। दास्य सख्य और आत्म-निवेदन ये तीन भाव-सम्बन्धी साधन है जो रागात्मिका भक्ति से सम्बन्ध रखते ह। श्रीमद्भागवत मे पहले और दूसरे सावनो पर विशेष बल दिया गया है। पाद-सेवन अर्चन और वन्दन भगवान् के अवतारो से सम्बन्ध रखते है जिनका वर्णन भी भागवत मे स्थान स्थान पर मिलता हे। प्रारम्भ मे सावक को स्थूल रूप से करना पडता है और धीरे धीरे वह भगवान् के सूक्ष्म रूप मे स्थित हो जाता है। श्रीमद्भागवत मे लिखा हे, "विश्वेश्वर भगवान् दृष्ट नही द्रष्टा है, सगुण और निगु ण सब इन्ही का स्वरूप है। जब तक इनमे अनन्य प्रेममय भक्ति योग न हो जाय तब तक साधक को नित्य नैमित्तिक कर्मो के बाद एकाग्रता से भगवान् के स्थूल रूप का ही चिन्तन करना चाहिए।"[१] श्रीमद्भागवत मे कामनाओ के अनुसार विभिन्न देवताओ की उपासना का निरूपण है परन्तु वह सकाम उपासना भक्ति की कोटि तक नही पहुँचती।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के २८वे अध्याय मे कपिल भगवान् ने अष्टागयोग की विधि का जो निरूपण किया है उसे हम एक प्रकार से वैधी भक्ति ही कह सकते है जिसके द्वारा चित्त शुद्ध होकर परमात्मा के माग मे प्रवर्तित हो जाता है। इस निरूपण मे यथाशक्ति शास्त्र विदित कत्तव्यो का पालन करना, शास्त्र विरुद्ध आचरण का परित्याग करना तथा नियत आहार-विहार और व्रत दानादि से सावधानता-पूवक प्राणो को जीत कर बुद्धि के द्वारा अपने कुमाग गामी चित्त को धीरे-धीरे एकाग्र करने की ओर निर्देश है। फिर भगवान् की मूर्ति की ओर ध्यान का विधान बताया गया है, जिस ध्यान के अभ्यास से साधक का श्रीहरि मे प्रेम हो जाता है, फिर धीरे-धीरे उसका ध्यान वृत्तिरूपता का परित्याग कर ब्रह्म के रूप मे लीन हो जाता है और वह निष्काम भक्ति-योग का अधिकारी हो जाता है। निष्काम भक्ति योग के लिए भगवान् कपिल ने लिखा है कि, "निष्काम भाव से श्रद्धापूवक अपने नित्य-नैमित्तिक कत्तव्यो का पालन कर, नित्यप्रति हिंसा-रहित उत्तम क्रियायोग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा का दशन, स्पश पूजा स्तुति और वन्दना करने, प्राणियो मे मेरी भावना करने, धैय और वैराग्य के अवलम्बन, महापुरुषो का मान, दीनो पर दया और समान स्थिति वालो के प्रति मित्रता का व्यवहार करने, यम नियमो का पालन, अध्यात्म शास्त्रो का श्रवण और मेरे नामो का उच्च स्वर से कीत्तन करने से तथा मन की सरलता, सत्पुरुषो के सग और अहकार के त्याग से मेरे धम का (भागवत धम का) अनुष्ठान करने वाले भक्त पुरुष का चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणो के श्रवण मात्र से अनायास ही मुझ मे लग जाता है।"[२]

जैसा कि हम पहले कह चुके है श्रीमद्भागवत मे इम नवधाभक्ति का स्थान-स्थान पर विवेचन हुआ है। भागवत के उन स्थलो मे से कतिपय स्थल दिखाने का प्रयत्न करेंगे। दास्य सख्य और आत्मनिवेदन विशेषकर दशम स्कन्ध के विषय है तथा अन्य अ गो की ओर भागवत मे स्थान-स्थान पर सकेत मिलता है। छठे स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे विष्णु दूतो के द्वारा विष्णु नामोच्चारण का महत्त्व बताया गया है। उसमे लिखा है, "सकेत मे, परिहास मे, तान अलापने मे अथवा किसी की अवहेलना करने मे भी यदि कोई भगवान् के नामो का उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते है।" और फिर आगे चलकर

१ भागवत द्वितीय स्कन्ध अध्याय २ श्लोक १४।

२ भागवत तृतीय स्कन्ध, अध्याय २९ श्लोक १५ से १९

बताया है कि यद्यपि तपस्या जप दान आदि प्रायश्चितो के द्वारा भी पाप नष्ट हो जाते है परन्तु उन पापो से मलिन हुआ उसका हृदय शुद्ध नही होता। भगवान् के चरणो की सेवा से वह भी शुद्ध हो जाता है। इसी अध्याय के अन्त मे शुकदेव जी कहते हे, "हे परीक्षित् ! देखो अजामिल जैसे पापी ने मृत्यु के समय पुत्र के बहाने भगवान् का उच्चारण किया उसे भी वैकुण्ठ की प्राप्ति हो गई, फिर जो लोग श्रद्धा के साथ भगवान् नाम का उच्चारण करते है उनकी तो बात ही क्या है।" इसी स्कन्ध के १३वे अध्याय मे आठवे श्लोक मे कहा गया है, "भगवान् के सकीतन मात्र से ही ब्राह्मण पिता गौ माता तथा आचाय की हत्या करने वाले महा पापी, कुत्ते का मास खाने वाले चाण्डाल और कसाई भी शुद्ध हो जाते है।"

भगवन्नाम-कीत्तन का माहात्म्य तो श्रीमदभागवत मे विशेष रूप से कहा गया है। चैत य महाप्रभु ने कीत्तन पक्ष को अपनी भक्ति मे बडा महत्त्व दिया है। उन्होने लिखा है कि, श्रीकृष्णनामकीतन चित्तरूपी दपण का माजन कर्त्ता है, ससार रूप महादावाग्नि का शमन कर्त्ता है, श्रेय रूप कुमुद को विकाश करने वाली चन्द्रिका का प्रकाश कर्त्ता है, विद्या-वधू का जीवन है, आनन्द सिन्धु को बढाने वाला है, प्रतिपद मे पूर्णामृत का आस्वादन देता है एव आत्मा को सवप्रकार से निमग्न करता है, ऐसा श्रीकृष्ण नाम सकीतन परम विजय को प्राप्त हो।" श्रीचैत य शिक्षाष्टक का यह पहला श्लोक है—

चेतोदपणमाजन भवमहादावाग्नि निर्वापण,
श्रेय कैरव-चन्द्रिका-वितरण विद्या-वधू-जीवन।
आनन्दाम्बुधिवद्धन प्रतिपद पूर्णामृतस्वादन,
सर्वात्मस्नपन पर विजयते श्रीकृष्ण-सकीतनम्।[1]

भागवत के प्रथम स्कन्ध मे ही सूत जी ऋषियो से कहते है, "श्रीकृष्ण के श्रवण और कीर्त्तन दोनो पवित्र करने वाले है, वे अपनी कथा सुनने वालो के हृदय मे आकर स्थित हो जाते हैं और उनकी अशुभ वासनाओ को नष्ट कर देते हे क्योकि वे सन्तो के नित्य सुहृद्य है।"[2]

बारहवे स्कन्ध मे कीत्तन का महत्त्व बताते हुए शुकदेव जी कहते है,

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुण।
कीतनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्ध पर ब्रजेत ॥[3]

अर्थात् कलियुग मे सब दोष ही भरे है परन्तु इसमे एक बडा भारी गुण यह है कि श्रीकृष्ण के कीत्तन से ही मनुष्य सारे बन्धनो से छूटकर परमात्मा को पा जाता है। ग्यारहवे स्कन्ध मे भक्त उद्धव जी भगवान् श्रीकृष्ण से कहते है, 'हे श्रीकृष्ण ! जिसको परम मगल रूप और सुनने मे अमृत के समान तुम्हारी लीलाओ का स्वाद मिल गया है वह सारी इच्छाओ को छोड देता है।" बारहवे स्कन्ध मे श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित् से कहते है, "अति दुस्तर ससार सागर मे पडे हुए और ससार के विविध दुखो की भयानक अग्नि से

१ श्री चैतन्य शिक्षाष्टक, प्रथम श्लोक
२ भागवत १२-३-५१
३ भागवत ११-६-४४

जलते हुए जीव के पार जाने और शान्ति पाने के लिए श्रीकृष्ण की लीला ही जहाज है और उन लीलाओ का अमृत के समान रस ही शान्ति करने वाला है अत उसी का सेवन करे।"[१] तथा "श्रीकृष्ण की निमल निष्काम भक्ति ही यथाथ परमाथ है जो इस भक्ति को पाना चाहे वह मन लगाकर शुद्ध चित्त से भगवान् श्रीकृष्ण के अमगल नाश करने वाले, पवित्र चरित्रो का बारम्बार गान करे और सज्जनो के पास बैठकर सदा उन्ही को सुने।"[२]

हरि स्मरण का भी श्रीमद्भागवत मे महत्त्व दिखाया गया है। भागवत के ११वे स्कन्ध मे भगवान् श्रीकृष्ण कहते है, "जो पुरुष निरन्तर विषय चिन्तन करता है उसका चित्त विषयो मे फँस जाता है और जो मेरा स्मरण करता है वह मुझ मे तल्लीन हो जाता है।"[३] दशम स्क ध मे भगवान् की स्तुति करते हुए देवता कहते है, "हे भगवन्! जो पुरुष आप के मगलमय नामो और रूपो का स्मरण कीत्तन और ध्यान करता है और आपके चरण-कमलो की सेवा मे ही अपना चित्त लगाए रहता है उसे फिर जन्म-मृत्यु रूप ससार मे नही आना पडता।"[४]

श्रीमद्भगवद्गीता मे कहा गया है,

अनन्यचेता सतत यो मा स्मरति नित्यश ।
तस्याह सुलभ पाथ नित्ययुक्तस्य योगिन ॥[५]

अर्थात् हे अजु न! जो मनुष्य अनन्य चित्त होकर नित्य मेरा स्मरण करता है मुझ मे नित्य लगे हुए उस योगी को मैं अनायास ही प्राप्त हो जाता हूँ।

श्रवण कीतन और स्मरण तीनो ही प्रकार के भक्ति साधनो मे भगवन्नाम का विशेष वणन है। भागवत पुराण मे स्थान-स्थान पर इनका वणन है।

पाद सेवन अचन और व दन नामक भक्ति साधनो मे भगवान् के रूप का विशेष महत्त्व है। श्री मद्भागवत मे इन साधनो का भी विवेचन हुआ है। दशम स्कन्ध मे ब्रह्मा जी भगवान् जी से कहते है, हे देव! जो लोग आपके उभय चरण कमलो का लेश पाकर अनुगृहीत हुए है वे भक्त जन ही आपकी भक्ति के महत्त्व को जान सकते हैं। उनके सिवा अन्य कोई चिरकाल तक विचार करने पर भी आपके तत्त्व को नही जान सकता।[६] इसी स्कन्ध मे शुकदेव जी की उक्ति है, जिसका यश महान् पुण्य प्रद है उस मुरारि श्रीकृष्ण के चरण कमल ससार सागर मे नौका रूप है, जो लोग उस चरण कमल नौका के आश्रित है उनके लिए ससार सागर गौ के खुर चिह्न के समान है। वे उँसी नौका के सहारे परम पद को पहुच सकते है। फिर उन्हे पद पद पर विपत्ति के धाम इस ससार मे नही आना पडता।[७] आगे इसी स्कन्ध मे नाग-पत्नी श्री भगवान् से कहती है, "हे भगवान्! जो लोग आपके चरणो

१ भागवत १२–४–४०
२ भागवत १२–३–१५
३ भागवत ११–१४–२७
४ भागवत १०–२–३७
५ गीता ८–१४
६ भागवत १०–१४–१६
७ भागवत १०–१४–५८।

का धूल को प्राप्त हो जाते हैं वे फिर स्वग, चक्रवर्तीराज्य पाताल का राज्य ब्रह्मा का पद और योग की सिद्धि की तो बात ही क्या है मुक्ति की भी इच्छा नही करते।[1]" इसी स्कन्ध के उत्तरार्द्ध मे भगवान् श्रीकृष्ण की पटरानियाँ द्रोपदी से कहती हे, "हे साध्वी! हमे पृथ्वी के साम्राज्य, इन्द्र के राज्य अथवा इन दोनो के भोग, अणिमा आदि ऐश्वय, ब्रह्मा का पद मोक्ष अथवा सालोक्य सारूप्य मुक्तियाँ कुछ भी नही चाहिये। हम केवल इतना ही चाहती है कि अपने प्रियतम प्रभु के सुकोमल चरण कमलो की वह श्रीरज सवदा अपने सिर पर वहन किया करे जो लक्ष्मी जी के वक्षस्थल पर लगी हुई केसर की सुगन्ध से युक्त है। उदार शिरोमणि भगवान् के जिन चरण कमलो का स्पश उनके गो चराते समय गोप-गोपिया भिलनियाँ, तिनके, घास और लताये तक करना चाहती थी उन्ही की हमे भी चाह हे।[2] अन्य स्कन्धो मे भी पाद सेवन का महत्त्व बताया गया है। छठे स्कन्ध मे यमराज अपने दूतो से कहते हैं' जो पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के मधुर चरण-कमलो का आस्वादन कर चुकता हे वह फिर दुगति-प्रद माया के विषयो मे कभी अनुरक्त नही होता। इसके विपरीत जो अपने पापो का माजन करने के लिए पुन प्रायश्चित रूप कार्य ही करते है उनके कर्मो की वासना नही मिटती और फिर वे वैसे ही दोष कर बैठते है।[3] इसलिए यमराज ने अपने दूतो से कहा कि बडे-बडे परम हस दिव्य रस के लोभ से सम्पूण जगत् और शरीरादि से भी अपनी अहता ममता हटाकर अकिचन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्द के पदारविन्द का मकरद रस पान करते रहते है, जो दुष्ट उस दिव्य रस से विमुख हे और नरक के द्वार गृहस्थी की तृष्णा का बोझा बाँध उसे ढो रहे है उन्ही को मेरे पास बार बार लाया करो।[4] सप्तम स्कन्ध मे नृसिह भगवान् की स्तुति करते हुये प्रह्लाद जी कहते है, "मेरी समझ से धन कुलीनता आदि बारह गुणो से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभ के चरण कमलो से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपने मन बचन कम और प्राण भगवान् के चरण कमलो मे समर्पित कर रक्खे है क्योकि वह चाण्डाल तो अपने कुल तक को पवित्र कर देता है और बडप्पन का अभिमान करने वाला वह ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नही कर सकता।[5]

पाद सेवन की भाँति अचन और बन्दन का विषय भी श्रीमद्भागवत मे स्थान स्थान पर आया है। श्रीमद्भगवतगीता मे लिखा है।

पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदह भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन।[6]

अर्थात्—हे अजुन! जो मुझे पत्र पुष्प फल तथा जलादि भक्ति के साथ अपण करता है। श्रद्धा और भक्ति के साथ अर्पित किए हुए उस नियतचित्त पुरुष के पदार्थ को मैं प्रीति पूर्वक ग्रहण करता हूँ। अचन के विषय मे हम पहले ही लिख चुके है। वैष्णव सम्प्र-

१ भागवत १०–१६–३७।
२ भागवत १०–८३–४१–४२–४३।
३ भागवत ६–३–३३।
४ भागवत ६–३–२८
५ भागवत ७–९–१०
६ गीता ९–२६

दायो मे विशेषकर वल्लभ सम्प्रदाय मे इसका बडा महत्त्व है। भागवन के दशम स्कन्ध मे इसके विषय मे लिखा है, 'स्वग मोक्ष पृथ्वी और रसातल की सम्पत्ति तथा समस्त योग सिद्धियो की प्राप्ति का मूल भगवान् के चरणो का अचन है।[1] भागवत के नवे स्कन्ध के चतुथ अध्याय मे अम्बरीष की अचन भक्ति का उल्लेख है। अचन मे भगवान् की मूर्ति सद्गुरु तथा भक्त जन तीनो को ही भगवान् का स्वरूप समझ कर श्रद्धा भक्ति के साथ उन्हे अपना सवस्व अर्पित करना पडता है। षोडश उपचार तो अचन का बाह्य रूप है परन्तु मानसिक अचन मे इन बाह्य उपचारो की आवश्यकता नही रहती। भगवान् का ध्यान और आत्म-समपरण ही उसके उपचार है।

वन्दन भक्ति मे भगवान् की विनय, अनुनय, स्तोत्र-पाठ, प्राथना आदि सम्मिलित हैं। वास्तव मे पाद-सेवन, वन्दन और अचन भक्तियो के व्यापार सम्बद्ध है। श्रीमद्भागवत मे बहुत स्थानो पर स्तुतिया कराई गई है जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके है। एकादश स्कन्ध मे कवि नामक योगीश्वर कहते है, "ससार मे भगवान् के जन्म की और लीलाओ की बहुत मगलमयी कथाएं प्रचलित है उनको सुनते रहना चाहिए, उन गुणो और लीलाओ का स्मरण दिलाने वाले भगवान् के बहुत से नाम भी प्रसिद्ध है। लाज सकोच को छोड कर उनका गान करते रहना चाहिये। ऐसा व्यक्ति साधारण लोगो की स्थिति से ऊपर उठ जाता है। लोगो की मान्यताओ और धारणाओ से परे हो जाता है और ढग से ही नही स्वभाव से ही मतवाला सा होकर कभी खिलखिला कर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूट कर रोने लगता है, कभी ऊँचे स्वर से भगवान् को पुकारने लगता है। तो कभी मधुर स्वर से उनके गुणो का गान करने लगता है, और कभी अपने प्रियतम को अपने नेत्रो के सामने समझ उन्हे रिझाने के लिए नृत्य भी करने लगता है। इत्यादि।[2] चैतन्य महाप्रभु की ऐसी ही स्थिति थी। भागवत की स्तुतियो मे यह वन्दन भक्ति पूरा रूप से आ जाती है।

भक्ति के शेष तीन प्रकार दास्य सख्य और आत्म निवेदन मानसिक है, जो वास्तव मे भक्ति रस के उत्पादक हे। रूप गोस्वामी के 'हरि भक्ति रसामृत सिन्धु' तथा 'उज्ज्वल नीलमणि' मे भक्ति रस का बडा विशद विवेचन हुआ। भक्ति-रसामृत सिन्धु के पूव विभाग मे तो भक्ति और इसके भेदो की ही व्याख्या हुई है परन्तु दक्षिण विभाग मे भक्ति के भाव विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो का वणन है। पश्चिम विभाग मे भक्ति सम्बन्धी पाच मुख्य रसो का विवेचन हुआ है। वे पाच मुख्य रस है, शान्त, प्रीत, प्रेय, वात्सल्य तथा मधुर। उत्तर विभाग मे सात गौण भक्ति रसो का विवेचन है। वे सात रस ये है, हास्य, अद्भुत्, वीर, करुण, रौद्र, भयानक तथा बीभत्स। इस प्रकार रूप गोस्वामी ने भक्ति रस दो प्रकार का बताया है, मुख्य भक्ति रस तथा गौण भक्ति रस।[3] प्रीति और प्रेय रूपो को रूप गोस्वामी ने दास्य और सख्य भावो के रूप मे माना है। शान्त रस का स्थायी भाव शुद्ध कृष्णविषया रति है। प्रीत रस का प्रीति, प्रेय का सख्य रति, वात्सल्य का वत्सलरति, तथा मधुर का प्रियता प्रेम या मधुरारति। इस अन्तिम रस को रूप गोस्वामी ने बडा महत्त्व दिया है और 'उज्ज्वल नील मणि मे इसका विस्तार के

१ भागवत १०—८१—१६।

२ भागवत ११ २–३६, ४०।

३ भक्ति रसामृत सिन्धु, दक्षिण विभाग लहरी ५।

साथ वरणन किया है। इसके आलम्बन कृष्ण और उनकी गोपियाँ है जिनमे राधा प्रधान गोपी है। उद्दीपन वेणुनाद है। कटाक्ष मुस्कराहटादि अनुभाव है। सात्त्विक आठो भाव माने गये है तथा व्यभिचारी उग्रता और आलस्य को छोड कर सब माने गये हे। उज्ज्वल नीलमणि मे उज्ज्वल अर्थात् मधुर या शृ गार भक्ति रस को अलौकिकत्व प्रदान किया गया है। भक्ति शास्त्र का यही सव श्रेष्ठ रस माना है जिसकी प्राप्ति के लिए ही भक्त सब कुछ करता है। रूप गोस्वामी ने बहुत सी नायिकाओ की गोपी रूप मे कल्पना की है। प्रधान तो राधिका और चन्द्रावली ही है परन्तु उनकी सैकडो सखियाँ और है जिनके कई यूथ है और प्रत्येक यूथ की एक एक यूथेश्वरी। भक्त इन्ही सखियो के यूथ मे सम्मिलित होकर भगवान् के साथ विहार करने को ही अपना चरम लक्ष्य समझता है। राधा-भाव से श्रीकृष्ण का भजन करना ही भक्त की चरम साधना है। "चैतन्य-चरितामृत" मे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार दास्य सख्य और आत्म निवेदन उत्तरोत्तर भगवान् की साध्य रूपा भक्ति के साधन हैं। आत्म-निवेदन मे साधन और साध्य एक हो जाते है, भक्त की अपनी सत्ता नही रहती। इसलिए दास्य सख्य और आत्म निवेदन को हम भक्तिरस के पोषक मानते है क्योकि इनका सम्बन्ध मन से है और इनके आधार से ही भक्ति रस की निष्पत्ति होती है।

यो तो भक्ति के अनेक मानसिक भाव है और सारे भाव भगवान् के सम्बन्ध से अलौकिक हो जाते है फिर भी दास्य सख्य और आत्मनिवेदन भावो से विशेष मानसिक स्थिति का परिचय मिलता है। आत्म दोष प्रकाशन विनय याचना दीनता आदि भाव दास्य भक्ति के अ ग कहे जा सकते है। श्रीमद्भागवत मे भक्तो के जितने चरित्र है वे सभी दास्य भक्ति के उदाहरण है। यहाँ तक कि गोप गोपिकाओ मे भी दास्य भक्ति का ही प्राधान्य है। यद्यपि श्रीमद्भागवत मे कृष्ण को गोप-गोपियो का मित्र बताया गया है, जैसा कि दशम स्कन्ध के इस श्लाक से स्पष्ट होता है,

अहो भाग्यमहो भाग्य नन्दगोपब्रजौकसाम्।
यन्मित्र परमानन्द पूर्णब्रह्म सनातनम्॥[1]

अर्थात् अहो! नन्द आदि गोपो के भाग्य धन्य है, वास्तव मे उनका अहोभाग्य है क्योकि परमानन्द स्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे सम्बन्धी और सुहृद् है। परन्तु भागवतकार भगवान् कृष्ण मे अलौकिकता दिखा कर इस सख्य मे भी दास्य का सन्निवेश कर देते है। रूप गोस्वामी ने दासत्व को प्रीत रस के अन्तगत माना है। उन्होने प्रीत रस के दो भेद किए है यथा सभ्रम प्रीत और गौरव प्रीत। सभ्रम प्रीत मे स्थायी भाव श्रद्धा भाव है, अलम्बन कृष्ण और उनके दास है। दासो मे या तो अधिकृत शिव ब्रह्मा इत्यादि है या आश्रित उद्धव दारुक आदि है। उद्दीपन कृष्ण का अनुग्रह है। अनुभाव तन मन धन से भगवान् की सेवा करना है। सात्त्विक सभी है तथा व्यभिचारी त्रास अपस्मार आलस्य इत्यादि को छोडकर और सब है। गौरव प्रीत रस मे आलम्बन कृष्ण और उनके लालनीय सम्बन्धी होते है।

१ भागवत दशम् स्कन्ध अध्याय २४, श्लोक ३२

सख्य रति को जैसा कि हम पहले कह चुके है रूप गोस्वामी ने प्रेमरस का स्थायी भाव माना है। इस रस के विभाव—अलम्बन कृष्ण और उसके वयस्य मित्र है, ब्रज मे श्रीदामादि तथा अन्यत्र अर्जुनादि। सखा आयु और परिस्थिति के विचार से सुहृद्, सखी, प्रिय सखी तथा प्रियवग सखी भेद मे चार प्रकार का होता है, इनका रूप गोस्वामी ने बडा विस्तृत विवेचन किया है। प्रेम रस का उद्दीपन आयु, आकृति वेणु तथा क्रीडादि है। अनुभाव भाति-भाति की क्रीडाएँ आनन्द केलियाँ दिनचर्या मे साहचय आदि है। सात्त्विक स्तम्भ स्वेदादि है। व्यभिचारी उग्रता त्रास और आलस को छोडकर और सब है। यह प्रेम रस प्रणय प्रेम स्नेह तथा राग का रूप धारण कर लेता है। इस नवधा भक्ति मे वात्सल्य की गणना नही है। यद्यपि श्रीमदभागवत मे वात्सल्य भक्ति का भी विवेचन है। भागवत के तृतीय स्कन्ध मे भगवान् कपिल कहते है, 'जिनका मैं ही एकमात्र प्रिय पुत्र मित्र गुरु सुहृद् और इष्टदेव हूँ, वे मेरे ही आश्रय मै रहने वाले भक्तजन शातिमय वैकुण्ठ धाम मे पहुँच कर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगो से रहित नही होते और न उन्हे मेरा काल चक्र ही ग्रस सकता है।"[1]

भागवत के दशम स्कन्ध मे इस वात्सल्य भक्ति का स्वरूप मिलता है। देवकी और यशोदा दोनो के लिए कृष्ण के अलग अलग रूप है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है। बाल-लीलाओ के वर्णन मे हम कृष्ण के उस रूप का विवेचन कर चुके है जो वात्सल्य रस का आधार है। रूप गोस्वामी ने वात्सल्य रस का स्थायी भाव वत्सल रति, विभाव, आलम्बन, कृष्ण तथा उनके गुरुजन नन्द यशोदा वसुदेव आदि, उद्दीपन, कृष्ण की बाल अवस्था, आकृति तथा बाल चेष्टाएँ है। अनुभाव शरीर का स्पश, आशीर्वाद तथा आदेश आदि का देना, सात्त्विक आठो तथा स्तन स्राव, तथा व्यभिचारी सभी प्रीति रस वाले। वात्सल्य रस भी प्रेम स्नेह और रागवत् प्रतीत होता है।

साधन रूपा भक्ति के नौ अङ्गो मे आत्म निवेदन का बडा महत्त्व है। श्री मदभागवत मे भक्तो की जितनी कथाएँ है उनमे शरणागति का भाव ओत-प्रोत है वैधी भक्ति का पयवसान रागात्मिका भक्ति मे है और रागात्मिका भक्ति पूण समपण के रूप मे परिणत हो जाती है। गोपियो ने वैधी भक्ति का अनुष्ठान किया था। पर तु उनका हृदय रागात्मिका भक्ति से भरा हुआ था। भागवत की चीर हरण लीला और रास लीला इस पूण समर्पण के ही रूप हैं। पीछे स्थान स्थान पर इस बात का उल्लेख हो चुका है कि श्रीमद्भागवत मे आत्मनिवेदन का बडा महत्त्व दिखाया है। कृष्ण भगवान् को अर्पित करने से हमारे सब भाव कृष्णमय हो जाते है और हमारी वासनाओ से मुक्ति हो जाती है। श्रीमद्भगवत गीता मे भगवान् कृष्ण ने अर्जु न को इस आत्म निवेदन का उपदेश स्थान स्थान पर दिया है। आत्म निवेदन के पश्चात् भक्त भगवान् को सवत्र देखता है जैसाकि गीता मे कहा है,

'यो मा पश्यति सवत्र सवत्र मयि पश्यति'[2]।

अर्थात् मै सब प्राणियो मै हूँ और सब प्राणी मुझ मे। भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध मे भी इसी भाव को बताया है, "जो अपने मन मे यह भेद भाव नही रखता कि मै अलग हूँ, भगवान् अलग है और सब लोग भिन्न है, कि तु जो सब प्राणियो मे यह भाव रखता

१ भागवत ३–२५–३८

२ गीता ६, २९।

है कि भगवान् और मै दोनो एक हैं और जो यह समझता है कि सब प्राणी भगवान् मे और मुझमे भी है कही सब भागवतो मे श्रेष्ठ है।[1] इसलिये गीता के नवे अध्याय मे भगवान् ने कहा है।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।[2]

अर्थात् हे अर्जुन! जो कुछ तू करे, खावे हवन करे देवे या तप करे वह सब मुझ को अर्पण करदे। भागवत की गोपियाँ कृष्णमयी हो चुकी है और उन्होने अपना सवस्व कृष्ण को अर्पित कर दिया है वही भक्ति का सर्वोच्च रूप है। भागवत के एकादश स्कन्ध मे आया है कि काय, वाणी और मन ,इन्द्रिय, बुद्धि या आत्मा की प्रवृत्ति से अथवा स्वभाव के अनुसार जो कुछ हम किया करते है वह सब परस्पर नारायण को अर्पण कर दिया जावे।[3] साराश यह है कि अध्यात्म शास्त्र मे जिसे ज्ञान कम समुच्चय पक्ष अथवा ब्रह्मार्पण पूवक कम कहते हैं उसी को भक्ति माग मे कृष्णार्पण पूवक कम कहा जाता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है। कुछ आचार्यो ने इस आत्म निवेदन को शरणागति अथवा प्रपत्ति भी माना है। पञ्चरात्र विश्वक्सेन सहिता मे प्रपत्ति के विषय मे कहा गया है, भागवत् रूप्य प्राप्त वस्तु की इच्छा करने वाले उपाय हीन व्यक्ति की प्राथना मे पयवसायिनी निश्चयात्मिका बुद्धि ही प्रपत्ति का स्वरूप है तथा अनन्य साध्य भगवत् प्राप्ति मे महा विश्वास पूवक भगवान् को ही एक मात्र उपाय समझ कर उपाय करते रहना ही प्रपत्ति है और इसी को शरणागति कहते है।[4] इसीलिए गीता मे कहा है,

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्य ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।
सवधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज।
अह त्वा सव पापेभ्यो मोक्षयिष्यासि मा शुच।।[5]

वल्लभाचाय जी ने भी इस आत्म निवेदन का बडा महत्त्व बताया है। श्री मद्भागवत की नवधा भक्ति का विवेचन करके भागवत मे वर्णित प्रेम स्वरूपा भक्ति का वर्णन करेंगे। हम पहले ही कह चुके है कि भक्ति का विश्लेषण अनेक आचार्यो ने अनेक प्रकार से किया है। श्रीमद्भागवत मे तो भक्तियो का इतना नाम-करण नही हुआ है उसमे या तो उन नौ प्रकारो का उल्लेख है या तामसी, राजसी सात्त्विकी और निगु ण भक्तियो का नाम करण है अथवा स्थान-स्थान पर भक्तियोग का विवेचन हुआ है शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, नारद भक्ति सूत्र और भक्ति रसामृत सिन्धु मे भक्ति का विशद विवेचन हुआ है। श्री मद्भागवत मे तो साधन और साध्य दो ही प्रकार की भक्तियो को स्वीकार किया गया है। भागवत की साध्य भक्ति ही निगु णा भक्ति है जिसका स्वरूप भागवत मे अहैतुक्य प्रतिहता कहा है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र मे उसे ईश्वर मे परानुरक्ति कहा है और जैसा कि हम पहले कह चुके है भक्ति

१ भागवत ११, २, ४५ तथा ३, २, ४०।

२ गीता ९, २७

३ भागवत ११, २, ३६

४ पाचरात्र विष्वकसेन सहिता से साधनाक 'कल्याण' अगस्त सन् १९४० में उद्धृत पृष्ठ ६०।

५ गीता अष्टदशोऽध्याय श्लोक ६५, ६६।

रसामृत सिन्धु मे उसे परा भक्ति बताया है। वैधी और रागानुगा साधना भक्ति के ही भेद हे। इससे उच्च कोटि की भक्ति भाव-भक्ति है जिसका प्रेम भक्ति मे पयवसान हो जाता है। इसलिए रूप गोस्वामी ने उत्तमा भक्ति के तीन भेद माने है। साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति। साधन भक्ति मे साधनो का वणन आता हे जो वैधी स्वरूपा है। रागानुगा भक्ति के दो रूप है कामरूप और सम्बन्ध रूप अर्थात् कामानुगा, सम्बन्धानुगा। कामानुगा को रूप गोस्वामी ने केलि' तात्पयवती सम्भोगेच्छामयी बताया है। अर्थात्—इसमे तत्तद्भावो की इच्छा रहती है। भक्त गोपीमय होना चाहता है। इस भक्ति मे पद्मपुराण से उद्धरण दिये गये है। सम्बन्धानुगा भक्ति मे भक्त कृष्ण से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करता है। नन्द यशोदा और गोप इस प्रकार के भक्त हे। भाव भक्ति या तो साधन परिपाक मे साधनाभिनेशजा अथवा कृष्ण कृपया, तद्भक्त कृपया, कृष्ण प्रसादजा या कृष्ण भक्त प्रसादजा होती है। भाव भक्ति इस रूप तक नही पहुँचती, रस की स्थिति पर पहुँच कर वह प्रेम भक्ति हो जाती है जिसका विवेचन भक्ति रसामृत सिन्ध के पूव विभाग की चतुथ लहरी मे किया है। प्रेम भक्ति ही रस रूप मे परिणत होती हे। उन रसो के विषय मे हम पहले कह चुके हे कि रूप गोस्वामी ने पाँच मुख्य और सात गौण रस माने हे जिनका विवेचन पीछे हो चुका है। अब हम नारद भक्ति सूत्र मे जो प्रेम भक्ति का स्वरूप बताया गया है उसके अनुसार भागवत की भक्ति का विवेचन करेगे 'नारद भक्ति सूत्र मे देवर्षि नारद ने चौरासी सूत्रो मे भक्ति तत्त्व की व्याख्या, भक्ति के अन्तराय, भक्ति के साधन, भक्ति की महिमा और भक्तो के महत्त्व को भली भाँति प्रकट किया है। इस भक्ति-सूत्र की रचना कब हुई यह विवाद का विषय है और अलग ही खोज से सम्बन्ध रखता है। हमारा अभिप्राय तो भागवत की प्रेमरूपा भक्ति का प्रदशन मात्र है। उस भक्ति को वैज्ञानिक ढग से नारद भक्ति सूत्र मे बताया गया हे। इसीलिए इसका नाम प्रेम दशन भी है। भक्ति सूत्र के चौथे सूत्र मे बताया गया है।

'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति' जिस प्रेम रूपा भक्ति की प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त उसे किसी वस्तु की चिता नही रहती। भागवत के ग्यारह वे स्कन्ध मे इसी भाव को भगवान् ने उद्धव से कहा है, "जिसने अपने को मुझे सौप दिया है वह मुझे छोडकर न तो ब्रह्मा का पद चाहता है और न देवराज इन्द्र का। उसके मन मे न तो सावभौम सम्राट् बनने की इच्छा होती है और न वह रसातल का ही स्वामी होना चाहता है। वह योग की बडी सिद्धियो और मोक्ष तक की अभिलाषा नही करता।" इसी भाव को भक्ति सूत्र के पाँचवे और छठे सूत्र मे भी कहा गया है। श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध मे कहा गया है "जो भगवान् श्री हरि के चरणो मे प्रेम मय भक्ति भाव रखता है उसे जगत् के भोगो की क्या आवश्यकता है, जो अमृत के समुद्र मे विहार कर रहा है उसे क्षुद्र गड्ढो के जल से प्रयोजन ही क्या हो सकता है।[1] छठे सूत्र मे नारद जी ने बतलाया है कि इस प्रेमरूपा भक्ति को प्राप्त करके मनुष्य उन्मत्त हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम बन जाता है। इसी भाव को ग्यारहवे स्कन्ध के दूसरे अध्याय मे भागवतकार ने प्रकट किया है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है।

---

१ भागवत ६-१२-२२।

प्रेम स्वरूपा भक्ति म दूसरा भाव अन यता का है जिसका विवेचन भक्ति सूत्र के सातवे, आठवे, नवे तथा दसवे सूत्रो मे किया है। इन सूत्रो मे देवर्षि कहते हे कि वह भक्ति कामना युक्त नही है क्योकि वह निरोध स्वरूपा है और निरोध लोकिक और वैदिक कर्मो के त्याग को कहते है तथा उस प्रियतम भगवान् मे अन यता और उसके प्रतिकूल विषय मे उदासीनता को भी निरोध कहते है। अनन्य दूसरे आश्रयो के त्याग का नाम है। भागवत के दशम स्क ध मे गोपियो की अनन्यता का बडा सु दर वरान हे। जब श्रीकृष्ण ने गोपियो को ब्रज मे लोटने के लिए कहा तो गोपियाँ उनसे कहती है, "हे प्राण वल्लभ ! मनमोहन ! अब तक हमारा मन घर के काम-धन्धो मे लगता था इसी से हमारे हाथ भी उन्ही मे रमे हुए थे, पर तु तुमने हमारे देखते देखते हमारा चित्त लूट लिया और अब हमारी गति-मति निराली हो गई है। हमारे ये पैर तुम्हारे चरण कमलो को छोडकर एक पग भी हटने के लिए तैयार नही है फिर हम ब्रज मे कैसे जायँ और क्या करे।"[1] इस अनन्य भाव से भगवदथ कम करने वाले के लिए भगवान् के प्रतिकूल कर्मो का अपने आप ही त्याग हो जाता है। इसके अनन्तर नारद जी प्रेमरूपा भक्ति के लक्षणो को बताते हुए अपने मत से अपने सब कर्मों को भगवान् के अपण करना और भगवान् का थोडा सा भी स्मरण होने मे परम व्याकुल होने को ही भक्ति बतलाते है। इस लक्षण मे भक्ति के सभी लक्षण आ जाते है। गीता मे वही भक्त उच्चकोटि का बताया है जो सब समय भगवान् का ही स्मरण करता रहता है। कृष्ण भगवान् अर्जु न से कहते है,

तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसशयम् ॥[2]

भगवान् को ऐसा ही भक्त सवप्रिय है। ऐसे ही भक्त की भगवान् ने प्रशसा की है जिसका वरान हम पीछे कर चुके है। भागवत के ग्यारहवे स्क ध के १४वे अध्याय मे भक्ति-योग का वरान करते हुए भगवान् कहते है, "हे उद्धव ! मुझे तुम्हारे जैसे प्रेमी भक्त जितने प्रियतम है उतने प्रिय मेरे पुत्र ब्रह्मा आत्मा शकर, सगे भाई बलराम जी, स्वय अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी जी और मेरा अपना आत्मा भी नही हे।"[3] देवर्षि नारद ने इस प्रकार की भक्ति गोपिकाओ की बताई है,

'यथा ब्रज गोपिकानाम्'—२१

कृष्ण भगवान् ने स्वय गोपिकाओ के विषय मे कहा है, "मेरी प्यारी गोपियो ! तुमने मेरे लिये घर गृहस्थी की उन वेडियो को तोड डाला है जिन्हे बडे-बडे योगी-यति भी नही तोड पाते। मुझ से तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक सयोग, सवथा निमल और सवथा निर्दोष है। यदि मै अमर शरीर से—अमर जीवन से अनन्त काल तक तुम्हारे प्रेम सेवा और त्याग का बदला चुकाना चाहूँ, तो भी नही चुका सकता। मै जन्म-जन्म के लिए तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभाव से, प्रेम से मुझे उऋण कर सकती हो, परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ।[4] फिर उद्धव को सदेशा भेजते हुए श्रीकृष्ण ने प्रेमाश्रु बहाते हुए

१ भागवत १०–२६–३४
२ गीता ८, ७
३ भागवत ११–१४–१५
४ भागवत दशम स्क ध अध्याय ३३ श्लोक २२

गद्गद् वाणी से यही कहा है, "हे प्यारे उद्धव ! गोपियो का मन नित्य निरन्तर मुझ मे ही लगा रहता है। उनके प्राण उनका जीवन उनका सवस्व मै ही हूँ। मेरे लिए उन्होने अपने पति पुत्रादि सभी सगे सम्बन्धियो को छोड दिया हे। उन्होने बुद्धि से भी मुझको अपना प्यारा, अपना प्रियतम तथा अपना आत्मा मान रक्खा है। मेरा यही व्रत है कि जो लोग मेरे लिए लौकिक और पार-लौकिक धर्मों को छोड देते है उनका भरण-पोषण मै स्वय करता हूँ।[1] वास्तव मे गोपियो का ऐसा ही अनन्य प्रेम था। मथुरा की कुलाङ्गनाओ ने गोपियो की दशा को इसी प्रकार से वर्णन किया है, 'ब्रज की गोपियाँ धन्य हैं जो निरन्तर श्रीकृष्ण मे ही चित्त लगा रहने के कारण प्रेम भरे हृदय से, गद्गद् कण्ठ से भगवान् की ही लीलाओ का गान करती है। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते घर लीपते, बालाओ को झूला झुलाते, रोते हुए बालको को चुप कराते, उन्हे नहलाते धुलाते घरो को झाडते-बुहारते हर समय श्रीकृष्ण के गुणो के गान मे ही मस्त रहती है।[2]

भागवत की गोपिया नारद जी के २२वे सूत्र मे भी पूरी उतरती है, जिसका अर्थ है कि भक्त परमावस्था मे भी भागवत के माहात्म्य ज्ञान को नही भूलता, गोपियाँ भी इसमे अपवाद नही। भागवत की गोपियाँ कृष्ण को साक्षात् पुरुषोत्तम भगवान् जानती हुई अपना प्रियतम समझती थी। जसा कि दशम स्कन्ध के २६वे अध्याय के ३१ से ४१ तक के श्लोको से स्पष्ट प्रकट होता है। इसी स्कन्ध के गोपिका-गीत मे गोपिया कहती हैं, "हे कृष्ण ! तुम केवल यशोदानन्दन ही नही हो, समस्त शरीर धारियो के हृदय मे रहने वाले साक्षी हो, अन्तर्यामी हो। सखे ! ब्रह्मा जी की प्राथना से विश्व की रक्षा करने के लिए यदुवश मे अवतीर्ण हुए हो।[3] माहात्म्य ज्ञान बिना किए हुए प्रेम को नारद जी ने जारो का सा प्रेम बताया है।

'तद्विहीन जाराणामिव'—२३।

इसके अनन्तर नारद जी ने प्रेम रूपा भक्ति को कर्म ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठतर बताया है और उसी को फलस्वरूप कहा है। श्रीमद्भागवत मे कई स्थलो पर भक्ति का महत्त्व प्रदर्शित किया है जिसका विवेचन हम पीछे कर चुके है। ग्यारहवे स्कन्ध मे भगवान् कहते हैं,

न साधयति मा योगो न साख्य धम उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिममोर्जिता।
भक्त्याहमेकया ग्राह्य श्रद्धयाऽऽत्म प्रिय सताम्।
भक्ति पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्।[4]

अर्थात् योग ज्ञान धम स्वाध्याय तप और त्याग मुझे उतना प्रसन्न नही कर सकते जितना मेरी दृढ भक्ति मुझे प्रसन्न करती है। सन्तो का प्रिय आत्मा रूप मै केवल श्रद्धायुक्त भक्ति के द्वारा ही वश मे हो सकता हूँ। मेरी भक्ति चाण्डाल आदि को भी पवित्र कर देती है। भगवद्गीता मे भी भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से इसी प्रकार कहा है,

१ भागवत १० ४६ ४।
२ भागवत १० ४४–१५।
३ भागवत १०–३१–४।
४ भागवत ११–१४–२०,२१।

नाह वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एव विधो द्रष्टु दृष्टवानसि मा यथा ।।
भक्त्या त्वनन्या शक्य अहमेवविधोऽर्जुन ।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्त्वेन प्रवेष्टु च परतप ।।[1]

अर्थात्—हे अर्जुन ! जैसा तुमने मुझे देखा है ऐसा मै वेद तप दान यज्ञ आदि से भी नही देखा जा सकता। हे अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा ही मेरा इस प्रकार देखा जाना, मुझे तत्त्व से जानना, और मुझमे प्रवेश पाना सभव है। इस प्रकार गीता और भागवत दोनो मे ही भक्ति को साध्यरूपा माना है। भक्ति ही साधन भक्ति ही साध्य है। भक्त गण भक्ति के लिए ही भक्ति करते है। इसी लिए भागवत मे कहा है।

भक्ति लब्धवत साधो किमन्यदवशिष्यते।
मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ।[2]

अर्थात्—भगवान् कहते है कि मुझ अनन्त गुण सम्पन्न सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म मे भक्ति हो जाने पर फिर उस साधु पुरुष को कौनसी वस्तु प्राप्त करनी बाकी रह जाती है। इसके अनन्तर भक्ति सूत्र मे प्रेमरूपा भक्ति के साधनो का उल्लेख है जिनका विवेचन हम पीछे कर चुके है। परन्तु प्रेम भक्ति की प्राप्ति का मुख्य साधन महापुरुषो की कृपा अथवा भगवत कृपा को ही बताया है। सत्सग की महिमा श्रीमद्भागवत मे भी स्थान स्थान पर गाई गई है। भागवत के प्रथम स्कन्ध मे आया है, "भगवत सगी प्रेमियो के निमेष मात्र की तुलना स्वर्गादि की तो बात ही क्या पुनर्जन्म का नाश करने वाली मुक्ति के साथ भी नही की जा सकती। फिर मर्त्यलोक के राज्यादि सम्पत्ति की तो बात ही क्या है।[3] गोस्वामी तुलसीदास जी 'रामचरित मानस' मे भी कहते है।

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला एक अग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग ।।

भागवत के ग्यारहवे स्कन्ध मे स्वय भगवान् उद्धव जी से कहते है, "प्रिय उद्धव ! जगत् की जितनी आसक्तियाँ है, उन्हे सत्सग नष्ट कर देता है। यही कारण है कि सत्सग जिस प्रकार मुझे वश मे कर लेता है वैसा साधन न योग है न साख्य, धर्म पालन और न स्वाध्याय। तपस्या त्याग इष्टापूर्त और दक्षिणा से भी मै वैसा प्रसन्न नही होता। कहाँ तक कहूँ—व्रत, वेद तीर्थ, और यम-नियम भी सत्सग के समान मुझे वश मे करने मे समर्थ नही है।[4] इस सत्सग की प्राप्ति भगवान् कृपा से ही होती है और भगवान् और भगवान् के भक्त मे कोई भेद नही है जैसा कि भागवतकार ने कहा है।

साधवो हृदय मह्य साधूना हृदय त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाह तेभ्यो मनागपि ।[5]

---

१ गीता ११–५३,५४।
२ भागवत ११–२६–३०।
३ भागवत १–१८–१३।
४ भागवत ११–१२–१,२।
५ भागवत ९–४ ६८।

इसी प्रकार गीता मे भी कहा गया है, 'ये भजंति तु मा भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्' ।[1]

नारद भक्ति सूत्र मे प्रेम रूपाभक्ति मे प्रधान बाधा कुसगति को माना है। श्रीमद्भागवत मे भी कुसगति की निन्दा की है। भगवान् कपिलदेव माता देवहूति से कहते है, "जो मनुष्य स्त्री और धन मे ही आसक्त नीच पुरुषो का सग करके उनके समान बर्ताव करने लगता है वह उन्ही की भाति अन्धकार मय नर्को मे जाता है, क्योकि दुष्ट सग से सत्य, पवित्रता, दया, मननशीलता, बुद्धि, लज्जा, श्री, कीर्त्ति, क्षमा, मन का वश मे रहना, इन्द्रियो का वश मे रहना, ऐश्वय आदि सब नष्ट हो जाते है, अतएव उन अशान्त चित्त मूख नष्ट बुद्धि, स्त्रियो के हाथ के खिलौने बने हुए, शोचनीय असाधु दुष्ट मनुष्यो का सग कभी नही करना चाहिए।"[2] साधु और सन्त लोगो की सगति ही से कल्याण हो सकता है। सन्त महानुभावो की सेवा करने से ही माया रूपी समुद्र को पार किया जा सकता है। श्रीमद्-भागवत मे भगवान् कहते हे, "जिस प्रकार भगवान् अग्निदेव का आश्रय लेने पर शीत, भय अन्धकार तीनो का नाश हो जाता है उसी प्रकार सन्त पुरुषो के सेवन से पाप रूपी शीत, जन्म-मृत्यु रूपी भय और अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाता है। जल मे डूबते हुए लोगो के लिए दृढ नौका के समान इस भयकर ससार सागर मे गोते खाने वालो के लिए ब्रह्मवेत्ता शान्तचित्त सन्त जन ही परम अवलम्ब है।"[3] इसी प्रकार पचम स्कन्ध मे महात्मा जड भरत राजा रहूगण से कहते है, "हे रहूगण ! यह भगवत-तत्त्व का ज्ञान और भगवत-प्रेम तप यज्ञ ज्ञान गृहस्थाश्रम द्वारा परोपकार, वेदाध्ययन और जल अग्नि एव सूय की उपासना से नही मिलता। यह तो महापुरुषो की चरण धूलि मे स्नान करने से ही मिलता है।"[4] इसी प्रकार भक्तराज प्रह्लाद अपने पिता से कहते है, "हे पिता ! जिन भगवान् श्रीहरि के चरणो का स्पश समस्त अनर्थो की निवृत्ति करने वाला है उन श्रीहरिचरणो मे तब तक प्रेम नही होता जब तक अकिंचन साधु महापुरुषो की चरण धूलि से मस्तक का अभिषेक न किया जाय।"[5]

इस भगवत प्रेम को स्वरूप अनिवचनीय है। यह गुण रहित है, कामना रहित है, प्रतिक्षण बढता रहता है, विच्छेद रहित है, सूक्ष्मतर है और अनुभव रूप है। इस प्रेम को पाकर प्रेमी प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है, प्रेम का ही वणन करता है और प्रेम का ही चिन्तन करता है। श्रीमद्भगवत्गीता मे लिखा है,

यो मा पश्यति सवत्र सव च मयि पश्यति ।
तस्याह न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥[6]

इसी प्रकार छादोग्य उपनिषद् मे भी, "जहाँ दूसरे को नही देखता, दूसरे को नही सुनता, दूसरे को नहा जानता वही भूमा है और जहा दूसरे को देखता है, दूसरे को सुनता है,

१ गीता ९–२९
२ भागवत ३–३१–३२ से ३४
३ भागवत ११–२६–३१, ३२
४ भागवत ५–५–१२
५ भागवत ७–५–३२
६ गीता ६–३०

दूसरे को जानता है वह अल्प है जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मरा हुआ है।"[१] यही प्रेमा भक्ति या पराभक्ति का स्वरूप है और इसी को भूमानन्द कहते है। इसमे भक्त अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है इसी को भागवत मे अहैतुकी निर्गुण भक्ति या गीता मे ज्ञानी की भक्ति कहा है। इसमे भक्त की चित्तवृत्ति और कमगति का प्रभाव अविच्छिन्न रूप से स्वाभाविक ही भगवान् की ओर बहता रहता है और उमकी समस्त क्रियाएँ भगवान् के लिए ही होती है।[२] इसी प्रकार "तत्त्वज्ञानी महात्मा भक्त भी सब कुछ वासुदेवमय ही देखता है।"[३] इससे निम्नकोटि की भक्ति भागवतकार ने गौणी भक्ति बताई है, जो सात्त्विकी राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की होती है जिसका विवेचन हम पहले कर चुके है। गोपियो की भक्ति निगुण भक्ति साध्य भक्ति अथवा प्रेम स्वरूपा भक्ति है।

प्रेमाभक्ति का स्वरूप बताकर भक्तिसूत्र मे प्रेमी भक्तो की महिमा बताई गई है। श्रीमद्‌भागवत मे ऐसे भक्तो की महिमा का स्थान-स्थान पर वखान हुआ है जिसका सकेत हम कईबार पीछे कर चुके है। इन भक्तो के जन्म से कुल पवित्र, जननी कृताथ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है। भागवत मे लिखा है, "मद्‌भक्ति युक्तो भुवन पुनाति।"[४] भक्ति सूत्र मे लिखा है, "भक्त तीर्थो को सुतीथ, कर्मो को सुकम और शास्त्रो को भी सत्‌शास्त्र कर देते है।"[५] श्रीमद्‌भागवत के प्रथम स्कन्ध मे धमराज युधिष्ठिर विदुर जी से कहते है, 'हे प्रभो! आप सरीखे भगवत भक्त स्वय तीर्थ रूप हैं, तीर्थो को आप लोग अपने हृदय मे विराजमान भगवान् के प्रभाव से तीथत्व प्रदान करते है।"[६] भक्तो मे जाति, विद्या, रूप कुल, धन और क्रियादि का भेद नही होता है। भक्ति सूत्र मे भक्ति की वृद्धि के साधन भी बताए है। श्रीमद्‌भागवत मे भी प्रेमस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करने का विधान ग्यारहवे स्कन्ध मे है। ग्यारहवे स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे प्रबुद्ध नामक योगीश्वर ने महाराजा निमि से प्रेमरूपा भक्ति के साधन इस प्रकार बताए हैं।

"जिसको अपना परम कल्याण जानने की इच्छा हो उसे वेद के ज्ञाता और परब्रह्म मे स्थित शान्त स्वरूप गुरु की शरण जाना चाहिए, और गुरु को ही आत्मा एव इष्टदेव समझकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उन भागवतधर्मों को सीखना चाहिये जिनसे अपने आपको दे डालने वाले परमात्मा हरि प्रसन्न हो जाते है। मन से सब विषय-भोगो मे वैराग्य, साधु महात्माओ का सग, सब प्राणियो के प्रति यथायोग्य (दीनो के प्रति) दया, (समान अवस्था वालो से) मित्रता और (बडो के प्रति) विनय का व्यवहार, तन-मन-धन से पवित्र रहना, कष्ट सहकर भी अपने वर्णाश्रय धम का पालन रूपी तप करना, शीत उष्ण आदि को सहना, व्यथ बातचीत का त्याग या भगवान् का मनन, स्वाध्याय, सरलता ब्रह्मचय अहिंसा, सुख दु ख आदि द्वन्द्वो मे समभाव, सवत्र सब जीवो मे अपने आपको तथा ईश्वर

१ छान्दोग्य ७-२४-१
२ भागवत ३-२९-११, १२
३ गीता ७-१९
४ भागवत ११-१४-२४
५ नारद भक्ति सूत्र ६९
६ भागवत १-१३-१०

को देखना, एकान्त मे रहना, घर आदि को भगवान् का मानना, शुद्ध साधारण वस्त्र पहिनना, जो कुछ मिले उसी मे सन्तोष मानना, भगवान् का गुण गाने वाले शास्त्रो मे श्रद्धा रखना, दूसरे शास्त्रो की निन्दा न करना, मन वाणी और कर्मों का सयम, सत्य भाषण, मन और इन्द्रियो को वश मे रखना, अद्भुत लीला करने वाले श्रीहरि के जन्म, कम और गुणो का श्रवण कीत्तन और ध्यान करना, भगवान् के लिए ही सब विहित कम करना, यज्ञ दान जप तप आदि सदाचार अपने प्रिय लगने वाले सब पदार्थो और स्त्री पुत्र घर तथा प्राणो को भी परमात्मा के अपण कर देना और इस प्रकार भगवान ही जिनके आत्मा और स्वामी है ऐसे भक्तो से मित्रता करना, जड-चेतन जीवो की, मनुष्यो की और उनमे भी साधु-स्वभाव वाले महापुरुषो की विशेष रूप से सेवा करना, परस्पर भगवान के पवित्र यश का कथन करना और इस भागवत गुण-गान के द्वारा ही परस्पर प्रीति, तुष्टि और दु खो की निवृत्ति करना—ये सब साधन सद्गुरु के समीप रहकर सीखने चाहिए। इस प्रकार वर्ताव करने वाले और पापसमूह के नाशक श्रीहरि का स्वय स्मरण करने और दूसरो के कराने वाले भक्तो के हृदय मे इस साधना रूपा भक्ति के द्वारा प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उनका शरीर पुलकित हो जाता है और फिर वे प्रेम मग्न हो जाते है।"[1]

गीता के बारहवे और अठारहवे अध्याय मे भी भक्तो के लक्षण बताए गए है और वह स्थिति बताई है जब भक्त को पराभक्ति की प्राप्ति होती है। "जब मनुष्य विशुद्ध बुद्धि से युक्त एकान्त सेवी मिताहारी, मन वाणी को जीतने वाला, वैराग्य को धारण करने वाला निरन्तर ध्यान परायण दृढ धारणा से अन्त करण को वश मे करके शब्द, स्पश आदि विषयो को त्यागकर रागद्वेष को नष्ट करके, अहकार बल दप काम-क्रोध और परिग्रह को छोडकर ममता रहित शान्त हो जाता है तभी वह ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। फिर ब्रह्मभूत होकर सदा प्रसन्न चित रहने वाला वह न किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी वस्तु की आकाक्षा ही करता है और सब प्राणियो मे समभाव से भगवान को देखता है, तब मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह मुझको तत्व से जानता है, और फिर मुझ मे ही मिल जाता है।"[2]

श्रीमद्भागवत मे इसका एक और उपाय बताया है, "जो धीर पुरुष ब्रज बालाओ के साथ भगवान् विष्णु के (श्रीकृष्ण के) इस रास-विहार की कथा को श्रद्धापूर्वक सुने या पढेगा वह शीघ्र ही भगवान् की पराभक्ति को प्राप्तकर हृदय के रोग रूप काम विकार से छूट जायगा।"[3]

इस प्रकार भागवत मे सिद्ध और साधक दो प्रकार के भक्तो का वणन है। सिद्ध भक्तो मे लक्षण स्वाभाविक ही होते हैं और साधको को साधना द्वारा पराभक्ति की प्राप्ति होती है। पराभक्ति के प्राप्त होने पर भक्त आधे क्षण के लिए भी भगवत-चरण का चिन्तन नही छोडना चाहता। तीनो भुवनो का सम्पूण वैभव भी उसे तुच्छ लगने लगता है।[4] भक्ति

१ श्रीमद्भागवत ११–३–२१ से ३१

२ गीता १८–५१ से ५५

३ श्रीमद्भागवत १०–३३–४०

४ श्रीमद्भागवत ११ २ ५३

दूसरे को जानता है वह अल्प है जो भूमा है वह अमृत है और जो अल्प है वह मरा हुआ है।"[1] यही प्रेमा भक्ति या पराभक्ति का स्वरूप है और इसी को भूमानन्द कहते है। इसमे भक्त अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो जाता है इसी को भागवत मे अहैतुकी निगुण भक्ति या गोता मे ज्ञानी की भक्ति कहा है। इसमे भक्त की चित्तवृत्ति और कर्मगति का प्रभाव अविच्छिन्न रूप से स्वाभाविक ही भगवान् की ओर बहता रहता है और उमकी समस्त क्रियाएँ भगवान् के लिए ही होती है।[2] इसी प्रकार "तत्त्वज्ञानी महात्मा भक्त भी सब कुछ वासुदेवमय ही देखता है।"[3] इसमे निम्नकोटि की भक्ति भागवतकार ने गौणी भक्ति बताई है, जो सात्त्विकी राजसी और तामसी भेद से तीन प्रकार की होती है जिसका विवेचन हम पहले कर चुके है। गोपियो की भक्ति निर्गुण भक्ति साध्य भक्ति अथवा प्रेम स्वरूपा भक्ति है।

प्रेमाभक्ति का स्वरूप बताकर भक्तिसूत्र मे प्रेमी भक्तो की महिमा बताई गई है। श्रीमद्भागवत मे ऐसे भक्तो की महिमा का स्थान-स्थान पर वखान हुआ है जिसका सकेत हम कईबार पीछे कर चुके है। इन भक्तो के जन्म से कुल पवित्र, जननी कृताथ और पृथ्वी पुण्यवती हो जाती है। भागवत मे लिखा है, "मद्भक्ति युक्तो भुवन पुनाति।"[4] भक्ति सूत्र मे लिखा है, "भक्त तीर्थो को सुतीथ, कर्मो को सुकम और शास्त्रो को भी सत्शास्त्र कर देते है।"[5] श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध मे धमराज युधिष्ठिर विदुर जी से कहते है, 'हे प्रभो! आप सरीखे भगवत भक्त स्वय तीथ रूप हैं, तीर्थो को आप लोग अपने हृदय मे विराजमान भगवान् के प्रभाव से तीथत्व प्रदान करते है।"[6] भक्तो मे जाति, विद्या, रूप कुल, धन और क्रियादि का भेद नही होता है। भक्ति सूत्र मे भक्ति की वृद्धि के साधन भी बताए है। श्रीमद्भागवत मे भी प्रेमस्वरूपा भक्ति को प्राप्त करने का विधान ग्यारहवे स्कन्ध मे है। ग्यारहवे स्कन्ध के तीसरे अध्याय मे प्रबुद्ध नामक योगीश्वर ने महाराजा निमि से प्रेमरूपा भक्ति के साधन इस प्रकार बताए हैं।

"जिसको अपना परम कल्याण जानने की इच्छा हो उसे वेद के ज्ञाता और परब्रह्म मे स्थित शान्त स्वरूप गुरु की शरण जाना चाहिए, और गुरु को ही आत्मा एव इष्टदेव समझकर निष्कपट भाव से उनकी सेवा करके उन भागवतधर्मों को सीखना चाहिये जिनसे अपने आपको दे डालने वाले परमात्मा हरि प्रसन्न हो जाते है। मन से सब विषय-भोगो मे वैराग्य, साधु महात्माओ का सग, मब प्राणियो के प्रति यथायोग्य (दीनो के प्रति) दया, (समान अवस्था वालो से) मित्रता और (बडो के प्रति) विनय का व्यवहार, तन-मन-धन से पवित्र रहना, कष्ट सहकर भी अपने वर्णाश्रय धम का पालन रूपी तप करना, शीत उष्ण आदि को सहना, व्यथ बातचीत का त्याग या भगवान् का मनन, स्वाध्याय, सरलता ब्रह्मचय अहिसा, सुख दु ख आदि द्वन्द्वो मे समभाव, सवत्र सब जीवो मे अपने आपको तथा ईश्वर

---

१ छान्दोग्य ७-२४-१
२ भागवत ३-२९-११, १२
३ गीता ७-१९
४ भागवत ११-१४-२४
५ नारद भक्ति सूत्र ६९
६ भागवत १-१३-१०

को देखना, एकान्त मे रहना, घर आदि को भगवान् का मानना, शुद्ध साधारण वस्त्र पहिनना, जो कुछ मिले उसी मे सन्तोष मानना, भगवान् का गुण गाने वाले शास्त्रो मे श्रद्धा रखना, दूसरे शास्त्रो की निन्दा न करना, मन वाणी और कर्मों का सयम, सत्य भाषण, मन और इन्द्रियो को वश मे रखना, अद्भुत लीला करने वाले श्रीहरि के जन्म, कम और गुणो का श्रवण कीत्तन और ध्यान करना, भगवान् के लिए ही सब विहित कर्म करना, यज्ञ दान जप तप आदि सदाचार अपने प्रिय लगने वाले सब पदार्थो और स्त्री पुत्र घर तथा प्राणो को भी परमात्मा के अपण कर देना और इस प्रकार भगवान ही जिनके आत्मा और स्वामी है ऐसे भक्तो से मित्रता करना, जड-चेतन जीवो को, मनुष्यो की और उनमे भी साधु-स्वभाव वाले महापुरुषो की विशेष रूप से सेवा करना, परस्पर भगवान के पवित्र यश का कथन करना और इस भागवत गुण-गान के द्वारा ही परस्पर प्रीति, तुष्टि और दु खो की निवृत्ति करना—ये सब साधन सद्गुरु के समीप रहकर सीखने चाहिए। इस प्रकार वर्ताव करने वाले और पापसमूह के नाशक श्रीहरि का स्वय स्मरण करने और दूसरो के कराने वाले भक्तो के हृदय मे इस साधना रूपा भक्ति के द्वारा प्रेम लक्षणा भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उनका शरीर पुलकित हो जाता है और फिर वे प्रेम मग्न हो जाते है।"[१]

गीता के बारहवे और अठारहवे अध्याय मे भी भक्तो के लक्षण बताए गए है और वह स्थिति बताई है जब भक्त को पराभक्ति की प्राप्ति होती है। "जब मनुष्य विशुद्ध बुद्धि से युक्त एकान्त सेवी मिताहारी, मन वाणी को जीतने वाला, वैराग्य को धारण करने वाला निरन्तर ध्यान परायण दृढ धारणा से अन्त करण को वश मे करके शब्द, स्पश आदि विषयो को त्यागकर रागद्वेष को नष्ट करके, अहकार बल दप काम-क्रोध और परिग्रह को छोडकर ममता रहित शान्त हो जाता है तभी वह ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है। फिर ब्रह्मभूत होकर सदा प्रसन्न चित रहने वाला वह न किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी वस्तु की आकाक्षा ही करता है और सब प्राणियो मे समभाव से भगवान को देखता है, नब मेरी पराभक्ति प्राप्त होती है और उसके द्वारा वह मुझको तत्व से जानता है, और फिर मुझ मे ही मिल जाता है।"[२]

श्रीमद्भागवत मे इसका एक और उपाय बताया है, "जो धीर पुरुष ब्रज बालाओ के साथ भगवानु विष्णु के (श्रीकृष्ण के) इस रास-विहार की कथा को श्रद्धापूर्वक सुने या पढेगा वह शीघ्र ही भगवान् की पराभक्ति को प्राप्तकर हृदय के रोग रूप काम विकार से छूट जायगा।"[३]

इस प्रकार भागवत मे सिद्ध और साधक दो प्रकार के भक्तो का वणन है। सिद्ध भक्तो मे लक्षण स्वाभाविक ही होते हैं और साधको को साधना द्वारा पराभक्ति की प्राप्ति होती है। पराभक्ति के प्राप्त होने पर भक्त आधे क्षण के लिए भी भगवत-चरण का चिन्तन नही छोडना चाहता। तीनो भुवनो का सम्पूण वैभव भी उसे तुच्छ लगने लगता है।[४] भक्ति

१ श्रीमद्भागवत ११–३–२१ से ३१

२ गीता १८–५१ से ५५

३ श्रीमद्भागवत १०–३३–४०

४ श्रीमद्भागवत ११–२ ५३

के साधक के लिए अहिंसा, शौच, सत्य, दया आस्तिकता आदि सदाचारो का भली भाँति पालन करना बहुत आवश्यक है।[1]

भक्ति सूत्र मे प्रेमा भक्ति का फल यही बतलाया है कि भगवान कीर्तित होने पर शीघ्र ही प्रकट होते है और भक्तो को अपना अनुभव करा देते है। भागवत मे ऐसे अनेक स्थल आए है जहाँ भगवान ने भक्तो को अपने स्वरूप का अनुभव कराया है। इसलिए नारद जी कहते है कि तीनो सत्यो मे तीनो कालो मे भक्ति ही श्रेष्ठ है।[2] श्रीमद्भागवत मे भी भक्ति ही की प्रशसा की गई है। ग्यारहवे स्कध मे स्वय भगवान् कहते है, "हे उद्धव! जैसे जोर से जली हुई अग्नि काठ के ढेर को भस्म कर देती है वैसे ही मेरी भक्ति सब पापो के समूह को जला देती है।"[3]

इस प्रकरण को समाप्त करने से पहले हम नारद जी से वर्णित उन आसक्तियो का उल्लेख करते है जिनसे प्रेम रूपा भक्ति एक होकर ग्यारह प्रकार की होती है। वे आसक्तियाँ ग्यारह है। (१) गुणमाहात्म्यासक्ति (२) रूपासक्ति (३) पूजासक्ति (४) स्मरणाशक्ति (५) दास्यासक्ति (६) सख्यासक्ति (७) कान्तासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) आत्मनिवेदना सक्ति (१०) तन्मयतासक्ति तथा, (११) परम विरहासक्ति। जो भक्त परमभक्ति को प्राप्त कर लेते है उनमे तो ये सभी आसक्तियाँ रहती है जैसे ब्रज गोपियो मे। परन्तु सभी अन्य भक्तो मे कोई न कोई आसक्ति अवश्य रहती है। श्रीमद्भागवत मे इन सभी प्रकार के भक्तो का वर्णन है, जैसे नारद, शुकदेव, सूत, शौनक, परीक्षित पृथु, जनमेजय आदि गुण माहात्म्य सक्ति भक्त है। कुछ ऋषि और ब्रज नारियाँ रूपासक्ति भक्त हैं। राजा पृथु अम्बरीष भरत आदि पूजासक्ति भक्त है। प्रह्लाद ध्रुव सनकादि ये स्मरणासक्ति भक्त है। अक्रूर विदुरादि दास्यासक्ति भक्त है। अर्जुन, उद्धव, श्रीदाम सुदामादि सख्यासक्त है। अष्टपटरानिया कान्ता सक्ति भक्त है। कश्यप अदिति, सुतपा पृश्नि, मनुशतरूपा, नद-यशोदा, वासुदेव-देवकी आदि वात्सल्यासक्ति भक्त है। राजा अम्बरीष, राजा वलि, राजा शिवि आदि आत्म निवेदनासक्ति भक्त है। शुक सनकादिक आदि ज्ञानी गण अथवा कौण्डिय सुतीक्ष्ण आदि प्रेमी मुनि गण तन्मयतासक्ति भक्त है तथा उद्धव अर्जुन ब्रज नारी आदि परम विरहासक्ति भक्त है।

---

१ नारद भक्ति सूत्र ७८
२ नारद भक्ति सूत्र ८१।
३ श्रीमद्भागवत ११ १४ १९।

अष्टय-अध्याय

भागवत का साहित्यिक महत्त्व

श्रीमद्भागवत महापुराण की तिथि के विषय मे विचार करते हुए हमने उसे अत साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य के आधार पर वतमान रूप मे नवी शताब्दी के आसपास की रचना बताया है। हम यह भी कह आए है कि इस महापुराण की भाषा और शैली के रूप भी इस मान्यता के पोषक है। श्रीमद्भागवत के काव्यपक्ष पर विचार करने से पहले तत्कालीन सस्कृत काव्य शैली पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

सस्कृत साहित्य का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि कालिदास के पश्चात् उत्तरोत्तर अलकृत शैली को ही कवियो ने अधिक प्रश्रय दिया। सातवी शताब्दी मे एक ओर तो भारवि ने महाकाव्य के क्षेत्र मे चमत्कार पूर्ण शैली का सूत्रपात किया जो बाद मे माघ की कल्पना से पुष्ट होती हुई अन्त मे ग्रन्थ ग्रन्थि गूँथने वाले श्रीहष के नैषधीयचरित मे चरम सीमा को प्राप्त हुई और दूसरी ओर यशस्वी गद्यकार बाण ने गद्यशैली को ऐसा व्यासपूर्ण एव अलकृत रूप दिया कि आज के पाश्चात्य विद्वान् उसके साथ अपनी बुद्धि का सामञ्जस्य बिठाने मे असमथ होकर उसे बिकट बन का रूपक देते है। गद्य और पद्य की इस पाण्डित्य पूर्ण शैली के अतिरिक्त वैदर्भी रीति को अपना कर चलने वाली प्रसाद पूर्ण स्वाभाविक शैली भी सवथा समाप्त नही हो गई थी। सस्कृत के अनेक गीतिकारो ने अपनी रस लहरियो से इसे बराबर सरस बनाए रखा। स्तोत्रकार भक्तो की भावभरी रचनाओ मे इसका प्रतिनिधित्व पर्याप्त मात्रा मे हुआ है और विल्हण जैसे रससिद्ध कवि ने अपना महाकाव्य (विक्रमाङ्कदेवचरित) भी इसी शैली मे प्रस्तुत किया है। इस युग के नाटको मे भी पाण्डित्यपूर्ण शैली का प्रभाव स्पष्टतया लक्षित होता है, यद्यपि भास और कालिदास की सहज उक्तियो से टक्कर खाने वाली उक्तियाँ भी यत्र तत्र बिखरी हुई मिलती हैं।

सच तो यह है कि आठवी शताब्दी समाप्त होते होते सस्कृत साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास हो चुका था और लक्षण ग्रन्थो के प्रणयन तथा काव्य शास्त्रीय चिन्तन के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रस्तुत हो चुकी थी। अत इसके पश्चात् काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे तो विशेष रूप से उन्नति हुई और आचार्यों ने मौलिक सिद्धान्तो की स्थापना कर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया जिसके कारण ध्वनि, वक्रोक्ति और रस सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हुई, किन्तु काव्य रचना के क्षेत्र मे नवीन प्रतिभा का उदय नही हुआ पुराने कवियो का ही अनुकरण इस युग के कवि करते रहे। परम्परा-पालन को उन्होने कवि का मुख्य धम जाना और पाण्डित्यप्रदशन मे कविकम की इतिश्री समझी। वस्तुत अनुकरण और परम्परा पालन को नवीन रूप मे रखे बिना काम चलना असभव था क्योकि इस प्रकार तो कारबनपेपर द्वारा की हुई 'मक्षिका स्थाने मक्षिका' जैसी ट्रू कॉपी ही निकाली जा सकती थी अत कवियो ने विभिन्न प्रकार के शास्त्रीय ज्ञान का परिचय और भाषा का चमत्कार अहित कर मुलम्मा की हुई सी मौलिकता का आश्रय लिया। अपने पूवजो से उन्होने प्रेरणा (Inspiration)

न लेकर रूढियाँ, विषय और भावो को ग्रहण किया तथा सूक्ष्म निरीक्षण की अपेक्षा बाहरी तडक-भडक पर अधिक ध्यान दिया जिससे काव्य का प्रवहणशील स्रोत सकीर्ण किनारो मे बँधकर एक सुनियोजित सरोवर तो बन गया किन्तु अपनी स्वाभाविक रवानी और कलकल ध्वनि को खो बैठा। वर्ण्य विषय का भावपूर्ण सूक्ष्म विश्लेषण शाब्दिक नक्काशी बन कर रह गया और आधेय की अपेक्षा आधार की तारकशी आकर्षण का केन्द्र बन गई। इसमे सन्देह नही कि यह भी अपने ढग की एक मौलिकता थी किन्तु मूल को छोडकर शाखाओ की अधिक चिन्ता कर रही थी। साराश यह है कि श्रीमद्भागवत को रचना के समय साहित्यिक क्षेत्र का वातावरण निम्नलिखित चार प्रकार को काव्यशैलियो के स्वर से मुखरित था।

१—अलकार प्रधान ऊहात्मक शैली—इस शैली का स्वर सब से ऊँचा था। भावो की ध्वनि की अपेक्षा अलकारो की चमक-दमक और झनझनाहट ही इसमे अधिक सुन पडती थी।

२—अलकार प्रधान भावात्मक शैली—इस शैली मे अलकारो का अनुरणन भाव ध्वनि की पृष्ठभूमि मे सुनाई देता था।

३—प्रसादपूर्ण अनलकृत भावात्मक शैली—इस शैली के प्रशसक और वरयिता भावो की अभिव्यक्ति सीधे-सादे शब्दो मे करने के पक्षपाती थे। भक्ति भावपूर्ण स्तोत्रो मे प्राय यही शैली अपनाई गई है।

४—इतिवृत्तात्मक शैली—रामायण, महाभारत, आदि के अन्तर्गत विविध आख्यान और उपाख्यानो मे प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली जिसमे अन्य किसी भी तत्त्व की अपेक्षा कथानक के प्रवाह पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है।

कहने की आवश्यकता नही कि भागवत मे उपर्युक्त सभी प्रकार की शैलियो के दर्शन होते है। वस्तुत भागवत एक विचित्र ग्रन्थ है जिसमे भक्ति, ज्ञान, विविध दार्शनिक सिद्धान्तो तथा प्रचलित काव्य शैलियो का अद्भुत समन्वय हुआ है। 'विद्यावता भागवते परीक्षा' उक्ति भागवत के इस महत्त्व की ओर स्पष्ट सकेत करती है।

यद्यपि श्रीमद्भागवत भक्ति और ज्ञान का प्रतिपादक एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है और इसका पर्यवसान शान्त रस मे होता है, तथापि अपने वर्ण्य विषय की गरिमा, विस्तार और व्यापकता के कारण यह ग्रन्थ सहज ही एक श्रेष्ठ काव्य के गुणो से अलकृत होगया है। यदि 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' ही काव्य की सर्वोत्तम परिभाषा है तो हम निस्सकोच कह सकते है कि श्रीमद्भागवत एक परम रसमय काव्य है। अपितु लौकिक काव्यो से भी महनीय भगवद्विषयक रति और भक्ति को इसमे रसकोटि तक पहुँचा दिया गया है इस प्रकार यह काव्य लौकिक काव्यो से उच्चतर धरातल पर पहुँच कर दिव्य-काव्य के रूप मे अभिहित होने का अधिकारी है। यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का अमृत-रस से परिपूर्ण फल है, जो शुक (शुकदेव रूपी तोते) के मुख से पृथ्वी पर गिरा है। भावुक और रसिक भक्तो द्वारा इसका अमृत-रस आमरण सेवनीय है।[1] प्रारम्भ मे ही ग्रन्थ की जिस

१ निगमकल्पतरोर्गलित फल
शुकमुखादमृत द्रव सयुतम्।
पिवत भागवत रसमालय
मुहुरहो रसिका भुवि भावुका ॥

रसमयता को जिस सुन्दर रूपक से व्यक्त किया गया है, उसका निर्वाह अन्त तक हुआ है और अपने विशाल कलेवर मे गौण रूप मे ही क्यो न सही यह ग्रन्थ एक सुदर काव्य को सजोए हुए है। जिस प्रकार हिन्दी मे रामचरितमानस एक अध्यात्म प्रधान धम ग्रन्थ होकर भी भक्ति के दिव्य प्रभाव से सहज ही एक श्रेष्ठ महाकाव्य बन गया है, ठीक उसी प्रकार वण्य विषय को ही महत्त्व देते हुए श्रीमद्भागवत एक निसग सिद्ध काव्य बन गया है। जब एक महामनीषी साहित्य स्रष्टा एक महान् सत्य का वणन करने प्रस्तुत होता है तो युग-युग से सचित ज्ञान-राशि, भाषा, भाव और सौन्दय की निधि उसके करतलगत हो जाती हैं। श्रीमद्भागवत मे भारत के प्राचीन ज्ञान उपासना और कम की त्रिवेणी प्रवहमान है। प्राचीन ब्रह्मर्षियो और राजर्षियो का पुण्यचरित तथा सर्वोपरि लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की ललित लीलाओ का अत्यन्त विस्तृत वणन है। इतने महत्त्वपूण वण्य-विषय जिनमे जीवन का सर्वांगीण दशन होता है, सहज ही काव्य के विषय बन जाते है।

यहाँ हम श्रीमद्भागवत के काव्यत्व पर सक्षेप मे विचार करेगे। हमारा लक्ष्य यह नही है कि काव्यशास्त्र के सूक्ष्म लक्षणो को श्रीमद्भागवत मे खोजे। शब्दालकार, अर्थालकार, रस, शब्द शक्तियो, छन्द और अन्य काव्यागो का शास्त्रीय विवेचन श्रीमद्भागवत के सन्दभ मे करे। अपितु हमारा अभिप्रेत केवल इतना ही है कि इस ग्र थ मे काव्य के सामान्य रस अलकार और गुण आदि किस मात्रा मे और किस रूप मे विद्यमान है। यह तो हम बडे सहज भाव से कह सकते है कि श्रीमद्भागवत मे बहुत काफी मात्रा मे काव्यत्व विद्यमान है और परवर्त्ती सस्कृत तथा हिन्दी साहित्य इस से अत्यन्त प्रभावित हुआ है। समग्र भक्तिकाल का साहित्य इसकी भाव-सम्पत्ति का ऋणी है। सूर और तुलसी के काव्य प्रासादो का आधार-स्तम्भ यही ग्रन्थ है।

यद्यपि भागवत मे भाषा की अपेक्षा भाव को ही प्रमुखता दी गई है तथापि भागवतकार के सहज पाण्डित्य से भाषा का सुन्दरतम और प्राणमय रूप कही भी मन्द नही हुआ है। भावो की गम्भीरता और ममस्पर्शिता तो लोकोत्तर ही है जो भक्ति के सतत प्रवाह के कारण सहज हो गई है। निम्नलिखित पक्तियो मे प्रसादपूण सहज भावात्मक शैली का उदात्त रूप प्रस्फुटित हुआ है।

नम पकजनाभाय नम पकज मालिने।
नम पकजनेत्राय नमस्ते पकजाङ्घ्रये॥ १ ८ २२

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णश
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहित जना।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावक
भव प्रवाहोपरम पदाम्बुजम्॥ १ ८ ३६

श्रीमद्भागवत मे अद्भुतकर्मा भगवान् की अनेक सुन्दर स्तुतिया है। वास्तव मे वे एक सुन्दर काव्य ही है। यदि इन सभी स्तोत्रो को पृथक् से सग्रह किया जाय तो एक परम रुचिर, स्वतत्र काव्य ग्रन्थ प्रस्तुत होजाय। इन भगवत्स्तुतियो मे कवि ने अपना हृदय खोल कर रख दिया है। भगवान् की अपरिमित महिमा, शक्ति और त्रिभुवन मोहन सौन्दर्य का काव्यमय वणन पढकर प्रत्येक सहृदय गद्गद् हो उठेगा भगवान् कृष्ण के रूप वर्णन,

चरिताख्यान और लीलागान के अवसर पर भागवतकार का दार्शनिक रूप पूर्णरूपेण तिरोहित हो जाता है वे एक दम भक्ति-भाव के सागर मे गोता लगा जाते है और अलकारो मे गूँथे जाने योग्य शब्द रत्न स्वत ही उनकी भाषा की विस्तार परिधि मे सिमटते चले आते हे। ऐसे ही स्थलो पर अलकृत भावात्मक शैली का मञ्जुल घोष सुनाई पडता है। जानबूझ कर भाषा को क्लिष्ट बनाने का प्रयत्न कही नही मिलता। अलकारो का बेजा भार कविता के सुकुमार शरीर पर लादने की लालसा इस आर्ष कवि को बिल्कुल नही रही। शबनम की बूँदो से शोभित लता के समान अछूता होकर भी उसकी कविता का अलकृत सौदर्य क्षणिक नही है जो उसकी भावमयी आत्मा के उल्लास के साथ सर्वत्र सगति बनाए हुए है। प्रथम स्कन्ध मे भीष्मपितामह के मुख से भगवान् की जो स्तुति कराई गई है उसकी अनुभूति की गहराई आकी नही जा सकती। मानो भक्तिरसार्णव मे आपाद मस्तक निमज्जित कोई परमभक्त पुकार रहा है—

'त्रिभुवनकमन तमालवर्ण
 रविकर गौरवराम्बर दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्ज
 विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥
युधितुरग रजोविधूम्रविष्वक
 कचलुलितश्रमवाय्वलकृतास्ये।
मम निशित शरैर्विभिद्यमान–
 त्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥ ३४ ॥

× × ×

स्व निगममपहाय मत्प्रतिज्ञा
 मृतमधिकर्तु मवप्लुतो रथस्थ।
धृतरथ चरणोऽभ्ययाच्चलद्गु–
 हरिरिव हन्तुमिभगतोत्तरीय ॥ ३७ ॥
शित विशिख हतो विशीर्ण दश
 क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे।
प्रसभमभिससार मद्वधाथ
 स भवतु मे भगवान्गतिर्मुकुन्द' ॥ ३८ ॥

श्रीमद्भागवत १ ९

'त्रिभुवन सुन्दर और तमालवृक्ष के समान श्याम वर्ण, सूर्यरश्मियो के समान उज्ज्वल पीताम्बरधारी, अलकावली से आवृत मुखमण्डल वाले, सुन्दर रूप वाले अर्जुन सखा श्रीकृष्ण मे मेरी निष्काम प्रीति हो। जिनका मुखकमल युद्ध मे घोडो के खुर की धूलि से धूसरित और चचल अलकावली एव पसीने की बूँदो से सुशोभित है तथा जिनकी त्वचा मेरे तीक्ष्ण बाणो से बिंधी जारही है, उन कवच सुशोभित कृष्ण मे मेरा चित्त स्थिर हो। जो अपनी प्रतिज्ञा छोडकर मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए रथ से कूद पडे और सिह जैसे हाथी को

मारने चलता है, वैसे ही मुझे मारने के लिए रथ का पहिया लेकर इतने वेग से दौडे कि पृथ्वी डगमगा उठी और कधे का दुपट्टा गिर गया। मुझ आततायी के तीक्ष्ण बाणो से जिनका कवच फट कर शरीर लोहूलुहान होगया उस समय मुझे मारने के लिए जो बडे वेग से दौडे वे भक्त-वत्सल भगवान् मुकुन्द मेरी गति हो।' इस स्तुति मे हमे एक परम भावुक भक्त हृदय की झाँकी मिलती है। कवि ने अपने आराध्य देव का जो त्रिभुवन कमनीय तमाल श्याम पीतवसन धारी रूप वर्णन किया है, वह हिंदी के भक्ति-साहित्य मे उपजीव्य है। श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण की जिस रूप माधुरी के दर्शन पद पद पर होते है, वह दिव्य है। प्राय समस्त कृष्ण भक्त कवि श्रीकृष्ण के रूप सौदर्य के वर्णन के लिए श्रीमद्भागवत के ऋणी है।

चित्रोपमता

उपर्युक्त स्तुति मे कवि ने श्रीकृष्ण का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, वह चित्रोपम है। महाभारत के रण-प्रागण मे स्वेद और रक्त से लथपथ गतोत्तरीय होकर हाथ मे रथाङ्ग लेकर भीष्म पर क्रुद्ध सिंह के समान आक्रमण करने वाले श्रीकृष्ण का चित्र कितना सजीव है। श्रीमद्भागवत मे ऐसे अनेक सजीव चित्र है। उनका वर्णन पढते पढते समस्त वातावरण घटना और पात्र नेत्रो के समक्ष प्रस्तुत हो जाते है। अँग्रेजी साहित्य शास्त्र मे इस प्रकार के चित्रोपम वर्णन को (Pictorial Effect) कहते हैं। यहाँ हम भगवान् के मोहिनी रूप का वर्णन देते है जो नारी के सहज सौन्दर्य चाञ्चल्य और आकर्षक रूप का ऐसा मोहक चित्र उपस्थित करता है, जो अपना सानी नही रखता। शिव की प्रार्थना पर विष्णु भगवान् ने अपना वह महामोहक रूप इस प्रकार दिखाया—

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रिय
विचित्रपुष्पारुण पल्लवद्रुमे।
विक्रीडती कन्दुक लीलया लस–
द्दुकूलपर्यस्त नितम्ब मेखलाम्॥
आवर्तनोद्वर्तन कम्पितस्तन
प्रकृष्ट हारोरुभरै पदे पदे।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चल–
त्पद प्रवाल नयती ततस्तत॥
दिक्षु भ्रमत्कन्दुक चापलैर्भृश
प्रोद्विग्न तारायत लोललोचनाम्।
स्वकर्ण विभ्राजित कुण्डलोल्लस–
त्कपोल नीलालक मण्डिताननाम्॥
श्लथद्दुकूल कबरी च विच्युता
सन्नह्यती वाम करेण वल्गुना।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुक
विमोहयन्ती जगदात्म मायया॥

श्री मद्भागवत ८–१२–१८–२१

शिव ने देखा कि चित्र विचित्र पुष्पो और अरुण वर्ण नव पल्लव युक्त द्रुमो से सुषमित उपवन मे सुन्दरी गेद उछाल उछाल कर क्रीडा कर रही थी और जिसके देदीप्यमान

दुकूल से सुशोभित नितम्ब देश पर मेखला पडी हुई थी। कन्दुक को उछालने और लपकने के कारण हिलते हुये स्तन और मनोहर मालाओ के भारी भार से जिसकी क्षीण कटि पद-पद पर टूटी सी जाती थी और जो अपने चचल चरणो को इतस्तत ले जाती थी। उस विशाल और चचल नेत्रो वाली तरुणी के नेत्र-तारक दिशा विदिशा मे उछलते हुये कन्दुक की चपलता से उद्विग्न हो रहे थे। उसका मुख मण्डल कानो मे पहने हुए सुन्दर कुण्डलो से सुशोभित कपोलो पर छिटकी हुई नीली अलको से सुषमित था। वह रमणी अपनी खिसकी हुई साडी एव शिथिल हुई वेणी को अपने अति मनोहर वामकर से सँवारती जाती थी तथा दूसरे हाथ से गेद उछाल उछाल कर अपनी माया से सम्पूर्ण जगत को मोहित कर रही थी।' नारी के सहज सौन्दय और लीला विलास का कितना स्वाभाविक चित्रण है। नारी के सवलोक मनोहर रूप का इतना सुन्दर चित्र साहित्य मे दुलभ है। प्रगल्भ नारी का यह रूप युग युग से कवि का वण्य विषय रहा है। यह कहने की आवश्यकता नही कि उपयुक्त वणन महा काव्यकारो द्वारा निबद्ध देवाङ्गनाओ के विहार की स्मृति दिलाता है।

कवित्वमय-वर्णन

यद्यपि इतिवृत्त मे नीरसता आ जाना एक स्वाभाविक और साधारण बात है किन्तु श्रीमद्भागवत के वणन प्राय इसके अपवाद है। कवि ने दाशनिक तथ्यो तक का वणन अत्यन्त सरसता के साथ किया है। ऐतिहासिक घटनाओ के वणन के अतिरिक्त देश, काल नदी, पवत, वन, ऋतु, नगर, स्वग, नरक, वैकुण्ठादिलोक तथा अतलवितलादि अधोलोको का वणन अत्यन्त कवित्वमय है। युद्ध मे वीर दप की उक्तियाँ तथा समर का प्रत्यक्षवत् वणन बहुत ही मनोहर है। शिव के वासस्थान कैलास तथा विष्णु के धाम वैकुण्ठ के वणन मे कवि ने चमत्कार दिखाया है। अधिक विस्तार न देकर हम यहाँ उक्त दोनो स्थानो के चित्रोपम वर्णन का थोडा सा अश प्रस्तुत करेगे।

वैकुण्ठ लोक का वणन कवि ने इस प्रकार किया है—

यत्र नैश्रेयस नाम वन कामदुघैद्रुमै।
सवर्तु श्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत्॥
वमानिका सललनाश्चरितानियत्र।
गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भतु।
अन्तजलेऽनुविकसन्मधु माधवीना॥
गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिल क्षिपन्त।
पारावतान्य भृतसारस चक्रवाक॥
दात्यूह हसशुकतित्तिर बर्हिणा य।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चै—
भृगाधिपे हरिकथामिव गायमाने॥
मदार कुन्द कुरबोत्पल चम्पकोण।
पुन्नाग नागबकुलाम्बुज पारिजाता॥
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या।
यस्मिस्तप सुमनसो बहुमानयन्ति॥

श्रीमद्भाग० ३–१५–१६–१९

वैकुण्ठ मे समस्त ऋतुओ की सम्पत्ति से युक्त कल्पवृक्षों से सुशोभित नै श्रेयस नामक वन है। वह मूर्तिमान् कैवल्य पद के समान ही है। वहाँ अपनी प्रियाओ के साथ विमानचारी गन्धवगण प्रभु की पवित्र लीलाओ का, जो लोक की पापराशि को नष्ट करने वाली है, गान करते है। वे सरोवरो मे खिली हुई मकरन्द भरी माधवीलता की सुमधुर गन्ध से चित्त के चचल होने पर भी उस गन्ध को लाने वाले वायु का तिरस्कार कर देते है। जिस समय भ्रमरराज गु जार करते हुए मानो हरि कथा का गान करते है उस समय थोडी देर के लिए कबूतर, कोकिल, सारस, चकवा, चातक, हस, शुक तीतर और मोरो का कोलाहल बन्द हो जाता है। (क्योकि वे सभी हरिकथा सुनना चाहते है) तुलसी विभूषित हरि तुलसी की सुगन्ध का ही अधिक मान करते है—यह देखकर वहाँ के मदार कुन्द, कुरब उत्पल, चम्पक, अण पुन्नाग नागकेशर, बकुल, अम्बुज और पारिजात आदि सुमनगण सुगन्ध युक्त होकर भी उस वन मे तुलसी का ही तप अधिक मानते है।' चित्रोपम वर्णन के अतिरिक्त इस प्रसग मे काव्य-सुलभ जिन सुन्दर उत्प्रेक्षाओ का प्रयोग किया गया है वे सहज रूप से मनोज्ञ हैं। यह वर्णन बहुत विस्तृत है। यहा अमृतसागर की कतिपय लहरियो का ही दशन कराया जा सका है।

कैलास पवत के चित्रण से भी एक नमूना लीजिए—

जन्मौषधि तपोमन्त्र योग सिद्धैनरेतरै ।
जुष्ट किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिवृत सदा ॥
नाना मणिमयै श्रृ गैर्नाना धातुविचित्रितै ।
नाना द्रुमलता गुल्मैर्नाना मृग गणावृतै ॥
नानामल प्रस्रवणैर्नाना कन्दरसानुभि ।
रमण विरहन्तीना रमणै सिद्ध योषिताम् ॥
मयूर केकाभिरुत मदान्धालि विमूर्छितम् ।
प्लावितै रक्तकण्ठाना कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥
आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमै ।
व्रजन्तमिव मातगैगृणन्तमिव निर्झरै ॥

॥ • • ॥ ४, ६, ६, १३

'वह पवत जन्म, औषधि, तप, मन्त्र और योग आदि उपायो से सिद्ध हुए देवता, किन्नर, गन्धर्व और अप्सरा आदि से निरन्तर भरा रहता है चित्र विचित्र धातु अनेक प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म और नाना मृगगणो से आवृत्त नाना मणिमय शिखरो से युक्त वह पर्वत अत्यन्त रमणीय जान पडता है। वह निमल जल के अनेक झरनो और बहुत सी कन्दराओ तथा शिखरो से सुशोभित है। वह अपने प्रियतमो के साथ विहार करती हुई सिद्ध पत्नियो का क्रीडा स्थल बना हुआ है। उसमे सब ओर मोरो का शोर मदान्ध भ्रमरो की गुनगुनाहट कोकिला की कुहू-कुहू ध्वनि और पक्षियो की चहचहाहट गूँजती रहती है। कल्पवृक्षो की ऊँची-ऊँची शाखाओ से मानो वह पक्षियो को बुला रहा है, हाथियो के चलने फिरने से वह चलता फिरता मालूम होता है और झरनो की झनकार से बोलता सा जान पडता है।

चित्रात्मकता के अतिरिक्त उक्त वणनो मे प्रकृतिचित्रण की तत्कालीन परम्पराओ का स्फुट प्रतिबिम्ब भी देखा जा सकता है। "आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान् कामदुघैर्द्रुमै,

व्रजन्नमिव मातगैर्गृणन्तमिव निर्झरै" मे उत्प्रेक्षा की मनोरम माला दृश्य को अधिकाधिक चाक्षुषत्व प्रदान करने के अतिरिक्त उसके मानसिक प्रभाव की भी उस स्तर की अभिव्यक्ति करती है जो कविकुलगुरु कालिदास द्वारा नूपुर को 'चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिवबद्धमौनम्" बताने वाली उत्प्रेक्षामयी उक्ति मे हुई है। यो तो भागवत का अधिकाश इतिवृत्तात्मक शैली मे लिखा गया है किन्तु कितने ही स्थलो पर वस्तु का निर्वाह इस ढग से किया गया है कि वे किसी महाकाव्य के अश से प्रतीत होते है। कलात्मक अभिव्यक्ति तथा सुव्यवस्थित छद-योजना के साथ साथ घटनाओ का सजीव चित्रण इन स्थलो की विशेषता है। नवम स्कन्ध के दशम अध्याय का रामोपाख्यान एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य के गुणो से भरपूर है।

पद्याश के अतिरिक्त भागवत मे गद्याश भी है। यद्यपि पद्याश की तुलना मे गद्य भाग अत्यल्प है तथापि जितना भी है वही इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि "गद्य कवीना निकष वदति" सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने वाले युग की साहित्यिक चेतना के प्रति भी भागवतकार कुछ कम सजग नही थे। उनके गद्य की प्रौढता एव ओज भागवत को सहज ही सस्कृत के किसी भी गद्यकार की रचना के समकक्ष रखे जा सकने की योग्यता प्रदान करते है। उदाहरणाथ नीचे लिखे हुए ये दो वाक्य ही ले लीजिए—

१—न हि विरोध उभय भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीन-विकल्प वितकविचार प्रमाणाभासकुतक शास्त्रकलिलान्त करणाश्रयदुरवग्रह वादिना विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुघट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात्।[1]

२—अस्माक तावकाना तव नताना तव ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडाना स्वलिगविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जित विशद रुचिर शिशिर-स्मितावलोकेन विगलितमधुर सुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघाहसि शमयितुम्।[2] प्रतीत होता है कोई सुबन्धु, बाण अथवा भवभूति बोल रहा है। इसी प्रकार पाँचवे स्कन्ध के अठारहवे अध्याय मे गद्य के कितने ही अ श ऐसे है जो सस्कृत के प्रौढ गद्यमय रोमाण्टिक काव्यो के उद्धरण से ज्ञात होते है। जैसे—

अतीव सुललित गतिविलासविलसित रुचिरहासलेशावलोकलीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दर भ्रूमण्डलसुभग वदनारविन्दश्रिया रमा रमयन्निन्द्रियाणि रमयते।[3]

भाव पक्ष

साहित्यिक दृष्टि से भागवत के गीतो का अत्यन्त महत्त्व है। ये गीत है— वेणुगीत, गोपी गीत, युगल गीत, भ्रमर गीत, द्वारका को श्रीकृष्ण की पत्नियो का गीत, पिगला गीत, भिक्षु गीत, ऐल गीत और भूमि गीत। इन गीतो मे मानवीय मनोभावो का सहज एव मनोरम प्रस्फुटन हुआ है। सौन्दय के प्रति ललक, अनुराग की तीव्रता, विरह की अनुभूति, प्रियसान्निध्य से प्रसूत गौरव और उसके दाक्षिण्य के कारण आविर्भूत गव की हृदयहारिणी अभिव्यक्ति सचमुच श्लाघनीय है। भिक्षुगीत, ऐलगीत और भूमिगीत निर्वेदपरक गीत है।

१ श्रीमद्भागवत ६–९–३६
२ वही ६–९–४१
३ वही ५–१८–१६

भिक्षुगीत मे लोगो से अपमानित दीन ब्राह्मण ससार से निर्वाण होकर आत्मोद्धार करता है। ऐलगीन मे उवशी के सम्मोहन मे भूला हुआ ऐल अन्त मे निर्वेद को प्राप्त होकर अपने आप को धिक्क‌ा‌‌‌‌‌‌‌‌‌‌‌‌‌‌ता है। भूमिगीत मे भूमि नश्वर राजाओ की विजयाकाक्षा पर तीव्र व्यङ्ग्य करती हुई कहती है कि ये राजा लोग, जो मृत्यु के हाथो के खिलौने है, मुझे जीतना चाहते है अपने जल बुद्बुद्सदृश जीवन पर विश्वास करते है और धोखा खाते है। इन गीतो मे शान्तरस का अच्छा परिपाक हुआ है। भिक्षु गीत मे मन की निन्दा करता हुआ ब्राह्मण कहता है—

देह मनोमात्रमिम गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्या ।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपोर तमसि भ्रमन्ति ॥[1]

इस मनोमात्र देह को धारण कर अन्धबुद्धि मनुष्य मैं, मेरा और अपने पराये के भ्रम मे पडकर दुस्तर अन्धकार मे भ्रमण करते रहते है।

अतृप्तकाम ऐल की आत्मग्लानि भी निर्वेद का उत्कृष्ट उदाहरण है—

अहो मे आत्मसमोहो येनात्मा योषिता कृत ।
क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेव-शिखा-मणि ॥
कुतस्तस्यानुभाव स्यात् तेज ईशत्वमेव वा।
योऽवगच्छ स्त्रिय यान्ती खरवत् पादताडित ॥
स्वाथस्याकोविद धिङमा मूख पण्डितमानिनम् ।
योऽहमीश्वरता प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जित ॥
पु श्चल्यापहृत चित्त कोऽन्यो मोचितु प्रभु ।
आत्मारामेश्वरमृते भगव तमधोक्षजम् ॥

धिक्कार है मुझे जिसने अपने आपको स्त्रियो का वशवर्ती बना दिया। उस व्यक्ति का प्रभाव, तेज और प्रभुता कहाँ रहे जो खर के सदृश ठुकराया जाकर भी स्त्री के पीछे लगा रहता है। स्वाथ को भी न समझ सकने वाले मुझ पण्डितम्मन्य मूख को धिक्कार है जो प्रभुता पाकर भी साँड या खर के समान स्त्री के हाथो बिक गया। कुलटा कामिनी के द्वारा अपहृत हृदय को आत्माराम भगवान् विष्णु के अतिरिक्त अन्य कौन मुक्त कर सकता है।

इन पक्तियो मे केवल आत्मग्लानि, पश्चात्ताप और विषाद की त्रिवेणी ही नही उमड रही है अपितु प्रबलतम मानवीय भाव का भौतिक धरातल से आध्यामिक सुमेरु तक उन्नयन का मनोरम माग भी स्पष्ट चित्रित किया गया है। भागवतकार के कविहृदय की ऐसी झाकियाँ अनेक स्थलो पर दिखाई पडेगी।

दशम स्कन्ध इक्कीसवे अध्याय के अन्तगत वेणुगीत अपने मादक प्रभाव के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कृष्ण की मोहक वेणु का सगीत गोपियो के सरल निर्मल हृदय पर ऐसा प्रभाव डालता है कि वे उसकी डोर मे बँधी हुई सी आत्मविस्मृत होकर विवश

१ श्रीमद्भागवत ११–२३–५०

हो जाती है। यह ऐसी विवशता है जो देवताओ के लिए भी स्पृहणीय है। वेणुगीत मे भागवतकार ने अपनी भाषा, छन्द योजना और भावाभिव्यक्ति के द्वारा वेणु के सगीत को ही नही उसके प्रभाव को भी पाठको के हृदय मे सक्रमित कर देने की क्षमता भर दी है। अपनी अलौकिक तान से जड को चेतन और चेतन को जड बना कर समरसता उत्पन्न कर देने वाले वेणु के वर्णन मे भागवतकार ऐसे दिव्य वातावरण की सृष्टि करते है जिसमे साँस लेकर पाठक एक नवीन भावजगत् की अनुभूति करने लगता है—

धन्या स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दन मुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरचित सहकृष्णसारा पूजा दधुर्विरचिता प्रणयावलोकैः॥
गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तमित कर्णपुटैः पिबन्त्य।
शावा स्नुतस्तनपय कवला' स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकला स्पृशन्त्य॥
प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षित तदनुदित कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाच॥
नद्यस्तदा तदुपधाय मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनो भवभग्नवेगा।
आलिगन स्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगल कमलोपहारा॥

ये मूढमति हरिणिया धन्य है जो अपने कृष्णसार मृगो के साथ विचित्रवेषधारी कृष्ण की वेणुध्वनि सुन कर स्निग्धदृष्टि से उनकी पूजा करती है गऊएँ उनके (कृष्ण के) मुख से निर्गत वेणुगीत रूपी अमृत का स्तब्ध एव उन्नत कर्णों से पान कर रही है। वृक्षो की किसलयशोभी शाखाओ पर बैठे हुए पक्षिगण मुनिवत् मौन नेत्रनिमीलन कर वेणु का गीत सुन रहे है और नदियाँ, जिनके आवर्त उनकी कामवश अवरुद्ध गति के द्योतक हैं, कमलो का उपहार लिए अपनी वीचिरूपी भुजाओ से आलिगन से छूटे हुए कृष्ण के चरणयुगल को पकड रही है।"

नि सन्देह वातावरण उस रास की उपयुक्त भूमिका है जिसमे भागवत की भावसृष्टि चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। स्नेह और भक्ति का, श्रेय और प्रेय का, शिव और सुन्दर का ऐसा अद्भुत समन्वय सचमुच ब्रह्मानन्द सहोदर रस का जनक सिद्ध होता है। वेणुरव की सुरा से उन्मत्त गोपियाँ अपने पतियो के साथ लोकलाज को भी त्याग कर रात्रि के समय कृष्ण के पास पहुँचती है। वे गई थी आत्म-समर्पण करने के लिए स्नेहसुधा का रसपान करने के लिए किन्तु कृष्ण उन्हे कुलागनाओ के आचरण पर एक लम्बा-चौडा उपदेश पिलाने के लिए आगे आये उस समय गोपियो की दशा का जो शब्दचित्र भागवातकार ने प्रस्तुत किया है वह उनके भावो की कितनी स्पष्ट झलक दे रहा है—

कृत्वा मुखान्यवशुच श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुव लिखन्त्य।
अस्रैरुपात्तमषिभि कुचकुकुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुखभरा स्म तूष्णीम्॥[1]

१ श्रीमद्भागवत १०–२९–२९

अपने तप्त श्वासो से सूखते हुए बिम्बाधर वाले मुखो को नीचाकर, चरण (के नख) से पृथ्वी को कुरेदती हुई, ाजल से मिश्रित आसुओ से कुचो पर लिप्त कुङ्कम को धोती हुई गोपियाँ गुर्वी वेदना के कारण मोन रह गई ।

इस श्लोक मे गोपियो की मनोदशा का पूरा प्रतिबिम्ब उभर आया है। विषाद, चिन्ता लज्जा आदि भावो से पुष्ट बेबसी का इससे सुन्दर चित्र दुलभ हे। बेचारी गोपिया कहे तो क्या कहे। कृष्ण उन्ही को दोष दे रहे हे, अपने हरजाई रूप को कुछ न्ही कहते जिसकी चपेट से त्रैलोक्य की कोई भी सुन्दरी विजित हो सकती है। उन्हे कहना ही पडा कि—

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहितार्य चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिद च निरीक्ष्य रूपम्
यद्गोद्विजद्रुममृगा पुलकान्यबिभ्रन् ॥[1]

ओह ! त्रिलोकी मे कौन स्त्री है जो तुम्हारे व्यापक सौन्दय से सम्मोहित होकर अपने माग से विचलित न हो जाये। इस त्रैलोक्य सु दर रूप को देखकर तो पशु, पक्षी और वृक्ष भी पुलकित हो उठते है।

कृष्ण ब्रज के कष्टो को हरने का दम भरते है, आत बन्धु होने का ढिढोरा पीटते है किन्तु स्वय ही गोपियो के हृदय मे प्रणय की वेदना उत्पन्न कर उपचार तक नही करते । अत गोपिय उनके कत्त व्यो का स्मरण दिलाती हुई कहने के लिए बाध्य हो जाती ह कि—

व्यक्त भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुष सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमातवन्धो !
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम् ॥[2]

आप ब्रज के भय एव ताप को दूर करने के लिये सुरलोक रक्षक आदि पुरुष के समान आविभू त हुए हे। अत आतवन्धो ! हम किङ्करियो के सतप्त स्तनो और सिरो पर अपने कर कमल को स्थापित कीजिए।

गोपियो के स्नेहोपालम्भ के समक्ष कृष्ण निरुत्तर हो गए और उन्हे उनकी इच्छा की पूर्ति के हेतु रास रचाना पडा। रास के अन्तगत विविध प्रकार की काम क्रीडाओ के रस से मत्त गोपियो के हृदय मे जब सौभाग्य मद का सञ्चार हुआ तो कृष्ण उसका विनयन करने के उद्देश्य से अन्तर्हित हो गए। इसके पश्चात् गोपियो का जो विरह विलाप ह वह साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की वस्तु है। उह उन्माद की दशा अभिभूत कर लेनी ह। आत्म विस्मृत होकर वे जड-चेतन की सवित्ति से शून्य होकर पशु पक्षियो और लता-वृक्षो से कृष्ण का पता पूछती हुई वन मे भटकने लगती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की नागमती की इसलिए बडी भारी प्रशसा की है कि वह विरह मे सब कुछ भूलकर अपने रानीपने को भी बिसरा कर—साधारण स्त्री की भाँति—बरसात मे अपने पति की अनुपस्थिति मे घर के छाने की चिन्ता करती है और भौरे तथा काग से अपने पिय को सदेसडा कहने के लिए कहती है। तुलसी के राम भी अपनी मृगनैनी सीता को खोजते हुए खग, मृग और मधुकर श्रेनी से उनके बारे म पूछते है। भागवतकार की गोपियाँ इस प्रशस्त माग को बहुत पहले ही दिखा

१ श्रीमद्भागवत १०–२९–४०

हो जाती है। यह ऐसी विवशता है जो देवताओ के लिए भी स्पृहणीय है। वेणुगीत मे भागवतकार ने अपनी भाषा, छन्द योजना और भावाभिव्यक्ति के द्वारा वेणु के सगीत को ही नही उसके प्रभाव को भी पाठको के हृदय मे सक्रमित कर देने की क्षमता भर दी है। अपनी अलौकिक तान से जड को चेतन और चेतन को जड बना कर समरसता उत्पन्न कर देने वाले वेणु के वर्णन मे भागवतकार ऐसे दिव्य वातावरण की सृष्टि करते है जिसमे साँस लेकर पाठक एक नवीन भावजगत् की अनुभूति करने लगता है—

धन्या स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दन मुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरचित सहकृष्णसारा पूजा दधुर्विरचिता प्रणयावलोकै ॥
गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तमित कर्णपुटै पिबन्त्य ।
शावा स्नुतस्तनपय कवला स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकला स्पृशन्त्य ॥
प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षित तदनुदित कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाच ॥
नद्यस्तदा तदुपधाय मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनो भवभग्नवेगा ।
आलिगन स्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगल कमलोपहारा ॥

ये मूढमति हरिणिया धन्य है जो अपने कृष्णसार मृगो के साथ विचित्रवेषधारी कृष्ण की वेणुध्वनि सुन कर स्निग्धदृष्टि से उनकी पूजा करती है गऊएँ उनके (कृष्ण के) मुख से निगल वेणुगीत रूपी अमृत का स्तब्ध एव उन्नत कर्णो से पान कर रही हैं। वृक्षो की किसलयशोभी शाखाओ पर बैठे हुए पक्षिगण मुनिवत् मौन नेत्रनिमीलन कर वेणु का गीत सुन रहे है और नदियाँ, जिनके आवर्त उनकी कामवश अवरुद्ध गति के द्योतक हैं, कमलो का उपहार लिए अपनी वीचिरूपी भुजाओ से आलिगन से छूटे हुए कृष्ण के चरणयुगल को पकड रही है।"

नि सन्देह वातावरण उस रास की उपयुक्त भूमिका है जिसमे भागवत की भावसृष्टि चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई है। स्नेह और भक्ति का, श्रेय और प्रेय का, शिव और सुन्दर का ऐसा अद्भुत समन्वय सचमुच ब्रह्मानन्द सहोदर रस का जनक सिद्ध होता है। वेणुरव की सुरा से उन्मत्त गोपियाँ अपने पतियो के साथ लोकलाज को भी त्याग कर रात्रि के समय कृष्ण के पास पहुँचती है। वे गई थी आत्म-समर्पण करने के लिए स्नेहसुधा का रसपान करने के लिए किन्तु कृष्ण उन्हे कुलागनाओ के आचरण पर एक लम्बा-चौडा उपदेश पिलाने के लिए आगे आये उस समय गोपियो की दशा का जो शब्दचित्र भागवातकार ने प्रस्तुत किया है वह उनके भावो की कितनी स्पष्ट झलक दे रहा है—

कृत्वा मुखान्यवशुच श्वसनेन शुष्यद्-
बिम्बाधराणि चरणेन भुव लिखन्त्य ।
अस्त्रैरुपात्तमषिभि कुचकुकुमानि
तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुखभरा स्म तूष्णीम् ॥[1]

१ श्रीमद्भागवत १०–२९–२९

अपने तप्त श्वासो से सूखते हुए बिम्बाधर वाले मुखो को नीचाकर, चरण (के नख) से पृथ्वी को कुरेदती हुई, काजल से मिश्रित आसुओ से कुचो पर लिप्त कुङ्कम को धोती हुई गोपियाँ गुर्वी वेदना के कारण मौन रह गई ।

इस श्लोक मे गोपियो की मनोदशा का पूरा प्रतिबिम्ब उभर आया है। विषाद, चिन्ता लज्जा आदि भावो से पुष्ट बेबसी का इससे सुन्दर चित्र दुलभ हे। बेचारी गोपियाँ कहे तो क्या कहे। कृष्ण उन्ही को दोष दे रहे हे, अपने हरजाई रूप को कुछ नही कहते जिसकी चपेट से त्रैलोक्य की कोई भी सुन्दरी विजित हा सकती है। उन्हे कहना ही पडा कि—

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन
सम्मोहिताय चरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिद च निरीक्ष्य रूपम्
यद्गोद्विजद्रुममृगा पुलकान्यबिभ्रन् ।।[1]

ओह! त्रिलोकी मे कौन स्त्री है जो तुम्हारे व्यापक सोन्दय से सम्मोहित होकर अपने माग से विचलित न हो जाये। इस त्रैलोक्य सुन्दर रूप को देखकर तो पशु, पक्षी ओर वृक्ष भी पुलकित हो उठते है।

कृष्ण ब्रज के कष्टो को हरने का दम भरते है, आत-बन्धु होने का ढिढोरा पीटते है किन्तु स्वय ही गोपियो के हृदय मे प्रणय की वेदना उत्पन्न कर उपचार तक नही करते। अत गोपिय उनके कत्तव्यो का स्मरण दिलाती हुई कहने के लिए बाध्य हो जाती है कि—

व्यक्त भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो
देवो यथाऽऽदिपुरुष सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमातबन्धो!
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम् ।।[2]

आप ब्रज के भय एव ताप को दूर करने के लिये सुरलोक रक्षक आदि पुरुष के समान आविभूत हुए है। अत आतबन्धो! हम किङ्करियो के सतप्त स्तनो और सिरो पर अपने कर कमल को स्थापित कीजिए।

गोपियो के स्नेहोपालम्भ के समक्ष कृष्ण निरुत्तर हो गए ओर उन्हे उनकी इच्छा की पूर्ति के हेतु रास रचाना पडा। रास के अन्तगत विविध प्रकार की काम क्रीडाओ के रस से मत्त गोपियो के हृदय मे जब सौभाग्य मद का सञ्चार हुआ तो कृष्ण उसका विनयन करने के उद्देश्य से अन्तर्हित हो गए। इसके पश्चात् गोपियो का जो विरह-विलाप है वह साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि की वस्तु है। उन्हे उन्माद की दशा अभिभूत कर लेती हे। आत्म-विस्मृत होकर वे जड-चेतन की सवित्ति से शून्य होकर पशु-पक्षियो ओर लता-वृक्षो से कृष्ण का पता पूछती हुई वन मे भटकने लगती है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की नागमती की इसलिए बडी भारी प्रशसा की है कि वह विरह मे सब कुछ भूलकर अपने रानीपने को भी विसरा कर—साधारण स्त्री की भाति—बरसात मे अपने पति की अनुपस्थिति मे घर के छाने की चिन्ता करती है और भौरे तथा काग से अपने पिय को सदेसडा कहने के लिए कहती है। तुलसी के राम भी अपनी मृगनैनी सीता को खोजते हुए खग, मृग और मधुकर श्रेनी से उनके बारे मे पूछते है। भागवतकार की गोपियाँ इस प्रशस्त माग को बहुत पहले ही दिखा

१ श्रीमद्भागवत १०—२९—४०

चुकी थी। भागवत के दशम स्कन्ध का तीसवा अध्याय गोपियो के विरहोन्माद की करुण कहानी प्रस्तुत करता है। कृष्ण के विरह मे वे तन्मयी होकर कृष्ण की लीलाओ को स्वत करने लगती है। उनकी दृष्टि मे विरहाग्नि मे झुलसा देने वाले प्रियतम के नाजुक चरण अटवी-अटन के योग्य नही हे अत वे अनुपस्थित कृष्ण को सम्बोधित करती हुई कहती है—

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुह स्तनेषु,
भीता शनै प्रिय दधीमहि ककशेषु।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किस्वित्
कूपादिभि भ्र मति धीभव दायुषा न ॥[1]

प्रिय! तुम्हारे जिन चरण कमलो को हम अपने ककश स्तनो पर डरते-डरते रखा करती थी उन्ही से वन मे घूमते हो, क्या उनमे वेदना नही होती ?

गोपियो की असह्य विरह व्यथा कृष्ण को पुन प्रकट होने के लिए बाध्य कर देती है, वे प्रकट होते है और पुन उनके साथ रास मे प्रवृत्त हो जाते है। इस रास के वर्णन मे भागवतकार का भावुक कवि हृदय पुन दशन और भक्ति के आवरण को उठाकर सामान्य भावभूमि पर थिरकता हुआ प्रतीत होता है। रास प्रवृत्त गोपियो की चेष्टाओ मे उसकी थिरकन और धडकन दोनो ही सुनी जा सकती है। उसने स्पष्ट देखा कि—

पादन्यासै भु जविधुतिभि सस्मितैर्भ्रू विलासै
भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटै कुण्डलैगण्डलोलै।
स्विद्यन्मुख्य. कबररशनाग्रन्थय कृष्णवध्वो
गायन्त्यतस्त तडित इव ता मेघचक्रे विरेजु ॥[2]

पग सञ्चालन, भुज आन्दोलन, मुस्कान सहित भ्रू विलास, खिसकते कुचवस्त्र, कपोलो पर टकराते हुए चञ्चल कुण्डल और भग्न होते हुए से कटि प्रदेश वाली स्वेद सीकरो से अलकृत मुखी गोपियाँ गाती हुई मेघ चक्र मे तडित्-मण्डल के सदृश शोभित हो रही थी।

इसके पश्चात् रासचक्र का तेजी के साथ प्रवतन होता है। एक एक करके गोपियो की चेष्टाओ का जिस ढग के साथ वणन किया गया है उससे रासचक्र की तीव्रगति पूणरूप से व्यक्त हो जाती है। भाषा का प्रवाह उसकी रवानी मे और भी अधिक उत्कष ला देता है। रास क्रीडा मे अस्त-व्यस्त-वेष भूषा वाली गोपियो का चित्रण तो अमरुक की कृतसुरता नायिका की याद दिला देता है—

तदगसग प्रमुदाकुलेन्द्रिया केशान् दुकूल कुचपट्टिका वा।
नाञ्ज प्रतिव्योढुमल व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणा कुरूद्वह ।[3]

कृष्ण के अगो के व्यासग से प्रमुदित एव आकुल इन्द्रियो वाली गोपियाँ अपने केश, दुकूल, चोली आदि की सुध न रख सकी। उनकी मालाएँ और आभूषण भी विस्रस्त हो गए।

इस प्रकार वणन की चित्रात्मकता, भावो की कोमल व्यजना, अनुभावो के मनोरम विधान, घटनाओ की भावुकतापूण कल्पना, प्रकृति के स्वाभाविक चित्रण, अलङ्कारो के सतुलित प्रयोग और भाषा के यथाप्रसग सयोजन से भागवत मे उन सत्काव्योचित गुणो का समावेश हो गया है जो किसी भी रचना के लिए गौरव का विषय बनकर उसे स्थायी साहित्य की श्रेणी मे रख सकते है।

१ श्रीमद्भागवत १० ३१ १६
२ ,, १० ३३ ८
३ ,, १० ३३ १८

नवम अध्याय

श्रीमद्भागवत और वैष्णव सम्प्रदाय

तीसरे अध्याय मे भक्ति आन्दोलन का विवेचन करते हुए हमने विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो की एक झाँकी प्रस्तुत की थी। श्रीमद्भागवत मे जिन व्यापक सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है उनको आशिक रूप से ग्रहण करके विभि न वैष्णव सम्प्रदाय चले। सभी वैष्णव सम्प्रदायो के प्राय दो पक्ष है—सिद्धान्त पक्ष और आचरण पक्ष। इन दोनो ही पक्षो के मूल सूत्र हमे श्रीमद्भागवत मे मिल जाते है। श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्तिग्रन्थ है। अद्वैत सिद्धि और भक्ति भावना ये दोनो भाव विरोधी प्रतीत होते हैं क्योकि अद्वैत का मूलाधार माया-मिथ्यात्व है और भक्ति साधना का मूलाधार माया का ब्रह्म-प्रकृतित्व। परन्तु श्रीमद्भागवत मे इन दोनो तत्त्वो का ऐसा सु दर समन्वय और सामञ्जस्य प्रस्तुत किया गया है कि कही भी छिद्रान्वेषण की गु जाइश नही है। इस महान् ग्रन्थ मे प्राचीन और अर्वाचीन सभी धार्मिक मान्यताओ का परिष्कृत रूप मे समावेश किया गया है। यही कारण है कि दक्षिण और उत्तर के सभी सम्प्रदाय या तो भागवत मे अन्तभू त हो जाते हैं या भागवत स्वय उनका प्रेरणा स्रोत बन जाता है। हम पहले कह चुके है कि वैष्णव भक्ति का द्वितीय उत्थान द्रविड देश मे हुआ। आलवार स तो से लेकर वैष्णवाचार्यो तक हमे श्रीमद्भागवत की भक्ति धारा प्रवहमान लगती है। आलवार शब्द का अर्थ ही है भगवद्भक्ति रस मे लीन व्यक्ति। आलवारो की भक्ति पद्धति में जाति-पाँति और ऊँच-नीच का कोई भेद-भाव नही था। वर्ण व्यवस्था के लिए उसमे कोई स्थान नही था। उस साधना का मूल-मन्त्र भगवान् की दिव्य लीलामात्र है। इसी दिव्य-लीला मे वैष्णवाचार्यो की भक्ति-साधना के बीज विद्यमान है। आलवारो ने अपनी भक्ति साधना को कभी भी शास्त्रीय जामा पहनाने की परवाह नही की। भक्ति-रस मे सिक्त और शराबोर ये भोले सन्त तो भगवान् की कला का आविर्भाव जनता जनार्दन के मध्य करते रहे। वैदिक विधि-विधानो की परम्परा मे पले हुए वैष्णवाचार्यो ने उस भक्ति पद्धति को शास्त्रीय रूप देने का प्रयास किया। तीसरे अध्याय मे हम कह चुके है कि इन शास्त्रीय आचार्यो के चार सम्प्रदाय विशेष रूप से प्रचलित हुए—निम्बार्क या सनकादि सम्प्रदाय, श्री सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय तथा रुद्र सम्प्रदाय। इन सम्प्रदायो के आचार्यो ने शकर के मायावाद को भक्ति का महान् प्रतिबन्धक माना और 'प्रस्थानत्रयी' अर्थात् उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता की व्याख्या के माध्यम से अपने-अपने सिद्धान्तो की शास्त्रीयता प्रतिपादित की। इस प्रकार इन्होने द्रविड प्रदेश मे विष्णु भक्ति के प्रचार का महनीय प्रयत्न किया। इन सम्प्रदायो के प्रवर्त्तक आचार्य कहलाए और उन्होने तमिल वेद और सस्कृत वेद का सु दर सम वय और सामजस्य प्रस्तुत किया। सभवत इसीलिए ये आचार्य उभय वेदान्ती कहे जाते हैं। मायावाद का खण्डन और भक्ति का प्रचार ही इनका ध्येय था। भारतीय धर्म-साधना मे यह चरम विन्दु कहा जा सकता है। बहुत सी अवैदिक और विकृत वैदिक धर्म साधनाओ के कारण शुद्ध भारतीय परम्परा जब उच्छिन्न प्राय हो चुकी

थी भगवान् शकर ने इसका नए रूप मे सस्थापन किया था । वैदिक [illegible] के मूल तत्त्वो को लेकर उन्होने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की और सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्राय सभी अवैदिक साधनाओ का निष्कासन सा कर दिया । सारे देश मे उनका आतक छा गया । वैदिक साधनाएँ जो विकृत हो चुकी थी, उनके सस्कार और प्रतिष्ठा के लिए भी उन्होने आवाज उठाई । शायद इसीलिए उन्हे कुछ लोगो ने प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा है । यहा हम सक्षेप मे शकर के सम्बन्ध मे कुछ सकेत प्रस्तुत करेगे । वैष्णव आचार्यों के सिद्धान्तो को समझने के लिए शकर के सिद्धान्तो को समझना परमावश्यक है । साथ ही साथ वैष्णवो के मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत का अध्ययन भी शकर के सिद्धान्तो के अध्ययन के बिना अधूरा ही कहा जायगा । सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत मे भागवतकार बडी सुन्दरता से अद्वैत को मोड देता चला गया है । भक्ति-साधना की सीमा-रेखा मे वे मोड बिल्कुल प्रतीत नही होते । भागवत के अद्वय तत्त्व का निरूपण करते हुए हमने इस बात की विशदरूप से व्याख्या की है । श्रीमद्भागवत भक्ति ग्रन्थ है और आर्ष ग्रन्थ है । इसकी तिथि के सम्बन्ध मे अधिक विवेचन सम्भव नही है पर इतना हम अवश्य कह सकते है कि श्रीमद्भागवत का प्रचार विशेष रूप से शकर के पश्चात् ही हुआ ।

शङ्कराचार्य

यद्यपि आचार्य शकर के जीवन एव सिद्धान्तो से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री अधिगत तथापि इनके काल के विषय मे अभी तक कोई सर्वमान्य निर्णय नही हो पाया । श्रीकृष्णा स्वामी अय्यर ने 'शकर एण्ड हिज टाइम्स'' नामक पुस्तक मे, भाग्याचार्य ने 'एज ऑफ शङ्कर' मे तथा आनन्दगिरि ने 'शङ्कर विजय' मे उनके जीवन तथा समय पर प्रकाश डाला है उनका जन्म स० ८४५ तथा निधन स० ८७७ मे माना जाता है पर तिलक जी इस मत से सहमत न होते हुए शकर का समय उक्त तिथि से एक शताब्दी पूर्व मानते है । शकर का जन्म मलावार प्रान्त मे मलावार नदी के किनारे 'कलादि' नामक एक छोटे से ग्राम मे हुआ था । इनके पिता का नाम 'शिवगुरु' था जो नम्बूद्री ब्राह्मण थे तथा इनकी माता का नाम आर्याम्बा था । ये अभी बालक ही थे कि इनके पिता का देहावसान हो गया और इनकी शिक्षा दीक्षा का पूरा भार इनकी माता पर आ पडा । शकर अलौलिक प्रतिभा सम्पन्न बालक थे, समाज की असारता से प्रभावित होकर अल्पायु मे ही ये सन्यासी हो गये और नर्मदा के तट पर विचरण करने वाले गोविन्द योगी' के शिष्य बने जो स्वय आचार्य (गौडपाद) के शिष्य थे । उन्होने शकर की विद्या, त्यागभावना और अपूर्व प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे परम हस की उपाधि दी और तत्पश्चात् उन्होने अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिये देश यात्रा प्रारम्भ की, उनके जीवन चरित के लेखक 'आनन्दगिरि' ने शकर की दिग्विजय का पूर्ण विवरण दिया है । दिग्विजय के पश्चात् वे कई बार अपनी जन्म-भूमि मे भी आये थे और वहाँ अनेक सुधारो का श्रीगणेश भी किया था । उन्होने स्थान-स्थान पर मठो की स्थापना की और स्त्रियो के अतिरिक्त सब जाति के लोगो को सन्यास दिया । वास्तव मे आचार्य शकर पहले आचार्य थे जिन्होने जाति पाँति की सकीर्ण परिधि का हटाने का प्रयास किया, सामाजिक विषमता दूर की और बौद्ध मत के समर्थक आचार्यों को पराजित किया । उनके 'मनुष्य पञ्चक' का अनुवाद करते हुए 'श्रीकृष्णास्वामी अय्यर' उनके विचारो को इस प्रकार व्यक्त करते है —

He who has learned to look on Phenomena in this light monistic, is my true Guru be he a chandal or a twice born This is my conviction

शकर के इन विचारो का कट्टर ब्राह्मणो ने विरोध किया किन्तु वे लक्ष्य-भ्रष्ट न हुए। भारतीय संस्कृति के इतिहास मे शङ्कर के प्रादुर्भाव को एक चमत्कार ही समझना चाहिए। प[illegible] देश को [illegible] समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का काय शकर ने किया और उन्होने [illegible] के प्रभाव मे चतुर्दिक् प्रचलित बौद्ध और जैन मत का खण्डन करके अपने मत की स्थापना का, वैदिक धम की रक्षा के लिए भारतवष मे स्थान-स्थान पर मठ बनवाये और श्रुति स्मृतिविहित वैदिक धम का पुनरुत्थान करके निवृत्ति माग के वैदिक सन्यास धम को कलिकाल मे पुनजन्म दिया। उनके विचारो का प्रवाह देश के सभी प्रान्तो और भाषाओ मे बडे वेग से प्रवाहित हुआ, जिसमे छोटे मोटे मत मतान्तर डूबते उतराते हुए अन्त मे विलीन हो गये। इस विषय मे डा० ताराचन्द का कथन उल्लेखनीय है

Shanker's career is the great watershed in the history of Sanskrit Learning Behind him lies the world of ancient ideas, half reconciled systems, profound but scattered thoughts, rival philosophies, struggling for ascendancy the changing pantheon and theologies in a fluid condition a living culture almost anarchic in its exuberance, before him the medieval world of set ideas, fixed systems, scholastic ingenuity, accretion not growth, explanation not invention, commentaries not philosophies, a stereotyped uniformity The living stream of culture abandons the ancient bed of Sanskrit and flows through near channels—Tamil Telugu and Canarese in the south, Hindi, Bangali, Marathi and Urdu in the north but the abandonment is never quite complete, an increasingly thinning rill continues to linger in the old beds [1]

शङ्कर के पश्चात् जितने आचाय हुए वे मूलरूप से शङ्कर के सिद्धान्तो को ही लेकर चले, या तो उन्होने शकर के सिद्धान्तो मे कोई सुधार प्रस्तुत किया या उनसे विरोध प्रकट किया। इसलिये परवर्ती समस्त वैष्णव-सम्प्रदायो पर शकर का व्यापक प्रभाव पडा। शकर का कथन था कि वास्तव मे श्रुतिकथित सिद्धान्तो मे कोई विरोध नही है केवल उनकी व्याख्या मे अन्तर हो सकता है। वैदिक धम के उन्होने दो स्वाभाविक विभाग 'ज्ञान' और 'आचरण' बनाए। पहले विभाग मे तो ब्रह्म का स्वरूप-निणय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति से लगाया जाता है और दूसरे अर्थात् आचरण पक्ष मे इस पर विचार होता है कि ससार मे मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिये। सिद्धान्त रूप से शकराचाय जी ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार समस्त ससार जो मनुष्य को चमचक्षुओ से दीख पडता है असत्य है, सबमे एक ही शुद्ध और परमब्रह्म का अस्तित्व है और उसी की माया से भेद की प्रतीति होती है। वस्तुत जीवात्मा परब्रह्म का ही स्वरूप है, जब तक इस अभेद का

1 Influence of Islam on Hindu culture
(Dr Tarachand) P 95–97

थी भगवान् शकर ने इसका नए रूप मे सस्थापन किया था। वैदिक रूप मान्यताओं के मूल तत्त्वो को लेकर उन्होने वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की और सम्पूर्ण भारत से प्राय सभी अवैदिक साधनाओ का निष्कासन सा कर दिया। सारे देश में उनका मान्य हो गया। वैदिक भावनाएँ जो विकृत हो चुकी थी, उनके सस्कार और परिष्कार के लिए भी इन्होने आवाज उठाई इस दद इसीलिए उहे कुछ लोगो ने प्रच्छन्न बौद्ध भी कहा है। यहा हम सक्षेप मे शकर के सम्बन्ध मे कुछ सकेत प्रस्तुत करेगे। तत्पश्चात् आचार्यों के सिद्धान्तो को समझने के लिए शकर के सिद्धान्तो को समझना परमावश्यक है। साथ ही साथ वैष्णवो के मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत का अध्ययन भी शकर के सिद्धान्तो के अध्ययन के बिना अधूरा ही कहा जाएगा। सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत मे भागवतकार बडी सुन्दरता मे अद्वैत को जोड देता चला गया है। भक्ति-भावना की सीमा रेखा मे वे मोन बिल्कुल प्रतीत नही होते। भागवत के आश्रय तत्त्व का निरूपण करते हुए हमने इस बात की विशदरूप से व्याख्या की है। श्रीमद्भागवत भक्ति ग्रन्थ है और आर्ष ग्रन्थ है। इसकी तिथि के सम्बन्ध मे अधिक विवेचन सम्भव नही है पर इतना हम अवश्य कह सकते है कि श्रीमद्भागवत का प्रचार विशेष रूप से शकर के पश्चात् ही हुआ।

शङ्कराचार्य

यद्यपि आचार्य शकर के जीवन एव सिद्धान्तो से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है तथापि उनके काल के विषय मे अभी तक कोई सर्वमान्य निर्णय नही हो पाया। श्रीकृष्ण स्वामी अय्यर ने "शकर एण्ड हिज टाइम्स" नामक पुस्तक मे, भाष्याचार्य ने 'एज आफ शङ्कर' मे तथा आनन्दगिरि ने 'शङ्कर विजय' मे उनके जीवन तथा समय पर प्रकाश डाला है उनका जन्म स० ८४५ तथा निधन स० ८७७ मे माना जाता है पर तिलक जी इस मत से सहमत न होते हुए शकर का समय उक्त तिथि से एक शताब्दी पूर्व मानते है। शकर का जन्म मलावार प्रान्त मे मलावार नदी के किनारे 'कलादि' नामक एक छोटे से ग्राम मे हुआ था। इनके पिता का नाम 'शिवगुरु' था जो नम्बूद्री ब्राह्मण थे तथा इनकी माता का नाम आर्याम्बा था। ये अभी बालक ही थे कि इनके पिता का देहावसान हो गया और इनकी शिक्षा दीक्षा का पूरा भार इनकी माता पर आ पडा। शकर अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न बालक थे, ससार की असारता से प्रभावित होकर अल्पायु मे ही ये सन्यासी हो गये और नर्मदा के तट पर विचरण करने वाले गोविन्द योगी' के शिष्य बने जो स्वय आचार्य (गौडपाद) के शिष्य थे। उन्होने शकर की विद्या, त्यागभावना और अपूर्व प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हे परम हस की उपाधि दी और तत्पश्चात् उन्होने अपने सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिये देश यात्रा प्रारम्भ की, उनके जीवन चरित के लेखक आनन्दगिरि' ने शकर की दिग्विजय का पूर्ण विवरण दिया है। दिग्विजय के पश्चात् वे कई बार अपनी जन्म-भूमि मे भी आये थे और वहाँ अनेक सुधारो का श्रीगणेश भी किया था। उन्होने स्थान-स्थान पर मठो की स्थापना की और स्त्रियो के अतिरिक्त सब जाति के लोगो को सन्यास दिया। वास्तव मे आचार्य शकर पहले आचार्य थे जिन्होने जाति पाँति की सकीर्ण परिधि को हटाने का प्रयास किया, सामाजिक विषमता दूर की और बौद्ध मत के समर्थक आचार्यो को पराजित किया। उनके 'मनुष्य पञ्चक' का अनुवाद करते हुए 'श्रीकृष्णस्वामी अय्यर' उनके विचारो को इस प्रकार व्यक्त करते हे —

He who has learned to look on Phenomena in this light monistic, is my true Guru be he a chandal or a twice born This is my conviction '

शकर ने इन विचारो का कट्टर ब्राह्मणो ने विरोध किया किन्तु वे लक्ष्य-भ्रष्ट न हुए। भारतीय संस्कृति के इतिहास मे शकर के प्रादुर्भाव को एक चमत्कार ही समझना चाहिए। [illegible] समाज को एक नवीन आलोक दिखाने का काय शकर ने किया और अपनी अद्भुत प्रतिभा के प्रभाव मे चतुर्दिक् प्रचलित बौद्ध और जैन मत का खण्डन करके अपने मत की स्थापना की, वैदिक धम की रक्षा के लिए भारतवष मे स्थान-स्थान पर मठ बनाये और श्रुति स्मृतिविहित वैदिक धम का पुनरूत्थान करके निवृत्ति माग के वैदिक सन्यास धम को कलिकाल मे पुनजन्म दिया। उनके विचारो का प्रवाह देश के सभी प्रान्तो और भाषाओ मे बडे वेग से प्रवाहित हुआ, जिसमे छोटे मोटे मत-मतान्तर डूबते उतराते हुए अन्त मे विलीन हो गये। इस विषय मे डा० ताराचन्द का कथन उल्लेखनीय है

Shanker's career is the great watershed in the history of Sanskrit Learning Behind him lies the world of ancient ideas, half reconciled systems, profound but scattered thoughts, rival philosophies, struggling for ascendancy the changing pantheon and theologies in a fluid condition a living culture almost anarchic in its exuberance, before him the medieval world of set ideas, fixed systems, scholastic ingenuity, accretion not growth explanation not invention, commentaries not philosophies, a stereotyped uniformity The living stream of culture abandons the ancient bed of Sanskrit and flows through near channels—Tamil Telugu and Canarese in the south, Hindi, Bangali, Marathi and Urdu in the north but the abandonment is never quite complete, an increasingly thinning rill continues to linger in the old beds [1]

शङ्कर के पश्चात् जितने आचाय हुए वे मूलरूप से शङ्कर के सिद्धान्तो को ही लेकर चले, या तो उन्होने शकर के सिद्धान्तो मे कोई सुधार प्रस्तुत किया या उनसे विरोध प्रकट किया। इसलिये परवर्ती समस्त वैष्णव-सम्प्रदायो पर शकर का व्यापक प्रभाव पडा। शकर का कथन था कि वास्तव मे श्रुतिकथित सिद्धान्तो मे कोई विरोध नही है केवल उनकी व्याख्या मे अन्तर हो सकता है। वैदिक धम के उन्होने दो स्वाभाविक विभाग 'ज्ञान' और 'आचरण' बनाए। पहले विभाग मे तो ब्रह्म का स्वरूप-निणय कर उसका सम्बन्ध जीव और प्रकृति से लगाया जाता है और दूसरे अर्थात् आचरण पक्ष मे इस पर विचार होता है कि ससार मे मनुष्य को किस प्रकार आचरण करना चाहिये। सिद्धान्त रूप से शकराचाय जी ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। उनके अनुसार समस्त ससार जो मनुष्य को चमचक्षुओ से दीख पडता है असत्य है, सबमे एक ही शुद्ध और परमब्रह्म का अस्तित्व है और उसी की माया से भेद की प्रतीति होती है। वस्तुत जीवात्मा परब्रह्म का ही स्वरूप है, जब तक इस अभेद का

1 Influence of Islam on Hindu culture
(Dr Tarachand) P 95–97

अनुभव नही होता तब तक मुक्ति असम्भव है, एक शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त परब्रह्म के अतिरिक्त विश्व मे कोई वस्तु स्वतन्त्र नही है। माया मानवीय दृष्टि मे भ्रम उत्पन्न करती है जो मिथ्या है। शकर के अद्वैतवाद का महाकाव्य 'सर्वं खल्विद ब्रह्म' है। उन्होने ब्रह्म को निर्विशेष माना है। दृश्य का निषेध करके निषेध की सीमा मे जो अनुच्छिष्ट और शिष्ट रहता है वही अखण्ड चिन्मात्र, एकरस अद्वितीय ब्रह्म है। उसका निरूपण विधानात्मक शब्दो मे नही हो सकता, वह केवल स्थूल नही है दीघ नही है, शब्द-स्पश वाला नही है, अदृश्य है, अलक्ष्य है, अलक्षण है, अग्राह्य है। इ ही शब्दो के द्वारा उसका स केत किया जा सकता है। परमार्थं दृष्टि से वे ब्रह्म की सगुणता स्वीकार नही करते और कहते है कि श्रुतियो मे जहाँ सगुण ब्रह्म का वणन आया है वह केवल व्यावहारिक दृष्टि से उपासना की सिद्धि के लिए है। अत ब्रह्म का वास्तविक रूप निगु ण ही है।

शाङ्कर सम्प्रदाय का आचरण-सिद्धान्त भी बडे महत्त्व का है। उसके अनुसार स्मृति ग्रन्थो मे निरूपित आचार व्यवहार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योकि उसके बिना न तो चित्त की शुद्धि ही सम्भव है और न ही ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता ही प्राप्त हो सकती है। अतएव शङ्कराचार्य जी के सिद्धान्त के इस (आचरण पक्ष के अनुसार कर्म करना अनिवाय है किन्तु अन्त में कम को भी त्याग कर सन्यास लेना पडेगा क्योकि सब वासनाओ और कर्मों के छूटे बिना ब्रह्म ज्ञान सम्भव ही नही है। इमी को 'शाङ्कर' मत के अनुसार निवृत्तिमार्ग कहा गया है। इसी को सन्यासनिष्ठा या ज्ञाननिष्ठा भी कहते हैं। शङ्कराचाय जी ने अपने मत के दोनो ही पक्षो की सगति उपनिषदो, ब्रह्मसूत्र और गीता से लगाई है और उक्त ग्रन्थो को ज्ञान तथा कम का समुच्चय करने वाला ही बताया है। यद्यपि शङ्कर से पहले भी इन ग्रन्थो पर सन्यास माग का विवेचन करने वाले भाष्य लिखे गये थे, परन्तु उनकी तिथि निणय करना कठिन काय है। 'गीता' का 'पैशाच' भाष्य हनुमान जी द्वारा कृत प्रसिद्ध है। वास्तव मे यह भाष्य भागवत के टीकाकार हनुमान पण्डित का है पवन-सुत हनुमान का नही, आगे चल कर कुछ आचार्यों ने शकर का ही अनुकरण किया।

तकसम्मत और पमयापेक्षित होते हुए भी शकर का मत सवथा पूण नही कहा जा सकता क्योकि इसके दोनो पक्षो मे पूण समन्वय का अभाव था। एक ओर तो ब्रह्म की अद्वैतता को उस अमूर्त स्थिति तक पहुँचा दिया था कि सामान्य व्यक्ति उसकी प्रक्रिया से चौंधिया जाय और दूसरी ओर ससार के महत्त्व को स्वीकार करके भी उसकी नि सारता और मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके साधारण मानव समाज की ओर से मनुष्य को विमुख कर दिया। सन्यास को आवश्यक बता कर समाज-धम की भी उपेक्षा की गई। फिर भी समाज पर इसका बडा गहरा प्रभाव पडा 'अदियार' और 'आलवार' भक्तो की रागात्मिका भक्ति भावना के ऊपर धम का यह बौद्धिक विश्लेषण विजय प्राप्त न कर सका और समय पाकर उस भावना का स्रोत तर्क के इन प्रस्तरो को भेद कर निर्झरिणी के रूप मे फूट निकला जिसको आधार मान कर वैष्णव और शैव आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदायो का प्रचार किया, किन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि भक्तो की परम्परा समाप्त हो गई। अब एक ओर तो भक्त और सन्त अपनी अटपटी बानी में अपने हृदय के उद्गार गीतो मे स्फुटित करते रहे, दूसरी ओर विद्वान् आचाय अपने सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने लगे। इन सम्प्रदायो का उद्देश्य एक ओर तो बौद्ध मत और जैन मत को नीचा दिखाना था और दूसरी ओर अपने-अपने सम्प्रदाय की उपयोगिता सिद्ध कर उसका जनता मे प्रचार करना।

रामानुजाचार्य

वैष्णवाचार्यों मे सबसे पहले नाथमुनि हुए जो दसवी शती मे 'श्रीरङ्गम्' मे विद्यमान थे। उनके पौत्र और उत्तराधिकारी यामुन-मुनि रामानुजाचाय के गुरू थे। यामुनाचार्य शकर के 'मिथ्यात्ववाद' को भक्तिमाग का विरोधी समझते थे। इसलिये उन्होने अपने प्रिय शिष्य 'रामानुज' को शकर के सिद्धान्त का खण्डन करने का उपदेश दिया। रामानुजाचार्य का जन्म मद्रास के समीप 'त्रिपुटी' नामक स्थान पर सन् १०१६ और मृत्यु 'श्रीरङ्गम्' मे सन् ११३७ मे हुई। उनके पिता का नाम केशव और माता का नाम कान्तिमती था। उनके प्रारम्भिक गुरु 'यादवप्रकाश' शकर मतानुयायी थे और काञ्चीवरम् मे रहते थे। अद्वैतवाद' के विषय मे उनका अपने गुरु से मतभेद था, अतएव इन्हे वहाँ से हटना पडा, फिर इन्होने 'प्रबन्धम्' के गीतो का यथावत् अध्ययन किया। इसके अनन्तर वे यामुनाचाय के शिष्य हुए और 'श्रीरङ्गम्' मे अपने सप्रदाय की स्थापना की। यामुनाचाय के निधन के पश्चात् ये उनके उत्तराधिकारी हुए और इन्होने अपने भक्ति विषयक सिद्धान्तो पर कई ग्रन्थो का प्रणयन किया। उत्तरी भारत के तीथ स्थानो की यात्रा करते हुए वे काशी भी गये थे। प्रसिद्ध है कि तत्कालीन चोलराज कुल्लोट्टुङ्ग प्रथम (१०९५ ई०) ने इन पर पर्याप्त अत्याचार किये क्योकि वह इनको शैव सम्प्रदाय मे दीक्षित करना चाहता था, इसलिये उस राज्य को त्याग कर इन्हे यादव वशीय 'होयसल' राजाओ की शरण लेनी पडी। वहाँ इन्होने तत्कालीन राजा 'विट्ठलदेव' को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित किया। यह घटना स० १०९८ की है, रामानुजाचाय के निम्नलिखित ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—वेदान्तसार, वेदान्तसग्रह वेदान्तदीप तथा ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीता के भाष्य। इस प्रकार अपने सम्प्रदाय को शास्त्र सम्मत सिद्ध करने के लिये इन्होने प्रस्थानत्रयी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा गीता पर भाष्य लिखे। उन्होने शकर के 'माया' और मिथ्यात्व वाद दोनो का खण्डन किया और बताया कि यद्यपि जीव, जगत् और ईश्वर ये तीनो तत्व भिन्न भिन्न हैं तथापि जीव (चित्) और जगत् (अचित्) ये दोनो एक ही ईश्वर के शरीर है। अतएव चिदचिद्विशिष्ट ईश्वर एक ही है और फिर ईश्वर-शरीर के इस सूक्ष्म चित् अचित् से ही स्थूल चित् और स्थूल अचित् (क्रमश अनेक जीव और जगत्) की उत्पत्ति हुई। तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से इसमे भक्ति का ही प्राधान्य रहा। इसमे कम-निष्ठा को स्वतन्त्र न मान कर ज्ञाननिष्ठा का उत्पादक माना गया है। इस प्रकार रामानुजाचाय ने शाङ्कर मत के अद्वैत ज्ञान' के स्थान पर 'विशिष्टाद्वैत' और 'सन्यास के स्थान पर 'भक्ति' की प्रतिष्ठा कर दोनो मे भेद किया परन्तु आचार दृष्टि से भक्ति को ही अन्तिम निष्ठा अङ्गीकार किया, जिससे वर्णाश्रमविहित सासारिक कम भी गौण हो गये। तात्त्विक रूप से इन्होने चित् अचित् और ईश्वर को आधार मान कर अपने मत का प्रतिपादन किया और उसकी पुष्टि उपनिषदो द्वारा की। ईश्वर को उन्होने सर्वोपरि माना, जो सर्वगुण-सम्पन्न, अनुपम, अद्वितीय और महान् है, वही सब का स्वामी है, विश्वात्म-स्वरूप है। उसको 'पुरुषोत्तम' कहा गया है और अपनी इच्छाओ को पूरा करने के लिये अनन्त शक्ति उसमे है, वह दोषो और त्रुटियो से रहित है। उत्पत्ति, पालन और सहार करने की शक्ति उसी मे है उसकी सृष्टि का अभिप्राय एक स्थिति से दूसरी स्थिति मे परिवतन है, कम और क्रियाएँ उसी की चेष्टाएँ हैं। सर्व प्रथम ईश्वर एकाकी था, उसी मे प्रकृति और जीव की उत्पत्ति हुई। यद्यपि प्रकृति और जीव दोनों सत्य हैं, फिर भी उनकी सत्ता उसी पर निर्भर है। प्रत्येक कल्प के अन्त मे प्रलय होती है और सब कुछ उसी मे विलीन हो जाता है, केवल तमस् अवशिष्ट रहता

है, यही ब्रह्म का शरीर है किन्तु यह इतना सूक्ष्म है कि इसकी सत्ता अलग कल्पित नही की जा सकती, इसीलिये यह एक है, फिर वह अपने आपको अनेक परिवर्तित कर लेता है और इस नाम रूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। इस प्रकार सृष्टि का हेतु वही है किन्तु उस का विकास ही कार्यरूप सृष्टि है। उपासना और ध्यान के लिये उसके पाच रूप माने गये है।

(१) परब्रह्म—यह परब्रह्म बैकुण्ठ मे रहता है। बैकुण्ठ अनेक प्रकार की विलास सामग्रियो मे सुसज्जित हे। 'श्री' 'भू' और 'लीला" नाम की स्वर्गीय स्त्रिया उसकी सेवा करती है। वह शख, चक्र, गदा और पद्म से सुशोभित है। अनन्त गरुड और विष्वक्सेन आदि मुक्त आत्माएँ उसके साथ विहार करती हैं।

(२) व्यूह—इस स्वरूप मे परब्रह्म के चार रूप हो जाते है—वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध।

(३) विभव—यह स्वरूप भगवान् के मत्स्य, कच्छप आदि दस अवतारो से सम्बन्ध रखता है।

(४) अन्तर्यामी—इस स्वरूप से वह योगियो के हृदय मे प्रवेश करता है और घट घट मे वास करने वाला है।

(५) अर्चा—इस स्वरूप मे उपासको द्वारा इसकी अनेक मूर्तियो की कल्पना की जाती है। कुछ आचार्यो ने 'व्यूह' मे वासुदेव के अतिरिक्त शेष तीन रूपों की कल्पना की हे शकर ने तो आत्मा की पृथक् सत्ता स्वीकार नही की है, परन्तु रामनुजाचार्य ने आत्मा का अनेकत्व स्वीकार करके उनको तीन श्रेणियो मे विभाजित किया हे—बद्ध, मुक्त और नित्य। वह आत्माओ की अनेक कोटिया हे जो ब्रह्मदेव से लेकर कृमिकीटो और वनस्पतियो तक फैली है। मनुष्य जातीय बद्ध जीवात्माओ के भी दो भेद है—

१—आनन्द के इच्छुक और मुमुक्षु। आनन्द के इच्छुक प्राणियो मे कुछ तो भौतिक आनन्द को ही अपना लक्ष्य बनाकर उसी के प्राप्ति के हेतु द्रव्यादि सग्रह मे तत्पर रहते हे और कुछ दिव्य आनन्द की खोज मे तीर्थ यात्रा, यज्ञ, पुण्य, जप, व्रत आदि का आश्रय लेते हे। मुमुक्षु आत्माओ मे से कुछ 'केवली' कहलाते है, जो अपनी आत्मा को सासारिक दोषो से रहित कर लेते है। और कुछ नित्य आनन्द की खोज मे रहते हे, वे भी भक्त कहलाते है। भक्ति के लिए कर्म योग और ज्ञान योग दोनो अपेक्षित हे। कर्मयोग मे यज्ञ तपस्या, तीर्थ यात्रा आदि वेद-विहित सभी कर्म आ जाते है, आत्मा की शुद्धि हो जाती है और ज्ञानयोग की प्राप्ति होती है जिसके कारण जीवात्मा अपने आपको प्रकृति मे भिन्न समझता हे। यही ज्ञानयोग भक्ति का हेतु है। यम-नियम आदि अष्टाङ्गयोग भी भक्ति योग मे अपेक्षित है। आत्मसमर्पण भक्ति का सर्वश्रेष्ठ अङ्ग है, इसे प्रपत्ति कहा गया है जिसके अधिकारी शूद्र भी हो सकते है। भक्ति इन साधनो के अतिरिक्त 'अर्थ पञ्चक' मे आचार्याभिमान योग' [illegible] साधन हे जिसके अनुसार शिष्य सब कुछ गुरु को अर्पण कर देता है। भक्ति के अनेक प्रकारो का विधान किया गया है। रामानुजाचार्य ने अपने सिद्धान्तो मे उपनिषद्, ब्रह्म सूत्र, पुराण आदि सभी का आधार ग्रहण किया और सृष्टि का क्रम साख्यशास्त्र के अनुसार माना। वास्तव मे उनका यह वैष्णव सम्प्रदाय 'पाञ्चरात्र के वासुदेव सम्प्रदाय से मिलता जुलता है [illegible]

के तत्वो का समावेश हो गया और नारायण को विशेष महत्व मिला। इस सम्प्रदाय के उपदेशो मे यह ध्यान रखने की बात है कि न तो कही गोपाल कृष्ण का ही नाम आया है और न ही राम को कोई महत्वपूर्ण स्थान मिला है। भगवान् के जिन स्वरूपो का वर्णन गीता मे हुआ है उन्ही का उन्होने विशेष रूप से उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने परम्परागत भक्ति को ब्राह्मण-धर्म के साँचे मे ढालने का प्रयत्न किया। सबसे बडे महत्व की बात यह है कि उन्होने अपना भक्ति-मार्ग शूद्रो के लिए भी उन्मुक्त कर दिया। आगे चलकर स्वामी रामानन्द, नामदेव और तुकाराम ने इस पक्ष पर विशेष बल दिया। जहा तक प्रपत्ति का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध मे कुछ यह भी अनुमान लगाया जाता है कि यह ईसाइयत की देन है, परन्तु यह बहुत दूर की सूझ प्रतीत होती है। रामानुज के सम्प्रदाय का नाम श्रीसम्प्रदाय है श्री-सम्प्रदाय मे निश्चित दिनो मे शूद्रो को भी मन्दिर-प्रवेश का अधिकार दे दिया गया था और कुछ शूद्र भी इस सम्प्रदाय मे दीक्षित थे।

रामानुजाचार्य के सिद्धान्तो के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भक्ति-मार्ग के परिनिष्ठित स्वरूप की स्थापना सबसे पहले रामानुजाचार्य ने ही की और भक्ति के इस स्वरूप ने उत्तर भारत के भक्ति-आन्दोलन को पूर्णतया प्रभावित किया। रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायियो की सख्या उत्तरी भारत मे इतनी नही है जितनी दक्षिण भारत मे। आगे वैष्णव मत के जितने प्रचारक हुए सभी ने शकर के 'मायामिथ्यात्ववाद' के सिद्धान्त का खण्डन कर भक्ति की स्थापना की, परन्तु सिद्धान्त रूप से रामानुजाचार्य का मत एक प्रकार से शकर के मत से समझौता ही था, क्योकि अन्ततोगत्वा कर्म-आचरण से चित्त शुद्ध होने के पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति होने पर सन्यास ग्रहण कर ब्रह्मचिन्तन मे लगा रहना (शकर) या प्रेमपूर्वक वासुदेव-भक्ति मे तत्पर रहना और ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण करना (रामानुज) दोनो ही बातें कर्मयोग की दृष्टि से एक हैं क्योकि ये दोनो ही मार्ग निवृत्तिविषयक कहे जा सकते है। इसलिये आगे के आचार्यो ने विशिष्टाद्वैत को भी अद्वैत का ही एक सुधार समझा।

मध्वाचार्य

माया को किसी भी रूप मे मिथ्या मानकर चलने वाले सम्प्रदायो का खण्डन कर भगवद्भक्ति को ही सच्चा मोक्ष साधन बतलाने वाले इस रामानुज-सम्प्रदाय के पश्चात् एक तीसरा सम्प्रदाय निकला जिसे 'द्वैत-सम्प्रदाय" कहते है। इसके प्रवर्त्तक मध्वाचार्य थे। आचार्य मध्व का जीवन चरित्र माधव-विजय, मे जिसका सम्पादन त्रिविक्रम के पुत्र 'नारायण' द्वारा हुआ था, विस्तार से लिखा है। इसके अनुसार 'राजपीठ' नामक नगर मे 'मध्यगेह' भट्ट के यहाँ इनका जन्म हुआ। इनका जन्म-नाम वासुदेव था और ये अच्युतप्रकाशाचार्य के शिष्य थे। दीक्षित होने के पश्चात् ये बदरिकाश्रम मे गये और वहा से राम तथा वेदव्यास की मूर्तियाँ लाये। सन्यास ग्रहण करने पर इनका नाम 'आनन्दतीर्थ' हुआ। सम्प्रदाय के अनुसार इनका समय सवत् १०४० से ११९९ तक माना जाता है, परन्तु भाण्डारकर सम्प्रदाय के इस कथन को नही मानते। उनके अनुसार मध्वाचार्य का समय वि० स० १२५४ से १३३३ तक था।[1] अपने इस कथन की सगति उन्होने आचार्य मध्व के 'महाभारत तात्पर्य' से भी लगाई और शिलालेखो के भी प्रमाण दिये है। मध्वाचार्य ने शकर के 'अद्वैत', रामानुज के

१ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म (आर० जी० भाण्डारकर) १९२९, पृ० ८२, ८३

'विशिष्टाद्वैत' के विरोध मे अपने मत की स्थापना की और भागवत पुराण को अपने मत का आधार बनाया। उन्होने ईश्वर, जीव और प्रकृति के पाँच-पाँच भेदो पर विशेष रूप से विचार किया —

(१) ब्रह्म और जीवात्मा (२) ब्रह्म और जडजगत् (३) जीवात्मा और जडजगत् (४) एक जीवात्मा और दूसरी जीवात्मा (५) एक जड पदाथ और दूसरा जड पदाथ। सृष्टि की रचना के विषय मे उन्होने वशेषिक शास्त्र को आधार माना। ब्रह्म को उन्होने असख्य गुणो का आधार माना है और उसके काय-विधान को आठ श्रेणियो मे विभाजित किया है—उत्पत्ति, पालन, लय नियन्त्रण, आवरण, बोधन, बन्धन तथा मोक्ष। ब्रह्म को उन्होने पूणतया स्वतन्त्र तथा जीवात्मा और प्रकृति से भिन्न माना है। वह विभिन्न अवतार धारण करता है जिनमे उसके सभी गुणो का अवतरण होता है लक्ष्मी उससे भिन्न है किन्तु उसकी आश्रिता है और उसी के इगित पर उसके काय विधान का सम्पादन करती है। इस लक्ष्मी के अनेक रूप है जसे—श्री, भू ह्री, दक्षिणा, सीता, सत्या, रुक्मिणी आदि। वे प्रवृतियो को चेतन और अचेतन दो प्रकार की मानते है। जीवो की सख्या उन्होने अनन्त मानी है जो तीन वर्गो मे विभाजित है —

१—मुक्तियोग्य, २—नित्य समारी ३—तमोयोग्य।

जब जीव मुक्त भी हो जाता है तब भी जीव-जीव मे तथा ईश्वर और जीव मे पाथक्य। बना ही रहता है। इन्होने मुक्ति के चार भेद माने हैं—

१ -कम-क्षय २—उत्क्रान्ति का लय ३—अर्चिरादि माग ४—भोग।

मुक्तियोग को वे चार प्रकार का मानते है—

१—सालोक्य, २ सामीप्य, ३—सारूप्य, ४—सायुज्य।

'कमक्षय' नाम की मुक्ति मे मञ्चित पाप-पुण्य का तो क्षय हो जाता है परन्तु प्रारब्ध कम बने ही रहते है। जब प्रारब्ध कम का भी क्षय हो जाता है तो जीव ब्रह्मनाडी या सुषुम्ना के सहारे उत्क्रमण करता है और उसे पार करने पर अपने जीवन को भूल जाता है, उसके हृदय का द्वार खुल जाता है और हृदय स्थित भगवान् ब्रह्मद्वार से निकल कर उसे और ऊपर ले जाते है। तब वैकुण्ठ लोक मे पहुँच कर जीव को भगवान् के 'तुय' रूप का साक्षात्कार होता है। वही उत्क्रमण लय मोक्षकी अवस्था है 'अर्चिरादि माग मुक्ति' उन ज्ञानी भक्तो के लिये है, जिनके 'प्रारब्ध कम' का क्षय नही हुआ हो और जो सुषुम्ना का पास की नाडी के द्वारा ऊध्वगमन करते है तथा अर्चिरादि लोको मे पहुँचते है, फिर वहा से वायु लोक होते हुए ब्रह्म लोक मे पहुँच जाते है। भोगमुक्ति मे जब ज्ञानी भक्त के प्रारब्ध कर्मो' का क्षय हो जाता है तो वे श्वेत द्वीप मे पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हे नारायण का दशन होता है जिनकी आज्ञा से फिर वे पृथ्वी पर आकर परमानन्द का उपभोग करते है।

इस जगत् को उन्होने प्रपञ्च माना है क्योकि यह पाँच प्रकार के भेदो से युक्त है। परमात्मा के समान जगत् को भी वे सत्य मानते है और उसके पाँचो भेदो को भी। मुक्ति-प्राप्ति के लिए जीव को उन पाँचो का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है। पदार्थों की सख्या उन्होने दस मानी है—द्रव्य, गुण, कम, सामान्य, विशिष्ट, विशेष, अशी, शक्ति, सादृश्य तथा अभाव। द्रव्य पदाथ बीस माने हैं—परमात्मा, लक्ष्मी, जीव, आकाश, प्रकृति,

गुणत्रय, महत्तत्त्व अहङ्कार, बुद्धि, मन, इन्द्रिय, तन्मात्रा, भूत ब्रह्माणु, अविद्या, वर्ण 'अन्धकार वासना, काल और प्रतिबिम्ब। अन्य पदार्थों का भी विस्तृत विवेचन करते हुए उन्होने शक्ति पदार्थ पर विशेष बल दिया है और उसके चार भेद किये हैं —१—अचिन्त्य शक्ति, २—आधेय शक्ति ३—सहज शक्ति, ४—पद शक्ति। इनमे अचिन्त्य शक्ति विशेष महत्त्व रखती है क्योकि इसकी पूर्णता ईश्वर मे है। भगवान् की इस अचिन्त्य शक्ति का नाम ही ऐश्वर्य है और ईश्वर मे विरुद्ध धर्मत्व का भी यही कारण है। आधेय शक्ति आरापित शक्ति का नाम है। जब किसी मूर्ति मे देवशक्ति का आह्वान किया जाता है और उसमे प्राण प्रतिष्ठा की जाती है वह आधेय शक्ति कहलाती है, सहज शक्ति पदार्थों के स्वभाव और प्रकृति के अनुसार नित्य और अनित्य दो प्रकार की होती है। पद और पदार्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट करने वाली शक्ति पदशक्ति होती है।

इस मत के अनुयायी प्राय कनाडी जिलो बम्बई प्रान्त मैसूर और पश्चिमी घाट मे पाये जाते है। उत्तरी भारत मे उनकी संख्या अधिक नही है। भारत मे इस मत के ग्यारह मठ है जिनमे से ८ दक्षिण मे और ३ शेष भारत म है।

आनन्दतीर्थ ने ३७ ग्रन्थो का प्रणयन किया। उन्होने अपने मत की पुष्टि मे पाञ्चरात्र सहिताओ का भी आधार ग्रहण किया है। इस सम्प्रदाय की उल्लेखनीय बात यह है कि इसमे व्यूह और वासुदेव आदि का स्थान नही है। परमात्मा का विष्णु नाम से अभिहित किया गया है। राम और कृष्ण की उपासना भी विहित है परन्तु गोपाल कृष्ण, गोप, अथवा राधा का कही उल्लेख नही है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि पुराने वासुदेव धर्म और भागवत धर्म के स्थान पर इन्होने नवीन वैष्णव धर्म को जन्म दिया और पाँचरात्र को भी अधिक महत्व नही दिया। चैतन्य तथा मध्व के उपदेशो से समाज मे भक्तिभावना का प्रचार हुआ और उत्तरी भारत मे भी इसकी लहर फैली। अब तक इस भक्ति सम्प्रदाय का प्रचार व्यवस्थित रूप से उत्तरी भारत मे नही था क्योकि रामानुज और मध्व ने दक्षिण को ही अपने प्रचार का केन्द्र बनाया था। उत्तरी भारत मे भक्ति का प्रचार करने वाले आचार्यो को दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है—(१) सस्कृत के माध्यम से प्रचार करने वाले और (२) देशभाषा के माध्यम से प्रचार करने वाले। सस्कृत के माध्यम से प्रचार करने वालो मे सर्व प्रथम निम्बार्काचार्य का नाम आता है।

निम्बार्काचार्य

निम्बार्क के समय का अभी तक कोई निर्णय नही हो सका है। भाण्डारकार ने हस्तलिखित पुस्तको के आधार पर इनके समय का निर्धारण किया है और उनका निधन सन् ११६२ मे माना है[१] परन्तु आगे चल कर इस तिथि के विषय मे भी सन्देह प्रकट किया गया है। यदि उन्हे उक्त समय मे ही प्रादुर्भूत माना जाय तो वे रामानुजाचार्य के लगभग समकालीन ठहरते है। वे जाति के तैलङ्ग ब्राह्मण थे और इनका जन्म बैल्लरी जिले मे निम्ब अथवा निम्बपुर' ग्राम मे हुआ था। इनका जन्म वैशाख शुक्ला तृतीया को माना जाता है। इनके पिता का नाम जगन्नाथ और माता का नाम सरस्वती था तथा इनके मतावलम्बी इन्हे विष्णु के सुदर्शन चक्र का अवतार मानते है जिसकी पुष्टि मे एक कथा भी प्रचलित है कि

१ वैष्णविज्म और शैविज्म, पृ० ८८

उन्होने नीम वृक्ष पर सुदर्शन चक्र का आह्वान किया था, जिससे उसे सूय समझ कर उन साधको ने भी जो सूर्यास्त होने पर भोजन नही करते थे, भोजन कर लिया। कहा जाता है कि तभी से इनका नाम निम्बाक या निम्बादित्य हुआ। इससे पहले इनका नाम नियमानन्द था। इन्होने जिस मत का प्रचार किया उस भेदाभेद अथवा द्वैताद्वैत कहते है। कुछ विद्वानो का कथन है कि भेदाभेदवादी श्री भास्कराचाय तथा निम्बाकाचाय दोनो एक ही व्यक्ति थे किन्तु जैसा कि गोपीनाथ कविराज ने लिखा है, ये दोनो आचाय पृथक्-पृथक् थे। निम्बाक ने प्रपत्ति के सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। इनके सम्प्रदाय को सनक सम्प्रदाय भी कहते है। यद्यपि ये दाक्षिणात्य थे तथापि अधिकतर वृन्दावन मे ही रहे। ये सवप्रथम आचाय थे जिन्होने उत्तरी भारत मे राधाकृष्ण की भक्ति को विशेष महत्व दिया। इनके अनुयायियो की सख्या उत्तरी भारत मे—विशेषकर बगाल और ब्रज मे अधिक है। इनके अनुयायी दो श्रेणियो मे विभक्त हो गये—सन्यासी और गृहस्थी। इनके दो ग्रन्थ प्रसिद्ध है—(१) वेदान्त पारिजात-सौरभ और (२) दशश्लोका। एक २५ श्लाको का स्तोत्र भी जिसका नाम 'सविशेष निर्विशेष श्री कृष्ण स्तवराज' हे, निम्बाक द्वारा रचित बताया जाता है। 'वेदान्त पारिजात सौरभ' ब्रह्मसूत्रो की सक्षिप्त व्यारया हे। इस सम्प्रदाय का साहित्य बहुत अधिक नही है। निम्बाक के उत्तराधिकारी श्रीनिवास' न वेदान्तपारिजात-सौरभ पर और निम्बाक से ३२ वे आचाय हरिव्यासदेव ने दशश्लोकी पर भाष्य लिखा। इस सम्प्रदाय के १३ वे आचार्य 'देवाचाय' ने 'सिद्धान्त जाह्नवी' नामक ग्रन्थ लिखा, जिस पर उनके शिष्य सुन्दरभट्ट ने एक टीका लिखी। इस सम्प्रदाय के तीसवे गुरु 'केशव काश्मीरी' ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा।

निम्बार्काचाय की 'दशश्लोकी' मे उनके सिद्धान्तो का विवेचन हुआ है। इन दस श्लोको का साराश यह है —

१—जीवात्मा ज्ञानस्वरूप है परन्तु हरि पर आश्रित है, वह अणुरूप हे विभिन्न शरीरो मे पृथक्-पृथक् है अनन्यविशिष्ट और ज्ञानी है।'

२—यह जीवात्मा अनादि माया से बद्ध रहता है और तीन गुणो से युक्त रहता है। ईश्वर की कृपा से ही उसे अपनी प्रकृति का ज्ञान होता है।

३—अचेतन पदाथ तीन प्रकार के माने है —अप्राकृत, प्राकृत, काल। प्रकृति से उत्पन्न पदार्थों के प्राय तीन रग—रक्त, श्वेत तथा कृष्ण होते हैं।

४—मै कृष्ण का ध्यान करता हूँ, जो व्यूह अवयवो वाला है और सवश्रेष्ठ है। सब दोषो से रहित कल्याणकारी और सव गुणसम्प न है।

५—मै वृषभानु की कन्या राधिका का ध्यान करता हूँ जो कृष्ण के वामाङ्ग मे सुशोभित है, हजारो सखियो से परिसेवित है और सब कामनाओ को पूर्ण करने वाली है।

६—अज्ञानान्धकार से मुक्ति पाने के लिए प्राणियो को निरन्तर परब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। नारद सच्चे ज्ञानी और सत्य के अन्वेषक थे। उन्हे यह ज्ञान सदान द आदि ने दिया था।

७—श्रुति स्मृतियो के अनुसार सब आत्माओ का मूलश्रोत ब्रह्म है, अतएव ब्रह्म सत्य है। जो वेदो को जानते हैं, उनका यही सिद्धा त है। स्मृति और सूत्रो के अनुकूल जो उसके तीन रूप बताए गये है, वे भी सत्य हैं।

८—कृष्ण के चरणारविन्दो को छोड कर और कोई गति नही है, ब्रह्मा, शिव आदि भी उनकी वन्दना करते है, वे कृष्ण भक्तो की इच्छा से उनके ध्यान योग्य स्वरूप धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य और अप्रमेय है।

९—उसकी कृपा का बडा महत्व है, दैन्य आदि भाव उसकी कृा से ही उत्पन्न होते हैं और उसी से प्रेम रूप भक्ति की प्राप्ति होती है। भक्त द्वारा की गई अनन्य भक्ति द्वारा ही उसकी कृपा प्राप्त हो सकती है। यह भक्ति दो प्रकार की हाती है—१—परा जो श्रेष्ठ है। २—साधन रूपा।

१०—भक्तो के लिए पाँच पदाथ जानने आवश्यक हैं, उपास्य का रूप, उपासक का रूप कृपा फल, भक्ति-फल तथा फल प्राप्ति के विरोधी।

निम्बाक-सम्प्रदाय का यही सार हे। इसमे ब्रह्म, जीव तथा प्रकृति का विवेचन हुआ है। इन्ही सार सिद्धान्तो की व्याख्या हरि व्यासदेव जी ने की है। ऐसा प्रतीत होता हे कि इन सिद्धान्तो का मूल आधार रामानुज के ही सिद्धान्त है क्योकि इनमे शरणागति अर्थात् प्रपत्ति को विशेष महत्व दिया गया है। इसकी विशेषता यह है कि प्रपत्ति के साथ-साथ परमात्मा की कृपा और उसके प्रति प्रेम का प्राधान्य है। निम्बार्क की साधना भक्ति मे रामानुज सम्प्रदाय के सभी योग आ जाते है, अन्तर केवल इतना हे कि रामानुजाचाय ने भक्ति को उपनिषदो मे विहित उपासना की कोटि मे रखा है। तथा अपनी भक्ति को नारायण, लक्ष्मी भू और लीला तक ही सीमित रखा जबकि निम्बाक ने कृष्ण और सखियो द्वारा परिवेष्टित राधा को ही प्रधानता दी है। इस प्रकार उत्तरी भारत मे राधाकृष्ण की भक्ति का शास्त्रीय ढग से प्रतिपादन निम्बाक ने किया। बगाल और ब्रजभूमि मे इसका विशेष प्रचार हुआ।

विष्णुस्वामी-सम्प्रदाय

उपर्युक्त चार दाक्षिणात्य आचार्यो के अतिरिक्त 'विष्णु स्वामी का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके सम्प्रदाय का नाम शुद्धाद्वैत बताया जाता है जिस रुद्र सम्प्रदाय भी कहते हैं। इस सम्प्रदाय का कोई ऐतिहासिक विवरण नही मिलता। विष्णु स्वामी नाम के भी कई आचाय हुए हैं। पद्म पुराण और भविष्य पुराण मे रुद्र सम्प्रदाय के प्रवतक विष्णु स्वामी का उल्लेख है। 'सम्प्रदायप्रदीप' मे लिखा है कि बल्लभाचाय के समय तक विष्णु सम्प्रदाय के ७०० आचाय हो चुके थे। यदि इस कथन को सत्य माना जाय तो विष्णुस्वामी का समय अति-प्राचीन ठहरता है, परन्तु अन्य पुष्ट प्रमाणो के अभाव मे यह कथन मान्य नही हो सकता। श्रीधर स्वामी ने 'श्रीमद्भागवत की टीका मे विष्णुस्वामी का उल्लेख किया है। श्रीधर स्वामी का समय १४ वी शताब्दी निश्चित है। इसलिए विष्णु स्वामी का समय १४ वी शताब्दी से पहले मानना चाहिए भाण्डारकार ने इस विषय मे नाभा जी के भक्त माल का उल्लेख किया हे जिसके अनुसार विष्णुस्वामी के उत्तराधिकारा, ज्ञानदेव, नामदेव, त्रिलाचन और बल्लभ हुये है। इस उल्लेख के आधार पर विष्णु स्वामी का समय १३ वी शताब्दी का मध्य ठहरता है। 'गोडीय दशम खण्ड' के लेख मे एक अन्य विष्णुस्वामी का उल्लेख है जिसका जन्म सन् ८३० लिखा है और जो काञ्चीनगर मे रहते थे। डा० दीनदयालु गुप्त ने एक लेख के आधार पर लिखा है—"रायबहादुर श्री अमरनाथ जी का इस विषय पर भाण्डारकार रिसर्च इन्स्टी-

ट्यूट-एनल्स मे एक लेख है जिसमे कहा गया है कि 'माधवाचार्य और सायणाचार्य के गुरु 'श्री विद्याशंकर' थे और विद्याशंकर का ही दूसरा नाम 'विष्णुस्वामी' था। इस प्रकार विष्णुस्वामी के विषय मे कुछ कहना कठिन है। बल्लभ-सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार बल्लभाचार्य विष्णुस्वामी की परम्परा मे ही थे और विष्णुस्वामी ने जिस भक्ति मार्ग का प्रचार किया था, उसमे मुक्ति की अपेक्षा भक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इस सम्प्रदाय के आचार्य 'विल्वमङ्गल' के समय मे भक्ति का विशेष प्रचार हुआ, जिनके मार्ग के आधार पर वल्लभाचार्य जी ने अपने मत को प्रतिष्ठित किया। इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त के विषय मे 'भाण्डारकार लिखते है —

"The Vedantic theory of 'Vishnuswamin' which is the same as that of Val'abh, is as follows The one primeval soul was not joyful, because He was alone (B U 1 4 3) and desiring to be many, He Himself became the inanimate world, the individual soul, and the inward controlling soul These sprang from Him like sparks from a burning fire and are His parts (M U 11 1) by His own insurtable power he rendered the properties of intelligence and joy, imperceptible in the first, and His joy alone in the second, while the third has all the attributes, perceptible in it"

(Vaishnavism and) Shaivism P 110)

अर्थात् सब प्रथम एक ही ब्रह्म था। उसकी इच्छा हुई "एकोऽहं बहुस्याम्" और वह अचेतन जगत् मे परिवर्तित हो गया, जिसका नियन्त्रण वह स्वय था। जगत् के सब जीव उसमे से इस प्रकार उत्पन्न हुए, जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि से स्फुलिङ्ग। अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा उसने अदृश्य बुद्धि और आनन्द को उत्पन्न किया और फिर केवल आनन्द को और अन्त मे उसके सब गुण प्रकट हुए। ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप मे इस आनन्द व्याप्त है।"

वल्लभाचार्य

राधा और कृष्ण को आधार मान कर भक्ति का प्रचार करने वाले निम्बार्क आचार्य का उल्लेख पहले हो चुका है। उत्तरी भारत मे राधा कृष्ण की भक्ति का प्रचार करने वाले दो आचार्य हुए—वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु। वास्तव मे भक्ति आन्दोलन को इन्ही दो आचार्यों से विशेष शक्ति प्राप्त हुई। ये दोनो ही आचार्य 'निम्बार्क' की भक्ति परम्परा के अन्तर्गत आते है। इन्होने भी प्राय संस्कृत के माध्यम से ही अपने मत का प्रचार किया था वल्लभाचार्य का जीवन चरित 'वल्लभदिग्विजय' मे दिया हुआ है। इनका जन्म गोदावरी-तट पर 'कारखाड' गाँव मे 'लक्ष्मण भट्ट' नामक एक तलङ्ग ब्राह्मण के यहाँ हुआ था। इनकी माता का नाम इल्लमागारू था। वल्लभ के जन्म के विषय मे एक कथा प्रचलित है। लक्ष्मण भट्ट अपनी पत्नी सहित काशी मे रहने लगे थे, वही पर उनकी पत्नी ने गर्भ धारण किया। राजनैतिक परिस्थितियो के कारण जब काशी मे कुछ अराजकता फैली तब लक्ष्मण भट्ट अपनी स्त्री और कुछ साथियो के साथ वहाँ से चल दिये और जब वे मध्यदेश के रायपुर जिले मे 'चम्पारण्य' नामक वन मे होकर जा रहे थे, तब स्त्री को प्रसव पीडा हुई। वे वही

रुक गये और उनके साथी आगे बढ गये। उनकी पत्नी ने एक शमी वृक्ष के नीचे एक सतमासे के शिशु को जन्म दिया, जो जन्म के समय सज्ञाहीन था। मृतक समझ कर वे उसे पत्तो से ढककर आगे चल दिये परन्तु 'चौडा' नगर मे पहुँचकर उ हे ज्ञात हुआ कि काशी की स्थिति अब ठीक है, एकाएक वे लौट पडे और लौटते समय बच्चे को ठीक पाया। 'वल्लभदिग्विजय' मे वल्लभ का जन्म बैसाख कृष्णा एकादशी रविवार स०१५३५ और तिरोधान ज्येष्ठ १० स० १५८७ माना जाता है।

कहा जाता है कि वल्लभाचाय जी ने १० वष की आयु मे ही वेद, वेदाङ्ग, दशन, पुराणो का अध्ययन कर लिया था। स० १५४५ मे अपने पिता के निधन के पश्चात् उ होने अपनी यात्राएँ प्रारम्भ की और अपनी माता को उनके पितृ-गृह पहुँचा दिया। 'वल्लभदिग्विजय' मे उनकी यात्राओ का विस्तृत वणन है। सव प्रथम यात्रा उ होने केवल १२ वष की आयु मे स० १५४६ मे की। इस यात्रा मे वे दक्षिण भी गये और वहाँ वैष्णव आचार्यो के सिद्धान्तो का सम्यक् अध्ययन किया। 'विद्यानगर' का शास्त्राथ भी इसी यात्रा मे हुआ और ब्रज की यात्रा भी इन्होने की, जहाँ सवत् १५५० श्रावण शुक्ला एकादशी का गोकुल के 'ठकुरानी' घाट पर श्रीमद्भागवत' का साप्ताहिक पारायण भी उन्होने किया था। उनकी दूसरी यात्रा स० १५५४ मे प्रारम्भ होकर स० १५५८ मे पूरी हुई। इस यात्रा मे वे गोवर्द्धन भी गये और स० १५५६ मे जब श्रीनाथ जी के स्वरूप का प्राकट्य हुआ तो उनके मन्दिर की स्थापना की। इस यात्रा से लौटकर स० १५५८ आषाढ कृष्णा पञ्चमी को उन्होने 'मधुमङ्गल' नामक ब्राह्मण की कन्या महालक्ष्मी से अपना विवाह किया। उनकी तीसरी यात्रा स० १५५८ से १५६६ तक चली। इसी यात्रा मे उनकी प्रेरणा से गोवद्धन पर्वत पर पूरनमल खत्री ने श्रीनाथ जी का मन्दिर बनवाया और वे सवत् १५६५ मे 'विद्यानगर, के प्रसिद्ध शास्त्राथ मे विजयी हुए, जिसके उपलक्ष मे राजा कृष्णदेवराय ने इनका कनकाभिषेक कराया। इस यात्रा के पश्चात् ही इन्होने अपना द्विरागमन किया और प्रयाग के दूसरी ओर यमुना के किनारे 'अडैल' नामक ग्राम मे रहने लगे। इनके दो पुत्र हुए—गोपीनाथ जी और विट्ठलनाथ जी।

अपनी तीन यात्राओ मे उन्होने अपने मत का प्रचार किया। उनका दाशनिक सिद्धा त 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है और उनके मत का आचरण पक्ष 'पुष्टि-सम्प्रदाय।

दार्शनिक सिद्धान्त

श्री शङ्कराचाय के अद्वैतवाद के विरोध मे चार वैष्णव सम्प्रदाय खड हुए। इनमे कई बातो मे समानता और कई मे विभिन्नता है। सभी सम्प्रदाय भक्ति को सर्वोपरि मानते है और इसीलिये इन्होने ब्रह्म को सगुण माना है जबकि शकर आचाय ब्रह्म को माया के प्रभाव से सगुण सा प्रतीत होने वाला मानते हैं। इसी प्रकार शकर ने 'सर्वं ब्रह्म जगन्मिथ्या' कहकर जगत को भ्रान्ति कहा है जबकि अन्य समस्त वैष्णव सम्प्रदायो ने ब्रह्म के समान ही जगत् को माना है, 'अहब्रह्मास्मि आदि वाक्यो के अनुसार शङ्कर मुक्त जीव को ही ब्रह्म मानते हैं। परन्तु अन्य वैष्णव-सम्प्रदाय मुक्त जीव को ब्रह्म न मानकर, बैकुण्ठ मे निवास करने वाले भगवान् की सेवा करने वाला मानते हैं। इन समानताओ के होते हुए भी इन सम्प्रदायो म सैद्धान्तिक मत-भेद है।

बल्लभ सम्प्रदाय के ग्रन्थो और किम्बदन्तिओ से ज्ञात होता है कि वल्लभाचार्य विष्णु-सम्प्रदाय के आचाय थे। 'भाण्डारकर' ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि वल्लभाचाय के दार्शनिक सिद्धान्त वे ही थे जो विष्णुस्वामी के।[1]

'सम्प्रदाय प्रदीप' के द्वितीय प्रकरण मे भी विष्णुस्वामी का वृत्तान्त दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि विष्णुस्वामी का दार्शनिक सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत' था। उनके मत की प्रतिष्ठा कुछ भङ्ग हो गई थी और वल्लभाचाय ने उसे पुनरुज्जीवित किया।

वल्लभाचाय के ग्रन्थो की सख्या ८४ बताई जाती है किन्तु आजकल कुल मिला कर तीस से अधिक नही मिलते। इन ग्रन्थो मे वेदान्त सूत्र का अणुभाष्य, भागवत की सुबोधिनी टीका, षोडश ग्रन्थ, पुरुषोत्तम सहस्रनाम तथा तत्त्वदीप निबन्ध अधिक प्रसिद्ध हे। वल्लभाचाय जी के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने भी वल्लभाचार्य जी के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है और छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ लिखे, अपने पिताजी के अपूर्ण ग्रन्थो को पूरा किया और उनकी टीकाएँ की। इसके स्वतन्त्र ग्रन्थो मे विद्वण्मन्डन ग्रन्थ बडा महत्वपूर्ण है। विठ्ठलनाथ जी के पश्चात् उनके पुत्र गोकुलनाथ तथा पौत्र श्रीहरिराय जी ने भी सम्प्रदाय सम्बन्धी अनेक ग्रन्थ लिखे है, परन्तु हम अपना विवेचन आचार्य वल्लभ के ही ग्रन्थो तक सीमित रखेगे।

धर्म के दो पक्ष है सिद्धान्त और आचरण। सिद्धान्त पक्ष मे वल्लभ सम्प्रदाय को शुद्धाद्वैतवादी, ब्रह्मवादी, तथा अविकृत परिणामवादी कहते है तथा आचरण पक्ष मे यह मार्ग पुष्टि मार्ग कहलाता है। शुद्धाद्वैत का विवेचन श्री गिरिधर जी के शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड मे तथा श्री रामकृष्ण भट्ट के शुद्धाद्वैत-परिष्कार मे विशेष रूप से हुआ है, ब्रह्मवाद का विवेचन श्री हरिराय जी और श्री ब्रजराज जी ने किया है तथा तत्त्वदीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण मे, अणुभाष्य मे, सिद्धान्त मुक्तावली मे और भागवत की टीका सुबोधिनी मे आचार्य वल्लभ ने भी ब्रह्म के विविध रूपो पर प्रकाश डाला है। आचाय वल्लभ का मत शाङ्कर मत से भिन्न है। शुद्धाद्वैत का अभिप्राय है शुद्ध अद्वैत–माया के सबन्ध से रहित, शकर ने माया और अविद्या रूप उपाधि से युक्त ब्रह्म को कारण और कार्य बताया है किन्तु वल्लभाचाय ने ऐसा नही माना। शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड मे लिखा भी है —

'मायासम्बन्धरहित शुद्धमित्युच्यते बुध ।

कार्यकारण रूप हि शुद्ध ब्रह्म न मायिकम्। शुद्धाद्वैत मार्त्तण्ड, श्लोक २८ ब्रह्मवाद का अभिप्राय यह है सर्व ब्रह्म इतिवाद ब्रह्मवाद, अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है। जगत् भी ब्रह्म रूप ही है और जीव भी ब्रह्म रूप है जैसाकि तत्त्वदीपनिबन्ध मे लिखा है —

'आत्मैव तदिद सर्वं ब्रह्मैव तदिद तथा"

इसी शुद्धाद्वैत को 'अविकृत परिणामवाद' भी कहा गया है जिसका अर्थ है कि जगत् ब्रह्म का ही परिणाम है जो अविकृत अर्थात् विकार रहित है।

'एकमेवाद्वितीय ब्रह्म' वाली श्रुति को लेकर शुद्धद्वैत के आचार्यों के ब्रह्म का निरूपण किया है। इस श्रुति में ब्रह्म को एक और अद्वितीय बताया है और उसमे निश्चयात्मकता सूचक अव्यय 'एव' का प्रयोग कर मन्तव्य की दृढता का आभास दिया है। इसके अनुसार ब्रह्म स्वारस्य, स्वजातीय, विजातीय और स्वगतभेदवर्जित है। इस प्रकार जीव,

१ वैष्णविज्य एण्ड शैविज्य, पृष्ठ १०६

जगत् और ब्रह्म को एक ही माना गया है। तत्वदीप निबन्ध के शास्त्राथ प्रकरण मे लिखा है कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय स्वगतभेद वर्जित है तथा सत्य आदि हजारो गुणो से वह युक्त है (त० दी० नि० पृ० २२१) उसी पुष्ठ पर वल्लभाचाय लिखते है कि ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है, व्यापक और अव्यय है। सब शक्ति मान और सवत्र है एव गुणो से रहित है' इमसे आगे वे फिर लिखते है —

वही ब्रह्म जगत् का समवायिकारण है और वही निमित्तकारण है तथा वह अपने स्वरूप मे और अपनी रचित लीला मे नित्य मग्न रहता है। जिस प्रकार सुदीस अग्नि से स्फुलिग अर्थात् चिनगारियाँ उत्पन्न होती है, उसी प्रकार ब्रह्म से असख्य जीवस्वरूप उत्पन्न होते ह। (त० दी० नि०, पृष्ठ २२३)

श्रुतियो के अनुकरण पर वल्लभाचाय ने ब्रह्म को 'पुरुपेश्वर पुरुषोत्तम भी माना है। ब्रह्म को पुरुष मानने वाली अनेक श्रुतिया है। तैत्तिरीयापनिषद् के सहस्रशीर्षानुवाक् मे यह श्रुति पढा गई है—"पुरष एवेद सवम्"। अर्थात् यह सब पुरुष ही है। फिर आगे कहा है कि 'जो होगा, वह ब्रह्म ही है।' वल्लभाचाय जी ने सब श्रुतियो को आधार मान कर लिखा है —

"जहाँ जहाँ, जिससे-जिसके लिये और जिस सम्बन्ध द्वारा जो-जो जब-जब होना है, उस देश, उस हेतु, उस सम्बन्ध, उस काय और उस पदार्थ के अर्थात् सब कुछ के भगवान् स्वय ही नियता है" (त० दी० नि०, पृ० २३७)

इस भाव को प्रकट करने वाली अनेक श्रुतियाँ ह। इस प्रकार ब्रह्म अनन्तमूर्त्ति सिद्ध हो जाता है, जैसा कि वल्लभाचाय जी ने लिखा है—"भगवान् अनन्तमूर्त्ति, चल और अचल दोनो प्रकार का है तथा वह सम्पूर्ण विरुद्ध धर्मो का आश्रय है।"

(त० दी० नि० पृ० २४६)

ब्रह्म का यह 'विरुद्ध धर्माश्रयत्व' वल्लभाचाय जी के मत की विशेषता है। इसको वल्लभाचाय जी ने स्थान-स्थान पर बडे विस्तार से कहा है, शास्त्रार्थ प्रकरण मे ईश्वर के विरुद्ध धमत्व की विवेचना की गई है। ब्रह्म से ही पदार्थो का आविर्भाव और उसमे ही उनका तिरोभाव होता है। इस प्रकार भगवान् स्वय आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति से सम्पन्न है जिसके द्वारा वह एक से अनेक और अनेक से एक होता रहता है। पुरुषोत्तम सहस्रनाम मे वल्लभाचार्य ने ब्रह्म के अनेक नामो का वणन किया है। आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया भी वल्लभ सम्प्रदाय की अपनी विशेष मौलिकता है। इसी आविर्भाव-तिरोभाव के द्वारा जड जगत्, जीव, सृष्टि और ब्रह्म मे एकता स्थापित की गई है। जड तत्व मे चित् और आनन्द दो धम तिरोभूत ह केवल सद्धम प्रकट है। जीव मे सत् और चित् दो धम प्रकट है और आनन्द तिरोभूत है। इस ब्रह्म का आनन्दाश अन्तरात्मा रूप से प्रत्येक जीव मे है, इसलिये भगवान् अन्तर्यामी है —

विस्फुलिगा इवाग्नेस्तु सदशेन जडा अपि।
आनन्दाश स्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिण ॥
सच्चिदानन्दरूपेषु पूवयोरन्यलीनता।
अत एव निराकारौ पूर्वावानन्दलोपत ॥

जडो जीवोऽतरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मत ।

विद्याविद्ये हरे शक्ती माययैव विनिर्मिते ।

(तत्वदीपनिबन्ध शास्त्राथ प्रकरण, पृ० ६२)

पुरुषोत्तम परब्रह्म का दूसरा स्वरूप अक्षर ब्रह्म भी है । आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया मे अक्षर ब्रह्म की ही अनेकरूपता होती है । अक्षर ब्रह्म से ही जीव और जगत् की उत्पत्ति होती है । वह पुरुषोत्तम परब्रह्म ही जब रमण करने की इच्छा करता है तो स्वय जगत् के रूप मे प्रकट हो जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् मे लिखा है "एकोऽह बहु स्याम् ।" वल्लभाचाय जी ने भी इसी सिद्धान्त को माना है और लिखा है —

अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म ह्यविभक्त विभक्तवत् ।

बहु स्याम् प्रजायेयेति लीलातस्य ह्यभूत सती । (त० दी० नि० पृ० ८७)

अर्थात् वह अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा से अनन्तमूर्ति हो गया । अक्षर ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप धारण करता है। शुद्ध सत्वगुणयुक्त विष्णु रूप मे वह सृष्टि को स्थित रखता है, शुद्ध रजोगुण रूप से ब्रह्मा उसे उत्पन्न करता है और शुद्ध तमोमय रूप से शिव उसका सहार करता है ।

उसी पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म का एक स्वरूप रसरूप भी है । छा दोग्योपनिषद् मे उसके रस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय मे रसरूप परब्रह्म को छै धर्मों से युक्त बतलाया है। वे छ धम ये है—ऐश्वय, वीय, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य। जब जीव के ये छै ऐश्वर्यादि गुण तिरोहित हो जाते है तभी उसे दु ख भोगना पडता है। फिर भगवान् की कृपा से जब पुन उक्त छै गुण मिल जाते है तो वह अपने स्वरूप को जान कर ब्रह्म के समान हो जाता है। परब्रह्म आनन्दाकार विग्रह से अपने अक्षर धाम मे अनेक लीलाएँ करता है। परब्रह्म के अक्षरधाम को 'गोलोक' भी कहा गया है। यह पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म अगणितानन्द है और अक्षर ब्रह्म गणितान द' अक्षर ब्रह्म के ही अनेक अश समय समय पर कलारूप से अवतार लेते है। यह अक्षर ब्रह्म दो प्रकार से अवतार धारण करता है, धम-सस्थापन के लिए और ससार को आनन्द देने के लिये। वल्लभ-सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण को पूण आनन्दस्वरूप पूर्ण-पुरुषोत्तम परब्रह्म माना गया है —

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दक बृहत् । (सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३)

तत्वदीपनिबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण मे पहले ही श्लोक मे लिखा है —

"मैं उस भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जिससे ससार की उत्पत्ति हुई है और जो रूप और नाम-भेद से उसमे रमण करता है" । ब्रह्म के स्वरूपो का विश्लेषण करते हुए उसके तीन स्वरूप बताए गये हैं १–पूण पुरुषोत्तम रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण, २–पूण पुरुषोत्तम अक्षर ब्रह्म, ३–अन्तर्यामी ब्रह्म । कृष्ण का अवतार उन्होने चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, दोनो रूपों से माना है । परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम अपने अक्षर धाम तथा अपनी शक्तियो सहित अवतार लेता है, इसलिये ब्रजभूमि को भगवान् का लीला धाम अथवा गो लोक का अवतार माना है और उसको मायिक जगत् से परे माना है ।

वल्लभाचाय जी ने जीव को अश और परमात्मा को अशी माना है। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारिया निकलती हैं उसी प्रकार सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के चिद् अश से असख्य जीव निकले और सद् अश मे जड प्रकृति तथा आनन्दाश से उसके अन्तर्यामी रूप निकले। श्रीमद्भागवद्गीता मे भी जीव को उसका अश माना गया है। अणुभाष्य मे वल्लभाचार्य ने लिखा है —

अस्य जीवस्यैश्वर्यादितिरोहितम् (अणुभाष्य ३—२—५)

अर्थात् भगवान् की इच्छा से जीव के ऐश्वर्यादि छ गुण हो जाते है। ऐश्वय के तिरोभाव से दीनता पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से सब प्रकार के दुख, यश के तिरोभाव से हीनता श्रीक तिरोभाव से जन्म मरण विषयक विपत्तिया, ज्ञान के तिरोभाव से अह बुद्धि और सब पदार्थों का विपरीत ज्ञान तथा वैराग्य के तिरोभाव से विषयो मे आसक्ति हो जाती है। आनन्दाश का तिरोभाव तो पहले से ही हो जाता है।

वल्लभाचाय ने जीव को अणुमात्र माना है जो गन्ध की भाँति सम्पूण शरीर मे फला हुआ है, उसका चैतन्यगुण सब शरीर व्यापी है। जीव असख्य, नित्य और सनातन हैं। जीव मे अपने अ शी के सब कुछ गुण हैं अविद्या माया के कारण जीव वृद्धावस्था मे रहता है और ऐश्वय आदि गुणो का उसमे से तिरोधान हो जाता है। उस समय जीव अनेक योनियो में भ्रमता फिरता है। वल्लभाचाय ने श्रुतियो से प्रमाण देकर जीव का अणुत्व और आनन्त्य सिद्ध किया है —

जीव सृष्टि दैवी और आसुरी दो प्रकार की मानी गई है। दैवी जीवसृष्टि पुष्टि और मर्यादा भेद से दो प्रकार की है। पुष्टि सृष्टि के जीव चार प्रकार के होते हैं और उनकी उत्पत्ति पुरुषोत्तम के अङ्ग से मानी गई है। इस सृष्टि के जीवो के चार प्रकार ये हैं—शुद्ध, पुष्ट, पुष्टि पुष्ट मर्यादा-पुष्ट तथा प्रवाही पुष्ट।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वल्लभाचार्य जी ने जगत् की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के सत् अश से मानी है। ब्रह्म की रमण करने की कामना ही उसका कारण है अर्थात् भगवान् स्वय ही जगत् के रूप मे प्रकट हुये है। जैसे स्वर्ण से कटक कुण्डल आदि बनते हैं उसी प्रकार ब्रह्म से यह जगत् बना है, इसलिए भगवान् की क्रीडा का उपकरण रूप जगत् भी आनन्द रूप है। क्रीडा आधार के बिना सम्भव नही, अतएव आधारत्वेन जड जीवात्मक सच्चिदश से सत्रूप प्रपञ्च का अविर्भाव किया है। यह दृश्यमान जगत पूण पुरुषोत्तम भगवान् का ही अविर्भाव है। इस प्रकार काष्ठवह्नि न्याय से आविर्भूत और अनाविर्भूत दोनो ही स्वरूपो मे जगत् सत्यज्ञान और अनन्त लक्षण लक्षित ब्रह्मरूप सच्चिदानन्द स्वरूप या भगवानु स्वरूप है सिद्धान्त मुक्तावली मे आचाय वल्लभ कहते हैं —

"परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं। सच्चिद्गणितानन्द अक्षर ब्रह्म है, [illegible] दो प्रकार का है—जगत्स्वरूप और उससे भिन्न। जगत् रूप के विषय में विवाद करने वा[illegible] के [illegible] हैं। कोई इसे मायाविष्ट मानते हैं और कोई त्रिगुणात्मक, किसी के मत [illegible] यह [illegible] है और किसी के मत से अनादि। वास्तव मे अक्षर ब्रह्म ही जगत्स्वरूप है जो [illegible] सदृश है, अर्थात् एक जलरूप और दूसरा तीथ रूप।" (सि० मु० ३—४—५)

जडो जीवोऽन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मत ।

विद्याविद्ये हरे शक्ती माययैव विनिर्मिते ।

(तत्वदीपनिबन्ध शास्त्राथ प्रकरण, पृ० ९२)

पुरुषोत्तम परब्रह्म का दूसरा स्वरूप अक्षर ब्रह्म भी है । आविर्भाव तिरोभाव की क्रिया मे अक्षर ब्रह्म की ही अनेकरूपता होती है । अक्षर ब्रह्म से ही जीव और जगत् की उत्पत्ति होती है । वह पुरुषोत्तम परब्रह्म ही जब रमण करने की इच्छा करता है तो स्वय जगत् के रूप मे प्रकट हो जाता है। तत्तिरीयोपनिषद् मे लिखा है "एकोऽह बहु स्याम् ।" वल्लभाचाय जी ने भी इसी सिद्धान्त को माना है और लिखा है —

अनन्तमूर्ति तद् ब्रह्म ह्यविभक्त विभक्तवत् ।

बहु स्याम् प्रजायेयेति लीलातस्य ह्यभूत सती । (त० दी० नि० पृ० ८७)

अर्थात् वह अक्षर ब्रह्म अपनी इच्छा से अनन्तमूर्ति हो गया । अक्षर ब्रह्म ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूप धारण करता है। शुद्ध सत्वगुणयुक्त विष्णु रूप मे वह सृष्टि को स्थित रखता है, शुद्ध रजोगुण रूप से ब्रह्मा उसे उत्पन्न करता है और शुद्ध तमोमय रूप से शिव उसका सहार करता है ।

उसी पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म का एक स्वरूप रसरूप भी है । छा दोग्योपनिषद् मे उसके इस स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। वल्लभ-सम्प्रदाय मे रसरूप परब्रह्म को छै धर्मो से युक्त बतलाया है । वे छ धम ये है—ऐश्वय, वीय, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य । जब जीव के ये छै ऐश्वर्यादि गुण तिरोहित हो जाते है तभी उसे दु ख भोगना पडता है। फिर भगवान् की कृपा से जब पुन उक्त छै गुण मिल जाते हैं तो वह अपने स्वरूप को जान कर ब्रह्म के समान हो जाता है । परब्रह्म आनन्दाकार विग्रह से अपने अक्षर धाम मे अनेक लीलाएँ करता है । परब्रह्म के अक्षरधाम को 'गोलोक' भी कहा गया है। यह पूण पुरुषोत्तम परब्रह्म अगणितानन्द है और अक्षर ब्रह्म गणितानन्द' अक्षर ब्रह्म के ही अनेक अश समय समय पर कलारूप से अवतार लेते है । यह अक्षर ब्रह्म दो प्रकार से अवतार धारण करता है, धम-सस्थापन के लिए और ससार को आनन्द देने के लिये । वल्लभ-सम्प्रदाय मे श्रीकृष्ण को पूण आनन्दस्वरूप पूर्ण-पुरुषोत्तम परब्रह्म माना गया है —

परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दक बृहत् । (सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३)

तत्वदीपनिबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण मे पहले ही श्लोक मे लिखा है —

"मैं उस भगवान् कृष्ण को नमस्कार करता हूँ, जिससे ससार की उत्पत्ति हुई है और जो रूप और नाम-भेद से उसमे रमण करता है" । ब्रह्म के स्वरूपो का विश्लेषण करते हुए उसके तीन स्वरूप बताए गये हैं १—पूण पुरुषोत्तम रसरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण, २—पूण पुरुषोत्तम अक्षर ब्रह्म, ३—अन्तर्यामी ब्रह्म । कृष्ण का अवतार उन्होने चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक, दोनो रूपों से माना है । परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम अपने अक्षर धाम तथा अपनी शक्तियो सहित अवतार लेता है, इसलिये ब्रजभूमि को भगवान् का लीला धाम अथवा गो लोक का अवतार माना है और उसको मायिक जगत् से परे माना है ।

वल्लभाचाय जी ने जीव को अश और परमात्मा को अशी माना है। जिस प्रकार अग्नि से चिनगारिया निकलती हैं उसी प्रकार सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म के चिद् अश से असख्य जीव निकले और सद् अश से जड प्रकृति तथा आनन्दाश से उसके अन्तर्यामी रूप निकले। श्रीमद्भागवद्गीता मे भी जीव को उसका अश माना गया है। अणुभाष्य मे वल्लभाचाय ने लिखा है —

अस्य जीवस्यैश्वर्यादितिरोहितम् (अणुभाष्य ३—२—५)

अर्थात् भगवान् की इच्छा से जीव के ऐश्वर्यादि छै गुण हो जाते हैं। ऐश्वय के तिरोभाव से दीनता पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से सब प्रकार के दुख, यश के तिरोभाव से हीनता श्री के तिरोभाव से जन्म-मरण विषयक विपत्तिया, ज्ञान के तिरोभाव से अह बुद्धि और सब पदार्थो का विपरीत ज्ञान तथा वैराग्य के तिरोभाव से विषयो मे आसक्ति हो जाती है। आनन्दाश का तिरोभाव तो पहले से ही हो जाता है।

वल्लभाचाय ने जीव को अणुमात्र माना है जो गन्ध की भाँति सम्पूर्ण शरीर मे फला हुआ है, उसका चैतन्यगुण सब शरीर व्यापी है। जीव असख्य, नित्य और सनातन हैं। जीव मे अपने अशी के सब कुछ गुण है अविद्या माया के कारण जीव वृद्धावस्था मे रहता है और ऐश्वय आदि गुणो का उसमे से तिरोधान हो जाता है। उस समय जीव अनेक योनियो मे भ्रमता फिरता है। वल्लभाचाय ने श्रुतियो से प्रमाण देकर जीव का अणुत्व और आनन्त्य सिद्ध किया है —

जीव सृष्टि दैवी और आसुरी दो प्रकार की मानी गई है। दैवी जीवसृष्टि पुष्टि और मर्यादा भेद से दो प्रकार की है। पुष्टि सृष्टि के जीव चार प्रकार के होते है और उनकी उत्पत्ति पुरुषोत्तम के अङ्ग से मानी गई है। इस सृष्टि के जीवो के चार प्रकार ये हैं—शुद्ध, पुष्ट, पुष्टि पुष्ट मर्यादा-पुष्ट तथा प्रवाही पुष्ट।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वल्लभाचार्य जी ने जगत् की उत्पत्ति अक्षर ब्रह्म के सत् अश से मानी है। ब्रह्म की रमण करने की कामना ही उसका कारण है अर्थात् भगवान् स्वय ही जगत् के रूप मे प्रकट हुये हैं। जैसे स्वर्ण से कटक कुण्डल आदि बनते है उसी प्रकार ब्रह्म से यह जगत् बना है, इसलिए भगवान् की क्रीडा का उपकरण रूप जगत् भी आनन्द रूप है। क्रीडा आधार के बिना सम्भव नही, अतएव आधारत्वेन जड जीवात्मक सच्चिदश से सत्रूप प्रपञ्च का अविर्भाव किया है। यह दृश्यमान जगत पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का ही अविर्भाव है। इस प्रकार काष्ठवह्नि न्याय से आविर्भूत और अनाविर्भूत दोनो ही स्वरूपो मे जगत् सत्यज्ञान और अनन्त लक्षण लक्षित ब्रह्मरूप सच्चिदानन्द स्वरूप या भगवान् स्वरूप है सिद्धान्त मुक्तावली मे आचाय वल्लभ कहते हैं —

"परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं। सच्चिद्गणितानन्द अक्षर ब्रह्म है, जो दो प्रकार का है—जगत्स्वरूप और उससे भिन्न। जगत् रूप के विषय में विवाद करने वालो के अनेक मत है। कोई इसे मायाविष्ट मानते है और कोई त्रिगुणात्मक, किसी के मत से यह ईश्वरकृत है और किसी के मत से अनादि। वास्तव मे अक्षर ब्रह्म ही जगत्स्वरूप है जो गङ्गा के जल के सदृश है, अर्थात् एक जलरूप और दूसरा तीथ रूप।" (सि० मु० ३—४—५)

अणुभाष्य मे आचार्य जी लिखते हैं "ब्रह्म ही इस जगत का निमित्त कारण है और वही इसका उपादान कारण है। यह जगत अविकृत परिणामी है, अर्थात यह रूप बदलने पर भी लय होने के अनन्तर शुद्ध ब्रह्म रूप मे आ जायेगा। सृष्टि के विकास के विषय मे श्री वल्लभाचार्य जी मानते हैं कि सच्चिदानन्द पूर्ण पुरुषोत्तम अपनी इच्छामात्र से सत् चित् तथा गणितानन्द अक्षर ब्रह्म बनता है। उनके चित् रूप से जीवरूप पुरुष और सद् अंश से प्रकृति का प्रादुर्भाव होता है। पुरुष और प्रकृति के साथ महत्तत्व अहङ्कारादि अन्य २६ तत्वो का आविर्भाव होता है। इन २८ तत्वो से युक्त अण्डरूप सृष्टि म परब्रह्म अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर उसका सचालन करता है तभी अनेक रूपात्मक सृष्टि का प्रसार होने लगता है। इस अण्ड-सृष्टि को विराट पुरुष भी कहा गया है। अक्षर, काल कर्म और स्वभाव ये सृष्टि काय ब्रह्म के ही स्वरूप है और इनकी गणना सृष्टि के २८ तत्वो मे नही की गई है।

वल्लभाचाय ने ससार का सम्बन्ध जीव से बताया है। जगत् सत्य है क्योकि यह ब्रह्म का अविकृत परिणाम है, ससार जीवकृत होने के कारण झूँठा है —

प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाऽभवत् ।
तच्छक्तया विद्यया त्वस्य जीवससार उच्यते ।

(त० दी० नि० शास्त्राथ प्रकरण २६)

ससार को जीव ने अपनी अविद्या माया से रचा है। इसका उपादान कारण अविद्या और निमित्त कारण जीव है। अहता ममतात्मक कल्पना का नाम ही ससार है। जब जीव अज्ञान से छूट जाता है तो उसके ससार का लय हो जाता है किन्तु जगत् का लय भगवान् की इच्छा पर निभर है। श्रीमद्भागवत मे लिखा है- 'यह ससार गुणो और कर्मो के कारण होने वाला जन्म मरण का चक्र है। यद्यपि यह अज्ञानमूलक एव मिथ्या है तथापि जीव को इस की प्रतीति स्वप्न समान हो रही है।[1]" वल्लभाचाय जी ने माया के दो रूप बताय है विद्यामाया और अविद्यामाया। जीव माया के अधीन है अविद्या माया जीव के बन्धन का कारण है और विद्यामाया मुक्ति का। अविद्यामाया के कारण ही जीव को भ्रान्ति होती है, उसमे अहता ममता के भाव आते है। माया दो प्रकार से भ्रम उत्पन्न करती है एक तो विद्यमान को प्रकाशित नही होने देती और दूसरे अविद्यमान को प्रकाशित करती है।[2] शास्त्राथ प्रकरण मे आचार्य जी ने माया को पञ्चपर्वा कहा है —

पञ्चपर्वा त्वविद्येय यद्बद्धो याति ससृतिम् ।
विद्ययाऽविद्यानाशे तु जीवो मुक्तो भविष्यति ।

(त० दी० शा० प्र० ३६)

अर्थात् अविद्या पञ्चपर्वी है जिस मे फँसा हुआ जीव ससार चक्र मे पड जाता है, किन्तु जब विद्या से अविद्या का नाश हो जाता है तो जीव मुक्त हो जाता है। ये पाच पव अन्त - करण, प्राण, इन्द्रिय देह और स्वरूप नाम के अध्यास है, स्वरूपाध्यास मे जीव बिल्कुल भूल जाता है कि वह भगवान् के चेतन रूप का अंश है। इस अविद्या का नाश भगवान् की कृपा के बिना सम्भव नही है। भगवान् की कृपा होने पर जब जीव दुःख से छूट जाता है और उसे नित्यानन्द की प्राप्ति हो जाती है तो वह मुक्त हो जाता है।

१ श्रीमद्भागवत ७–७–२७
२ वही २–९–३३

वल्लभ सम्प्रदाय मे मुक्तजीव के अधिकार और साधन के अनुसार मुक्ति की अनेक अवस्थाएँ मानी है। नित्यानन्द की प्राप्ति ही मुक्ति है। विद्या के द्वारा जब अविद्या का नाश हो जाता है तो देह, इन्द्रिय इत्यादि का अध्यास मिट जाता है और जीव ससार के दुःख से छूट जाता है। जब तक जीव के प्रारब्ध कम नष्ट नही हो जाते अथवा उसे भगवान् की अनुकम्पा प्राप्त नही होती तब तक उसका देहाभाव विद्यमान रहता है। प्रभु की कृपा के पात्र पुष्टि-मार्गी भक्त के प्रारब्ध कम बिना भोग के ही नष्ट हो जाते है। वह इस स्थूल देह को छोड देता है और भगवान् की लीला के उपयुक्त देह को प्राप्त कर लेता है। भक्ति क द्वारा ही मुक्ति सरलता से प्राप्त हो सकती है क्योकि ज्ञान और याग के उपाय और साधन कष्ट साध्य है। वल्लभाचाय जी ने सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति अवस्थाओ के अतिरिक्त स्वरूपानन्द की एक अवस्था और मानी है, जब मुक्तजीव भगवान् की लीला का साक्षात् रूप से अनुभव करता है। वल्लभ सम्प्रदाय मे इसी को अधिक महत्व दिया है और गोकुल को वैकुण्ठ से भी उच्च माना है। भगवान् के सयोग वियोगात्मक रस रूप के उपासक श्री वल्लभाचार्य इस अवस्था मे सयोग और वियोग दोनो ही रसो की अनुभूति करते है, इसीलिये उन्होने सयुज्य मुक्ति की लयात्मक और प्रवेशात्मक दो अवस्थाएँ मानी हैं। श्रीमद्भागवत की भाँति उन्होने सद्योमुक्ति' और 'क्रममुक्ति' भी स्वीकार की है। सद्योमुक्ति के अधिकारी पुष्टि पुष्ट भक्त होते है, जिन्हे भगवान् आनन्द विग्रह देकर अपने नित्य रसात्मक लीला मे ग्रहण करते हैं। क्रममुक्ति ज्ञानमार्गियो को प्राप्त होती है। अणुभाष्य के चौथे अध्याय मे मुक्ति और पुनरावृत्ति के विषय पर विस्तारपूवक विचार किया है। विरह की अवस्था को इस सम्प्रदाय ने बडा महत्व दिया है क्योकि उस अवस्था मे ही भक्त और भगवान् का एकीकरण होना है। वह भी एक सायुज्य अवस्था ही है। भगवान् का अनुग्रह ही जीव की मुक्ति मे विशेष कारण बनता है, जैसा अनुग्रह जिस जीव पर होता है उसी के अनुसार अलौकिक शरीर मे प्रवेश कर मुक्तजीव भगवान् की लीला का आनन्द लेता है।[1]

चैतन्य सम्प्रदाय

'वल्लभाचार्य के भक्तिमाग मे राधा और कृष्ण के युगल स्वरूप का इतना महत्व नही है जितना चैतन्य सम्प्रदाय मे है। वल्लभाचाय ने तो भक्ति के विधि विधान और बाह्य रूप पर विशेष बल दिया जबकि चैतन्य का भावपक्ष प्रबल रहा। वे राधाकृष्ण का कीतन करते करते मूर्छित हो जाते थे। भावात्मक कीर्तन के द्वारा ही वे जनता के हृदय को आकृष्ट करने मे समथ हुए। चैतन्य महाप्रभु वल्लभाचाय के ही समकालीन थे। 'कल्चरल हरिटेज ऑफ इण्डिया' के अनुसार उनका जन्म सन् १४८५ मे बगाल के नवद्वीप स्थान मे फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा को हुआ था। इनका जन्म का नाम विश्वम्भर था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र और माता का नाम शचीदेवी था। जगन्नाथ मिश्र पूर्वी बगाल मे सिलहट मे रहने थे और बाद को नदिया चले गये थे। इनके दो पुत्र थे, पहले विष्णुरूप जो चैतन्य सम्प्रदाय के इतिहास मे नित्यानन्द के नाम से प्रसिद्ध है और दूसरे विश्वम्भर। विश्वम्भर को ही लोग बाद मे कृष्ण चैतन्य' कहने लगे थे। उनके अनुयायी उन्हे कृष्ण का अवतार मानते है। वे गौराङ्ग और गौरचन्द के नाम से भी प्रसिद्ध है। चैतन्य महाप्रभु का जीवन चरित्र कई ग्रन्थो मे कुछ भेद के

१ अणुभाष्य ४-४-७

साथ उपलब्ध होता है। भाण्डारकर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म" मे चैतन्य का जीवनवृत्त इस प्रकार दिया है।

"२२ वर्ष की अवस्था मे उन्होने लक्ष्मीदेवी से विवाह किया और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय बाद वे पूर्वी बगाल मे पर्यटन करने के लिये निकल पडे। माँगना और गाना ही उनका व्यवसाय था जिससे उन्होने पर्याप्त धन एकत्र कर लिया। उनकी अनुपस्थिति मे उनकी पत्नी का देहान्त हो गया और घर लौट कर उन्होने अपना दूसरा विवाह कर लिया। २३ वर्ष की अवस्था मे वे पिण्डदान के लिये 'गया' गये और वहा से लौट कर उन्होने अपना कार्य प्रारम्भ किया। धार्मिक रीतिरिवाजो और कर्मकाण्ड के विरोध मे उन्होने हरि के प्रति प्रेम और विश्वास का उपदेश दिया। जाति-पाति का उन्होने भी खण्डन किया। कहा जाता है कि उनसे पहले अद्वैताचार्य ने भी इसी प्रकार की भक्ति का प्रचार किया था। चैतन्य के भाई नित्यानन्द ने भी उन्हे भक्ति के प्रचार मे योग दिया। शनै शनै उनके मत का प्रचार बढता चला गया। उस समय बगाल मे शाक्तो का बडा जोर था और लोग काली तथा मनसादेवी की उपासना किया करते थे। वे चैतन्य के बड़े विरोधी थे और उनका उपहास भी किया करते थे किन्तु धीरे धीरे उनके कीर्तन का प्रचार बढ गया। सन् १५१० मे चैतन्य सन्यासी हुए और उन्होने 'केशव भारती' से दीक्षा ली। सन्यासी होने के अनन्तर वे जगन्नाथ जी गये और फिर ६ वर्ष तक देश का भ्रमण किया। इसी यात्रा में उन्होने कुछ शास्त्रार्थ भी किये और फिर पुरी मे आकर रहने लगे जहाँ सन् १५३३ मे उनकी मृत्यु हुई"।

चैतन्य के विषय मे लक्ष्य करने की बात यह है कि अन्य आचार्यों की भाँति उन्होने अपने सम्प्रदाय को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास नही किया और न ही प्रस्थानत्रयी पर कोई भाष्य लिखा। वे उच्च कोटि के भावुक भक्त थे। उनके जीवन की घटनाओ का उल्लेख 'चैतन्य चरितामृत' मे मिलता है। श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने 'श्री चैतन्य चरितावली' पाँच भागो मे लिखी है जो गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई है। इसमे चैतन्य के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

भगवान् के प्रेम महोदधि मे निमग्न रहने के कारण किसी ग्रन्थ आदि की रचना के लिये महाप्रभु के पास समय ही नही था। कृष्ण की भक्ति और कीर्तन के महत्व के प्रतिपादक उनके ये ८ श्लोक मिलते हैं—

चेतोदर्पणमार्जन भवमहादावाग्निनिर्वापणम्।
श्रेय कैरव चन्द्रिकावितरण विद्यावधू जीवनम्॥
आनन्दाम्बुधिवर्द्धन प्रतिपद पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्नपन पर विजयते श्रीकृष्णसकीर्तनम्॥१॥

"जो चित्तरूपी दर्पण के मैल को मार्जन करने वाला है, ससार रूपी महादावाग्नि को शान्त करने वाला है प्राणियो को मङ्गलदायिनी कैरवचन्द्रिका का वितरण करने वाला है, जो विद्यारूपी वधू का जीवन स्वरूप है और जो आनन्द समुद्र को प्रतिदिन बढाने वाला है, उस श्रीकृष्णसकीर्तन की जय हो।"

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमित स्मरणे न काल
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुराग ।।२।।

'नाथ ! तुम्हारी कृपा मे कोई कसर नही और मेरे दुर्भाग्य मे कुछ सन्देह नही, तुमने अपने समस्त नामो मे पूर्ण शक्ति भरदी है, काल पात्र आदि का कोई नियम अथवा प्रतिबन्ध नही । यह तो मेरा ही दुर्भाग्य है कि तुम्हारे इन मधुर नामो से मेरे हृदय मे अनुराग नही उत्पन्न होता ।

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीय सदा हरि ।।३।।

अर्थात् भागवत बनने वाले को चाहिये कि तृण से भी अधिक नम्र और तरु से भी अधिक सहिष्णु बन कर स्वय मान की इच्छा न कर दूसरो का मान करता हुआ हरि का कीर्तन करे ।

न धन न जन न सुन्दरी
कविता वा जगदीश ! कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्भक्तिर है मिलाओ तुकी त्वयि । ४ ।।

हे जगदीश ! मैं जन, धन, सुन्दरी, कविता कुछ नही चाहता, बस प्रत्येक जन्म मे मेरी तुम मे निष्काम भक्ति रहे ।

अयि नन्दतनूजे किंकर पतित मा विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपङ्कजस्थित धूलिसदृश विचिन्तय ।।५।।

'"हे नन्दसुत ! विषम ससार मे पडे हुए मुझ सेवक को कृपा करके अपने चरण-कमल पर पडी हुई धूलि के समान समझो" ।

नयन गलदश्रुधारया वदन गद्-गद् रुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचित वपु कदा तव नाम ग्रहणे भविष्यति ? ६ ।।

'हे प्रभो ! तुम्हारे नाम का कीर्तन करते समय मैं किस शुभ क्षण मे इस स्थिति को प्राप्त करूँगा कि मेरे नयन अश्रुधारा से, मुख गद्-गद् वाणी से तथा शरीर पुलक से व्याप्त होगा ?

युगायित निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायित जगत्सर्वं गोविन्दविरहेण मे ।।७।।

प्रभु के विरह मे मेरे पल युगो के समान, आखे वर्षा के समान तथा विश्व शून्यवत् हो गया है ।

आश्लिष्य वा पादरता पिनष्टु मा--
मदर्शनान्ममर्हता करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापर ।। ८ ।।

हे सखि ! वह धोखेबाज कृष्ण उनके चरणो मे रत रहने वाली मुझ (दासी) को हृदय से लगाये या विरह मे मर्माहित कर दे, जोकुछ जी मे आये, करे, मेरे प्राणनाथ तो वही है और कोई नही ।

(चैतन्यचरितावली भाग ५ पृष्ठ २६५)

महाप्रभु के शिष्यो ने उनके सम्प्रदाय का यथावत् प्रचार किया । श्री नित्यानन्द अद्वैताचाय ने बगाल मे तथा उनके अन्य छ शिष्यो ने वृन्दावन मे महाप्रभु के सिद्धान्तो की धूम मचा दो । महाप्रभु के इन छै शिष्यो मे 'रूपगोस्वामी' 'जीवगोस्वामी' और सनातनगोस्वामी' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नाभादास ने अपने भक्तमाल मे इन तीनो का वर्णन इस प्रकार किया है—

वेला भजन सुपक्व रसायन कबहूँ लागी ।
वृन्दावन दृढवास जुगल चरननि अनुरागी ।
पाथीलेखन पान अघट अक्षर चित दीनो ।
सद्ग्रन्थन को सार सवै हस्तामलक कीनो ।
सन्देह-ग्रन्थि छेदन समथ, रस रास-उपासक परमधीर ।
श्री रूप सनातन भक्तिजल श्री जीवगुसाई सर गभीर ।। [1]

इन गोस्वामियो ने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना की रूपगोस्वामी के 'भक्तिरसामृत सिन्धु' उज्ज्वल नीलमणि, तथा 'लघुभागवतामृत', सनातनगोस्वामी के श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध की टीका' षट् सन्दर्भ तथा 'गोपाल चम्पू' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। चैतन्य सम्प्रदाय के साहित्य का प्रचार सन् १६०० के लगभग 'श्रीनिवासाचार्य' द्वारा हुआ । १८ वी शताब्दी मे इस सम्प्रदाय के आचार्य बलदेव विद्याभूषण ने ब्रह्मसूत्र पर गोविन्दभाष्य लिखा । तभी से इस सम्प्रदाय की गणना अ य परिनिष्ठित वैष्णव सम्प्रदायो मे होने लगी ।

इस सम्प्रदाय के मतानुसार कृष्ण ही परम तत्व है जो अन त शक्ति से युक्त और अनादि है। उपासना भेद से उसके अलग अलग-नाम हो गये है। उसकी शक्ति अचिन्त्य हे उसकी शक्ति का प्राकट्य होने पर उसे भगवान कहने है अन्यथा वह ब्रह्म कहलाता है । जब उसकी कुछ शक्ति प्रकट और कुछ अप्रकट होती है तब वह परमात्मा कहलाता है । इस परम तत्व का भगवान स्वरूप ही भक्ति का आलम्बन है । 'लघुभागवतामृत' मे परब्रह्म के रूप का विस्तार से विवेचन है परन्तु उसका आधार श्रीमद्भागवत है । 'लघुभागवतामृत' मे परब्रह्म के तीन रूप माने है —

१ भक्त माल, भक्ति-सुधा-स्वादतिलक, रूपकला छद ६३ पृ० ६१६

(१) स्वयरूप, तदेकात्मरूप और आवेश रूप। इन तीनो रूपो मे कृष्ण ही स्वयरूप है। उसके भी तीन रूप हैं—१—द्वारिका रूप, २—मथुरा रूप और ३—व्रजलीला रूप। ये तीनो रूप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। तदेकात्मरूप मे वह अपनी अभिव्यक्ति दो रूपो म कराता है, १—विलासरूप और २—स्वाश रूप मे। लीला विशेष के लिये उनकी जो अभिव्यक्ति होती है वही विलासरूप है परन्तु जब वे अपना अश किसी रूप मे प्रकट करते है वही स्वाशरूप कहलाता है और जब वे कुछ कलाओ के साथ विशिष्ट जीवो मे प्रकट होते हैं वह उनका आवेश रूप कहलाता है। भगवान् के अवतार भी तीन प्रकार के माने गये है—पुरुषावतार, गुणावतार और लीलावतार। परम ब्रह्म श्रीकृष्ण का आदि पुरुषावतार 'वासुदेव' कहलाता है जो तीन प्रकार का माना गया है—सकर्षण, अनिरुद्ध और प्रद्युम्न। ये पुरुषावतार ही सृष्टि के कारण है। गुणावतार मे वह विष्णु, ब्रह्म और रुद्र का रूप धारण करता है। लीलावतार मे परब्रह्म का तदेकात्मकरूप और आवेश रूप प्रकट होता है।

भगवान् की तीन शक्तिया मानी गई है। अन्तरङ्ग शक्ति बहिरङ्ग शक्ति और तटस्थ शक्ति। भगवान् की अन्तरङ्ग शक्ति ही स्वरूप शक्ति है जिसे 'सधिनी शक्ति' भी कहते है। सच्चिदानन्द इसी का सामूहिक रूप है। बहिरङ्ग शक्ति माया कहलाती है जिससे जड प्रकृति का उद्भव होता है। यह माया भी दो प्रकार की होती है १—द्रव्य माया और २—गुण माया। द्रव्य माया जगत् का उपादान कारण होती है और गुणमाया निमित्तकारण। इस बहिरङ्ग शक्ति और अन्तरङ्ग शक्ति के मध्य की एक तटस्थ शक्ति है जो जीवो की उत्पत्ति का हेतु है। चैतन्य महाप्रभु के सम्प्रदाय ने जीव को अणुरूप और नित्य माना है। भगवान् का पूर्णतम स्वरूप गोलोक मे रहता है जिसको चैतन्य महाप्रभु वृन्दावन धाम और गोकुल कहते हैं।

जीव जड माया से मुक्त रहता है और उससे छुटकारा पाने पर ही उसे सायुज्य कैवल्य मुक्ति की प्राप्ति होती है। यह मुक्ति भक्ति के द्वारा ही सम्भव है। भक्ति भी वैधी और रागानुगा रूप से दो प्रकार की होती है। चैतन्य सम्प्रदाय मे कृष्णचैतन्य, नित्यानन्द और अद्वैतानन्द तीन प्रभु माने है। नित्यानन्द के अनुगामी नदिया मे और अद्वैतानन्द के शान्तिपुर मे निवास करते है। चैतन्य सम्प्रदाय के मन्दिर, मथुरा, वृन्दावन, तथा बगाल मे नदिया अम्बिका और अग्रद्वीप मे है। अन्य स्थानो पर भी इनके मन्दिर मिलते हैं।

इन सम्प्रदायो के अतिरिक्त भारतवर्ष म और भी अनेक सम्प्रदाय भक्ति का प्रचार करने के लिए उठ खडे हुए। प्रधान रूप से आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायो से ही सब सम्प्रदाय प्रभावित हुए है। उनका उल्लेख हम अगले अध्यायो मे आधुनिक भाषाओ के साहित्य पर भागवत के प्रभाव को दिखाते हुए करेंगे।

शकर के अद्वैत को वैष्णव सम्प्रदाय कहना कहाँ तक समीचीन है, यह प्रश्न विचारणीय है। सिद्धान्त रूप से अद्वैत का प्रतिपादन करने के लिए शकराचार्य को किसी पुराण की आवश्यकता नही थी। उन्होने अपने सिद्धान्तो की सगति प्रस्थानत्रयी' तक ही सीमित रखी। भागवत महा पुराण का काल निर्णय करते हुए हमने लिखा है कि इसकी रचना नवी शताब्दी के बाद की नही हो सकती। परन्तु इसका अभिप्राय यह नही है कि उसका रचना काल नवी शताब्दी से पहले का सभव नही है। आचार्य शकर के 'प्रबोध सुधाकर' आदि ग्रन्थो मे तथा उनके दादागुरु आचार्य गौडपाद के "पञ्चीकरण व्याख्या' आदि ग्रथो मे भागवत की छाया

स्पष्ट दीख पडती है। उत्तर गीता की टीका मे तो भागवत दशम स्कन्ध चतुदश अध्याय के चाथे श्लोक को उद्धृत भी किया गया है। हम पहले लिख चुके है कि श्रीमद्भागवत अद्वैतपरक भक्ति ग्रन्थ है। आचाय शकर के अद्वैतमत मे भी व्यवहार पक्ष मे भक्ति को स्थान दिया गया है, पर तु शकर के अद्वैत मतानुयायी किसी आचाय का स्पष्ट उल्लेख भागवत के सम्बन्ध मे नही प्राप्त होता। आचाय शकर ने अपने अद्वैत मत के द्वारा वैदिक धम का दु दुभी का उद्घोष सम्पूण भारतवष मे किया परन्तु वे धम के रसात्मक रूप अर्थात् भागवत धम का परिष्कृत रूप प्रस्तुत न कर सके। भागवत धम का उत्थान धम के रसात्मक रूप का प्रथम प्रकाश है जो अनेक विकृत वैदिक तथा अवैदिक साधनाओ के कारण धूमिल हो गया था। भागवतकार ने यद्यपि ब्रह्म के अद्वैत रूप का ही प्रतिपादन किया फिर भी लोक जीवन के व्यावहारारिक पक्ष मे उस ब्रह्म को सवजन सुलभ बनाने का स्तुत्य प्रयास भी उन्होने किया। शकर के उत्तरवर्ती वैष्णव सम्प्रदाय इसी लोक पथ के प्रशस्ता हैं। यह पथ राजमाग के रूप मे वृक्षो की सघन छाया से समन्वित होकर पथिक मात्र के कल्याण का साधन बना जो उसे सहज ही गन्तव्य तक पहुँचाने मे समथ था। यह भागवत धम का द्वितीय उत्थान था। इस उत्थान मे सम्प्रदायो की प्रतिष्ठा हुई। सभी वैष्णव सम्प्रदायो का प्रधान लक्ष्य अद्वैत वेदान्त का खण्डन था। समस्त वैष्णव आचार्यो के परमाचार्य श्री कृष्ण माने जाते हैं। इस विषय मे पद्मपुराण का निम्न-लिखित श्लोक दृष्टव्य है —

> सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मता।
> अत कलौ भविष्यन्ति चत्वार सम्प्रदायिन ॥
> श्री ब्रह्म-रुद्र-सनका वैष्णवा क्षितिपावना।
> चत्वारस्ते कलौ भाव्या ह्युत्कले पुरुषोत्तमात् ॥

भगवान् श्री कृष्ण ने वैष्णव तत्व का उपदेश चार शिष्यो को दिया जिसका उल्लेख प्रमेयरत्नावली मे निम्न प्रकार है —

> रामानुज श्री स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुख।
> श्री विष्णु स्वामिन रुद्रो निम्बादित्य चतु सन ॥

इन चार सम्प्रदायो के अतिरिक्त अन्य सम्प्रदाय इन्ही की शाखा-प्रशाखाओ के अन्तगत आ जाते है। चैतन्यमत माध्वसम्प्रदाय की शाखा है तथा वल्लभ मत रुद्र सम्प्रदाय की। दसवी शताब्दी से सोलहवी शताब्दी तक इन सम्प्रदायो मे अनेक भक्त तथा आचार्य हुए जिनकी सस्कृत तथा आधुनिक भाषाओ मे अनेक रचनाएँ प्राप्त होती है। भागवत महापुराण इन सम्प्रदायो का उपजीव्य ग्रन्थ रहा है जिससे प्रभावित होकर आचाय तथा भक्त कवियो ने अनेक भक्ति-सरिताओ से देश को आप्लावित कर दिया।

रामानुज-मत

हम पहले लिख चुके हैं कि रामानुजाचार्य की कोई टीका भागवत महापुराण पर उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह नही है कि उनके समय तक भागवत की रचना हुई ही नही थी। बात यह है कि रामानुजाचाय के उपास्य विष्णु तथा लक्ष्मी है जबकि भागवत का प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण तत्व है। रामानुजाचाय के सभी ग्रन्थो मे भागवत भक्ति साधना की स्पष्ट

छाप है। उनके वेदाथ–सग्रह, वेदा तसार तथा वेदान्त दीप नाम के ग्रन्थ शाकरमत के खण्डन मे लिख गए हैं। गद्यत्रय, गीताभाष्य तथा श्री भाष्य उनके सिद्धा तो का प्रतिपादन करते ह जो ठीक भागवत के अनुकूल ह। रामानुजाचार्य के शिष्यो की रचनाओ मे श्रीमद्भागवत का महत्व प्रतिपादन हुआ है। श्री वीरराघवाचाय ने श्रीमद्भागवत की टीका करते हुए इस महापुराण की अनेक टीकाओ का अस्तित्व स्वीकार किया है तथा भागवत को पञ्चम वेद माना है तथा उसे ब्रह्म सूत्रो की व्याख्या के रूप मे स्वीकार किया है —

श्रीमद्भागवत पुराणमखिल व्याख्यातृभिर्व्याकृत
व्यासार्येयति राजभाष्य वचसामह वुधाना मुदे।
मन्दानामपि माद्दशामवगमाच्चोहतया दर्शित
पन्थान समुपाश्रितो विवृणुया मत्साहस क्षम्यताम्॥

गभ-जन्म-जरा मरणादि सासारिकदु खोपहतानवगतवेदार्थान् जनानवलोक्या-नुकम्पित मनास्तदुज्जिजीविषया वेद व्याचिख्यासुस्तावत्स्वशिष्येण भगवता जैमिनिना महर्षिणा पूवभाग व्याख्याय, स्वयमुत्तरभाग समीचीनै शारीरकनयैर्व्यारियाय प्रायश पूवभागोप बृहणा-त्मक पचम वेदत्वेनप्रसिद्ध श्री महाभारताख्यमितिहास निर्माय प्राधान्येन वेदान्तार्थोपबृहणा-त्मक पचमवेदत्वेन प्रसिद्ध श्री महाभारताख्यमिनिहास निर्माय प्राधान्येन वेदान्तार्थोप बृहणात्मक श्री मद्भागवताख्य पुराणमलचिकीषु।

(श्रीमद्भागवत, श्री वीराराघव कृत टीका उपोद्घात् पृष्ठ ७)

श्री वीरराघव का काल चौदहवी शताब्दी माना जाता है। श्रीमद्भागवत के जिन दार्शनिक तथा भक्ति-सिद्धान्तो का विवेचन हमने किया है उनसे स्पष्ट हो जाता है कि श्री सम्प्रदाय के सिद्धान्त भागवत के ठीक अनुरूप वैठते है। रामानुज सम्प्रदाय मे भागवत के अनुसार जीव के उद्धार का मार्ग भक्ति मार्ग ही है।

निम्बार्क-मत

निम्बार्क सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं। निम्बार्क सम्प्रदाय के आदि आचाय हंसावतार भगवान् नारायण है। इनका सनकादि से गुरु-शिष्य भाव भागवत सम्मत ही है। भागवत के एकादश स्कन्ध के त्रयादश अध्याय के चौदहवे श्लोक मे इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसी अध्याय मे आगे चल कर श्रीकृष्ण भगवान् ने हसाव-तार नारायण और सनकादि के सवाद का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत को ही मूल ग्र थ स्वाकार किया गया है। आचाय शुकदेव ने श्रीमद्भागवत की टीका 'सिद्धान्त प्रदीप' के उपक्रम मे श्रीमद्भागवत का महत्व बडी सुन्दरता से प्रतिपादित किया है।

'अथवेदान्तोपबृहणार्थं श्रीमन्नारदाज्ञया मुमुक्ष्वनुग्रहाय पचत्रिंशत्यधिक-त्रिशताध्याय-निवद्ध-द्वादश स्कन्ध युत कल्पद्रुमवदभीष्टाथप्रद श्रीमद्भागवत-महापुराण प्रारिप्सुग्रन्थ विषय-भूतस्य परब्रह्मपरमात्मादि पदवाच्यस्य भगवतो मगलाचरण व्याजेन लक्षण वदन् परपक्षान् निरा-करोति "जन्माद्यस्येति"

(श्रीमद्भागवत सिद्धान्त प्रदीप, वृन्दावन स० १९६० वि० पृष्ठ २६।)

निम्बार्क सम्प्रदाय मे गोप वेशधारी श्रीकृष्ण को ही परम आराध्य माना है।

अगणित गुणसिंधु स्वप्रपन्नेकबन्धु सकलभुवनहेतु सर्वसौन्दर्यसेतु
विगत सकल दोषो वेदवेद्य परेशो भवतु ममगति म सवदा गोपवेश ।

(श्रीमद्भागवत, सिद्धान्त प्रदीप, पृष्ठ २६)

निम्बार्क सम्प्रदाय मे अष्टादशाक्षर गोपाल मत्र की दीक्षा परम्परा प्राप्त है। कहा जाता है कि आचार्य निम्बार्क ने इस मत्र की दीक्षा नारद जी से प्राप्त की थी। 'प्रपन्नकल्पबल्ली मे इस मत्र की तथा श्री मुकुदशरण मत्र की व्याख्या बडी सुदरता से की गई है। निम्बार्क सम्प्रदाय के कई आचार्यो ने भागवत के दशम स्कन्ध के रामलीला आदि के प्रसगो की बडी सरस व्याख्या की हे। केशव कश्मीरी की भागवत टीका प्रसिद्ध है परन्तु अब केवल वेद स्तुति का ही भाष्य उपलब्ध है। इमी सम्प्रदाय के श्रीभट्ट ने सबसे पहले ब्रज भाषा मे कृष्ण की लीलाओ का गान किया। जिमका वर्णन हम अगले अध्यायो मे करेगे।

जिस प्रकार भागवत मे कृष्ण और गोपियो का सम्बन्ध आत्मा—आत्मीय भाव, तथा विम्ब प्रतिबिम्ब भाव माना गया है उसी प्रकार निम्बार्क सम्प्रदाय मे राधा और कृष्ण का सम्बन्ध माना गया है। अपनी मान्यता के पक्ष मे निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य भागवत से ही प्रमाण प्रस्तुत करते है —

"अनपायिनी भगवत श्री साक्षादात्मनो हरे"
तथा
रेमे रमेशो ब्रज सुन्दरीभिर्यथार्भक स्वप्रतिबिम्वविभ्रम"।

(भागवत, १०/३३/३७)

भागवत के अनुसार इस सम्प्रदाय मे प्रेमलक्षणा अनुरागात्मिका पराभक्ति को ही सर्व श्रेष्ठ माना है। सख्यभाव की भक्ति भी इस सम्प्रदाय मे विधेय है। निम्बार्क सम्प्रदाय की अवान्तर शाखा सखी सम्प्रदाय की चर्चा हम आगे करेगे।

माध्व-मत

माध्व-मत विशुद्ध भक्तिवादी मत है। श्री मध्वाचार्य ने भागवत के रहस्यो का उद्घाटन करने के लिए भागवत तात्पर्य निर्णय नामक ग्रन्थ लिखा तथा इस महापुराण को ब्रह्मसूत्र महाभारत, गायत्री तथा वेद से सम्बद्ध बनाया है। भागवत तात्पर्य निर्णय मे वे लिखते हैं—

अर्थोऽय ब्रह्मसूत्राणा भारतार्थविनिर्णय ।
गायत्री भाष्य रूपोऽसौ वेदार्थपरिबृहित ।।
पुराणाना साररूप साक्षाद् भगवतोदित
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्र श्रीमद्भागवताभिध ।।

(भागवत तात्पर्य निर्णय, पृष्ठ ७८९)

सभवत 'भागवत तात्पर्य निर्णय' सर्वप्रथम ग्रन्थ है जिसमे भागवत के महत्व का इतने विस्तार से विवेचन हुआ है इस ग्रन्थ मे भागवत के अधिकारी, विषय प्रयोजन और

फल विवेचन के अतिरिक्त उसके वर्ण्य विषय को श्रुति स्मृति पुराण इतिहास तथा तन्त्रादि से सम्मत बताया है। प्रत्येक स्कन्ध के प्रत्येक अध्याय का तात्पर्य विस्तार मे बताया गया है वैशिष्टय इस ग्रथ का यह है कि स्कन्ध का तात्पर्य उतने ही अध्यायो मे लिखा गया है जितने अध्याय उस स्कन्ध मे है। मध्वाचाय जी ११ वी शताब्दी के आचाय थे। तथा उन्होने लगभग तीस ग्रथो मे भक्ति सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। इसी सम्प्रदाय के आचाय विजय ध्वजतीथ ने भागवत पर पदरत्नावली नामकी टीका लिख कर भागवत धर्म को लोकप्रिय बनाने मे बडी सहायता की तथा भागवत महापुराण को भागवत धम के पुनरुत्थान का मूल कारण माना।

माध्वमत की गौडीय शाखा चैतन्य मत मे भी भागवत महापुराण की बडी मान्यता है। माध्वमत के १६ वे आचाय माधवेन्द्रपुरी ने ही वृन्दावन मे गोपाल की स्थापना की थी। चैतन्य सम्प्रदाय के आचार्य मध्वाचाय को ही भक्ति प्रवतक मानते हैं तथा भागवत को उसके प्रधान साधन के रूप मे ग्रहण करते है। चैतन्य सम्प्रदाय के छै आचाय रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट तथा जीव गोस्वामी वृन्दावन मे रह कर भागवत धम की व्यवस्थित रूप मे प्रचार करने मे लगे तथा भागवत को उपजीव्य मानकर उन्होने अनेक ग्रन्थो की चना की। श्रीरूपगोस्वामी ने जो उच्च कोटि के कवि तथा विद्वान् थे 'ललितमाधव' तथा विदग्ध माधव' नामक नाटको मे श्रीकृष्ण की लीलाओ का बडा सुन्दर वर्णन किया है उज्ज्वल नीलमणि तथा हरिभक्ति रसामृतसिन्धु मे इन्होने भक्ति का रस रूप मे शास्त्रीय विवेचन किया है। हरिभक्ति रसामृत सिन्धु मे भागवतोक्त वैधी तथा रागानुगा भक्ति के समस्त प्रकारो का विवेचन किया है तथा सब प्रकार की भक्ति के लिए श्रीमद्भागवत को साधन ग्रन्थ ठहराया गया है। उज्ज्वलनील मणि मे शृङ्गार को उदात्तता प्रदान की गई है तथा उसे उज्ज्वल रस या मधुर रस की सज्ञा दी गई है। रसराजत्व भक्ति को प्राप्त हुआ है।

मुख्य रसेषु पुरा य सक्षेपेणोदिती रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्ति रसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुर ॥

(उज्ज्वलनीलमणि पृष्ठ ४।)

श्री रूप गोस्वामी का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'लघुभागवतामृत है जिसमे भागवत के आधार पर अनेक विषयो का बडा सुन्दर प्रतिपादन हुआ है तथा कृष्ण को परात्पर ब्रह्म सिद्ध किया है। लघुभागवतामृत को श्रीमद्भागवत का निचोड कहा जा सकता है। श्री रूप-गोस्वामी के 'हस दूत' तथा उद्धव दूत' नामक काव्य भी भक्ति काव्य ही है।

श्री सनातन गोस्वामी जी ने 'वैष्णव तोषिणी' नाम की भागवत की मार्मिक व्याख्या की है तथा बृहद् भागवतामृत मे भागवत के सिद्धातो का प्रतिपादन किया है। बृहद भागवतामृत का प्रतिपाद्य गोपी प्रेम हैं तथा किशोर श्रीकृष्ण परम सेव्य हैं। भगवान् के अवतार का प्रयोजन केवल प्रेमदान ही है। इस ग्रथ मे श्री चैतन्यदेव को गोपीभाव का अवतार माना गया है।

रघुनाथदास गोस्वामी की रचनाएँ स्तोत्र रूप मे ही ही अधिक है वे उच्च कोटि के भागवत कथा-वाचक थे जो रूप गोस्वामी की सभा मे भागवत की कथा कहते थे

श्री गोपालभट्ट सम्प्रदाय के उत्कट विद्वान् थे इन्होने सनातन गोस्वामी के प्रसिद्ध ग्रन्थ हरिभक्त विलास का उपबृहण किया था।

श्रीजीवगोस्वामी की विशिष्ट रचना 'षट्सदभ है जिसमे भागवत सम्बन्धी छ निबन्धो का सकलन है। इस ग्रन्थ मे तत्वसदभ, भागवत तत्व, परमात्मतत्व, श्री कृष्णतत्व, भक्ति तथा प्रीति तत्व शीषको से श्री मद्भागवत के गूढ रहस्यो का उद्घाटन किया गया है तत्व सन्दभ मे उ होने लिखा है।

तदेव परमनिश्रेयसनिश्चयाय श्रीमद्भागवतमेव पौर्वापर्याविरोधेन विचायते। तत्रास्मिन् सदभषट्कात्मके ग्रन्थे सूत्रस्थानीयमवतारिका वाक्यम्। विषय वाक्य श्रीमद्भागवत वाक्यम्

(तववसन्दर्भ, पृ० १७)

श्रीजीवगोस्वामी जी ने क्रम सन्दभ नाम की एक भागवत पुराण की टीका भी लिखी। इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रचार तथा विवेचन मे माध्वमत तथा चैतन्य सम्पदाय अग्रणी है।

वल्लभ-मत

वल्लभ मत के सिद्धा तो का विवेचन हम पीछे कर चुके है। भागवत महापुराण के व्यापक प्रचार मे इस मत का विशेष हाथ रहा है। आचार्य वल्लभ ने सम्पूण देश मे भ्रमण करके भागवत का प्रचार किया तथा देश मे चौरासी स्थानो पर इस महापुराण का पारायण किया। वल्लभ पहले आचाय थे जिन्होने इस पुराण को प्रस्थान त्रयी के समकक्ष मानकर उसे प्रस्थान चतुष्टय की सज्ञा दी।

वेदाः श्री कृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम्।

(त० दी नि० पृष्ठ १)

छठे अध्याय में भागवत के दाशनिक सिद्धान्तो का विवेचन करते हुए हमने भागवत के सम्बन्ध मे वल्लभमत पर प्रकाश डाला है। वल्लभ सम्प्रदाय मे आचाय वल्लभ को श्री भागवत गूढाथ प्रकाशन परायण कहा जाता है। तत्व दीप निबन्ध तथा सुबोधिनी मे भागवत की अनेकश प्रशसा की गई है तथा इसे समस्त वेदो का आभरण रूप बताया है। इतना ही नही, उन्होने इस महा पुराण को लीलापुरुषोत्तम का साक्षात् विग्रह स्वीकार किया है। भागवत के द्वादश स्कन्धो को अपने सेव्य श्री नाथ जी के बारह अगो के रूप मे स्वीकार कर उन्होने "द्वादशो ह वैपुरुष" श्रुति की सगति बैठाई है। भागवत के प्रथम, द्वितीय स्कन्ध भागवत के पाद युगल हैं, तृतीय, चतुथ बाहु युगल पचम षष्ठ सविथद्वय, सप्तम स्कन्ध दक्षिणहस्त, द्वादश स्कन्ध उत्क्षिप्त वाम हस्त, अष्टम, नवम स्कन्ध स्तन युगल, दशम स्कन्ध हृदय तथा एकादश स्कन्ध शिरोभाग। भागवत के एक ही अथ को सात प्रकार से उन्होने बताया है। वे सात प्रकार है। शास्त्राथ, स्कन्धाथ, प्रकरणाथ, अध्यायाथ, श्लोकाथ, शब्दाथ। इन सात प्रकार क अर्थों मे आचाय जी ने बडी सावधानी से काम लिया है जैसा कि उन्होने स्वय सुबोधिना मे लिखा है—

लक्षरणा नैव वक्ष्यामि न यूनाद यपूरणम् ।
अ थिक तु प्रवक्ष्यामि परोक्षकथनादृते ।
अविरोधेन सप्तानामर्थानामिह सगति ।
उत्तरोत्तर दौबल्य वाच्य सकोचन परम्
भाषात्रय विरोधश्च कल्पभेद तसमाश्रित ।
भाषात्रय विभेदश्च लक्षणैर्ज्ञाप्यते पुन ॥
अथत्रय तु वक्ष्यामि निबन्धेऽस्ति चतुष्टयम् ।
(सुबोधिनी १। १)

वल्लभाचाय ने भागवत महापुराण के विषय विश्लेषण के लिए अनेक ग्रन्थो की रचना की जिनमे निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं १—श्रीभागवत सुबोधिनी, २—श्रीभागवत सूक्ष्म टीका, ३—तत्व दीप निबन्ध का श्रीभागवताथ प्रकरणम् ४—श्रीदशम स्कन्धानुक्रमणिका ५—श्रीपुरुषोत्तम नामसहस्रम् तथा ६—त्रिविध लीला नामावली । वल्लभाचाय जी के पुत्र विट्ठल नाथ जी ने अपने पूज्य पितृ चरणो के ग्रन्थो के गूढ रहस्य का उद्घाटन किया तथा कुछ स्वतत्र ग्रन्थ भी लिखे । 'भक्ति हस' तथा 'भक्ति निर्णय' मे भागवत की भक्ति का विशेष रूप से प्रतिपादन किया । विट्ठलनाथ जी भी अपने पिता के समान सस्कृत के प्रौढ विद्वान् थे तथा उन्होने अपने पिता के समान देश मे अट्ठाईस बैठके स्थापित की ।

वल्लभाचाय जी ने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना मर्यादामार्गीय सम्प्रदाय से भिन्न रूप मे की यहाँ तक कि सम्प्रदाय के नाम करण की प्रेरणा भी उन्हे श्रीमद्भागवत से ही मिली । भागवत के द्वितीय स्कध दशम अध्याय के चतुथ श्लोक मे आया है—'पोषण तदनुग्रह' अर्थात् भगवान् के अनुग्रह को ही पोषण या पुष्टि कहते हैं । भगवान् के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय मे भक्ति का उदय होता है । इसलिए भक्त को अपना सब कुछ भगवान् को ही समपरण करना पडता है जिससे भगवान् के प्रति उसकी अनन्यता हो सके । यही पुष्टि मार्ग कहलाता है । 'सिद्धान्त रहस्य' नामक ग्रथ की विवृति मे हरिराय जी ने स्पष्ट लिखा है कि भक्ति पुष्टि, प्रवाह, मर्यादा भेद से तीन प्रकार की होती है । इनमे प्रवाह भक्ति तो वेद, पुराण मे कही गयी हैं तथा मर्यादा और पुष्टि के लिए श्रीभागवत ग्रथ का प्रादुर्भाव हुआ मर्यादा भक्ति का फल है—प्रभु स्नेह, जो पुष्टि भक्ति का आधार है । इस पुष्टि भक्ति का विवेचन श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध मे हुआ है । भगवान् का अनुग्रह गूढ होने के कारण प्रत्यक्ष-प्रमाण से सिद्ध नही होता । इसलिए लोक मे व्यक्ति विशेष की उत्तम फल प्राप्ति देखकर उसकी कल्पना की जाती है, भगवान के छठे स्कन्ध में भगवान के अनुग्रह का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है, इसीलिए पुष्टि सम्प्रदाय मे इसे पुष्टि स्कन्ध कहते हैं । इस स्कन्ध के उन्नीस अध्यायो की व्याख्या पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के विवेचन के साथ की गयी हैं । इस स्कन्ध में पुष्टि मार्गीय भक्ति के तत्व का निरूपण करने वाला उपाख्यान इन्द्र और वृत्रासुर, का है इसी स्कन्ध के एकादश अध्याय मे इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन है । वृत्रासुर ने इन्द्र के साथ युद्ध करते हुए भगवान् की कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव किया, तथा अपनी अनुभूति के उद्गारों को अभिव्यक्त किया । भागवत कार ने इन्ही उद्गारो का इस अध्याय के अन्तिम चार श्लोको मे निबद्ध किया है । पुष्टि सम्प्रदाय मे ये चार श्लोक वृत्रासुर चतु श्लोकी' के नाम से प्रख्यात है, जो क्रमश धम अथ

काम और मोक्ष के नाम से अभिहित किय जाते हं, इन श्लोको की पुष्टिमम्प्रदाय मे विभिन्न रूपो से व्याख्या की गयी है। पुष्टि सम्प्रदाय का सेवा मण्डान भी भगवतानुसारी ही सिद्ध किया गया है, भागवतोक्त कृष्ण के अष्ट सखाओ के आधार पर ही 'अप्ट छाप की स्थापना हुई थी।

"हे स्ताक कृष्ण हे अशोश्रीदामन् सुबलाजु न, विशालषभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप"
(श्रीमद्०, दशमस्कन्ध, अध्याय २२, श्लोक ३१)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना करके उसके आठो कवियो को ठाकुर जी के आठ सखाओ के रूप मे माना और उ हे आठ झाकियो से भगवान् की कीतन सेवा करने का आदेश दिया।

इम प्रकार सभी वैष्णव सम्प्रदायो ने भागवत पुराण को अपने सिद्धान्तो का मूलभूत ग्रथ माना। भारतवष की सम्पूण आधुनिक भाषाओ का मध्ययुगीन साहित्य श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। इसका विवेचन हम अगले अध्याय मे करेगे। आचाय प्रवर्तित सम्प्रदायो से प्रेरणा पाकर और भी बहुत से सम्प्रदाय भारतवष मे चले उनकी साधना पद्धति की मूल चेतना भी श्रीमद्भागवत महापुराण ही रहा।

———

दशम अध्याय

श्रीमद् भागवत और मध्ययुगीन भक्ति साहित्य

तृतीय अध्याय मे भ गवत धम और भक्ति आन्दोलन का विवेचन करते हुए हम यह सकेत कर आये है, कि श्रीमद्भागवत मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन की प्रेरणा का मूल-स्रोत रहा है तथा सभी भक्ति-सम्प्रदायो मे साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से भागवत का महत्त्व स्वीकार किया गया है। श्रीमद्भागवत महापुराण का काल-निर्णय करते हुए हमने यह स्वीकार किया है कि श्रीमद्भागवत की प्रस्तुत रूप मे रचना नवी शताब्दी तक अवश्य हो चुकी थी। इसमे भी सन्देह नही कि, भागवत पुराण नाम का कोई ग्र थ प्रस्तुत रचना के अतिरिक्त विद्यमान था। भक्ति तथा दश न के सभी सामान्य व विशेष तथा वदिक व अवैदिक तत्त्वो का समावेश भागवनकार ने अपनी रचना मे सुचारु रूप से किया है। इसलिये प्रस्तुत श्रीमद्भागवत पुराण से पूववर्त्ती भक्ति-ग्रन्थो मे भी भागवत के तत्त्वो की प्राप्ति अस्वाभाविक नही है। यहा हमे यह देखना है कि नवी शताब्दो के अनन्तर भारतीय भाषाओ के भक्ति-ग्रन्थो का यह ग्र थ कितनी मात्रा मे उपजीव्य रहा है। कहने की आवश्यकता नही कि प्राय भारतवर्ष की सभी आधुनिक भाषाओ का विकास नवी शताब्दी के पश्चात् हुआ है तथा उनके साहित्य का मूल स्वर सत्रहवी शताब्दी तक भक्ति ही रहा है। नवी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी तक के साहित्य को मध्य-युगीन साहित्य की सज्ञा दी गयी है। यह दूसरी बात है कि पाश्चात्य देशो मे मध्ययुगीन प्रवृत्तियो को जिन विशेषताओ से अभिहित किया गया है वे इस भारतीय मध्य युगीन साहित्य मे विद्यमान है अथवा नही ? भारतीय मध्य-युगीन भक्ति-साहित्य की अपना एक विशेषता यह है कि वह परम्परागत भारतीय-साधना से अविच्छिन्न नही कहा जा सकता। कुछ आधुनिक विद्वान् इस युग के साहित्य को विशेषकर भक्ति-साहित्य को विदेशी देन मानते है, परन्तु यह मान्यता केवल भ्रम ही है। डा० ग्रियसन, वेवर केनेडी, डा० भाण्डारकर आदि विद्वानो ने यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन ईसाइयत की देन है। डा० ताराचन्द आदि भारतीय भक्ति-साधना को मुसलमानो से प्रभावित मानते है। हमने अपने ग्रथ सूर और उनका साहित्य' मे इन मान्यताओ का खण्डन किया है। इस तथाकथित मध्य-युगीन भक्ति-साहित्य मे जिन तत्त्वो का समावेश हुआ है, उनका पूरा ब्योरा हमे उत्तरवर्ती सस्कृत और प्राकृत के तथा सम्पूर्ण अपभ्र श के साहित्य से मिल सकता हे ऐतिहासिक प्रमाणो से यह सिद्ध हो चुका है कि कृष्ण का देवत्व भारतवष मे ईसा से बहुत पूव स्वीकृत हो चुका था। सस्कृत साहित्य मे कृष्ण के देवत्व की चर्चा पयाप्त मात्रा म मिलती है। श्रीमद्भागवत के अतिरिक्त अन्य कई पुराणो, पाञ्चरात्र-ग्रन्थो तथा सस्कृत के काव्यो तथा नाटको मे कृष्ण की अवतार रूप मे प्रतिष्ठा है। इसी प्रकार प्राकृत के ग्र थो मे भी पयाप्त मात्रा मे कृष्ण के देवत्व की प्रतिष्ठा हुई है। जहाँ तक भक्ति के उन तत्त्वो का प्रश्न है जो मध्य-युगीन भक्ति साहित्य के प्रेरक तत्त्व कहे जा सकते हैं, वे तो वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के सम्पूर्ण धर्म-साहित्य मे ओत-प्रोत है। भागवताश्रयी जिन तत्त्वो का उल्लेख हम यहाँ करना चाहते है, वे है—प्रेम और शृ गार।

इन्ही दो तत्वो को लेकर आधुनिक विद्वानो को यह भ्रम हुआ है कि मध्य-युगीन भक्ति-आन्दोलन अभारतीय भक्ति-साधना से प्रभावित हुआ है। प्रेम और शृ गार भक्ति के विशिष्ट तत्त्व है जिनके कारण भागवत महापुराण का अपना एक अलग स्थान है। भगवान् की स्तुति, सत्सग वैराग्य, नाम माहात्म्य, धम अथ, काम, मोक्ष का आपेक्षिक सम्बन्ध, लोक तथा परलोक की चर्चा, गुरु-महिमा, माया-मोह-जाल आदि ऐसे सामान्य तत्व हैं जो किसी भी देश अथवा धम की भक्ति-साधना के मूल तत्व कहे जा सकते है तथा जिनकी चर्चा थोडे बहुत रूप में हमे सवत्र मिलती है। इन सभी तत्वो की चर्चा श्रीमद्भागवत में भी है। परन्तु भागवत का भागवतत्व इन तत्वो की चर्चा के कारण नही है। श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य तो प्रेम और शृ गार का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे है जो धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियो से अद्वितीय कहा जा सकता है। रूप माधुय तथा लीला-बिहार, इन दोनो तत्वो को रूप प्रदान करने वाले भागवतकार ने इन दो तत्वो को शरीर प्रदान कर मानव-मात्र का जो उपकार किया है वह विश्व की धम साधना मे अनुपम, अद्वितीय तथा बेजोड है।

भारतीय भक्ति-साधना मे प्रेम और शृ गार का समावेश हम पाँचवी—छठी शताब्दी से ही पाते है। ऐसा लगता है कि ये दोनो तत्त्व लोकमत के प्रधान तत्त्व बन चुके थे। बौद्धो की महायान तथा सहजयान शाखाओ मे प्रेम और शृ गार का ही विस्तार है। दक्षिण के आलवार भक्तो के गीतो मे प्रेम और शृ गार की ही ध्वनि गूजती हैं। वैष्णव सहजयान, शाक्तमत तथा शैवमत मे भी प्रेम और शृ गार को ही किसी न किसी रूप मे अभिव्यक्ति मिली है। भारतवष के विभिन्न प्रान्तो मे जो आज कला के नमूने प्राप्त होते है, उनसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रेम और शृ गार धार्मिक स्तर पर सामान्य जनता मे स्वीकृत हो चुके थे। इसीलिए स्मात धमावलम्बी आचार्यों के लिए अपनी उपासना-पद्धति मे दोनों तत्त्वो का समावेश अनिवार्य हो गया था। भारतीय धर्म-साधना मे अवतारवाद की प्रतिष्ठा एक महत्त्वपूर्ण घटना है, परन्तु प्रेम तथा शृ गार के आधार के बिना वह प्रतिष्ठा निष्प्राण तथा निर्जीव सी ही थी। बौद्धमत अपने अन्तिम दिनो मे इसीलिए लोकमत के रूप मे परिणत हो चला था। वर्ण-व्यवस्था तथा शास्त्रीय कठोर नियम, वैधी उपासना तथा आडम्बर पूर्ण पौरोहित्य वैदिक धम को लोक मत बनाने में बाधक थे। युग पुरुष भागवतकार ने इस स्थिति को पहिचाना और भारतीय धम परम्पराओ को अक्षुण्ण रखते हुए भक्ति पद्धति मे प्रेम और शृ गार को स्थान देकर मणि कांचन योग प्रस्तुत किया। भागवतकार का ब्रह्म निरूपण इस समन्वय बुद्धि का स्पष्ट उद्घोष है—

"वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्,
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।"

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भारत की प्राय सभी आधुनिक भाषाओ का विकास नवी शताब्दी के अनन्तर हुआ है। इसलिए यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्राय सभी भाषाओ के साहित्य के मूल मे प्रेम और शृ गार की भावना है तथा वह किसी न किसी रूप मे श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ आठवीं नवीं शताब्दी से माना जाता है। कुछ विद्वानो ने इस काल की अपभ्र श की रचनाओ को पुरानी हिन्दी के

नाम से अभिहित किया है। भाषा अथवा साहित्य का काल-निर्धारण हमारा विषय नही है। हिन्दी साहित्य का आदि काल चाहे नवी शताब्दी मे माना जाय या ग्यारहवी शताब्दी से, इसमे कोई सदेह नही कि, उस काल का लोक साहित्य धार्मिक साहित्य भी था तथा उसके मूल मे प्रेम और श्रृ गार की भावना थी। जो ग्रथ राज्याश्रित कवियो तथा भाटो द्वारा लिखे गये थे उनमे धार्मिकता चाहे न हो, प्रेम और श्रृ गार अवश्य है। हम यहा केवल धार्मिक-साहित्य तक ही अपने को सीमित रखना चाहते है। इस दृष्टि से हिन्दी के आदि युग मे सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ-साहित्य तथा वैष्णव साहित्य धार्मिक साहित्य के रूप मे प्राप्त होता है।

सिद्ध-साहित्य की रचना आठवी शताब्दी से तेरहवी शताब्दी तक होती रही। सरहपा को प्रथम सिद्ध कवि कहा जाता है, जिनका समय ७६० ईस्वी है। बगाल के पालवशीय राजा सिद्धो के आश्रयदाता थे। सभी सिद्ध प्राय सहजयानी थे। जिसमे विरक्त जीवन के प्रति घोर प्रतिक्रिया थी तथा जो मुक्त यौन-सम्बन्ध की पोषक थी। सहज जीवन तथा काम-वृत्ति की सतुष्टि इनका ध्येय था। वर्ण व्यवस्था, वैदिक यज्ञ विधान तथा शास्त्रीय नियमो के ये कट्टर विरोधी थे। 'निर्वाण' का स्थान 'महासुख' ने ले लिया है। सिद्धो के चर्यापदो तथा उनके दोहो मे हमें इन्ही सिद्धा तो का निरूपण मिलता है। कुछ विद्वानो ने सिद्धो की इस लौकिक प्रवृति को रहस्यात्मक सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा० हरबट ने अपनी 'युगनद्ध' नामक पुस्तक मे लौकिक रति तथा वासनात्मक प्रतीको की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। बौद्ध धम के शून्य में तथा करुणा तत्त्व जो उपाय तथा प्रज्ञा के रूप मे प्रस्तुत किये गये थे तथा जिनके मेल से बोधि चित्त की उत्पत्ति मानी जाती थी, अब पुरुष व स्त्री के रूप मे स्वीकृत हुए जिनके यौगिक मिलन से आन द अथवा महासुख की उत्पत्ति मानी गयी। प्रेम तथा श्रृ गार के माध्यम से यह लौकिक तथा अलौकिक का समन्वय कहा जा सकता है। भोग के माध्यम से कैवल्य की प्राप्ति का यह साधन था। प्रज्ञा तथा उपाय ने स्त्री तथा पुरुष का ही रूप धारण नही किया बल्कि वे शक्ति और शिव के भी प्रतीक बने तथा सूर्य और चन्द्र, सुषुम्ना और पिंगला, स्वर तथा व्यञ्जन की भी सज्ञा उन्होने प्राप्त की। ससार की सारी स्त्रियाँ गोपा की अवतार मानी गयी तथा पुरुष बुद्ध के। अद्वय, युगनद्ध तथा समरस सभी साधनाओ के सिद्धान्त इन्ही क्रियाओ पर आधारित है। सरह पाद के 'दोहा कोश' मे वैदिक परम्पराओ का पूरा मजाक उडाया गया है। सम्पूर्ण सिद्ध साहित्य में प्रेम तथा शृगार की प्रतिष्ठा की गयी है।

बौद्ध सिद्धो की लोक प्रियता से भयभीत होकर ही वैष्णव सहज यानियो ने अपने गीतो मे प्रेम तथा श्रृ गार की प्रतिष्ठा की। उनका भगवत्प्रेम स्वकीया तथा परकीया को आधार मानकर चला। सफलता परकीया प्रेम को मिली। चण्डीदास ने परकीया प्रेम को आध्यात्मिक रूप देकर राधा और कृष्ण के प्रेमगीत गाये। कहा जाता है कि चण्डीदास रामा धोबिन से प्रेम करते थे। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में सिद्धो के 'रस' ने 'कृष्ण' का और 'रति' ने 'राधा' का रूप ग्रहण किया। प्रकारान्तर से वैधी, यौगिक-साधना ही कही जा सकती है। हम यो कह सकते है कि वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय हिन्दू तान्त्रिक मत तथा बौद्ध सहजयान का ही नया रूप है। इन वैष्णवो के आश्रय दाता पालवश के उत्तराधिकारी सेन वश के राजा थे। 'ब्रह्म वैवत पुराण तथा जयदेव का 'गीतगोविन्द' वैष्णव सहजियामत के ही पोषक ग्रथ

इन्ही दो तत्वो को लेकर आधुनिक विद्वानो को यह भ्रम हुआ है कि मध्य-युगीन भक्ति-आन्दोलन अभारतीय भक्ति-साधना से प्रभावित हुआ है। प्रेम और शृगार भक्ति के विशिष्ट तत्त्व है जिनके कारण भागवत महापुराण का अपना एक अलग स्थान है। भगवान् की स्तुति, सत्सग वैराग्य, नाम माहात्म्य, धम अथ, काम, मोक्ष का आपेक्षिक सम्बन्ध, लोक तथा परलोक की चर्चा, गुरु-महिमा, माया-मोह-जाल आदि ऐसे सामान्य तत्व हैं जो किसी भी देश अथवा धम की भक्ति-साधना के मूल तत्व कहे जा सकते है तथा जिनकी चर्चा थोडे बहुत रूप में हमे सवत्र मिलती है। इन सभी तत्वो की चर्चा श्रीमद्भागवत मे भी है। परन्तु भागवत का भागवतत्व इन तत्वो की चर्चा के कारण नही है। श्रीमद्भागवत का वैशिष्ट्य तो प्रेम और शृगार का ऐसा समन्वित रूप प्रस्तुत करने मे है जो धार्मिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियो से अद्वितीय कहा जा सकता है। रूप-माधुय तथा लीला-बिहार, इन दोनो तत्वो को रूप प्रदान करने वाले भागवतकार ने इन दो तत्वो को शरीर प्रदान कर मानव मात्र का जो उपकार किया है वह विश्व की धम साधना मे अनुपम, अद्वितीय तथा बेजोड है।

भारतीय भक्ति-साधना मे प्रेम और शृगार का समावेश हम पाँचवी—छठी शताब्दी से ही पाते है। ऐसा लगता है कि ये दोनो तत्त्व लोकमत के प्रधान तत्त्व बन चुके थे। बौद्धो की महायान तथा सहजयान शाखाओ मे प्रेम और शृगार का ही विस्तार है। दक्षिण के आलवार भक्तो के गीतो मे प्रेम और शृगार की ही ध्वनि गूजती हैं। वैष्णव सहजयान, शाक्तमत तथा शैवमत मे भी प्रेम और शृगार को ही किसी न किसी रूप मे अभिव्यक्ति मिली है। भारत-वष के विभिन्न प्रान्तो मे जो आज कला के नमूने प्राप्त होते है, उनसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि प्रेम और शृगार धार्मिक स्तर पर सामान्य जनता मे स्वीकृत हो चुके थे। इसीलिए स्मात धर्मावलम्बी आचार्यों के लिए अपनी उपासना पद्धति मे दोनो तत्त्वो का समावेश अनिवार्य हो गया था। भारतीय धर्म-साधना मे अवतारवाद की प्रतिष्ठा एक महत्त्वपूर्ण घटना है, परन्तु प्रेम तथा शृगार के आधार के बिना वह प्रतिष्ठा निष्प्राण तथा निर्जीव सी ही थी। बौद्धमत अपने अन्तिम दिनो में इसीलिए लोकमत के रूप मे परिणत हो चला था। वर्ण-व्यवस्था तथा शास्त्रीय कठोर नियम, वैधी उपासना तथा आडम्बर पूण पौरोहित्य वैदिक धर्म को लोक मत बनाने मे बाधक थे। युग पुरुष भागवतकार ने इस स्थिति को पहिचाना और भारतीय धम परम्पराओ को अक्षुण्ण रखते हुए भक्ति पद्धति मे प्रेम और शृगार को स्थान देकर मणि काचन योग प्रस्तुत किया। भागवतकार का ब्रह्म निरूपण इस सम वय बुद्धि का स्पष्ट उद्घोष है—

"वदन्ति तत्तत्वविदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्,
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।"

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भारत की प्राय सभी आधुनिक भाषाओ का विकास नवी शताब्दी के अनन्तर हुआ है। इसलिए यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि प्राय सभी भाषाओ के साहित्य के मूल मे प्रेम और शृगार की भावना है तथा वह किसी न किसी रूप मे श्रीमद्भागवत से अनुप्राणित हुआ है। हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ आठवीं नवीं शताब्दी से माना जाता है। कुछ विद्वानो ने इस काल की अपभ्रश की रचनाओ को पुरानी हिन्दी के

नाम से अभिहित किया है। भाषा अथवा साहित्य का काल-निर्धारण हमारा विषय नही हैं। हिन्दी साहित्य का आदि काल चाहे नवी शताब्दी से माना जाय या ग्यारहवी शताब्दी से, इसमे कोई सदेह नही कि, उस काल का लोक साहित्य धार्मिक साहित्य भी था तथा उसके मूल मे प्रेम और शृ गार की भावना थी। जो ग्रथ राज्याश्रित कवियो तथा भाटो द्वारा लिखे गये थे उनमे धार्मिकता चाहे न हो, प्रेम और शृ गार अवश्य है। हम यहाँ केवल धार्मिक-साहित्य तक ही अपने को सीमित रखना चाहते है। इस दृष्टि से हिन्दी के आदि युग मे सिद्ध-साहित्य, जैन-साहित्य, नाथ-साहित्य तथा वैष्णव साहित्य धार्मिक साहित्य के रूप मे प्राप्त होता है।

सिद्ध-साहित्य की रचना आठवी शताब्दी से तेरहवी शताब्दी तक होती रही। सरहपा को प्रथम सिद्ध कवि कहा जाता है, जिनका समय ७६० ईस्वी है। बगाल के पालवशीय राजा सिद्धो के आश्रयदाता थे। सभी सिद्ध प्राय सहजयानी थे। जिसमे विरक्त जीवन के प्रति घोर प्रतिक्रिया थी तथा जो मुक्त यौन-सम्बन्ध की पोषक थी। सहज जीवन तथा काम-वृत्ति की सतुष्टि इनका ध्येय था। वर्ण व्यवस्था, वैदिक यज्ञ विधान तथा शास्त्रीय नियमो के ये कट्टर विरोधी थे। 'निर्वाण' का स्थान 'महासुख' ने ले लिया है। सिद्धो के चर्यापदो तथा उनके दोहो मे हमें इन्ही सिद्धा तो का निरूपण मिलता है। कुछ विद्वानो ने सिद्धो की इस लौकिक प्रवृति को रहस्यात्मक सिद्ध करने का प्रयास किया है। डा० हरबट ने अपनी 'युगनद्ध' नामक पुस्तक मे लौकिक रति तथा वासनात्मक प्रतीको की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। बौद्ध धम के शून्य में तथा करुणा तत्त्व जो उपाय तथा प्रज्ञा के रूप मे प्रस्तुत किये गये थे तथा जिनके मेल से बोधि चित्त की उत्पत्ति मानी जाती थी, अब पुरुष व स्त्री के रूप मे स्वीकृत हुए जिनके यौगिक मिलन से आन द अथवा महासुख की उत्पत्ति मानी गयी। प्रेम तथा शृ गार के माध्यम से यह लौकिक तथा अलौकिक का समन्वय कहा जा सकता है। भोग के माध्यम से कैवल्य की प्राप्ति का यह साधन था। प्रज्ञा तथा उपाय ने स्त्री तथा पुरुष का ही रूप धारण नही किया बल्कि वे शक्ति और शिव के भी प्रतीक बने तथा सूर्य और चन्द्र, सुषुम्ना और पिंगला, स्वर तथा व्यञ्जन की भी सज्ञा उ होने प्राप्त की। ससार की सारी स्त्रियाँ गोपा की अवतार मानी गयी तथा पुरुष बुद्ध के। अद्वय, युगनद्ध तथा समरस सभी साधनाओ के सिद्धान्त इन्ही क्रियाओ पर आधारित है। सरह पाद के 'दोहा कोश' मे वैदिक परम्पराओ का पूरा मजाक उडाया गया है। सम्पूर्ण सिद्ध साहित्य मे प्रेम तथा शृगार की प्रतिष्ठा की गयी है।

बौद्ध सिद्धो की लोक प्रियता से भयभीत होकर ही वैष्णव सहज यानियो ने अपने गीतो मे प्रेम तथा शृ गार की प्रतिष्ठा की। उनका भगवत्प्रेम स्वकीया तथा परकीया को आधार मानकर चला। सफलता परकीया प्रेम को मिली। चण्डीदास ने परकीया प्रेम को आध्यात्मिक रूप देकर राधा और कृष्ण के प्रेमगीत गाये। कहा जाता है कि चण्डीदास रामा धोबिन से प्रेम करते थे। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय मे सिद्धो के 'रस' ने 'कृष्ण' का और 'रति' ने 'राधा' का रूप ग्रहण किया। प्रकारान्तर से वैधी, यौगिक-साधना ही कही जा सकती है। हम यो कह सकते है कि वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय हिदू तान्त्रिक मत तथा बौद्ध सहजयान का ही नया रूप है। इन वैष्णवो के आश्रय दाता पालवश के उत्तराधिकारी सेन वश के राजा थे। 'ब्रह्म वैवत पुराण तथा जयदेव का 'गीतगोविन्द' वैष्णव सहजियामत के ही पोषक ग्रथ

कहे जा सकते हैं। वैष्णव भक्तो ने अपने गीतो मे प्रेम तत्त्व की विशेष रूप से प्रतिष्ठा की। इनका 'महासुख' जीव और ब्रह्म का मिलन था। जो शिव व शक्ति तथा प्रज्ञा तथा उपाय के मिलन के समान था। इस मिलन स्थिति को अलौकिक प्रेम की सहजावस्था कहा गया है। यह अवस्था शुद्ध भावात्मक है तथा प्रेम की ही सयोगावस्था है। यह प्रेम का आध्यात्मिक रूप है, जिसका माध्यम मानवीय प्रेम है। नित्य लोक मे बिहार करने वाले राधा और कृष्ण इस शाश्वत प्रेम के आधार है। सहजिया वैष्णवो ने इस प्रेम का दार्शनिक व्याख्या बडे सुन्दर ढग से की है। कृष्ण निर्विशेष ब्रह्म है वे ही परमात्मा या भगवान् है। उनके भगवान् रूप की तीन शक्तिया है स्वरूप शक्ति जीवशक्ति तथा माया शक्ति। स्वरूप शक्ति मे सत्, चित् और आनन्द तीनो का मिश्रण है। उनके ब्रह्म रूप की भी तीन शक्तिया-सन्धिनी, सम्वित् तथा ह्लादिनी हैं। राधा ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति है। राधा भोग्य है, कृष्ण भोक्ता। दोनो का सम्बन्ध नित्य है। वृन्दावन उनका नित्य लीला धाम है, जहा नित्य लीला गुप्त रूप से होती रहती है। मानवीय परकीया प्रेम राधा और कृष्ण के प्रेम का प्रतीक है। अपनी तीव्रता तथा सामाजिक बन्धनो के तिरस्कार के कारण परकीया प्रेम को आदर्श प्रेम कहा गया है। बगाल के उत्तरवर्त्ती कृष्ण भक्तो ने तो राधा भाव से कृष्ण की उपासना की, परन्तु सहजिया सम्प्रदाय के पूर्ववर्त्ती कवि सखी भाव से कृष्ण की उपासना करते थे। राधा की सखी के रूप मे राधा और कृष्ण की नित्य लीलाओ का दर्शन ही उनका ध्येय था। राधा को तो वे कृष्ण से अभिन्न मानते थे तथा जीव को कृष्ण की तटस्थ शक्ति। इसलिये वे राधा न बनकर सखी बनने मे ही गौरवान्वित होते थे। उत्तरवर्त्ती वैष्णवो ने शिव शक्ति तथा उपाय व प्रज्ञा के समान प्रत्येक पुरुष व स्त्री को कृष्ण और राधा के रूप मे देखने का प्रयास किया। यह तत्रो का प्रभाव कहा जा सकता है। उत्तरवर्ती वैष्णवो ने जिस प्रेम को आदर्श माना है, वही भागवतकार का 'प्रेम' है। पूर्ववर्ती सहजयानी वैष्णव बौद्धो की सहजयानी शाखा से पूर्णतया प्रभावित थे, जबकि, उत्तरवर्ती वैष्णवो ने अपने आदर्श प्रेम को वैदिक साधना-पद्धति के मेल मे देखने का प्रयास किया।

वैष्णव सम्प्रदायो मे प्रेम और सौन्दर्य तत्त्व की विवेचना करते हुए हमे यह नही भूलना चाहिए कि, शाक्त मत ने इन सम्प्रदायो को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। शाक्त मत का प्रचार अति प्राचीन काल से ही भारतवर्ष मे निम्न जाति के लोगो मे रहा है। ऐसा लगता है कि शक्ति आर्येतर जातियो की उपास्या थी। उनकी उपासनापद्धति का प्रभाव धीरे-धीरे वैदिक उपासना-पद्धति पर पडता गया। कई पुराणो मे शक्ति को देवताओ की अधिष्ठात्री देवी स्वीकार किया गया है। देवी भागवतमहापुराण, देवी पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण मे तो देवी का बडे विस्तार से स्तवन किया गया है। देवी के अनेक रूपो को देवताओ की पत्नी के रूप मे ग्रहण कर लिया गया है। तत्र साहित्य म शृ गार-भावना को विशेष बल दिया गया तथा देवी की कल्पना आनन्दभैरवी, त्रिपुर-सुन्दरी तथा ललिता के रूप मे हुई, सम्पूर्ण देश मे शाक्त तत्रो का प्रचार हुआ तथा स्त्री-तत्व को प्रमुखता मिली, नर तत्व साधन रूप मे रहा, नियामक तत्व स्त्री तत्व बना तथा सभी पुरुष स्त्री रूप मे माने गये। शाक्तो मे चक्र-पूजा का विशेष महत्व है जिसके अनुसार एक भोज-पत्र पर स्त्री की योनि का चित्र बनाया जाता है और उसके आस पास नौ और चित्र रहते है। शक्ति-साधना का भारतीय साधना पर इतना व्यापक प्रभाव पडा कि सभी अवतार युगल रूप मे पूजित होने लगे तथा आगे चलकर उनकी काम-क्रीडाओ का भी खुलकर वर्णन होने लगा।

ऊपर के विवरण मे स्पष्ट हो जाता है कि, प्रेम और सौदर्य वैदिक तथा अवैदिक सभी साधनाओ मे इतने घुल मिल गये थे, कि किसी न किसी रूप मे उनकी अभिव्यक्ति आवश्यक थी। आठवी नवी शताब्दी तक ये दोनो तत्व इतने विकृत हो चुके थे कि धार्मिक स्तर पर मानव के सस्कारो के परिष्करण की सामथ्य उनमे न रह गयी थी। सिद्धो तथा शाक्तो की साधना-पद्धति व्यवहार रूप मे समाज के लिए अभिशाप बनती जा रही थी। सम्प्रदाया का दशन पक्ष केवल मन को समझाने के लिए था, उनका विकृत क्रिया-पक्ष ही सर्वोपरि था। आचाय शकर ने इस गम्भीर स्थिति को पहचान कर अद्वैत मत का प्रचार किया तथा बडे सुदर समवयात्मक ढग से वैदिक साधना-पद्धति की पुन प्रतिष्ठा की। यह एक प्रतिक्रिया थी, जिसके मूल मे औपनिषदिक ज्ञान वाद था। इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया नाथ-सम्प्रदाय की कही जा सकती है जिसमे वैदिक साधना पद्धति के प्रति भी घोर विद्रोह है। इस सम्प्रदाय मे योग साधना को आधार बनाया गया तथा शिव को आदि योगी स्वीकार किया। प्राय सभी अवैदिक साधनाओ को इस सम्प्रदाय मे प्रश्रय मिला। इस सम्प्रदाय का लक्ष्य शिवत्व की प्राप्ति है, जो हठ योग से ही सम्भव है। काया-सिद्धि इस सम्प्रदाय का मूल मत्र है। शिव और शक्ति का मिलन इस सम्प्रदाय मे भी विधेय है,परन्तु दूसरे रूप मे। नाथो की साधना उल्टी साधना है, परन्तु मूल तत्व शिव और शक्ति की सिद्धि ही है। सूय शक्ति का प्रतीक है, स्त्री का रूप है तथा चन्द्र शिव का प्रतीक है और पुरुष का रूप। पुरुष स्त्री के बन्धन मे बँधता है। इस बन्धन को तोडना ही नाथ सम्प्रदाय का लक्ष्य है। यह सिद्ध सम्प्रदाय की घोर प्रतिक्रिया है। नाथ मत शकर के अद्वैत से बहुत कुछ मिलता है, परन्तु नाथ उसे अद्वैत सज्ञा न देकर द्वैताद्वैत–विलक्षण-वाद की सज्ञा देते हैं। नाथो के यहा माया काचन, कामिनी, यश, अज्ञान आदि का स्वरूप धारण करने वाली शक्ति है, जो शिवत्व की प्राप्ति मे बाधक है। नाथो का परम लक्ष्य अमरत्व है।

श्रीमद्भागवत महापुराण की रचना से पहले भारतीय धर्म-साधना कई प्रकृत तथा विकृत अवस्थाओ मे बिखर चुकी थी तथा क्रिया व प्रतिक्रिया के रूप मे वह अनेक शाखाओ मे विभाजित थी। वैदिक साधना लोक-साधना न रहकर वर्ग विशेष की साधना बन चुकी थी। पौराणिको ने उसे लोक-साधना बनाने का प्रयास किया परतु वे सफल न हो सके। बौद्ध-धम तथा जैन–धम वैदिक साधना की प्रतिक्रिया मे ही खड हुए थे। कालान्तर मे ये दोनो धम भी जन-सामान्य से अलग पड गये। अनेक अभारतीय धर्म साधनाओ का भी देश मे प्रवेश हो गया, जिसके कारण शास्त्रीय धर्म साधना का रूप और भी सिमटता गया। धर्म जिसका आधार मनोवैज्ञानिक था, कठोर से कठोरतर बन्धनो को अपनाता गया। प्रेम और सौन्दर्य की ओर स्वभाव से आकृष्ट होने वाला मानव-मन धम के कठोर बन्धनो से वितृष्ण हो उठा तथा इन दोनो तत्वो की खोज मे भटकने लगा। सिद्धो तथा शाक्तो ने भटकते हुए मानव-मन का लाभ तो उठाया परन्तु उसे स्वस्थ न कर सके। तन्त्र-साधनाओ से भी उसका समाधान नही हुआ। भागवतकार ने मानव-मन की इस स्थिति को पहिचाना तथा उसे सात्विक प्रेम के उन्मुख किया। रसिकेश्वर कृष्ण के रूप मे उसे प्रेम का आश्रय मिल गया तथा उसने भारतीय साधना-पद्धति मे प्रथम बार प्रेम के सात्विक रूप को प्रतिष्ठित किया। कृष्ण की लीलाओ का लौकिक स्वरूप पहले से प्रचलित था ही भागवतकार ने उन्हे आमुष्मिकता प्रदान कर दी। ७ वी-८ वी शताब्दी मे हमे प्रेम-विह्वल भक्तो के ऐसे गीत मिलते हैं, जिनमे कृष्ण

को आश्रय माना गया है। सम्पूर्ण मध्य कालीन साहित्य का मूल स्वर प्रेम ही है—चाहे वह साहित्य निगु ण भक्ति का हो, चाहे सगुण भक्ति का। प्रेम के साथ शृंगार का योग स्वाभाविक ही था। इसलिए इस युग के सम्पूर्ण साहित्य मे शृंगार और भक्ति का समन्वित रूप हमे प्राप्त होता है। जयदेव ने अपने 'गीत गोविन्द' मे स्पष्ट ही लिखा है—

"यदि हरि स्मरणे सरस मनो, यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल-कात पदावलीम्, शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्।
—(गीत-गोविन्दम् श्लोक ३)

इसी प्रकार भागवतकार ने भी भक्ति के लिये रति और श्रद्धा को आवश्यक बताया है —

"सता प्रसगान्मम वीयसविदो भवति हृत्कणरसायन्त कथा,
यज्जोषणादाश्वपवगवत्मनि श्रद्धारतिभक्तिरनु क्रमष्यति।"

ऐसा लगता है कि, मध्य युग तक आते-आते मानव-मन एक प्रकार की मुक्ति का अनुभव करने लगा था तथा दैवी शक्तियो का आतक उससे हट चुका था। पौराणिक नैतिक रूढिवादिता को स्वीकार करने के लिए भी वह प्रस्तुत नही था। इस मानव-मन की उ मुक्ति के मूल मे चाहे वैदिक साधनाओ की कठोरता हो या विदेशी सस्कृति का प्रभाव हो, इतना हम अवश्य कह सकते है, कि यह वस्तु स्थिति थी। सस्कृत तथा प्राकृत के लोक-साहित्य का आधार भी शृ गार बन चुका था। चौथी-पाचवी शताब्दी से ही हमे इस साहित्य मे स्वच्छन्द प्रेम के दशन होते है, हाल की 'गाथा-सप्तशती' के सम्बन्ध मे डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते है—"प्रेम और करुणा के भाव, प्रेमिको की रसमयी क्रीडाएँ उनका घात—प्रतिघात इस ग्रन्थ मे अतिशय जीवित रूप में प्रस्फुटित हुआ है। अहीर और अहीरिनियो की प्रेम गाथाएँ, ग्राम-बधूटियो की शृगार चेष्टाएँ, चक्की पीसती हुई या पौधो को सीचती हुई सुन्दरियो के ममस्पर्शी चित्र, विभिन्न ऋतुओ का भावोत्तेजन आदि बाते इतनी जीवित, इतनी सरस और इतनी हृदय-स्पर्शी है कि पाठक बरबस इस सरस काव्य की ओर आकृष्ट हो जाता है। यहाँ वह एक अभिनव जगत् मे प्रवेश करता है, जहाँ आध्यात्मिकता का झमेला नही है, कुश और वेदिका का नाम नही सुनाई देता, स्वर्ग और अपवग की परवाह नही की जाती, इतिहास और पुराण की दुहाई नही दी जाती।"।

अपभ्र श की रचनाओ मे तो यह शृ गार और भी उ मुक्त रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। जिसके उदाहरण हमे अब्दुल रहमान के सदेश रासक' हेमचन्द्र के प्राकृत-व्याकरण' मे बहुलता से मिलते हैं। यह लोक परक शृ गार-भावना धार्मिक साहित्य मे भी प्रवेश पा चुकी थी। सस्कृत के अनेक स्तोत्र और स्तुति ग्रन्थ इसके प्रमाण है। विरक्ति-प्रधान जैन धर्म ग्रन्थो मे भी हमे शृ गार और प्रेम की भावना का पुट बराबर मिलता है। राहुल जी ने अपनी 'काव्य-धारा' मे ठीक ही लिखा है कि 'हमारे मुनि कवि भी निर्वाण-कामिनी के आलिङ्गन का खूब गीत गाने लगे थे।' जैन-साहित्य मे ऐसे पदो की कमी नही है, जिनमे स्त्री के सौन्दय

का उन्मुक्त चित्रण हुआ है। 'नेमिनाथ-चौपई' मे राजमती और नेमी के प्रेम का अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है। नख शिख वर्णन भी जैन कवियो ने बडी मस्ती से किया है। यह दूसरी बात है कि उन वर्णनो मे सूक्ष्मता तथा गम्भीरता अधिक आ गई है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वैष्णव धर्म मे प्रेम और शृ गार का शास्त्रीय ढग से समावेश सबसे पहले भागवतकार ने किया, दशम शताब्दी के अनन्तर सब भाषाओ का भक्ति-साहित्य किसी न किसी रूप मे भागवत से प्रभावित हुआ है। सगुण भक्ति साहित्य मे तो भागवत को विषय वस्तु को भी ग्रहण किया गया है, जबकि निगु ण भक्ति साहित्य मे भागवत के प्रेम भाव की छाप हमे मिलती है। सस्कृत मे भी भागवतानुसारी ग्रन्थों के अति-रिक्त भागवत नाम से ही कुछ ग्रथो की रचना हुई। दैवी भागवत का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है, यहा हम सस्कृत के कुछ ऐसे ग्र थो का उल्लेख करते है, जिनमे भागवत नाम आया है तथा जो श्री मद्भागवत महापुराण के आधार पर लिखे गये है। सबसे उल्लेखनीय ग्रन्थ जैमिनीय भागवत है जिसकी मुद्रित प्रति अब प्राप्त नहीं होती। इसकी दो प्रतियाँ—एक देवनागरी अक्षरो मे तथा एक उडिया मे खजूर पत्र पर लिखी हुई इण्डिया आफिस लाइब्रेरी लन्दन मे सुरक्षित है। इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण-लीला है। कुछ लीलाएँ ऐसी हैं जिनका वर्णन श्री मद्भागवत मे नही है। इस ग्रन्थ मे राधिका जी को उचित स्थान मिला है, ग्रन्थ की शैली तथा वर्ण्य विषय से पता चलता है, कि यह ग्रन्थ भागवत महापुराण से बहुत बाद की रचना है। दूसरा ग्रन्थ भागवत-चम्पू है, जिसकी तीन प्रतिया इण्डिया आफिस लाइब्रेरी मे सुरक्षित हैं। यह एक गद्य-पद्य मिश्रित सुन्दर रचना है। रचयिता अभिनव कालदास नामक कोई कवि है। ग्रथ का विभाजन छ उल्लासो मे किया गया है। ऐसा लगता है कि ग्रथकार रामानुज सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाला है। इस ग्रन्थ की 'रत्नावली' नाम की एक टीका भी उपलब्ध है। तीसरा ग्रथ 'मत्र-भागवत' है। यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। जिसकी एक प्रति बडोदा की सैण्ट्रल लाइब्रेरी मे सुरक्षित है। इसके रचयिता का नाम 'नीलकण्ठ' है। ग्रथ की टीका ग्रथ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। टीका का नाम 'मन्त्र-रहस्य–प्रकाशिका' है। टीकाकार ने वैदिक मत्रो के द्वारा श्रीमद्भागवत की कथाओ की सगति बैठाई है। चौथा उल्लेखनीय ग्रथ 'बाल-भागवत' है। इसकी रचना सन् १४३० ई० मे आध्र निवासी धर्म-सूय कवि ने की। यह भी एक काव्य ग्रथ ही था। इस ग्रथ की कोई भी प्रति अब उपलब्ध नही होती। लेखक के 'नरकासुर विजय' नामक नाटक मे इस ग्रथ का उल्लेख मिलता है। इन चार ग्रथो के अतिरिक्त सस्कृत मे अनेक ऐसे ग्रन्थ प्राप्त हैं, जो या तो भागवत को आधार मानकर लिखे गये हैं, या भागवत की टीका के रूप में उपलब्ध हैं। बोपदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हरिलीलामृत' तथा गोस्वामियो के 'लघु भागवतामृत' 'बृहत्भागवता-मृत' तथा 'षट् सदभ' की चर्चा हम पहले ही कर चुके हैं।

भागवत-धर्म का विवेचन करते हुए हम यह बता चुके हैं कि ईसा से बहुत पूर्व इस धम का उदय हुआ तथा वैदिक साधना-पद्धति में प्रेम को स्थान दिया गया। सम्पूर्ण भारतवर्ष मे भागवत-धर्म की प्रतिष्ठा हुई तथा अवतार-वाद को सम्बल मिला। परन्तु इस धर्म का सच्चे अर्थों मे प्रतिष्ठापक श्रीमद्भागवत महापुराण ही था। उत्तर और दक्षिण की सभी भाषाओ मे भागवत के अनुवाद हुए तथा भागवतानुसारी ग्रथ लिखे गये। नवी-दसवी शताब्दी के जैन-ग्रथो मे भी हमे कृष्ण लीलाओ का विवरण प्राप्त होता है।

कृष्ण-लीलाओ को आधार मानकर की गई रचनाओ मे ब्रजभाषा की रचनाएँ अग्रणी है। ब्रजभाषा की पूववर्त्ती शौरसेनी अपभ्रश मे कृष्ण सम्बन्धी काव्य का प्राचुर्य मिलता है। दुख से कहना पडता है कि यह काव्य अभी तक हिन्दी के विद्वानो के दृष्टि-पथ मे नही आया। सगुण भक्ति आन्दोलन तथा ब्रजभाषा-काव्य के विकास को समझने के लिए यह काव्य अत्यन्त उपयोगी है। डा० शिवप्रसादसिह ने अपने शोध-प्रबध 'सूर-पूव ब्रज-भाषा और उसका साहित्य' मे इस प्रकार की रचनाओ का उल्लेख किया है। अपभ्रश भाषा की कृष्ण-लीला सम्बन्धा जो रचनाएँ प्राप्त होनी है उनके उपजीव्य नि सन्देह भागवत महापुराण, हरिवश पुराण अथवा ब्रह्म वैवत्त पुराण रहे है। पुष्पदत के महापुराण' मे कृष्ण-लीलाओ का सम्बद्ध वणन प्राप्त होता है। उसमे पूतना-लीला, ओखल-वधन, गोवद्धन धारण, कालिय-दमन आदि घटनाओ के अतिरिक्त गोपियो के साथ कृष्ण विहार का चित्रण भी बडी सुन्दरता से किया गया है। पुष्पदन्त ने कृष्ण के लिए गोपाल मुरारी, मधुसूदन, हरि, प्रभु आदि भागवतोक्त विशेषणो का प्रयोग किया है, महापुराण का रास-वणन भी अद्वितीय है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए —

"धूली धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा,
लीला रम वसेण गोवालय गोवी हियय हारिणा,
मदीरउ तोडिवि आवट्टिउ, अद्धविरोलिउ दहिउ पलोट्टिउ
कवि गोवी गोविन्दहु लग्गी, एण महारी मथानि भग्गी
एयहि मोल्लु देहु आलिगणु, ण तो मा मेल्लहु मे प्रगणु
काहि वि गोविहि पडरु चेलउ, हरि तणु तेइ जायउ कालइउ।"

(उत्तर पुराण, पृ० ६४)

जैन कवियो की अन्य रचनाओ मे भी कृष्ण लीला सम्बन्धी पद प्राप्त होते है। यह दूसरी बात है, कि उनका दृष्टिकोण कृष्ण के प्रति भक्ति परक नही है। हेमचन्द्र के दोहो मे कृष्ण-लीला के सकेत कई स्थान पर प्राप्त होते है यथा —

१—'हरि नच्चाविउ पगणइ विम्हइ पाडिउ लोउ,
एम्बहि राह पओहरह ज भावइ त होउ।
२—'मइ भणियउ बलिराय तुहु केहउ मग्गण एहु,
जेहु तेहु न वि होइ वढ सई नारायण एहु।

जैन-कथाओ मे कृष्ण काव्यक ा जो रूप मिलता है, उसमे भागवत की धार्मिकता न मिलना स्वाभाविक ही है। परतु विषय वस्तु निश्चत रूप से भागवतानुसारी है। श्री अगरचन्द नाहटा ने जैन-कथा के कृष्ण काव्य पर एक विस्तार से लेख लिखा है। 'प्रबन्ध-चिन्तामणि' का निम्नलिखित दोहा इस बात की पुष्टि करता है कि कृष्ण का अवतार रूप सामान्य जनता मे प्रतिष्ठित हो चुका था।

"अम्मणिओ सदेसडो तारय कन्ह कहिज्ज
जग दालिद्दिहि डुब्बिउ वलिवधणह मुहिज्ज"

'प्राकृत पैंगलम्' में भी कई ऐसे पद्य सगृहीत हैं जिनमे कृष्ण को उपास्य रूप मे स्वीकार किया गया है तथा साथ ही साथ गोपी अथवा राधा के साथ उनके प्रेम का वर्णन भी हुआ है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मे गोपियो के लौकिक प्रेम का समुन्नयन हुआ है, उसी प्रकार इन पद्यो में भी लौकिक प्रेम का चिन्मुख प्रेम मे पर्यवसान किया गया है। इस सकलन मे राधा और कृष्ण के प्रेम सम्बन्धी कई उच्च कोटि के चित्र सकलित हैं। कुछ कविताओ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं —

१–"जिणि कस विणासिअ किति पयासिअ
मुट्ठि अरिट्ठ विणास करे गिरि हत्थ धरे
जमलज्जुण भजिय पय भर गजिय
कालिय कुल सहार करे जस भुवण भरे
चाणूर विहडिअ, णिय कुल मडिअ
राहा मुह महु पान करे जिमि भमर वरे
सो तुम्ह णारायण विप्प परायण
चित्तह चिंतिय देउ वरा, भयभीय हरा" (३२४।२०७)

२–"परिणअ ससिहर वअण विमल दल नयण
विहिअ असुर कुल दलण पणयह सिरि महु महण" (४२१।१०६)

३— 'भुवण अणदो तिहुअण कदो
भवर मवण्णो स जअइ कण्हो "(३६१।१०६)

'प्राकृत पैंगलम्' में कुछ ऐसे पद्य भी सगृहीत है, जिनमें शिव और कृष्ण की साथ-साथ स्तुति की गयी है। 'प्राकृत पैंगलम्' के पद्यो से पता चलता है कि कृष्ण की अवतार-भावना उत्तरी भारत मे भी प्रतिष्ठित हो चुकी थी। अनुसधेय बात यह है, कि उत्तरी भारत मे कृष्ण की उपासना का जो स्वरूप प्रचलित था, उस हम भागवत परम्परा का कहे अथवा अन्य किसी परम्परा का। कृष्ण की लीलाओ के स्वरूप के अतिरिक्त दोनो परम्पराओ की विभाजक रेखा कृष्ण-लीलाओ मे राधा का समावेश है। यह बडे आश्चर्य का बात है कि दोनो परम्पराओ के लीला-पक्ष में भाव-साम्य होते हुए भी स्वरूप मे पर्याप्त भेद है, साथ ही साथ भागवतेतर परम्परा मे राधा का समावेश विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उत्तरवर्ती भागवत-परम्परा मे तो राधा का भी यथोचित समावेश हो गया है। इस समावेश को हम दोनो परम्पराओ के समन्वय का मूल केन्द्र मान सकते है। ऐसा लगता है कि राधा-कृष्ण वाली परम्परा प्रारम्भ में लौकिक शृगार की परम्परा थी, भागवत धम के द्वितीय पुनरुत्थान मे उस लौकिक शृगार परम्परा मे भक्ति-भावना की प्रतिष्ठा हो गयी। विद्वानो ने श्रीमद्भागवत मे भी राधा-रूप खोजने का प्रयास किया, तथा उन्हे अपने प्रयास मे सफलता भी मिली। कल्प वृक्ष सम भागवत महापुराण का 'अनयाऽरावितो नूनम्' वाक्य, महावाक्य बना। जिसने आह्लादिनी शक्ति को सिद्धि प्रदान की। गोपी-प्रेम दोनो परम्पराओ मे सामान्य था। परन्तु भागवतेतर परम्परा मे भागवत सदृश कोई पुष्ट ग्रथ नही था। इसलिए आगे चलकर सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति साहित्य का उपजीव्य भागवत ग्रथ बना।

हमने अपभ्र श और पिंगल भाषाओ के कृष्ण-भक्ति परक जिन पद्यो का उल्लेख किया है, उनसे यह निश्चित करना बडा कठिन है कि वे पद्य विशुद्ध भागवतेतर परम्परा के है अथवा समन्वित परम्परा के। 'प्राकृत पैंगलम्' मे सगृहीत पदो की भाषा सक्रान्ति कालीन भाषा है, जो अपभ्रश तथा ब्रज की मध्यवर्ती भाषा कही जा सकती है। आगे चलकर हिन्दी क्षेत्र में भाषा के दो रूप विकसित हुए है —

१—सतो की सधुक्कडी भाषा तथा २—सगुण भक्तो की ब्रज भाषा। भाषा का एक तीसरा रूप भी, जिसे 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' नाम से अभिहित किया गया है—मुसलमान सूफी सतो के हाथ से निखार पा रहा था। परन्तु वह वैष्णव भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम न बन सका। वैष्णव-भक्ति तथा विशेष रूप से कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने का सौभाग्य ब्रज-भाषा को ही मिला। 'हिन्दुई' का साहित्यिक रूप 'दकनी हिन्दी' के नाम से विशेष रूप से पल्लवित हुआ।

ऊपर हमने भागवत-धम की दो परम्पराओ का उल्लेख किया है, साथ ही यह भी बताया है कि आगे चलकर उन दोनो परम्पराओ मे सामञ्जस्य स्थापित हो गया था। प्रतिष्ठा भागवत को ही प्राप्त हुई। यहा हम राधाकृष्ण के युगल रूप को लेकर चलने वाली भक्ति-साधना के प्रतिपादक कुछ सस्कृत ग्रथो का उल्लेख करेगे। हिन्दी के अधिकाश कृष्ण भक्ति साहित्य मे राधाकृष्ण के युगल रूप की उपासना का ही स्वरूप मिलता है। इसलिए उस साहित्य से पूर्ववर्त्ती सस्कृत साहित्य के कुछ उद्धरण उस स्वरूप को समझने मे सहायक हो सकते है।

कृष्ण सम्ब धी पुराण-साहित्य का विवेचन पाछे हो चुका है। हरिवश पुराण तथा ब्रह्म-वैवर्त्त पुराण को विद्वान् बहुत बाद की रचना मानते है। पर तु कुछ प्राचीन प्रेम-गीत सकलन ऐसे है, जिनमे राधा कृष्ण और गोपियो की प्रेम लालाएँ प्राप्त होती है। कहा जाता है कि आभीर जाति के गीतो मे इस प्रकार की लीलाओ का विशद वणन था। ये गीत लाकगीतो के रूप मे प्रचलित थे। ऐसा लगता है कि कृष्ण-लाला के इन गीतो ने धीरे-धीरे पुराणो के माध्यम से धार्मिकता प्राप्त करली। बारहवी शताब्दी मे सगृहीत 'सदुक्ति कर्णामृत' मे भी कृष्णलीला सम्ब धा एक दो पद सगृहीत है। आलवारो के गीत सकलन दिव्य प्रबन्धम्' म कृष्ण की वृन्दावन लीलाओ का नाना प्रकार से उल्लेख हुआ है। इनमे कृष्ण की प्रियतमा गोपी का नाम 'नापिन्नाई' है। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध ग्रथ 'गाहा सत्तसई' का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। इसके रचना काल के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे मत भेद है। पहली शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक इसका रचना-काल माना गया है। इस ग्रन्थ रत्न मे कई पद कृष्ण की ब्रज-लीला के सम्बन्ध मे है। हिन्दी के मध्य युगीन कृष्ण-भक्तो की रचनाओ मे इस ग्रथ की पूरी छाया दीख पडती है। उदाहरण के लिए हम केवल तीन पद्य उद्धृत करते है—

(१) अज्जवि बालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिए जसोआए।
कह्णमुहपेसिअच्छं णिहुअ हसिअ बअबहूहि ॥ २।१२

(२) णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसठिआ णिउणगोवी।
सरिसगोविआण चुम्बइ कवोल पडिमागअ कह्णम् ॥ २।१४

(३) जइ भमसि भमसु एमेअ कह्न सोहग्गगव्विरो गोट्ठे ।
महिलाए दोसगुणे विचारइउ जइ खमो सि ।। ५।४७

(बम्बई निर्णय सागर संस्करण ।)

पहले पद मे, यशोदा, तथा व्रज-गोपियो के वात्सल्य का बडा सुन्दर चित्रण है। जब यशोदा कह रही थी कि दामोदर आज भी बालक है, तो व्रज गोपिया ओट मे होकर कृष्ण के मुख को देख देखकर हँस रही थी। दूसरे पद मे भी नाच की प्रशसा के लिये आई हुई किसी चतुर गोपी द्वारा कृष्ण के कपोलो का चुम्बन दिखाया गया है। तीसरे पद मे भी किसी गोपी की कृष्ण के प्रति एक व्यग्योक्ति है, जिसके द्वारा वह कृष्ण को कहती है कि, यदि तुम्हे भ्रमण करना ही है और यदि तुम स्त्रियो के गुण-दोषो का ठीक-ठीक विचार कर सकते हो, तो सौभाग्यगर्वित होकर इसी गोष्ठ मे विचरण करो।

छठी सातवी शताब्दी के अनन्तर सस्कृत की अनेक रचनाओ मे राधा-कृष्ण की लीलाओ के उल्लेख मिलते है। भट्टनारायण ने 'वेणीसहार' के नान्दी श्लोक मे रास रत राधा-कृष्ण की ही प्रार्थना की है —

"कालिन्द्या पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रस
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रुकलुषा कसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशित—पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुन्नोऽनुनय प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु व ।।"

आनन्दवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' मे कृष्ण-लीला सम्बन्धी कई पद उद्धृत किये गये हैं, जिनमे गोपियो के विरह का बडा सुन्दर चित्रण हुआ है। सस्कृत कविता-सग्रह 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' मे कृष्ण-लीला सम्बन्धी चार पद सगृहीत हैं। इस सग्रह का सकलन काल दशम शताब्दी माना गया है। 'सदुक्ति कर्णामृत' नामक सकलन का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' मे भी कृष्ण-लीला सम्बन्धी कई पद उद्धृत किये गए हैं।

इस प्रकार बारहवी शताब्दी तक रचित सस्कृत के अनेक ग्रथो मे कृष्ण-लीला का धार्मिक रूप मिलता है। जयदेव का 'गीत गोविन्द' राधा-कृष्ण-लीला की विभिन्न परम्पराओ का एक विकसित रूप प्रस्तुत करता है। गीतगोविन्द की रचना १२ वी शताब्दी की मानी जाती है। गीत गोविन्द की रचना लोक गीतो की शैली पर हुई है। इसीलिए कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि यह ग्रन्थ पहले किसी प्राकृत या देशी भाषा मे लिखा गया होगा। जयदेव लोक भाषा के अच्छे कवि रहे होगे, परन्तु उनकी कोई रचना, भाषा की, अब प्राप्त नही है। उनके नाम के दो पद 'गुरुग्रन्थ साहब' मे सगृहीत अवश्य है। गीतगोविन्द की भाषा तथा जयदेव का रचना-स्थल अभी भी गवेषणीय है। गीत-गोविन्द के दो छन्दो का रूपान्तर 'प्राकृत-पैगलम्' मे भी मिलता है। प्राकृत पैंगलम् के इन दोनो पदो की भाषा का रूप निश्चित रूप से पश्चिमी अपभ्रंश का उत्तरवर्त्ती रूप है। जयदेव के गीतगोविन्द में कृष्ण-लीला पर पूरी धार्मिक छाप लग गयी है। उन्होने स्पष्ट लिखा है —

'राधा माधव योर्जयन्ति यमुना कूले रह केलय'—

हमने अपभ्र श और पिंगल भाषाओं के कृष्ण-भक्ति परक जिन पद्यों का उल्लेख किया है, उनसे यह निश्चित करना बडा कठिन है कि वे पद्य विशुद्ध भागवतेतर परम्परा के हैं अथवा समन्वित परम्परा के। 'प्राकृत पैगलम्' मे सगृहीत पदो की भाषा सक्रान्ति कालीन भाषा है, जो अपभ्रश तथा ब्रज की मध्यवर्ती भाषा कही जा सकती है। आगे चलकर हिन्दी क्षेत्र में भाषा के दो रूप विकसित हुए हे —

१—सतो की सधुक्कडी भाषा तथा २—सगुण भक्तो की ब्रज भाषा। भाषा का एक तीसरा रूप भी, जिसे 'हिन्दुई या 'हिन्दवी' नाम से अभिहित किया गया है—मुसलमान सूफी सतो के हाथ से निखार पा रहा था। परन्तु वह वैष्णव-भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम न बन सका। वैष्णव-भक्ति तथा विशेष रूप से कृष्ण-भक्ति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने का सौभाग्य ब्रज-भाषा को ही मिला। 'हि दुई' का साहित्यिक रूप 'दकनी हिन्दी' के नाम से विशेष रूप से पल्लवित हुआ।

ऊपर हमने भागवत-धम की दो परम्पराओ का उल्लेख किया है, साथ ही यह भी बताया है कि आगे चलकर उन दोनो परम्पराओ मे सामञ्जस्य स्थापित हो गया था। प्रतिष्ठा भागवत को ही प्राप्त हुई। यहा हम राधाकृष्ण के युगल रूप को लेकर चलने वाली भक्ति-साधना के प्रतिपादक कुछ सस्कृत ग्रथो का उल्लेख करेगे। हिन्दी के अधिकाश कृष्ण भक्ति साहित्य मे राधाकृष्ण के युगल रूप की उपासना का ही स्वरूप मिलता है। इसलिए उस साहित्य से पूर्ववर्त्ती सस्कृत साहित्य के कुछ उद्धरण उस स्वरूप को समझने मे सहायक हो सकते है।

कृष्ण सम्ब धी पुराण-साहित्य का विवेचन पीछे हो चुका है। हरिवश पुराण तथा ब्रह्म-वैवत्त पुराण को विद्वान् बहुत बाद की रचना मानते हैं। पर तु कुछ प्राचीन प्रेम-गीत सकलन ऐसे है, जिनमे राधा कृष्ण और गोपियो की प्रेम लालाएँ प्राप्त होती हे। कहा जाता हे कि आभीर जाति के गीतो मे इस प्रकार की लीलाओ का विशद वणन था। ये गीत लोकगीतो के रूप मे प्रचलित थे। ऐसा लगता है कि कृष्ण-लाला के इन गीतो ने धीरे-धीरे पुराणो के माध्यम से धार्मिकता प्राप्त करली। बारहवी शताब्दी मे सगृहीत 'सदुक्ति कर्णामृत' मे भी कृष्णलीला सम्बन्धा एक दो पद सगृहीत है। आलवारो के गीत सकलन दिव्य प्रबन्धम्' म कृष्ण की वृन्दावन लीलाओ का नाना प्रकार से उल्लेख हुआ है। इनमे कृष्ण की प्रियतमा गोपी का नाम 'नापिन्नाई' है। प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध ग्रथ 'गाहा सत्तसई' का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। इसके रचना काल के सम्बन्ध मे भी विद्वानो मे मत भेद है। पहली शताब्दी से लेकर छठा शताब्दी तक इसका रचना-काल माना गया है। इस ग्रन्थ रत्न मे कई पद कृष्ण की ब्रज-लीला के सम्बन्ध मे है। हिन्दी के मध्य युगीन कृष्ण-भक्तो की रचनाओ मे इस ग्रथ की पूरी छाया दीख पडती है। उदाहरण के लिए हम केवल तीन पद्य उद्धृत करते है—

(१) अज्जवि बालो दामोअरोत्ति इअ जम्पिए जमोआए।
कह्लमुहपेसिअच्छं णिहुअ हसिअ बअबहूहि ॥ २।१२

(२) णच्चणसलाहणणिहेण पासपरिसठिआ णिउणगोवी।
सरिसगोविआण चुम्बइ कवोल पडिमागअ कह्लम् ॥ २।१४

(३) जइ भमसि भमसु एमेश्र कह्न सोहग्गगव्विरो गोट्ठे ।
महिलाए दोमगुणे विचारइउ जइ खमो मि ।। ५।४७

(बम्बई निराय सागर सस्करण ।)

पहले पद मे, यशोदा, तथा व्रज-गोपियो के वात्सल्य का बडा सुन्दर चित्रण है । जब यशोदा कह रही थी कि दामोदर श्राज भी बालक है, तो व्रज गोपिया श्रोट मे होकर कृष्ण के मुख को देख देखकर हँस रही थी । दूसरे पद मे भी नाच की प्रशसा के लिये श्राई हुई किसी चतुर गोपी द्वारा कृष्ण के कपोलो का चुम्बन दिखाया गया है । तीसरे पद मे भी किसी गोपी की कृष्ण के प्रति एक व्यग्योक्ति है, जिसके द्वारा वह कृष्ण को कहती है कि, यदि तुम्हे भ्रमण करना ही है और यदि तुम स्त्रियो के गुण-दोषो का ठीक-ठीक विचार कर सकते हो, तो सौभाग्यगर्वित होकर इसी गोष्ठ मे विचरण करो ।

छठी सातवी शताब्दी के श्रनन्तर सस्कृत की श्रनेक रचनाश्रो मे राधा-कृष्ण की लीलाश्रो के उल्लेख मिलते है । भट्टनारायण ने 'वेणीसहार' के नान्दी श्लोक में राम रत राधा-कृष्ण की ही प्रार्थना की है —

"कालिन्द्या पुलिनेषु केलिकुपितामुत्सृज्य रासे रस
गच्छन्तीमनुगच्छतोऽश्रु कलुषा कसद्विषो राधिकाम् ।
तत्पादप्रतिमानिवेशित—पदस्योद्भूतरोमोद्गते—
रक्षुन्नो ऽनुनय प्रसन्नदयितादृष्टस्य पुष्णातु व ।।"

श्रानन्दवर्द्धन के 'ध्वन्यालोक' मे कृष्ण-लीला सम्बधी कई पद उद्धृत किये गये हैं, जिनमे गोपियो के विरह का बडा सुन्दर चित्रण हुश्रा है । सस्कृत कविता-सग्रह 'कवीन्द्र वचन समुच्चय' मे कृष्ण-लीला सम्बन्धी चार पद सगृहीत हैं । इस सग्रह का सकलन काल दशम शताब्दी माना गया है । 'सदुक्ति कर्णामृत' नामक सकलन का उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं । हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' मे भी कृष्ण-लीला सम्बन्धी कई पद उद्धृत किये गए हैं ।

इस प्रकार बारहवी शताब्दी तक रचित सस्कृत के श्रनेक ग्रथो मे कृष्ण-लीला का धार्मिक रूप मिलता है । जयदेव का 'गीत गोवि द' राधा-कृष्ण-लीला की विभिन्न परम्पराश्रो का एक विकसित रूप प्रस्तुत करता है । गीतगोवि द की रचना १२ वी शताब्दी की मानी जाती है । गीत गोविन्द की रचना लोक गीतो की शैली पर हुई है । इसीलिए कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि यह ग्रन्थ पहले किसी प्राकृत या देशी भाषा मे लिखा गया होगा । जयदेव लोक भाषा के श्रच्छे कवि रहे होगे, परन्तु उनकी कोई रचना, भाषा की, अब प्राप्त नही है । उनके नाम के दो पद 'गुरुग्रन्थ साहब' मे सगृहीत श्रवश्य हैं । गीतगोविन्द की भाषा तथा जयदेव का रचना-स्थल श्रभी भी गवेषणीय है । गीत-गोविन्द के दो छन्दो का रूपान्तर 'प्राकृत-पैगलम्' मे भी मिलता है । प्राकृत पैगलम् के इन दोनो पदो की भाषा का रूप निश्चित रूप से पश्चिमी श्रपभ्र श का उत्तरवर्ती रूप है । जयदेव के गीतगोवि द में कृष्ण लीला पर पूरी धार्मिक छाप लग गयी है । उ होने स्पष्ट लिखा है —

'राधा माधव योर्जयन्ति यमुना कूले रह केलय'—

लीलामय भगवान् कृष्ण का माधुर्य गीतगोविन्द का प्रतिपाद्य है। जयदेव के उत्तरवर्ती कवि चण्डीदास तथा विद्यापति मे इसी माधुय भाव की अभिव्यक्ति हुई है। गीतगोविन्द मे कृष्ण और राधा नायक और नायिका के तथा सखिया लीला-सहचरी के रूप मे प्रतिष्ठित हुई है। ऐसा लगता है कि जयदेव के समय मे सेन राजाओ के यहाँ वैष्णव कवियो का ही जमघट था। जयदेव के समकालीन प्राय सभी वैष्णव कवियो ने कृष्ण-लीला सम्ब धी पदो का रचना की थी।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि १२ वी शताब्दी तक सम्पूण भारतवर्ष के लोक-साहित्य तथा धार्मिक साहित्य मे प्रेम तथा सौन्दर्य तत्त्वो का पूण रूप स समावेश हो चुका था। शृ गार भक्ति का अभिन्न अग हो गया था। वैष्णव धम मे शृ गार की अभिव्यक्ति के लिए कृष्ण-लीलाओ से बढकर और कौन सा माध्यम मिल सकता था? लौकिक कथाओ को धार्मिक रूप दन की प्रथा उत्तर भारत मे छठी सातवी शताब्दी से ही चल रही थी। दसवी शताब्दो से तो इस प्रथा को इतना प्रश्रय मिला कि प्रत्येक कवि अपने आश्रयदाता का चरित्र लिखते समय उसे कुछ धार्मिक रूप देने का प्रयत्न करता था। कहा जाता है कि चन्द कवि ने भी 'दशावतार चरित' की रचना इसी दृष्टि से की थी। उत्तर भारत क पश्चिमी भाग मे बहुत काल तक शवमत का प्राबल्य रहा, परन्तु गाहडवालो के शासन-काल मे हिन्दी-क्षेत्र मे स्मात मत का भी बोल-बाला रहा था।

उत्तर भारत मे धम साधना का कोई व्यवस्थित रूप नही था। बगाल मे पालवश के उत्तराधिकारी सेनवश के राजाओ के सरक्षण मे वैदिक धम की वैष्णव शाखा पनप रही थी। कन्नौज के गाहडवाले भी स्मात धर्मानुयायी थे। अजमेर और कालिञ्जर मे भी स्मार्त्त धम की प्रबलता थी, पर तु उत्तरभारत मे–विशेषकर पश्चिमी भाग मे शैवमत का प्रभाव भी कम नही था। कुछ पहाडी प्रदेशो मे शाक्तमत का प्रचार था। धीरे-धीरे इस शाक्तमत का प्रभाव शैव तथा वैष्णव मतो पर पडने लगा था। उत्तर भारत के प्राचीन ध्वसावशेषो से पता चलता है कि उत्तर भारत मे उन दिनो यक्ष-पूजा का भी बडा महत्त्व था। इस यक्ष-पूजा-पद्धति ने बौद्धधम की बज्रयान शाखा को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। बज्र-पाणि यक्ष को तो बोधिसत्व का ही स्थान दिया गया है। कहना न होगा कि, बौद्धतत्रो तथा शवतत्रो पर यक्षो के तात्रिक धम का बहुत प्रभाव है। प्राय यक्ष साधना के विकृत रूप की प्रतिक्रिया से ही स्मार्त-धम की प्रतिष्ठा हुई थो। शकर के दिग्विजय से इस साधना को बडी ठेस पहुँची तथा उसका कुछ विकृत रूप भारत के पूर्वी प्रदेशो मे ही सुरक्षित रह सका। दक्षिण के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित भक्ति-सम्प्रदायो के प्रभाव से उत्तर भारत मे भी वैष्णव धम का निखरा हुआ रूप सामने आया। लीला पदो के माध्यम से प्रेम और सौन्दय की अभिव्यक्ति की बात हम पहले ही कह चुके हैं। ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी के दो प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र तथा जयदव उत्तरी भारत की पश्चिमी तथा पूर्वी प्रवृत्तियो के प्रतीक हैं। क्षेमेन्द्र काश्मीर के प्रसिद्ध कवि थे। उनके 'दशावतार-वर्णन' मे जो पद मिलते हैं, उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि, लीला-गान-पद्धति सम्पूण उत्तर भारत मे समान रूप स प्रचलित थी। हम यहा उदाहरण के लिए दशावतार वर्णन के दो पद उद्धृत करते है —

(१) गोविन्दस्य गतस्य कसनगरी
व्याप्ता वियोगाग्निना।

स्निग्धश्यामलकूललीनहरिणे

गोदावरी ह्वरे ।

रोमन्थस्थितगोगणे परिचयाद्य—

त्कर्णमाकर्णितम् ।

गुप्त गोकुलपल्लवे गुणगण

गोप्य सरागा जगु । (८–१७३)

(२) ललितविलासकलासुखखेलन—

ललनालोभनशोभनयौवन—

मानितनवमदने ।

अलिकुलकोकिलकुवलयकज्जल—

कालकलिन्दसुता विगलज्जल—

कालियकुलदमने ।

केशकिशोरमहासुरमारण—

दारुणगोकुलदुरितविदारण—

गोवधनधरणे ।

कस्य न नयनयुग रतिसज्जे—

मज्जति मनसिजतरलतरगे—

वररमणीरमणे ।

दशावतार वर्णन तथा गीतगोविन्द के तुलनात्मक अध्ययन से कई महत्वपूर्ण बातो पर प्रकाश पडता है। दोनो ही ग्रथ लोक गीतो की पद्धति का अनुसरण करते हैं तथा दोनो मे ही भक्ति के स्तर पर प्रेम तथा सौन्दय को महत्त्व दिया गया है। एक विशेष बात उल्लेखनीय यह भी है कि दोनो ही ग्रथो मे राधा को उचित स्थान दिया गया है। ऐसा लगता है कि उत्तर भारत मे कृष्ण के साथ राधा का सयोग बहुत पहले से हो चुका था। सस्कृत के ग्रथो से उद्धरण देते हुए हमने इस तथ्य का पीछे स्पष्ट भी किया है। डॉ० शशिभूषणदास गुप्त ने अपने 'श्रीराधा का क्रम विकास' शीषक शोध प्रबध मे इस विषय पर अनेक उद्धरण प्रस्तुत किये है।

'दशावतारवर्णन' तथा 'गीतगोविन्द' दोनो ही ग्रन्थो मे राधा का शृगारिक रूप चित्रित हुआ है। क्षेमेन्द्र के निम्नलिखित श्लोक को देखिए—

गच्छन् गोकुलगूढकुञ्जगहनान्यालोकयन् केशव ।

सोत्कण्ठ वनितानतो वनभुवा सख्येव रुद्धाञ्चल ।

राधाया न न नेति नीविहरणे वैक्लव्यलक्ष्याक्षरा ।

सस्मार स्मरसाध्वसाद्भुततनोरर्द्धोक्तिरिक्तागिर ।।

इसी प्रकार पृथ्वीराज रासो के 'दसम्' में भी हमे राधा का चित्रण इसी रूप मे मिलता है।

बारहवी शताब्दी तक के साहित्य का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत मे प्रेम और शृ गार के माध्यम से भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति होने लगी थी तथा लौकिक प्रेम और शृ गार अलौकिक प्रेम और शृ गार का रूप धारण कर रहे थे। हिन्दी साहित्य का यह शैशव-काल था। सामान्य रूप से हि दी के विद्वानो ने इस काल को आदि काल की सज्ञा दी है। वास्तव मे इस काल को हम सक्रान्ति काल कह सकते है। अपभ्र श की प्रवृत्तिया लोकभाषाओ मे प्रवेश कर रही थी तथा भाषा का स्वरूप भी बदल रहा था। धार्मिक प्रवृत्तियो का साहित्य हि दी को दायरूप मे मिला परन्तु उसे पचाने मे हिन्दी को कुछ समय लगा। सक्रान्ति काल मे निर्गुणपरक नाथ-साहित्य का प्राधा य था। इसलिए आदिकाल के ठीक बाद हमे हिन्दी मे निर्गुण साहित्य की ही प्रधानता मिलती है जिसे हिन्दी मे सन्त साहित्य से अभिहित किया गया है। भाषा की दृष्टि से शौरसेनी की उत्तराधिकारिणीब्रज-भाषा रही तथा उमे ही साहित्यिक-भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। खडी बोली का कोई निखरा हुआ रूप सामने नही था। सामा यतया खडी बोली को मुसलमान सूफी फकीरो ने ही अपनाया था। नाथो और सन्तो की भाषा का रूप तो मिश्रित ही रहा। भारतीय सस्कृति के पोषक कवियो ने खडी बोली को नही अपनाया। यद्यपि प्रचार की दृष्टि से खडी बोली का ही महत्व अधिक था तथा वह जन-साधारण के अधिक निकट थी परन्तु दो विभिन्न सस्कृतियो के द्व द्व के कारण खडी बोली पर धार्मिकता की छाप न लग सकी। यही कारण है कि उस काल का धार्मिक साहित्य हमे खडी बोली मे प्राप्त नही होता है। सूफी तथा सन्त वैष्णव परम्परा के कवि नही थे। वे जन-साधारण से अपना सम्पक स्थापित करना चाहते थे। इसीलिये इन दोनो ही श्रेणियो के कवियो की भाषा खडी बोली के अधिक निकट है। उत्तर भारत के पूर्वी भाग मे यह द्वन्द्व इतने खुले रूप मे नही था। इसलिये अवधी मे हमे सूफी साहित्य भी प्राप्त होता है तथा वैष्णव-साहित्य भी। मैथिली मे तो आगे चल कर विद्यापति ने प्रेम और शृ गार का चित्रण परम्परा के अनुसार किया ही है। विद्यापति को हम भाषा का प्रथम कवि कह सकते है जिसने प्रेम और शृ गार को अपने काव्य का उपजीव्य बनाया है। विद्यापति का काल चौदहवी शती के उत्तरार्द्ध से पन्द्रहवी शती के पूर्वार्द्ध के मध्य तक माना जाता है। विद्यापति को हम सक्रमण काल का प्रतिनिधि कवि कह सकते है। यहा से हमे प्रेम और शृ गार की दो स्पष्ट धाराएँ प्राप्त होती है—१—सन्तो तथा सूफियो की धारा, २—वैष्णव कवियो की धारा। श्रीमद्भागवत साक्षात् रूप से वैष्णव कवियो का ही प्रेरणा स्रोत रहा है। सन्तो तथा सूफियो के प्रेम निरूपण मे तो प्रेम तत्व के वायवी तथा अद्वय रूप को ही प्रधानता मिली है। सूफियो ने प्रेम को अवश्य रूप देने का प्रयास किया है परन्तु उसमे विदेशीपन की गन्ध ही अधिक आती है। वैष्णव कवियो की रचनाओ में चाहे किसी भी परम्परा को अपनाया गया हो, भागवत महापुराण उनका किसी न किसी रूप मे उपजीव्य अवश्य रहा है। स्वय विद्यापति ने १४२८ ई० मे भागवत की एक प्रति लिखी थी।

१४ वी शताब्दी से हिन्दी साहित्य की दो धाराएँ स्पष्ट रूप से दिखलाई देती है—एक निगु ण भक्ति काव्य की तथा दूसरी सगुण भक्ति काव्य की। निर्गुण भक्ति-काव्य सामान्य रूप से वेदान्त परक है तथा सगुण भक्ति काव्य के मूल मे अवतार भावना है। दोनो ही धाराओ पर हमे भागवत का प्रभाव स्पष्ट दीख पडता है। निगु ण सन्तो की वाणी का

आधार बौद्ध सिद्धो तथा नाथ पन्थी योगियो के पद है। इन निगु ण वाणियो के तत्व वे ही है, जिन्हे हमने भागवत के सामा य तत्वो के नाम से अभिहित किया है। तत्वो क प्रतिपादन की शैली मे भेद अवश्य है। निगु ण सन्तो की प्रेम-साधना, जैसा कि डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है, निम्न लिखित आकारो मे प्रकट हुई है—

१—भगवानु को अ तर मे ही रखना चाहिए, बाहर प्रदशन करने पर वह दिखाने की चीज हो जाता है।

२—इस रस को जिसने पाया है, वही जला है।

३—इस प्रेम-लीला मे भक्त के समान ही भगवान् भी उत्सुक है।

४—जिसने प्रेम के क्षेत्र में भगवान् का योग पाया है वही वास्तव मे योगी है।

५—इस प्रेम की ज्वाला मे जलकर ही भगवान् ने अनाहत सगोत की तरह इस सुन्दर सृष्टि की रचना की है।

६—पवन, जल, आकाश, धरती, सूय,चन्द्र ये सभी भगवान् के प्रेम के रूप है। इत्यादि।"

निर्गु ण सन्तो ने निगु ण भगवान् को प्राप्त करने का एकमात्र साधन प्रेम बताया है इसलिए उनका काव्य स्वत ही सौन्दय से सम्बन्धित हो गया है। इस प्रेम का सौदय ससीम की असीम को पाने का आकुलता मे हा है। डा० द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है "कबीरदास, दादूदयाल आदि निगु ण-मतवादियो का नित्य- लीला और सूरदास, नन्ददास आदि सगुणमतवादियो की नित्य लीला एक हो जाति की है। अन्तर यही है कि पहला श्रेणी के भक्तो के सामने भगवानु के व्यक्तिगत सम्बन्धात्मक रूप के साथ उसकी रूपातीत अनन्तता वतमान रहती हे और दूसरी श्रेणी के भक्तो के सामन भगवान् सदा प्रतीकरूप मे आते है और इसीलिए उनकी अनन्तता और असीमता ओझल सी हुई रहतो है।"[१]

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर निगु ण और सगुण भक्तो की मूल-भावना मे कोई विशेष अन्तर नही है केवल साधना पद्धति का ही भेद है। प्रेम के माध्यम से भगवानु की प्राप्ति दोनो का ध्येय है। भगवान् की नित्य लीला मे भी दोनो प्रकार के भक्त विश्वास करते है। हा, नित्य-लीला के रूप मे भेद अवश्य है। निगु ण भक्तो ने नामात्मक ब्रह्म को परम ध्येय माना है तथा उन्होने अपने ब्रह्म को कृष्ण, मुरारी, गोविन्द आदि नामो स अभिहित किया है। ब्रह्म नाम मे प्रीति का निदशन करते हुए नामदेव जी कहते है कि—

"कामी पुरुष कामिनी पियारी, ऐसी नामे प्रीति मुरारी'।

एक स्थान पर नामदेव जी अपने ब्रह्म को 'माधव' की सज्ञा देकर कहते है—

'बदहु किन होड माधव मोसिउ
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर खेल परिउ है तो सिउ।'

१ हिन्दी साहित्य की भूमिका, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९५६, पृ० ९७–९८।

कबीर, रैदास तथा दादू के पदो मे भी इसी प्रकार प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। कहना न होगा कि, सूरदास तथा गोस्वामी तुलसीदास के विनय के अधिकांश पद इसी परम्परा के है। भागवत के जिन दार्शनिक सिद्धान्तो का विवेचन हमने पीछे किया है, उनकी सगति निर्गुण कवियो के भक्ति साहित्य मे ठीक बठ जाती है। साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से इस युग के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य मे कृष्ण भक्ति की चर्चा मौजूद है। ऐसा लगता है कि १४ वी शताब्दी के अन्त तक उत्तर भारत मे भी भागवत महापुराण आर्ष-ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुका था। ब्रज-भाषा के कवियो ने इस महापुराण की प्रतिष्ठा मे चार चाँद लगा दिये। कृष्णभक्ति, भागवत तथा ब्रज-भाषा एक दूसरे से इतने सटे हुए है कि इनमे से किसी एक को अलग करके नही देखा जा सकता। वैष्णव कवियो के अतिरिक्त जैन कवियो का वर्ण्य-विषय भी कृष्ण-कथा रहा है। अपभ्रंश के जैन कवियो की रचनाओ के उद्धरण हम पीछे प्रस्तुत कर चुके है। ब्रजभाषा मे भी जैन कवियो ने कृष्ण-कथा के आधार पर काव्य रचना की है। ब्रज भाषा की सबसे पहली प्राप्त रचना जैन कवि अग्रवाल रचित 'प्रद्युम्न चरित' है जिसका निर्माण विक्रमी सवत् १४११ अर्थात् सन् १३५४ ई० माना गया है।[1] ग्रन्थकार ने बडे विस्तार से प्रद्युम्न को नायक मानकर उत्तरवर्ती कृष्ण-चरित का वर्णन किया है। घटना स्थल द्वारकापुरी है। यद्यपि कथा का सार भागवतानुसारी है पर कवि ने अपनी कल्पना से कथा मे अनेक मोड दे दिए हैं। अन्त मे प्रद्युम्न को जिनेन्द्र से दीक्षा दिलाई है। प्रद्युम्न चरित, के उल्लेख मे हमारा अभिप्राय यह दिखाना है कि ब्रज-भाषा साहित्य का प्रारम्भ ही भक्ति-भावना से हुआ तथा उसका आधार श्री मद्भागवत महापुराण रहा है। निम्बार्क सम्प्रदाय के हिन्दी कवियो का समय १४ वी शताब्दी माना गया है परन्तु यह मान्यता अभी विवादास्पद है। इस सम्प्रदाय के सर्व प्रथम हिन्दी के कवि श्री भट्ट माने जाते हैं जो केशव कश्मीरी के अतरग शिष्य थे। श्री भट्ट रचित 'जुगलसतक' के रचना-द्योतक दोहे मे पाठ भेद के कारण श्री भट्ट का समय गडबडी में पड गया है। दोहा इस प्रकार है —

नैन बान पुनि राम ससि, गिनो अकगति बाम।
जुगल सतक पूरन भयो सबत् अति अभिराम।।

इस दोहे के सम्बन्ध मे सर्च रिपोर्ट के निरीक्षक की टिप्पणी इस प्रकार है, —

"लिपि की एक मामूली गलती से यह उलझन पैदा हो गयी। पहिली पक्ति मे 'राग' के स्थान पर 'राम' लिखा गया। 'राग' की सख्या छ होती है। इस तरह १६५२ सम्वत् बदलकर १३५२ हो गया। यह तिथि १९०६-८ की रिपोर्ट मे दी हुई है, यही तिथि है जब श्री भट्ट उत्पन्न हुए[2]। निरीक्षक ने यह बात बताने की कोई जरूरत नही समझी कि राग का राम क्यो और कैसे हुआ। केवल ग और म का सादृश्य ही इस गलती का कारण माना जाये या कोई और कारण भी है। सर्च रिपोर्ट १९०६—८ के निरीक्षक डा० श्यामसुन्दरदास ने इस कवि के विषय मे कुछ विशेष नही लिखा। विवरण मे इतना दिया हुआ है श्री भट्ट (यफ आई १५४४ ए० डी०) युगल शतक की तीन प्रतियाँ मिलती हैं जिनका समय क्रमश १८७१, १७८६ और १८२० ईस्वी है।[3]

१ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृ० १४३
२ सर्च रिपोर्ट, १९२३—२५, पृ० १३२
३ सर्च रिपोर्ट, १९०६—८, पृ० ८८
{ सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, पृ० २०२ से उद्धृत।

निम्बार्क सम्प्रदाय के भागवत से प्रभावित होने वाले भक्त कवियो की चर्चा हम आगे करेंगे। श्री भट्ट का समय चाहे १४ वी शताब्दी हो, या १६ वी शताब्दी, यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि १४ वी शताब्दी के आसपास जो ब्रजभाषा का भक्ति साहित्य था उसमे कृष्ण-लीलाओ का विकसित रूप प्राप्त होता है। बात यह है कि चौदहवी शताब्दी से पहले उत्तरभारत मे गेय रासको की परम्परा थी। ब्रज भाषा मे वह परम्परा लीला-काव्य के रूप में परिवर्तित हो गयी। बैष्णव धर्म के आचार्यों के प्रभाव से ब्रज-प्रदेश से लेकर बगाल तथा आसाम तक कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ। प्राकृत-पैंगलम् मे सगृहीत कई पद्य इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि कृष्ण की रास-लीला का प्रचार उत्तर भारत मे धीरे-धीरे बढ रहा था। १४ वी शताब्दी मे ब्रजभाषा मे रचित कृष्ण-लीला की सामग्री अभी पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त नही हो सकी है, परन्तु इसमें सन्देह नही कि इस विषय पर ब्रज-भाषा मे पर्याप्त साहित्य लिखा गया। सूर-सागर की आलोचना करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह ठीक ही सकेत किया है कि सूर-सागर किसी चली आती हुई परम्परा का उत्कृष्ट रूप है। सूरदास से लगभग ५० वर्ष पूव विष्णुदास नाम के एक कवि की ऐसी रचना प्राप्त होती है, जिसमे कृष्ण-भक्ति के माधुर्य का सुन्दर रूप प्राप्त होता है। खोज-रिपोर्ट मे विष्णुदास को १४३५ ई० का कवि माना गया है। विष्णुदास की कई रचनाओ का पता चला है जिनमे महाभारत कथा, स्वर्गारोहण रुक्मिणी-मगल और सनेह-लीला विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। रुक्मिणी-मगल और सनेह-लीला भागवतानुसारी रचनाएँ हैं। हम यहाँ रुक्मिणी-मगल का एक पद उद्धृत करते हैं —

"महलन मोहन करत विलास।
कहाँ मोहन कहाँ रमन रानी और कोउ नही पास।
रुकमन चरन सिरावत पिय के पूजी मन की आस ॥
जो चाहे थिसो अब पायो हरि पति देवकी सास।
तुम विनु और कौन थो मेरो धरत पताल अकाश ॥
पल सुमिरन करत तिहारो ससि पूस परगास ॥
घट घट व्यापक अन्तर्यामी सब सुखरासी।
विष्णुदास रुकमन अपनाई जनम जनम की दासी ॥

यह पद भागवत की द्वारका-लीला के ठीक अनुरूप है। यदि विष्णुदास जो का काल १४३५ ईस्वी स्वीकार कर लिया जाय यो यह सिद्ध हो जाता है कि वल्लभाचार्य जी से लगभग १०० वर्ष पहले ब्रजभाषा मे भागवतानुसारी कृष्ण-भक्ति-साहित्य लिखा जाने लगा था। विशुदास की 'सनेह लीला' भी एक महत्वपूर्ण रचना है। इस रचना को हम भ्रमर-गीत का पूर्व रूप कह सकते हैं। रचना मे सगुण की विजय ही दिखाई गयी है। भागवत के निर्गुण-तत्व की प्रधानता का सकेत इस रचना मे नही है। ऐसा लगता है कि मध्ययुगीन भक्त कवियो ने भगवान् के सगुण रूप का प्रतपादन करने के लिए भागवत की कथा मे थोडा हेर-फेर कर लिया था, क्योकि सगुण मत का प्रतिपादन और प्रतिष्ठा निर्गुनियों के विरोध मे ही की गई थी। विष्णुदास सगुण के प्रतिपादन मे आगे के कवियो से भी एक कदम

आगे है। गोपियो के सम्मुख निरुत्तर होकर जब उद्धव जी मथुरा लौटते है तो अपनी व्यथा और गोपियो की दशा कृष्ण को सुनाते है —

तब ऊधो आये यहा श्री कृष्णचन्द के धाम ।
पाय लागि बन्दन कियो बोलत लेले राम ।।
ग्वाल बाल सब गोपिका ब्रज के जीव अनन्थ ।
तुम ही पाय लागन कहो सुनो देव ब्रह्म य ।।
नन्द जसोदा हेत की कहिये कहा बनाय ।
वै जाने कै तुम भले मो पै कह्यौ न जाय ।।
वे चित टारत नही स्याम राम की जोर ।
मध नामक पुरती ग्रहै मूरति मधुर किशोर ।।
अस गोपिन के प्रेम की महिमा कछू अनन्त ।
मै पूछी षट् मास लो तऊ न पायी अन्त ।
देह गेह सब छाणि के करत रूप को ध्यान ।
वन को भजन विचारिये सो सब फीको मान ।।
सन्त भक्ति भूतल विषै वे सब ब्रज की नार ।
चरण सरण रही सदा मिथ्या लोग विसार ।।
उनके गुण नित गाइये करि-करि उत्तम प्रीति
मैं नाहिंन देखू कहुँ ब्रज वासिन की रीत ॥
तब हरि ऊधो सो कह्यो हूँ जानत सब अग ।
हौ कहूँ छाड्यो नही ब्रज बासिन्ह को सग ।।
ब्रज तजि अनत न जायहो मेरे तो या टेक ।
भूतल भार उतारहो धरि हो रूप अनेक ।।

विष्णुदास किस सम्प्रदाय मे दीक्षित थे ? नही कहा जा सकना । उनके बारे मे केवल इतना ही मालूम हो सका है कि वे गोपाचलगढ या ग्वालियर के रहने वाले थे तथा वहाँ के राजा डूँमरेन्द्रसिह के राज्य-काल मे वर्त्तमान थे। डूमरेन्द्रसिह सन् १४२४ ई० मे ग्वालियर के राजा हुए थे।

सामान्य रूप से हिन्दी के विद्वानो की यह धारणा है कि उत्तर भारत मे—विशेषत ब्रज प्रदेश मे कृष्ण-भक्ति-साहित्य के निर्माण का श्रेय वैष्णव सम्प्रदायो के कवियो को ही है। यह धारणा ठीक नही प्रतीत होती क्योकि, सम्प्रदाय मे दीक्षित भक्तो के अतिरिक्त अन्य कवियो ने भी ब्रज भाषा मे भक्ति साहित्य की रचना की थी। उस साहित्य के उपलब्ध न होनें के कारण विद्वानो की ऐसी धारणा बन गयी है। उस परम्परा को जो भी साहित्य उपलब्ध हुआ है, सम्प्रदाय निष्ठ कवियो का वह ही प्रेरणा-स्रोत प्रतीत होता है। आगे के साहित्य

मे भागवत की लीला परम्पराओ को इतना प्रश्रय नही मिला है, जितना इस साहित्य की लीला-पद्धति को। पीछे सस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्र श की रचनाओ से हमने जो कृष्ण-लीला परक पद उद्धृत किये है, उन सबको अपनी एक परम्परा है, जिसम राधा का उचित स्थान है। ब्रज भाषा के पूववर्त्ती कवियो मे भी इमी परम्परा का रूप हमे प्राप्त होता है।

जब हम भागवतानुमारी साहित्य की बात कहते है तो उमका अभिप्राय यह नही कि भागवत का अनुसरण करने वाले कवियो ने अपनी रचनाओ मे ज्यो का त्यो भागवत का अनुवाद कर दिया है, उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि भागवत के प्रभाव से कृष्ण-लीला को एक विशेष दिशा प्राप्त हुई तथा भागवतोक्त सामान्य तत्वो का वैष्णव भक्ति-भावना मे समावेश हुआ। भागवत को आषग्र थ के रूप मे स्वीकार किया गया तथा जिस प्रकार वैदिक धम की विभिन्न शाखाओ मे वेदोक्त तत्वो का अनुसरण किया जाता है, उसी प्रकार भागवत धम के तृतीय उत्थान मे भागवत का अनुसरण किया गया।

विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायो मे भागवत की मान्यता का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। अब हम उन सम्प्रदायो के कुछ ऐसे भक्त कवियो की चर्चा करेगे जिनकी रचनाओ का प्राण-तत्व भागवत महापुराण है। आचाय प्रवर्तित सम्प्रदायो मे निम्बाक सम्प्रदाय सबसे पहला सम्प्रदाय है, जिमने ब्रजभूमि को अपना अड्डा बनाया था। निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्य केशव काश्मीरी अलाउद्दीन खिलजी के समकालीन थे। उनकी किसी हिन्दी रचना का पता नही चलता, परन्तु उनके शिष्य श्रीभट्ट जी का ब्रजभाषा का 'जुगल-सतक' प्राप्त है। जुगल सतक के रचना काल के सम्ब ध मे हम पहले लिख चुके है। श्रीभट्ट जी भगवान् कृष्ण के माधुर्य भाव के उपासक थे और नित्य बिहारी श्री राधा-माधव की दिव्य-लीलाओ के आनन्द मे विभोर रहते थे। जैसा कि उन्होने स्वय लिखा है —

"सेव्य हमारे श्रीप्रिय प्यारे वृन्दाविपिन विलासी।
नदनँदन वृषभानु-नदिनी-चरन अनन्य उपासी ॥
मत्त प्रनय बस सदा एक रस विविध निकु ज निवासी।
श्रीभट जुगल रूप वशीवट सेवत सब सुखराशी ॥

कुछ विद्वान् कृष्ण भक्ति-साहित्य मे राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासना का रूप देखकर यह कल्पना कर लेते हैं कि यह साहित्य भागवतानुमारी नही हो सकता क्योकि श्रीमद्भागवत मे राधा के सम्बन्ध मे स्पष्ट उक्ति नही है परन्तु यह तक मध्ययुगीन कृष्ण-भक्ति साहित्य के सन्दभ मे उचित प्रतीत नही होता क्योकि मध्ययुग के लगभग सभी आचार्यो ने अपनी भक्ति भावना का उपजीव्य श्रीमद्भागवत महापुराण को स्वीकार किया है। भक्ति के स्वरूप तथा साहित्य-सजना मे साहित्यिक तथा धार्मिक परम्पराओ को उचित स्थान दिया गया है। साथ ही सम्पूण साहित्य मे भक्त कवियो के हृदय के उद्‌गारो तथा उवरा कल्पना का भी पूरा योगदान है। वृन्दावन के सम्प्रदायो मे निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे पहला सम्प्रदाय है जिस की उपासना-पद्धति मे राधा को इतना अधिक महत्व मिला है। श्रीभट्ट जी ने एक पद मे स्पष्ट लिखा है —

जुगल किशोर हमारे ठाकुर ।
सदा सवदा हम जिनके हैं जनम जनम घर जाये चाकर ॥
चूक परै परिहरै न कबहूँ सबही भाँति दया के आकर ।
जै श्रीभट्ट प्रगट त्रिभुवन मे प्रनतनि पोषत परम सुधाकर ॥

श्रीभट्ट परम भागवत थे तथा सुनते है कि उन्होने अपने चमचक्षुओ से वर्षा मे भीगते हुए राधा-कृष्ण के युगल स्वरूप के दशन किए थे। उनके सम्बन्ध मे नाभादास जी ने अपने भक्तमाल मे ठीक ही लिखा है —

मधुर-भाव सवलित ललित लीला सुबलित छवि ।
निरषत हरषत हृदय प्रेम बरषत सुकलित कवि ॥
भव निस्तारन हेत देत दृढ भक्ति सबनि नित ।
जासु सुजसु ससि उदै हरत अति तम भ्रम सुभचित ॥
आनद कद श्रीनद सुत श्री बृषभानुसुता-भजन ॥
श्रीभट्ट सुभट प्रगट्यो अघट रस रसिकन मन-मोद-घन ॥

जुगलसतक मे रूप-माधुरी, वेणु-माधुरी, व्रज महात्म्य आदि का बडा सुन्दर निरूपण हुआ है ।

श्रीभट्ट जी के अन्तरग शिष्य श्री हरिव्यास देवाचाय थे जो निम्बाक सम्प्रदाय के प्रमुख आचाय माने जाते हैं। इनकी उपाधि परमहस वशाचार्य थी तथा इनका कविता का नाम हरिप्रिया था। अपने गुरु की आज्ञा से इन्होने जुगलसतक पर भाष्य लिखा जो "महाबानी पञ्चरत्न' के नाम से प्रसिद्ध है। हरिव्यास जी सबसे पहले उत्तर भारत के सम्प्रदायाचार्य माने जाते हैं। निम्बाक सम्प्रदाय के अन्तगत इन्होने रसिक-सम्प्रदाय नाम की शाखा का प्रवर्त्तन किया। श्रीकृष्ण के रसिक रूप की उपासना का श्रेय इसी सम्प्रदाय को है। हरिव्यास जी ने कई ग्रन्थो की रचना की तथा इनके १२ शिष्यो ने बारह द्वारे अथवा शाखाओ को चलाया। हरिव्यास जी का समय १६०० वि० माना जाता है। उनकी हिन्दी की रचना एक मात्र 'महाबाणी, ही उपलब्ध है जिसमें राधा कृष्ण की नित्य विहार लीला का बडा मार्मिक बणन हुआ है। 'महाबाणी' के पाँच सुख वा रत्न है—१-सेवा, २-उत्सव, ३-सुरत, ४-सहज तथा ५—सिद्धान्त। राधा-कृष्ण के मधुर-भाव की उपासना का इतने विस्तार से प्रतिपादन सबसे प्रथम इसी ग्रन्थ मे हुआ है। जो स्थान पुष्टि सम्प्रदाय मे सूरदास जी का है वही स्थान निम्बाक सम्प्रदाय मे हरिव्यास जी का है। कृष्ण-भक्ति साहित्य की श्री वृद्धि मे हरिव्यास जी का महत्वपूर्ण योगदान है। प्रेम और श्रृगार का जैसा समुज्ज्वल रूप इनकी रचनाओ मे मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। वास्तव मे हरिव्यास जी मे हमे भागवतकार की तन्मयता यथा अद्वैतता का अलौकिक तथा हृदयग्राही स्वरूप प्राप्त होता है। एक ओर तो अपने पूज्य आचार्य श्रीभट्ट जी के 'जुगल सतक' के पदो की व्याख्या तथा भाष्य प्रस्तुत करते हैं तथा साथ ही भक्ति के गुह्यतत्वो का समावेश अपने विश्लेषण मे करते हैं। कला की दृष्टि से भी उनकी रचना काव्यत्व का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उनके मधुर-भाव का एक नमूना देखिए —

विलसौ दोउ लाल मेरे हिय सदन सुखसेन ।
सुरत रसलीन अग अग नागर नवल
कमल की माल लहलही डहडहे तने।
मुकुट की लटक अरविंद पद परसिनी
सरसनी समर अद्भुत सु आनन्द घने।
श्री हरि प्रिया' ललित उरसो मिली झिलमिली।
दिलमिली दीपति दुति जोर जोवन जने ॥

इसी प्रकार राधा-कृष्ण का अद्वैतता का भी उन्होने स्थान-स्थान पर वर्णन किया है —

सदा सर्वदा जुगल इक, एक जुगल तन धाम ।
आनद अरु अहलादमिलि, विलसत द्वै द्वै नाम ॥
एक स्वरूप सदा द्वै नाम।
आनद के अहलादिनि स्यामा, अहलादिनिहके आनद स्याम,
सदा सर्वदा जुगल एक तन एक जुगल तन विलसन धाम ।
'श्री हरिप्रिया' निरन्तर नितप्रति काम रूप अद्भुत अभिराम ॥

हम पहले कह चुके हैं कि श्री हरिव्यास जी निम्बार्क सम्प्रदायान्तर्गत 'रसिक शाखा के प्रवत्तक थे। इस शाखा का मूल तत्त्व हो मधुर-भाव है। परवर्ती सम्प्रदायो मे राधा-कृष्ण की रसिकता तथा मधुर-भाव को लेकर अनेक प्रकार से विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पुष्टि-सम्प्रदाय के उपास्य रसिकेश्वर श्री कृष्ण हैं तथा चैतन्य सम्प्रदाय मे रस रूपा राधा रसिकेश्वर श्री कृष्ण की अह्लादिनी शक्ति के रूप में चित्रित हुई हैं। हरिव्यास जी ने राधा के रसात्मक रूप-वर्णन मे अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनका एक पद देखिए —

जयति जय राधिका रसिक रस मजरी,
रसिक सिरमौर मोहन विराजै ।
रसिकिनी रहसि रसधाम वृन्दाविपिन,
रसिक रस रसी सहचरि समाजै ॥
रसिक-रस-प्रेम सिंगार रँग रँगि रहे,
रूप आगार सुख सार साजै ।
मधुर माधुय सौंदर्यता वय पर,
कोटि ऐश्वर्य की कला लाजै ॥
चातिकी कृष्ण की स्वाति की वारिदा
वारिधा रूप-गुन गर्विता जै ।

मदन-मद मोचिनी रति कला
रतन मनि कु डला जगमगा जै ।।

निम्बार्क सम्प्रदाय के तीसरे प्रतिभाशाली हिन्दी-कवि परशुरामाचाय हुए। हरिव्यास जी के १२ शिष्यो मे ये सबसे अधिक प्रतिभाशाली थे। परशुराम जी ने निगु ण तथा सगुण भक्ति का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। बात यह है कि उनका काय क्षेत्र राजस्थान था जो नाथ सम्प्रदाय तथा निर्गुनियो का अड्डा था। साथ ही मुसलमान सूफी फकीरो का भी राजस्थान मे प्रभाव था। पुष्कर क्षेत्र मे परशुराम जी की समाधि है जिम पर एक शिला-लेख भी है। शिलालेख का समय १६३२ ई० है। इस प्रकार परशुराम जी गोस्वामी तुलसीदास तथा महात्मा सूरदास के समकालीन ठहरते है। परशुराम जी की रचनाओ का सग्रह परशुराम सागर' के नाम से विख्यात है। इनके कई लीला ग्रन्थ है जिनमे लीला के दार्शनिक पक्ष को परशुराम जी ने भाति-भाति से समझाया है। 'हरिलीला नाम' की रचना मे लीला का दाशनिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। कई ग्रन्थो मे श्री मद्भागधत के सामान्य तत्वो का विवेचन किया गया है इनकी रचनाओ से कबीर का समन्वयवाद, सूर की प्रेम लक्षणा भक्ति तथा तुलसी का लोक धम सभी को उचित स्थान मिला है। इनके अनेक पद विनय भाव से पूण है। खेद है कि हिन्दी के पाठको मे इनकी रचनाओ का उचित प्रचार तथा प्रसार नही हो सका है। हम यहाँ इनके ग्रन्थो से केवल दो उद्धरण प्रस्तुत करते हैं। नागरी प्रचारिणी पत्रिका वष ४५ अङ्क ४ मे इनकी रचनाओ के कई नमूने प्रस्तुत किये गये हैं।
समन्वय वाद की रचना—

भाई रे का हिन्दू का मुसलमान जो राम रहीम न जाणा रे।
हारि गए नर जनम बादि जो हरि हिरदै न समाणा रे।।
जठरा अगिनि जरत जिनि राष्यो गरभ सकट गवाणा रे।
तिहि और तिन तज्यो न तोकू तै काँहे सु भुलाणारे।।

विनय के पद का नमूना देखिये —

गोबि द मै बन्दीजन तेरा ।
प्रात समै उठि मोहन गाऊँ तौ मन मानै मेरा।
कतम करम भरम कुल करिणी ताकी नाहि न आसा।
करूँ पुकार द्वार सिर नाऊँ गाऊँ ब्रह्म विधाता।
'परसराम, जन करत बीनती सुणि प्रभु अविगत नाथा।।

परशुराम जी के पश्चात् निम्बाक सम्प्रदाय मे अनेक हिन्दी के कवि हुए। इन कवियो का भक्ति-काव्य हिन्दी साहित्य मे बडा महत्वपूण है। राधा कृष्ण की ललित लीलाओ का जैसा सुन्दर बणन इन कवियो ने किया है, वैसा अन्यत्र दुलभ है। राधाकृष्ण की अष्टयाम सेवा से सम्बन्ध रखने वाले पद भी वडे महत्त्वपूण है। हिन्दी के रीति-काल मे भी निम्बार्क-सम्प्रदाय के अनेक कवियो ने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। महाकवि केशवदास बिहारीलाल, घनानद रसिकगोविन्द, रसखान, रूपरसिकदेव जी, गोविन्ददेव जी, वृन्दावनदेव

जी नागरीदास जी तथा शीतलदास जी आदि अनेक कवियो ने निम्बाक सम्प्रदाय मे दीक्षित होकर सम्प्रदाय की साधना-पद्धति का हिन्दी भाषा के माध्यम से अभिव्यञ्जन किया है। निम्बाक-सम्प्रदाय के कवियो के सम्बन्ध मे ब्रह्मचारी बिहारीशरण जी की 'निम्बाक-माधुरी' दशनीय है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत मे कृष्ण तथा गोपियो का आत्मा-आत्मीय भाव माना गया है, उसी प्रकार निम्बाक-सम्प्रदाय मे भी राधा और कृष्ण का अभिना भाव-सम्बन्ध माना गया है। निम्बाक-सम्प्रदाय के साधको का किसी विशेष भाव के लिए आग्रह नही है। भक्ति के लिए दास्य, सख्य अथवा माधुय कोई भी भाव हो सकता है। माधुयभाव के साथ इन भक्तो ने वात्सल्य भाव को भी उचित स्थान दिया है। सम्प्रदाय मे प्रधानता प्रेम लक्षणा पराभक्ति की ही है। चित्त वृत्ति का परिष्कार होने पर भाव की विशेषता का महत्त्व नही रहता। इस प्रकार निम्बार्क-सम्प्रदाय के भक्तो की दृष्टि भागवत के मूल तत्वो पर ही अधिक रही है।

हम पीछे कह चुके है कि सखी सम्प्रदाय निम्बाक सम्प्रदाय की ही एक अवान्तर शाखा है। इस शाखा के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदास जी थे। स्वामी हरिदास जी निबाक सम्प्रदाय मे ही दीक्षित थे तथा मधुरोपासना के ही पोषक थे परन्तु इन्होने युगल उपासना के स्थान पर गोपी भाव को भगवत्प्राप्ति का उत्तम साधन स्वीकार किया। प्राय सन्त, महात्मा इस सम्प्रदाय के पोषक रहे जिन्होने अपनी अमूल्य रचनाओ से हिन्दी-साहित्य के भाडार को पूण किया है। स्वामी हरिदास जी की जन्मतिथि के सम्बन्ध मे मतभेद है। इनका जन्म स० १५४१ तथा १५८५ वि० के बीच माना जाता है। वृन्दावन मे मानसरोवर के पीछे निधुवन इनका साधना-स्थल था। वही इन्हे बाँकेबिहारी जी की मूर्त्ति मिली थी। इन्होने वृन्दावन मे 'टट्टी सस्थान' की स्थापना की। साम्प्रदायिक सिद्धान्तो के झमेले मे ये महात्मा नही पडे। हरिदास जी सबसे बडा योग-दान कृष्ण-भक्ति साहित्य मे सगीत का समावेश है। नाभादास जी ने भक्तमाल में इनके विषय ठीक ही लिखा है —

आसधीर उद्योत कर 'रसिक' छाप हरिदास की।
जुगल नाम सौं नेम, जपत नित कुंज बिहारी।
अवलोकत रहे केलि सुखी सुख को अधिकारी।
गान कला-गन्धर्व स्यामै-स्यामा कौं तोषै।
उत्तम भोग लगाय, मोर मरकट तिमि पोषै।
नृपति द्वार ठाढे रहैं, दर्सन आसा जास की।
आसधीर उद्योतकर, रसिक छाप हरिदास की।

राधा कृष्ण के युगल रूप की उपासना तो स्वामी जी को मान्य थी परन्तु वे सखी भाव से युगल मूर्ति की ललित लीला का आनन्द लेते थे तथा सगीत के द्वारा अपनी सरकार को प्रसन्न करने मे अपने को कृत कृत्य मानते थे। स्वामी जी की पदावली 'केलि माला' के नाम से विख्यात है। विहारी जी के प्रति प्रेमानुगा भक्ति 'केलिमाला' का प्रधान विषय है। बाके-विहारी के प्रति हरिदास जी की अटूट भक्ति है तथा वे उस भक्ति के सामने ज्ञान को व्यथ ही समझते है। प्रेम-समुद्र के सम्बन्ध मे उनका कथन है —

कल्याण

प्रेम समुद्र रूप रस गहिरे, कैसे लागे घाट।
बेकार्यो दै जानि कहावत, जातिपनो की कहा परी बाट ।।
काहू को सर पर्यौ न सूधो, मारत गाल गली-गली हाट ।
कह, 'हरिदास' 'बिहारिहिं जानो, तकौ न ओघट घाट ।।

भागवतोक्त वैराग्य शरणागति तथा प्रपति के अतिरिक्त हरिदास जी ने राधा-कृष्ण की रूप–माधुरी तथा रास-लीला पर भी अनेक पद लिखे है। भगवान् कृष्ण के सौन्दर्य का विवेचन उन्होने बडी सुन्दरता से किया है। एक उदाहरण देखिए—

आज तृन टूटत है री, ललित त्रिभगी पर ।
चरन चरन पर, मुरलि अधर पर,
चितवनि बक छबीली भुव पर ।
चलहु न वेगि राधिका पिय पै,
जो भई चाहति हौ सर्वोपर ।
श्री हरिदास समय जब नीको,
हिलि मिलि केलि अटल रति भ्रूपर ।।

इसी प्रकार राधा-कृष्ण की एक रूपता का स्वामी जी ने अलौकिक चित्र खीचा है—

'प्यारी जैसे तेरी आँखिन मे हौ अपनपौ
देखत, तैसे तुम देखिति हौ किधौ नाहीं ।'
'हौ, तोसौ कहौ प्यारे, आँखि मूँदि
रहौ, लाल निकसि कहाँ जाही ।
'मोकौ निकसिबे को ठौर बताओ,
साँची कहौ, बलि जाऊँ, लागो पाही,
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा,
तुमहिं देखत चाहत और सुख लागत नाही ।

लीला-गान के तो स्वामी जी ने अनेक पद लिखे हैं। यहाँ हम रास-लीला के एक पद का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं:—

अद्भुत गति उपजति अति नाचत, दोऊ मण्डल कुँवर किशोरी ।
सकल सुगध अग भरि भोरी, पिय नृत्यति मुसकति मुख मोरी ।
ताल धरै बनिता मृदग, चन्द्रागति घात बजै थोरी थोरी ।।
मधु' भाव भाषा विचित्र अति, ललित गीत गावै चित चोरी ।
श्री वृन्दावन फूलति फूल्यो पूरन ससि समीर गति थोरी ।
गति विलास रस हास परस्पर भूतल अद्भुत जोरी ।
श्री जमुना जल बिथकित पुहुपनि छवि रति पति डारत तृन तोरी ।।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंज बिहारी जू को रस रसना कहै कोरी ।

स्वामी हरिदास जी के जीवन की अनेक चमत्कार पूर्ण घटनाये किम्बदन्तियो के रूप मे आज भी प्रचलित हैं। अपने जीवन-काल मे ही उन्हे इतनी ख्याति प्राप्त हो चुकी थी कि अकबर जैसे शाहशाह को भी उनके चरणो मे नत मस्तक होना पडा था। प्रसिद्ध गायक तानसेन इन्ही के शिष्य बताये जाते है। स्वामी हरिदास जी के पश्चात् टट्टी-सस्थान के वैष्णवो की परम्परा आज तक चली आ रही है। उनकी शिष्य परम्परा मे विट्ठल विपुल जी बिहारिनीदेव जी, भगवत् रसिक जी, तथा सहचरिरशरण जी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। विट्ठलविपुल जी ने राधा कृष्ण की निकुञ्ज-लीला तथा रास-लीला के पदो के अरिरिक्त हिंडोला तथा झूलना आदि पर भी पद लिखे हैं। विट्ठलविपुल जी का समय १५५० वि० से १६२३ विक्रमी तक माना जाता है। व्रज मे प्रचलित रीति-रिवाजो तथा उत्सवो का हिन्दी के वैष्णव-साहित्य मे समावेश करने का श्रेय बिटठलबिपुल जी को ही है। भगवान् की राम लीला का इन्होने बडी तन्मयता से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पद देखिए —

(१) सजनी नव निकुज द्रुम फूले।
अलि कुल सकुल करत कुलाहल, सौरभ मन्मथ भूले।
हरखि हिंडोरे रसिक रास वर, जुगल परस्पर झूले।
श्री 'विट्ठल विपुल विनोद देखि नभ देव विमानन भूले॥

(२) नवल शरद की जोन्ह जगमगी।
नवसतसाज सकल अग सुँदरि, नवल वदन पर अलक सगवगी।
श्री विट्ठल विपुल बिहारी के अग लाडिली सहज उर लगी॥

विट्ठलविपुल जी के शिष्य श्री बिहारिनीदेव जी ने भी अपने आचार्यपाद के सदृश भगवान् कृष्ण की लीला के अनेक पद रचे है। भक्ति का मूलस्रोत इन्होने श्रीमद्भागवत को ही माना है। भागवत-कथा के बिना ये भक्ति-साधना को व्यथ मानते हैं— भक्ति बिना भागवते कहै कठ सोखै काया दहै'। भागवत के सामान्य और विशेष तत्त्वो का विवेचन इन्होने अपनी रचनाओ मे बडी सुन्दरता से किया है तथा भागवत की अ तकथाओ का भी अपने पदो मे पूरा-पूरा उपयोग किया है। भागवतोक्त नवधा भक्ति का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं —

"यहै उपाय सुन्यो सन्तन पै हरि सेवत सुख जीजै।
श्रवण कीतन भक्ति भागवत नौ प्रकार रति कीजै।
विषय बिकार विरचि रचि मन क्रम वचन रचन चित दीजै।
श्री बिहारिनदास प्रभु सदा सजीवन वदन कमल रस पीजै॥"

सखी-सम्प्रदाय के गण्य-मान्य भक्त कवियो मे भगवतरसिक जी का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओ मे वैराग्य तथा अनन्य प्रेम का अद्भुत समन्वय है। रचनाओ का सग्रह 'भगवतरसिक की बानी' नाम से अभी हाल मे प्रकाशित हुआ है। ये रीति-कालीन कवि हैं, परन्तु इनकी रचना भक्ति काल की परम्परा की है। इनका जन्म सम्वत् १७९५ मे

माना जाता है। इनकी दृष्टि मे भागवत का अद्वैत 'रसिक' पद की उपलब्धि से ही सम्भव है।

'रसिक' की परिभाषा वे इस प्रकार करते है —

जीव ईस मिलि दोय, नाम रूप गुन परिहरै।
रसिक कहावै सोय, ज्यो जल घोरै सकरा ॥
दिया कहै सब कोय, तेल तूल-पावक मिलै।
तमहि नसावै सोय, वस्तु मिलै भागवत रसिक ॥

भगवान् कृष्ण के प्रति अनन्य अनुरक्ति के इन्होने अनेक अर्थ लिखे। एक पद नीचे दिया जाता है —

तुव मुख चन्द चकोर ये नैना।
अति आरतु अनुरागी लम्पट,
भूल गई गति पलहुँ लगै ना।
अरबरात मिलिबे की निसुदिन,
मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
'भगवत रसिक' रसिक की बातैं,
रसिक बिना कोनु समुझि सकै ना ॥

हरिदासजी के सम्प्रदाय मे दीक्षित नागरीदास, सरसदेव, नरहरदेव, सहचरिशरण आदि और भी अनेक कवि हुए हैं जिन्होने ब्रज भाषा के भक्ति-साहित्य को अपनी कमनीय कृतियो से पूर्ण तथा सरस बनाया।

नागरीदास नाम के कई वैष्णव भक्त हुए हैं। अब तक इस नाम के पाँच भक्त कवियो का पता चल मका है। टट्टी सस्थान की परम्परा मे महचरिशरण जी का भी विशिष्ट स्थान हैं। इनका ज म १९ वी शताब्दी मे माना जाता है। इन्होने फुटकल पदो के अतिरिक्त दो स्वतत्र ग्रथो की रचना की है। सखी सम्प्रदाय मे ये प्रथम आचाय है जिन्होने टट्टी सस्थान के सिद्धान्तो पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

युगल उपासना का तीसरा उल्लेखनीय सम्प्रदाय राधा वल्लभीय सम्प्रदाय है। मध्य-युगीन प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रसार और प्रचार का श्रेय ब्रज प्रदेश के हिन्दी भक्त कवियो को है। यह हम पहले ही कह चुके है कि आचाय प्रवर्तित सम्प्रदायो के अतिरिक्त अ य ब्रज-प्रदेशीय सम्प्रदायो ने भी प्रेम लक्षणा भक्ति को पल्लवित करने मे पूरा योगदान दिया। स्वामी हरिदास जी का सखी सम्प्रदाय उ ही सम्प्रदायो मे एक है। इस कोटि का दूमरा महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय राधावल्लभीय सम्प्रदाय कहा जा सकता है। प्रेम लक्षणा भक्ति के स्वरूप-निर्धारण तथा व्यवस्थित विश्लेषण मे इस सम्प्रदाय ने अभूतपूव काय किया। इस सम्प्रदाय मे

प्रेम तत्सुखित्व के नाना स्वरूपो की कल्पना की गयी है। इस सम्प्रदाय का प्रेम तत्सुखित्व की भावना से राधानिष्ठ होकर किया जाता है। राधावल्लभीय साधना पद्धति मे केवल प्रेम ही विधेय है और इसीलिए इस सम्प्रदाय मे विधि-निषेध के बधनो का व्यावहारिक रूप से बहिष्कार किया गया है। इस सम्प्रदाय मे राधा को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसीलिए प्रेम लक्षण भक्ति को व्यवहारिक रूप देने मे इस सम्प्रदाय को इतनी सफलता मिली है। लौकिक ऐषणाओ तथा वासनाओ को अलौकिक रूप प्रदान करने मे इस सम्प्रदाय का अभूत-पूव योगदान है। प्रिया राधा तथा प्रियतम कृष्ण के काम-केलि प्रसगो का बरगन सहचरी रूप जीव के लिए मुक्ति प्रदान करने वाला है। दाम्पत्य उपासना को मूल मानकर मधुराभक्ति को व्यवस्थित रूप देना इसी सम्प्रदाय का काम है।

कुछ विद्वानो ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय की स्वतन्त्र सत्ता मानने मे आपत्ति की है तथा गोस्वामी हितहरिवश को माध्व सम्प्रदाय मे दीक्षित बताया है। प्रेम विलास नामक ग्रन्थ म हितहरिवश जी की कथा भी दी हुई है। परन्तु 'प्रेम विलास' ग्रन्थ की प्रामाणिकता मे विद्वानो को सन्देह है। गोस्वामी हित हरिवश जी के माध्व सम्प्रदाय मे दीक्षित होने का कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त नही होता। दोनो सम्प्रदायो के सिद्धान्त पक्ष तथा आचरण पक्ष मे पर्याप्त भेद है। कुछ विद्वानो ने राधावल्लभीय सम्प्रदाय को निम्बाक सम्प्रदाय की वृन्दावनी शाखा माना है, परन्तु यह भी एक भ्रम ही प्रतीत होता है। निम्बाक सम्प्रदाय के मूल भूत सिद्धान्तो का विवेचन हम पहले ही कर चुके हैं। निम्बार्काचाय ने द्वैताद्वैत की स्थापना करके केवल ब्रह्म को ही उपास्य स्वीकार किया था। इस सम्प्रदाय के परवर्ती आचार्यो ने राधाकृष्ण की उपासना मे सम्प्रदाय के विद्वानो को व्यावहारिक रूप दिया। राधा का जो स्वरूप निम्बाक सम्प्रदाय मे स्वीकृत हुआ है, राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे उससे भिन्न रूप माना गया है। जहाँ तक युगल रूप की उपासना का प्रश्न है, उसे हम परवर्त्ती काल का प्रभाव ही मानते हैं। इसलिये राधावल्लभीय सम्प्रदाय की साधना पद्धति का गम्भीर अनु-शीलन करने पर हम सहज ही इस निष्कष पर पहुच जाते है कि यह एक स्वतन्त्र ही सम्प्रदाय है। रामदास जी ने इस सम्प्रदाय की साधना पद्धति को साधारण मनुष्यो के लिये बडा कठिन बताया है —

श्री हरिवश गुसाई भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है।
श्री राधाचरण प्रधान हृदे अति सुदृढ उपासी।
कुज केलि दम्पति तहाँ की करत बवासी ।।
सवसु महाप्रसाद प्रसिद्धता के अधिकारी।
विधि निषेध नहिं, दास अनन्य उत्कट व्रतधारी।
श्री व्यास सुवन पथ अनुसरै सोई भलै पहिचान हैं
श्री हरिवश गुसाई भजन की रीति सुकृत कोउ जानि है।

प्रियदास जी ने इस सम्प्रदाय की दुरूहता के सम्बन्ध मे लिखा है —

हित जू की रीति कोऊ लाखनि मे एक जानै
राधा ही प्रधान मानै पाछै कृष्ण ध्याइयै।
निपट विकट भाव होति न सुभाव ऐसो,
उनही ही की कृपा दृष्टि नेकु क्योहूँ जाइये ।।
विधि औ निषेध छेद डारे प्रान प्यारे हिये,
जिये निज दास निसदिन वहै गाइये,
सुखद चरित्र सब रसिक विचित्र जीके,
जानत प्रसिद्ध कहा कहिकै सुनाइयै ।।

वैष्णव मत मे गोस्वामी हित हरिवश जी को श्री कृष्णचन्द्र की मुरली का अवतार माना जाता है। सम्भवत उनकी सरस कविता के कारण उ हे यह पदवी प्राप्त हुई है। गोस्वामी जी के जन्मस्थान तथा जन्म तिथि के सम्बन्ध मे भी मतभेद है। डा० विजयेन्द्र स्नातक ने उनका ज'म सवत् १५५९ माना है, जिसका आधार श्री भगवत मुदित लिखित 'रसिकमाल' का उल्लेख है। रसिकमाल की एक प्रति मे वह उल्लेख इस प्रकार है —

प'द्रह सै उनसठि सम्वतसर वैसाखी सुदि ग्यास सोमवर।
तहाँ प्रगटे हरवश हित रसिक मुकुट मनिमाल।
कर्म, ज्ञान, खडन करन, प्रेम भक्ति प्रतिपाल ।।"

गोस्वामीजी का जन्म स्थान भी डा० स्नातक ने मथुरा के समीप बाद नाम का गाँव माना है।

गोस्वामी जी के दो ग्रन्थ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं—'राधा सुधानिधि' तथा हित चौरासी राधासुधानिधि ग्रन्थ है जिसमे राधा रानी की अद्भुत शैली मे प्रशस्ति की गयी है। हित चौरासी ब्रजभाषा की रचना है, जिसमे सम्प्रदाय की मूल भावना को व्यक्त करने वाले चौरासी गेय पदो का सग्रह है। सभी पद रागो के आधार पर लिखे गये। गोस्वामी जी के ही नाम से कुछ और ग्रन्थ भी प्रसिद्ध है, जिनमे आशास्तव, चतु श्लोकी, श्री यमुनाष्टक तथा राधातन्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गोस्वामी जी का गोलोकवास सम्वत् १६०९ माना जाता हैं।

राधावल्लभीय सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति अन्य सम्प्रदायो की साधनाओ से विलक्षण गूढ तथा रहस्यमयी है। इनकी प्रेम लक्षण भक्ति स्वकीया परकीया की भावना से परे है। प्रेम विरह इस भक्ति साधना का सार है मिलन मे भी विरह की भावना इस साधना का वैशिष्ठय हैं—

'मिले ही रहत मानो कबहूँ मिलैंना'

गोस्वामी जी आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायो के किसी 'वाद' के पचडे मे नही पडे तथा न ही अपने सिद्धान्तो का कोई दाशनिक विवेचन प्रस्तुत किया। हाँ आगे चलकर कुछ साम्प्रदायिको ने इस सम्प्रदाय का दाशनिक विवेचन अवश्य किया है, परन्तु गोस्वामी जी का भक्ति-भावना को देखते हुये वह सब प्रयास असगत सा लगता है। भागवत से अनुप्राणित प्राय सभी सम्प्रदायो मे किसी न किसी तत्व को वैशिष्ट्य प्रदान करके आचार्यो ने अपनी अलग सत्ता घोषित की है तथा भागवत के मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम तत्व को उसी वैशिष्ट्य से मिलाकर देखने का प्रयास किया है। राधा वल्लभीय सम्प्रदाय मे प्रेम तत्व को ही वैशिष्ट्य प्रदान किया गया है तथा उस तत्व का पोषण करने वाली नित्य विहारिणी श्री राधा को अपना इष्ट माना है जो स्वतन्त्र रूप मे पराशक्ति रूपा तथा महासुख रूपा है। इस सम्प्रदाय को हम सच्चे अर्थो मे रस सम्प्रदाय कह सकते हैं। भागवतोक्त अद्वैत की जैसी अद्भुत सिद्धि इस सम्प्रदाय मे है, वैसी अन्यत्र दुलभ है। प्रेम तत्व की दृष्टि से जीव तथा युगल मूर्ति का साधम्य स्थापित करना इस सम्प्रदाय का विधेय है। गोस्वामी हित हरिवश स्पष्ट उद्घोष करते है —

'यति किञ्चत् दृश्यते सष्टौ सवम् हित मय विदु'

बात यह है कि प्रेम रस सिक्त भक्त की दृष्टि मे द्वैत सम्भव ही नही है—'जिन आँखिन मे वह रूप बस्यो, उन आखिन सौ अब देखिय का'। जब भक्त की बुद्धि स्वाराध्य विशिष्ट हो चुकी, प्रेम रस मे सराबोर हो चुकी तथा उस पर एक गहरा रग चढ चुका तब दूसरी किसी बात की गुञ्जाइश कहाँ है? गोस्वामी जी नित्य बिहारी तत्व को वेद उपनिषद् पुराण आदि सबसे अलक्षित और अगोचर मानते है। वह तत्त्व प्रेम तत्व है, जो श्री राधावल्लभ लाल के रूप मे विराजमान है। श्री राधा और श्रीकृष्ण दो तत्व नही हैं, एक ही हैं उनका नित्य विहार परिकर जो श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्री वृन्दावन और सखियो के रूप मे है, आकृति मात्र से ही अलग-अलग प्रतीत होता है। नित्य बिहार को ही निकुञ्ज क्रीडा कहते हैं। यह क्रीडा नित्य धाम श्री वृन्दावन मे नित्य निर तर होती रहती है। सखियाँ युगलकिशोर की आत्मभूता हैं, स्व-पर भेद से रहित है, सब प्रकार से अप्रमेय तथा अगोचर हैं। लावण्य और सौन्दर्य की यहाँ कोई सीमा नही है। युगलकिशोर की चातुय केलि प्रेम रस का सार है, सब और एकत्व की भावना है —

एकै प्रेमी एक रस श्री राधावल्लभ आहि।
भूलि कहै जो और ठाँ, झूठो जानो ताहि॥

सम्पूर्ण विश्व स्थिर और जगम रूप से उसी प्रेम का प्रसार है। यह प्रेम तत्व वडा रहस्यपूर्ण है, ब्रह्मा, नारद, शिव, शुक आदि के लिये भी अगम्य है। गोस्वामी जी ने इस तत्व के सम्बन्ध मे स्पष्ट लिखा है –

यन्नारदाजेश–शुकैरगम्य
वृन्दावने वञ्जुल—मञ्जु—कुञ्जे।

तत्कृष्णचेतो—हरेणक विज्ञ-
मत्रास्ति किञ्चित् परम रहस्यम् ।।

गोस्वामी जी ने इस प्रेम तत्व को शास्वत तत्त्व माना है तथा मुक्ति को भी इसके सामने हेय बताया है —

अल विषयवातया नरक कोटि वीभत्सया,
वृथा श्रुति कथाश्रमो वत बिभेभि कैवल्यत
परेश भजनोन्मदा यदि शुकादय किं तत
पर तु मम राधिकापदरसे मनो मज्जतु ।

इस सम्प्रदाय मे मिलन मे भी विरह की स्थिति स्वीकार की गई है, जो इसका अपना वैशिष्ट्य है तथा प्रेम नेम की भी विचित्र ढग से व्याख्या की है । राधा सुधानिधि का अध्ययन करने पर पाठक प्रेम रस सिक्त सा हो जाता है, नित्य बिहार रत राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का साक्षात्कार सा होने लगता है । भागवतकार ने जिस प्रसादमयी शैली के प्रेम तत्व का विवेचन किया है उसी शैली मे गोस्वामीजी ने राधा स्तवन किया है । ऐसा लगता है कि भागवतकार ही गोस्वामी जी के रूप मे अभिभूत होकर राधा तत्व की व्याख्या कर रहे है । विषय के अनुकूल कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग किया गया है । ब्रजभाषा मे लिखे हुये चौरासी पदो का माधुय भी विलक्षण है । आचायपाद ने गागर मे रस सागर भर दिया है । यहा हम प्रेम तत्व की अद्वैतता के प्रतिपादक दो पदो को उद्धृत करते है —

(१) प्रीति की रीति रगीलोई जानै ।।
जद्यपि सकल लोक चूडामणि दीन अपनपो मानै ।।
जमुना पुलिन निकुञ्ज भवन मे मान मानिनी ठानै ।
निपट नवीन कोहि कामनि कुल धीरज मनहि न आनै ।।
नस्वर नेह चपल मधुकर ज्यो आन आन सो वानै ।
हित हरिवश चतुर सोई लालहि छाडि मड पहिचानै ।।

(२) प्रीति न काहू की कानि विचारै ।
मारग अपमारग विथकित मन को अनुसरत निवारै ।।
ज्यौ सरिता सावन जल उमगत सनमुख सिंधु सिधारै ।।
ज्यो नादहि मन दिये कुरगनि प्रकट पारिधी मारै ।।
हित हरिवश हिलग सारग ज्यो शलभ शरीरहि जारै ।।
नाइक निपुन नवल मोहन बिनु कौन अपनपो हारै ।।

नित्य बिहार के परिकर का वर्णन भी गोस्वामी जी ने बडे विस्तार से किया है, साथ ही साथ भागवतोक्त सामान्य तत्त्व जैसे वैराग्य, नाम महिमा गुरु-महिमा, सत्सग आदि का भी

गोस्वामी जी के पदो मे पर्याप्त वर्णन है। इन तत्त्वो का विशेष वर्णन गोस्वामी जी की स्फुट वाणी में मिलता है। रासलीला पर भी गोस्वामी जी की दृष्टि गयी है तथा उन्होने शरद रास तथा वसत राम दोनो का ही वर्णन किया है। यह रास-वर्णन नित्य बिहार का ही एक अग है। रास के दो पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं —

(१) चलहि राधिके सुजान, तेरे हित सुख निधान
रास रच्यौ श्यामतट कलिन्द नन्दिनी ।।
नितत युवती समूह राग रग अति कुतूह
बाजत रसमूल मुरलिका अनन्दिनी ।।
वशीवट निकट जहाँ परम रमनि भूमि तहाँ
सकल सुखद मलय बहै वायु मन्दिनी ।
जाती ईषद विकास, कानन अतिशय सुवास
राका निशि शरद मास विमल चन्दिनी ।
नरवाहन प्रभु निहार लोचन भरि घोष नारि
नखशिख सौन्दय काम दु ख निकन्दिनी ।
विलसहिं भुज ग्रीव मेलि भामिनि सुख सिन्धु झेलि
नव निकुज श्याम केलि जगत वन्दिनी ।।

(२) श्याम सग राधिका रास मडल बनी ।
बीच नदलाल व्रजबाल चपक बरन,
ज्यौव घन तडित बिच कनक मकत मनी ।।
लेत गति मान तत्त थेइ हस्तक भेद,
'सरिगमपधनि' ये सप्त सुर नन्दिनी ।।
नित्य रस पहिर पट नील प्रकटित छवी
वदन जनु जलद मे मकर की चदिनी ।।
राग रागनि तान मान सगीत मत,
थकित राकेश नव शरद की जामिनी ।।
हितहरिवश प्रभु हस कटि केहरी,
दूर कृत मदन मदमत्त गज गामिनी ।।

गोस्वामी श्री हित हरिवश जी के अनन्तर इस सम्प्रदाय मे अनेक भावुक भक्त कवि हुए हैं जिन्होने अपनी दिव्य वाणी के रस से हिन्दी साहित्य महोदधि को पूर्ण करने मे योगदान दिया है। श्री हितहरिवश जी की वाणी के मम को सवजन-सुलभ कराने का श्रेय श्री दामोदर दास (सेवक) जी को हैं। सेवक जी का जन्म स० १५७७ के लगभग माना जाता है तथा निधन तिथि सम्वत् १६१० । इस प्रकार ये गोस्वामी हित हरिवश जी के समकालीन

ही ठहरते है। इनका जन्म स्थान गौडवाना प्रदेश का 'गढा' नाम का एक ग्राम माना जाता है। सेबक जी की 'बाणी' मे श्रोताश्रो को मत्र-मुग्ध करने की शक्ति थी। उनकी वाणी हित चौरासी की व्याख्या तथा पूरक के रूप मे ही रक्खी जाती है। इस सम्बन्ध मे एक कहावत भी प्रसिद्ध है —

'चौरासी अरु सेबक वाणी, इक सग लिखत पढत सुखदानी'।

सेवक वाणी सोलह प्रकरणो मे विभाजित है तथा 'चतुरासी पदाश्रित' है। मेवक जी ने श्रीमद्भागवत् को गोस्वामी हित हरिवश जी से भी उच्च स्थान प्रदान किया है। इस सम्बन्ध मे उनकी वाणी के दो अश उद्धृत किये जाते है —

(१) शुक मुख वचन जु श्रवन सुनावहु।
तव हरिवश सुनाम कहावहु॥
मन सुमिरन विसरै नही॥

(२) श्री भागवत जु शुक उच्चरी। तैसी विधि जु व्यास विस्तरी
करी नन्द जैसी हुती॥
घर-घर तोरण बन्दनबार। घर घर प्रति चित्रहि दरबार॥

सेवक जी की वाणी मे प्रमलक्षणा भक्ति का प्रतिपादन ठीक भागवत के अनुसार हुआ है। श्री हितहरिवश जी को वे प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रचार के लिए आविभूति अवतार मानते है। इस भक्ति की प्राप्ति नवधा भक्ति के अनन्तर ही सम्भव है तथा उसके प्राप्त होने पर विधि निषेध की सीमाएँ समाप्त हो जाती है। जाति, पाँति, कुल, धर्म आनन्द का कोई महत्त्व नही रहता। सेवक जी ने लिखा है—

'श्रवणादिक चितलाय योग जप तप तजे।
औरो कम सकाम सकल तजि सब भजे॥
साधन विधि प्रयास ते सकल विहावही।
श्रवण कथन सुमिरण सेवन चितलावही॥
अचन बन्दन अरु दासतन, सख्य और आत्मा समपन।
ये नवलक्षण भक्ति बढाई। तब तिन प्रेम लक्षणा पाई।
पाई रस भक्ति गूढ युग-युग जग, दुर्लभ भव इन्द्रादि विधिम्॥
आगम अरु निगम पुराण अगोचर सहज माधुरी रूप निधिम्॥
× × × श्री हरिवश चरण शरणम्॥
जाति पाँति कुल-कम धर्म व्रत ससृति हेतु अविद्यानासी।
सेवक रीति प्रतीति प्रीति हित विधि निषेधशृखला विनासी॥
अब जोई कहो करै हम सोई आयुष लिये चले निज दासी।
मन क्रम वचन विशुद्ध सकल मत हम श्री हित हरिवश उपासी॥

सेवकजी ने भक्त के लक्षण भागवत के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर लिखे है—

'अप्रमत्तो गभीरात्मा धृतिमान् जित षड्गुण,
अमानी मनद कल्पो मैत्र कारुणिक कवि ।
अज्ञायैव गुणान्दोषा मया दिष्टानपि स्वकान,
धर्मान्सत्यज्य य सर्वान् माम् भजेत सउत्तम ॥

(श्रीमद्० १७।११।३१-३२)

सेवकजी ने अपनी वाणी मे भक्त के लक्षणो की निम्न प्रकार व्याख्या की है—

अरु अपनी प्रभुता नहिं सहै। तृण तें नीच अपन यौ कहै ॥
समुझै नही कछू कुल कम। सूधै चलै आपने धम॥ × × ×॥
जब श्री हरिवश नाम जानि है। तब सबही तें लघु मानि है।
हसि बोलै बहुमान दै।
तरु सम सहन शीलता होय। परम उदार कहै सब कोय।
सोचन मन कबहूँ करै ॥

(श्रीहित सुधासागर, श्री सेवक वाणी जी पृ० २४७)

सेवक जी ने गुरुमहिमा, लीला-गान, रास लीला, वृन्दावन-महिमा तथा मथुरा महिमा भी विस्तार से लिखी हैं। मथुरा के सम्बन्ध मे श्री मद्भागवत के—

'मथुरा भगवान्यत्र नित्य सनिहितो हरि,

का अनुवाद सेवकजी ने "मथुरा नित्य कृष्ण को वास"।

निसिदिन स्याम न ठाडो पास।

किया है।

श्री हरिराम व्यास

श्री हरिराम व्यास का नाम ब्रज मडल के कवियो मे विशेष उल्लेखनीय है। ये ओरछा-नरेश महाराज मधुकर शाह के राजगुरु थे। इनके जीवन के सम्बन्ध मे अनेक भ्रातिया प्रचलित हैं। उनका मुख्य कारण यह है कि इस नाम के वृन्दावन मे तीन महात्मा प्रसिद्ध हैं। प्राय आलोचको ने हरिव्यासदेव और हरिराम व्यास को एक ही व्यक्ति समझ लिया। नाभादास जी ने 'भक्तमाल' मे व्यासजी का परिचय दिया है—

काहू के आराध्य मच्छ कच्छ नरहरि सूकर।
वामन, फरसा धरन सेतु बधन जु सैल कर॥
एकन के यह रीति नेम नवधा सो लाये।
सुकुल सुमोखन सुवन अच्युतगोत्री जु लडाये॥
नौ गुण तोरि नूपुर गुह्यो महत सभा मधि-रास के।
उत्कष तिलक अरु दाम को भक्त इष्ट अति व्यास के॥

(भक्तमाल, नाभाजी-छप्पय स० ९२।१२२)

सम्प्रदाय के श्री भगवत मुदित तथा श्री उत्तमदास जी ने भी व्यासजी का चरित्र लिखा है। श्री ध्रुवदास जी की भक्तनामावली लीला मे भी व्यासजी के सम्बन्ध मे तीन दोहे मिलते हैं। व्यासजी के जन्म सम्वत् के सम्बन्ध मे अभी तक निर्णय नही हो सका है।

कुछ विद्वान् उनका जन्म स० १५६७ मानते हे तथा कुछ स० १५४९। इतना निश्चित है कि उनका जन्म ओरछा राज्य मे हुआ था।

व्यास वाणी का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यासजी राधावल्लभीय सम्प्रदाय मे ही दीक्षित थे, क्योकि उसमे रसोपासना तथा प्रेमलक्षणा भक्ति का जसा स्वरूप मिलता है वह ठीक राधाबल्लभीय सम्प्रदाय के अनुकूल है। उनकी वाणी पर हित चौरासी का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्ष्य किया जा सकता है। व्यासजी सस्कृत भाषा के गम्भीर पण्डित थे। भक्ति के क्षेत्र मे उन्हे जाति-पाँति का भेद स्वीकाय नही था। इस सम्बन्ध मे उन्होने लिखा है—

स्वान प्रसादहि छू गयौ, कौवा गयौ विटारि।
दोऊ पावन व्यास कै, कहँ भागौत विचारि॥
व्यास जाति तजि भक्ति करि, कहत भागवत् टेरि।
जातिहि भक्तिहि ना बनै, ज्यो कैरा ढिग बेरि॥

ऐसा लगता है कि व्यासजी ने श्रीमद्भागवत का पूण रूप से रसास्वाद किया था और इसीलिए उनकी रचनाओ पर इस महापुराण का व्यापक प्रभाव पडा। अनेक स्थलो पर उन्होंने भागवत का नामोल्लेख किया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है—

(अ) जैसी भक्ति भागवत बरनी।
तैसी बिरले जानत मानत कठिन रहनि तै करनी।
स्वामी भट्ट गुसाई, अगनित मति करि गरि आचरनी॥
× × ×
सहज प्रीति बिना परतीति न, सिस्नोदर की भरनी।
व्यास आस वौ लगि है तो लगि, हरि बिनु दुख जिय भरनी॥
(ब) सुक नारद से भक्त न कोऊ जिहि भागवत सुनायौ।
बिनु भागवत भक्ति न उपजै, साधन साधि बतायौ॥
(व्यास वाणी)

व्यासजी की मान्यता थी कि राधानाम भक्ति का सार-भूत तत्व है तथा एक रहस्यमय तत्व है। सम्भवत इसीलिये शुकदेवजी ने उसे श्रीमद्भागवत मे प्रकट नही किया। श्रीमद्भागवत की माधुर्य-लीला का विस्तार से गान करने के लिए ही व्यासजी ने 'रासपञ्चाध्यायी' की अलग से रचना की। व्यासजी की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने श्रीमद्भागवत मे स्वीकृत बालकृष्ण की लोला का भी मान किया है तथा मथुरा, वृन्दावन, यमुना तथा वेणु आदि के महत्त्व का भी बडी रोचकता से प्रतिपादन किया है। इसी प्रकार कृष्ण और गोपियो की प्रेम क्रीडाओ का भी वर्णन 'वाणी' मे भागवत के आधार पर हुआ है। व्यासजी की केवल 'व्यास वाणी' ही उपलब्ध हैं। उनके सस्कृत के ग्रन्थ अप्राप्य हैं। व्यासजी की रचना इतनी प्रौढ है कि उससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होने सस्कृत का गहन अध्ययन किया था तथा भागवतकार की शैली से वे प्रभावित थे। उनकी वाणी का मुख्य प्रतिपाद्य तो माधुयभक्ति तथा राधाकृष्ण की निकुञ्जलीला ही है, परन्तु उसकी स्थापना के लिए उन्होने भागवतकार की शैली पर अनेक विषयो का वर्णन किया है। शृ गार के भी सयोग और वियोग दोनो ही पक्षो को उन्होने लिया है। उनकी रचना

महाकवि सूरदास के टक्कर की है और कभी कभी तो यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि अमुक पद सूरकृत है अथवा व्यासकृत। उनका रास-वर्णन विद्वत्तापूर्ण तथा कवित्वमय है। रास का वर्णन उन्होने बडे विस्तार से किया है जिसमे भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। रास-लीला के पदो मे सगीत का अद्भुत तथा विचित्र समावेश हैं। राधा-कृष्ण की रूप-माधुरी के चित्र बडे मोहक है।

चतुर्भुजदास—(स० १५८५)

श्री चतुर्भुजदास जी राधावल्लभ सम्प्रदाय के उन विशिष्ट भक्त कवियो मे हैं, जिन्होने अपना रचनाओ मे श्रीमद्भागवत को महत्त्व प्रदान किया है। अष्टछापी चतुर्भुजदास से इनकी भिन्नता सिद्ध हो चुकी है। राधावल्लभ सम्प्रदाय के चतुर्भुजदास के सम्बन्ध में नाभादास जी के भक्तकाल मे निम्नलिखित पद मिलता है—

गायौ भक्ति प्रताप सबहि दासत्व बढायौ।
राधावल्लभ भजन अनन्यता वग बढायौ॥
मुरलीधर की छाप कवित अति ही निर्दूषन।
भक्तनि की अँघ्रिरेनु बहै घाटी सिर भूषन॥
सत्सग महा आनन्द मे प्रेम रहत भीज्यौ हियौ।
हरिवश चरन बल चतुर्भुज गौड देश तीरथ कियौ।

प्रियादास जी ने भक्तकाल की टीका मे चतुर्भुजदास जी को भागवत-प्रेमी तथा भागवत के कथाकार बताया है—

भोग लै लगावै नाना सतनि लडावै,
कथा भागवत गावै, भाव भक्ति विस्तारियै।
भज्यौ धन लेके कोऊ धनी पाछै परयो,
सोऊ आनिकै दबायौ बैठि रह्यौ न निहारियै॥
निकसा पुरान बात करै नयी गात दिक्षा,
शिक्षा सुनि शिष्य भयौ मह्यौ यो पुकारियौ।
कहै या जनम मैं न लियौ कछु दियौ फारौ,
तब ल उबारयौ प्रभु रीति लागी प्यारियौ॥

[भक्तकाल (भ० सु० वि०) पृ० ७४१]

ध्रुवदास जी ने भक्तनामावली लीला मे चतुर्भुजदासजी को परम भागवत बताया है। चतुर्भुजदास जी के ग्रन्थ 'द्वादशयश' नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्होने स्वय ही अपने ग्रन्थो की सस्कृत टीका भी की थी। अपने ग्रन्थो मे इन्होने प्रेमलक्षणाभक्ति को ही सर्वोपरि बताया है, 'प्रेम भक्ति व्रज मे अति भारी, ता बस अटकै कुज बिहारी' नवधा भक्ति का प्रतिपादन करते हुए वे कहते है, 'नवधा भक्ति एक जो करै, भव सागर नारी-नर तरै।' इनका भक्ति विवेचन धर्म-विचार, सत-महिमा, गुरुमहिमा आदि भागवत के अनुकूल हैं। भक्ति के सिद्धान्तो का प्रतिपादन इन्होने 'द्वादश यश' में किया है। इनके अनुसार प्रेमाभक्ति साध्य है, जिसके सामने मुक्ति भी हेय है। चार भक्ति मोहन वर देत। भक्त भक्ति तजि ताहि न लेत॥' भक्ति के क्षेत्र मे विधि निषेध भी मान्य नही है। इनके पदो मे सस्कृत के गहन अध्ययन की छाप मिलती है। भागवत के सभी सामान्य तत्त्वो का विवेचन उन्होने अपने ग्रन्थो मे किया है।

ध्रुवदास—(स० १६३०—१७००)

साम्प्रदायक सिद्धान्तो के विवेचन की दृष्टि से ध्रुवदास जी का स्थान बहुत ऊंचा है। वे राधावल्लभ सम्प्रदाय की भक्ति पद्धति के भाष्यकार कहे जाते है। इनके जन्म सवत् के विषय मे भी अभी तक कोई निर्णय नही हो सका है। श्री भगवत मुदित तथा गोस्वामी जतनलाल कृत रसिक अनन्य सागर' मे इनका जीवन-चरित दिया गया है जिसके अनुसार इनका जन्म देवबन्द मे कायस्थ कुल मे हुआ था। अनुमान से इनका जन्म स० १६३० और स्वर्गारोहण स० १७०० माना गया है। इनकी रचनाओ से पता चलता है कि वे सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इनके बयालीस ग्रन्थो का नाम 'बयालीस लीला' नाम से प्रख्यात है। कुछ इनके फुटकर पद भी मिलते हैं। ध्रुवदास जी की रचनाओ का मुख्य प्रतिपाद्य प्रेम लक्षणा मधुराभक्ति का सागोपाग विवेचन है। इस विवेचन मे प्रेम सम्बन्धी, लीला सम्बन्धी तथा रसोपासना के अनेक ऐसे वर्णन हैं जिनमे भागवत की स्पष्ट छाप दीख पडती है।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त कवियो का बडा विशाल साहित्य उपलब्ध है। परम्परा के अनुसार सभी भक्तो ने साम्प्रदायिक सिद्धान्तो के विवेचन के अतिरिक्त भक्ति के सामान्य और विशिष्ट तत्त्वो का निरूपण किया है। इन भक्त कवियो मे नेही नागरीदास, श्री अनन्य अलि, श्री रसिकदास तथा चाचा वृन्दावनदास विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सम्प्रदायो मे भगवान् कृष्ण के नित्य बिहारी तत्त्व को स्वीकार किया गया है। राधावल्लभ लाल ही उनके इष्ट है। इसी मान्यता के भेद के कारण उनकी रचनाओ मे भागवत से कुछ भिन्नता आती है। चाचा वृन्दावनदास के 'ब्रजप्रेमानन्द सागर विवेक-पत्रिका वेलि तथा कवि-चरित्र वेलि' मे ऐसे अनेक पद मिलते हैं जो ठीक भागवतानुसारी हैं।

ब्रज क्षेत्र मे ऐसी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनका सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय विशेष से नही जोडा जा सकता, परन्तु जो निश्चित रूप से भागवतानुसारी कही जा सकती है। आचार्य प्रवर्तित चार सम्प्रदायो का उल्लेख हम पहले कर कर चुके है। इन चारो ही सम्प्रदायो मे श्रीमद्भागवत को आर्ष ग्रन्थ स्वीकार किया गया है। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायो के अतिरिक्त अन्य वृन्दावनी सम्प्रदायो मे भागवत का नामोल्लेख उस आदर तथा प्रतिष्ठा से नही हुआ है जितना उन चार सम्प्रदायो मे। परन्तु इतना निश्चित है कि सभी सम्प्रदायो की रचनाओ का मूल प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत ही रहा है। इस बात के भी पर्याप्त सकेत प्राप्त हो जाते हैं कि इन सम्प्रदायो के अधिकाश भक्त कवि सस्कृत के विद्वान् थे तथा भागवत का पारायण उनका नैत्यिक कर्म था। निम्बार्क सम्प्रदाय का विवेचन हम पहले कर चुके है। अब हम चैतन्य मत के कवियो पर विचार करेंगे।

नवम अध्याय मे माध्वमत का विवेचन करते हुए हमने यह सकेत किया है कि चैतन्यमत माध्वमत की एक शाखा है। चैतन्यमत का दार्शनिक ढाँचा प्राय माध्वमत पर ही आधृत है, परन्तु हिन्दी मे साहित्य-सर्जना की दृष्टि से चैतन्यमत का ही विशिष्ट स्थान है। चैतन्यमत का अधिकतर भक्ति-साहित्य यद्यपि सस्कृत भाषा तथा प्राचीन बँगला भाषा मे है फिर भी ब्रजभाषा मे रचित भी इस मत का इतना विपुल साहित्य उपलब्ध होता है जो पुष्टिसम्प्रदाय के हिन्दी साहित्य को छोडकर अन्य सभी सम्प्रदायो के साहित्य से बढकर है। नवीन गवेषणाओ से इस मत का इतना ब्रजभाषा साहित्य उपलब्ध हुआ है जिसकी पहले कल्पना ही नही थी। इस मत के अधिकाश कवि वृन्दावन के गौडीय गोस्वामियो की शिष्य परम्परा मे हैं, कुछ

विशिष्ट भक्त कवि श्री नित्यानन्द जी के परिकर मे श्री रामरायचन्द्रगोपाल जी के वशज हैं। चैतन्यमत के ब्रजभाषा साहित्य का मूल्य प्रेरणाश्रोत श्रीमद्भागवत महापुराण रहा है। चैतन्य सम्प्रदाय में चैतन्य महाप्रभु की पूजा राधाकृष्ण के सम्मिलित रूप मे की जाती है उसमे कृष्ण के रसराज रूप और राधा जी के महाभाव दोनो का समावेश है। वृन्दावनदास कृत 'चैतन्य भागवत' जो बगला भाषा मे रचा हुआ सर्व प्रथम महाप्रभु का जीवन-काव्य है, इसी ओर सकेत करता है —

कृष्णलीला भागवते कहे वेदव्यास,
चैतन्य लीला व्यास वृन्दावनदास।

चैतन्यमत मे श्रीमद्भागवत की एकमात्र मान्यता का उद्घोष स्थान स्थान पर किया गया है। निम्नलिखित श्लोक मे चैतन्यमत का सार आ जाता है —

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावन —
रम्या काचिदुपासेना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवत प्रमाणममल प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिद तत्राग्रहो नापर ॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण एकमात्र आराध्य हैं और उनका धाम वृन्दावन है। उनकी आराधना का आदर्श ब्रज-गोपियो की उपासना है। श्रीमद्भागवत प्रमाण ग्रन्थ है और प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है।

चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत को ब्रह्मसूत्रो का सर्वोपरि भाष्य माना जाता है। ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत दोनो के रचयिता स्वय व्यास मुनि हैं। इनके मतानुसार व्यासमुनि ने स्वय ही भागवत के रूप मे ब्रह्मसूत्र की व्याख्या की। यही कारण है कि चैतन्य महाप्रभु ने अन्य किसी भाष्य की आवश्यकता नही समझी। यहाँ तक कि मध्वाचार्यकृत ब्रह्मसूत्र-भाष्य के उन अशो को मान्यता नही दी जो किसी भी प्रकार भागवतानुसारी नही ठहरते थे। उन्ही अशो की पूर्ति के लिए चैतन्यमत के आचार्य बलदेव विद्याभूषण ने गोविन्द भाष्य की रचना की। भागवत की टीकाओ मे चैतन्य महाप्रभु ने श्रीधर स्वामी की टीका को ही सर्वश्रेष्ठ माना। इसलिए इस मत के विद्वानो ने बाद मे भागवत के सम्बन्ध मे जो कुछ भी लिखा वह श्रीधरीटीका के अनुकूल ही है।

चैतन्य महाप्रभु के शिक्षाष्टक शीर्षक आठ श्लोको का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इन्ही आठ श्लोको मे चैतन्यमत का स्वरूप-ज्ञान निहित है। चैतन्य सम्प्रदाय मे भागवत के अनुसार कृष्ण को परब्रह्म माना गमा है तथा कृष्ण और जीव के सम्बन्ध को भक्ति कहा गया है। चैतन्यमत के अचिन्त्य भेदाभेद की व्याख्या कृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्यचरितामृत मे निम्नलिखित शब्दो मे की है —

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेद प्रकाश ॥

भक्ति के क्षेत्र मे जाति पाँति का बन्धन महाप्रभु को स्वीकार्य नही है जैसा कि उन्होने स्वय कहा है —

नाह विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो,
नाह वर्णो न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।

किन्तु प्रोद्यन्निखिल परमानन्दपूर्णामृताब्धे -
गोपीभर्तु पदकमलयोर्दासदासानुदास ॥

अर्थात्—मैं ब्राह्मण नही, क्षत्रिय नही, वैश्य या शूद्र नही हू। मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या सन्यासी भी नही हूँ। किन्तु मैं स्वयप्रकाश निखिल परमानन्दपूर्ण सुधासिन्धु स्वरूप गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण-चरणारविन्द के दास का भी दासानुदाम हूँ।

श्रीमद्भागवत की भक्ति का यही मूलतत्त्व है कि उसमे जाति-पाँति का कोई स्थान नही है। यही कारण है कि चैतन्य मत के अनुयायियो ने सभी वर्ग तथा धम के लोगो को भक्ति की शिक्षा दी। जगन्नाथपुरी मे तो आज भी सभी जातियो के लोग एक ही पक्ति मे बैठकर भगवान् का प्रसाद ग्रहण करते है। चैतन्यमत की सबमे बडी विशेषता यह है कि उसके द्वारा भक्ति मे हरिनाम सकीतन को महत्त्व प्राप्त हुआ। श्रीकृष्णदास कविराज ने हरिनाम सकीतन को ही नवधाभक्ति का सवश्रेष्ठ साधन बतावा है —

भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति। कृष्ण-प्रेम कृष्णदिते धरे महाशक्ति॥
तार मध्ये सवश्रेष्ठ नाम सकीतन। निरपाराधे नाम लैले पाय प्रेमधन॥

हरिनाम सकीतन भक्ति का अग तो बहुत प्राचीनकाल से रहा था, परन्तु उसमे नूतन शक्ति-सचार करने का काम चैतन्यमत ने किया। भगवान् कृष्ण की लीलाओ का अष्टकालीन विवरण भी चैतन्यमत द्वारा ही प्रस्तुत किया गया। श्रीमद्भागवत मे भगवान् की नैमित्तिक लीलाओ का ही विवेचन हुआ है, नैत्यिक लीलाओ का नही। इसी अभाव की पूर्ति के लिए रूपगोस्वामी ने 'स्मरण-मगल स्तोत्र' की रचना की थी। इसी स्तोत्र के आधार पर चैतन्य-मतानुयायी कवियो ने अनेक अष्टयाम ग्रन्थो की सजना की। चैतन्यमत की दूसरी विशेषता भक्ति भाव को भक्ति रस मे परिणत करना है। इस परिणति को शास्त्रीयता प्रदान करने के लिए इस मत मे कितने ही ग्रन्थ लिखे गये। राधा तत्त्व का भी चैतन्य सम्प्रदाय मे विशेष महत्त्व है। यह तत्त्व ऐसा है, जिसका स्पष्ट उल्लेख श्रीमद्भागवत मे नही मिलता। सभवत इसीलिए वृन्दावन के गोस्वामियो ने इस तत्त्व को श्रुतियो, स्मृतियो, तत्रो और पुराणो मे खोजने का प्रयास किया। निम्बाक-मत के राधा-तत्त्व की खोज तथा प्रकार चैतन्य मत से भी प्राचीन है। चैतन्यमत मे राधा-तत्त्व, कृष्ण-तत्त्व का भी सहायक है और दोनो मे अभेद है जैसा कि चैतन्य-चरितामृत में लिखा है —

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव। भावेर परम काष्ठा नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुरानी। सवगुण खानि कृष्णकाता शिरोमणि॥
कृष्ण प्रेमे भावित जार चित्तेन्द्रिय काय। कृष्ण निज शक्ति राधा क्रीडार सहाय॥
राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नाहिं शास्त्रेर प्रमाण॥
राधा कृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप। लीला रस आस्वादिते धरे दुइरूप॥

चैतन्यमत मे स्वीकृत परकीया भक्ति के सम्बन्ध मे यह प्रश्न किया जा सकता है कि वह कहाँ तक भागवत-सम्मत है? इसका उत्तर सामान्य रूप से तो वही हो मकता है जो शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को दिया था कि भगवान् सब प्रकार के दोषो से मुक्त हैं, परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि चैतन्य मत की परकीया भक्ति पर बौद्धो के सहजयान, शाक्तमत तथा सहजिया सम्प्रदाय का प्रभाव है। चैतन्यमत का साहित्य विशेष कर सस्कृत तथा बगला मे ही लिखा गया है, ब्रजभाषा मे भी इस मत के साहित्य की मात्रा कम नही है। बहुत दिनो

तक यह समझा जाता रहा था कि ब्रजभाषा मे चैतन्यमत का साहित्य नगण्य ही है, परन्तु इधर चैतन्यमत के ऐसे शताधिक कवियों की रचनाएँ मिली हं जो ब्रजभाषा मे लिखी गयी हैं, उनमे से अनेक बडी सरस और भक्तिरस पूर्ण है। इन स्वतत्र पदावलियो के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत और गीत गोविन्द के कई अनुवाद भी प्राप्त हुए हैं। भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर श्रीकृष्ण की विविध लीलाओ का वर्णन भी अनेक रचनाओ मे हुआ है। हम यहाँ कुछ प्रमुख कवियो की रचनाओ का विवरण प्रस्तुत करते हैं —

माधवदास जगन्नाथी

श्री जगन्नाथ जी के परमभक्त और प्राय जगन्नाथपुरी मे रहने के कारण ये माधवदास जगन्नाथी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस मत के प्रारम्भिक ब्रजभाषा कवियो मे ये प्रमुख है। इनका जीवन-वृत्तान्त, साहित्य-सर्जन और देहावसान का यथाथ काल अनिश्चित है। भक्त कवि हरिराम व्यास (स० १५६७–१३६६) के पिता सुमोखन शुक्ल को इनका शिष्य कहा जाता है। स्वय व्यास जी के सदेहों की निवृत्ति भी इन्होने ही की थी —

श्री माधवदास सरन मै आयौ।
हौ अजान, ज्यो नारद ध्रुव सो कृपा करी, सदेह भगायौ ॥

माधवदास जी परम भक्त और विरक्त सन्यासी थे। सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् भक्ति शास्त्रो के ज्ञाता और अनेक ग्रथो के रचयिता थे। सस्कृत साहित्य मे जो स्थान महर्षि द्वैपायन व्यास का है, वही चैतन्यमत के ब्रजभाषा साहित्य मे माधवदास का है। वेद विभाग कर भागवतादि अष्टदश पुराणों के रचयिता महर्षि व्यास जी की भाँति इन्होने महाभारत, इतिहास कथासार समुच्चय जैसे अनेक विशाल ग्रन्थो को शोधकर उनके भाषानुवाद प्रस्तुत किए, जैसा कि नाभादास जी ने इनके बारे मे लिखा है —

पहिलै वेद-विभाग कथित, पुरान अष्ट दस।
भारतादि भागवत मथित उद्धारयौ हरि-जस ॥
अब सोधे सब ग्रन्थ, अर्थ भाषा विस्तारयौ।
लीला जै जैसे जैति गाय, भव पार उतारयौ ॥
जगन्नाथ इष्ट वैराग्य सीव, करुना रस भीज्यौ हियौ।
बिनै व्यास मनो प्रगट ह्वै जग कौ हित 'माधौ' कियौ ॥

(भक्तमाल, छप्पय स० ७०)

इस समय इनकी निम्नलिखित छोटी-बडी पुस्तकें प्राप्य हैं —

इतिहास कथासार समुच्चय का खडित अश, नरायन लीला, जगन्नाथ माहात्म्य, ग्वालिन झगरौ, परतीत परीच्छा, मदालसा आख्यान आदि साधारण सी रचनाएँ, अनेको स्फुट पद तथा लोक काव्य की विविध रचनाएँ।

ये घुमक्कड प्रवृत्ति के थे अत इनकी रचनाओं मे कई भाषाओ और बोलियो के शब्द भी मिलते हैं। उपलब्ध रचनाओ मे राधा-कृष्ण तथा गोपियो से सम्बद्ध इनकी दो सक्षिप्त रचनाएँ 'ग्वालिन झगरौ और परतीत परीच्छा' है।

'ग्वालिन झगरौ' से एक उदाहरण द्रष्टव्य है —

कृपावत भई सारदा, भई बुद्धि परगास।
झगरत आई ग्वालिनी महरि जसोधा पास॥
तुम्हारै ई राज है॥१॥

अहो जसोदा हमन गाँम को बसिवौ हि छाड्यौ।
निकरन हमे न देत, जितै तित होतहि आडौ॥
बरजि जसोधा लाडिले, जो तुम दियो सिखाय।
कौतुम अपने लाल के, तुम देखौ जसोधा माय॥
तुम्हारै ई राज है॥२॥

परतीत परीच्छा द्वारा राधा की परीक्षा का यह पद द्रष्टव्य है —

राधा बाधा दूर करि, साधा सिगरे काम।
आराधा श्रीकृष्ण जू, सुमिरत आठो जाम॥
× × ×
एक दिना नन्दलाल, मन मे करी जु इच्छा।
लैन राधिका पै च, लै परतीत—परीच्छा॥
× × ×
क्यो मेरी साँवल सखी, तेरौ बदन बिहाली।
काहे ते तू उनमनी, कहि मेरी आली॥
कै आवत तोहि स्रम भयो, कर चरन दबाऊँ।
कै तोहि लागी लपट है, घसि चन्दन लाऊँ॥

कुछ अन्य छोटी छोटी रचनाएँ बाल लीला, जानराय लीला, ध्यान लीला आदि है।

आनन्दघन

ब्रजभाषा साहित्य मे आनन्दघन नाम के कई कवि हुए है, जिनमे लगभग सौ-सौ बर्षों के अन्तर से विद्यमान तीन आनन्दघन प्रसिद्ध है। प्रथम चैतन्यमतानुयायी आनन्दघन १६ वी शती के उत्तरार्द्ध मे ब्रज के नन्दगाँव मे रहते थे, दूसरे जैनी आनन्दघन (महात्मा लाभानन्द जी) १७ वी शती के उत्तरार्द्ध मे तथा सुजान प्रेमी आनन्दघन १८ वी शती में ब्रज के वृन्दावन में निवास करते थे। इनके वशज खरोट और नन्दगाँव मे निवास करते है और अब भी इनके द्वारा स्थापित नन्दगाँव के मन्दिर की पूजा करते है और श्री चैतन्यदेव में श्रद्धा रखते है।

आनन्दघन के नाम के उपलब्ध पदो मे से अधिकतर सुजस प्रेमी आनन्दघन के बताये जाते हैं, परन्तु अनेक पद इनके भी हैं। इनकी कोई विशिष्ट रचना नही मिलती। श्री चैतन्य देव की वन्दना का निम्नाकित पद उनका रचा हुआ माना जाता है, जो कुछ पाठ भेद से सुजान प्रेमी घनानन्द की पदावली मे भी सकलित है —[1]

[1] 'घनानन्द पृ० ४४६ पद स० ५१४

श्री चैतन्य दयानिधि धीर ।
कलि कालीन मलीन दीन जन पावन करन परम गभीर ।।
पूरन चन्द नन्दनदन कौ उदै, सदा उमगन की भीर ।
बोहित नाव चढाये बहु जन, प्रेम मगन करि पठये तीर ।।
भाव-तरग अभग-भग गति, महा मधुर रस रूप सरीर ।
निज जन रतन जाल युत राजत, धुन-हुँकार उसाँस समीर ।।
त्रिविध ताप ते जरे जीव जे, सीतल किये परस पद-नीर ।
करुना दृष्टि-वृष्टि सो सीचे, जय-जय जय 'आनन्द मुदीर' ।।

इनके द्वारा रचे गये कुछ पदो का गायन नन्दगाव के मन्दिर मे भी किया जाता है ।

रामराय

नाभाजी ने इन्हे सारस्वत ब्राह्मण, भक्त, विरक्त और साधुसेवी सज्जन बताया है । उनके जीवन वृत्तान्त, सम्प्रदाय आदि के बारे मे कुछ नही लिखा है —

भक्ति ज्ञान बैराग, जोग अन्तरगति पाग्यौ ।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह मतसर सब त्याग्यौ ।।
× × ×
बिप्र सारसुत घर जनम, रामराय हरि-रति करी ।।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अन्तगत 'रामराय हित भगवान दास' की वार्ता से इतनी पुष्टि होती है कि ये गो० विट्ठलनाथ जी के सेवक और चैतन्य मतानुयायी, आगरा के सूबेदार के दीवान भगवानदास जी के पुरोहित थे । इस वार्ता में इन्हे बल्लभ सम्प्रदायी बताया गया है, किन्तु चैतन्य मत मे उन्हे श्री नित्यानन्द जी का शिष्य और श्री चैतन्यदेव का अनुगामी माना जाता है । वृन्दावन के श्री यमुनावल्लभ जी ने रामराय जी कृत 'आदिवाणी' और 'गीत गोविन्द भाषा' का प्रकाशन किया है । वे अपने को इन्ही रामराय जी का वशज बताते है । उनके अनुसार गीतगोविन्द कार जयदेव की १४ वी पीढी मे रामराय जी हुए । इनके अनुज चन्द्र गोपाल जी इ ही के प्रेरणा से गौर चरणाश्रित हुए —

गौर-चरन की रति दई, दई दास-गति मोय ।
बलिहारी ता बन्धु की, जा सम कोऊ न होय ।।

ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली', चैतन्यमतानुयायी प्रियादास कृत 'भक्तमाल टीका' चैतन्य भागवत, चैतन्य चरितामृत आदि ग्रथो मे जहाँ चैतन्य मत के भक्तो की वृहद् नामावलियाँ दी हुई है वहाँ रामराय जी का नामोल्लेख नही है । यमुनावल्लभ जी द्वारा प्रकाशित 'आदि वाणी' की भूमिका मे चैतन्यमत के गण्यमान्य विद्वान जीव गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत रामराय जी की वदना के दो श्लोक इस प्रकार दिये गये है —

(१) वन्दे श्री परमानन्द भट्टाचाय रसालयम् ।
रामराय तथा वाणी विलासञ्चोपदेशकम् ।। (श्री जीव गोस्वामी कृत 'तोषिणी')

(२) श्रीमद् गदाधर नमो, नृहरे नमस्ते ।
श्री रामराय नम एव नम स्वरूप ।।
श्री रूप सानुग नमोम्तु नमोस्तु तुभ्य ।
श्रीमत्सनातन नमोस्तु नमो नमस्तु ।। (श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत 'दशम टीका')

स्वय रामराय जी ने 'गीत गोविन्द भाषा' और 'आदि वाणी' के मगलाचरण मे चैतन्य महाप्रभु एव उनके प्रमुख सहकारियो की वन्दना की है—

वन्दो श्री गुरु गौर पद जगमग जोति अभग ।
मिल अनगमजरि सहित, एक अग दो रग ।। ('गीत गोविन्द भाष' क । मगलाचरण)
मगल जय श्री गौर किसोर ।
मगल श्री वृन्दावन-भूषन, राधा-भाव रसिक रस बोर ।।
नित्यानन्द अद्वैत गदाधर, श्री बासादि चतुर चित चोर ।
मगल महाभाव भावित तन, रूप सनातन हिये हिलोर ।।

रामराय जी सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् और ब्रजभाषा के सर्वोत्कृष्ट वाणीकार थे । उनकी सस्कृत रचनाएँ ब्रह्मसूत्र के आरम्भिक चार सूत्रो पर गौरविनोदिनी वृत्ति, गीता पर गौर भाष्य, स्तवपचकम् और गोविन्द तत्त्व दीपिका कही जाती हैं । इनकी ब्रजभाषा रचनाएँ 'आदि वाणी' और 'गीत गोविन्द भाषा है —

(१) आदि वाणी—चैतन्य मत के प्रथम वाणीकार होने से ही कदाचित् रामरायजी श्री राधा माधव के सेवा विषयक १०१ सरस पदो के सकलन को 'आदि वाणी' कहा जाता है । ब्रह्मगोपाल कृत 'बारह वैष्णवन की वार्ता' मे इसके रचना-काल और पद-परिमाण के बारे मे यह लिखा है—

सवत पन्द्रहसौ रुचिर, सत्तर सावन मास ।
भई आदि बानी सही, एक सहस पद रास ।।

परन्तु 'आदि बाणी मे, एक सहस पद नही मिलते है । इसका रचना-काल भी सदिग्ध ही है ।

रामरायजी के पदो की भाषा परिमार्जित और रचना शैली प्रौढ है । इनका वण्य विषय प्रिय-प्रिया का मधुर मिलन, रस-केलि, निकुज-लीला आदि है—

(अ) ललित लता मन्दिर के आँगन, प्रात समै राजत पिय प्यारी ।
प्रतिम कौ पट पति प्रिया पै, ओढै लाल प्रिया का सारी ।।
सिथिल सरीर नखर उर अकित, बिथुरी अलकन की छवि न्यारी ।
उठत अनग तरगनि की द्युति, अग-अग रुचि मगलकारी ।।
करत विशाखा चमर चतुर इत, उत ललिता ठाडी लिएँ भारी ।
निरखत 'रामराय' दपति छवि, नैन-चकोरी टरत न टारी ।।

(ब) मुकुट मनि चद्रिका स्याम स्यामा बनी ।
पालक अलकन लुकी, तिलक झलकन झुकी,
कमल कु डल रुकी, ललक भृकुटी तनी ।
अधर दर कदरी, सुघर वर सुन्दरी,
जुगल गल चँदरी, धबन्न हीरन खनी ।।
चटक पट केसरी, नील नव वेस री,
कनक नकबेसरी, मनिक मुक्ता मनी ।
जटित ककन करन, पगन नूपुर धरन,
मदन मन हरन, 'रामराय' करि करधनी ।।

(२) गीत गोविन्द भाषा—श्री जयदेव कृत संस्कृत 'गीत-गोविन्द' का ब्रजभाषा के पदो और छ दो मे श्री रामरायजी ने अत्यन्त सरस, सुन्दर और सफल अनुवाद किया है। इसका रचना-काल इसकी पुष्पिका के अनुसार स० १६२२ वैशाख मास है।[1]

पचम सग के श्याम विरह का अनुवाद दशनीय है—

श्री राधे तव वियोग बनमाली।
काम सहाय बनाय मलय की, वायु बहति दुखसाली ।।१।।
विरही हिये विदारन करन, कुसुमकली किलकारी।
पीडा मरन समान दे रही, चद किरन चिनगारी ।।२।।

× × × ×

राधे-राधे नाम कोऊ तिन सन्मुख सहज बखानै।
तब सब सो तजि प्रीति पियारो, सुनत ताहि दै कानै ।।७।।
श्री जयदेव कवीश्वर हरि के, विरह विलास उचारे।
'रामराय' जा पुन्य तिनही के प्रगट होहिं पिय प्यारे ।।८।।

सूरदास मदनमोहन

ब्रजभाषा साहित्य मे चैतन्यमत के भागवतानुसारी रससिद्ध कवियों मे सूरदास मदन-मोहन का विशिष्ट स्थान है, कि तु उनका प्रामाणिक जीवन वृत्त अनुपलब्ध ह। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों मे 'भक्तमाल', प्रियदासकृत, 'भक्ति रस बोधिनी' और नागरीदास कृत 'पद-प्रसग माला' के अनुसार किम्बदन्तियो पर आधृत उनका अपूर्ण जीवन-वृतान्त लिखा गया है। इनके गेय काव्य की बडी प्रशसा की जाती है। अष्टछापी सूरदास के बाद इन्ही की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। यद्यपि मध्यकालीन भक्ति साहित्य मे सूरदास नाम के कई भक्त कवियो की रचनाएँ मिलती हैं, कालान्तर मे अष्टछापी भक्तकवि सूरदास की व्यापक प्रसिद्धि और लोकप्रियता के कारण अन्य सूरदासो की कतिपय रचनाएँ भी नाम-छाप के परिवतन के साथ सूरसागर मे मिल गयी।

प्रियादास और नागरीदासजी ने जो कुछ उनके बारे मे लिखा है, उससे पता चलता है कि वे सूरध्वज ब्राह्मण थे। मुगल सम्राट् अकबर के शासन-काल में सडीला परगना के अमीन थे। वृन्दावनस्थ सनातन गोस्वामी के उपास्य ठाकुर मदनमोहनजी उनके इष्ट तथा चैतन्य महाप्रभु उनके आराध्य थे।

'एक सूरधज ब्राह्मण गृहस्थ उनके नेत्र तो आछे हे, परन्तु नाम सूरदासजी, पातसाही एक परगना के दिवान हे। एई सूरधज सूरदास गृहस्थ को त्याग करि वृन्दावन आय बैठे। ठाकुर श्री मदनमोहन जी के सेवक आसक्तवान हे।'

(नागरीदास कृत 'पद-प्रसग माला')

१ सवत् सोलहसौं बाइस, रितु बसन्त सरसाई।
माधवमास राधिका माधव, की जहि लीला गाई ।।

इनके विषय मे प्रसिद्ध है कि उन्होने सरकारी मालगुजारी का तेरह लाख रुपया साधु-सेवा मे व्यय कर दिया और सरकारी खजाने मे दाखिल करते समय पेटियो में ककड-पत्थर भर दिया और इस आशय का एक पत्र भी रख दिया—

तेरह लाख सडीले उपजे, सब साधुन मिल गटके ।
सूरदास मदनमोहन, वृन्दावन को सटके ।।

स्वय विरक्त होकर वृदावन रहने लगे। यह घटना कम से कम तत्कालीन भक्ति सम्प्रदायो के व्यापक प्रभाव का परिचय देती है ।

सूरदास मदनमोहन ने किसी ग्रथ की रचना न कर स्फुट पद ही रचे थे। कहा जाता है कि उ होने भागवत दशमस्कन्ध का ब्रजभाषा मे अनुवाद भी किया था, जिसका कुछ अश काकरौली विद्या विभाग मे है। उन्होने शृ गार-भक्ति के अनेक सरस और मधुर पदो की रचना की है, जिनमे उनकी नाम-छाप के साथ उनके उपास्य ठाकुर मदनमोहन जी का नाम भी सम्मिलित है। इनके पदों मे राधा कृष्ण की केलि-क्रीडाओ, दान, मान, अनुराग, बसत, होली फूलडोल आदि का सरस और मनोरम वर्णन हुआ है, कुछ पद बाललीला के भी मिलते है इनमे सगीतात्मकता अधिक होने से ये कीतन-मडलियो और सगीत गोष्ठियो मे प्रिय है और विभिन्न सम्प्रदायो की कीतन-पोथियो मे सकलित हैं। इनके कतिपय पद नीचे उद्धृत हैं—

(क) झनक-मनक चलै तनक से छगना।
न्हैनी न्हैनी सोहति दूध की दतियाँ,
किलकि-किलकि लागै छतियाँ रज झारत री झपगना ।।
गोद लिएँ हलराय खिलावै,
ग्रीवा लावै, कठ सोहै सुभ बघना,
'सूरदास मदनमोहन' सग लागी लागी डोलै,
लाडिलो घुटुरुवन रेगत री अँगना ।।

(ख) तैं कहूँ दई हो दिखाई, तब तै स्याम भूल्यो री बन को जाइबो ।
ग्वालन सग चले जात, चौंकि चौंकि चकित, थकित भए, उत पग न परत इत आइबो ।।
जब हरि इहिं मारग ह्वै निकसे, ता छिनु री तेरो चिताइबो ।
आधी-मुख, आधी कर-पल्लव बीरी गहै लालन दसन खडि कैसो खाइबो ।।
अज हूँ निकसि, दरस दै री सुखनिधि, छाडि दै री बातन बनाइबो ।
'सूरदास मदनमोहन' पिय तै किए प्रीति वस, अब छाँडहिं नाँच नँचाइबो ।।

(ग) कबहुँ हरषि, कबहू डरपति सी, कबहु क्रोध-आँसू ढारति,
स्याम ! समुझो जू, यह कौन भाव ।
नही मान, अभिमान नही और नहिं हठ, नहिं रिस,
रस नही, तुम ही जानौं वाको सुभाव ।।

बहुत बेर मैं ही जु मनाई, अबकैं मे देखी औरै कछु
तब मेरे जिय उपज्यौ आन उपाव।
'सूरदास मदनमोहन' प्रभु आपुन ही चलियैं, सोच कहा ?
सोई खेल खेलिए, जैसोई परै दाव ।।

गदाधर भट्ट

चैतन्य मतावलम्बी ब्रजभाषा के अन्य कवियो की भाँति ही नाभाजी, ध्रुवदास, नागरीदास, भगवत रसिक प्रभृति भक्त कवियो के उल्लेखो से गदाधर भट्ट जी के जीवन वृतान्त पर कोई विशेष प्रकाश नही पडता। हिन्दी साहित्य के विद्वानो ने भी उनके सम्बन्ध मे बहुत कम लिखा है, उल्लिखित काल-क्रम भी भ्रमात्मक ही है। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रथकार उन्हे चैनन्य महाप्रभु के समकालीन, उनके दीक्षा प्राप्त शिष्य और उ हे भागवत की कथा सुनाने वाले मानते हैं। वास्तविकता यह है कि महाप्रभु को भागवत सुनाने वाले गदाधर पडित गोस्वामी थे न कि गदाधर भट्ट। इस भ्रम का मूल दोनो का नाम साम्य ही है। गदाधर भट्टजी रघुनाथ भट्ट गोस्वामी के शिष्य थे जो वृन्दावन की भक्त मण्डली को भागवत की कथा सुनाया करते थे। इन्हे महाप्रभु से साक्षात्कार का सुयोग नही मिला क्योकि जब वे वृन्दावन गये थे, उससे पूव ही चैतन्यदेव का तिरोधान हो चुका था। ये जीव गोस्वामी जी की प्रेरणा से वृन्दावन आकर रघुनाथ भट्ट के शिष्य हुए थे। जीव गोस्वामी जी के वृन्दावन आने का समय स० १५९८ और रघुनाथ भट्ट के देहावसान का समय स० १६२० बताया गया है। इसी बीच वे किसी समय वृन्दावन आये होगे। वृन्दावन आगमन से पूव उन्हे सस्कृत और ब्रजभाषा काव्य मे निपुणता और भक्ति मार्ग मे प्रवीणता प्राप्त हो चुकी थी। इनकी वश-परम्परा की विद्यमानता से यह निश्चित है कि ये विवाहित और गृहस्थ थे। सुप्रसिद्ध सस्कृत ग्रन्थ 'प्रेम पत्तन' के प्रणेता रसिकोत्तस और ब्रजभाषा के विख्यात वाणीकार वल्लभ रसिक इनके पुत्र कहे जाते हैं। इनके प्रारम्भिक जीवन के बारे मे कुछ भी ज्ञात नही हो सका है। इनकी रचनाओ से निश्चित है कि इन्होने सस्कृत की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी तथा श्रीमद्भागवत और भक्तिमार्गीय ग्रथो का अनुशीलन किया था। गृहस्थ धम का अनासक्ति भाव से पालन करते हुए ये ब्राह्मणोचित धम मे सलग्न थे।

ब्रजभाषा साहित्य मे सूरदास की ही भाँति गदाधर नाम के कितने ही भक्त और कवि मिलते हैं। फलत एक की जीवनी व रचनाओं का समावेश दूसरे मे सरलता से हो जाता है। गदाधर पडित गोस्वामी के जीवन वृत्त को लेकर इतिहासकारो ने गदाधर भट्टजी का काल-निर्धारण गलत कर दिया। अन्य कवियो मे गदाधर मिश्र ब्रजवासी और गदाधरदास द्विवेदी वल्लभ सम्प्रदायी हैं प्रथम के कुछ कीतन पद हैं, दूसरे का 'सम्प्रदाय प्रदीप' ग्रथ। बाबा कृष्णदास ने 'गदाधर भट्ट की वाणी' प्रकाशित की है। इन्होने कुछ स्फुट पदो की रचना की, परन्तु इनमे उनकी काव्य प्रतिभा प्रकट हो जाती है सस्कृत कोमल कात पदावली के साथ ब्रजभाषा की मधुर शब्दावली का सम्मिश्रण इनकी सबसे बडी विशेषता हैं। इनकी वाणी मे माधुय भक्ति और ब्रजरस का समुचित परिपाक हुआ है। इनके एक दो पद नीचे उद्धृत हैं —

(१) जयति श्री राधिके, सकल-सुख-साधिके,
तरुन-मनि, नित्य नव तन किसोरी।

कृष्ण-तन-लीन मन, रूप की चातकी,
कृष्ण-मुख-हिम किरन की चकोरी ।।
कृष्ण-दृग-भृङ्ग विस्राम हित पद्मिनी,
कृष्ण दृग मृगज बधन सुडोरी ।
कृष्ण-अनुराग-मकरद की मधुकरी,
कृष्ण-गुण-गान रससिंधु बोरी ।।
बिमुख पर चित्त तें चित्त जाको सदा,
करति निज नाह को चित्त चोरी ।
प्रकृति यह 'गदाधर' कहत कैसे बनै,
अमित महिमा, इतै बुद्धि थोरी ।।

(२) झूलति नागरि नागर लाल ।
मद-मद सब सखी झुलावति, गावति गीत रसाल ।।
फरहरात पटपीत नील के, अचल चचल चाल ।
मनहुँ परस्पर उमगि ध्यान छबि, प्रकट भई तिहिं काल ।।
सिलसिलात अति प्रिया सीस ते, लटकत बेनी नाल ।
जनु पिय-मुकुट बरहिं भ्रम बस तहँ, ब्याली विकल बिहाल ।।
मल्ली-माल प्रिया की उरझी, पिय तुलसीदल माल ।
जनु सुरसरि रवि तनया मिलिकैं सोभित स्रेनि मराल ।।
स्यामल गौर परस्पर प्रति छबि, सोभा विसद विसाल ।
निरखि 'गदाधर' रसिक कुँवरि मन, परचौ सुरस जजाल ।।

चन्द्रगोपाल

गत पृष्ठो मे हम कह आये हैं कि चन्द्रगोपाल अपने अग्रज रामराय जी की प्रेरणा से गौराग-चरणो मे आस्था रखने लगे और चैतन्य मतानुयायी हो गये जिसके लिए उन्होने अपने अग्रज का आभार प्रकट किया है —

दोहा — अब बन्दौं दादा-चरन, रामराय जिन नाम ।
कृपा भाव रस दान करि, समुझायौ जहि ग्राम ।।
गौर-चरन की रति दई, दई दास-गति मोय ।
बलिहारी ता बधु की, जा सम कोऊ न होय ।।

भक्तमाल', प्रियादास जी की 'भक्तमाल टाका' तथा उस काल की भक्त नामावलियों और मिश्रबन्धु विनोद, 'ब्रजमाधुरीसार' तथा हिन्दी साहित्य के विविध इतिहास ग्रन्थो मे भी उनका नामोल्लेख नही है । इस प्रकार ये हिन्दी जगत के लिए एकदम अपरिचित भक्त-कवि हैं । रामराय जी की भाँति ही इनका जीवन वृत्तान्त और रचनाओ का परिचय वृन्दावन निवासी श्री यमुनावल्लभ जी (जिनका उल्लेख गत पृष्ठों मे हो चुका है और जो स्वय को गीतगोविन्दकार जयदेव के वशज, इन्ही चन्द्रगोपाल जी की वश परम्परा मे मानते हैं ।)

की सामग्री से ही मिलता है। ये अवस्था मे रामराय जी से १२ वष छोटे थे। रामनवमी को इनका जन्म स० १५५२ मे लाहौर मे हुआ। प्रभुदयाल मीतल इनका जन्म स० १५७२ वि० के पूव नही मानते। वृ दावन बस जाने पर रामराय जी ने इन्हे भी वही बुला लिया। ये अपने उपास्य श्री राधामाधव जी के विग्रह और अपनी पत्नी सहित वृन्दावन आ गये। इनके पुत्र राधिकानाथ तथा शिष्य रसिकमोहनराय तथा अन्य वशज ब्रजभाषा के बडे अच्छे कवि हुए हैं।

रामराय जी की भाति ही ये भी सस्कृत के विद्वान और ब्रजभाषा के बहुत अच्छे भागवतानुसारी कवि थे। इनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं—

सस्कृत रचनाएँ—(१) श्री राधा माधव भाष्य (२) गायत्री भाष्य (३) श्रीराधा माधवाष्टक है। श्री राधामाधव भाष्य ब्रह्मसूत्र के उन आरम्भिक ४ सूत्रो का भाष्य है, जिन पर रामराय जी ने 'वृत्ति' लिखी थी।

ब्रजभाषा रचनाए—(१) चन्द्र चौरासी (२) अष्टयाम सेवा सुधा (३) गौराग अष्टयाम (४) ऋतु-विहार (५) राधा-विरहये सभी रचनाएँ सरस भावपूण और ब्रज-भाषा की कोमल-कात पदावली युक्त हैं।

(अ) चन्द्र चौरासी—श्री हितहरिवश जी की 'हित चौरासी' के आधार पर 'चन्द्र चौराशी' नाम रखा गया प्रतीत होता है। इसमे सिद्धान्त, उत्सव और नित्य सेवा सम्बन्धी ८४ पद हैं और प्रत्येक के साथ एक दोहा लगा हुआ है।

जैसे—

दोहा—कितने-कितने रस लिये, कौन कौन सी कुंज।
बतरावत आवत अली, गली-गली छवि पुज॥

पद—अरी अब कौन कुज के माही।
विलसत गौर किसोर चोर चित, लिये दिये गलबाही॥
बतरावत आवत जो पूछत, सो बतात जब नाही।
अपनी-अपनी बातन भूली, एक तान चित लाही॥
मेला मच्यौ डगर मे दीसत, कोनु दरसन हित जाही।
श्री प्रभु 'चन्द्र' कलिद सुता की, छटा छई परछाही।

(आ) अष्टयाम सेवा-सुधा—

इसमें ३५ पद हैं, एक उदाहरण दिया जाता है—

श्री राधा-माधव मुसिक्यात।
परम सरस सुभ सुरति विजय, जुत मानत मोद प्रभात।
स्रमकन बिदु वदन पर सोहत, अविचल भूषन गात॥
अलक कुटिल मुख पकज ऊपर, मानहु अलि बलि जात।
श्री प्रभु 'चन्द्रगोपाल' स्वामिनी, नैनन मे हरसात॥

(इ) गौरागण अष्टयाम--

यथा—

[स्नान] राग विलावल

करहु हे गौर चन्द स्नान ।
सीतल जल निमल सो सुन्दर सवस कृपा निधान ।
अतर गुलाब आव सो सुखकर, परम रम्य सुरमान ।।
श्री नित्यानन्द महाप्रभु सग मिल, मुदित प्रेम धीमान ।
श्री प्रभु 'चन्द्रगोपाल' सची-सुत, निज जन-जीवन-प्रान ।।

(ई) ऋतु बिहार—ऋतु बिहार मे षट ऋतुओ के बिहार का वर्णन किया गया है –

[बसत]

श्री राधा-माधव जुगल, प्रेम बिहार निहार ।
सखी सहेली कुज मे, करत रहत बलिहार ।।
करत रहत बलिहार, निरखि कुसुमाकर अनुचर ।
श्री राधा सुकुमार, स्याम सुन्दर सेवन कर ।।
× × ×
नवल नेह जोरी कियौ, नव उत्सव अनुराग जस ।
श्री प्रभु 'चन्द्र' मिलाप नव वसत ऋतु प्रियावस ।।१।।

(उ) श्री राधा विरह —मे एक सौ अरिल्ल छन्दो मे राधा विरह वर्णित है—

'चन्द्र' गुसाई करी अरिल्लै एक सौ ।
मुजरा मुहरा मिल वो, तिनकौ एक सौ ।।

चैतन्य मत के ब्रज भाषा साहित्य की भागवतानुसारी काव्यधारा श्री रामराय जी के बारह और श्री चन्द्रगोपाल जी के ४ शिष्यो द्वारा प्रवाहित होती रही, इनमे भी रामराय जी के दो प्रमुख शिष्य भगवानदास और राधिकानाथ तथा चन्द्रगोपाल जी के शिष्य रसिकमोहन-राय की त्रिवेणी द्वारा इसका पावन पुनीत तीथराज बना । एक प्रचलित छन्द के अनुसार रामराय जी के १२ शिष्य क्रमश इस प्रकार थे—

भक्ति भगवानदास, ज्ञान को गरीबदास[२]
बाँके वैराग विष्णुदास[३] के दिखाने है ।
जोग को जुगलदास[४], अ तरगति राधानाथ[५]
काम को किसोर[६] क्रोध केशव को माने है ।।
मद को मनोहर[८], लोभ लाखादास[९], मोह मधु[१०],
मत्सर हरिदास[११] त्याग तीरत्र[१२] पिछाने हैं ।
कथा तत्त्व भागवत, कीतन सुख 'रामराय'
जा विधि सो द्वादस गुरु सग लिपटाने हैं ।।

रामराय परिकर के इन सोलह भक्त कवियो का ब्रजभाषा म विशाल साहित्य प्राप्त होता है। भागवत के सामान्य तत्त्वो के विवेचन क अतिरिक्त इनकी रचनाओं मे वृन्दावन महिमा, रूप माधुरी प्रेम निरूपण आदि का भी बडा सुदर वर्णन प्राप्त होता है। चैतन्य महाप्रभु की प्रशस्ति भी इन भक्त कवियो का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है।

श्री भगवत मुदित (सत्रहवी शती)

चैतन्य मतावलम्बी ब्रजभाषा के पिछले खेवे के कवियो मे आगरा निवासी प्रसिद्ध भावुक भक्त माधव मुदित जी के सुपुत्र भगवत मुदित जी हुए हैं। राजकीय कर्मचारी होते हुए भी भगवत मुदित उच्च कोटि के भक्त थे। नाभादास जी ने इनके बारे मे इस प्रकार लिखा है—

कुंज बिहारी केलि सदा अभ्यंतर नासै।
दम्पति सहज सनेह, प्रीति परिमिति परकासै ॥
अनन्य भजन रस रीति, पुष्टि मारग करि देखी।
विधि-निषेध बल त्यागि, पागि रति हृदय विसेखी ॥
माधव-सुत सम्मत रसिक, तिलक दाम धरि सेव लिय।
भगवत मुदित उदार जस, रस रसना आस्वाद किय ॥

चैतन्य मतावलम्बी होते हुए भी हित हरिवश जी और उनके राधावल्लभीय सिद्धात के प्रति उनकी निष्ठा थी। इसीलिए चैतन्यदेव की वन्दना के उपरात उन्होंने हितहरिवश के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है—

प्रनवौं श्री चैतन्यवर, नित्यानन्द सरूप।
श्री हरिवस प्रतापबल, बरनौ कथा अनूप ॥
(रसिक अनन्य माल)

इनकी असदिग्ध रचनाएँ दो है —
(१) वृदावन शतक टीका।
(२) रसिक अनन्य माल।

वृन्दावन शतक की टीका प्रबोधानद सरस्वती कृत 'श्री वृदावन महिमामृत' के एक शतक का ब्रजभाषा पद्यानुवाद है, जिसकी रचना चैत्र मास स० १७०७ मे हुई।

चैतन्य सम्प्रदाय मे हरिनाम सकीर्तन का आधार श्रीमद्भागवत है। मुदित जी ने भी हरिकीर्तन को महत्व दिया है, यद्यपि नाम महात्म्य का स्पष्ट उल्लेख नहीं है —

श्री कृष्ण चैतन्य जय-जय बिहारी ॥
नागरी रूप-गुन आगरी विविसबै भागरी भक्ति कौ दयाकारी।
भजन हौ अगम, सो सुगम कियौ सहज ही श्री राधाकात कौ हित हियारी ॥
मुदित भगवत' रसवत जे रसिक जन, चरन रज रहसि कै सीस धारी।
कियौ उद्धार पै दया अनुसार तै, श्री कृष्ण चैतन्य जय जय बिहारी ।'

माधव की केलि अनुराग का वर्णन मुदित जी ने बहुत सुन्दर किया है, जिसमे रूप माधुरी का समाहार हो जाता है —

अति स्निग्ध घनस्याम काम, कोटिकन कोटि छवि पावै ।
गौर माधुरी निरखि दीठि, उपमा नैकहु नहिं आवै ।।
ए किसोर चित चोर मत्त जोबन, जोबन रग भीने ।
घूमत झूमत नैन बैन मन, मैनहु आनद दीने ।।
'श्री भगवत' केलि अनुराग मे, मत्त मगन दोऊ रहत बन ।
नहिं वरनि सकति कोऊ सारदा, आस्वादन करि रहसि मन ।।

श्रीमद्‌भागवत मे लीला-गान के महत्व के साथ ही साथ लीला स्थलो, तथा माध्यम का महत्व भी अनल्प है । श्री वृदावन, 'कालिंदी कूल कदम्ब की डारन' और वेणु का अपना महत्वपूर्ण स्थान है । भगवत मुदित जी की इस टीका मे वृन्दाविपिन तथा उन रमणीक स्थलो का भागवतानुसारी वर्णन हुआ है—

जयति बन फूल फल मूल-बल्ली विसद, कुज रस पुज बापी-तडागहिं ।
ठौर सिरमौर जहाँ खग कुलाहल करै, मत्त सारग-सिखी-अलि परागहिं ।।

× × ×

देखि दृग रूप छवि भूप वृन्दाविपिन, स्रवन सुनि रहसि रसवन विहारी ।
गध लै घ्रान अवधान ह्वै चरन चल, केलि कौतुक जहाँ प्रेमचारी ।।
जीभ गुन गाइ हित चाह वृन्दाविपिन, रहे लपटाय जहाँ छवि अहारी ।
प्रेम रस धाम अभिराम मे लोट तू, हीत रज परसि तें दरस प्यारी ।।

इस वृन्दाविपिन का ही प्रभाव है जो ऊसर मन मे भी हरि-भक्ति के बीज उगा देता है। इन्होने कुछ स्फुट पदो मे प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओ का सरस वर्णन किया है —

रसिक सो बाते लाड लडौही ।
हँसि-हँसि जात समात हिये मे, फिर चितवत पिय सौही ।।
करत बिहार उदार सकल अग, प्रेम विवस लल चौही ।
'भगवत मुदित' लडावत छिन-छिन, छैल दसा गहि गौही ।।

माधुरीजी (सत्रहवी शताब्दी)

यथा नाम तथा गुण को चरिताथ करते हुए चैतन्य मतानुयायी ब्रजभाषा कवियो मे माधवदास माधुरी जी अपने काव्य माधुय के लिए अग्रगण्य है। इनकी प्रकाशित रचनाएँ उत्कठा माधुरी, वशीवट माधुरी, केलिमाधुरी, वृन्दावन माधुरी, दानमाधुरी, मानमाधुरी, होरीमाधुरी और प्रिया जी की बधाई हैं। इनमे एक वाणीकार की आत्मा साकार हो उठी है। अन्य गोस्वामियो—रूप, सनातन और रघुनाथदास प्रभृति की उक्तियो का भी इन्होने प्रचुरता से प्रयोग किया है। फलत इनमे सरसता और भाव गाम्भीय है। समस्त रचनाओ मे इन्होने गौराग महाप्रभु, रूप और सनातन गोस्वामी की बदना की है। रूप गोस्वामी जी का उल्लेख उन्होने वर्तमान कालीन क्रिया मे किया है इसीलिए कतिपय विद्वान इनको उनका शिष्य और चैतन्यमत का सम्भवत सबसे पुराना कवि मान बैठे। परतु हम देखते है कि

चैत य मत को भावना के अनुमार रूप गोस्वामी जी राधिका जी की अतरग सेविका रूप मजरी के अवतार थे। वे सदैव उसी रूप मे राधिका जी की सेवा मे उपस्थित रहते हैं। यही भावना शायद उनके लिए इनके द्वारा वतमान काल की क्रिया प्रयोग करने के मूल मे रही होगी।

उत्कठा माधुरी—इसमे गोपियो का तीव्र अनुराग, असह्य विरह-वेदना और मिलनोत्कठा का विशद चित्रण ३ कवित्त और २०३ दोहा छ दों मे हुआ है। इसका आधार रघुनाथ गोस्वामी कृत विलाप कुसुमाजलि' ग्रन्थ ज्ञात होता है। भक्त-हृदय की भावुकता इसमे सजीव हो उठी है —

जा कारन छोडी सबै, लोक-वेद-कुल कानि।
सो कबहूँ नहि भूलि कैं, देत दिखाई आनि॥

× × ×

ऊरध स्वाम समीर सो, सीतल है गई देह।
तन मन डूबो जात है, इन नैनन के मेह॥

× × ×

कीये कों सब करत हैं, दीये कों सब देत।
अनकीये को कीजियै, यहै प्रेम कौ हेत॥

बशीवट माधुरी—प्रकृति-चित्रण, प्रिया प्रियतम की सरस मनुहारो और सयोग शृङ्गार का अति सुन्दर चित्रण हुआ है इसमे ३६ कवित्त, २२० दोहे ५ सवैया, १४ रोला, ३२ चौपाई और १ सोरठा छन्द है। छ दों की यह विविधता इनके विशद छद-शास्त्र के ज्ञान और कवित्व-कौशल की परिचायक है।

मधु ऋतु आगम जानि, बिपिन मिलि विहरत दोऊ।
एक बैस गुन रूप, एक सम बटित न कोऊ॥
ललितादिक सब सखी-सहेली परम सुहाई।
नवल माधुरी सग, सदा सहचरि सुखदाई॥
अति आरत सो अरस परस, असन भुज दीये।
उगमगात डग भरत, रूप-माधुरि रस पीये॥

× × ×

फूलि रही नव लता, देखि लागत मन लोभा।
थकित रहे हैं नैन, देखि वृन्दावन सोभा॥

रास-लीला की एक झाँकी दशनीय है—

(१) माधुरी की रास सब सोभा को निवास जहाँ,
खेलत रसीले रास मडल वलित री।
नूपुर कफन कठमाल कठ सोभित है,
किंकिनी मुकट कलि कूजति ललित री॥

भृकुटी विलास मृदु पद न्यास नृत्य लास,
वदन विकास कोटि मदन दलित री।
मुरली की धुनि मद म्द गति बाजति है
ताके अनुसार चारु लोचन चलत री ॥

(२) अपने-अपने कर जोर जुरि जुरि ठाडो भई,
चहु ओर मानो घन घेरौ आय दामिनी ॥
रूप गुन गान रस एक-एक ते सरस,
नितत सकल नाना भाइन सो भामिनी।
रस सीम रास सीम परम विलास सीम,
राजै रास मडल मे माधुरी की स्वामिनी ॥

श्री बल्लभ रसिक (सत्रहवी शती उत्तरार्द्ध)

अपनी रचना की सात्विक मादकता से भक्त जनो को रसमत्त बना देने वाले ब्रजभाषा के भक्त कवियो मे बल्लभ रसिक जी अपनी सरस और अलकृत शैली के लिए प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध सस्कृत काव्य 'प्रेमपत्तन' के रचयिता श्री रसिकोत्तसने इन्हे अपना अनुज स्वीकार किया है 'बल्लभरसिकोमदनुज'। ये दाक्षिणात्य तैलङ्ग ब्राह्मण तथा चैतन्यमत के भागवतानुसारी ब्रजभाषा के ख्याति प्राप्त कवि श्री गदाधर भट्ट जी की वश परम्परा मे हुए। कुछ लोग रसिकोत्तस और वल्लभ रसिक जी को गदाधर भट्टजी के पुत्र मानते है। परन्तु काल-क्रम से यह मान्यता उचित नही पडती। भट्ट जी और उनके वशज सस्कृत के अच्छे विद्वान् होने के साथ ही अपने इष्टाराध्य की जन्मभूमि की भाषा (व्रजभाषा) के अनुरागी थे। बल्लभ रसिक जी की रचनाओ मे लालित्य है, लकार का अत्याधिक प्रयोग और अनुप्रासो की मधुर छटा और गेयता दर्शनीय है। उन्होने सयोग शृङ्गार और मधुरा भक्ति का ही वर्णन किया है। वे स्वय ही अपनी वाणी को राधा कृष्ण की सहचरी और उनके प्रेमासव मे सनी हुई बताते है।

बल्लभ रसिक' सहचरी बानी। जुगल लगन आसव सो सानी ॥

वर्षा ऋतु मे झूलनोत्सव का एक पद—

आज दोऊ झूलत रति रस माने।
ठाडे मचके लचकि, तरुनि के गहि फल फूलन आनें ॥
सूहे पर पहिरे है पटुली बैठे सामल गोरी।
अलनि रगीली तिय पद अँगुली पिय डोरी सो जोरी ॥
स्याम काम बस झूलि-झूलि पग, मूलनि झुलनि बढाही।
कामिनि चरन नामरस छुटि, अलि काम लुटि मचि जाही ॥
जीवन मवि जोबन मद झूलए, झूलनि फदानि जाने।
'बल्लभ रसिक' सखी के नैना, एही झुलनि झुलावें ॥

होली

श्री नवल बधू रग-भीनी प्रीतम सग खेले।
झूमि झूमि रस तानन गावै रीझई छैल नवेलै ॥

लाल रँगीलौ पिचकनि रग भरि भरि उरजनि ऊपर मेलै ।
मुरि-मुरि बदन दुरावनि मे मन-भावन कौ रस झेलै ॥
मटकति धरति चरन धरनी पर, लटकत हार हमेलै ।
प्रफुलित नव बेली सी लह लहैं, झेली अलि अलबेलै ॥
अचल मधि चचल चख अचल, मैन-सैन को पेलै ।
'बल्लभ रसिक' पिय घुमडि गुलाल मे, नवघन अक सकेलै ।

रासलीला —

पूरन ससि-मडल की किरने, मनि-मडल पर छाई ।
चमकि-चमकि चहुँ दिसि-दिसि पुलननि, बन चाँदनी बिछाई ॥

× × × ×

झमकि चली सँग बाल, हाल करतालनि लै लै गोरी ।
लाई गति मृदग उपजाई झाई बन घन घोरी ॥
थेई थेई तत्तथेई थेई येई धुनि लै जोरी ।
बल्लभ रसिक' बिहारी प्यारी, प्यारी तान झकोरी ॥

जल क्रीडा की झाँझ--

भरि गुलाब जल बिमल सरोवर, दपति केलि मचाई ॥
स्रेनी अमल कमल नैनी अलि पकज पाँति डुलाई ॥
गहि-गहि कलस तरगनि, बदलत डूबन उद्धरनि लाई ।
'बल्लभ-रसिक' अग-अगनि ते निज निज छवि दरसाई ॥

× × × ×

लै-लै चुभकी अन्तर सुभ की, लुभकी परसनि भावें ।
लपटनि मे कपटनि भजि चोकनि, नोकनि नैन चलावे ॥
सरस हँसी बनसी रस हिलगी, लगी मीन जिम आवे ।
'बल्लभ रसिक' रसनि तन-मन सनि, निकसन मनहिं न ल्यावे ।

वैष्णवदास 'रसजानि' (अठारहवी शती स० १७७० लगभग)

वैष्णवदास जी 'भक्तमाल' के टीकाकार प्रियादास जी के निकट आत्मीय और परम कृपापात्र थे, उन्ही के सत्सग से इन्हे काव्यतत्व और भक्ति रस का बोध हुआ, प्रियदास जी ने ही उन्हे 'रसजानि' नाम से भूषित किया —

श्री प्रियादास रस-रासि कौ, पौत्र वैष्णवदास ।
ताही कौ 'रसजानि' कै, कीनो नाम प्रकास ॥
श्री हरि जीवन गुरु कृपा, पाप सोई 'रसजानि ।
श्री भागवत महात्म्य की, भाषा करी बखानि ॥

(भागवत महात्म्य भाषा)

इनके नाम से निम्नलिखित ९ रचनाएँ प्रचलित हैं —

(१) भक्तमाल महात्म्य (२) भक्तमाल प्रसग (३) भक्तमाल रस बोधिनी टीका (४) भक्तमाल टिप्पणी (५) भक्तमाल की उरवसी टीका (६) भागवत भाषा (७) भागवत माहात्म्य भाषा (८) गीत गोविन्द भाषा और (९) भक्ति रत्नावली भाषा ।

ऐसी प्रतीत होता है कि भक्तमाल प्रसग भक्तमाल रसबोधिनी टीका और भक्तमाल टिप्पणी एक ही रचना के पृथक्-पृथक् नाम है और यह रचना निम्बाक सम्प्रदायी वैष्णवदास जी की कृति है, 'रसजानि' की नही । भागवत महात्म्य-भाषा कोई अलग ग्रन्थ नही अपितु 'भागवत भाषा' का ही अश है । वास्तव मे इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ दो ही है —(१) भागवत भाषा (२) गीत गोविन्द भाषा । भक्तमाल महात्म्य और भक्त उरवसी प्रियादास जी की भक्तमाल की टीका पर टिप्पणी के रूप मे है ।

इ होने सम्पूण भागवत का सरल ब्रजभाषा अनुवाद दोहा चौपाई छन्दो मे किया जिसमे कुल छन्द सख्या १५ हजार के लगभग है ।इ सकी पूर्ति स० १८०७ की ज्येष्ठ कृ० ६ मगलवार को हुई ।

सवत अष्टादस सन सात । जेठ वदी छट मगल गात ।।

चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा के कवियो की शृङ्खला हमे आज तक प्राप्त होती है । अधिकाश रचनाएँ चैतन्य महाप्रभु की प्रशस्ति मे लिखा गयी हैं और कुछ भगवान् कृष्ण की लीलाओ के आधार पर । चैतन्य मत के भक्तो ने 'ब्रजबुलि' मे भी कुछ रचनाएँ की हैं । 'ब्रजबुलि' ब्रजभाषा, बगला और मैथिली का सम्मिश्रण है । चैतन्यमत के सम्पूण साहित्य का प्रेरणा स्रोत श्रीमद्भागवत ही रहा है ।

भागवत मे जिन विशिष्ट तत्त्वो का विवेचन हुआ है उन्ही का विस्तार ब्रजभाषा के भक्तकवियो ने किया है । कृष्ण की रूप माधुरी और लीलाओ को लेकर इन कवियो ने अपनी कल्पना से अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं । भक्ति के विभिन्न रूपो और तत्त्वो का विवेचन भी उनकी रचनाओ मे हुआ है । भागवत से प्रेरणा ग्रहण कर ब्रजभाषा मे सबसे अधिक और प्राणवान् साहित्य की सजना बल्लभ सम्प्रदाय के कवियो ने की है । वास्तव मे बल्लभ सम्प्रदाय का धम क्षेत्र और काय-क्षेत्र प्रधान रूप से ब्रज ही रहा है । यही कारण है कि आज भी ब्रजक्षेत्र के गाव-गाव मे बल्लभ सम्प्रदाय का साहित्य बिखरा पडा है । हिन्दी के परवर्त्ती कृष्ण भक्ति साहित्य को भी इससे बडी प्रेरणा मिली । इस सम्प्रदाय के अधिकाश ब्रजभाषा कवियो की एक यही विशेषता थी कि उनकी मातृभाषा ब्रजभाषा थी । यही कारण है कि उनकी रचनाओ मे ब्रजभाषा का निखरा हुआ रूप मिलता है, साथ ही साथ उनकी रचनाओं मे ब्रजक्षेत्र की सास्कृतिक, सामाजिक और साहित्यक परम्पराओ का भी यथोचित सन्निवेश है । पुष्टि सम्प्रदाय और श्रीमद्भागवत का सविस्तर विवेचन हम अगले अध्याय मे करेंगे । यहाँ उन भक्त कवियों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है जो सम्प्रदाय मुक्त थे परन्तु जिन पर श्रीमद्भागवत का साक्षात् अथवा असाक्षात् रूप से प्रभाव पडा । मध्ययुग मे भक्ति के स्वर को प्रेरणा देने वाला मुख्य ग्रथ श्रीमद्भागवत ही था । यही कारण है कि देश की सम्पूर्ण भाषाओं के भक्ति साहित्य मे भागवत का प्रभाव लक्ष्य किया जा सकता है । जो कृष्ण भक्त-कवि किसी सम्प्रदाय में दीक्षित नही भी थे उन्होंने भी भक्ति का आदर्श श्रीमद्भागवत से ही ग्रहण किया । जहाँ तक श्री मद्भागवत के सामान्य तत्वो का सम्बन्ध है, वे प्राय, सभी भक्तो के समान है । सभी की रचनाओ मे प्रेम तत्त्व का प्राधान्य है । इस युग मे भागवत के अनेक अनुवाद हुए तथा भागवत के प्रमुख स्थलो को लेकर अनेक रचनाएँ हुईं । कुछ कवियो के उदाहरण आगे दिये जाते है ।

मीरांबाई (स० १५५५—१६०३ वि०)

मीराबाई महाप्रभु वल्लभाचाय (स० १५३५–१५८७), महाप्रभु चैतन्य (स० १५४२–१५६०), श्री हित हरिवश (स० १५५६–१६१०), श्री हरिराम व्यास (स० १५६७–१६३५) आदि समथ वैष्णवाचार्यो और सगुण भक्तो की सम सामयिक मानी जाती है। उनकी भक्ति का आधार भी श्रीमद्भागवत था। यद्यपि मीरा मे हमे निर्गुण और निराकार के ज्ञान की निष्ठा के दशन भी होते हैं परन्तु सगुण और साकार की माधुय-भक्ति की तन्मयी अवस्था का दशन कराने वाले उनके पद ही उनके व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते है। युग चेतना के अनुसार व्यक्तित्व प्रभावित होता ही है। श्रीमद्भागवत मे परम भगवद्भक्त की जिस गलदश्रु भावुकता भगवद् विरह व्याकुलता का अ कन हुआ है, वही दशा अपनी चरमसीमा मे मीरा मे मिलती है।

हरिनाम-सकीतन, सत्सग, भगवद्गुणगान आदि के सम्बन्ध मे मीराबाई के विचार भागवतानुसार ही है—

माई म्हा गोविन्द गुण गास्या।
चरणाम्रित रो नेम सकारे नित उठ दरसण जास्या ॥
हरि मदिर मा निरत करावाँ घूघर्या घमकास्याँ।
स्याम नाम रा झाझ चलास्या भोसागर तर जास्याँ ॥
यो ससार बीड रो काटो, गैल प्रीतम अटकास्याँ।
मीरा रे प्रभु गिरधर नागर गुनगांवा सुख पास्याँ ॥

पूववर्ती कृष्ण भक्त कवियों का भाति ही उसी परम्परागत वातावरण मे माराबाई ने कृष्ण की बाल लीला प्रेम लीला, कालिय दमन, चीर-हरण, वशीवादन आदि का वणन भी किया है—

कालियदमन

कमल दललोचणा थे नाथ्या काल भुजग।
कालिदी दह नाग नाथ्याँ, काल फण फण नित करत ॥
कूदा जल अन्तर ना डरयौ थे एक बाहु अणत।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ब्रजबणतारो कत ॥

श्रीमद्भागवत मे श्रीकृष्ण के त्रैलोक विमोहन रूप, लावण्य, श्याम वण और ललित वेशभूषा का वणन हुआ है। माराबाई की श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी भागवतानुमोदित है —

सावरो नदनन्दन दीठ पड़्या माई।
डार्‌या सब लोक लाज सुध बुध बिसराई।
मोर चन्द्रका किरीट मुगट छब सोहाई।
केसर रो तिलक भाल, लोचन सुखदाई।
कुडल झलका कपोल अलका लहराई।
मीणा तज सरवर ज्यो मकर मिलन धाई।
नटवर प्रभु भेष धर्‌याँ रूप जग लोभाई।
गिरधर प्रभु अग अग, मीराँ बलि जाई।

श्रीमद् भागवत के अनुरूप ही मीरा के नन्द यशोदा के पुण्य से पुत्र रूप मे उत्पन्न ब्रजलीला नायक, गोपीवल्लभ, गोकुलनाथ कृष्ण को अविनाशी परब्रह्म परमश्वर माना है।

म्हारो गोकुल रो बासी।
ब्रज लीला लख जण सुखपावा ब्रज बणता सुखरासी।
णाच्याँ गावाँ ताल बजावा पावाँ आणँद हासी।
णद जसोदा पुनरी प्रगट्या प्रभु अबिनासी।

गोपियो की रूपासक्ति दास्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, परमविरहासक्ति आदि मीरा के काव्य मे प्रभूत मात्रा मे है। गोपी प्रेम का मूल है, लौकिक-पार लौकिक विधि निषेधो का त्याग। मीरा स्वय ही गोपी भाव से भावित है। वे श्रीकृष्ण को अपने पति के रूप मे मानती है —

रूपासक्ति

निपट बकट छब अटके।
म्हारे नैणा निपट बकट छब अटके।
देख्या रूप मदन मोहन री पियत पियूख न मटके।
वारिज भवा अलक मतवारी नैण रूप रस अटके।

दास्यासक्ति

हरि म्हारा जीवण प्राण अधार।
और आसिरो णा म्हारा'थे विण, तीनू लोक मझार।
थेविण म्हाणे जगणा सुहावा निरख्या सब ससार।
मीरा रे प्रभु दासी रावली, लीज्यो णेक णिहारी।

परमविरहासक्ति

स्याम मिलण रे काज सखी, उर आरति जागी।
तलफ तलफ कलना पड़ाँ विरहानल लागी।
निसदिन पथ निहारा पिव रो पलक ना पलभर लागी।
पीव पीव म्हा रटा रैण डिन लोक लाज कुल त्यागी।
विरह भुअगम डस्या कलेजा लहर हलाहल जागी।
मीरा व्याकुल अति अकुलाणी स्याम उमगा लागी।

भगवच्चरणाविन्दो की अनिव चनीय महिमा का ज्ञान भी श्रीमद्भागवतानुमोदित ही है —

मण थे परस हरि रे चरण।
सुभग सीतल कवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
इण चरण प्रहलाद परस्यो, इन्द्र पदवी धरण,
इण चरण ध्रुव अटल करस्या सरण असरण सरण।
इण चरण ब्रह्माड मेट्या, नख सिखा सिरी भरण,
इण चरण कालिया नाथ्या, गोपलीला करण।
इण चरण गोबरधन धारया गरब मघवा हरण,
दासि मीरा लालगिरिधर अगम तारण तरण।

लालचदास (विक्रमीय १६वी शती पूर्वार्द्ध)

अष्टछापी कृष्ण भक्त कवियो के समसामयिक और उन्हीं की भाँति श्रीमद्भागवतानुमोदित श्रीकृष्ण लीला-गान करने तथा अवधी भाषा मे कृष्ण चरित लिखने के कारण लालचदास का महत्त्व है। इनका ग्रन्थ हरि चरित या भागवत दशमस्कन्ध भाषा उपलब्ध है। गार्सादितासी ने इनके भागवत दशमस्कन्ध भाषा का फ्रेंच मे अनुवाद होने की चर्चा की है।

इस ग्रथ की कई हस्त हस्तलिखित प्रतियाँ हमने स्वय देखी हैं। उनमें सबसे प्राचीन प्रति स० १८४२ की है जो कैप्टिन शूरवीरसिंह जी के पास सुरक्षित है। गोस्वामी तुलसीदास से लगभग १०० वष पहले का अवधी मे लिखा हुआ यह भक्ति-ग्रथ है। ग्रन्थ का प्रारम्भ ही 'भागवते नम' से हुआ है। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए कवि कहता है—'भक्ति-भागवत कै अनुहारी, गुरु प्रसाद कछु कहौ विचारी।' भागवत के प्राकट्य की कथा भी भागवत-महात्म्य के अनुसार है। ग्रथ मे केवल भागवत के दशम स्कन्ध की ही कथा प्रारम्भ करने से पहले कवि की उक्ति है—

"नौ असकध कहा त्रिप आगे।
अब रिषि दसम सुनावन लागे।।

इसके अनन्तर लालचदास ने सक्षेप मे भागवत दशम स्कन्ध के ६० अध्यायो की कथा अवधी भाषा मे लिखी है। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे यह पुष्पिका है—

"इति श्री हरिचरित्रे दस्म स्कधे भागवते महापुराने नाम अध्याय"

ग्रन्थ के ४५ अध्याय लालचदास के लिखे हुए हैं परन्तु इतना लिखने पर उनका स्वर्गवास हो गया और शेष ४५ अध्याय उनके मित्र आसानन्द कायस्थ ने लिखे। सम्पूर्ण ग्रन्थ की भाषा बडी सरल तथा सरस है।

नरोत्तमदास (वि० स० १६०२)

'सुदामा चरित' की कथावस्तु श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध अध्याय ८० और ८१ पर आधृत है। सुदामा के चरित्र मे हमे जिस भावुकता त्याग-भावना एव इष्टदेव के सम्मुख दीनता के दर्शन होते हैं वह भागवतानुसारी ही है। भागवत का निम्नलिखित श्लोक—

'नून मे भगवाँस्तुष्ट सवदेवमयो हरि।
येन नीतो दशामेता निर्वेदश्चात्मन प्लव ।। (श्रीमद्० ११।२३।२८)

सुदामा के इस कथन से कितना मेल खाता है —

कह्यो सुदामा बाम सुनु वृथा और सब भोग।
सत्य भजन भगवान को धर्म सहित जप जोग ।।

श्रीमद्भागवत मे हमे यत्र-तत्र भगवान् की भक्तानुग्रहकाक्षिणी वृत्ति का परिचय मिलता है। तृतीय स्कध अध्याय १५–१६ मे विष्णु पार्षद जय-विजय के रोकने पर भी सनकादि वैकुण्ठ धाम मे प्रवेश कर लेते हैं, इसी स्थिति को 'सुदामा चरित' मे नरोत्तमदास ने वर्णित किया है --

भूले से भूप अनेक खरे रहौ, ठाढ़े रहौ तिमि चक्कवै भारी।
देव गधर्व रु किन्नर जच्छ से, रोके जे लोकन के अधिकारी।
अन्तरजामी वै आपुही जानि है, मानो यहै सिख आजु हमारी।
द्वारकानाथ के द्वार गए सबते पहले सुधि लैहे तिहारी।

भगवान् का अवतार ही 'गो ब्राह्मण हिताय' हुआ है इसीलिए जिनके चरणोदक से जगत्-सताप मिटता है ऐसे भगवान् कृष्ण विप्र सुदामा का पद प्रक्षालन कर रहे है।

षडैश्वर्य सम्पन्न वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज विष्णु ही द्वारिकाधीश कृष्ण के रूप मे नरोत्तमदास जी के काव्य मे चित्रित हुए हैं। श्रीमद्भागवत मे जय-विजय कथा के प्रसग मे विष्णु के जिस लोक-रजक एव परम ऐश्वय पूर्ण बैकुण्ठ धाम का चित्र है वैसा ही चित्र नरोत्तमदास जी ने द्वारकापुरी के वैभव एव द्वारकाधीश के स्वरूप का खीचा है, स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण का चतुभुज स्वरूप उन्होने स्वीकार किया है—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल,
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ है।
ओढ़े पीत बसन गरे मे बैजयन्ती माल,
सख चक्र गदा और पद्म लिए हाथ हैं॥
कहत नरोत्तम सदीपन गुरु के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारका के गए हरि दारिद हरैगे पिय,
द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं॥

श्रीमद्भागवत में विष्णु का विग्रह भी ऐसा ही वर्णित है —

प्रसन्नवदनाम्भोज, पद्मगर्भारुणेक्षणम्।
नीलोत्पलदलश्याम शखचक्रगदाधरम्॥
लसत्पंकजकिञ्जल्कपीतकौशेय वाससम्।
श्रीवत्सवक्षस भ्राजत्कौस्तुभामुक्त कन्धरम्॥
मत्तद्विरेफ कलया परीत वनमालया।
परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम्॥
(श्रीमद्० ३।२८।१३–१५)

प्रिथीराज (पृथ्वीराज) (वि० स० १६०६–१६५७)

सम्राट् अकबर के सम्मानित सामन्त होते हुए भी महाराणा प्रताप को निरन्तर स्वतत्रता सग्राम को जारी रखने के हेतु प्रोत्साहित करने वाले राठौड राज पृथ्वीराज के व्यक्तित्व मे देशभक्त, भगवद्भक्त और विद्वान् का अत्यन्त सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। उनके द्वारा ग्रथित 'वेलि किसन रुकमणी री' का उपजीव्य श्रीमद्भागवत दशमस्कध अध्याय ५२ से ५५ है, जिसे इन्होने स्वय स्वीकार किया है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायो, महि थाणो पृथुदास मुख।
मूल ताल जड अरथ मण्डहे, सुथिर करणि चढि छाह सुख॥

रुक्मिणी के शृ गार सज्जा प्रसग मे भी कवि भागवत का उल्लेख श्लिष्टार्थ से करता है—

नासा अग्नि मुताहल निहसति ।
भजति कि सुक मुख भागवत ।। (वेलि० ६८)

इन्होने मूल कथा का अनुसरण भी बडे कौशल से किया है, विदर्भाधिपति भीष्मक का वर्णन भागवत मे इस प्रकार हुआ है—

राजासीद् भीष्मकोनाम विदर्भाधिपतिमहान् ।
तस्य पचाभवन्पुत्रा कन्यैका च वरानना ।।
रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तर ।
रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसासती ।। (श्रीमद्० १०।५२।२१–२२)

बेलिकार इसका अनुसरण करते हुए कहता है—

दक्खिण दिसि देस विदरभति दीपति पुर दीपति अति कुन्दणपुर ।
राजति एक भीखमक राजा सिरहर अहिनर असुर सुर ।।
पचपुत्र ताइ छटी सुपुत्री कुअर रुकम कहि विमल कथ ।
रुकमबाहु अनै रुकमाली रुकमकेस नै रुकम रथ ।

रुक्मिणी श्रीकृष्ण के गुणो का ध्यान कर श्रेष्ठ वर की प्राप्ति हेतु हर गौरी का वदन करती है—

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीय गुणश्रिय ।
गृहागतैर्गीयमानास्त मेने सद्दश पतिम् ।।

पृथ्वीराज ने लिखा है—

साँभलि अनुराग थयो मन स्यामा वर प्रापति वछती बर ।
हरि गुण मणि ऊपनी जिका हर हर तिणि वन्दे गवरि हर ।। (वेलि० २६)

वेलि में रुक्मिणी के ब्याज से श्रीमद्भागवत सम्मत पृथ्वीराज की भक्ति भावना इन शब्दों मे मुखरित है—

हरि हुए वराह हुए हरिणाकस, हूँ ऊधरी पाताल हूँ ।
कहो तई करुणाम केसव सीख दीध किण तुम्हा सू ।।
आणे सुर असुर नाग नेत्रै नहि, राखियो जई मन्दर रई ।
महण मथे मूलीध महमहण तुम्हाँ किणै सीखव्या तई ।।
रामा अवतार वहै रणि रावण, किसी सीख करुणा करण ।
हूँ ऊधरी त्रिकूटगढ हूती, हरि वन्वे वेलाहरण ।।
चौथीआ वार वाहर करि चत्र भुजा, सख चण्ड घर गदा सरोज ।
मुख करि किसू कहीजै माहव, अन्तरजामी सूँ आलोज ।।

श्री कृष्ण का परब्रह्मत्व भी पृथ्वीराज को मान्य है । कुण्डिनपुर पहुँचने पर वहाँ के निवासी कृष्ण को जिन विविध रूपो मे देखते हैं उस कल्पना का स्रोत श्रीमद्भागवत का वह प्रसग जान पडता है जहाँ श्रीकृष्ण कस की रगशाला मे पदार्पण करते हैं और उपस्थित लोगों को अपनी भावना के अनुसार रूप धरे ज्ञात होते हैं ।

मल्लानामशनिर्नृणा नरवर स्त्रीणा स्मरो मूर्तिमान्।
गोपाना स्वजनोऽसता क्षितिभुजा शास्ता स्वपित्रो शिशु ।
मृत्युर्भोज पतेर्विराड् विदुषा तत्व पर योगिना।
वृष्णीना परदेवतेति विदितो रग गत साग्रज ॥

इसी की सपुष्टि पृथ्वीराज के निम्नाकित दोहला मे हुई है—

कामिणि कहि काम काल कहि केवी, नारायण कहि अवर नर।
वेबारथ इम कहै वेदवत जोगतत जोगेसवर ॥

रसखान (स० १६८५ लगभग)

रसखान ने जो प्रेमी हृदय पाया था, वह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय की कारा मे बन्द नहीं हो सकता था। उस इश्क मजाजी से परिपूर्ण हृदय को इश्क हकीकी मे परिणत कर देने वाली महती शक्ति थी श्रीमद्भागवत। श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति ही इनके प्राणो का स्पदन है, गोपजनो की सख्य भक्ति भी रसखान को मान्य है। उन्हे गोपियो की माधुय भक्ति ही सर्वाधिक मान्य है।

प्रेमाभक्ति—'प्रेमवाटिका' मे वर्णित इनका प्रेम का पारमार्थिक रूप श्रीमद्भागवत की प्रेमाभक्ति ही है, अन्य कुछ नही।

लोक वेद मरजाद लाज काज सदेह।
देत बहाए प्रेमकरि, विधि निषेध कौ नेह।
भले वृथा करि पचि मरौ, ज्ञान गरूर बढाय।
बिना प्रेम फीकौ सबै, कोटिन किए उपाय ॥
जेहि बिनु जाये कछु नही, जान्यौ जात विसेस।
सोई प्रेम जोहि जानिके, रहि न जात कछु सेस
× × × ×
जेहि पाए वैकुण्ठ अरु हरि हू की नहि चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि ॥

श्रीमद्भागवत का यह श्लोक भी देखिए—

न किंचित्साधवो धीरा भक्ताह्येकान्तिनो मम।
वाञ्छत्यपि मया दत्त कैवल्यमपुनर्भवम्।

रसखान मानते हैं कि यद्यपि प्रेम के अनेक प्रकार हैं और श्रीकृष्ण के प्रति अनेक भावों से नन्द, यशोदा, ग्वाल बाल प्रेम रखते है परन्तु श्रेष्ठता तो गोपियो के प्रेम-भाव की ही है, जिनकी कृपा से उद्धव जैसे ज्ञानी को भी कुछ प्रेमसक्ति का प्रसाद मिल गया।

इन्होंने कृष्ण चरित के कुछ स्फुट प्रसगों यथा माखन चोरी, वेणुवादन गोचारण आदि का भी वर्णन किया है। बालकृष्ण के स्वरूप की भी एक सुन्दर झाँकी प्रस्तुत है—

धूरि भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अगना पग पैंजनी बाजत पीरी कछोटी ॥

रासलीला—

राधा माधव सखिन सग, विहरत कुंज कुटीर।
रसिकराज रसखानि जह कूजत कोइल कीर।

रसखानि का सर्वाधिक प्रिय विषय श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का चित्रण है, जो सब को अपनी ओर आकृष्ट करता है।

कानन कुण्डल मोर पखा, उर पै बनमाल बिराजति है।
मुरली कर मे अधरा मुसकानि, तरग महाछवि छाजति है।
रसखानि लखै तन पोत पटा, सतदामिनि की दुति लाजति है।
वह बाँसुरि की धुनि कान परै, कुलकानि हियो तजि भाजति है॥

उन्होने श्रीकृष्ण के परब्रह्म रूप को भी भागवत के अनुसार ही माना है।

(क) सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावै॥
नारद से सुक व्यास रटै पचि हारे तऊ पुनि पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै॥

(ख) ब्रह्म मे ढूढ्यो पुरानन गानन, बद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥

गोपी प्रेम की तो ये मूर्ति ही हैं। एकादश आसक्तियों मे से रूपासक्ति, तन्मयासक्ति और परमविरहासक्ति विशेष रूप से इनके काव्य मे मिलती है।

रूपासक्ति—लोक की लाज तजी तबही जब देख्यो सखी ब्रज चद सलोनो।
खजन मीन सरोजन की छबि गजन नैन लला दिन होनो॥
रसखानि निहारि सकै जु मम्हारि कै को तिय है वह रूप सुठोनो।
भौंह कमान सो जोहन कों सब बेधत प्राननि नन्द को छोनो॥

तन्मयासक्ति —

उनही के सनेहन सानी रहे, उनही के जु नेह दिवानी रहैं।
उनही की सुनै न औ बैन त्यो सैन सो चैन अनेकन ठानी रहैं॥
उनही सग डोलन मे रसखानि सबै, सुख सिधु अघानी रहैं।
उनही बिन ज्यो जलहीन है मीन सी आखि मेरी असुवानी रहैं॥

परमविरहासक्ति—भ्रमर गीत मे व्यक्त गोपियो की विरह भावना को कवि इस प्रकार प्रकट करता है —

लाज के लेप चढाइ कै अग पची सब सीख को मत्र सुनाइकै।
गारुड ह्वै ब्रजलोग थक्यौ करि औषद वेसक सौंह दिवाइ कै॥
ऊधो सो को रसखानि कहै जिन चित्त धरौ तुम एतै उपाइकै।
कारै बिसारै को चाहै उतार्‌यो अरे विष बावरे राख लगाइकै॥

श्रीकृष्ण के वशीवादन का गोपियो पर पडने वाले मोहक प्रभाव की व्यजना करने मे रसखान को असाधारण सफलता मिली है। बासुरी के प्रति गोपियों का जो सापत्न्यभाव श्रीमद्भागवत में व्यक्त हुआ है, उसी का विशदीकरण इस सवैया मे देखा जा सकता है—

'कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहि है।
निस द्यौस है सग साथ लगी, यह सौतिन तापन क्यों सहि है ।।
जिन मोहि लियौ मनमोहन कौ, रसखानि सदा हमको दहि है।
मिलि आओ सबै सखि भाजि चलै अब तो ब्रज मे बसुरी रहि है ।।

इस प्रकार हम देखते है कि इन सम्प्रदाय मुक्त कवियो के काव्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव सम्प्रदायवादी कवियों से कही अधिक सूक्ष्म और व्यापक है।

हम पहले कह चुके है कि श्रीमद्भागवत का प्रभाव चैतन्य तथा बल्लभ मत पर सबसे अधिक है। मात्रा की दृष्टि से ब्रजभाषा मे बल्लभ सम्प्रदाय का ही सबसे अधिक साहित्य है। बल्लभ सम्प्रदाय का बहुत सा ब्रजभाषा साहित्य अभी भी प्रकाश मे नही आसका है। महाप्रभु बल्लभाचाय जी ने अपने पुष्टि सम्प्रदाय की स्थापना ही श्रीमद्भागवत के आधार पर की थी तथा जैसाकि हम पहले लिख चुके हैं इस सम्प्रदाय के भक्तो का काय-क्षेत्र ब्रजभूमि ही रही। इन सब कारणो से श्रीमद्भागवत के सदभ मे वल्लभसम्प्रदायी ब्रजभाषा साहित्य का विशिष्ट महत्त्व है। इसीलिए इस साहित्य का विवेचन हम अलग से अग्रिम अध्याय मे करेंगे।

एकादश अध्याय

श्रीमद्भागवत तथा पुष्टि सम्प्रदाय का ब्रजभाषा-साहित्य

पुष्टिसम्प्रदायेतर ब्रजभाषा के कृष्ण-भक्त-कवियो की रचनाओ पर श्रीमद्‌भागवत के प्रभाव की चर्चा हमने पिछले अध्याय मे की है। हम पहले कह चुके हैं कि श्रीमद्‌भागवत से भारतीय भाषाओ का सम्पूर्ण मध्ययुगीन भक्ति साहित्य प्रभावित हुआ है। बात यह है कि श्रीमद्‌भागवत मे कुछ तो भक्ति के ऐसे सामान्य तत्त्वो का विवेचन हुआ है जो परम्परागत तथा सावभौम कहे जा सकते हैं तथा जो निर्गुण तथा सगुण, राम तथा कृष्ण सभी प्रकार की भक्ति-साधनाओ मे समान हैं। भक्ति-माग का अन्य-मार्गों से वैशिष्ट्य आस्तिक मात्र के लिए अभिप्रेत है। इसी प्रकार भगवान् का ध्यान, नाम महिमा, गुरु-महिमा, सत्सग का महत्त्व तथा भक्ति के अतराय सभी भक्ति सम्प्रदायों मे समान है। कहना न होगा कि इन सभी तत्वों का श्रीमद्‌भागवत मे विशद तथा व्यवस्थित रूप मे विवेचन हुआ है। भारतीय भाषाओ के भक्त-कवियो ने इन सभी तत्त्वो पर कुछ न कुछ लिखा है अन्तर केवल सम्प्रदाय विशेष की भक्ति-भावना तथा भक्ति के आचरण पक्ष मे है। सामान्यतत्त्व तो पुराणों तथा अन्य धर्मग्रन्थो मे भी भागवत के अनुसार ही हैं तथा वहाँ भी वैभिन्न्य इष्ट तथा भावना के आधार पर है। श्रीमद्‌भागवत मे कृष्ण को ही स्वय भगवान् कहा गया है तथा अन्य अवतारों को अश रूप मे स्वीकार किया है। सबसे बडी विशेषता श्रीमद्‌भागवत की यह है कि उसमे कृष्ण-तत्त्व का विकास क्रमिक जीवन से सबद्ध है। कृष्ण की जीवन-लाला ही श्रीमद्‌भागवत का सर्वस्व है तथा वही भगवान् का अलौकिक चरित है।

श्रीमद्‌भागवत में भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओं का वणन है। कृष्ण-भक्त वैष्णवों के अनुसार लीलामय होना ही मुक्ति है। पुष्टि सम्प्रदाय मे इन सभी लीलाओ का विशेष महत्त्व प्रदान किया गया हैं तथा प्रत्येक लीला के लिए एक दाशनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भगवान् की लीला के उपकरणों को नित्य स्वरूप प्रदान किया गया है। स्वय भागवतकार ने लीला के उपकरणो को बडा महत्त्व दिया है। श्रीमद्‌भागवत के दशमस्कध मे तत्-तत् स्थलों पर इन उपकरणो की बडे भक्ति-भाव से चर्चा हुई है। श्रीमद्‌भागवत के प्रथमस्कध मे सूत ने मधुवन को परम-पवित्र और सर्वश्रेष्ठ बताया है जहाँ भगवान् ने स्वय जन्म लिया। ब्रज क्षेत्र का महत्त्व तो और पुराणों मे भी वर्णित है परन्तु जिस भाव से लीला के क्षेत्रीय उपकरणो का श्रीमद्‌भागवत में वणन हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, यमुना, गोवद्धन गौएँ तथा गोप तथा गोपियाँ सभी लीला के उपकरण श्रीमद्‌भागवत मे परिगणित हैं, यहाँ तक कि गह्वर-वनाकीर्ण ब्रज की उन बर्षा और शरद जैसी ऋतुओं का भी श्रीमद्‌भावत मे वर्णन हुआ है जिनमें

ब्रज के बनो की अद्‌भुत और अलौकिक श्री हो जाती थी। लीला के इन सभी उपकरणों को पुष्टि सम्प्रदाय मे जितना अलौकिक महत्त्व प्रदान किया गया है उतना और किसी सम्प्रदाय मे नही।

ब्रज के इस अलौकिक सौदय मे कृष्ण की रूप माधुरी चार चाँद लगा देती है तथा सम्पूण बनश्री को एक स्फूर्तिमय अलौकिक जीवन प्रदान कर देती है। यही कारण है कि श्रीमद्‌भागवत मे कृष्ण के अलौकिक सौन्दय, उनकी वेषभूषा, अगविन्यास तथा मुद्राएँ बडे विस्तार से वर्णित हैं। पुष्टि सम्प्रदाय के कवियो ने कृष्ण की रूप माधुरी के सम्बन्ध मे इन सभी का वणन बडे कवित्वमय ढग से किया है। ये सभी वणन भगवान् कृष्ण मे अहेतुकी प्रीति के साधन हैं। इस प्रीति अथवा प्रेम का प्रमुख माध्यम गोप तथा गोपियाँ हैं। पुष्टि सम्प्रदाय मे इसी गोपीभाव की प्रधानता है। महाप्रभु वल्लभाचाय ने तो गोपियो को ही अपना गुरु स्वीकार किया है तथा उनकी अनेक कोटियाँ निश्चित की हैं। शृगार की अपेक्षा वात्सल्यभाव अधिक स्वाभाविक तथा मर्यादानुकूल है। इसीलिए पुष्टि सम्प्रदाय मे वात्सल्य को अधिक महत्व मिला है। भगवानु कृष्ण की लीलाओं मे रास-लीला सर्वोपरि है। महाप्रभु वल्लभाचायजी ने रास-लीला को बडा महत्व दिया है तथा उसके सम्बन्ध मे एक मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। श्रीमद्‌भागवत मे रास-लीला के सम्बन्ध मे वेणु अथवा मुरली के विशिष्ट महत्त्व का प्रतिपादन हुआ है तथा वहाँ वेणुगीत की रचना ही अलग से की गयी है। पुष्टि सम्प्रदाय के कृष्ण भक्त कवियो ने वेणु प्रसग मे अनेक पद लिखे हैं। श्रीमद्‌भागवत के भ्रमरगीत प्रसग को जितनी महत्ता पुष्टि सम्प्रदाय के कवियों ने दी है उतनी अन्य किसी सम्प्रदाय के कवियो ने नही। विरह को लेकर इन कवियो ने अनेक कल्पनाएँ की हैं तथा अलग से ही उपालम्भ काव्यो की सृष्टि कर डाली है। विरह भक्ति का चरमोत्कर्ष है। श्रीमद्‌भागवत के भ्रमर-गीत के सम्बन्ध मे हम पञ्चम अध्याय मे लिख चुके हैं। इस विवेचन से हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं कि भागवत महापुराण की मान्यता यद्यपि अनेक सम्प्रदायो मे है फिर भी उसके सम्पूर्ण आधारभूत तत्त्वो का विवेचन पुष्टि सम्प्रदाय मे सबसे अधिक हुआ है।

आचार्य वल्लभ ने पुष्टि सम्प्रदाय के नाम की प्रेरणा भी श्रीमद्‌भागवत से ही ग्रहण की। भागवत के द्वितीय स्कध दशम अध्याय के चतुथ श्लोक मे भगवान् के अनुग्रह को पोषण कहा गया है—'पोषण तदनुग्रह'। पोषण को ही पुष्टि कहते है, भगवान् के अनुग्रह से ही भक्त के हृदय मे भक्ति का उदय होता है। भगवान् के प्रति अनन्यता प्राप्त करने के लिए भक्त को अपना सब कुछ उसे समर्पण करना पडता है, यही पुष्टि सम्प्रदाय का मूल तत्त्व है। मूल मे पुष्टि भक्ति का स्वरूप श्रीमद्‌भागवत के अनुसार प्रेमलक्षण निर्गुण ही है। सम्भवत निर्गुण और सगुण के सामञ्जस्य के लिए ही आचायजी ने अपने मार्ग में विशिष्ट सेवा का निरूपण किया था। आचायजी के मत-प्रचार का एकमात्र साधन श्रीमद्‌भागवत की कथा थी। पुष्टि सम्प्रदाय के हिन्दी कवि गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समय मे विशेष रूप से पल्लवित हुए। सम्भवत सम्प्रदाय की सागोपाग व्यवस्था गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने ही की थी तथा उन्होने ही पुष्टिमार्गीय सेवा-भावना को क्रियात्मक रूप दिया तथा श्रीनाथजी के आठ शृगारो, झाँकियो तथा उत्सवों आदि का सन्निवेश सम्प्रदाय मे किया। आठो झाँकियो मे

नियमित कीर्तन के लिए आठ सगीतावाय कीतनकार नियुक्त किए तथा उन कीर्तनकारो के अनेक टेककार तथा झालरिया भी नियुक्त किये गये ।

हम पहले कह चुके है कि वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्‌भागवत को वेद, ब्रह्मसूत्र और गीता की भाँति प्रमाण माना तथा अपने सभी सिद्धान्त ग्रन्थो मे भागवत को आधार भूत स्वीकार किया । महाप्रभु के सिद्धान्त रहस्य' नाम के ग्रन्थ की विवृत्ति मे गोस्वामी हरिराय जी ने लिखा है कि भक्ति पुष्टि प्रवाह तथा मर्यादा भेद से तीन प्रकार की होती है । प्रवाह भक्ति का विवेचन तो वेद तथा पुराणो मे हुआ है तथा मर्यादा और पुष्टि के निरूपण के लिए श्रीमद्‌भागवत का प्रादुर्भाव हुआ । मर्यादा भक्ति का फल है, प्रभु स्नेह जो पुष्टि-भक्ति का आधार है । सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार पुष्टि भक्ति का विवेचन श्रीमद्‌भागवत के छठे स्कन्ध मे हुआ है जहाँ भगवान् के अनुग्रह का प्रत्यक्ष रूप दिखाया गया है । महाप्रभु वल्लभाचायजी ने 'तत्त्व दीप' निबध के भागवताथ प्रकरण मे इस स्कन्ध को पुष्टि स्कन्ध माना है । इस स्कन्ध का साराश हम चतुथ अध्याय में दे चुके हैं। स्कन्ध के प्रथम अध्याय के १५, १६ १७ वे श्लोको को पुष्टि भक्ति के तत्वो का विवेचन करने वाला कहा गया है। उनका साराश यह है कि भगवान् की शरण मे रहने वाले भक्तजन, जो विरले ही होने हैं, केवल भक्ति के द्वारा ही अपने पापो को इस प्रकार भस्म कर देते हैं जैसे सूय कुहरे को । पापी पुरुष की जैसी शुद्धि भगवान् को आत्म समपण करने तथा उसके भक्तो की सेवा करने से होती है वैसी तपस्या आदि के द्वारा भी सम्भव नही । भक्ति का यही माग भय रहित और कल्याण स्वरूप है । तथा इसी माग पर भगवत् परायण साधुजन चलते हैं । इसी अध्याय मे अजामिल के आख्यान से भगवान् की इस कृपा का उदाहरण भी प्रस्तुत किया गया है । इस स्कन्ध के एकादश अध्याय का इन्द्र वृत्रासुर आख्यान पुष्टि सम्प्रदाय का सवस्व है । इस आख्यान मे भी वृत्रासुर की प्राथना के चार श्लोक बडे महत्त्व के है। पुष्टि माग मे इन श्लोकों को 'वृत्रासुर चतु श्लोकी' का नाम दिया गया है। सम्प्रदाय के अनुसार इन चारों श्लोकों मे पुष्टिमार्गीय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वणन है । श्रीमद्‌भागवत के प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्कन्ध की व्याख्या करके जब महाप्रभु दशम स्कन्ध की व्याख्या करने लगे तो उन्होंने व्याख्या से पहले भागवत मे पुष्टि तत्त्व का विवेचन करना आवश्यक समझा तथा इन चारों श्लोको की सुबोधिनी मे व्यारया की । इस चतु श्लोकी पर ही श्री पुरुषोत्तम जी का प्रकाश है । पहले श्लोक द्वारा पुष्टिमाग का निरूपण हरिनाम स्वरूप स्मरण, हरिगुण कीतन तथा प्रेम-सेवा का विवेचन हुआ है तथा दास्य भक्ति को महत्त्व प्रदान किया गया है । द्वितीय श्लोक से पुष्टिमार्गीय अथ का निरूपण किया गया है, तृतीय श्लोक से पुष्टिमार्गीय काम की प्रार्थना की गयी है, इसी श्लोक के माध्यम से भगवान् कृष्ण के शृङ्गार रस रूप की कल्पना की गयी है । चतुर्थ श्लोक मे पुष्टि मार्गीय मोक्ष का निरूपण है । निष्कषरूप मे निम्न-लिखित कारिका कही गयी है ।

पुष्टिमार्गे हरेर्दास्य धर्मोऽर्थो हरिरेव हि ।
कामो हरेर्दिदृक्षैव मोक्ष कृष्णास्य चेद्‌ध्रुवम् ।

अर्थात पुष्टिमाग मे व्रजाधिपति श्रीकृष्ण की सर्वात्म भाव से सदा सेवा करना ही परम धम है, अन्य कोई धम कर्त्तव्य नही, यही अथ है, यही काम है और यही मोक्ष है ।

आगे चलकर पुष्टिमाग मे सेवा को बडा महत्त्व प्राप्त हुआ तथा इस पर अनेक ग्रन्थ तथा टीकाएँ लिखी गयी। ऋतु एव समय के अनुसार आठो झाकियो मे कीतन की व्यवस्था की गयी। यहाँ तक कि सेवा मडान के लिए ही गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप की स्थापना की। यह अष्टछाप की स्थापना भी श्रीमद्भागवत के आधार पर हुई। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान् कृष्ण के निम्नलिखित आठ सखा थे—

हे स्तोक कृष्ण हे अशो ! श्रीदामन् ! सुबलार्जुन।
विशालषभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप।
(श्रीमद्० दशमस्कन्ध, अध्याय २२, श्लोक ३१)

गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अष्टछाप के आठो कवियो को ठाकुर जी के आठो सखाओं के रूप मे माना और आठो झाकियो मे उन्हे भगवान् को कीतन सेवा करने का आदेश दिया। इन आठो कीतनकारो ने ब्रजभाषा के विशाल साहित्य की सजना की है, इनके साथ-साथ जो झालरिया थे, उ होने भी ब्रजभाषा मे असख्य पद लिखे थे। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने श्रीकृष्ण की उन सात दिव्य मूर्तियो जो उन्हे अपने पूज्य पिता से सप्तनिधि के रूप मे प्राप्त हुई थी अलग-अलग अपने सातो पुत्रों को दे दिया जिन्होने उन स्वरूपो की पृथक्-पृथक् सेवा प्रारम्भ की। इन्ही सात स्वरूपो के कारण पुष्टि सम्प्रदाय के सात गृहो अथवा सप्त पीठो का नामकरण हुआ है। पुष्टि सम्प्रदाय मे सहस्रो की सख्या मे भक्त दीक्षित हुए, उनमे अनेक उच्च कोटि के कवि तथा कीतनकार थे। ये कीतन-पद विशेष रूप से सम्प्रदाय के सेवा पक्ष से सम्बद्ध हैं। सेवा के तीन रूप माने गये है—गुरु सेवा, सन्त-सेवा तथा प्रभु-सेवा। पुष्टिमाग मे क्रियात्मक सेवा का विशेष महत्त्व है जो तनुजा, वित्तजा और मानसी रूप मे तीन प्रकार की होती है। आत्म-निवेदन और शरणागति भी पुष्टिसेवा के क्रियात्मके स्वरूप हैं। पुष्टि माग मे नित्य सेवा विधि और वर्षोत्सव विधि का भी बडा महत्त्व है। नित्य सेवा विधि प्रात काल से लेकर शयन पर्यन्त तक होती है, जिसके आठ समय होते है। वर्षोत्सव विधि का पालन विशिष्ट उत्सवो पर किया जाता है। इन विभिन्न प्रकार के सेवा पक्षो को लेकर पुष्टि-सम्प्रदाय मे कोटिश पदो की रचना हुई। भोग, राग और शृ गार के भेद से इन पदो मे ब्रज सस्कृति के सम्पूण अगो का समावेश हुआ। पुष्टि सम्प्रदाय के कवियो ने योग की विविध सामग्री और प्रकारो का विशद 'विवेचन किया है। भोग की भाँति राग भी कीतन भक्ति का मुख्य अग माना गया है। यही कारण है कि इन कवियो के पदो मे अनेक राग-रागिनियो का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार भगवान् के मस्तक के आठ शृ गारो के अतिरिक्त कठ, हस्त, कटि, चरण और मुखादि के शृ गारो की भी कल्पना की गयी है। शृ गारो के अतिरिक्त इन कवियों ने वस्त्रो का भी वणन किया हे। पुष्टि-सम्प्रदाय की क्रियात्मक सेवा मे सदाचार का भी महत्त्व है इसलिए उसके साहित्य मे सदाचार और सत्सगति के भी अनेक पद है। इस प्रकार हम देखते है कि पुष्टिमार्गीय साहित्य मे भागवतोक्त विशेष तथा सामान्य सभी तत्त्वों का विस्तार से समावेश हुआ है।

पुष्टि सम्प्रदाय के कवियो का राधा-वर्णन अपनी विशेषता है। हम पहले कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत मे राधा का स्पष्ट उल्लेख नही है, केवल एक गोपी-विशेष का उल्लेख है। राधा के विकास पर हमने अपने ग्रन्थ 'सूर और उनका साहित्य' मे विस्तार से विवेचन किया

है। यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि भागवत सम्प्रदाय के नये विकसित रूपो मे राधा कृष्ण सम्पूण भाव जगत् के व्यक्ति हो चुके थे यही कारण है कि १४ वी शताब्दी के अनन्तर सभी सम्प्रदायो मे युगल-उपासना को इतना महत्त्व मिला है। प्रत्येक सम्प्रदाय मे इस युगल उपासना के सम्बन्ध मे निजी मौलिक कल्पनाएँ है। राधा कवि मानस के सम्पूण नारी-सौन्दर्य तथा सम्पूण नारी प्रेम माधुय की अपरूप प्रतिमा है पुष्टि सम्प्रदाय के कवियो का युगल उपासना का स्थूल रूप निश्चित रूप मे भागवतानुसारी नही कहा जा मकता परन्तु सूक्ष्म रूप अवश्य ही भागवतानुसारी है।

यो तो पुष्टि सम्प्रदाय का आज भी विपुल ब्रजभाषा साहित्य अन्धकार के गत्त मे है, फिर भी हम कह सकते है कि उसका जितना भी साहित्य प्रकाशित हो चुका है वह मात्रा की दृष्टि से तो अन्य सम्प्रदायो के साहित्य की अपेक्षा अधिक है ही, उत्कष की दृष्टि से भी कम महत्त्वपूण नहीं है। आज विशेषरूप से अष्टछाप के कुछ कवियो का ही कुछ साहित्य उपलब्ध होता है इसलिए भागवत की तुलना मे हम उन्ही के साहित्य का विवेचन प्रस्तुत करते हैं। अष्टछाप के आठों कवि श्रीनाथ जी के अन्तरग सखा माने गये हे जो उनकी नित्य-लीला मे सदा उनके साथ रहते हैं। पुष्टि सम्प्रदाय मे ऐसी मान्यता है कि जब सवत् १५३५ में श्रीनाथ जी का प्राकट्य हुआ, तभी ये सखा भी उनकी सेवा करने के लिए भूतल पर प्रकट हुए। गिरिराज तलहटी नित्य लीला भूमि हे जहा श्रीनाथ जी स्वामिनी सहित नित्य लीला करते हैं और ये आठो सखा उनकी लीलाओ मे आठो पहर उनके साथ रहते है। इन सखाओ के लीलात्मक स्वरूपो की स्थिति यह हे कि वे दिन मे ठाकुर जी के सखा रूप से उनकी बन लीला का सुखानुभव करते हैं तथा रात्रि मे स्वामिनी जी की सखी रूप से निकुञ्ज लीला का सुख-लाभ करते हैं। गिरिराज नित्य निकुञ्ज के आठ द्वार है, अष्ठछाप के आठो सखा इन द्वारों के अधिकारी हे जो सदैव ठाकुर जी की सेवा मे रत रहते है। लौकिक लीला मे वे भौतिक शरार से इन द्वारो पर स्थित रहते है और लौकिक लीला की समाप्ति पर वे अपने भौतिक शरीर को त्यागकर अलौकिक रूप से नित्यलीला मे विराजमान रहते है, पुष्टि सम्प्रदाय की भावना के अनुसार अष्टछाप के लीलात्मक उभय स्वरूप, उनकी लीलासक्ति और उनके अधिकृत द्वारो का विवरण इस प्रकार हे —

स०	अष्टसखा	लीलात्मक स्वरूप	लीलासक्ति	अधिकृतद्वार
१	कुम्भनदास	अर्जुनसखा-विशाखा सखी	निकुजलीला	आन्यौर
२	सूरदास	कृष्णसखा-चपकलता सखी	मान लीला	चन्द्र सरोवर
३	परमानन्ददास	तोकसखा-चन्द्रभागा सखी	बाल लीला	सुरभी कुड
४	कृष्णदास	ऋषभसखा-ललिता सखी	रास लीला	बिलछू कुड
५	गोविन्दस्वामी	श्रीदामासखा भामा सखी	आँखमिचौनी	कदम खडी
६	छीतस्वामी	सुबल सखा-पद्मासखी	जन्म लीला	अप्सरा कुड
७	चतुर्भुजदास	विशालसखा-विमलासखी	अन्नकूट लीला	रुद्र कुड
८	नन्ददास	भोजसखा-चन्द्ररेखा सखी	किशोरलीला	मानसी गगा

अष्टछाप के कवियो मे कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास तथा कृष्णदास तो महाप्रभु वल्लभाचाय जी के शिष्य थे तथा गोविन्दस्वामी, नन्ददास, छीतस्वामी तथा चतुर्भुजदास

गोसाईं विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे। अष्टछाप की स्थापना स० १६०२ मे की गयी। श्रीमद्भागवत के एकादश कृष्ण सखाओ का उल्लेख हम पहले कर चुके है उन्ही मे से आठ सखाओ का सम्बन्ध अष्टछाप के कवियो से है। इस सम्बन्ध मे द्वारकेश जी का एक छप्पय इस प्रकार मिलता है—

सूरदास सो तौ कृष्ण, तोक परमानन्द जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ, छीतस्वामी सुबल बखानो॥
अर्जुन कुम्भनदास, चत्रभुजदास विसाला।
विष्णुदास सो भोज, स्वामिगोविंद श्रीदामाला॥
अष्टछाप आठो सखा, 'श्री द्वारकेस' परमान।
जिनके कृत गुनगान करि, निज जन होत सुथान॥

उपर्युक्त पद मे नन्ददास के स्थान पर विष्णुदास का नाम है, बात यह है कि नन्ददास जी स० १६०७ मे सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे, तभी विष्णुदास की जगह उनका वाम अष्टछाप मे जोडा गया था। अष्टछाप के इन आठों कवियो का काल सामान्य रूप से इस प्रकार माना गया है—

१	कुम्भनदास	स० १५२५–१६४०
२	सूरदास	स० १५३५–१६४०
३	परमानन्ददास	स० १५४०–१६४१
४	कृष्णदास	स० १५५३–१६३६
५	गोविन्दस्वामी	स० १५६२–१६४२
६	छीतस्वामी	स० १५७३–१६४२
७	चतुर्भुजदास	स० १५८७–१६४२
८	नन्ददास	स० १५९०–१६४०

इन कवियो का जीवन परिचय सम्प्रदाय के वार्ता-साहित्य मे मिलता है। इनके भागवतानुसारी रचनाओं का सक्षिप्त परिचय हम काल क्रम के अनुसार से प्रस्तुत करते है—

कुम्भनदास

कुम्भनदास जी का कोई विशेष ग्रन्थ तो प्राप्त नही होता, परन्तु कीर्तन-सग्रहो मे उनके पद पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। कुम्भनदास जी के पदो मे युगल-उपासना का ही वैशिष्ट्य है फिर भी भागवत की बाल-लीला तथा गोपी-प्रेम के भी इनके अनेक पद मिलते हैं। भागवत की प्रेम-लक्षण भक्ति, रासलीला तथा दानलीला का भी इन्होने अच्छा वर्णन किया है। इनके अनेक पदों में भागवत का साम्य स्पष्ट आभासित होता है। इनके रूपासक्ति सम्बन्धी केवल दो पदों का उल्लेख किया जाता है—

१— नैननि टकटकी लागि रही।
नख सिख अग लाल गिरिधर के देखत रूप बही॥
प्रातकाल घर ते उठि सुन्दर जाति ही बेचन मही।
ह्वै गई भेट स्यामसुन्दर सो, अधभर पथ बिच ही॥

घर-व्यौहार सकल सुधि भूली, ग्वालिन मनसिज दही ।
'कुभनदास' प्रभु प्रीति विचारी, रसिक कचुकी गही ।।

२— कबहूँ देखि हो इन नैननु ।
सुन्दर स्याम मनोहरि मूरत ग्रग ग्रग सुख दैननु ।।
वृन्दावन विहार दिन दिन प्रति, गोपवृन्द सग लैननु ।
हँसि-हँसि हरिष पतौवन पावन, बाँटि बाँटि पथ फैननु ।।
'कुम्भनदास' किते दिन बीते, किये रैन सुख सैननु ।
ग्रब गिरिधर बिन निसि ग्ररु बासर, मन न रहत क्यो चैननु ।।

श्रीमद्भागवत की रास पञ्चाध्यायी मे इस प्रकार के ग्रनेक श्लोक प्राप्त होते हैं। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के २१ वे ग्रध्याय के कई श्लोको का हमे ज्यो का त्यो ग्रनुवाद कुम्भनदास के पदो मे मिलता है। यह ग्रध्याय 'वेणुगीत' के नाम से प्रख्यात है। वेणु का बडा व्यापक प्रभाव बताते हुए भागवतकार लिखता है—

'ग्रस्पन्दन गतिमता पुलकस्तरुणा निर्योगपाशकृत लक्षणयोर्विचित्रम्' ।।१६।।

रास के भी कई पद ज्यो के त्यो भागवत से ग्रनूदित से लगते हैं, केवल दो पद देखिये-

गावत गिरधरन सग, परम मुदित रास रग,
उरपति रयमान लेत नागर नागरी ।
सरी गम पध नि गम पधनि उघत कल सब्द,
सुरन लाग डाट लेत ताल ग्रति उजागरी ।।
चर्वित ताबूल देत, ध्रुव ताल गति लेत, गिडि गिडिता,
गिडि गिडिता, तता थुग थेई ग्रलाग लागरी ।
सुरति केलि बन विलास, बलि-बलि-बलि 'कुम्भनदास'
श्री राधावर नदनदन वर सुहाग री ।।

भागवत के निम्नलिखित श्लोको को देखने मे भागवतानुसरण की बात स्पष्ट हो जाती है—

१— 'नद्या पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्द कुमुदामोद वायुना' ।। (१०।२६।४५)

२— 'वलयाना नूपुराणा किङ्किणीना च योषिताम् ।
सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले' ।। (१०।३६।६)

३— 'कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्ड गण्डे सन्दधत्या ग्रादात्ताम्बूल चर्वितम्' ।। (१०।३३।१३)

कुम्भनदास जी का लीला-गान बहुत कुछ भागवत का ग्रनुसरण करता है। एक दूसरा पद कुम्भनदास जी का निम्न प्रकार है—

कृष्न तरनि-तनया तीर रास-मडल रच्यौ,
ग्रधर केल मुरलिका वेणु बाजै ।
जुवती जन जूथ सग, नितत ग्रनेक रग,
निरखि ग्रभिमान तजि काम लाजै ।।

स्याम तन पीत कौसेय सुभ पद नखनि,
चंद्रिका सकल कलिमल-हर भुवभ्राजे ।
ललित अवतंस संभु धनुष लोचन चपल,
चितवनि मानो मदन बान साजै ।।
मुख मंजीर, कटि किंकनी कुनित रव,
वचन गंभीर जनु मेघ गाजै ।
दास 'कुम्भनदास' कुंभदास हरिदास वय,
धरनि नख सिख स्वरूप अद्‌भुत विराजै ।।

कुम्भनदास के इन पदो मे 'चर्वित ताम्बूल देत' तथा 'हरिदास वय' विशेष रूप से दर्शनीय है । भागवतकार ने स्पष्ट ही 'आदात्ताम्बूलचर्वितम्' लिखा है तथा दशमस्कन्ध के २० वे अध्याय के १८ वे श्लोक मे गोवर्द्धन पर्वत के लिए 'हरिदास वय' शब्द का प्रयोग किया है । इस प्रकार भागवत के अनेक पदो की समानता कुम्भनदास मे देखी जा सकती है ।

सूरदास

अष्टछाप-माला मे सूरदास सुमेरु के तुल्य है, जहाँ सूरदास अपने कवित्व विषय प्रतिपादन तथा भाव-गाम्भीय मे पुष्टि सम्प्रदाय मे सर्वोपरि है, वहाँ भागवतानुसरण मे भी उनके समकक्ष हिन्दी का दूसरा कवि नही है । 'सूरदास तथा श्रीमद्‌भागवत' शीर्षक एक शोध-प्रबन्ध हमने अलग से ही प्रस्तुत किया है । 'सूर और उनका साहित्य' नामक ग्रन्थ मे एक निबन्ध अलग से इसी विषय पर लिखा गया है । सूरदास जी के तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं— सूरसागर, सूर सारावली और साहित्य-लहरी । पुष्टि सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले सूरदास जी विनय पदो की रचना किया करते थे, महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रेरणा से उन्होने भगवत लीला-गान प्रारम्भ किया । जब महाप्रभु ने उन्हे 'पुरुषोत्तम सहस्र नाम' का पाठ कराया, उन्हे सम्पूर्ण भागवत का स्फुरण हुआ तथा उन्होंने भागवत की कथा को पद बद्ध करना प्रारम्भ कर दिया । सूरदास की वार्त्ता मे इस घटना का स्पष्ट उल्लेख है —

"ता पाछे श्री आचार्य जी ने सूरदास कू पुरुषोत्तम सहस्र नाम सुनायो, तब सगरे श्रीभागवत की लीला सूरदास के हृदय मे स्फुरी, सो सूरदास ने प्रथम स्कन्ध श्री भागवत सो द्वादस स्कन्ध पर्यन्त कीर्तन वर्णन किये । तामे अनेक दान लीला, मान लीला आदि वर्णन किये है ।" (सूरदास की वार्ता, अग्र० प्रे० मथुरा, प्रसंग १, पृष्ठ १०)

प्राय विद्वानों की यह धारणा है कि सूरदास जी का सूरासगर श्रीमद्‌भागवत का अनुवाद है । शायद इस धारणा का कारण सूरसागर के वे अनेक पद है जिनमे भागवत का स्पष्ट उल्लेख हुआ है । श्रीमद्‌भागवत और सूरसागर का हमने तुलनात्मक विवेचन अपने ग्रन्थो मे किया है । बात यह है कि सूरसागर की दो प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। संग्रहात्मक तथा द्वादश स्कन्धात्मक । यह देखकर आश्चर्य होता है कि स्कन्धात्मक प्रतियो में भागवत का उल्लेख नही के बराबर है जबकि द्वादशस्कन्धात्मक प्रतियो के प्रत्येक स्कन्ध मे एकाधिक बार भागवत के अनुसार कथा वर्णन करने की बात को दुहराया गया है । यह आवृत्ति प्रथम, चतुर्थ तथा नवम स्कन्धो मे सबसे अधिक हुई है दशम स्कन्ध मे तो यह बात सात बार

कही गयी है। इस ग्रावृत्ति मे दो बाते लक्ष्य करने की हैं–(१) किसी भी ग्रावृत्ति मे ग्रनुवाद का प्रयोग नही हुग्रा है, केवल भागवत के ग्रनुमरण की बात है। (२) भागवतानुसारी पद स्कन्ध परक न होकर कथापरक है ग्रर्थात् कथा विशेष का वर्णन करता हुग्रा कवि उसके ग्राधार का परिचय मात्र देता है।

सूरदास जी के इस सम्बन्ध मे केवल दो पद हम यहाँ उद्धृत करते हैं।

(१)

श्री मुख चारि श्लोक दए ब्रह्मा को समझाइ
ब्रह्मा नारद सो कहे नारद व्यास सुनाइ।
व्यास कहे सुकदेव सौ, द्वादस-स्कन्ध बनाइ
सूरदास सोई कहे पद-भाषा करि गाइ। (सूरसागर १/२२५)

(२)

व्यास देव जब सुकहिं पढायो सुनि कै सुक सो हृदय बसायो।
सुक सौ नृपति परीक्षित सुन्यौ तिनि पुनि भली भाँति कर गुन्यौ।
सूत सौनकादि सौ पुनि कह्यौ विदुर सों मैत्रेय पुनि लह्यौ।
स्तुति भागवत सवन सुख पायो सूरदास सो बरन सुनायो॥ (सूरसागर १/२२७)

श्रीमद्भागवत के महात्म्य मे भागवत का मूल 'चतु श्लोक समन्वित' ही बताया गया है तथा भागवत की कथा को वेदो ग्रौर उपनिषदो का सार कहा गया है। सूरदास जी ने भागवत का महात्म्य बडे भक्ति भाव से कहा है एक दो पद देखिए—

(ग्र) नर तै जनम पाइ कह कीनौं?
उदर भर्यौ कूकुर सूकर लौं प्रभु को नाम न लानौं।
श्रीभागवत सुनी नहिं स्रवननि गुरु गोविन्द नहिं चीनौं॥

× × ×

(ग्रा) श्रीभागवत सुनी नहि स्रवननि नैकहु रुचि उपजाइ।
ग्रानि भक्ति करि, हरि भक्तन के कबहुँ न धोए पाइ॥

× × × ×

(इ) श्री भागवत सुन्यौ नहि कबहूँ, बीचहि भटकि मर्यौ।
सूरदास कहै सब जग बूड्यौ, जुग जुग भक्त तर्यौ॥

भागवत की वक्तृ-श्रोतृ-परम्परा का वर्णन भी सूरदास जी ने ठीक भागवत के ग्रनुसार ही किया है।

भयो भागवत जा परकार। कहौ सुनौ सो ग्रब चित धार॥
सतजुग लाख बरस की ग्राइ। त्रेता दस सहस्र कहि गाइ॥
द्वापर सहस एक की भई। कलजुग सत सवत रहि गई॥
सोउ कहन सुनन कौं रही। कलि मरजाद जाइ नहिं कही॥
ताते हरि करि व्यासऽवतार। करी हँसिता वेद विचार॥
बहुरि पुरान ग्रठारह किए। पै तऊ साति न ग्राई हिए।
तब नारद तिनकें ढिग ग्राइ। चारि स्लोक कहे समुझाइ॥

× × × ×

दासी-सुत तैं नारद भयौ। दोष दासपन कौ मिटि गयौ ।।
व्यास देव तक करि हरि ध्यान । कियौ भागवत कौ व्याख्यान ।। (सूरसागर पद २३०)

पुष्टि सम्प्रदाय मे यह मान्यता है कि महाप्रभु वल्लभाचाय भागवत प्रकरण की जिस प्रकार व्याख्या किया करते थे सूरदास जी उसी प्रकार उस प्रकरण की ब्रजभाषा मे पद रचना किया करते थे। यहा सूरदास जी के समस्त भागवतानुसारी पदो का तुलनात्मक विवेचन आवश्यक नही है, नमूने के लिए कुछ स्थल पर्याप्त होगे। सूरदास जी ने भागवत के सामान्य तथा विशेष सभी तत्वो पर पद रचना की है। श्रीमद्भागवत के लगभग सभी स्कन्धो मे भक्ति का महत्त्व प्रतिपादत हुआ हे परन्तु विशेष रूप से प्रथम तथा अष्टम स्कन्ध मे भक्ति की महिमा का का अधिक गान हुआ हे। सूरसागर मे भी स्थान स्थान पर भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। भक्त के लक्षण भी सूरदास जी ने भागवत के ही आधार पर गिनाये है। भगवन्नाम महिमा, गुरुमहिमा, आदि के अनेक पद भागवत से तुलनीय हैं।

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, भागवत मे भक्ति के उन सामान्य भक्ति-तत्वो का विवेचन हुआ है जो सभी सम्प्रदायो मे सव साधारण तथा मान्य हैं। भागवत मे उनको व्यवस्थित रूपमात्र दे दिया है। सूर साहित्य मे जो विशेष बात लक्ष्य करने की है वह यह है कि सूर ने भागवत के विशिष्ट तत्वो का ही अधिकाश मे अनुसरण किया है। सूर की रचनाओं से हमें यह बात स्पष्ट झलकती है कि उनका उद्देश्य कृष्ण की लीलाओं का ही गान करना था, वार्त्ता साहित्य के अनुसार महाप्रभुजी का उन्हे आदेश भी यही था। श्रीमद्भागवत का दशमस्कन्ध ही भगवान् की लीलाओं का प्रधान स्थल है यहाँ तक कि महाप्रभु बल्लभ ने भी दशम स्कन्ध की व्याख्या मे ही विशेष रुचि दिखायी है। पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार श्रीमद्भागवत मे व्यास की समाधि भाषा है, शायद इसीलिए भक्तो ने भागवत की लीलाओ का विस्तार से वर्णन किया है। कमयोग तथा ज्ञानयोग से विरत होकर सूरदासजी ने लीला-गान को ही अपना एकमात्र लक्ष्य बनाया था जैसा कि उन्होने सूर-सारावली मे लिखा भी है—

कर्मयोग पुनि ज्ञान उपासन सब ही भ्रम भरमायौ।
श्री वल्लभ-गुरु तत्व सुनायौ लीला भेद बतायौ ।।
ता दिन ते हरि-लीला गाई एक लक्ष पद-बन्द।
ताको सार सूर-सारावलि गावत अति आनन्द ।। (सूर-सारावली)

सूर-सागर तथा भागवत की तुलना करने पर हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुचते है—

(१) सूरदासजी ने विशेष रूप से भागवत के दशम स्कन्ध का ही अनुसरण किया है, अन्य स्कन्धो के उन्होंने वही स्थल लिये है, जहाँ भक्ति के सामान्य तत्वो का विवेचन है। दशम स्कन्ध के स्थलो मे भी अनुवाद की बात नही है बल्कि महाकवि ने सकेतों को बीज रूप मे ग्रहण कर उन्हे अपनी कल्पना के उन्मुक्त वातावरण मे पल्लवित-पुष्पित तथा फलित किया है।

(२) सूर ने न तो भागवत के दार्शनिक पक्ष पर ही विशेष ध्यान दिया है तथा न ही उसके पौराणिक तथा ऐतिहासिक आख्यानों मे उनकी वृत्ति रमी है, उल्टे जिस स्थल पर भागवत के वर्णन को सूर ने ज्यों का त्यो अपनाने का प्रयास किया है, वहाँ उसमे शिथिलता ही आ गयी है।

(३) सूर-साहित्य की लीलाओ का क्रम भागवत से भिन्न है। उनकी कुछ लीलाएँ ऐसी भी हैं जिन्हे पूर्णतया मौलिक, स्वतन्त्र और भागवत निरपेक्ष कह सकते हैं जैसे राधा-कृष्ण-मिलन, पनघट-प्रस्ताव, दान लीला आदि।

श्रीमद्भागवत मे वर्णित दर्शन तथा भक्ति के सिद्धान्तों का विवेचन हम पहले कर चुके हैं। सूरदासजी ने भागवत के इन सभी सिद्धान्तो का ब्रजभाषा मे खुलासा प्रस्तुत किया है। इतनी बात अवश्य है कि सूर के पद भागवत के श्लोको के अविकल अनुवाद न होकर स्वतन्त्र विवेचन हैं। भागवत के सभी सामान्य तथा विशेष तत्व सूरसागर मे आ गये है। सभी पक्षो के तुलनात्मक विवेचन का यहा अवसर नही है, केवल कुछ नमूने के पद हम यहाँ प्रस्तुत करते है। कृष्ण-जन्म के अवसर पर भागवतकार ने तृतीय अध्याय मे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आनन्दातिरेक का वर्णन किया है—

दिश प्रसेदुर्गगन निर्मलोडुगणोदयम् । मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्राम ब्रजाकरा ॥
नद्य प्रसन्नसलिला ह्लदा जलरुहश्रिय । द्विजालिकुलसंनादस्तवका वनराजय ॥
ववौ वायु सुखस्पर्श पुण्यगन्धवह शुचि । अग्नयश्व द्विजातीना शान्तास्तत्र समिन्धत ॥
मनास्यासन् प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् । जायमानेऽजने तस्मिन् नेदुदुन्दुभयो दिवि ॥
जगु किन्नरगन्धर्वास्तुष्दुवु सिद्धचारणा । विद्याधयश्च ननृतुरप्सरोभि सम तदा ॥
मुमुचुर्मुनयो देवा सुमनासि मुदान्विता । मन्द मन्द जलधरा जागर्जुरनु सागरम् ॥
निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने । देवक्या देवरूपिण्या विष्णु सर्वगुहाशय ॥
(श्रीमद्० १०/३/२—८)

सूरदासजी ने कृष्ण के जन्मोत्सव को लेकर सैकडो पदों की रचना की है, कई पद तो श्रीमद्भागवत के अनुवाद से लगते हैं, एक पद देखिए -

आनन्दे आनन्द बढ्यो अति।
देवनि दिवि दुदभी बजाई, सुनि मथुरा प्रगटे जादब पति।
विद्याधर किन्नर कलोल मन उपजावत मिलि कठ अमित गति।
गावत गुन गधर्व पुलक तन, नाचति सब सुर नारि रसिक अति।
बरषत सुमन सुदेस सूर सुर, जय जय कार करत मानत रति।
सिव बिरचि इन्द्रादि अमर मुनि फूले सुख न समात मुदित मति॥
(सूरसागर पद ६२४)

कृष्ण जन्मोत्सव के प्रसग मे सूर-सागर से ऐसे कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं जो भागवत के अनुवाद से प्रतात होते है। सूर-सागर की सग्रहात्मक प्रतियो में 'ब्रजभयो महर के पूत जब यह बात सुनी' वाला पद बडा प्रसिद्ध है। यह सम्पूर्ण पद श्रीमद्भागवत के

सप्तम अध्याय के १८ से २१ वे श्लोको तक का ठीक अनुवाद सा लगता है। कृष्ण की अलौकिक लीलाएँ जैसे तृणावत वध, पूतना-वध आदि सूर-सागर मे ठीक भागवत के अनुसार है। सूरदासजी ने कृष्ण की बाल लीलाओ को भी बडे विस्तार से गाया है। यह ठीक ही है कि श्रीमद्‌भागवत मे कृष्ण-लीलाएँ सूत्ररूप मे वर्णित ह जबकि सूर सागर मे उनका विस्तार से भाष्य है, फिर भी अनेक पद भागवत के अनुवाद से लगते हैं। श्रीमद्‌भागवत के दशम स्कन्ध के ११ वे अध्याय के १४ से २० श्लोक तक देखिए, जिनमे यशोदा के पुत्र-वात्सल्य का चित्रण है। सूर-सागर मे इस विषय पर अनेक पद प्राप्त होते हैं। भागवतकार ने श्रीकृष्ण के अपार सौन्दय के सम्ब ध मे लिखा है कि यदि सृष्टि के सम्पूर्ण सौदन्य को एक स्थान पर रख दिया जाय तो कही कृष्ण के सौन्दय की झलक मिल सकती है। सूरदासजी ने इस सूत्र के आधार पर बडे-बडे रूपक बाँधे ह। इसी प्रकार श्रीमद्‌भागवत के वेणु गीत और युगल-गीत से भी सूरदासजी को विशेष प्रेरणा मिली। सूर-सागर मे श्रीमद्‌भागवत की भाँति कृष्ण-चरित के दो स्वरूप मिलते हैं —एक तो ब्रज के क्रीडामय जीवन से सबद्ध और दूसरा अलौकिक लीलाओ का। सूरदासजी ने इन दोनो ही स्वरूपो मे अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। सबसे बडी बात सूर के वणन मे यह है कि उन्होने अपनी कला को ब्रज सस्कृति का रूप दिया है।

सूर का राधा चित्रण भी भागवत-निरपेक्ष है तथा रास-लीला का क्रम भी कुछ भागवत से अलग है। बात यह है कि श्रीमद्‌भागवत की लीला का वातावरण धार्मिक तथा दाशनिक है जबकि, सूरसागर की लीलाएँ सरल, स्वाभाविक तथा मनोहर है। दूसरे, श्रीमद्‌भागवत मे श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व और योगेश्वरत्व पर विशेष बल दिया गया है जबकि सूर ने कृष्ण का मानव रूप ही चित्रित किया है। सूरदास की रास-पञ्चाध्यायी मे कई मौलिक उद्‌भावनाएँ है। महाकवि सूरदास केवल भागवत का भाष्य ही प्रस्तुत नही करते, बल्कि अपनी ओर से भी अनेक सुन्दर सुन्दर टिप्पणियाँ जोड देते है, श्रीमद्‌भागवत के युगल-गीत का भाष्य बडे विस्तार और भावपूण ढग से हुआ है। सूर का भ्रमर-गीत भी अनेक मौलिक उद्‌भावनाओ से पूर्ण है। भागवत मे उद्धव को ब्रज भेजने का उद्देश्य केवल नन्द-यशोदा को सदेश देकर सुखी करना तथा गोपियो को सान्त्वना देना बताया गया है जबकि सूर ने उद्धव के पाण्डित्य एव ज्ञान-गव को खण्डित कर उन्हे प्रेमाभक्ति मे ही दीक्षित करना उद्देश्य माना है। भागवत का अनुसरण करते हुए भी सूरदास ने अपनी कल्पना को भावना के विस्तृत प्रागण मे चौकडी भरने का अवसर प्रदान किया है।

परमानन्ददास

भागवतानुसारी रचना करने वाले पुष्टि सम्प्रदाय के भक्त कवियों मे परमानन्द जी का नाम दूसरे दर्जे पर आता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे परमानन्द जी के सम्बन्ध मे लिखा है—

"तब आचाय जी ने आपु परमानन्ददास सों कहै जो परमानन्ददास बैठो। तब परमानन्ददास श्री आचार्य जी को साष्टाग दण्डवत करिके बैठे। पीछे श्री आचार्य जी आपु भीतर पधारि भोग सराय के परमानन्ददास कों बुलायके श्री नवनीत प्रियाजी की सन्निधान कृपा करके नाम सुनायो, ता पाछे ब्रह्म सम्बन्ध करवायो। पीछे श्री भागवत दशमस्कध की

अनुक्रमारिणका सुनाए। तब परमानन्ददास जी ने श्री आचार्य जी के आगे बाल-लीला के पद गाए।" —(चौ० वै० की वार्ता परीख सस्कृत पृष्ठ ८०४)

सूरदास जी की भाँति परमानन्ददास जी भी सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले पद-रचना किया करते थे। चौरासी वार्ता के अनुसार इनका साम्प्रदायिक जीवन क्रम उस समय से प्रारम्भ होता है जबकि परमानन्द जी ने अडैल में जाकर महाप्रभु वल्लभाचार्य जी से दीक्षा ली। नाभादास जी के भक्तमाल मे चार भक्त इस नाम के मिलते हैं, उनमे पुष्टि सम्प्रदाय के परमानन्द के वरान इस प्रकार है—

पौगड, वाल, कैसोर, गोप-लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात, हुतौ पहिलौ जु सखाई॥
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमाच रैन दिन।
गदगद गिरा उदार, स्याम सोभा भीज्यौ तन॥
सारग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
ब्रज वधू-रीति कलिजुग-विषै, परमानद भयौ प्रेम-केत॥

परमानन्ददास जी अपने जन्म-काल मे ही 'सागर' कहलाने लगे थे। पुष्टि-सम्प्रदाय मे सूरदास और परमानन्द दो ही भक्तो को 'सागर' की उपाधि मिली थी। परमानन्ददास जी ने भगवान् कृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा गमन और भ्रमरगीत तक के प्रसगो पर अनेक पद लिखे हैं, परन्तु उन्होने सूरदास की भाँति भगवतानुसरण की बात कही नही कही। महाप्रभु वल्लभाचाय जी ने उन्हे श्रीकृष्ण की बाल-लीला वर्णन करने का ही आदेश दिया था तथा इसी उद्देश्य से उन्हे श्रीमद्भागवत की अनुक्रमरिणका सुनायी थी। परमानन्ददास जी महाप्रभु वल्लभाचाय जी से भागवत की कथा और सुबोधिनी सुना करते थे तथा उन्ही प्रसगो पर गायन शैली मे पद रचना करते थे। उन्होंने भागवत दशम स्कन्ध की लीलाओ का ही विशेष रूप से वरान किया है। शृगार भक्ति के भी उन्होंने अनेक पद लिखे है। परमानन्ददास जी ने अपने पदो मे भागवत तथा शुकदेव मुनि का बडी श्रद्धा से स्मरण किया है। कुछ उदाहरण देखिए —

(१) जब लग जमुना गाय गोवर्धन जब गोकुल गाय गुसाई।
जब लग श्री भागवत कथा तब लग कलियुग नाही॥

(२) माधौ या घर बहुत धरी।
कहन सुनन को लीला कीनी मर्यादा न टरी।
जो गोपिन के प्रेम न हो तो अरु भागवत पुरान।
× × × ×

(३) सेवा मदन गुपाल की मुक्ति हू ते मीठी।
जाने रसिक उपासिका शुक मुख जिन दीठी॥

(४) जो इस रसिक कीर मुनि गायो।
सो रस रटत रटत निसि वासर सेष सहसमुख पार न पायो॥

परमानन्द जी के लीला-विषयक पद सम्प्रदाय मे 'निरोध लीला' के पद माने जाते हैं। निरोध लीला का अभिप्राय है कि भगवान् कृष्ण अपनी लीलाओं से अपने भक्तों का निरोध करते है। निरोध सिद्धि ही परात्पर आनन्द प्राप्ति का हेतु है। उन्होने अपने भगवत लीला

सम्बन्धी पदों मे श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध का अनुसरण किया है तथा भगवान् की बाल, पौंगड तथा किशोर लीलाओं को ही अपने काव्य का विषय बनाया है।

परमानन्ददास जी के लीलापद भागवत के अनुवाद तो नही कहे जा सकते, परन्तु अनुसरण अनेक पदो मे भागवत का हुआ है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते है—

श्रीमद्भागवत—

महार्हवस्त्राभरण कञ्चुकोष्णीष भूषिता। गोपा समाययू राजन् नानोपायनपाणय ॥
(१०।५।८)

परमानन्ददास—

घर घर ते नर नारी मुदित जूरि जूथन धायो है।
लैलै साज समाज सबै ब्रजराज पै आयो है।

श्रीमद्०— 'ता आशिष प्रयुञ्जानाश्चिर पाहीति बालके।
हरिद्राचूर्ण तैलाद्भि सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगु।
अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे।
कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य ब्रजमागते ॥
गोपा परस्पर हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभि।
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपु ॥
(१०।५।१२–१४)

परमानन्ददास— फूले ग्वाला मानो रण जीते आनंद फूले बाग।
हरद दूबि दधि गोरोचन छिरके मच्यो भदैय्या फाग ॥

श्रीमद्०— 'नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कार गोधनम्।
सूत मागध वन्दिभ्यो नेऽन्ये विद्योपजीविन ॥
तैस्ते कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत्।
विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ॥
(१०।५।१५,१६)

परमानंददास— 'दई सुवच्छ लच्छ द्वै गैया नन्द बढायो त्याग।
गुनी गनक बदीजन मागध पायौ अपनो भाग ॥'

श्रीमद्०— या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो क्षणमाजनादौ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या ब्रजस्त्रिय उरुक्रम चित्तयाना ॥
(१०-४४ १५)

परमानन्द— हरिलीला गावत गोपीजन आनन्द मे निसिदिन जाई।
बाल चरित्र विचित्र मनोहर कमल नयन ब्रज जन सुखदाई।
दोहन मण्डन खण्डन लेपन मण्डन गुरु सुत, पति सेवा।
चारि याम अवकास नही पल सुमिरत कृष्ण देव देवा ॥

श्रीमद्०— यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानिच।
दधि निर्मन्थने काले स्मरन्ता तान्यगायत ॥ (१०-९-२)

परमानन्द— मात जसोदा दह्यौ बिलोवै प्रमुदित बाल-गोपाल जस गावै।

श्रीमद्०— रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च।
स्विन्न वक्त्र कबर विगलन्माल्तती निममन्थ ॥
ता स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्ती जननी हरि।
गृहीत्वा दधिमन्थ न न्यषेधत् प्रीतिमावहन् ॥
(१०।९।३-४)

परमानन्द— दधि मथति ग्वालि गर्वीली री।
कनक फुनक कर कगन बाजे बाँह डुलावति ढीली री।

× × ×

परमानन्द नन्द नन्दन को सर्बसु दियौ है छबीला री।

तथा 'चचल अचपल कुच हारा वली वेणी चल स्वासित कुसुमाकर'।

श्रीमद्०— मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्ड भिनत्ति।
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्। (१०।८।२९)

परमानन्द— 'ऐसे लरिका कतहुँ न देखे बाट सुचालिगाऊ की माई।
माखन चोरत भाजन फोरत उलटि गारि दै मुरि मुसुकाई।

श्रीमद्०— कथ्यता मे पित कोऽय सभ्रमो व उपागत।
किं फल कस्य चोद्देश केन वा साध्यते मख ॥ (१०।२४।३)

परमानन्द— यह विस्मय चित मोहि कौन की करति पुजाई।
याकौ फल है कहा कहो तुम ब्रजपति राई।
नाम कहा या देव को कौन लोक कौ राज।
इतनो बलि यह खात है हमारो करत कहा काज।

श्रीमद्०— हेमन्ते प्रथमे मासि नन्द ब्रज कुमारिका।
चेरुर्हविष्य भुञ्जाना कात्यायन्यचनव्रतम्
आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे।
कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥

× × × ×

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
नन्दगोपसुत देवि पति मे कुरु ते नम।
(१०।२२।१-४)

परमानन्द— मान री मान मेरो कह्यो।

× × ×

प्रथम हेमन्त मास ब्रत आचरि कत जमुना जल सीत सह्यौ,
नन्दगोप सुत मागि भलौ बर माग अपनेते जु लह्यौ।

इस प्रकार के साम्य परमानन्ददास जी के अनेक पदों मे प्राप्त होते हैं। भागवतोक्त सामान्यतत्त्व भी परमानन्दसागर मे मिल जाते है।

कृष्णदास—

कृष्णदास का जीवन वृत्ता त भी 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे मिलता है। उनका उल्लेख नाभादास जी के 'भक्तमाल' मे भी हुआ है। उनकी जीवन घटनाएँ वार्ता-साहित्य मे बडी विवादास्पद है। सम्प्रदाय के विद्वानो के सत्सग से कृष्णदास जी को काव्य तथा सगीत का अच्छा ज्ञान हो गया था। सम्प्रदाय मे उनकी ख्याति सुकवि और कीतनकार के रूप मे है। उन्होने शृ गार भक्ति-पूर्ण अनेक पदो की रचना की है। उनके रास लीला के पद अधिक सरस और कवित्वमय हैं। बाल-लीला, रूप माधुरी तथा रास से सम्बन्ध रखने वाले उनके अनेक ऐसे पद है जो श्रीमद्भागवत से तुलनीय हैं। कृष्णदास ने कुम्भनदास की भाति गिरिराज को 'हरिदास वय' ही कहा है—

"बन्यो अद्भुत भेष गावत मुरलिका उल्लास,
कृष्णदास नमित चरण हरिदास वय निवास।"

गिरिराज को देखने से इन्हे बडा आनन्द होता था तथा उसके दशन का महत्त्व उन्होंने भागवत के शब्दो मे ही वणन किया है। हम इनके दो-चार पद यहाँ उद्धृत करते है—

(१) नन्द को लाल ब्रज पालने भूले।
अलक अलकावली, तिलक गौरोचना, चरन अगुष्ट मुख किलकि फूले ॥
नैन अजन रेख, मेख अभिगाम सुठि, कठ केहर करज किंकिनि कटि मूले।
कृष्णदास' नाथ रसिक पिय गिरवर-धरन, निरखि नागर देह-गेह भूलें ॥

(२) जै जै लाल गोवधनधारी, इन्द्र-मान भग कीनो।
बाम बाहु राख्यौ गिरि-नायक, दासन को सुख दीनो ॥
सात दिवस सुरपति पचि हारचौ गोसुत-सीग न भीनो।
कृष्णदास' स्वामी मोहन के, पाँय परचौ मति-हीनो ॥

(३) रास-रस गोविन्द करत बिहार।
सूर सुता के पुलिन रम्य महँ, फूले कुद मँदार ॥
अदभुत सत दल निकसति कोमल, मुकुलित कुमुद कछार।
मलय पौन बहै, सरद पूर्निमा-चन्द्र, मधुप झकार ॥
सुघर राय, सगीत कला-निधि, मोहननन्द कुमार।
ब्रज-भामिनि सग प्रमुदित नाँचत, तन चर्चित घनसार ॥
उभय स्वरूप सुझाता सीमा, कोक-कला सुखसार।
'कृष्णदास' स्वामी गिरिधर पिय, पहिरे रसमय हार ॥

(४) गिरिधर देखेई सुख होय।
नैनवत को यहै परमफल, यो ही त्रिधित भई लोय ॥
महामत्त नील अबुज को, रूप लियौ है निचोय।
'कृष्णदास' नाथ नव रगहिं मिलै बिरहै दुख होय ॥

(५) तरनि-तनय तीर आवत है प्रात समै, गेंदुक खेलत देख्यौ आनँद को कदवा।
काछिनी किकिनी कटि पीताबर कसि बाँध, लाल उपरैना सिर मोरन के चँदवा ।।
पकज नैना सलोल बोलत मधुरे बोल, गोकुल सुन्दरि सँग आनँद सो छँदवा।
'कृष्णदास' प्रभु गिरि गोबरधनधारी लाल, चारिचित मनि खोलत कचुकी के बँदवा ।।

गोविन्दस्वामी

गोविन्दस्वामी का जीवन वृत्तान्त 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'अष्ट सखान की वार्ता' मे मिलता है। सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से पहले भी गोविन्दस्वामी एक अच्छे सगीतज्ञ तथा सुकवि थे। कहा जाता है कि प्रसिद्ध सगीतकार तानसेन ने भी उनसे सगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। उनके स्फुट पदो का सकलन काकरौली से प्रकाशित हो चुका है जिसमे लगभग ५७५ पद हैं। अष्टछाप के कवियो मे सगीतकार की दृष्टि से इनका नाम सूरदास तथा परमानन्ददास जी के बाद आता है। इनके पदो मे राधा कृष्ण की शृङ्गारात्मक लीलाएँ है। बाल-लीला सम्बन्धी इनके अनेक पद ऐसे हैं जो भागवत की बाल लीला से मिलते हैं। इन्होने भागवत का ज्ञान कथा वार्ताओ के माध्यम से प्राप्त किया था, इसलिए इनके पदो मे भागवत की झलक मात्र मिलती है वैसे पुष्टि सम्प्रदाय के अन्य कवियो की भाँति इन्होने भागवत के मुख्य-मुख्य सामान्य तथा विशेष सभी तत्त्व ग्रहण किए हैं। एक दो पद नमूने के रूप मे प्रस्तुत किए जाते हैं—

(१)

प्रात समय उठि जसुमति जननी, गिरिधर सुत को उबटि न्हवावति।
करि सिंगार, बसन भूषन सजि, फूलन रचि-रचि पाग बनावति ।।
छूटे बद, बनो अति सोभित, बिच-बिच चोब अरगजा लावति।
सूथन लाल फुदना सोभित, आजु की छबि कछु कहत न आवति ।।
विविध कुसुम की माला उर धरि, श्रीकर मुरली बेनु गहावति।
लै दपन देखै श्री मुख को, 'गोविन्द' प्रभु चरनन सिर नावति ।।

(२)

नितत लाल गोपाल रास मे, सकल ब्रज-वधू सगें।
गिड गिड तैथग, ततथेई ततथेई, भामिनि रति-रस रगें ।।
सरद विमल नभ उडुपति राजत गावत तान तरगें।
ताल, मृदग, झाँझ और झालरि बाजत, सरस सुगधें।
सिव, विरचि मोहे, सुर धुनि सुनि, सुर, नर, मुनि गति भगें।
'गोविन्द' प्रभू रस-रासि रसिक मनि, भामिन लेत उछगें ।।

कही-कही उनके पद भागवत के श्लोको के अनुवाद से भी लगाते हैं। नीचे कै उदाहरण देखिये—

(क) अहो पिय कैसेक धरत मृदुल चरन धरनि।
गिरि की काकरी अति कठिन तृन अकुर रसनाधर,
जियहिं सुधि सुधि करि करि छतियाँ जरनि ।।

सरसि सुजात गरभ की श्रिय मुसत हमारे कठिन ।
उर सहसा हीन धरि सकै डरनि ।।

तुलनाय श्रीमद्भागवत १०।३१।६ तथा १०।३१।२

(ख) बेनु बाजत री मोहन कल ।
बाम कपोल बाम भुज पर धरि वलगित भ्रु व रस चपल द्रगचल ।
सिन्दूराहण अधर सुधारस पूरत र ध्र मृदुल अगुली दल ।
× × × ×
मोहत व्योम विमान वनिता खसित नीवी सुध्यौ न अचल ।।

तुलनीय श्रीमद्० १०।३५।२-३

(ग) धनि धनि वृन्दारन्य कुरगिनि ।
श्रीमुख कमल पीवति सखी, सादर कृष्णासार पति सगनि ।
चरन कमल कुकुम रूपित तृन कुच अवलेप करति,
तजति आधि मनसिज पुलिदिनि ।
गोविन्द प्रभु कौ जु अमृत नाद सुनि थकित प्रवाह तरगिनि ।।

तुलनीय—श्रीमद्० १०।२१।११ तथा १०।२१।१७

छीतस्वामी

इनका जीवन चरित्र भी वार्ता साहित्य मे प्राप्त होता है। इनका रचा हुआ कोई अलग से ग्रन्थ तो प्राप्त नही होता, कीतर्नो सग्रहो मे इनके स्फुट पद अवश्य मिलते हैं, जिनकी सख्या २०० से अधिक है। बाललीला रूपासक्ति, रास रग तथा भक्त की भावना के इनके अनेक पद हैं। भागवत का ज्ञान इन्हे भी कथा वार्ता से ही प्राप्त हुआ था। भागवत कथा की प्रशसा करते हुये इन्होने लिखा है—

'जब लगि श्री भागवत कथा रस तब लगि कलजुग नाही ।'

श्रीमद्भागवत को इन्होने वेद वाणी के रूप मे स्वीकार किया है —

गो बानी जु वेद की कहियत श्री भागवत भलै अवगाही ।'

भागवत के प्रति अपने अनन्य प्रेम के लिए उन्होने गोस्वामी विट्ठलनाथ जी का ऋण स्वीकार किया है।

'तन मन-प्रान समपन कीनौ श्री भागवत विधि नई सिखाई'

गोस्वामी विट्ठनाथ जी को इन्होने कृष्ण रूप मे ही स्वीकार किया है जैसा कि इन्होने लिखा भी है—

श्री कृष्न कृपालु कृपानिधि, दीनबन्धु दयाल ।
दामोदर बनवारी मोहन, गोपीनाथ गुपाल ।।
राधारमन बिहारी नटवर, सुन्दर जसुमति बाल ।
माखन चोर गिरिधर मनहारी, सुखकारी नदलाल ।।
गोचारी गोविंद गोपपति, भवन मजुल ग्वाल ।
'छीत स्वामी' सोई अब प्रगटे, कलि मे वल्लभ लाल ।।

इनके लीला-विषयक पदों मे राधावल्लभीय सम्प्रदाय के भक्तो मे पदों का आभास मिलता है काव्य सौष्ठव की दृष्टि से तो इनके पद बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नही है पर भागवत के तत्वो का उनमे स्पष्ट प्रतिबिम्ब है।

चतुर्भुजदास

अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कुम्भनदास जी के ये सबसे छोटे पुत्र थे। वार्ता-साहित्य मे इनके जीवन के सम्बन्ध मे अनेक चामत्कारिक घटनाओ का उल्लेख हुआ है। उनके पदो के कई सग्रह प्राप्त होते हैं। काव्य सौदय की दृष्टि से उनके अनेक पद उच्च कोटि के हैं। उन्होने कृष्ण के जन्म से लेकर गोपी-विरह तक की ब्रज-लीलाओ का वर्णन किया है। इनके बाल-लीला के पद श्रीमद्भागवत से तुलनीय हैं। कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) मोहन चलत बाजत पैंजनि पग।
सब्द सुनत चकृत ह्वै चितवत, त्यो ठुमकि ठुमकि धरत है डग।
मुदित जसोदा चितवति सिसु तन, लै उछग लावै कठ सु लग।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल को, ब्रज जन निरखत ठाडे ठग-ठग॥

(२) कान्ह सो कहत जसोदा मैया।
मेरे मोहन अनत न जैये, घरहिं खेलौ दोऊ भैया॥
ए तरुनी जोवन मदमाती, झूठेंहि दोष लगावैं दैया।
तुम तो मेरे प्रान जीवन धन, मथि कें दूध पिवाऊँ छैया॥
'चतुजर्भुदास' गिरिधरन कह्यो तब हौं बन जाऊँ चरावन गैया।
सुनि जननी मन अति हरषानी, मुख चूमत और लेत बलैया॥

(३) घर-घर डोलत माखन खात।
ग्वाल-बाल सब सखा सग लिये, सूने भवन धँसि जात।
जब ग्वालिनि जल भरि घर आई, तबहिं भजे मुसिकात।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन लाल सो, नाहिन कछू बसात॥

(४) सुन्दर सिला खेल की ठौर।
मदन गुपाल जहाँ मधिनायक, चहुँ दिसि सखा मडली जौर॥
बाँटत छाक गोवरधन ऊपर, बहु विधि कानन बैठे ठौर।
हँसि-हँसि भोजन करत परस्पर, चाखि-चाखि लै अरोगत कौर॥
कबहुँक बोलि गिरि के सिखर पर, लैं-लै नाम घूँमरी धौर।
'चतुर्भुज' प्रभु लीला रस रीझे, श्री गिरिधरलाल रसिक सिरमौर॥

(५) मथनियाँ दधि समेत छिटकाई।
भूली सी रह गई चितै उत, छितु न विलोमन पाई॥
आगें ह्वै निकसे नदनदन, नैनन हू की सैन जनाई।
छाँडि नेति दई कर ते, उठि पाछै ही बन धाई॥
लोक-लाज अरु वेद मरजादा, सब तन तें बिसराई।
'चतुर्भुज' प्रभु गिरिधरन मम हँसि, कठिन ठगोरी लाई॥

(६) प्यारी भुज ग्रीवा मेलि, नृत्यत पीय सुजान ।
मुदित परस्पर, लेत गति मे सुगति,
रूप-रासि राधे, गिरिधरन गुन-निधान ॥
सरस मुरली-धुनि सो मिले सप्त सुर,
रास-रग भीने गावैं और तान बधान ।
'चतुर्भुज' प्रभु स्याम स्यामा की नटनि देखि,
मोहे खग मृग अरु थकित व्योम विमान ॥

नन्ददास

कवित्व तथा प्रेमाभिव्यक्ति की दृष्टि से ब्रजभाषा के कवियों मे नन्ददास जी का उच्च स्थान माना जाता है। कहा जाता है कि यदि अष्टछाप के कवियो मे सूर-सूर हैं, तो नन्ददास निश्चित रूप से च द्र है। ध्रुवदास जी ने उनकी प्रशसा इस प्रकार की है—

न ददास जो कछु कह्यौ, राग-रग मे पागि ।
अच्छर सरल सनेहमय, सुनत होति हिय जागि ॥
रसिक-दसा अद्भुत हुती, करत कवित्त सुधार ।
बात प्रेम की सुनत ही, छुटत प्रेमजल-धार ॥
रसिक बावरो सो फिरै, खोजत हित की बात ।
आछे रस के वचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात ॥

नाभादास जी ने भी अपने भक्त माल मे उनकी प्रशसा की है, उन्होंने लिखा है—

लीला पद-रस-रीति-ग्रन्थ-रचना मे नागर ।
सरस उक्ति युत-युक्ति, भक्ति-रह-गान उजागर ॥
प्रचुरय पथ लौ सुजसु रामपुर ग्राम-निवासी ।
सकल सुक्ल सबलित भक्त पद-रेनु-उपासी ॥
चन्द्रहास-अग्रज-सुहृद परम प्रेम-पथ मे पगे ।
नददास आन दनिधि, रसिक सुप्रभु-हित रगमगे॥

नन्ददास जी के काव्य का कलापक्ष इतना मोहक तथा आकषक है कि उनके सम्बन्ध मे सामान्यरूप से यह उक्ति प्रसिद्ध है, 'और कवि गढिया, नन्ददास जडिया।'

उन्होंने अपने पदो मे भिन्न-भिन्न शैलियो तथा छन्दो का प्रयोग किया है। भाषा का माधुय तथा शब्दो की साज-सज्जा इनकी कविता की विशेषता है। इनकी छोटी-बडी १५ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं जिनमे रस-मजरी, रूप मजरी, बिरह मजरी, रुक्मिणी मगल, भवरगीत, रास-पञ्चाध्यायी, सिद्धा त-पञ्चाध्यायी, दशमस्कन्ध भाषा तथा गोवद्धन लीला विशेष प्रसिद्ध हैं। इनकी लगभग सभी रचनाओ मे श्रीमद्भागवत का अनुसरण हुआ है। दशमस्कन्ध भागवत तो भागवत के दशमस्कन्ध के पहले उन्तीस अध्यायो का भावानुवाद ही है। श्रीमद्भागवत मे इनकी अपार निष्ठा थी जैसा कि इन्होंने लिखा भी है—

'जब दिन मनि श्रीकृष्ण दृगनि तें दूरि भए दुरि ।
पसरि पर्यो अँधियार सकल ससार घुमडि घुरि ।

तिमिर ग्रसित मब लोक श्रोक लखि दुखित दया कर ।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभानु भागवत 'विभाकर ।।

श्रीमद्भागवत का इनके काव्यो मे सबसे अधिक अनुसरण हुआ है। इनके कई स्वतन्त्र ग्रन्थ भागवत की कथाओ के आधार पर लिखे गये हैं। जिम प्रकार रामचरित के विविध रूपों का निरूपण गोस्वामी तुलसीदास ने विविध शैलियो तथा विभिन्न ग्रन्थो मे किया है, उसी प्रकार नन्ददास जी ने कृष्ण चरित का निरूपण विविध शैलियो तथा विविध ग्रन्थो मे किया है। कहा जाता है कि नन्ददास जी ने रामचरितमानस की भाँति समस्त भागवत का ही व्रजभाषा पद्य मे अनुवाद किया था। भागवत के कथावाचक पण्डितो के अनुरोध से गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास जी को यह आदेश दिया कि रास-पञ्चाध्यायी को छोडकर वे भागवत के शेष अनुवाद को यमुना जी को अर्पित कर दे। नन्ददास जी ने उनकी आज्ञा का पालन किया। उनकी 'रास-पञ्चाध्यायी' मे भागवत के केवल पांच अध्यायों की कथा है। भागवत के रास पञ्चाध्यायी को उन्होंने 'निगम-सार' माना है—

'श्री भागवत' मुनाम परम अभिराम, परम मति ।
निगम-सार सुकुमार बिना गुरु कृपा अगम अति ।।
ताही मे मनि अति रहस्य यह 'पचाध्यायी' ।
तन में जैसे पच प्रान, असि सुक मुनि गाई ।।
परम रसिक इक मित्र मोहिं तिन आग्या दीनी ।
ताही ते यह कथा जथा मति भाषा कीनी ।।

सम्पूर्ण रास-पञ्चाध्यायी, उसका विधान, क्रिया-कलाप, उक्ति-प्रत्युक्ति तथा प्रेम-भाव भागवत के अनुसार है। नन्ददास की 'रास-पञ्चाध्यायी' का अध्ययन करने पर भागवत की 'रास-पञ्चाध्यायी' का अर्थ बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। केवल एक उदाहरण देखिए—

जदपि जगत् गुरु नागर जसुमति नन्द दुलारे ।
पै गोपिन के प्रेम अग्र अपने मुख हारे ।।
तब बोले पिय नव किसोर हम ऋनी तिहारे ।
अपने हिय ते दूरि करौ, सब दोस हमारे ।
कोटि कलप लगि तुम प्रति प्रति उपकार करौं जौ ।
हे मन हरनी तरुनी, उऋन न होउँ तवौ तौ ।।

(तुलनीय श्रीमद्भागवत १०।३२।२२)

इसी प्रकार दशमस्कन्ध भाषा के पद भी भागवत के आधार पर लिखे हैं। नन्ददास जी ने कलात्मक ढग से श्रीमद्भागवत के विभिन्न प्रकरणो की व्याख्या की है। उन्होने अनुवाद का दावा कही नही किया। रास पचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या में उन्होंने भागवत के आधार पर रास पञ्चाध्यायी मे की है। गोवर्द्धन लीला मे भी दशमस्कन्ध के छन्दों का ही समावेश है। भँवर-गीत मे नन्ददास जी ने गोपियों के व्यग्य मे अवश्य भागवत को आधार बनाया है परन्तु गोपियों की उक्ति-प्रत्युक्ति मे उन्होंने अपनी पूर्ण मौलिकता का परिचय दिया है। नन्ददास जी प्रेम भक्ति के पट मे तनिक सी खोंच भी बर्दाश्त नही कर सकते और उन्होंने

गोपियों के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म का बडे तीखे शब्दो मे प्रत्याख्यान कराया है। कृष्ण की बाल-लीलाओ के निरूपण मे भी उन्होने अपनी कल्पना का पूरा उपयोग किया है। नन्ददास जी के सब ग्रथो को मिलाकर श्रीमद्भागवत के सभी मुख्य मुख्य स्थलो का भाव-निरूपण प्रस्तुत किया जा सकता है। भागवत के सामान्य और विशेष सभी तत्त्व उनके ग्रन्थो मे आ गए हैं।

इस प्रकार हम इस निष्कष पर पहुँचते है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे भगवतानुसारी ब्रज भाषा साहित्य परिमाण तथा सौष्ठव की दृष्टि से अ य भाषाओ की अपेक्षा सबसे अधिक है। सम्पूण साहित्य की मूल प्रेरणा श्रीमद्भागवत ही है परन्तु सभी कवियों ने अपनी-अपनी प्रतिभा तथा वैदुष्य के अनुसार भगवतोक्त सूत्रो की व्याख्या प्रस्तुत की है। इन कवियों का हिन्दी के परवर्त्ती कवियो पर भी बडा प्रभाव पडा था, तथा श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण भक्ति साहित्य का मूल स्तम्भ बन गया।

द्वादश अध्याय

श्रीमद्भागवत तथा हिन्दीतर मध्ययुगीन भाषाओं का साहित्य

हम पहले कह चुके हैं कि श्रीमद्भागवत का भारत की मध्ययुगीन साधना पद्धति में बडा योगदान रहा है। निश्चितरूप से आचाय रामानुज के पश्चात् श्रीमद्भागवत का सम्पूर्ण भारत में बडा व्यापक प्रचार हुआ। श्रीमद्भागवत के महात्म्य में भक्ति आन्दोलन की रूप-रेखा प्रस्तुत की गयी है। नारद के पूछने पर भक्ति स्पष्ट रूप से कहती है

उत्पन्ना द्रविडे साह वृद्धिं कर्णाटके गता। क्वचित्क्वचि महाराष्ट्रे गुजरे जीर्णतागता ॥
तत्रघोरकलेर्योगात्पाखण्डै खण्डिताङ्गका। दुबलाह चिर याता पुत्राभ्या सह मन्दताम् ॥
वृन्दावन पुन प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी। जाताह युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु साम्प्रतम् ॥
(श्रीमद्भागवतमाहात्म्य अध्याय १ श्लोक ४–५)

अर्थात् मैं द्रविड देश मे उत्पन्न हुई। सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करते हुए कर्नाटक देश मे मुझे पोषण प्राप्त हुआ परन्तु महाराष्ट्र तथा गुजरात प्रदेश में यात्रा करते हुए मुझे कुछ जीर्णता का अनुभव होने लगा। घोर कलिकाल के प्रभाव से, अनेक पाखण्डों के कारण मेरे अग छिन्न-भिन्न हो गए। मैं बहुत दिनो तक दुबल रही तथा ज्ञान, वैराग्य नाम के अपने इन दोनो पुत्रों के साथ मुझे और भी मान्द्य हो गया लेकिन वृन्दावन-प्रदेश मे आकर मैं फिर नयी-नवेली, यौवन-सम्पन्न सुन्दर युवती के रूप मे परिणत हो गयी हूँ। भागवतकार का यह कथन निश्चित रूप से सम्पूर्ण भारत के भक्ति आन्दोलन की ओर सकेत करता है। ब्रज के सम्प्रदायो के भक्ति-साहित्य पर हम विचार कर चुके हैं। अब हमे भक्ति के कथन के सदर्भ मे अन्य भाषाओं के भागवतानुसारी साहित्य को भी देखना चाहिए।

दक्षिण की भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्य मे निश्चित रूप से भक्ति भावना का वेग अधिक है और उनका साहित्य अपेक्षाकृत प्राचीन भी है। इस अध्याय मे हम पहले दक्षिण की भाषाओं के साहित्य पर विचार करेंगे। परिमाण की दृष्टि से तेलुगु का भक्ति-साहित्य बडा विशाल है। तेलुगु मे वैष्णव काव्य की धाराएँ बडी समृद्ध हैं। राम और कृष्ण दोनो ही भगवत्स्वरूपो को लेकर वहाँ विशाल साहित्य की सजना हुई है। केवल राम-कथा को लेकर लगभग २०० रचनाएँ हुई, तथा अनेक रामायण लिखी गयी। इन राम परक ग्रन्थो मे श्रीमद्भागवत के सभी सामान्य तत्त्व मिल जाते हैं। यहाँ हम राम-काव्यो को न लेकर केवल उन कृष्णपरक रचनाओं को ले रहे हैं जिन पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव पडा है।

तेलुगु के पश्चात् तमिल का साहित्य विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव मे भागवतकार का द्रविड देश से अभिप्राय तमिल प्रदेश ही लगता है। तमिल का वैष्णव काव्य बहुत प्राचीन है और कहना न होगा कि प्रेमाभक्ति को रूप देने वाला तमिल का प्रबन्ध साहित्य ही था।

मलयालम तथा कन्नड मे भी भागवतानुसारी साहित्य पर्याप्त मात्रा मे मिलता है। आर्य परिवार की भाषाओ मे बगला का कृष्ण-काव्य सामान्यरूप से चैतन्य परवर्त्ती है। मराठी का भक्ति काव्य सन्तो की भावना से अधिक आच्छन्न है। गुजराती मे कृष्ण-काव्य काफी मिलता है, पर उनमे व्रज के सम्प्रदायो की झलक ही अधिक है। आगे के पृष्ठो मे हम इन भाषाओ के साहित्य पर थोडा-थोडा विचार करेगे।

तेलुगु का भागवत साहित्य

मडिकिसिगन्न

तेलुगु भाषा मे भागवतविषयक साहित्य के अ तगत मडिकिंसिगन्न[1] का भागवत दशम स्कन्ध का अनुवाद कदाचित् सवप्राचीन है। मडिकिसिग न का काल ई० सन् १३७५ से १४३५ तक माना जाता है। उक्त अनुवाद के केवल तीन काण्ड उपलब्ध हैं। मथुरा काण्ड, कल्याण काण्ड और जगदभिरक्षा काण्ड। प्रथम काण्ड मे अक्रूरकृत कृष्णस्तुति से लेकर जरासध के मथुरा पर द्वितीय आक्रमण तक, दूसरे मे रुक्मिणी के विवाह प्रसग से उषाहरण तक तथा तृतीय मे नृग-शाप से लेकर शिशुपाल बध तक का वर्णन है। यह रचना प्रसादगुण से ओत-प्रोत सरस शैली मे लिखित है। इससे कवि का सस्कृत ज्ञान तथा शास्त्रीय पाण्डित्य भी प्रकट होता है। शृङ्गार-वर्णन मे निता त समय और मर्यादा का निर्वाह किया गया है। उदाहरणार्थ रुक्मिणी के नख-शिख वर्णन को ही ले लीजिए जिसमे औचित्य की तनिक भी अवहेलना नही की गई, कवि ने अपनी कविता की उपमा शिव के जटाजूट से निगत गगा की धारा से दी है।

बम्मेर पोतन्न

बम्मेर पोत न (१४५०—१५१० ई०) की अमरकृति 'महाभागवत' तेलुगु साहित्य का एक अत्यन्त प्रदीप्त रत्न है जिसका मङ्गलाचरण ही अद्वैतवाद की सम वय भावना का गम्भीर प्रभाव सूचित करता है। मङ्गलाचरण मे भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणपति, सरस्वती, दुर्गा तथा लक्ष्मी की प्राथना है। सरस्वती की स्तुति मे चार और अन्य देवताओ की स्तुति मे एक एक श्लोक कहा गया है। यो तेलुगु के पुराने कवियो मे सुकवि प्रसशा और कुकवि निन्दा के पश्चात् मूल विषय प्रारम्भ करने की परिपाटी थी फिर भी पोतन्न ने सच्चे सन्त की भाँति पर-निन्दा छोडकर केवल सुकवि प्रशसा का ही समावेश किया। यह प्रशसा भी किसी के नाम निर्देश के बिना सामान्य रूप से ही की गई है। उन्होने अपनी महान् कृति को अपने इष्टदेव भगवान् राम को समर्पित किया हे। वैष्णव होते हुए भी वे शिव पूजा के समथक थे। साम्प्रदायिक भेद भाव उन्हे छू तक न गया था। एक स्थान पर वे कहते हैं 'जो अपने करो से भगवान् शिव का अचन न करे और भगवान विष्णु का मुख से गुणगान न करे सत्य एव दया से दूर हो उस मनुष्य का जन्म व्यथ है। वह पुत्र नही 'मातृजठरकुठार' है।[2]

१ आपरमेश्वर मकुटव्यापित गङ्गा प्रवाह कविता स
ल्लापुडगु मडिकिसिग न जे पद्दक कीर्तिगल दे श्रीमतुनकुन्

२ चेतुलारग शिवुनि वूजिपडेनि नोरु नो वग हरिकीर्ति नुडुवडों न।
दमयु सलबु लोनुगादल पडेनि गलुगनेटिकि तल्लुल कुडुप चेट्ठ।

प्रसिद्ध है कि एक दिन पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण वेला मे नदी किनारे वे महेश्वर के ध्यान मे मग्न थे तभी उनके हृदय मे एक सुन्दर राजकुमार का साक्षात् हुआ जिसने अपने आपको रामचन्द्र बताया और पोतन्न से तेलुगु मे भागवत का प्रणयन करने को कहा। वे हर्ष से गद्गद हो उठे। अपने ऊपर असीम हरिकृपा समझ कर उन्होने स्वय को निमित्तमात्र और राम को वास्तविक प्रणेता मानते हुए भागवत की रचना प्रारम्भ की जिसे उन्होने भगवान् कृष्ण को समर्पित किया है। किवदन्ती है कि इस ग्रन्थ की प्रशसा सुनकर सिगभूपाल ने कवि से कहा कि इस कृति को मुझे समर्पित करो। पर भक्तप्रवर पोतन्न प्राकृतजन को कैसे समर्पित करते। राजा रुष्ट हो गया। उसने ग्रन्थ की समूची पाण्डु लिपि को भूमि मे गडवा दिया। कुछ दिन बाद उखाडने पर वह कृमिजीर्ण मिला उसके कुछ अश नष्ट हो चुके थे जिन्हे पोतन्न के शिष्यो ने पूरा किया।

प्रथम उल्लेख से पोतन्न के भक्ति विषयक उदार दृष्टिकोण का पता चलता है। महेश का ध्यान करते हुए राम का साक्षात्कार और राम के प्रति ग्रन्थ-समर्पण स्वीकार करके भी कृष्ण को समर्पित करना इस तथ्य का द्योतक है कि वे शिव, राम और कृष्ण मे तत्त्वत कोई अन्तर नही समझते थे, और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनके मङ्गलाचरण से भी इसकी पुष्टि हो जाती है।

दूसरी किवदन्ती का यदि कुछ अर्थ हो सकता है तो यही कि पोतन्न के महाभागवत का कुछ अश कालक्रम मे नष्ट हो गया जिसे उनके शिष्यो ने फिर से रचकर जोड दिया। 'रसार्णव सुधाकर' नामक सस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ के रचयिता, पण्डित पालक नृप सिगभूपाल ने महाभागवत जैसे पवित्र ग्रन्थ को पृथ्वी मे गडवा देने का गर्हित कार्य किया हो यह विश्वास नही होता। जो भी हो, आन्ध्र महा भागवतमु मे पोतन्न की रचना के साथ अन्य कवियो की रचना भी सम्मिलित है। पचम स्कन्ध के प्रथम एव द्वितीय आश्वास गगन्न ने, षष्ठ स्कन्ध एर्चूरिसिगन ने तथा एकादश एव द्वादश स्कन्ध का प्रणयन वेलिगदलन्नारूप ने किया। इसके अतिरिक्त द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा दशम स्कन्ध मे जहाँ तहाँ खण्डित अशो की पूर्ति भी वेलिगदल ने की। आन्ध्र समाज मे इस ग्रन्थ का बडा महत्व है। इसका प्रतिदिन पारायण करने वाले सहस्रो व्यक्ति है। प्रचार और प्रभाव की दृष्टि से इसकी तुलना महाकवि तुलसीदास के रामचरितमानस से की जा सकती है। आन्ध्र मे इतना व्यापक प्रचार अन्य किसी ग्रन्थ का नही है। शायद ही कोई तेलुगुभाषी शिक्षित व्यक्ति हो जिसे इसके कुछ पद्य कण्ठस्थ न हो।

पोतन्न की यह कृति सस्कृत के श्रीमद्भागवत का पद्यबद्ध अनुवाद मात्र ही नही है। इसमे कवि की मौलिक कल्पनाओं एव रगीन विचारोत्तेजक भावनाओ का समावेश होने के कारण जो नवीनता और रमणीयता आ गई है वह किसी सहृदय पाठक से छिपी रह नही सकती। आकार की दृष्टि से भी यह अपने आधारग्रन्थ की अपेक्षा अधिक विशाल है। मत्स्य, स्कन्द आदि पुराणो के अनुसार मूल श्रीमद्भागवत मे अठारह सहस्र पद्य थे जबकि उपलब्ध प्रति मे बाईस सहस्र तक मिलते हैं। महाकवि पोतन्न के अनुवाद मे पद्यो की सख्या तीस सहस्र है। कारण यह कि पोतन्न ने श्रीधरीय भाष्य के आधार पर अर्थविशदता का समावेश करने का स्तुत्य प्रयास किया है। भक्ति-भाव एव काव्य सौन्दर्य के इस सगम मे अवगाहन करने से मन का मैल ही नही कटता परम शान्तिदायिनी तृप्ति भी प्राप्त होती है।

भक्ति भावातिरक से ओत-प्रोत स्थलो मे प्रह्लादकथा, गजेन्द्र मोक्षण, वामनावतार, कुचेलोपाख्यान (सुदामाचरित) तथा सपूर्ण दशम स्कन्ध उल्लेखनीय है। एक उदाहरण लीजिए। भक्ति के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए प्रह्लाद अपने पिता से कहते है—

'अधेन्दूदयमुल, महाबधिर शखारावमुल, मूकसद्ग्रन्थाख्यानमुल नपुसकवधूकाक्षल, कृतघ्नावली वधुत्वबुलु, भस्महव्यमुलु, लुब्धद्रव्यमुलु क्रोधसडधबुल हरिभक्तिवर्जितुलरित्तव्यथ ससारमुल।

हरि भक्तिशून्य मनुष्य का जीवन व्यथ है। जैसे अन्धे के सम्मुख चन्द्रोदय, बहरे के लिये शख का शब्द, मूकजन द्वारा की हुई सद्ग्रन्थ व्याख्या नपुसक का युवतिप्रेम और सूअर के शरीर पर चन्दन का लेप।

भागवत के इति वृत्तात्मक स्थलो मे भी कमनीय काव्य गुणों का समुचित समावेश कर सवर्था नवीन रूप देने मे पोतन्न की प्रतिभा स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है। श्रीमद्भागवत मे प्रह्लाद के गुरु एव प्रह्लाद का वार्तालाप इस प्रकार हुआ है—

वत्स प्रह्लाद ! भद्रते सत्य कथय मा मृषा।
बालानित कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपयय।
बुद्धिभेद परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत्।
भण्यता श्रोतुकामाना गुरूणा कुलनन्दन।[1]

अर्थात् वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो। ठीक बतलाओ, झूठ मत बोलना। तुम्हारी बुद्धि विपरीत कैसे हो गई ? और किसी बालक की बुद्धि तो ऐसी नही हुई। बताओ तो सही, हम जानना चाहते है कि किसी ने तुम को बहका तो नही दिया या स्वत ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी हो गई है ?

इस पर प्रह्लाद उत्तर देता है—

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकषसन्निधौ।
तथा मे विद्यते चेतश्चक्रपाणेयदृच्छया[2] ॥

गुरुजी ! जिस प्रकार लोहा स्वत ही चुम्बक की ओर खिचा चला जाता है इसी प्रकार मेरा चित्त भी स्वत चक्रपाणि भगवान् की ओर खिच जाता है।

पोतन्न ने इसका अनुवाद तो किया ही है परन्तु अपनी कल्पना से और भी कुछ जोडकर प्रसङ्ग को इतना मार्मिक बना दिया है कि चित्त गद्गद् हो उठता है। वे लिखते हैं—

मन्दारमकरद माधुयमुन देलु मधुपबु वोवुने मदनमुलकु।
निमल मन्दाकिनी वीचिकलदूगु रायच जनुने तरङ्गिणुलकु।
ललित रसालपल्लव खादियै चोक्कु कोयिल सेरुने कुटजमुलकु।
पूर्णेन्दुचन्द्रिकास्फुरितचकोरक बरुगुने सान्द्रनीहारमुलकु।
अम्बुजोदर दिव्यपादारविन्द चिन्तनामृतपानविशेषमत्त।
चित्त मेरीति नितरबु चेरनेचु विनुतगुणशील ! माटलु वेयुनेल।

---

१ श्रीमद्भागवत सप्तम स्कन्ध

२ वही,

अर्थात् मन्दार पुष्पो के मधुर मकरन्द का स्वाद लेने वाला भ्रमर कभी धतूरे की ओर जायेगा ? मन्दाकिनी नदी की निर्मल लहरियो पर तैरने वाला हस क्या क्षुद्र नदियो मे विहार करेगा ? कोमल रसालपल्लवो का आस्वादन कर मदमत्त कोयल क्या कभी कुटज की ओर आकृष्ट होगा ? पूर्णिमा के उज्ज्वल चन्द्र की शीतल किरणो को चखने वाला चकोर ओस की बूँदो पर रीझेगा ? इसी भाँति भगवान् विष्णु के चरणारविंद के स्मरणरूप अमृत के पान से मत्त मन भला अन्य किसी भी विषय की ओर आकृष्ट होगा ?

कहने की आवश्यकता नही कि पोतन्न की इस उक्ति को पढते ही भक्तप्रवर सूरदास का यह पद स्वत सामने आ जाता है।

मेरो मन अनत कहाँ सचु पावै।
जैसे उडि जहाज को पछी पुनि जहाज पर आवै।
परम गङ्ग को छाँडि पियासो दुमति कूप खनावै।
जिन मधुकर अम्बुज रस चाख्यो क्यो करीरफल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै।

कविता कामिनी के प्रत्येक पद के साथ उठती हुई नूपुरो की रुनझुन और उमडती हुई रसधारा की कलकल ध्वनि मिलकर पोतन्न के काव्य मे एक अद्भुत सगीत की सृष्टि करती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

ध्रुवकीर्तिन् हरि पेड्लियाडे, निजचेतोहारिणिन् भानवै।
भवगाभीयविहारिणिन् निखिलसपत्कारिणिन्।
साधुबाधव सत्कारिणि पुण्यचारिणि महादारिद्रमहारिणिन्।
सुतिभूषाबरधारिणिन् गुणवतीचूडामणिन् रुक्मणिन्।

रुक्मिणी के इस वर्णन मे शब्दो का अनुरणन कितना श्रुतिसुखद है। लगता है जैसे नवविवाहिता रुक्मिणी के नूपुर ही झनक रहे हैं।

सस्कृत के कवियो की भाँति पोतन्न श्लेषमूलक उपमाओ की योजना मे बडे दक्ष है। पद्यों के बीच मे जहाँ तहाँ जो गद्याश उनके महाभागवत मे मिलते हैं उनमे बाण की ओज पूर्ण शैली का सफल अनुकरण किया गया है। उदाहरणार्थ नैमिषारण्य वर्णन से उद्धृत कतिपय पक्तियाँ लीजिए—

'मधुवैरिमंदिरबुनु बोले माधवमन्मथचिह्नित बै, ब्रह्मगेह बुनु बोले शारदान्वित बै, मरुनि कोदण्डबुनु बाले, पुन्नागशिलीमुखभूषित बै, शैलजानिटलबुनु बाले पुन्नागशिलीमुख-भूषित बै।'

अर्थात् नैमिषारण्य मधुवैरि के मन्दिर के सदृश माधवमन्मथचिह्नित (विष्णु एव काम से युक्त, वसन्त एव कामचिह्नो से युक्त) है, ब्रह्मा के भवन के समान शारदान्वित (शारदा से युक्त, शरत्कालीन शोभा से युक्त) कामदेव के धनुष के समान पुन्नागशिलीमुख भूषित (पुन्नाग नामक वृक्ष एव भौरो से युक्त, पुन्नाग पुष्प के बाणो से युक्त) यथा पार्वती के मस्तक के समान चन्दन कर्पूर तिलकालकृत (चन्दन और कपूर के तिलक से अलकृत, चन्दन, कपूर और तिलक वृक्षो से शोभित है)।

कहने की आवश्यकता नही कि कवि पर बाण की कादम्बरी के अन्तगत विन्ध्याटवी वरणन का पर्याप्त प्रभाव पडा है। केशव के दण्डकारण्य वरणन से भी इसका आकस्मिक साम्य समझना चाहिए। इस प्रकार की परिश्रमसाध्य शैली का आश्रय सवत्र नही लिया गया है, अधिकाश कोमल, मधुर एव प्रसादपूरण शैली मे है। पीछे प्रह्लादाख्यान से सम्बद्ध एक पद उद्धृत किया गया है जो इस तथ्य का प्रमाण है। समूचा दशमस्कन्ध ऐसी ही सरस, प्रासादिक, मधुर शैली मे है। भाव एव भाषा का अद्भुत सामञ्जस्य काव्यकला का उदात्त निदशन प्रस्तुत करता है जिसम कल्पना की छटा देखे ही बन पडती है। चीर-हरण, रासलीला, भ्रमरगीत आदि के प्रसङ्ग विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

हम यह सकेत कर चुके हैं कि पोतन्न ने अनुवाद करने मे 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' का सिद्धान्त नही अपनाया है बल्कि आवश्यक काट-छाँट और परिवतन-परिवधन द्वारा उसे सामयिक जनरुचि के अनुकूल सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का सफल प्रयास किया है। उदाहरणाथ श्रीमद्भागवत मे चीरहरण-लीला प्रसङ्ग के अन्तगत नग्न गोपियो का वरणन इस प्रकार किया गया है—

ततो जलाशयात् सर्वा दारिका शीतवेपिता।
पाणिभ्या योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरु शीत कर्शिता।

तब शीत से ठिठुर कर काँपती हुई वे कुमारियाँ दोनो हाथो से अपने गुप्ताङ्ग को आच्छादित कर जल से बाहर निकली।

इस का रूपान्तर महाकवि पोतन्न ने इस प्रकार किया है—

चञ्चत्पल्लवकोमल
काञ्चन नव रत्न घटित ककणरुचिरो
दञ्चित कर सछादित पञ्चायुधगेहलगुचु पडतुलवरुसन्।

चञ्चल किसलय के सदृश कोमल एव रत्न जटित स्वर्ण-ककण से शोभित हाथो से पञ्चायुध (काम) के आवास का आच्छादन कर वे जल से बाहर आई।

दोनो का अन्तर स्पष्ट है, एक मे घटना का कथनमात्र है, दूसरे मे शब्दो का नादात्मक योजना द्वारा क्रिया का ध्वनिचित्र प्रस्तुत किया गया है, और सबसे बडी बात यह है कि 'योनिमाच्छाद्य' जैसे ग्राम्य प्रयोग को इस खूबी के साथ टाल दिया है कि भाव मे किसी प्रकार के परिवतन का तो प्रश्न ही नही, प्रत्युत अनवद्य हृद्यता का समावेश हो गया है। पोतन्न की यह मौलिकता तेलुगु महाभागवत का सवस्व है।

पोतन्न को भागवत का अनुवाद करने का अवसर मिला, इसे उन्होने अपना अहोभाग्य समझा। उनके ही शब्दों मे नन्नय्य तिक्कन आदि कवि पुराणों का अनुवाद करके भी श्रीमद्भागवत का अनुवाद न कर पाये। नि सन्देह यह मेरे पूव पुण्यो का फल ही है कि मुझे इस पवित्र ग्रन्थ का अनुवाद करने का स्वर्णिम अवसर मिला। इसका अनुवाद कर मैं अपने जीवन को सफल बनाऊँगा जिससे पुनजन्म का कष्ट छूट जाये।[1]

१ ओनरन् नन्नय तिक्कनादि कवुली युर्विन् पुराणावलुल
देनुगु जेयुचु मत्पुराकृत शुभाधिक्य बु दानेट्टिदो।
देनुगु जेयरमुन्नु भागवतमुन, दीनि देनिगिचि ना
जनन बुन सफलवु जेसेद बुनर्जम बु कुडएडग व॥

वस्तुत यह कृति का सौभाग्य था कि उसका अनुवाद पोतन्न जैसे भक्तप्रवर सहृदय कवि द्वारा सपन्न हुआ । जैसा कि कहा जा चुका है पोतन्न ने भक्ति के क्षेत्र में समन्वय किया। राम, कृष्ण, शिव मे अभेद स्थापित कर उन्होंने वही काय किया जो उत्तरी भारत मे तुलसी ने। इसी प्रकार दशन के क्षेत्र मे भी वे मतवैभिन्य को दूर कर अभेद के पक्षपाती थे। काव्य क्षेत्र मे भी उन्होंने भाव और भाषा, विषय और शैली, पुरातन एव नूतन का उचित सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है ।

अन्नमाचार्य (१४०८ १५०३)

अन्नमाचार्य भी दक्षिण के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवि हुए है। श्री रामानुजाचाय के विशिष्टाद्वैत का अनुशीलन तथा तमिल के आलवार भक्तो के प्रबन्धों का श्रवण गान इनकी पृष्ठभूमि है। ये वैष्णव क्षेत्र तिरुपति मे विराजमान भगवान् बालाजी वेंकटेश्वर के भक्त थे जिनकी स्तुति एव लीला-गान मे इन्होने बत्तीस सहस्र पदो के विपुल साहित्य की सजना की। इनकी भक्ति एव काव्यनिष्ठा इस बात से प्रमाणित होती है कि इन्होने अपने सकीतनो को ताम्र पत्रो पर उत्कीर्ण कराया। ताम्रपत्रो पर उत्कीर्ण चौदह सहस्र पद आज भी उपलब्ध है। तिरुपति मन्दिर के व्यवस्थापक इस विशाल साहित्य के प्रकाशन काय मे उत्तरोत्तर रुचि ले रहे हैं। किसी एक कवि का इतना प्रचुर पद-साहित्य भारत को किसी भी क्षेत्रीय भाषा मे शायद ही उपलब्ध हो सके। सूर के विषय मे सवा लाख पदो के प्रणयन की किवदन्ती अवश्य है, पर उनके भी लगभग छ सहस्र पद ही प्राप्त हैं। इन पदो की स्तुतिपरक अथवा अध्यात्मकपरक और लीलापरक दो श्रेणियो मे रखा जा सकता है। अध्यात्मकपरक पदों मे दास्यभाव का उदात्त उन्मेष हुआ है और लीलापरक पदों मे वात्सल्य एव श्रृङ्गार को प्रमुख स्थान मिला है। बाल, पौगण्ड और यौवन-लीलाओ तथा श्रृङ्गार के सयोग-वियोग, मान, प्रवास आदि विविध रूपो का ऐसा मनमोहक कवित्वपूण चित्रण इनके पदो मे हुआ है कि पाठक की समूची सौन्दय-चेतना रसमग्न हो जाती है ।

शब्दो के प्रयोग मे अन्नमाचाय 'निरकुशा कवय' के सिद्धान्त मे विश्वास रखते थे और व्याकरण के नियमों की परवाह अधिक नही करते थे। 'भाव चाहिए साच' उनका लक्ष्य था। शब्दो के चयन मे ये बडे उदार थे। मराठी और हिन्दी के शब्दो का भी इन्होंने प्रयोग किया है। तेलुगु भाषा की प्रकृति के अनुसार उनमे कुछ परिवतन तो किया ही गया है। जैसे जूटारे = झूँठ बोलने वाला, सटकारि = झटकारने वाला आदि। भाषा और प्रदेश की क्षुद्र सीमाएँ इनके असीम उदार हृदय को बाँध भी कैसे पाती। उनके समक्ष आसेतु हिमाचल भारत था और हृदय मे प्रभु की सवव्यापकता। उन्ही के शब्दो में,

अन्निचोड्ड बरमात्मनीवु
इन्तिरूपुल अमियिन्तुवुगा
पाल जलधिनुण्डि बदरीवनाननुण्डि
आलय मैं गयलो प्रयागनुण्डि ।

भगवान् ! तू सर्वत्र सब रूपो मे विराजमान है। छीर सागर मे, बदरिकाश्रम मे, गयाक्षेत्र मे, प्रयाग मे ।

वे वैष्णव थे, परन्तु किसी अन्य सम्प्रदाय से उन्हे द्वेष नही था। यह सयोग ही है कि उनके पदो मे शिवपरक रचना नही है। उन्होने स्पष्ट घोषणा की है—

'एव्वरि गोलिचिन नेमि गोरत मरि
येव्वरि दलचिन नेमि,
अव्वलिव्वल श्रीहरिरूपुगानि वा
रेव्वरुलेरनि येरुक दोचिनजालु'

किसी भी देवी देवता की उपासना करो, कोई दोष नही है। केवल यह जान लेना चाहिए कि आन्तरिक एव बाह्य जगत् मे ऐसा कुछ नही है जो हरिरूप न हो।'

लगता है, उनकी आध्यात्मिक चेतना विशिष्टाद्वैत की आचरण सम्बन्धी रूढियो से प्रभावित थी।

महाराजाधिराज श्रीकृष्णदेवराय (१५०९-१५३०)

तेलुगु के गुरुतर प्रौढ प्रबन्ध काव्य एव भक्ति साहित्य की विख्यात कृति आमुक्तमाल्यदा' के यशस्वी प्रणेता महाराज श्री कृष्णराय एक सुकवि एव कविवत्सल ही नही, एक विशाल साम्राज्य के अधिनेता भी थे। उस काल की राजनीतिक हलचल मे साम्राज्य की रक्षा एव प्रशासनिक कार्यों मे व्यस्त रहकर भी 'आमुक्तमाल्यदा' जैसी प्रौढ कृति का प्रणयन कवि की अवदात काव्य प्रतिभा एव उदात्त भक्ति-भावना का ज्वलन्त प्रमाण है। अत ये 'साहिती समराङ्गण-सार्वभौम के विरुद से प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध है कि कलिग के प्रति अभियान के समय श्रीकाकुल मे आन्ध्र विष्णु की अर्चना एव एकादशी व्रत-परायण के पश्चात् स्वप्नावस्था मे रात्रि के चौथे पहर उन्हे आन्ध्र विष्णु ने दर्शन देकर 'चूडिकोडुत्ताल' कथानक पर आधारित प्रबन्ध काव्य की रचना कर उसे श्रीवेंकटेश्वर को समर्पित करने का आदेश दिया और कहा कि मुझ मे और श्रीवेंकटेश्वर मे कोई भेद नही है। फलत 'आमुक्तमाल्यदा' की रचना हुई। आमुक्तमाल्यदा 'चूडिकोडुत्ताल' का ही सस्कृत रूप है यह आण्डाल अथवा गोदादेवी का ही दूसरा नाम है। कहा जाता है कि वह भगवान् के लिये गूथी गई माला को पहले स्वय धारण कर उस शोभा की एक झलक सरोवर के जल मे देख लेती थी। तब वह माला भगवान् मन्नारु स्वामी को समर्पित कर दी जाती थी। आमुक्तमाल्यदा का कथानक इस प्रकार है—

श्रीविल्लिपुत्तूर नामक नगर मे भगवान् मन्नारु (श्रीकृष्ण) का मन्दिर था जिसमे भक्त विष्णुचित्त (पेरियाल्वार) भगवत्सेवा करते थे। पाण्ड्य देश के राजा ने विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायो की श्रेष्ठता का पता लगाने के लिये देश के पण्डितो को निमन्त्रित किया। भगवान् मन्नारु ने विष्णुचित्त को राजदरबार मे उपस्थित हो वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादन का आदेश दिया। विष्णुचित्त भक्ति के अतिरिक्त कुछ भी न जानते थे, किन्तु प्रभु के आदेश से वे राजसभा मे गये और आश्चर्य की बात है कि उन्होने सभी पण्डितो को शास्त्रार्थ मे हरा दिया। एक दिन विष्णुचित्त को वाटिका मे एक कन्या मिली जो आगे चलकर गोदा (आण्डाल) नाम से प्रसिद्ध हुई। वह श्रीरगनाथ के प्रति माधुर्य-भावापन्न हुई और प्रतिदिन वियोग मे कृश होने लगी। विष्णुचित्त ने भगवान् मन्नारु से यह बात कही। भगवान् ने आज्ञा दी कि अपनी कन्या को श्रीरगम् ले जाओ, वह श्रीरगेश्वर पर आसक्त है। विष्णुचित्त श्रीरगम् पहुँचे और गोदादेवी का विवाह श्रीरगनाथ के साथ कर दिया।

सम्प्रदाय मे गोदादेवी भूदेवी का अवतार मानी जाती है और 'तिरुप्पावै' भक्ति-साहित्य मे अत्यन्त प्रसिद्ध है। गोदादेवी की कथा दिव्यसूरिचरित्रादि कई ग्रथो में मिलती है किन्तु कृष्णदेवराय ने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से उसे सर्वथा नवीन रूप दे दिया है। यामुनाचार्य के प्रसग तथा खाण्डिक्य केशिध्वज सवाद आदि के समावेश मे कवि का वीरवैष्णव भाव स्पष्ट लक्षित होता है। ऐसा लगता है कि उन्होने स्वय अपने आप पर ही रूपक रूप मे यह काव्य लिखा है। इस रूपक मे स्वय कृष्णदेवराय ही विष्णुचित्त हैं, उनकी कृति 'आमुक्त-माल्यदा' ही कन्या आमुक्तमाल्यदा है और श्रीवेंकटेश्वर के हाथो मे इस कृति का समर्पण ही श्रीरगनाथ के साथ गोदादेवी का विवाह है, इस काव्य मे विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय की रहस्यपूर्ण उक्तियाँ आद्योपान्त गुम्फित है।

आमुक्तमाल्यदा तेलुगु साहित्य का एक अप्रतिम प्रबन्ध काव्य है। इसके विशद वर्णनो को देखकर आश्चर्य होता है कि महाराज कृष्णदेव का 'लोकावेक्षण' कितना व्यापक था। सार्वजनिक जीवन की सहज अनुभूतियाँ इसमे यत्रतत्र भरी पडी हैं। तत्कालीन नरपतियो की शृङ्गारी एव राजसी दभभरी प्रवृत्तियो को देखते हुए श्रीकृष्णदेव की यह भक्तिभावपूर्ण मधुर-वाणी हृदय को पुलकित कर देती है। इसकी शैली व्यजना-प्रधान है। लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग खूब किया गया है, परन्तु उसके कारण प्रासादिकता एव कथानक के प्रवाह मे कोई बाधा नही आती। एक उदाहरण लीजिए। भगवान् से पाण्ड्यराज की सभा मे जाने का आदेश पाकर विष्णुचित्त कहते है —

गृहसम्मार्जनमो, जलाहरणमो, शृङ्गारपल्यकिका।
वहनबो, वनमालिकाकरणयो, वाल्लभ्यलभ्यध्वज।
ग्रहणबो, व्यजनातपत्रधृतियो, प्राग्दीपिकारोपमो।
नृहरीवादमुलेल ! लेरे यितरून्न नीलीलकु बात्रमुल्।

भगवन् ! मन्दिर मे झाडू देना, पानी लाना, पालकी ढोना, पुष्पमाला गूथना, ध्वज फहराना, पखा करना, छत्र पकडे रखना आदि कार्य मैं कर सकता हूँ (शास्त्रार्थ मेरे जैसे जडमति के बस का नही) क्या मेरे अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति नही है जो आपकी लीला का पात्र बन सके।

'सन्तों को कहा सीकरी सो काम' वाला पूरा भाव आगया है और इस खूबी के साथ कि सीधी स्पष्टवादिता मे अनिवार्यत जो अक्खडता आ जाया करती है उसका आभास तक नही होता। इतना ही नही, अन्तिम पक्ति का व्यङ्ग्य और भी अधिक हृदयस्पर्शी है। विष्णुचित्त का उलाहना है—भगवन् ! मुझसे पीछा छुडाने के फेर मे हो क्या ? या मुझे बना रहे हो ? जो नाटक आप मुझसे कराना चाहते हैं, वह मेरे बस की बात नही।

श्री तेनालिरामकृष्ण कवि (१६ वी शताब्दी)

रामकृष्ण कवि का मूल नाम रामलिङ्ग था। वैष्णव होने के पश्चात् वे रामकृष्ण कहलाये। इन्होने 'पाण्डुरगविजय' नामक प्रबन्धकाव्य का प्रणयन किया जिसकी गणना तेलुगु के पाँच प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्यो मे की जाती है। भैमी नदी के तट पर स्थित पुण्डरीक क्षेत्र (पण्ढरपुर) मे देवाधिदेव पाण्डुरग विट्ठल विराजमान है। यहाँ पुण्डरीक नामक एक भक्त

को बालकृष्ण का साक्षात्कार हुआ था। अत यह क्षेत्र पुण्डरीक क्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। पुण्डरीक क्षेत्र या पण्ढरपुर दक्षिण भारत की सास्कृतिक धाराओ का त्रिवेणी सङ्गम है। यहाँ महाराष्ट्र, आन्ध्र एव कन्नड प्रान्तो के सन्तो का शताब्दियो से सगमन होता रहा है। मराठी, तेलुगु और कन्नड भाषाओ के उन प्रतिनिधि भक्त कवियो मे तुकाराम, अन्नमाचार्य और पुरदरदास लोकविश्रुत है जो अपनी वाणियो से पण्ढरपुर को त्रिवेणी सगम ही बनाकर सरस काव्य धारा के पवित्र जल से इष्टदेव पाण्डुरग विट्ठल को स्नान कराते रहे है। इन्ही पाण्डुरग भगवान् की महिमा का गान रामकृष्ण कवि ने अपने 'पाण्डुरङ्गविजय मे किया है जिसमे अनेक उपाख्यान सगृहीत है। इन मे निगमशर्मोपाख्यान अत्यन्त रोचक और अजामिल-उपाख्यान से मिलता जुलता है। निगम शर्मा एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मणकुल मे उत्पन्न होकर भी यौवन जीनत चपलताओं के वशीभूत हो कामुक जीवन व्यतीत करने लगा। उसकी गुणवती साध्वी बहिन ने मार्ग पर लाने के लिये बहुतेरे प्रयत्न किये किन्तु सब व्यर्थ। अन्त मे पण्ढरपुर में भगवान् पाण्डुरङ्ग के दर्शन से निगमशर्मा को बोध हुआ और वह परम भक्त बन गया।

इस प्रकार पाण्डुरङ्ग भगवान् का जो श्रीकृष्ण का ही एक अन्य स्वरूप है, महिमा-वर्णन अनेकानेक उपाख्यानो द्वारा किया गया है जिनमे लोकानुभूति और काव्यशिल्प का मणिकाञ्चन योग हुआ है।

क्षेत्रय्य (सत्रहवी शती)

आन्ध्रकोकिल क्षेत्रय्य का जन्म कृष्णा जिले मे स्थित मुव्व नामक ग्राम मे हुआ था। इस गाँव मे गोपाल कृष्ण का एक मन्दिर है जिसमे प्रतिष्ठित स्वरूप 'मुव्वगोपाल भगवान्' कहलाते है। एक किवदन्ती के अनुसार क्षेत्रय्य अपने यौवन काल मे किसी सुन्दरी पर मुग्ध हो गये थे जिसने उन्हे इसलिये स्वीकार नही किया कि वे अपढ थे। इस पर क्षेत्रय्य ने गोपाल मन्दिर मे जाकर भगवान् कृष्ण का ध्यान किया। भगवान् के प्रसाद से इनकी काव्य-प्रतिभा का चमत्कारी उन्मेष हुआ, पर अब उन्हे भक्तिरस का चसका लग चुका था जिसके सामने गोरस फीका था, इस प्रकार इनके लौकिक प्रेमका उन्नयन अलौकिक प्रेम मे परिणत हुआ। गोपालकृष्ण की शृङ्गार लीलाओ मे इनकी चित्तवृत्ति बहुत रमी है। भगवान् के सौन्दर्य का पान करने के लिये इन्होने दक्षिण भारत के पुण्य क्षेत्रो की यात्रा की। इसलिये इनका नाम क्षेत्रय्य या क्षेत्रज्ञ पडा। इनका वास्तविक नाम तो वरदय्य था।

क्षेत्रय्य की पदावली मे विद्यापति की पदावली के समान लौकिकता का पुट ही प्रबल प्रतीत होता है, फिर भी माधुर्य-भक्ति की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति इसमे हुई है। इनके उपलब्ध पदो की सख्या लगभग चार सौ है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि तेलुगु मे 'सकीर्तन' और पद' शब्द भक्ति साहित्य के दो भिन्न स्वरूपो के द्योतक है। सकीर्तन आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होते है जबकि पद शृङ्गार-प्रधान हुआ करते है।

क्षेत्रय्य के पद साहित्य का तेलुगु साहित्य मे एक विशिष्ट स्थान है। महाकवि पोतन्न की अमरकृति 'महाभागवत' काव्य प्रधान है तथा अन्नमाचार्य त्यागराजु आदि भक्त कवियों की रचनाएँ सगीत प्रधान हैं, परन्तु क्षेत्रय्य की पदावली में काव्य, सगीत एव नृत्य की त्रिवेणी

बहती है। नायिका-भेद के उदाहरण भी इसमे भरे पडे है। एक अज्ञात् कवि ने भानुदत्त की रसमञ्जरी का तेलुगु मे अनुवाद करते हुए प्रत्येक लक्षण के उदाहरण रूप मे क्षेत्रय्य के ही पदो को उद्धृत किया है। विजयराघव नायक (१६३३—७३ ई०) नामक अपने आश्रयदाता नृप की प्रशसा मे भी क्षेत्रय्य ने कुछ पद लिखे हैं। प्रतीत होता है कि लौकिक एषणाओ की कुण्ठा से ग्रस्त होकर इनका मन मधुप भटक गया। दुबलता के इन्ही क्षणों मे उन्होने 'प्राकृतजन' के गुणो का गान किया और उनसे दूर होते ही वे अनन्तलीला विग्रह भगवान् के चरण कमलो मे जा गिरे। मुव्वगोपाल के अतिरिक्त भगवान् वेकटश्वर तथा काची मे विराजमान भगवान् वरदराजस्वामी आदि अय वैष्णव स्वरूपो की लीलाओ का गान भी इनकी पदावला मे मिलता है।

भक्ति के झीन से आकषक अवगुण्ठन से झाँकती हुई क्षेत्रय्य की कविता-कामिनी सगीत की स्वरलहरियो के साथ सविलास लास्य मे थिरकती प्रतीत होती है। इनकी पदावली ने सगीत के ही नही नृत्यकला के आचार्यों को भी आकृष्ट किया है। आज भी उन पदो की ताल पर नृत्य का अभ्यास किया जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

मोहन राग, जपताल

मगुव तनकेलिका मन्दिरमु वेडलेन्।
वगकाडा माकचि-वरद तेल्लबारे ननुचु॥ मगुव०॥
विडजारगोज्जगि-विरिदडजडतोनु।
कड्डुचिक्कुबडिपेगु - कटसरितोनु।
निडुद कन्नुलदेस - निदुरमब्बुतोनु।
तोडरिपद युगमुन दडबडेडुनडतोनु।
सो गसि सोगयनिवलपु सोलपु जूपुलतोन।
वगवगल घनसार वासनल तोनु।
जिगमिचु केम्मोवि चिगुरु केपुलतोनु।
सगमु कुचमुल विदिय चन्द्ररुल तोनु।
तरितीपु सेयु समसुरति बडलिक तोनु।
जरुत पावडबेरगु जार्पटतोनु।
इसगडल कैदडलिच्चु तरुणलतोनु।
परमात्ममुव्वगोपाल तेल्लवारे ननुचु।

युवति (राधा) प्रात काल प्रियतम के केलिगृह से निकली। उसका हार टूट गया था, केशपाश शिथिल था, सयोग के कारण (आलिंगन मे) कण्ठमाला मलिन हो गई थी। कजरारे उनीदे कमल से सुन्दर नयनो से वह लडखडाते पैरो जा रही था और तृप्त होकर भी अतृप्त सी लग रही थी। वह कपूर के परिमल से वायु को महका रही थी, उसके अधर किसलय के समान अरुण थे और उरोज द्वितीया के चन्द्र जैसे नखचिह्नों से सुशोभित, उसका वस्त्र (नीवी) शिथिल था (अत) दोनो ओर से सखियाँ उसे सहारा दिए थी।

कहने की आवश्यकता नही कि हरि स्मरण के साथ विलास कथा कौतूहल और कोमल-कान्त पदावली, जो जयदेव के पदो की जान है क्षेत्रय्य के पदों मे भी पूर्णतया प्रतिष्ठित है।

त्यागराजु

आन्ध्र के अन्य महान् भक्त त्यागराजु यद्यपि राम के भक्त थे तथापि कृष्ण की लीलाओ का भी उन्होने गान किया है। इनका जन्म ब्राह्मण दम्पती राम ब्रह्म एव सीताबा के घर सन् १७६७ ई० मे हुआ। शैशव से ही इनका मन सासारिक वासनाओ से हटने लगा था। सगीत के प्रकाण्ड पण्डित थे। राम के अनन्य भक्त थे और अपनी सगीत कला से राम की उपासना करते थे। इन्होने लगभग ७०० सकीतन लिखे जिन्हे दक्षिण भारत मे अत्यन्त महत्त्व प्राप्त हुआ। ये सकीतन कर्नाटक सगीत-साहित्य की अमूल्य निधि हे। इनके सगीत की प्रशसा सुनकर तजौर के तत्कालीन शासक ने इन्हे अपनी राजसभा मे बुलाया था परन्तु 'सतन को कहा सीकरी सो काम' त्यागराज नही गए।

त्यागराजु की भक्ति दास्य कोटि की है। उनकी दैन्यानुभूति चरमकोटि तक पहुँच गई है। मधुरा भक्ति अथवा शृङ्गार भावना इनके सकीतनो मे बहुत ही कम मिल सकेगी। उनमें शान्त रस की निर्झरिणी कलकल ध्वनि से बहती रहती है। उनके जीवन का सरलता, पवित्रता और उदात्तता उनके सकीतनो पर पूर्णतया छा गई है और यह बेधडक कहा जा सकता है कि त्यागराजु की कला, कला एव जीवन का तादात्म्य प्रस्तुत करती है त्यागराजु की भक्ति एव आदर्शों की तुलना गोस्वामी तुलसीदास से की जा सकती है। उनके जीवन से भी अनेक चमत्कार सम्बद्ध हो गये है। कहा जाता है एक बार उनकी पालकी पर चोरो ने पत्थर बरसाये तब उन्होने राम लक्ष्मण को सहायता के लिये पुकारा। चोरो के प्रहार व्यर्थ हुए और उन्होने त्यागराजु से क्षमा मागी। इसी प्रकार एक दिन वे अपने शिष्यो के साथ तिरुपति के मदिर मे पहुँचे। उस समय भगवान् के सामने पर्दा पडा हुआ था। त्यागराजु ने प्राथना की तो पर्दा स्वत ही हट गया और उन्हे प्रभु के दशन हो गए।

त्यागराजु का दृष्टिकोण समन्वयात्मक था। उसकी विचारधारा अद्वैत की भावना से प्रेरित थी। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी वे तुलसी की भाँति शिव, गणेश, त्रिपुर सुन्दरी आदि देवी-देवताओ की भी स्तुति किया करते थे। इनके नौका चरित की कथा कृष्ण एव गोपियो को केन्द्र बिन्दु मानकर चली है।

राधाभाव

दक्षिण मे राधाभाव का प्रचार चैतन्य महाप्रभु को यात्रा के पश्चात् हुआ। महाप्रभु की दक्षिण यात्रा ई० सन् १५१० ११ मे हुई थी। गोदावरी नदी के गोस्पद घाट पर महाप्रभु से तत्कालीन उत्कलाधीश के सामत राजा रायरामानन्द की भेट हुई। सप्रदाय के विश्वासानुसार दोनों मे आध्यात्मिक चर्चा भी चली थी और महाप्रभु ने राधाकृष्ण तत्त्व एव दिव्य प्रेम का उपदेश दिया। शिष्ट साहित्य मे राधाकृष्ण विषयक सर्व प्रथम काव्य एलुनार्य कृत राधामाधव है। एल्लनाय सम्राट् कृष्णदेवराय के समसामयिक थे। कहा जाता है कि उनके काव्य को सुनकर कृष्णदेवराय ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उन्हे 'राधामाधवकवि' का विरद दिया। 'राधामाधव काव्य' पाच उच्छ्वासो का शृङ्गार परक काव्य है। तेलुगु मे राधाकृष्ण विषयक साहित्य मे भक्ति की अपेक्षा शृङ्गार का ही समावेश अधिक रहा है। कहना न होगा कि तेलुगु ही नही लगभग सभी भाषाओ का राधाकृष्ण काव्य अन्ततोगत्वा शृङ्गार मे ही परिणत हुआ है। उस समय तेलुगु साहित्य मे प्रबन्ध काव्य की परम्परा पूर्णतया विकसित थी। अत

उसका पालन करते हुए शृङ्गार का आद्योपान्त समावेश कर राधामाधव लीलाओ का साहित्यिक चित्रण करने मे कवियो का मन अधिक रमता था। एल्लनाथ मदनगोपाल के भक्त थे और उनके अनुसार इष्टदेव ने ही स्वप्न मे उन्हे काव्य रचना का आदेश दिया था, इनकी कविता इतनी सस्कृतनिष्ठ है कि कही कही तो जयदेव की कृति होने का सा भ्रम हो जाता है। एक उदाहरण लीजिये —

'श्री राधाधरमधुरसुधारसधारा प्रशा तदारुणनिशित
स्मरशरानल धोरोदार गुणावलि नवमदन गोपाला'

इस परम्परा की उल्लेखनीय कृतियाँ है वेलिदेड्लवेकट पति कवि का राधामाधव सवाद' तथा मुद्दुपलनि का 'राधिकासा त्वनमु।'

लोक साहित्य मे राधाकृष्ण विषयक मान विप्रलम्भ रचनाओ की प्रचुरता है। ये प्राय सवादरूप मे है और इनका अभिनय किया जाता है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि ये तेलुगु क्षेत्र मे वही स्थान रखते है जो व्रजक्षेत्र मे प्रचलित 'रास'। कहा जाता है कि सिद्धेन्द्रयोगी नामक किसी व्यक्ति ने कूचिपूडि गाँव के ब्राह्मणो को आचाय भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार विविध हाव भावो के साथ इन नृत्य नाटको के अभिनय की शिक्षा दी। ये रचनाएँ दो प्रकार की हैं, कलाप और भागवत नाटक। कलापो मे सत्यभाषा कलापमु'। 'गोल्लभामाकलापमु' तथा 'चोडिगानि कलापमु मुख्य है और भागवतनाटको मे प्रह्लादचरित्रमु रुक्माङ्गदचरित्रमु, उषापरिणयमु एव सारगधरचरित्रमु आदि। पव दिवसो तथा मदिरो के वार्षिकोत्सवो के अवसर पर आन्ध्र प्रदेश के कोने कौने मे इन गेय रूपको का अभिनय हुआ करता है। कलापो को परिजात भी कहते है। प्राय कलाप शृङ्गारपरक तथा भागवत नाटक भक्तिपरक होते हैं। कुचिपूडि की अभिनयकला का समूचे दक्षिण मे प्रचार हुआ मेल्लट्टुर के भागवत अभिनेता आज भी बडे प्रसिद्ध है। नाट्यशास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार 'सत्यभामाकलापमु' श्रीगदित नामक उपरूपक के, गोल्लभामकलापमु भाणिका के तथा चोडिगानि कलापमु डोबी नामक उपरूपक के अन्तगत आते है।

तेलुगु मे मान शृङ्गार की नायिका केवल सतमभामा है। लोक साहित्य मे भी और शिष्ट साहित्य मे भी हिन्दी एव बगला साहित्य मे राधा को और मराठी मे रुक्मिणी को जो स्थान प्राप्त है वही तेलुगु मे सत्यभामा का। सोलहवी शती के पूर्वाध मे नदिलिम्मन नामक महाकवि ने तो लोक साहित्य मे प्रतिष्ठित इस मानिनी (सत्यभामा) को आलम्बन मानकर परिजातापहरण नामक एक उत्कृष्ट प्रबन्धकाव्य का प्रणयन किया। इसमे मानशृङ्गार का जो व्यापक चित्र खीचा गया है वह अन्यत्र दुलभ है। इसका कथानक हरिवश से लिखा गया है। हरिवश मे केवल दश श्लोको मे यह कथा वर्णित है। परन्तु इसी सूक्ष्म वस्तु के आधार पर अपनी अनोखी कल्पना से कवि ने एक अत्य त सुन्दर सरस काव्य की सृष्टि की है। दिव्य महर्षि नारद श्रीकृष्ण से मिलने आते है तो एक पारिजातपुष्प भेट करते है जिसे श्रीकृष्ण बाद मे रुक्मिणी के केशो मे गूथ देते हैं। सहेली से इस बात को सुनकर सत्यभामा रुष्ट होकर कोप भवन मे डी रहती है। श्रीकृष्ण उसके महल मे पहुँचते हैं और खोजते खोजते कोपभवन मे उसे पाकर अनुनय विनय करते है। सत्यभामा का मान नही टूटता अन्त मे वे मानापनयन के अन्तिम उपाय (चरणों मे गिरने) का आश्रय लेते है तो सत्यभामा अपने बाँये पैर से उनका सिर हटा देती है। मान की पकड ढीली होते ही रसिक शिरोमणि प्रतिज्ञा

करते है कि मै नन्दनवन से परिजात का पूरा वृक्ष हा लाकर तुम्हारे आँगन मे लगादूगा और अन्त मे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं। मान मनाव का बडा ही सुन्दर वर्णन इस काव्य मे हुआ है। मनुहारे करते हुए कृष्ण की एक उक्ति देखिये—

ओ ललितेन्द्रनीलशकलोपमकशिक इतवत नी।
केललतात मात्रमुन के गलुगन् विनु नीकु देवता
केलिवनवु सोच्चि यनिकिन् वलसूदनुडेत्तिवच्चिनम्
दीलुपडगदोलि इट देच्चे दनिच्चेद पारिजातमुन्॥

ललित इन्द्रनील मणि के सदृश केशो वाली प्रिये! एक फूल के लिये इतनी चिन्ता! नन्दन वन जाकर मै परिजात वृक्ष लाकर तुम्हे दूगा। चाहे इन्द्र ही युद्ध करने क्यो न आये मै उसे भी पराजित कर परिजात लाऊँगा।

तमिल

तमिल साहित्य मे आलवार सन्तो की भक्ति भाव-पूर्ण उक्तियो की प्रचुरता है। इन्होने भगवान् विष्णु, कृष्ण आदि वैष्णव इष्टदेवो का मधुर वाणी मे लीला-गान किया है। भक्ति का जो मधुमय रसायन इन्होने ससार को दिया हे, वह सदैव भक्तो के जरामरणभय का उच्छेद कर उन्हे अमृत बनाता रहेगा। आलवार भक्तो मे बारह अत्यन्त प्रसिद्ध है जिनके नाम इस प्रकार है—

१—पोयिगैयालवार (सरोयोगा) २—पूदत्तालवार (भूतयोगी)
३—पेयालवार (महायोगी) ४—तिरुमलिशैयालवार (भक्तिसार)
५—पेरियालवार (विष्णुचित्त) ६—आडाल (गोदादेवी, श्री)
७—श्रीकुलशेखरालवार ८—तिरुप्पाण आलवार (योगिवाह)
९—तोण्ड रडिप्पाडियालवार (विप्रनारायण, भक्ताङ्घ्रिरेणु)
१०—तिरुमगैयालवार (परकाल) ११— नम्मालवार (शठकोप)
१२—मधुरकवि आलवार।

एक सस्कृत श्लोक मे आलवारो का परिगणन इस प्रकार किया गया है—

भूत सहश्च महदाह्वय भट्टनाथ।
श्रीभक्तिसारकुलशेखर योगिवाहान्।
भक्ताङ्घ्रिरेणुपरकालयतीन्द्रमिश्रान्।
श्रीमत्परांकुशमुनिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥

इस श्लोक मे श्रीरामानुज का भी समावेश है जो यतीन्द्र माने जाते हैं। परम्परा के अनुसार प्रथम तीन आलवार तो द्वापर युग मे उत्पन्न माने जाते हैं। वस्तुत आलवारों का समय श्रीमद्भागवद्गीता के रचना काल से श्रीरामानुज तक का समय है। सप्रदाय के अनुसार पोयिगै आलवार पाञ्चजन्य के, पूदत्तालवार कौमोदिकी गदा के तथा पेयालवार नन्दक खड्ग के अशावतार थे। एक बार भक्ति का प्रचार करते हुए ये सयोगवश तिरुक्कोवलूर नामक गाँव मे पहुँचे। सोने के लिये स्थान देखते हुए ये एक घर के चबूतरे पर बैठे बाते कर रहे थे कि भगवान् ने इनकी परीक्षा के उद्देश्य से उसे अत्यन्त सकीर्ण कर दिया। इन्होंने

ध्यानावस्थित होकर देखा तो भगवान् विष्णु दिखाई पडे। आनन्दमत्त होकर तीनो ने भगवान् की स्तुति की। भक्ति के इन पदो को 'तिरुवदादि' कहते हैं। आधुनिक आलोचक इनका काल सातवी शती मानते है।

तिरुमलिशै आलवार का जीवन-काल सातवी शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। जनश्रुति के अनुसार ये किसी ऋषि एव अप्सरा के पुत्र थे तथा एक निम्न जाति के परिवार मे इनका पालन-पोषण हुआ था। 'तिरुवदादि' तथा 'तिरुच्च दविरुत्तम' इनके प्रसिद्ध प्रबन्ध हैं। प्रथम कृति मे ९६ तथा द्वितीय मे १२० छन्द मिलते हैं।

पेरियालवार के मूल नाम विष्णुचित तथा भट्टनाथ है। इनका जीवन-काल नवी शताब्दी ई० माना जाता है। ये श्रीविल्लिपुत्तूर मे विराजमान वटपत्रशायो भगवान् के पुजारी थे।

कहा जाता है कि एक दिन पाण्डराज वल्लभदेव गुप्त वेश मे रात्रि के समय राजधानी में घूम रहे थे कि उनकी भेट एक ब्राह्मण से हुई। राजाने पूछा—आय ! अर्धरात्रि के समय आप यहाँ कैसे लेटे है ? ब्राह्मण ने कहा—'मै परदेशी हूँ, रामेश्वर यात्रा के लिये आया हूँ। यहाँ पहुँचते-पहुचते रात हो गई और मै उसे बिताने के लिये यहा लेट गया हूँ। राजा ने ब्राह्मण को अनुभवी समझ कर सारभूत उपदेश की इच्छा की तो ब्राह्मण ने यह श्लोक पढा—

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्थमथ दिवस यतेत।
वार्धक्यहेतोवयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च।

अर्थात् वर्षा के लिये आवश्यक प्रबन्ध शेष आठ महीनो मे, रात्रि के लिये दिन मे, बुढापे के लिये जवानी मे और परलोक के लिये इहलोक मे कर लेना चाहिए।

यह सुनकर राजा को बोध हुआ। प्रात काल ही अपने पुरोहित शलवनवि को बुलाकर उसने विद्वानो को एकत्र कर धार्मिक दर्शनो मे उत्कृष्टतम दर्शन को जानने की इच्छा प्रकट की। वटपत्रशायी भगवान् की आज्ञा से विष्णुचित्त अथवा पेरियालवार भी उपस्थित हुए और उन्होने भगवत्कृपा से शास्त्राथ मे सभी आचार्यों को हरा कर विशिष्टाद्वैत की उत्कृष्टता सिद्ध की। राजा ने हाथी पर बिठा कर उनका जलूस निकाला। विष्णुचित्त ने देखा कि स्वय विष्णुभगवान् श्रीदेवी सहित उसका जलूस देखने पधारे है। हर्षातिरेक से 'पल्लाण्डु' 'पल्लाण्डु' कहते हुए उन्होने भगवान् विष्णु को ११ पाशुरों (भक्तिपूर्ण पदो) मे आशीर्वाद दिया। साधारणत भक्त निर्हेतु की कृपा के लिये भगवान् की प्रार्थना किया करता है, किन्तु विष्णुचित्त ने उन्हे आशीर्वाद दिया। अत य पेरियालवार (बडे आलवार) कहलाये।

वास्तव मे विष्णुचित्त की भक्ति वात्सल्य भक्ति है। उन्होंने विष्णु को बालकृष्ण रूप मे और अपने आपको यशोदा के रूप मे देखा है। अत उनके पाशुरो मे वात्सल्य रसकी अजस धारा बहती रहती है। श्रीकृष्ण की विविध बाललीलाओ के वर्णन मे इनके ४७२ पाशुरो का प्रबन्ध उपलब्ध है जिसका नाम है पेरियालवार तिरुमोलि। कहा जाता है कि महनाथ की उपाधि इन्हे स्वय भगवान् ने दी थी। इनके 'तिरुप्पल्लाण्डु' के लीला-गान का एक उदाहरण लीजिये।

पल्लाण्डु पल्लाण्डु पल्लाइस्ताण्डु ।
पलकोडि नूराइरममु ।
मल्लाण्डर्तिण्डोल मणियण्डाउन ।
शेवडि शेव्वि तिरुक्काप्पु ।

जय हो प्रभो ! जय हो । तुम्हारी भुजाओ ने चाणूर और मुष्टि नामक दुधर्ष मल्लो को पछाडा है । इन्द्रनीलमणिसदृश कान्ति वाले दिव्य मङ्गलमय शरीर धारिन् ! आपका मङ्गल हो । अनेक शतसहस्र कोटि वर्षों तक तुम्हारे चरण कमलो की शोभा बनी रहे । तुम चिरायु हो ।

पेरियालवार की प्रशस्ति मे नाथमुनि ने निम्नलिखित श्लोक की रचना की है—

गुरुमुखमनधीत्य प्राहवे वेदानशेषान् ।
नरपतिपरिक्लप्त शुल्कमादातुकाम ।
श्वशुरममरव द्य रगनाथस्य साक्षात् ।
द्विजकुलतिलक त विष्णुचित्त नमामि ।

आण्डाल

आण्डाल विष्णुचित्त की पालिता पुत्री थी । कहा जाता है कि एक दिन जब विष्णुचित्त तुलसी के बिरवे की गुडाई कर रहे थे तो पृथ्वी से एक कन्या का आविर्भाव हुआ । उन्होने स्नेह से उसका पालन किया और गोदा नाम रखा । विष्णुचित्त नित्य वटपत्रशायी प्रभु की पूजा के लिये माला गूथ कर ले जाते थे । गोदा भगवान् पर अनुरक्त थी । वह माला को पहले स्वय धारण कर लिया करती थी और सरोवर के जल मे अपना रूप देखकर पुन उतार देती थी । विष्णुचित्त उसकी इस चर्या से अनभिज्ञ थे । एक दिन उन्होने देख लिया तो सकपका गये । खिन्न होकर उस दिन उन्होने भगवान् को वह माला समर्पित न की । भगवान् ने स्वप्न मे उनसे कहा कि गोदा द्वारा पहनी हुई माला मुझे अत्यन्त प्रिय है । तुम उसे माला पहनने से मना मत करना । गोदा का भगवत्प्रेम बढता ही गया । उसने सुना था कि गोप कन्याओ ने भगवान् की प्राप्ति के लिये कात्यायनी का व्रत किया था । उसने भी धनुर्मास मे व्रत किया । प्रतिदिन एक पाशुर (भक्तिपूर्ण पद) रचकर भगवान् की प्राथना करती थी । यह महान् भक्तिपूर्ण आत्म निवेदन तमिल साहित्य मे 'तिरुप्पावै' नाम से प्रसिद्ध है और दक्षिण मे भक्तजनो का कण्ठाहार बना हुआ है । मन्दिरो मे आज भी इसके पदो का प्रतिदिन गान होता है ।

एक दिन पेरियालवार ने वटपत्रशायी से कहा कि भगवन् मेरी कन्या सुध बुध भूली-सी रहती है । भगवान् ने मुस्कराकर कहा कि उसे श्रीरङ्गम् ले जाओ, वह वहाँ के अर्चावतार श्रीरङ्गनाथ पर आसक्त है । विष्णुचित्त गोदा के साथ श्रीरङ्गनाथ के मन्दिर पहुँचे । श्रीरङ्गनाथ के दर्शन कर गोदा प्रेमोन्मत्त हो उठी और श्रीरगनाथ के विग्रह की ओर बढती चली गई । भगवान् ने भी उसका आलिगन किया । विष्णुचित्त चिंतित हुए तो श्रीरगनाथ ने उनसे कहा, तुम निश्चित रहो, मैंने गोदा से विवाह किया है ।

गोदादेवी भूदेवी का अशवतार मानी जाती है। अपनी पहनी हुई माला को भगवान् को समर्पित करने के कारण वह 'चूडिकोडुत्ताल' भी कहलाई। भक्तजनो की रक्षा करने से वह आण्डाल कहलाई।

आण्डाल के जीवन की उपर्युक्त घटनाएँ ऐतिहासिक हो या न हो, किन्तु एक बात स्पष्ट है। वह यह कि आण्डाल का गोपीभाव परम प्रशस्त एव अनुभूतिमय है। तिरुप्पावै का अनुवाद तेलुगु आदि दक्षिण की सभी भाषाओ मे बहुत पहले हो चुका है। इसे सस्कृत मे श्रीव्रत कहा जाता है। इसका एक पद लीजिये। मनमोहन कृष्ण की प्राप्ति के लिये व्रत का उपदेश करती हुई कोई बाला अपनी सखी को जगाती है—

पुल्लिन् वाय कीण्डानैप्पोल्लाव रक्कनै
किक्किक्कलैन्दानैक्कीर्ति मै पाडिप्पोय
पिल्लैगलेल्लारु पावैक्कलम्बुक्कार
वेल्लियेरुन्दु वियारमुरगिन्रु
पुल्लु शिलुम्बिन गाणपोदरिक्कण्णिनाय
कुल्लक्कुलिरक्कुडैन्दु नीराडादे
पल्लिक्किडत्तियो पापाय नीनन्नालाल
कल्लन्दविरन्दुकलन्देलो रेम्बावाय।

मायावी कस द्वारा प्रेषित बकासुर के घाती तथा रावण निहन्ता राम के गुण गान करती हुई गोपिकाएँ कृष्ण का आलिगन पाने के लिये सकेत स्थल पर पहुँच गई हैं, लेकिन तुम अभी तक सो रही हो। उठो, शुक्र का उदय हो गया। गुरु अस्त हो गये। विहग आहार की खोज मे चहचहाते अपने घोंसलो से उड रहे हैं। सखियो की यह बात सुनकर गोपिका ने उनीदी आँखें कुछ खोली। सखियाँ फिर बोली—कमल पर बैठे भ्रमर से नयनो वाली! इस भुलावे मे न रहना कि तुम्हारे सौन्दय मान के लिये कृष्ण स्वय आ जायेगे। आओ, शीतल जल से स्नान करे और व्रत का पालन करे। तुम हमारी गोष्ठी मे सम्मिलित हो जाओ। अपूर्व व्रत के आचरण से हमे अवश्य श्रेय की प्राप्ति होगी। आण्डाल के अन्य प्रबन्ध नच्चियार तिरुमोलि मे १४३ पाशुर हैं।

कुलशेखर आलवार

इनका जीवन-काल नवी शती के पूर्वाध मे माना जाता है। ये तिरुवाँकूर के राजा थे और श्री रामचन्द्र तथा श्री वेकटेश्वर के परम भक्त थे। सस्कृत मे इनकी लिखी मुकुन्दमाला अत्यन्त प्रसिद्ध है। भगवान् राम के ऐश्वय-वर्णन मे इन्होने १०४ पाशुरो का एक प्रबन्ध तमिल मे लिखा है जिसमे दस पाशुर तिरुमलै पर विराजमान भगवान् वेकटेश्वर की भक्ति मे रचित है। एक उदाहरण लीजिये—

आनादशेलवत्तर वय्यरगलतरशूल।
वानालु शेलवमु मण्डरशु यान्वेण्डेन्।
ते नार पू शोलै तिरुवेङ्गडच्चुनैयिल्।
मीनाय पिरक्कु विदियुडै ये नावेन्॥

मैं नही चाहता कि भूलोक का राज्य करके मै स्वग का राज्य करू और रम्भा आदि अप्सराओं से घिरा रहूँ। मैं तो इस सौभाग्य का इच्छुक हूँ कि तिरुमलै पर एक कुए मे मछली बनकर रहूँ।

प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवि रसखान ने अपने प्रसिद्ध सवैये 'पाहन हो तो वही गिरि को' मे ऐसी ही इच्छा व्यक्त की है।

ये श्रीरङ्गम् की यात्रा करना चाहते थे किन्तु इनके मन्त्री चिन्तित थे कि वहाँ जाकर ये श्रीरङ्गनाथ के मङ्गलविग्रह का सौन्दय निहार वापिस लौटने का नाम तक न लेगे, अत किसी न किसी बहाने यात्रा को टाल देते थे। इससे इनके भावुक हृदय का पता चलता है। एक अन्य घटना के अनुसार जब ये एक बार रामायण की कथा सुन रहे थे तो सीता-हरण का प्रसङ्ग आने पर एक दम क्षुब्ध होकर बोल उठे, 'मैं इसी समय लका पर चढाई कर राक्षसाधम रावण समेत लङ्का को नष्ट कर दूँगा और माता को लौटाकर भगवान् राम को समर्पित करूँगा।'' बडी कठिनाई से मन्त्री राजा को समझा पाये कि यह सब कुछ करने की आवश्यकता नही है।'

शरीर के प्रत्येक अङ्ग को ये भगवद्भक्ति का साधन बना देना चाहते थे। मुकुन्दमाला का यह मनोबोधात्मक श्लोक द्रष्टव्य है—

जिह्वे कीतय केशव मुररिपु चेतो भज श्रीधरम्।
पाणिद्वन्द्व! समपयाच्युतकथा श्रोत्रद्वय! व ऋृणु।
कृष्ण लोकय लोचनद्वय! हरेगच्छाङ्घ्रि युग्मा लयम्।
जिघ्र घ्राण मुकुन्दपादतुलसी मूधन्नमा धोक्षजम्।

जिह्वे! भगवान् मुरारि कृष्ण का कीतन करो चित्त! श्रीपति का भजन कर पाणियुग्म! प्रभु की सपय करो, कान! भगवान् की कथा सुनो, नेत्रयुगल कृष्ण का दशन करो, चरणद्वय! हरि के मन्दिर जाओ, नासिके! मुकुन्द के चरणो मे चढ़े तुलसी का गन्ध ग्रहण करें। मस्तक! भगवान् विष्णु को प्रणाम करो।

तिरुप्पाण आलवार

ये श्रीवत्स के अशावतार माने जाते है। इनका प्रादुर्भाव एक हरे भरे खेत मे हुआ। एक हरिजन दम्पती ने उधर से गुजरते हुए उन्हे पाया और गोदुग्ध से उनका पालन किया। इनका स्थान चूलापुर श्रीरङ्गम् के निकट था और बचपन से ही ये भगवान् श्रीरङ्गनाथ के भक्त हो गये। कहा जाता है कि कावेरी के तट से ही वे श्रीरङ्गनाथ का दिव्य सौन्दय निहारते रहते थे। एक दिन मदिर के पुजारी लोकसारगमुनि जल लेने आये। तिरुप्पाण को देखकर उन्होने उससे हट जाने को कहा पर ये तो अपने प्रभु के साक्षात्कार मे लीन थे। न हटे, पुजारी ने क्रुद्ध होकर एक पत्थर मारा तो हट गये, पर तु सारग ने मन्दिर मे आकर देखा तो भगवान् श्रीरङ्गनाथ के मुख से रुधिर निकल रहा था। सारग समझ गये, प्रभु की प्राथना की। भगवान् ने कहा तिरुप्पाण मेरा भक्त है। उसे यहाँ लाओ। वह पैदल आने के लिये मना करेगा पर तुम उसे कन्धे पर बिठा कर लाना। सारग ने ऐसा ही किया। तिरुप्पाण ने भगवान् के दर्शन से भावविभोर हो दस पद गाये जो अमलनादि पिरान' के नाम से प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त घटना की ओर सकेत करता हुआ एक श्लोक इनकी प्रशसा मे प्रसिद्ध है—

श्री लोकसारग महा मुनीन्द्र स्कन्धाधिरूढ कलयामि नित्यम् ।
कलकहीन कमनीयभक्ति कवीश्वर गायकसार्वभौमम् ।

अर्थात् श्री लोकसारग मुनि ने जिन्हे अपने कधे पर बिठाया, उन निमल कमनीय भक्त वाले गायक चक्रवर्ती तिरुप्पाण को मे प्रणाम करता हूँ ।

तोण्डरडिपोडि आलवार

ये भक्ताङ्घ्रिरेणु नाम मे भी प्रसिद्ध है । बचपन का नाम विप्रनारायण था । मडगुडि नामक गाव मे एक ब्राह्मण परिवार मे उत्पन्न हुए थे । बडे होने पर ये श्रीरङ्गनाथ का मालाकैकय करते थे । प्रसिद्ध है कि ये स्वय भी वनमाला के अशावतार थे । भगवान् को प्रतिदिन माला समपण करने के उद्देश्य से इन्होने एक उपवन भी लगाया था । एक दिन देवदेवी नामक वाराङ्गना अपनी बहिन के साथ राजसभा से गाँव जा रही थी । माग मे थककर इनके बगीचे मे बैठकर सुस्ताने लगी । विप्रनारायण बगीचे मे काम कर रहे थे । इधर इन दोनो बहिनो मे कुछ बहस हुई । देवदेवी ने कहा—मै इस ब्राह्मण को अपने प्रेम जल मे फँसा सकती हूँ । बहिन ने कहा कि यदि तुम ऐसा कर सको तो मै दो महीने तक तुम्हारी दासी बन कर रहूँगी । शत तय हो गई । देवदेवी धीरे से विप्रनारायण के पास जाकर बोली 'भगवान् मैं आपकी शरण हूँ, ज्ञान और भक्ति का उपदेश चाहती हूँ आपके चरणो मे रहकर आपकी सेवा करती रहूँगी और भक्ति-अमृत पाऊँगी । विप्रनारायण ने अनासक्त भाव से हाँ करदी । देवदेवी उपवन मे लता-पौधो को खीचती और घर का काम काज भी देखती । एक दिन वह बाहर काम कर रही थी कि वर्षा हुई और भीग गई । विप्रनारायण ने उसे अन्दर आने की अनुमति दी वह अन्दर आकर बैठ गई और कुछ देर बाद बोली—प्रभो । मुझ दासी को अपने चरण दबाने की आज्ञा दीजिये । विप्रनारायण मान गये और यही से उनका अत पतन प्रारम्भ हुआ । वे उस वेश्या के कुचक्र मे फँस गये । भगवान् अपने भक्त का पतन कैसे देख सकते थे । मन्दिर से एक स्वणपात्र देवदेवी के घर पहुँच गया । पुजारियो की शिकायत पर तलाशी हुई और विप्रनारायण तथा देवदेवी जेल मे डाल दिये गये । विप्रनारायण को देवदेवी से घृणा हो गई । भगवान् ने राजाको स्वप्न मे दशन देकर कहा—'विप्रनारायण निर्दोष हैं । उसका मोह हटाने के लिये ही ऐसा किया गया था । विप्रनारायण मुक्त कर दिये गये जेल से ही नही, उस भयकर जाल मे भी जिसमे वे फँसा लिये गये थे । उन्होने भगवद्भक्ति मे 'तिरुमालै' तथा 'तिरूप्पल्लियेलुच्चि नामक' दो प्रबन्ध लिखे ।

तिरूमगै आलवार

शत्रुओ के लिये काल सम होने के कारण ये परकाल नाम से श्री प्रसिद्ध है । इन का जीवन बडा रोमाञ्चकारी वर्णित है । ये नवी शती मे चोलदेश के तिरूक्करयलूर ग्राम मे हुए । इस समय के चोलराज का नाम नील था और इनका भी बचपन का नाम यही था । इन्हे धनुर्विद्या और राजनीति मे रुचि थी । बडे होने पर चोलराज ने इन्हे ही गाँव का शासक बनाया । एक दिन इनकी भेट कुमुदवल्ली नामकी किसी अप्सरा पुत्री से हुआ । नील इस पर मुग्ध हो गये, किन्तु उसने शर्त रखी कि यदि तुम नित्य १००८ वैष्णवो को भोजन करा सको तो मैं तुम से विवाह कर लूँ । नील ने स्वीकार किया । शीघ्र ही इनका धन समाप्त हो गया

तो अपनी बात रखने के लिये ये वैष्णवेतर जनों को लूटने लगे। बटमारी के कारण राजा ने इन्हे कारागृह मे डाल दिया तब काची के वरदराजस्वामी ने अपार धन देकर इन्हे छुडाया। श्रीरङ्गनाथ ने इनका उद्धार करने के लिये एक लीला की। एक दिन नील को इस जगल मे जहाँ वे लूटमार करते थे, एक बरात दिखाई पडी, इन्होने लूटमार की। अन्त मे वर की उँगली मे से अँगूठी निकालना चाहा पर न निकाल सके। वर से पूछा कि क्या कोई मन्त्र जानते हो, कि अगूठी निकलती ही नही। वर ने कहा हाँ, मै मत्र जानता हूँ और, चाहो तो तुम्हे भी सिखा सकता हूँ, यह कहकर उसने अपना वास्तविक रूप दिखाया तो नील के समक्ष साक्षात् भगवान श्रीरङ्गनाथ विराजमान थे। उसी समय से वे श्रीरङ्गनाथ के भक्त बन गये। भगवद्भक्ति मे विभोर होकर इन्होने अनेक प्रबन्धो की रचना की जो इस प्रकार है—

१	पेरियतिरुमोलि	१०८४	पाशुर
२	तिरुकुरुताण्डकम्	२०	,,
३	तिरुनेडु ताडण्कम्	३०	,,
४	तिरुवेलिकूर्तिरुक्कै	१	,,
५	शिरियतिरुमडल	४०	,,
६	पेरियतिरुमडल	७८	,,

ये प्रकाण्ड पण्डित तथा पक्के वैष्णव थे। इन्हे चतुष्कवि कहा जाता है जिसका अर्थ है आशु कविता, मधुर कविता, चित्र कविता और विस्तार कविता करने वाला कवि। इनकी प्रशस्ति मे निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है—

परकालहरिं वन्दे हरिपादगुहाशयम्।
उन्नत प्रतिकूलेभकुभसभेद विभ्रयम्।
वाद प्रसभसत्रस्त शैवशाक्यादिदुर्द्विपम्।
परकालमृगेन्द्र त्वा प्रपद्येऽच्युत वन्दिनम्।

'हरिचरण रूपी गुहा मे शयन करने वाले तथा शत्रु रूपी हाथी के कुम्भस्थल को खेल-खेल मे ही विदीर्ण कर देने वाले परकाल रूपी सिंह की मै वन्दना करता हूँ जो शास्त्रार्थ मे भयभीत शैव्य शाक्य आदि मत्त हाथी के लिये मृगेन्द्र है।

मधुर कवि आलवार तथा नम्मालवार

नम्मालवार शठकोप, पराकुश, वकुलाभरण आदि नामो से भी ये प्रसिद्ध है। शठकोप का सभी आलवारो मे विशिष्ट स्थान है। ये ताम्रपर्णी नदी के किनारे कुरुकूर मे एक शूद्र के घर इनका जन्म हुआ था। ये बचपन से ही भागवत-ध्यान मे इतने लीन हो जाते थे कि लोग इन्हे जड समझते थे। आदिनाथ के मन्दिर के बाहर स्थित इमली के पेड के खोखले मे बैठकर इन्होने कडी तपस्या की। इनके तेज से वह दिशा भी आलोकित हो उठी। मधुर कवि आलवार इन दिनो उत्तर भारत की यात्रा कर रहे थे और अयोध्या मे थे। दक्षिण दिशा मे दिव्य प्रकाश देखकर उन्होने किसी अप्राकृत दिव्य पुरुष का अनुमान किया और खोजते हुए वही पहुँचे। उन्होंने खोखले मे एक पत्थर गिराया तो नम्मालवार की समाधि खुली। मधुर कवि ने पूछा कि जीव प्रकृतिगभ मे जन्म लेकर क्या खाकर कहाँ रहता है। उत्तर मिला

उसी को खाकर वही रहेगा जिसका तात्पय है कि जीव शरीरगत सुख दुखों का भोग करता हुआ शरीर मे ही पडा रहेगा। नम्मालवार क इस समाधान से मधुर कवि बहुत प्रभावित हुए और उनको ही अपना आराध्य समझने लगे। अपना शेष जीवन उन्होने नम्मालवार की सेवा म ही बिताया। प्रपन्न जनो के उज्जीवनाय नम्मालवार ने अनेक प्रबन्धो की रचना की। वे प्रपन्नजन कूटस्थ समझे जाते हैं।

नम्मालवार के प्रबन्ध इस प्रकार है—

१	तिरुविरुत्तम्	१०० पाशुर
२	तिरुवाशिरियम्	७ ,,
३	पेरियतिरुवदादि	७७ ,,
४	तिरुवायिमोलि	११०२ ,,

ये चारो प्रबन्ध क्रम से ऋग्, यजु साम, एव अथव वेदो के समान सम्मानित हैं। मन्दिरो मे वेदपाठ के साथ साथ इनका भी गान किया जाता है। नाथ मुनि ने शठकोप के वाङमय को भक्तामृत, विश्वजनानुमोदन, सवाथप्रद, सहस्रशाखोपनिषत्समागम तथा द्राविड वेदसागर विशेषण दिये है। तिरुवायिमोलि से एक उदाहरण लीजिए—

कूविक्कोल्लाय व दन्दो वेनपोल्लाक्करुमाणिक्कमे
आविक्कोर पन्नुकोम्बु निन्नला लरिकिन रिलेनन्नान्
मेविन्नोरुम् पिरमन् शिवनिन्दिरनाति केल्लाम्
नाविक्कमल मुर्तीकरगे युम्बरन्दतुवे।

ब्रह्मा इन्द्र आदि सब देवता आपन्निवारणाथ एकत्र हुए है। इन सबका आविर्भाव तुम्हारे नाभि कमल से हुआ है। तुम नित्य सूरियों के लिये परमप्राप्य और मेरे लिये परम भोग्य हो। हे स्वामिन्! तुम्हारे बिना मेरे लिये कोई अन्य आश्रय नही है। अत मुझे बुलाओ और अपना सान्निध्य दो।

मधुर कवि आलवार ने गुरुमहिमा वणन मे ११ पाशुरो का एक प्रबन्ध 'कण्णिनुण-शिरुत्ताम्बु लिखा है।

इस प्रकार आलवार भक्तो ने भगवद्भक्ति का जो प्रवाह प्रवाहित किया वह समूचे भारत को सरस बनाता हुआ अक्षय रूप मे बहता रहा। परन्तु उसे सिद्धान्त और आचार के कूलो मे बाँधकर प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीनाथमुनि, यामुनाचार्य श्री रामानुज, वेदान्तदेशिक आदि आचार्यो को है। आलवारो की कथाओ को लेकर अनन्ताचाय ने सस्कृत मे 'प्रपन्नामृत' नाम से एक ग्रन्थ लिखा। 'दिव्यसूरिचरितम्' भी इसी कोटि का ग्रन्थ है किन्तु इन दोनो का ही आधार है तमिल मे उपलब्ध 'गुरुपरम्पराप्रभाव' नामक ग्रन्थ जिसके रचयिता एक प्राचीन वैष्णव आचाय श्री पिन्बलियपेरुमालजीयर थे। तेलुगु मे नबूरि केशवचार्य की 'आचायसूक्तिमुक्तावली तथा वगल सीतारामचार्य की 'आचायरत्नहार' नामक कृतियाँ है।

मलयालम

मलयालम भाषा मे भी भागवतानुसारी साहित्य की पर्याप्त मात्रा है। अनेक कवियो ने श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर लीला-नायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओ को लेकर

रसपूर्ण रचनाएँ मलयालम भाषा में प्रस्तुत की हैं। मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियों मे प्रमुख है— निरणम' कवि। ये तीन कवि थे, जिनका काल सन् १३७५ और १४७५ ई० के बीच मे पडता है। इनमे सबसे बडे माधव पणिक्कर थे, जिन्होने मलयालम मे पहले पहल गीता का अनुवाद किया था। दूसरे शकर पणिक्कर जिन्होंने 'श्रीकृष्णविजय' और 'भारत-माला' नाम के दो महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे। तीसरे 'निरमण' कवि राम पणिक्कर थे, जिन्होने अन्य अनेक ग्रन्थों के साथ 'भागवत का दशम स्कन्ध' की भी रचना की। इस ग्रन्थ मे कवि ने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है।

'कृष्ण गाथा' के रचयिता चेरुश्शेरी नम्पूतिरि को मलयालम के भक्त-कवियो मे एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनकी 'कृष्ण गाथा' मलयालम के समस्त कृष्ण-भक्ति-साहित्य मे सर्वाधिक सुन्दर कृति मानी जाती है। यद्यपि यह श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के आधार पर ही लिखी गयी है फिर भी यह कवि की मौलिक रचना कही जा सकती है। इस कृति के कारण चेरुश्शेरी को 'महाकवि' होने का गौरव प्राप्त हुआ। चेरुश्शेरी ने 'कृष्ण गाथा' के अतिरिक्त 'भारतम् की कथा भी गाथा शैली से प्रस्तुत की है, जो 'चेरुश्शेरी भारतम्' के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। चेरुश्शेरी की 'कृष्ण गाथा' भक्त जनो के गले का हार है। इसमे कवि ने गीत शैली को अपनाया है। इसके पदो का गायन करते-करते भक्त आत्मविभोर हो जाते है। सरस कोमल-कान्त पदावली मे रचित यह काव्य मलयालम के गौरव-ग्रंथो मे से है।

चेरुश्शेरी की 'कृष्ण गाथा' मे ऐसे सैकडो पद है जिनमे वात्सल्य और मधुर भक्ति-भावो की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। माखन चोरी के प्रसग मे बालक कृष्ण की कुशलता का वर्णन करते हुए कवि कहते है—"एक दिन कान्ह के हाथ मे यशोदा ने कुछ मक्खन दे दिया। तुरन्त ही उसे खाकर वे कहने लगे– 'अरी माँ! मैंने जो मक्खन खाया, वह मेरे गले के अन्दर अटक गया है। बडे सकट मे हू। जब तक दूध न पीऊँ या और मक्खन न खाऊँ, वह गले के नीचे नही उतरेगा। कृष्ण के मुख-भाव को देखकर यशोदा ने समझा कि कान्ह का कहना ठीक ही होगा। यशोदा ने जब दूध पीने दिया तो कान्ह अपनी विजय पर मुस्कराने लगे।[१]

कृष्ण-वियोग मे तडपने वाली गोपियो की दशा का जो हृदय-विदारक वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है, वह भक्त-हृदय को अनायास ही द्रवित कर देता है। गोपिया कहती हैं— "हे कृष्ण! हमारे प्रति आपने जो कृपा की थी वह अब कहाँ गई। चातक जिस प्रकार घनश्याम की प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार हे घनश्याम! हम आपके दर्शन के लिए तडपती है। हम आपकी अनुपस्थिति मे जल से अलग होने पर छटपटाने वाली मछलियो की तरह बहुत ही व्याकुल हैं। अपने दर्शन सुख से आप हमे वचित क्यो रखते हैं और क्यों इस तरह सताते हैं ?[२] दास्य और सख्य भक्ति के तो अनेक पद चेरुश्शेरी ने रचे है।

१ नित्य माय्पण्ड्ड विजु गियवेण्णेये। सत्वर मिन्नु विजु गिनेरम्। मारिल तट विलङ्ङिन्चु पोयिते। अप्पोले नि न्ने जानिगने वचिन्चे। निप्पोलेन्नुलल् कुलुतु बल्लो। कृष्णगाथा स० राजराज वर्मा पृ० ७३

२ 'कृष्ण गाथा' स० राजराज वर्मा पृ० ८४

मलयालम भाषा के साहित्य मे महाकवि तुन्चत्तु रामानुजन एलुत्तच्छन[१] का नाम अमर हो गया है। इन्होने भारतीय सस्कृति के प्राणभूत एव भक्ति-भावना के महत्वपूर्ण ग्रन्थ रामायण, महाभारत और भागवत की अवतारणा मलयालम मे की है। इतने विपुल साहित्य के सृष्टा के रूप मे कीर्ति प्राप्त करने का सौभाग्य विरले ही कवि महारथियो को प्राप्त हुआ है। हिन्दी साहित्य मे सूर और तुलसी का जो स्थान है, उससे कही अधिक महत्वपूर्ण स्थान एलुत्तच्छन का मलयालम मे है। एलुत्तच्छन की महत्वपूर्ण कृतियो मे 'अध्यात्मरामायण', भारतम, 'श्रीमद्भागवतम्' 'चिन्ता-सतानम्', हरिनामकीतनम् 'ब्रह्माण्ड-पुराणम्' देवी महात्मयम् आदि मुख्य हैं।

एलुत्तच्छन रचित 'भागवतम्' श्रीमद्भागवत का कोरा अनुवाद नही है। पौराणिकता के शुष्क पजर मे सरस भावनाओ और मनोरस कल्पनाओ के प्राण फूककर उन्होने घटनाओ को जो सजीवता प्रदान की है, वह अत्यन्त स्तुत्य है। एलुच्छन ने अपनी रचना 'भारतम्' मे कृष्ण चरित्र का अलौकिक महत्व प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है तो 'भागवतम्' में उन्ही लीला नायक कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का रसपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है। केरल के भक्त सन्ध्या-बन्दना के समय 'भारतम्' और 'भागवतम्' के अशों का गायन करते हैं, जो इन रचनाओ के धार्मिक महत्व को स्पष्ट करता है।

नवधा भक्ति के अनेकानेक उदाहरण एलुतच्छन की 'भागवतम्' कृति मे उपलब्ध हैं। एलुतच्छन लिखते हैं कि भगवान् की लीलाए सुनते और सुनाते रहे तो इस ससार के प्रति हमारा जो ममत्व है वह टूट जायगा। फिर धीरे-धीरे मन शुद्ध होगा और आत्म ज्ञान की प्राप्त होगी।[२] एलुतच्छन की भक्ति भावना का परिचय देने के लिए दो एक उदाहरण पर्याप्त हैं। वात्सल्य और मधुर भावो की भक्ति की सुन्दर अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं मे हुई है। गोपियो की विरह-भावना का बडा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। गोपियाँ कृष्ण से प्रार्थना करती हैं—'हे, कृष्ण! तुम्हारे प्रेम को प्राप्त करने के लिए हम तडपती हैं। तुम्हारी प्रतीक्षा करके हम थक गई हैं। अब ऐसी दशा आ गई है कि तुम से अलग होकर एक क्षण के लिए रहना भी असभव ही हो गया है। हमें इस तरह तडपाना ही तुम्हे अच्छा लगता है? हे, प्राणनाथ! हमे बचाओ।[३]"

आत्म निवेदन करते हुए एलुत्तच्छन कहते हैं, 'आशा रूपी डाकिन के पजे मे पडने से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह जगत् सत्य है, हमारा जीवन जगत के बुलबुले के समान क्षण भगुर नही है स्थायी है। ससार के माया मोह मे फस जाने के कारण ही मैंने ऐसा समझ लिया था। हे कृष्ण! मैंने जाने अनजाने अनेक पाप किये हैं। आप की कृपा के बिना वे पाप नही मिट सकते। आप ही करुणा निधान हैं।[४]

१ इनके जीवनकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इनका जीवन काल सन् १५२६ और १७२६ ई० के बीच में दोलायमान है।

२ चिन्ता सन्तानम् ले० एलुत्तच्छन, पृ० ०२

३ गोपने रक्षिच्चु कोलक भवानेन्नु । कामाग्नि तन्निल दहिक्कुम जगले ।
कृकामदा रक्षिप्पतिनेतु तामस। प्राणान् नशिच्चु पोरुन्नतिन मुन्नमे ।
प्राणात्मका प्राणनाथा नमो नम ॥ श्रीमद्भागवतम्, दशम स्कन्ध एलुत्तच्छन, पृ० २१४

४ उट्ठोराशापिशाचितन वाधयाल चट्टुवारमेयियन बालमुव बीलवुम ।
नष्टमाकरणे निन् कृपा पूर्णमा दृष्टि पातत्ताल कृष्ण हरे जय भागवतम् कीर्तनम्, एलुत्तच्छन, पृ० १

केरली साहित्य के कृष्ण भक्त कवियो मे पून्तानम नपूतिरि का एक विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म सन् १५५५ ई० मे हुआ। ये जन्म से ही ईश्वर भक्त थे। धार्मिक कार्यों मे बडी निष्ठा से तत्पर रहेते थे। इनकी दृष्टि मे सारा जगत् 'कृष्णमय' है। ये केरल के "गुरुवायूर" नामक स्थान के प्रसिद्ध कृष्ण मन्दिर मे जाकर सदा कीतन-भजन मे डूबे रहते थे। श्रीमद्भागवत का परायण करना उनका दैनिक कार्य था। इनकी तीव्र भक्ति भावना को व्यक्त करने वाली अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हे। पून्तानम नपूतिरि के भक्ति रस स्निग्ध पदो का गायन आज भी केरल के भक्त बडे चाव से करते है और आत्म-विभोर हो जाते हैं। भक्त हृदय को अनायास ही आकृष्ट करने का सामथ्य पून्तानम् के पदो मे निहित है।

पून्तानम की प्रमुख रचनाए है, सन्तानगोपालम् पाना, श्रीकृष्णकर्णामृतम्, ज्ञानप्पाना, घनसघ स्तोत्रम, पाथ सारथी स्तवम्, आन दामृतम, नूट्टट्ट्ु हरि आनन्दवृत्तम् और कृष्णलीला।

श्रीकृष्ण कर्णामृत मे भागवत के दसम स्कन्ध के समस्त प्रसगो का वणन हे। कवि ने विशेष रूप से लीला नायक कृष्ण की बाल लीलाओ मे ही अधिक तल्लीनता दिखाई है। यह ग्र थ इतना प्रसिद्ध और लोक प्रिय है कि इसके अधिकाश पदो को भक्त लोग बडे सबेरे उठकर श्रद्धा और भक्ति क साथ गाते है। यह भक्ति-रस की उच्च कोटि की कृति है। श्री बिल्व मगल नामक एक आचाय ने भी 'श्रीकृष्ण कर्णामृतम' लिखा है। यह भी भक्ति-रस प्रधान एक उत्तम कृति है। इसमे कृष्ण की विविध लीलाओ के साथ रास-लीला का विस्तार से वणन है। पून्तानम ने अपनी कृति 'कृष्ण कर्णामृतम' मे श्रीकृष्ण की सभी लीलाओ का वणन प्रस्तुत किया है।

"ज्ञानप्पाना" पाना काव्य-पद्धति मे लिखी गई कृति है। पून्तानम ही इस पद्धति के जन्मदाता कहे जाते हे। इस पद्धति का अनुसरण अन्य मलयालम कवियो ने भी किया है। किन्तु अधिक सफलता पून्तानम को ही मिली है। इनमे कवि के दास्य भक्ति-भाव तथा आत्म निवेदन के पद हैं। शैली सरल और प्रसाद गुण से युक्त है। 'घनसघ-स्तोत्रम' एक कीतन काव्य है "पाथसारथीस्तवम्" एक खण्डकाव्य है। "आन दनृत्तम' नामक काव्य की रचना के विषय मे यह किवदन्ती प्रचलित है कि एक दिन कवि ने भगवान् कृष्ण के चरणोदक से ही अपने मित्रो को प्रीति-भोज देकर सन्तुष्ट करने का निश्चय किया। समस्त आमन्त्रित मित्र पून्तानम की इस मूखता पर हँसने लगे और पूछने लगे, 'अरे पून्तानम! कृष्ण कहाँ हैं? अभी तक आये नही। देर हो रही है। उन्हे बुला लाओ।' इतने मे श्रीकृष्ण के पाचजन्य शख की ध्वनि सुनाई दने लगी। मित्र लोग तो कृष्ण के दशन कर न सके किन्तु भक्त प्रवर पून्तानम ने कृष्ण के दशन किये और उनकी स्तुति की। कृष्ण के दशन करने से उन्हे जो आनन्दानुभूति हुई उसको लक्ष्य करके उन्होने "आनन्दनृत्तम" की रचना की। श्री पून्तानम की एक दूसरी रचना 'कृष्णलीला' के नाम से है। यह अकारादि अक्षरो से प्रत्येक पक्ति को आरम्भ करके लिखी गई है। इसमे पू तानम् की काव्य कुशलता का परिचय मिलता है।

पून्तानम की भक्ति भावना का परिचय देने के लिए हम उनके दो एक पद का साराश देते हैं। उनके पदो मे नवधा भक्ति की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। एक पद मे पून्तानम कहते हैं—हे भगवान आपके पैर वृन्दावन के लिए भूषण, रिपु समूह को भयदाता, दूध-मक्खन आदि को चोरी करने मे सहायक, क्रूर आत्माओं के लिए घातक, बड़े पापों का नाश करन वाले,

वनिताओ के अन्नदाता तथा मजुल ध्वनि से युक्त हैं। आपके ऐसे चरण मेरी मति का दोष दूर करे[1]" कृष्ण की मोहिनी मूर्ति पर मुग्ध होकर वात्सल्य भक्ति-भाव से पून्तानम कहते हैं—कृष्ण नन्हे पैरो से नाचते-कूदते हैं। कमरबन्द की सोने की घटिकाए आपस मे टनाटन बजती रहती है। सिर पर उन्होने मोर मुकुट पहना है। वह तोतली बोली बोलते हैं। उनका शरीर सुन्दर है। सखाओं के साथ वे वशी बजाते है। यह रूप सवदा मेरे सामने प्रत्यक्ष हो[2] कृष्ण की बाल सुलभ-चेष्टाओं का सूक्ष्म वरणन प्रस्तुत करने वाले अनेक पद पून्तानम ने लिखे हैं। उनके माधुर्य भक्ति भाव के भी सैकडो पद मिलते है। मलयालम के कृष्ण-भक्त कवियों मे से एक गौरव पूण स्थान पून्तानम को प्राप्त है।

कुचन नप्यार केरल के कृष्ण भक्ति-साहित्य के एक अमूल्य रत्न हैं। ये एक श्रेष्ठ कवि, समाज-सुधारक और कलाकार थे। इनका जन्म सन् १७०५ ई० मे हुआ। केरल की कलाओं की श्री वृद्धि करने मे नप्यार का बडा हाथ रहा। नप्यार मलयालम और सस्कृत के प्रकाड पडित थे। भाषा पर उनका अधिकार सराहनीय है। इनकी काव्य प्रतिभा से इनकी रचनाएँ मलयालम साहित्य मे स्थायी महत्व की बन गयी हैं। इन्होने विभिन्न काव्य शैलियो को अपनाकर कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। इनकी रचनाओ मे 'श्री कृष्ण चरितम्' 'मणिप्रवालम्' 'भगवद्दूत', 'भागवतम् इरुपुत्तिनालुविरुत्तम्' 'पतिनालुवृत्तम्', शीलावनि-नल-चरित्र, 'शिव पुराण', 'विष्णु गीता' आदि प्रमुख हैं। इनमे से कुछ श्रीकृष्ण सम्बन्धी मुख्य रचनाओं का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाता है —

'श्री कृष्ण चरितम् मणिप्रवालम्' मलयालम के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थों मे से है। यह नप्यार की प्रारम्भिक रचना है। इसमे बारह सग है। श्रीकृष्ण के जन्म का वणन प्रथम सर्ग मे किया गया है। द्वितीय सग मे पूतनामोक्ष की कथा हास्य रस प्रधान शली मे दी गई है। नलकूवर आदि की कथा तीसरे सग मे है। इसमे कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओ का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। वन-वणन और कालिय नाग के अहकार का दमन आदि चौथे सग मे वर्णित हैं। पचम् सग मे रास लीला का विस्तृत वणन है। कम की कथा रुक्मणी परिणय, जाबवान के साथ युद्ध, उसकी पुत्री को पत्नी के रूप मे स्वीकार करना बाणासुर युद्ध, कौरव-पाडवो का युद्ध और सन्तान गोपाल आदि की कथाए शेष सर्गो मे दी गयी हैं।

१ आपाटिक्कोरु भूषण रिपुकुलानामिन्नहो भीषणम्।
पेपाल वेरणा नयिक्कु मोषणम् मतिकूरात्मना पेषणम्॥
वन् पापत्तिनु शोषण वनितामाक्कानन्द सयोषणम्।
निपादम मति दूषण हरत मे मजीर सघोषणम्।
पूतानम की कृतिया, म० मूस्सत पृ० ९४

२ उरिणक्काल कोडु नृत्तगलुमर निरये क्किकिणी वप्पो नरज्जा।
लुरिणक्कै कोडु तालगलुमणि मुटियिल पिठवु कोचलवाप्पु॥
उरिण ककरणाटे पू पै कुलल विलियु अट्टत्तुल्ल चिलूपिल्लरुमे।
करिणल क्कानुन्न पोले मनतालिरिलुदिक्केण मोकुम पोलेल्लाम॥
वही पृ० १०

'भगवद्दूत' नम्प्यार की कृतियों मे सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह भी कवि के बाल्यकाल की रचना है। फिर भी सरसता या गाभीर्य की इसमे कमी नही है। यह काव्य चौदह भि न वृत्तो मे लिखा गया है। इसमे कौरव और पाडवो के बीच शाति स्थापित करने के लिए किये गये श्रीकृष्ण के प्रयत्नो का वर्णन है। कृष्ण शान्ति-दूत के रूप मे वर्णित है। श्रीकृष्ण के उपदेशो का भी यथा स्थान समावेश हुआ है। यद्यपि इस काव्य की रचना श्री भट्टनिरि के दूत-वाक्य तथा महाभारत के आधार पर हुई है। फिर भी इसमे नम्प्यार का व्यक्तित्व तथा उनकी स्वतन्त्र चि तन-धारा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

'भागवतम् इरुपतिनालुवृत्तम्' नामक कृति मे नम्प्यार ने श्रीमद्भागवत की कथावस्तु चौबीस सर्गो और विभिन्न वृत्तो मे प्रस्तुत की है। प्रथम सग मे प्राथना तथा आत्मा-निवेदन के पद हैं। द्वितीय सग मे श्री कृष्णावतार के समय का सुन्दर वर्णन है। तीसरे सग में पूतना-वध, चौथे मे तृणावत का आगमन, पाचवे मे वृकासुर का वध, छठे मे सर्पासुर का निधन, सातवें मे कालि नाग का दपहरण, आठवे मे गोपियो को श्रीकृष्ण के उपदेश नवे मे रास लीला वर्णन, दशम सग मे कस का अपशकुनो को देखना तथा एकादश मे गुरुदक्षिणा आदि का वर्णन है। द्वादश सग मे रुक्मिणी का प्रेम निवेदन है। रुक्मिणी का सन्देश कृष्ण को पहुँचाने वाला दूत इस प्रकार रुक्मिणी की दशा का वर्णन करता है— 'हे भगवान्। वे आप का नाम हमेशा रटती रहती है। चन्दनादि शीतोपचार से भी उनको सताप होता है। मन्द वायु के स्पश से उनको मूर्छा आ जाती है। चन्द भी उन पर अग्नि की वर्षा करता है। कोयल की मजुल वाणी सुनते ही मानो उनके प्राण पखेरू शरीर को छोडकर उड जाने के लिए छटपटाते हैं। फुलवारी मे भी वे मूर्छित हो जाती हैं।[1] त्रयोदश सर्ग मे रुक्मिणी का परिणय है। चौदहवें सर्ग मे सत्राजित की पुत्री का पाणिग्रहण और पन्द्रहवे सग मे परिजात की कथा है। सत्रहवे सग में बाणासुर की नगरी पर श्रीकृष्ण तथा उनकी सेना का आक्रमण अठारहवे में असुर विविद की धमकी, उन्नीसवे मे सुदशन चक्र का वर्णन, बीसवे मे जरासन्ध वध और इक्कीसवें सर्ग मे दुर्योधन की स्थल जल भ्राति का वर्णन है। बाईसवें मे सुदामा चरित्र है। तेईसवे में श्री कृष्ण का अपनी माता देवकी से मिलना है और चौबीसवे सर्ग मे अर्जुन का अग्नि प्रवेश और श्री कृष्ण का वहाँ आकर उसे रोकने की कथाए है। इनके अतिरिक्त कई अन्य सरस प्रसगो का भी वर्णन कवि ने इस ग्रन्थ मे किया है।

भक्त प्रवर नम्प्यार को केरल-राजा मातण्ड वर्मा का आश्रम भी प्राप्त था। उक्त राजा ने नम्प्यार का बडा आदर किया और राज्याश्रय में रहकर नम्प्यार ने बहुत अच्छा रगनाएँ प्रस्तुत की जो मलयालम साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। नम्प्यार भूलत भक्त थे। उनकी भक्ति रस-स्निग्ध कविता भक्तो के हृदय की प्यास बुझाने वाली है। नवधा भक्ति के अनेक उदाहरण उनकी रचनाओ मे मिल जाते हैं। एक पद मे नम्प्यार दीनता दिखाते हुए बन्दना करते हे।—"हे नन्दलाल। सुन्दर मुरारि, मन्दर पवत को उठाने वाले केशी के घातक तथा कैवल्यमूर्ति। मैं आपके पैरों पडता हूँ। आप अच्युत, सच्चिदानन्दमय, निश्चल,

१ भागवतम् इरुपत्तिनालु वृत्तम—बारहवां सर्ग पद ५६ ५६

निरजन, कारण पुरुष, कस विनाशक, चरण सेवित, और दयालु है। मैं आप की बन्दना करता हूँ।[1]

मलयालम भाषा के अन्य अनेक कवियो ने भी भागवत कथा को लेकर स्वतन्त्ररूप से रचनाएँ प्रस्तुत की है। इस प्रकार मलयालम के मध्य युगीन साहित्य मे भागवत निरन्तर प्रेरणा स्रोत रहा है।

कन्नड

यो तो कन्नड-प्रदेश प्राय शैव एव जैन साहित्य के लिए प्रसिद्ध है, फिर भी कन्नड भाषा मे कृष्ण-भक्ति साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। कन्नड के भागवत-साहित्य पर मध्वाचाय के द्वैत सम्प्रदाय का गहरा प्रभाव पडा हैं। मध्व-मतावलम्बी भक्त कवि 'हरिदास' कहलाये। ईसा की १३ वी शती से १८ वी शताब्दी तक कर्नाटक मे हरिदासो की परम्परा चली और कहा जाता है कि इस काल मे लगभग दो सौ हरिदास भक्त हुए हैं, जिनमे श्री नरहरितीथ, श्री जयतीर्थ, श्री पादराय, श्री व्यासराय, श्री पुरन्दरदास, श्री कनकदास, श्रीवादिराज, श्री गोपालदास, प्रसन्न वेकटदास, श्री जगन्नाथदास आदि प्रमुख माने जाते हैं। इन कवियों ने न्यूनाधिक रूप मे श्रीमद्भागवत का आश्रय लेकर कन्नड भाषा मे उच्चकोटि की भक्ति-रस-स्निग्ध रचनाएँ की हैं। इन हरिदास भक्तो की एक बडी विशेषता यह है कि इन्होंने सकीतन-पद्धति मे भक्ति-भावना पूर्ण गेय पद रचे थे। प्राय सभी हरिदास सगीत-कला में निपुण थे तथा गीन-पद्धति का उन्हे अच्छा ज्ञान था। इनके गेय पदों को गा-गाकर भक्तजन आत्म विभोर हो जाते थे। पुरन्दरदास तो सगीत के आचार्य थे और उन्ही के द्वारा दक्षिण की सगीत कला को एक नयी दिशा प्राप्त हुई। कहा जाता है कि तेलुगु के भक्तप्रवर त्यागराजु स्वामी ने पुरन्दरदास से ही सगीत शिक्षा प्राप्त की थी। पुरन्दरदास के भजनों के कारण ही दाक्षिणात्य सगीत आगे चलकर 'कर्नाटक सगीत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

श्री पादराय का हरिदासों मे एक विशिष्ट स्थान है। इनका जीवन-काल पन्द्रहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पडता है। प्रारम्भ मे इनका नाम लक्ष्मीनारायण था। श्री पादराय ने कन्नड मे 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीत' 'गोपी गीत' आदि रचनाएँ प्रस्तुत की। इन्होने अपने गीतो के गायन का प्रबन्ध भी मन्दिरो मे कराया था। बगलौर से प्रकाशित हरिकीर्तन तरगिणी के छठे भाग मे श्री पादराय के लगभग साठ पद दिये गए हैं। इनमें विनय, सख्य, वात्सल्य तथा दास्य भाव के अतिरिक्त गोपियो की विरह-वेदना का भी मार्मिक चित्रण हुआ है। 'भ्रमरगीत' मे गोपियों की उक्तियाँ बडी रोचक और सरस हैं। श्री पादराय ने 'रुक्मिणी सत्यभामा विलास' नामक एक लघु गीत-काव्य भी रचा। इसमे कृष्ण को प्राप्त करने के लिए रुक्मिणी और सत्यभामा दोनो के बीच मे होने वाली स्पर्धा का परिचय दिया गया है। कृष्ण की बाल-लीलाओं और गोपियो की विरह-भावना का वर्णन करने वाले श्री पादराय के पद बहुत ही

१ नन्द नन्दन नयनानन्द सुन्दरानन वन्दे वन्दे
नन्दित लोक मुकुन्द दुरान्तक मन्दर पर्व धारक गोरे
कारण पुरुष कस विनाशन चारण सेवित चारु, दन्यालो
वारण पालक वारिज लोचन दारुण वैरि विदारण वन्दे
—केरल भाषा साहित्य चरित्र-भाग ३
स० आर० नारायण पणिक्कर पृ० २

सुन्दर बन पडे है। बाल-छवि तथा बाल-सुलभ-चेष्टाओ के वणन मे कवि की त मय भावना का परिचय मिलता है। कृष्ण को पालने मे लिटाकर यशोदा द्वारा लोरी सुनाने का वणन करते हुए स्वय कवि कहते है — हे रगा ! सो जाओ, रण भीम ! सो जाओ, भक्तो के कष्ट दूर करने वाले ! सा जाओ। भूमि को सोने का पालना बनाकर, सोम, सूय को कलश, वेदो को जजीर बनाकर तथा महा आकास की खूटी से पालने को लटकाकर ब्रह्मा, गरुड शेष, सरस्वती, सुर, किन्नर-किपुरुष, नारद आदि ने तुम्हारी स्तुति की है। तुम वसुदेव पुत्र मुरारि हो, तुमने पूतना के प्राण हर लिये है। तुम दैत्यो के बैरी हो, असाधारण साहसी हो और तुमने शिशु बनकर यशोदा को आनन्द प्रदान किया है। तुमने जगत् अपने उदर मे समा लिया है। जगत् का निर्माण किया है। तुम निगम अगोचर और नित्यानन्दमय हो। तुम्हे शिशु समझकर हम कैसे भुला सकते है ? तमासुर का नाश करके तुम वेदो को लौटा लाए, देवताओ के हित तुमने मन्दर पवत को उठा लिया। क्षमा करने के लिए जाकर तुमने हिरण्य को मार डाला। घर-घर जाकर तुमने दूध-दही समाप्त कर दिया है। भक्तवत्सल श्री पद्मनाभ, सो जाओ।"[1]

श्री पादराय के अनेक पदो मे माधुय भक्ति की सु दर अभिव्यक्ति हुई है। उनके एक गीत मे कृष्ण का मुरली बजाते हुए आना और गोपिकाओ के रति-भाव से विकल होने, कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए गोपियो के अपने शरीर को नाना प्रकार की सुगधित वस्तुओ से अलकृत तथा आकषक बनाने आदि का वणन मिलता है।[2] परन्तु अन्त मे यह गीत भी स्तुति के रूप मे परिवर्तित हो जाता है। श्री पादराय ने अपनी रचनाओ मे चीर-हरण-लीला, रास-लीला, जल क्रीडा, वसत लीला, ब्रज मे उद्धव के आगमन आदि प्रसगो का भी वणन किया है। उन्होने 'भ्रमरगीत' के नाम से भी कुछ पद रचे है। इनमे विरह-वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। एक पद मे एक गोपी कहती है—सखी री ! मुरली बजाकर और हमारे मन मे विश्वास पैदा करके कृष्ण चले गये, हम विकल होकर तडप रही हैं। सखि री ! हमे घर का काम काज जरा भी नही रुचता। मन किसी चीज मे रमता नही है। एक पग भी आगे बढ नही पाती। पैरो ने जबाब दे दिया है। प्रियतम के साथ ही हमारी वाणी भी चली गयी है। हम ऐसी हो गयी है कि मन मे एक बात तक नही उठती। प्रियतम के दशन किये बिना रहा नही जाता। कल से नीद भी नही लगती। उस नटवर से मिलकर इस नारी जन्म की क्या दुदशा हो गयी है। हमारा विरह-ताप बढता जा रहा है।[3]

व्यासराय

हरिदासों के भक्ति-सप्रदाय को लोक-व्यापी बनाने का श्रेय श्री व्यासराय को है। है। श्री व्यासराय का जन्म सन् १४४७ ई० मे हुआ था। हरिदासों मे श्रेष्ठ माने जाने वाले श्री पुरन्दरदास और कनकदास इन्ही के शिष्य थे। व्यासराय सस्कृत के प्रकाण्ड पडित थे। इनके रचित ग्रन्थो मे 'न्यायामृत' 'तर्क-ताण्डव' और 'चन्द्रिके' प्रमुख हैं। इन सस्कृत ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होने कन्नड मे भक्ति-रस-प्रधान अनेक पद रचे हैं जिनमे एकातिक भक्ति,

१ श्री हरिदास कीर्तन तरगिणी, भाग ६ पृ० ९२, ९३
२ वही पृ० १५, १७
३ हरि भक्ति सुधे, पृ० १३०

नवधा भक्ति, पवित्र जीवन, कीर्तन, नाम स्मरण, कृष्ण के विविध रूपों का वर्णन, आत्म-निवेदन, हरि-महिमा आदि अनेक विषयों की सुन्दर और भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

श्री व्यासराय ने अपने एक गीत मे कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मुरली बजाने वाले कृष्ण के प्रति गोपियो के प्रेम भाव का परिचय इस प्रकार दिया है—हे सखी ! चलो उस वृन्दावन मे। हम गोविन्द की लीला का सौन्दर्य देखे, जिसमे मुनिगण, मृग, पक्षी पेडो के रूप मे हैं, सनकादि गायो के रूप मे है। वहाँ की गाएँ मुरली की रस माधुरी का आस्वादन करके उन्मत्त है और उनके मन मे आनन्द रूपी सागर उमड रहा है। कृष्ण के चरणो की नख-छवि रूपी चाँदनी से चन्द्रकांत-शिला पानी बनकर बहने लगी और यमुना से इस तरह जाकर मिल रही है मानो एक दूसरा ही संगम हो। श्रीपति के मन्दहास रूपी चन्द्रमा और कौस्तुभ मणि रूपी बाल-रवि को देखकर चक्रवाक इस भ्रम मे पडे है कि अब दिन है या रात्रि। कृष्ण के वक्ष पर शोभित वनमाला रूपी इन्द्र-धनुष, पीताम्बर रूपी विद्युत्, वेणु-नाद रूपी घन-गर्जन और श्याम वर्ण के कृष्ण रूपी मेघ को देखकर चातक इसलिए नाचने लगा है कि उसे वर्षा ऋतु के मेघो का भ्रम हो रहा है"।[१] श्री व्यासराय के एक दूसरे पद मे एक गोपी दूसरी गोपिकाओं को संबोधित करके कहती है"—मैं कसम खाकर कहती हूँ कि मुझमे यह सहा नही जाता। सुनो सखी ! उस मुरली का भाग्य कितना महान् है। यह मुरली कृष्ण के अधरो का रस-पान स्वयं कर रही है और कृष्ण की अत्यन्त प्रिय सखियो को भी उनसे वंचित कर रही है।[२]"

"उद्धव-गोपी-संवाद" प्रसंग मे व्यासराय के एक पद का भाव इस प्रकार है— हे उद्धव ! इस वृन्दावन और गोकुल मे अब रखा ही क्या है ? अब स्नेह कहाँ रहा ? प्रियतम तो उस कुब्जा से जाकर मिल गये हैं। उनका कटाक्ष अब हमे कैसे मिलेगा ? तन मे ताप की वृद्धि हो रही है। हमारी बेबसी बढ रही है। हमारे वल्लभ को हमसे अलग करके अक्रूर ले गए है। हे उद्धव ! मल्लो का मर्दन करके कंस का वध करने वाले हमारे वल्लभ को दिखाओ। आदर से अधरामृत पिलाकर आनन्द देने वाले और मन के मर्म को समझकर मधुर वचनो से तंग करने वाले कृष्ण अब हमको स्वप्न-से लगते है। कपट-नाटक करने वाले कृष्ण को करुणा-सागर कहते है और जो उनका स्मरण करते है वे उनका पालन करते है। तब उन्होने हमे कैसे भुला दिया। जल्दी जाओ, और हमारा यह रोना उन्हे सुनाओ और उन्हे यहाँ बुला लाओ। जिन्होने उनका विश्वास किया है उनको इस प्रकार भुला देना क्या उचित है ?[३]

पुरन्दरदास

श्री पुरन्दरदास हरिदासो मे सर्वश्रेष्ठ ही नही बल्कि कर्नाटक के सबसे बडे संत और गायक भी थे। पुरन्दरदास का जन्म पूना के निकट पुरन्दर गढ नामक गाँव मे हुआ था। उनका जीवन-काल सोलहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे पडता है। हरिदासो मे यह प्रसिद्ध है कि पुरन्दर ने 'पुरन्दर विट्ठल' नामक उपनाम से चार लाख पचहत्तर हजार पद बनाए थे।

१ हरिदास कीर्तन तरंगिणी—भाग ६ पृ० १४२–१४४
२ वही भाग ६ पृ० १९९
३ ,, ६ पृ० १८१–१८२

किन्तु उनके उपलब्ध पदो की सरया पाँच हजार के लगभग ही है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि पुरन्दरदास ने 'द्रौपदी वस्त्रापहरण' 'सुदामा चरित्र' और 'परतत्त्वसार' नामक और तीन कृतिया भी रची थी। किन्तु ये कृतिया अब तक प्रकाश मे नही आयी है।

कन्नड के भक्ति साहित्य मे श्री पुरन्दरदास का स्थान सर्वोच्च है। इन्होने कोई महाकाव्य ता नही रचा, लेकिन इनके भक्तिपरक पदो ने कन्नड भाषी जनता पर जितना गहरा प्रभाव डाला है, उतना किसी अ य बडे ग्रन्थ ने नही। कन्नड साहित्यकार श्री मास्ति वेकटेश अय्यगार ने पुरन्दर के पदो के विषय मे ठीक ही लिखा है—

"They (the songs of Purandardas) indicate a mind familiar with the world and its ways and inclined as much to see without as within Wide knowledge, deep experience and a great love of humanity are visible in them Their range is great"[1]

पुरन्दर के समस्त पद भक्ति-भावना से ओतप्रोत है जिनमे नवधा भक्ति की भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। भागवत कथा के विभिन्न प्रसगो का विस्तृत वर्णन उन्होने प्रस्तुत किया है। क नड कवियो मे वात्सल्य-वर्णन मे पुरन्दर अद्वितीय हैं। कृष्ण को पालने मे लिटाकर सुलाने के प्रसग मे स्वय कवि यशोदा के स्थान पर कहते है—"श्री कृष्ण परमानन्द! सो जाओ। गोपी के पुत्र मुकु द! सो जाओ। क्षीर सागर पर सोने वाले! वटपत्र पर शयन करने वाले! हे बालक! तुम्हे गाने सुनाकर रत्न जटित सुन्दर पालने मे, चमकीले मजाठे पर सुलाऊँगा, रोओ नही मेरे लाल! तुम्हे गा गाकर सुलाऊँगा। हे गुणनिधि! यदि मै तुम्हे गोद मे उठा लू तो घर का काम कौन करेगा? शीघ्र ही सो जाओ। प्रभु पाडुरग! पुरन्दर विट्ठल! सो जाओ।"

कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओ का पुरन्दर ने सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। पुरन्दरदास का कृष्ण शुरू-शुरू मे होए का नाम सुनकर भयभीत हो जाता है, और यशोदा से कहता है—"होए को मत बुलाओ, मै चुप रहूँगा, खाना खाऊँगा। पीछे से जाकर गोप बालिकाओ की आँखे बन्द नही करूँगा, भैया को गाली नही दूँगा। लडको को नही पीटूगा। मक्खन, मिट्टी नही खाऊँगा। बछडो को नही खोलूगा, भगवान् की तरह एक ही जगह बैठा रहूँगा।" कृष्ण की इन बातो को सुनकर यशोदा मुस्कराती है और जगत् के प्रभु पुरन्दर विट्ठल को बडे प्रेम से छाती से लगा लेती हैं।[२] आगे चलकर जब कृष्ण को होए की बात पर सन्देह होता है तब माता से कहता है "दिखाओ तो सही हौआ कहाँ है?[३] झूठमूठ मुझे मत डराओ। मा! चौदह लोको को अपने उदर मे समाकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मैंने अपने मुँह मे धारण किया है। भयकर हवा का रूप धारण करके आने वाले राक्षस को मार डाला है, पर आज तक किसी होए को नही देखा। कालिया के फणो पर चढकर मैंने नाच किया और नागपत्नियों का उद्धार किया। तब भी मैंने हौआ नही देखा। अक्रूर को विश्व रूप दिखाया,

1 Popular Culture in Karnatak—Masti Venkatesh Iyngar pp 74

२ श्री हरिदास कीतन तरगिणी भाग १ पृ० ७५

३ श्री हरिदास कीतन तरगिणी भाग १ पृ० ५३

रथ पर बैठकर मथुरा गया, पर मा, मैंने कही भी हौग्रा नही देखा। पुरन्दर विट्ठल बाल गोपाल को इस तरह मत डराओ[1] ।"

पुरंदरदास के पदो मे माधुय भक्ति की भी भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। उन्होने आध्यात्मिक श्रृङ्गार के सयोग पक्ष का चित्रण महात्म्य-भाव की पुष्टि मे किया है। उनके एक पद से यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक गोपिका कृष्ण से कहती है—ह कृष्ण, तुम्हारे पैरो पर पडती हूँ कुछ आवाज न करो। जो लोग सो रहे है, वे जाग पडेगे और तुम्हारे यहाँ आने की खबर लग जायगी। हाथ पकडकर खीचो नही, चूडियाँ बज उठेगी। छाती पर से अचल न उठाओ, कही गले के गहनो से आवाज न निकलने लगे। इधर उधर की बात क्यो करते हो? यह तो कुछ गाना गाने का समय नही है। यह तो पुरंदर विट्ठल की स्तुति करके पथ मे मिल जाने का समय है।[2] दास्य भाव की भक्ति की अभिव्यजना करने वाले पुरन्दर के एक पद का भाव इस प्रकार है—हे कृष्ण! मुझे अपना दास बनालो। मेरी दुष्ट बुद्धि को दूर करो। अपना करुणा रूपी कवच मेरे प्राणो पर पहना दो, अपने चरणो की सेवा का कार्य मुझे सौप दो और अभय रूपी फूल से मेरे सिर को अलकृत करो। दृढ भक्ति की याचना करते हुए मैं बार बार तुम्हारे चरण पर पडता हूँ। आखो की कोर से निहार कर मुझे छोड न दो। मेरे चित्त का निमल करके मुझे इस योग्य बना दो कि मै तुम्हारा ही ध्यान कर सकूं। 'करुणा-निधान' तुम्हारी उपाधि है। मेरे भी सकट दूर करो।[3]

कनकदास

हरिदास भक्तो की परपरा मे पुरन्दर के पश्चात् कनकदास को ही गौरवपूर्ण स्थान दिया जाता है। कनकदास की तीव्र भक्ति-भावना की ओर सकेत करने वाली अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित है। ये अपने समय के सर्वाधिक प्रसिद्ध भक्त और कवि थे। इन्होने सहस्रो पद लिखे हैं। इन पदों के अतिरिक्त पाच काव्य-कृतिया भी रची हैं—वे हैं, नरसिंह-स्तोत्र, मोहन तरगिणी, रामधान्य मत्र, हरि-भक्ति सार और नल चरित्रे। नल-चरित्र एक साधारण खण्डकाव्य है। मोहन तरगिणी एक काफी बडा काव्य है जिसमे महाकाव्य के सभी लक्षण विद्यमान हैं। इसमे भारत और भागवत मे वर्णित कामदहन, उषा अनिरुद्ध-प्रणय हरिहर की समानता को प्रतिपादित करने वाले कृष्ण-वाणासुर युद्ध आदि घटनाओं-का उल्लेख करते हुए कृष्ण कथा का विस्तार किया गया है।

कनकदास के पदो मे नवधा भक्ति की भावपूर्ण अभिव्यजना हुई है। अनेक पद वात्सल्य और माधुय भाव से ओत-प्रोत हैं। कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओ का वणन करने मे कवि का मन अधिक रमा है। कृष्ण को पाकर यशोदा कितने आनन्द का अनुभव कर रही है, इसका परिचय कनकदास एक पद मे देते हैं, "कृष्ण के मुँह को देखकर वह हँस रही है, पुत्र समझकर खेल रही है। जगत् के उद्धारक का मुह अपने मुँह पर रखकर खिला रही है। नील वर्ण का परिधान पहने बालक को बुलाकर दूध पिलाने का कैसा पुण्य यशोदा ने पाया है। रग बिरगे

१ श्री हरिदास कीर्तन तरगिणी भाग १ पृ० ६४

२ हरि भक्ति सुधे पृ० ३५-३६

३ वही पृ० १०६

हार, सोने की करधनी मे लटकी चमकीली स्वर्ण घंटिया जब झन झन करती हैं तब यशोदा कृष्ण को नचा नचाकर हसती है। सारी पृथ्वी को दो कदमो मे नापने वाले देव की उँगली पकडकर 'धीरे चलो, धीरे चलो' कहने का यशोदा ने कैसा पुण्य पाया है।[1] एक दूसरे पद मे गोपियों का यशोदा से कृष्ण की शिकायत करने का वर्णन कवि इस प्रकार करते है—सुनो री, यशोदा ! तुम्हारा लडका बडा चोर है। जब मै दूध दुह रही थी तब इसने छीके पर रखा हुआ सारा दूध उडेल दिया। इस शिकायत पर कृष्ण कहते है—नही अम्मा ! नाहक यह मेरी शिकायत कर रही है, मै कोई बडा पहलवान हूँ कि छीके पर कूद सकूँ। तब दूसरी गोपी कहती है—"तुम्हारे लडके ने अन्दर रखा हुआ सारा मक्खन खिडकी से उठाकर खा लिया है। मेरे बच्चों के लिए भी कुछ नही बचा है। उसका उत्तर कृष्ण यो देते है—"मेरा मुँह मानो बडा तालाब है कि मै घडे का सारा मक्खन खा डालू। इसने जो मक्खन छिपा रखा था वह इसके बच्चो ने उडा लिया है'[2] इस प्रकार बाल लीलाओ का बडा ही विस्तृत वर्णन कनकदास ने प्रस्तुत किया है।

श्री वादिराज

श्री वादिराज श्री व्यासराय के शिष्य थे। इनका जन्म सन् १४८० ई० के आस पास दक्षिण कन्नड जिले के हूविनकेरे नामक गाँव मे हुआ था। ये गुरु व्यासराय के साथ बहुत समय रहे। माध्व सम्प्रदाय मे मध्वाचार्य के पश्चात् श्री वादिराज का ही स्थान है। श्री वादिराज कन्नड और सस्कृत दोनों भाषाओ के बडे विद्वान् थे। दोनो भाषाओ के ही वे श्रेष्ठ कवि थे। कन्नड मे रचित इनके सहस्रो पद मिलते है। सस्कृत मे रचित इनकी प्रमुख कृतिया इस प्रकार है—'तत्व प्रकाशिका', तात्पर्य-निर्णय टीका, तन्त्र-सार टीका भगवद्गीता टिप्पणी, महाभारत टिप्पणी, रुक्मिणी-विजय, मुक्ति-मल्लिका, एकादशी-निर्णय, सकल्प पद्धति तथा श्रीकृष्ण स्तुति। इनकी कन्नड रचनाओ मे कन्नड तात्पर्य-निर्णय, वैकुण्ठ वर्णन, गुण्ड क्रिया लक्ष्मी शोभन, भ्रमरगीत आदि मुख्य हैं। भागवत कथा के कुछ विशिष्ट प्रसगो का भी श्री वादिराज ने अपनी रचनाओ मे वर्णन किया है। उनके भक्तिपरक पदो मे उच्च कोटि की भक्ति-भावना की अनुभूति होती है, साथ ही साथ सरस काव्य के भी दर्शन होते है। बाल कृष्ण की लीलाओ का वर्णन करने मे कवि-हृदय प्रफुल्लित हो उठा है। कृष्ण जैसे पुत्र को पाकर यशोदा किन किन सुखो को लूट रही है, इसका वर्णन श्री वादिराज अपने एक पद मे इस प्रकार करते है—

'यशोदा ने कैसा भाग्य पाया है ! श्रीनिधि कृष्ण को हाथ मे उठाकर चूमती है, गगा के जनक को घडे मे नहलाती है, नित्य मगल को अलकृत करती है, जिसने भूधर को उठाया है उसे पालने मे सुलाती है, जो अगोचर है उसे उठाकर लाड प्यार करती है ब्रह्मा के पिता को पुत्र की तरह हाथ मे उठाती है, जिसकी श्रुतिया स्तुति करती है उसे सुलाने के लिए लोरी गाती है। जिसमें शत रवि तेज है उसकी आरती उतारती है, जिसको कोई भय नही है उसका रक्षा-बन्धन करती है—जिसमे अगणित सद्गुण हैं उसे रस्सी से बाँधती है, जो नित्य तृप्त है उसे दूध पिलाती है। उडुपि के कृष्ण को अपनी गोद मे उठाती है।'[3]

१ कनकदास कीर्तन गलु भाग १ पृ० ४१
२ वही भाग १ पृ० २७
३ हरिदास कीर्तन तरगिणी भाग ५ पृ० १०

हरिदासो की परपरा मे उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त कुछ अन्य अच्छे कवि भी हुए, जिन्होने भागवत कथा के प्रसगो को लेकर रचनाए की है। इनमे श्री विजयदास, श्रीगोपालदास, श्री राघवेन्द्र, श्री वेकटदास, श्री जगन्नाथदास आदि मुख्य है। श्री प्रसन्न वेकटदास ने भजनों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कघ के पूर्वार्द्ध का कन्नड भाषा मे अनुवाद किया है। श्री जगन्नाथदास की रचनाओ मे श्री हरिकथामृतसार एक बहुत ही प्रसिद्ध काव्य है।

मध्व मतावलम्बी हरिदास भक्तो के अतिरिक्त कन्नड मे कुछ अन्य वैष्णव भक्त कवि भी हुए हैं जिनमे रुद्रभट्ट, सोमनाथ और चौण्ड रस विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रुद्रभट्ट ने 'विष्णुपुराण' भारत और भागवत में वर्णित कृष्ण कथा के आधार पर अपने 'जगन्नार्थविजय' नामक काव्य मे कृष्ण जन्म से लेकर साल्व वध तक की कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। रुद्रभट्ट ने जगन्नाथ विजय को सभी प्रकार से महाकाव्य का रूप देने का प्रयत्न किया है। जैसा कि इस काव्य के नाम से स्पष्ट है इसके कथानायक श्रीकृष्ण हैं। कवि ने भागवत कथा के विभिन्न प्रसगो को लेकर उस काव्य को अपनी काव्य-प्रतिभा से सजाया है। कन्नड की प्रौढ शैली मे लिखा गया यह वृहद् काव्य एक श्रेष्ठ रचना है।

सोमनाथ ने भी श्रीमद्भागवत के आधार पर अपने काव्य मे कृष्ण-कथा का वर्णन कृष्ण के जन्म से लेकर कस-वध, वसुदेव देवकी-बन्ध-विमोचन, उग्रसेन को राज्य दिलाने, अक्रूर की इच्छा पूर्ति करने तथा गोकुल के लिए प्रस्थान तक किया है। इस काव्य मे कृष्ण-भक्ति का जो भावपूर्ण वर्णन मिलता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सोमनाथ एक बडे भागवत थे। इस काव्य में नवधा भक्ति का बडा ही सुन्दर वर्णन हुआ है।

१६ वी शती के पूर्वार्द्ध मे चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड भाषा मे श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड भाषी जनता के बीच कृष्ण-भक्ति के प्रचार मे इस ग्रन्थ का बडा योगदान रहा है। १६ वी शताब्दी मे ही लक्ष्मीश नामक एक दूसरे कवि हुए थे जिन्होने सस्कृत, जैमिनि भारत के आधार पर कन्नड मे 'जैमिनि भारत' नामक काव्य रचा। भागवत सप्रदाय के अन्तर्गत अठारहवी शती के आरम्भ मे मैसूर राजाओ के आश्रय मे कुछ कवियों ने रचनाएँ की, इन कवियो मे तिरुमलाय सिंगराय, चिक्कुपाध्याय आदि प्रमुख हैं। तिरुमलार्य की कृतियों मे गीत गोपाल, भागवत, शेष धम आदि मुख्य हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य कन्नड मे रचा गया है। यह देखकर और भी आश्चय होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्तो ने कृष्ण की जिन लीलाओ को लिया है, उनका बडा भावपूर्ण वर्णन कन्नड के साहित्य मे पहले से ही मिलता है।

हार, सोने की करधनी मे लटकी चमकीली स्वर्ण घण्टिया जब झन-झन करती हैं तब यशोदा कृष्ण को नचा नचाकर हसती है। सारी पृथ्वी को दो कदमो मे नापने वाले देव की उँगली पकडकर 'धीरे चलो, धीरे चलो' कहने का यशोदा ने कैसा पुण्य पाया है।[1] एक दूसरे पद मे गोपियों का यशोदा से कृष्ण की शिकायत करने का वर्णन कवि इस प्रकार करते है—सुनो री, यशोदा! तुम्हारा लडका बडा चोर है। जब मै दूध दुह रही थी तब इसने छीके पर रखा हुआ सारा दूध उडेल दिया। इस शिकायत पर कृष्ण कहते है—नही अम्मा! नाहक यह मेरी शिकायत कर रही है, मै कोई बडा पहलवान हूँ कि छीके पर कूद सकूँ। तब दूसरी गोपी कहती है—"तुम्हारे लडके ने अदर रखा हुआ सारा मक्खन खिडकी से उठाकर खा लिया है। मेरे बच्चों के लिए भी कुछ नही बचा है। उसका उत्तर कृष्ण यो देते है—"मेरा मुँह मानो बडा तालाब है कि मै घडे का सारा मक्खन खा डालू। इसने जो मक्खन छिपा रखा था वह इसके बच्चो ने उडा लिया है'[2] इस प्रकार बाल लीलाओ का बडा ही विस्तृत वर्णन कनकदास ने प्रस्तुत किया है।

श्री वादिराज

श्री वादिराज श्री व्यासराय के शिष्य थे। इनका जन्म सन् १४८० ई० के आस पास दक्षिण कन्नड जिले के हूविनकेरे नामक गाँव मे हुआ था। ये गुरु व्यासराय के साथ बहुत समय रहे। माध्व सम्प्रदाय मे मध्वाचार्य के पश्चात् श्री वादिराज का ही स्थान है। श्री वादिराज कन्नड और संस्कृत दोनों भाषाओ के बडे विद्वान् थे। दोनो भाषाओ के ही वे श्रेष्ठ कवि थे। कन्नड मे रचित इनके सहस्रो पद मिलते है सस्कृत मे रचित इनकी प्रमुख कृतिया इस प्रकार है—'तत्व प्रकाशिका', तात्पर्य-निर्णय टीका, तत्र-सार टीका, भगवद्गीता टिप्पणी, महाभारत टिप्पणी, रुक्मिणी-विजय, मुक्ति-मल्लिका, एकादशी-निर्णय, सकल्प पद्धति तथा श्रीकृष्ण स्तुति। इनकी कन्नड रचनाओ मे कन्नड तात्पर्य-निर्णय, वैकुण्ठ वर्णन, गुण्ड क्रिया लक्ष्मी शोभन, भ्रमरगीत आदि मुख्य हैं। भागवत कथा के कुछ विशिष्ट प्रसगो का भी श्री वादिराज ने अपनी रचनाओ मे वर्णन किया है। उनके भक्तिपरक पदो मे उच्च कोटि की भक्ति-भावना की अनुभूति होती है, साथ ही साथ सरस काव्य के भी दर्शन होते है। बाल कृष्ण की लीलाओ का वर्णन करने मे कवि-हृदय प्रफुल्लित हो उठा है। कृष्ण जैसे पुत्र को पाकर यशोदा किन किन सुखो को लूट रही है, इसका वर्णन श्री वादिराज अपने एक पद मे इस प्रकार करते है—

'यशोदा ने कैसा भाग्य पाया है! श्रीनिधि कृष्ण को हाथ मे उठाकर चूमती है, गगा के जनक को घडे से नहलाती है, नित्य मगल को अलकृत करती है, जिसने भूधर को उठाया है उसे पालने मे सुलाती है, जो अगोचर है उसे उठाकर लाड प्यार करती है ब्रह्मा के पिता को पुत्र की तरह हाथ मे उठाती है, जिसकी श्रुतिया स्तुति करती है उसे सुलाने के लिए लोरी गाती है। जिसमें शत रवि तेज है उसकी आरती उतारती है, जिसको कोई भय नही है उसका रक्षा-बन्धन करती है—जिसमे अगणित सद्गुण हैं उसे रस्सी से बाँधती है, जो नित्य तृप्त है उसे दूध पिलाती है। उडुपि के कृष्ण को अपनी गोद मे उठाती है।'[3]

१ कनकदास कीर्तन गलु भाग १ पृ० ४१
२ वही भाग १ पृ० २७
३ हरिदास कीर्तन तरगिणी भाग ५ पृ० १०

हरिदासो की परपरा मे उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त कुछ अन्य अच्छे कवि भी हुए, जिन्होने भागवत कथा के प्रसगो को लेकर रचनाए की है। इनमे श्री विजयदास, श्रीगोपालदास, श्री राघवेन्द्र, श्री वेकटदास, श्री जगन्नाथदास आदि मुख्य है। श्री प्रसन्न वेकटदास ने भजनों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के पूर्वार्द्ध का कन्नड भाषा मे अनुवाद किया है। श्री जगन्नाथदास की रचनाओ मे श्री हरिकथामृतसार एक बहुत ही प्रसिद्ध काव्य है।

मध्व मतावलम्बी हरिदास भक्तो के अतिरिक्त कन्नड मे कुछ अन्य वैष्णव भक्त कवि भी हुए हैं जिनमे रुद्रभट्ट, मोमनाथ और चौण्ड रस विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रुद्रभट्ट ने 'विष्णुपुराण' भारत और भागवत में वर्णित कृष्ण कथा के आधार पर अपने 'जगन्नाथविजय' नामक काव्य मे कृष्ण जन्म से लेकर साल्व वध तक की कृष्ण-कथा का वर्णन किया है। रुद्रभट्ट ने जगन्नाथ विजय को सभी प्रकार से महाकाव्य का रूप देने का प्रयत्न किया है। जैसा कि इस काव्य के नाम से स्पष्ट है इसके कथानायक श्रीकृष्ण हैं। कवि ने भागवत कथा के विभिन्न प्रसगों को लेकर उस काव्य को अपनी काव्य-प्रतिभा से सजाया है। कन्नड की प्रौढ शैली मे लिखा गया यह वृहद् काव्य एक श्रेष्ठ रचना है।

सोमनाथ ने भी श्रीमद्भागवत के आधार पर अपने काव्य मे कृष्ण-कथा का वर्णन कृष्ण के जन्म से लेकर कस-वध, वसुदेव देवकी-बन्ध-विमोचन, उग्रसेन को राज्य दिलाने, अक्रूर की इच्छा पूर्ति करने तथा गोकुल के लिए प्रस्थान तक किया है। इस काव्य मे कृष्ण-भक्ति का जो भावपूर्ण वर्णन मिलता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सोमनाथ एक बडे भागवत थे। इस काव्य में नवधा भक्ति का बडा ही सुन्दर वर्णन हुआ है।

१६ वी शती के पूर्वार्द्ध मे चाटु विट्ठलनाथ ने कन्नड भाषा में श्रीमद्भागवत का अनुवाद किया। कन्नड भाषी जनता के बीच कृष्ण-भक्ति के प्रचार मे इस ग्रन्थ का बडा योगदान रहा है। १६ वी शताब्दी मे ही लक्ष्मीश नामक एक दूसरे कवि हुए थे जिन्होंने सस्कृत, जैमिनि भारत के आधार पर कन्नड मे 'जैमिनि भारत' नामक काव्य रचा। भागवत सप्रदाय के अन्तर्गत अठारहवी शती के आरम्भ मे मैसूर राजाओ के आश्रय मे कुछ कवियों ने रचनाएँ की, इन कवियो मे तिरुमलार्य सिंगराय, चिक्कुपाध्याय आदि प्रमुख हैं। तिरुमलार्य की कृतियों मे गीत गोपाल, भागवत, शेष धम आदि मुख्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवत सम्बन्धी पर्याप्त साहित्य कन्नड मे रचा गया है। यह देखकर और भी आश्चर्य होता है कि हिन्दी के कृष्ण-भक्तो ने कृष्ण की जिन लीलाओ को लिया है, उनका बडा भावपूर्ण वर्णन कन्नड के साहित्य मे पहले से ही मिलता है।

मराठी का मध्ययुगीन साहित्य और श्रीमद्भागवत

मध्ययुग मे महाराष्ट्र मे अनेक राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई है फिर भी वहाँ के भक्ति-साहित्य मे एक व्यवस्थित रूप मिलता है। मराठी साहित्य के पहले दो युगो मे अर्थात् यादव काल (११८६-१३२०) तथा बहम्नी काल (१३२० १६०० ई०) भक्ति प्रधान साहित्य ही लिखा गया। इस प्रकार भक्ति साहित्य-रचना की दृष्टि से मराठी, गुजराती और हिन्दी से भी आगे है। यादव काल धम शास्त्रो की रचना मे नि सन्देह अग्रणी है। रामदेव राव के प्रतिभाशाली अमात्य हिमाद्रि ने वैदिक धम की पुन स्थापना मे बडा योग दिया था। उनके समय मे धमशास्त्र के अनेक ग्र थो की रचना हुई। बोप देव ने हरिलीलामृत' भी उन्हीं के आश्रय मे लिखा था। चातुवण्य के सिद्धान्तो का प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ 'चतुवगचिन्तामणि' भी इन्ही के समय मे लिखा गया। यही कारण है कि मराठी के सन्त साहित्य पर भी सगुण भक्ति भावना का व्यापक प्रभाव है। बोपदेव का 'हरिलीलामृत' निश्चित रूप से भागवतानुसारी ग्रन्थ है। कृष्णलीलाओ को महाराष्ट्र मे व्यापक रूप देने मे इस ग्रन्थ का बडा हाथ रहा है।

मराठी कवियो की दूसरी बात लक्ष्य करने की यह है कि उनमे से अधिकाश ने हिन्दी मे भी रचनाएँ की है तथा वे हिन्दी की रचनाएँ साहित्य तथा भाषा के विकास की दृष्टि से बडी महत्वपूण है। यहाँ हम मराठी भाषा की भागवतानुसारी रचनाओ का उल्लेख करेगे।

आज तक के अन्वेषणो और खोजो के आधार पर 'मुकन्दराज' मराठी भाषा के 'आद्य कवि' माने जाते है। शालिवाहन शक १११०, विक्रम सम्वत् १२४५ मे लिखित 'विवेकसिन्धु' उनकी प्रथम रचना मानी जाती है। मुकुन्दराज द्वारा रचित द्वितीय ग्रन्थ का नाम परमामृत' है। यह दोनो ग्र थ वेदान्तपरक है। तथापि 'परमामृत ग्र थ मे उन्होने अनेक बार सगुणोपासना का महत्त्व स्वीकार किया है। जो लोग निर्गुणोपासना करने मे असमथ हो, उ हे सगुणोपासना करनी चाहिये, ऐसा उनका मत है। नवलक्षण युक्त 'भजन' से यदि सर्वेश्वर का पूजन किया तो वह ज्ञान देकर अपने भक्तो के बधन काट डालता है।

नवलक्षण भजने। सर्वेश्वर आभारले परो।
ज्ञान देऊनि बधने। तोडी निज सेवाकाची ॥

इसलिये भगवान् का षोडशोपचार-पूजन करना चाहिए।

तेथे हृदयाच्या शेजारी। षोडशोपचारे पूजा करी ॥
उपासावा श्रीहरी। अनन्यभावें ॥

मुकन्दराज का काल शक १०४० से ११२० तक माना जाता है। मुकन्दराज के पश्चात् और ज्ञानेश्वर के पूव विदभ मे श्रीकृष्णोपासना का एक नवीन पथ उदित हो रहा था। इस का नाम है महानुभाव पथ। प्रारम्भिक काल मे इस पथ की दीक्षा लेने के सम्बन्ध मे पथ के आचार्यों द्वारा विशेष प्रतिबध निर्धारित नही किये गये थे। किन्तु आगे चलकर इस पथ का साहित्य भी साकेतिक लिपियो मे लिखा जाने लगा। पथ के बाहर जो लोग

थे उन्हे पथ के ग्र थ देखने का अनुमति नही दी जाती थी। इस पथ की शाखाएँ पजाब तक फैली हुई हे।

इस पथ मे चार युग के चार अवतार माने जाते है। (१) कृतयुग मे हसावतार (२) त्रेता मे दत्तावतार (३) द्वापर मे द्वा काधीश श्री कृष्ण चक्रवर्ती और (४) कलियुग म श्री चक्रधर स्वामी। श्री चक्रधर स्वामी इस पथ के सस्थापक हैं। विदर्भ के ऋद्धिपूर निवासी गोविन्द प्रभु श्री चक्रधर के गुरु थे। श्री गोविन्द प्रभु महान् तपस्वी एव श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। चक्रधर भडोच के राजा मल्लदेव के प्रधान विशालदेव के पुत्र थे। मल्लदेव के पश्चात् विशालदेव भडोच के राजा हुए। उनके पुत्र हरिपाल ने जो आगे चलकर चक्रधर कहलाए अनेक युद्ध जीते, ऐश्वय का उपभोग किया। किन्तु आगे चलकर उन्हे वैराग्य हुआ और वे यात्रा पर निकलपडे। माग मे उनकी श्री गोविन्द प्रभु से भेट हुई। वही उनका साप्रदायिक नाम, 'चक्रधर' प्रचलित हुआ। इस पथ मे भगवान् श्री कृष्ण को चक्रधर कहते हैं। 'पचकृष्णोपासना' इस पथ की एक प्रमुख विशेषता है। इसमे निम्नाकित पच कृष्ण माने जाते हैं—

(१) द्वारकाधीश भगवान् श्रीकृष्ण (२) दत्तात्रय (३) द्वारवती के चागदेव (४) गुण्डम राऊल (गोविन्द प्रभु) और (५) श्री चक्रधर। इस पन्थ की स्थापना शालिवाहन शक ११८५ मे हुई। नौ वष के अन्दर ५०० लोगो ने इस पथ की दीक्षा ली। इनमे १३ महिलाएँ थी। श्री चक्रधर स्वामी के प्रमुख शिष्य का नाम नागदेव था। इन दोनों की एक भी रचना उपलब्ध नही है। किन्तु चक्रधर के वचनो का एक सग्रह, इस पथ के एक प्रसिद्ध आचाय श्री केशवराज सूरी ने किया। इस सूत्रबद्ध ग्रथ का सिद्धान्तसूत्र पाठ' कहते हैं। श्री चक्रधर स्वामी के लीलाओ का वणन महीभट्ट द्वारा रचित 'लीला चरित्र' मे मिलता है। इसमे १५०० से अधिक लीलाओ का वणन है। श्रीमद्भगवद्गीता और श्री मद्भागवत का इस पथ मे विशेष आदर किया जाता है। इस पथ में आज भी सात ग्रथो को विशेष महत्व प्राप्त है। उनके नाम निम्नाकित हैं—

ग्रथ नाम	रचनाकाल	रचयिता का नाम
(१) शिशुपाल वध	शक ११९५	कवीश्वर भास्कर
(२) एकादश स्कद	,, ११९६	कवीश्वर भास्कर
(३) वत्सहरण	,, १२००	दामोदर पडित
(४) रुक्मिणीस्वयवर	, १२१३	नरेन्द्र कवि
(५) ज्ञान बोध	,, १२५३	विश्वनाथ बालापुरकर
(६) सहयाद्रि वर्णन	,, १२५४	रवलो व्यास
(७) ऋद्धपूरवणन	,, १२८५	नारो व्यास

यह 'साती ग्रथ पथ मे विशेष पूज्य है। इनमे से प्रथम चार ग्रथो में श्रीकृष्ण चरित्र वर्णित है। इन ग्रथो पर श्रीमद्भागवत का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।

शिशुपाल वध—इस ग्रथ के रचयिता कवीश्वर भास्कर का जन्म 'कासारबोरी' ग्राम मे हुआ और शिक्षा पैठण और काशी मे हुई। वे कृष्णोपासक थे। इन्हे कुछ दिन उज्जैन मे 'कारागृह' मे रहना पडा। तत्पश्चात् इन्होने महानुभाव पथ की दीक्षा ला। आपका

शिशुपाल वध' काव्य अत्यत सरस है। नाम से तो यह काव्य वीर रसात्मक प्रतीत होता है किन्तु वास्तव मे उस मे 'भक्तिमय शृङ्गार' की प्रधानता है। इसमे कुल १०८७ ओवियाँ है। पदलालित्य, विचार सौदय, उपमा चातुय और भक्ति की उत्कटता आदि गुण इस मे द्रष्टव्य है। इसका मूलाधार यद्यपि श्रीमद्भागवत है, तथापि माघकवि के 'शिशुपाल वध' का भी इस पर प्रभाव है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप का वणन बडा ही मनोहारी है—

देखोनि श्रीमूर्ति उघडी। ब्रह्म विद्या डोले मोडी।
मुक्ति धावे उघडी। पाठोपाठी॥
आगाचा मेलाऊ देखिजे। तरी मद नाची कुरवडी कीजे।
लावण्याचे उतरिजे। निंबलोण॥

भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति देखकर ब्रह्मविद्या की आँखे चौंधियाँ जाती है, मुक्ति उसके पीछे-पीछे दौडती है। शरीर सौष्ठव मदन को नीचा दिखाता है और लावण्य उसके सामने फीका पडता है।

सतदशन का महत्त्व निम्नाकित ओवियो मे वर्णित है—
चद्र निववी जगाते। मेघो वरुषे अमृताते।
तेवि साधु आपणेयाते। दारवविती स्वभावत्॥
साधुसगाचेनि भाडवले। ज्ञान मार्गाचा व्यवसाऊ फले॥
जो न जोडे पुण्याचेनि बले। ब्रह्मादिकासी॥

चन्द्रमा ससार को शीतलता देता है, मेघ अमृतवर्षा करते है उसी प्रकार साधु हमें सतुष्ट करते है। सज्जन सग एक पूजी है जिससे ज्ञानमाग का व्यापार फलित होता है। ज्ञान माग बहुत पुण्य करने पर श्री ब्रह्माजी को भी अप्राप्य है।

इसमे वर्णित 'वीर रस' का नमूना देखिये—

यह उस समय का वणन है जब भगवान् श्री कृष्ण ने अपनी सेना के साथ राजसूय यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिये प्रस्थान किया —

तव डौडीची वीरघटा। सनसनिती झगटा।
वाजिताती एकदटा। एकेवेले॥
तरारितो काहाला। घुरघुरिती टिवाला।
रणमया सूरा ढोला। मेरू थरारी॥

डमडमितिया हुडुका। कडकडितिया शखा।
वाजता ब्रहमगोलका। तढा तुटतसे॥

इस वणन मे तत्कालीन रणवाद्यो का उल्लेख है। जब घुडसवारो ने और पदातियों ने चढाई की उस समय का वणन देखिए —

उठविले असिवारू (सवार) जैसे कालकूटाचे धुधुकारू।
तैंसे पायायचे मोगरू (पदाति नायक) निघाताती॥

ना ते प्रलयानिलाचे धावणे । की कालाचे आमत्रणे ।
देवावया निगाले मीभणे । शिशुपालासी ।।

घुडसवार और पदाति निकल पडे । माना वह प्रलयानिल ही है, अथवा शिशुपाल को काल का आमत्रण देने हेतु ही मानो वे निकल पडे है ।

ग्रथ समाप्ति के पश्चात् गुरुबधु भावे व्यास को जब कवि ने अपना यह ग्रन्थ पढकर सुनाया तब भावे व्यास ने कहा, 'भट्टो हा ग्रन्थु निका जाला असे । परि निवृत्ताजोग । नह्वेचि हा श्रृङ्गारिया प्रवृत्ताजोगा जाला असे ।' पण्डित, यह रचना अच्छी है, कि तु विरक्तो क योग्य यह ग्रथ नही हुआ है, यह तो प्रवृत्तो के, प्रापचिक रसिको के योग्य है ।' इस कारण कवीश्वर भास्कर ने तत्पश्चात् श्रीमद्भागवत के एकादश स्कध पर टीका लिखी । इस ग्रथ के प्रारभ मे ही कवि ने यादव कुलतिलक श्रीकृष्ण को नमन किया है—

नमीन यादव कुल तिल्लकु । जो चैतन्यलताकुसमस्तबकु ।
उदैला आनद मृगाकु । मोहाधकारी ।।

इस ग्रथ मे ८२७ ओवियाँ है ।

इसी कवि ने गद्यात्मक 'श्रीकृष्ण चरित' लिखा है । प्राचीन मराठी गद्य के रूप में इस ग्रथ का अत्यधिक महत्त्व है । इसमे वर्णित श्रीकृण की अग्रपूजा—के समय का कुछ वर्णन निम्नाकित है—

"यज्ञ मडपी आसनु रचिले श्रीचरण प्रक्षालनु करौनि आसनी उपविष्ट हो आवेया प्रार्थिलें आसनी उपविष्ट जाले मग युधिष्ठिरे मगल महा छाग्रेनसी श्रीचक्रवर्तीची अथोचितु अग्र पूजा केली बैसोनि अग्रपूजा स्वीकारीन्निली " यज्ञमडप मे आसन की रचना की । श्रीकृष्ण के चरन प्रक्षालन कर उन्हे आसन पर बैठने की प्राथना की । वे आसन पर बठे । तत्पश्चात् युधिष्ठिर ने मगल उपचारो से श्रीकृष्ण चक्रवर्ती का यथोचित पूजन किया ।

वत्सहरण—दामोदर पडित नामक महानुभाव कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध मे १३ वे और १४ वे अध्याय मे वर्णित कथा के आधार पर इस रस पूर्ण काव्य की रचना की । कवि का कहना है कि वत्सहरण की यह कथा जीवमात्र के हृदय को आनन्द और सतोष देने वाली एव भक्ति भावना को पुष्ट करने वाली है । भक्तो को श्रीकृष्ण कथा स्वभाव से ही प्रिय है ।

जे जीवाते चोखालिती । का मनाते नीव विती ।
भक्तिभावाते पोखिती । श्रवण मात्रे ।।

कवि कहता है जिस प्रकार कुलागना की गुणसपत्ति उसे एक ही पति के सम्बन्ध मे भक्ति देती है उसी प्रकार हरिकथा रस मे भक्तो के बिना अन्य किसी की'रति' नही रहती ।

कुलस्त्रियेची गुणसपत्ती । भोगावी एकेची पती ।
तैसी हरिकथा रसी रती । भक्तावाचौनि नाही ।।

इस काव्य में जो वृन्दावन-वर्णन है वह पूर्णतया मूल पर आधारित है । कवि का कथन है कि 'भागवती कथा नित्यनूतन मधुर' है । कृष्णकथा अज्ञान तम तरणि (सूय) है, कैवल्यपद देने वाली है, इस प्रकार का अभिमत कवि ने एक ओवी मे व्यक्त किया है—

जे अज्ञान तमाचा तरणी। कैवल्य पदाची निसाणी।
ते श्रीकृष्ण कथा 'वत्सहरणी'। साधिजेल॥

कवि का कथन है कि श्रीकृष्ण कथा मे भक्तो को नव रसो का आस्वाद तो नित्यरूप से मिलता है।

जं देऊँ रासक्रीडा खेकिन्निला त मूर्त श्रृङ्गारू जाला गौलणी विनोदे नाचवीला। तं हास्य रसू॥ यशोदा भेडाविला तं करुणारसू उठेवला विषारू कालिया जिंतिला तं रुद्रू जाला मात श्रीमुख दाविले ते अद्‌भुता रूप जाले, विश्वरूप प्रगटिले तं भयानकू॥ दैत्या करी सहारू तैंचि बीभत्सु आणि वीरू शातु तो निरतरु तेथेचि असे॥

जिस समय भगवानुने गोपियो के साथ रासक्रीडा की, तब श्रृङ्गार रस आविर्भूत हुआ। गोपियो द्वारा जिस समय भगवान् को नचाया गया, उस समय हास्यरस उद्‌भूत हुआ। कृष्ण वियोग पर करुणारस उत्पन्न हुआ। विषले कालियानाग के मदन के अवसर पर रौद्र रस की उत्पत्ति हुई। जब माता को श्रीमुख दिखाया तब अद्‌भुतरस प्रकट हुआ, जब विश्वरूप प्रकट किया तब भयानकरस की निष्पत्ति हुई और शान्तरस तो उस कथा मे निरतर ही विद्यमान है।

एक स्थान पर कवि ने इस काव्य मे अनेक प्रश्न उपस्थित किये है। वह पूछता है—

निर्गुण का जाहले सगुण ? निराकारा साकारपण निरभिमाना दैत्यनिदलिण हे का घडे ?॥ अरूपा रूप सुन्दर अमूर्ता मूर्ति मनोहर अद्वैता अनत अवतार हे नवल देखा॥

निगुण सगुण क्यो हुआ ? निराकार साकार क्यो हुआ ? निरभिमानी को दैत्यो का नाश क्यो करना पडा ? अरूप को सुन्दर रूप क्यो धारण करना पडा ? अमूत को मूत स्वरूप किस लिये लेना पडा ? अद्वैत को अनन्त अवतार लेने की आवश्यकता क्यो पडी ? देखिए, यह एक महान् आश्चय है।

कवि कहता है कि इस प्रकार विरुद्ध धम की प्रवृत्ति केवल एक परमेश्वर मे ही है, इसका कारण वेदशास्त्र तर्को द्वारा नही जाना जा सकता, वह तो केवल भक्तजन ही जान सकते हैं। भक्त-जनो के सामथ्य का पार जानना असभव है। समस्त भुवनो की जिसने उत्पत्ति की, जिसकी वेद पुराणादिको ने स्तुति की है, उस पर ब्रह्म परमात्मा को गोपिकाएँ मक्खन देकर नचाती है, यह भक्तो का सामथ्य ?

ऐसिया विरुद्ध धर्माचिया प्रवृत्तिः एकी ईश्वरीचि आती।
ते वेदशास्त्रे तर्कें नेणती जाणती भक्तजनु॥
सकल भुवने जयाची करणी, जो वाणिजे वेदी पुराणी।
तेयाते लोणी देऊनी गौलणी नाचविताती॥

इन पक्तियों को पढकर सहसा रसखान की निम्नाकित पक्तियो का स्मरण हो उठता है—

सेस गनेस महेश दिनेस सुरेसहु जाहि निरतर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हरितऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर को छोहरियाँ छछिया भर छाछ पै नाच नचावैं॥

रुक्मिणी स्वयवर—इस काव्य के रचयिता का नाम है नरेन्द्र कवि जिन्होने शक १२१३ मे इस ग्रथ की रचना की। इस ग्रथ का प्रथम १८०० ओविर्यो तक का भाग राजा रामदेवराय जाधव को बहुत पसन्द आया। राजा ने कहा—इस ग्रथ के रचयिता के स्थान पर मेरा नाम अकित किया जावे। नरेन्द्र ने अनिच्छा से वह ग्रन्थ राजा को दिया और स्वय नगर छोडकर सन्यस्त वृत्ति धारण कर ली और तत्पश्चात् महानुभाव पथ की दीक्षा ली। महानुभाव पथ मे प्रविष्ट होने के पश्चात् उस ग्रन्थ को पुन लिखा और उसे पूर्ण किया। ग्रन्थ की कुल ओवी सख्या ३००० है। यह काव्य कृष्ण-भक्ति से ओतप्रोत है। कवि कहता है—

श्रीकृष्णाचा वर्णिता कीर्ति चन्द्रु। चढवीन सुखाचा समुद्रु।
जलसन करीन म्हणे नरेंद्रु। सभेचे लोक ॥

श्रीकृष्ण भगवान् के कीर्तिचन्द्र का वर्णन कर मैं सुख के समुद्र को चढाऊँगा—ऊँचा करूँगा और सभा के समस्त लोगो को आनन्द मग्न करूँगा। रुक्मिणी स्वयवर के विषय को लेकर मराठी भाषा मे १०-१२ कवियों ने काव्य रचना की है। महानुभाव पथ की एक कवयित्री ने इसी विषय पर बहुत सरस रचना की है। यह कवयित्री थी नागदेवाचार्य की चचेरी बहन महदबा। इस पथ के मूल पुरुष श्री गोविद प्रभु ने एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के विवहोत्सव का आयोजन किया। उस समय महदबा को 'करवळी' (सखी) का काम दिया गया। उसने 'श्रीकृष्ण विवाह को तैयार खडे हैं' ऐसी कल्पना कर गीतो की रचना की है। इन गीतो को 'ढवले' कहते है। इनकी कुल सख्या १४६ है। रचना काल शक ११८२ के आसपास का है। इन गीतो मे श्रीकृष्ण भक्ति का उत्कट स्वरूप अकित किया गया है। श्रीमद्भागवत की कथा के आधार पर इनकी रचना की गई है। तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज के रीति-रिवाजों का प्रतिबिम्ब इन गीतो मे दिखाई देता है। महदबा को मराठी की आद्य कवयित्री माना जाता है।

रुक्मिणी का सदेश पाकर जब भगवान् श्रीकृष्ण कुण्डिनपुर गये, उस समय की रुक्मिणी की मनोवस्था का मनोरम चित्रण देखिए—

सुन्दरु श्रीकृष्णु झलकीता देखिन्निला।
आठै सात्विकु प्रगटले चित्ता सभ्रमु जाला।
उपरिग्रे वरौनि घालो ठेर्ला झेपु तव विप्रे सावरिली बाला।
वदे देवि हे नोहे तुज उचितु यया काला ॥

रुक्मिणी ने सुन्दर श्रीकृष्ण को देखा। उस समय अष्ट सात्त्विक भाव उभर आये। वह सभ्रमित हुई। सौध से वह नीचे कूदने ही वाली थी, किन्तु पास खडे विप्र ने कहा, "देवि, इस समय ऐसा करना तेरे लिये उचित नही।"

महानुभाव पथ के विशाल साहित्य पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्टरूपेण परिलक्षित होता है। इस पथ का कायक्षेत्र प्रमुखतया महाराष्ट्र का विदभ-भाग रहा है। महाराष्ट्र के अन्य भाग मे इसी काल मे वैष्णव सम्प्रदाय म पूज्य माने जाने वाले ग्रन्थ श्रीमद्भगवद्गीता पर सत शिरोमणि ज्ञानेश्वर भाष्य लिख रहे थे। इस गीता-टीका के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित अनेक अभग भी उपलब्ध है। इन अभगो मे भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन है। गोप-गोपियो की क्रीडा, उनकी विरह व्यथा, मुरली का अद्भुत सामर्थ्य आदि के सम्बन्ध में भक्तिभावपूर्ण विवेचन है। इन अभगो मे भी श्रीमद्भागवत का प्रभाव परिलक्षित होता है।

श्रीकृष्ण भगवान् के बाल स्वरूप का और बाल लीलाओ का वर्णन देखिए—

तुझिये निढली कोटिचन्द्र प्रकाशे । कमलबदन हास्य वदन हासे ।।१।।
हाल का रे कृष्ण डोल का रे कृष्ण । घडिये घडिये गुज बोल का रे कृष्ण ।।२।।
उमा राहोनिया कैसा हालवितो बाहो । बापरखुमादेवीवरू विट्ठलु नाहो ।।३।।

गोपी कहती है—तेरे ललाट भाग मे मानो कोटि चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहे है। तेरा कमल समान सुन्दर मुख स्मित हास्य के कारण सुहावना दिखाई दे रहा है। हे लाडले कृष्ण जरा चलकर दिखा, इधर उधर डोलकर दिखा, बार बार मधुर बोल तो सुना। देखो तो नाथ विट्ठल श्रीकृष्ण खडे रहकर अपना हाथ हिला रहे हे देखो तो कितनी सुहावनी मूर्ति है।

श्रीकृष्ण के इस प्रकार के सुहावने रूप और दिव्य गुणो के कारण गोपियाँ पागल सी हो गयी है। मथुरा के बाजार मे वह निकली तो हे दहि और दूध बेचने कि तु मुख से कह रही है गोविन्द लीजिये, दामोदर लीजिये।

दुडीवर दुडी साते निघाली । गौलणी गोरसु म्हणो विसरली ।
गोविंदु घ्यावो दामोदरु ध्यावो । तब बोलती मथुरेच्या नारी वो ।।

वारकरी सम्प्रदाय के लोग विट्ठल को कृष्ण का ही स्वरूप मानते है। 'वसुदेव कुमरु देवकीनदनु हाच।' (वसुदेव सुत देवकीनदन कृष्ण ही विट्ठल है) ऐसी उनकी मान्यता है। वारकरी कीतनारभ में ज्ञानेश्वर का जो अभग गाते है उसमे यही भाव व्यक्त किया गया है—

रूप पाहता लोचनी । सुख झाले वो साजणी ।।
तो हा विट्ठल बखा । तो हा माधव बखा ।।

हे सहेली, यह सुन्दर रूप देखकर चित्त प्रसन्न हो गया है। यह वही सुन्दर विट्ठल है, यह वही माधव है। इस सम्प्रदाय मे ज्ञानेश्वर को अन्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। 'ज्ञानबा तुकाराम' का घोष किये बिना वारकरी सप्रदाय के भजन की समाप्ति नही होती। ज्ञानेश्वर के साथ-साथ नामदेव को भी इस सप्रदाय मे विशिष्ट स्थान प्राप्त है। नाम देव के अभगो मे कृष्ण-लीला का वर्णन है। सत सगति का और पढरपूर निवास का उनके जीवन मे अत्यधिक महत्व है। इसके आगे वे मोक्ष को भी तुच्छ समझते हैं। वे कहते है कि 'हे विट्ठलनाथ, तेरे चरणो के दर्शन से मेरी भवव्यथा दूर हो गई है, किन्तु इसी के कारण एक चिंता उद्भूत हुई है, वह यह कि तू अब मुझे मुक्तिपद देगा। तब फिर मुझे यह सत्सग कहाँ प्राप्त होगा ? फिर यह पढरपूर और यहाँ प्राप्त होने वाला आनद किसकी आँखो से देख पाऊँगा ? फिर इस हरि कथामृत का श्रवण किसके कानो से कर सकूगा ? नामदेव कहते है कि "हे पाडुरग ! मुझे पढरी इसी लिये प्रिय है।"

पाहता तुझे चरण हरलो भवव्यथा । पुढती एक चिता वाटतमे ।।
झणि मुक्तिपद देसी पाडुरगा । मग या सतसगा कोठे पाहूँ ।।
मग हे पढरी आनद सोहला । कवणाचे डोला पाहूँ देवा ! ।।
मग हे हरिकथा अमृतसजीवनी । कवणाचे श्रवणी ऐको देवा ? ।।
नामा म्हणे मज पढरीची सोय । अनत जन्म होय याचि लागि ।।

नामदेव विट्ठल के—श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। जागृतावस्था मे या स्वप्नावस्था मे एक श्रीकृष्ण चिन्तन के अतिरिक्त उन्हे और कुछ भी प्रिय नही था। 'तच्चितन तत्कथन

अन्योन्य तत्प्रबोधनम्', यही उनके जीवन का साध्य था। नामदेव ज्ञानेश्वर के साथ जो अन्य सन्त, भगवद्भक्त थे वे भी विट्ठलोपासना कृष्णोपासना मे ही निमग्न थे। इस भक्तमण्डली मे सब जाति के और सब श्रेणी के लोग थे। अपना अपना व्यवसाय कर्तव्य बुद्धि से कर ईशभजन मे ही वे अपना समय बिताया करते थे। इसमे 'जनाबाई' नामक नामदेव की 'दासी' भी थी। वह 'पढरी' के 'वारकरी' के पाव अपने माथे पर रखने को तैयार थी। भक्त, उत्तम या चाण्डाल किसी भी जाति का क्यो न हो, उसके चरणों पर वह अपना माथा रखने को सिद्ध थी।

पढरीचा वारकरी। त्याचे पाय माझे शिरी॥
हो का उत्तम चाडाल। पायी ठेकीन कपाल॥
मुरवी नाम गर्जे वाणी। म्हणे नामयाची जनी॥

वैष्णवों की भगवान् पर और भगवद्भक्तों पर समान ही भक्ति होती है। इस वारकरा परम्परा मे चोखा मेला, सेना नाई गोरा कुम्हार, सावता माली, नरहरि सुनार, सजन कसाई, कान्होपात्रा वेश्यापुत्रा आदि सब प्रकार के लोगों का समावेश होता था। आषाढ और कार्तिक मास की एकादशी को पढरपुर मे यह सब वारकरी एकत्र हुआ करते थे। कृष्ण सखाओ के रूप मे दही और ज्वार के फूले मिलाकर 'गोपालकाला' का प्रसाद ग्रहण करते थे। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप मे चल रही है। उपरिनिर्दिष्ट सब भक्तो के अभगो मे कृष्णभक्ति ओतप्रोत है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कध मे वर्णित भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओ ने इन सब पर समान रूप से मोहिनी डाली थी।

वारकरी सप्रदाय के अनुयायियो के अतिरिक्त भी अन्य अनेक कवियों की कृतियो पर हमे श्रीमद्भागवत का प्रभाव दिखाई देता है। शालिवाहन शक की चौदहवी शताब्दी के मध्य मे बहिरा जातवेद नामक कवि ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर मराठी मे टीका लिखी थी। इस टीका को भैरवी टीका भी कहते है। यह कवि पैठण निवासी था। व्युत्पन्न पडित होने के कारण उसके अनेक शिष्य थे। एक दिन भोज्यपदाथ मे लवण कम होने से अपनी पत्नी से शिकायत की। तब उसने कहा, "वेदान्त ज्ञान सम्पन्न महापडित होकर भोजन की ओर इतना ध्यान ? जिह्वा पर जिसका नियत्रण नही, वह आत्मज्ञान कैसे प्राप्त कर सकेगा ?" इस बात का जातवेद पर पडा प्रभाव पडा। वह गृह-त्याग कर जगल की ओर चल दिया। रास्ने मे एक मस्जिद दिखाई दी। वहाँ कुछ आत्मज्ञान प्राप्त हो सकेगा, इस आशा से वह मुसलमान हो गया। परन्तु वहाँ उसको मन शाति न मिली, इस कारण वह पुन ब्राह्मणो के पास गया, ब्राह्मणो ने उसे प्रायश्चित कराकर शुद्ध कर लिया। सब मुसलमान उन ब्राह्मणो के पास गए और उनसे पूछने लगे कि आपने इसे पुन ब्राह्मण कैसे बना लिया ? यह बात सुनकर जातवेद ने कहा, 'क्यो, मैं पूरा मुसलमान हुआ ही कब था ? अभी मेरे कान के छिद्र तो वैसे ही हैं।" यह तक सुनकर मुसलमान चुप होकर वापिस चले गये। फिर उसने ब्राह्मणो मे कहा "मेरी तो सुन्नत हो गई है मैं हिन्दू कैसे हो सकता हूँ ?" इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान-दोनों ने ही उसका त्याग किया। यह देख वह पागल की भाति इधर-उधर भटकने लगा। हर मिलने वाले से 'मै हिन्दू हूँ, या मुसलमान ?" यह प्रश्न पूँछने लगा। कुछ काल पश्चात् उसकी वडवाल के सिद्ध नागनाथ से भेट हुई। उनसे भी उसने वही प्रश्न किया, तब सिद्ध नागनाथ ने उसके आँखों मे अजन

लगाया और कहा, "तू स्वय सिद्ध आत्माराम है। सद्गुरुकृपा से पागल बहिरा अच्छा हो गया। उसने तत्पश्चात् पढरपूर जाकर श्री विट्ठल का दर्शन किया। इस बहिरा जातवेद ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर अत्यन्त सुरस टीका लिखी है। इस टीका का मूल आधार 'श्रीधर स्वामी की टीका' है। यशोदा माता की गोद मे भगवान कृष्ण बैठे है, उन्हे उपहार देने के लिये गोपललनाएँ आयी, उस समय का वर्णन देखिए।

पाणवरी बालातिणी। त्या बैसविती कामिणी ॥
मग करिती आक्षवाणी। कृष्णे सहित ॥
गोपिका कृष्ण वोवालतो। बोवालिता ऐसे भागती।
'चिरकाल आमुते श्रीपती। पालिता होये ॥
मग अलकार अर्पिले। पूर्णास अगुले लेववित्ने।
जसवतिनदा बैसविले। पाटावरी ॥
मग वस्त्रे अर्पिती। मगुलतुरे वाजती।
त्यासह पुत्रा पडती। वोवालणि ॥
हलदि स्नेहे मिश्रित। उदकयात्रे सिंचन करित।
तौ सवद्रष्टा पाहत। टकमकित ॥

उन महिलाओ ने बालक और जच्चा दोनो को को पटे पर बिठाया और उनका नीराजन किया। गोपिकाओ ने कृष्ण का नीराजन किया। नीराजन करते समय भगवान् से वर मागा कि श्रीपति हमारा हमेशा पालन करे। तत्पश्चात् भगवान् को अलकार आभूषणादि भेट किये और पूर्ण को अगुलिभर वस्त्र से सुशोभित किया। जसोदानन्द को पटे पर (आसन) पर बिठाया। वस्त्रादि अर्पण किये। उस समय मगलवाद्य बजाये गये। पुत्र का नीराजन किया। हरिद्रा मिश्रित पानी का सिञ्चन किया। यह सब सर्वद्रष्टा भगवान् टकटकी लगाकर देख रहे थे।

बहिरा जातवेद ने अनेक पदों की भी रचना की है परन्तु उनकी रचनाए आज अप्राप्य हैं।

शालिवाहन शक की चौदहवी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे और पन्द्रहवी शती के प्रारभ काल मे मराठी मे ग्रन्थ रचना हुई ही नही, इस प्रकार की धारणा बहुत दिन से प्रचलित थी, किन्तु यह धारणा गलत है। महाराष्ट्रसारस्वतकार श्री भावे का कथन है कि इस काल की अधिकाश रचनाएँ धर्मान्ध मुसलमानो ने और ईसाइयो ने जला डाली।

भानुदास—एकनाथ महाराज के प्रपितामह भानुदास (शके १३७०-१४३५) का भी कुछ साहित्य उपलब्ध है। आप परम वैष्णव एव कृष्णोपासक थे। अनागोदी के विजयानगर के विख्यात राजा श्रीकृष्णराय भक्ति से पढरपूर की श्री विट्ठल मूर्ति को अपनी राजधानी मे ले गये। इसमे उसकी सुरक्षा की भी कल्पना निहित थी। परन्तु विट्ठल मूर्ति पढरपूर मे न रहने के कारण वारकरी भक्तो को बडा दुख हुआ। भानुदास जी से न रहा गया। वे अनागोंदी गये और मध्यरात्रि मे उस मन्दिर के सामने (जहाँ श्री विट्ठल का मूर्ति रखी थी।) जा खडे हुए मन्दिर के पट अपने आप खुल गये और श्री विट्ठल ने अपने गले का हार भजन मे निमग्न भानुदास के गले मे डाल दिया। प्रात हारकी चोरी हो गई जान सिपाही उसका पता लगाने

लगे तब भजन म निमग्न भानुदास पर (जो मन्दिर मे विट्ठल मूर्ति के सम्मुख खडे थे) उनकी दृष्टि गई। हार समेत चोर मिल गया।

मराठी साहित्य म भानुदास विट्ठल भक्ति के लिए प्रसिद्ध ह। विट्ठल भक्ति कृष्णभक्ति का ही एक रूप है। एकनाथ जी के कुल मे कृष्ण भक्ति को परम्परा बहुत प्राचीन है जैसाकि स्वय एकनाथ ने लिखा है—

एकनाथ लिहितो कि आपले कुलात कृष्ण भक्ति पूर्वी पासून चालत होती ?

भानुदास जो का मराठी तथा हिन्दी दोनो मे ही साहित्य उपलब्ध है। मराठी म उनके अनेक अभग मिलते हैं जिनमे कृष्ण-लीलाओ का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है इनके हिन्दी के पद भी भक्ति-भाव पूर्ण है दो पद देखिए—

उठो तात मात भये प्राप्त रजनी सो तीमीर गई।
मीलत बाल सकल गुवाल सुन्दर कन्हाई ॥१॥
जागो गोपाल लाल जागो गोविन्दलाल जननी बलि जाई ॥२॥
सगी सब फिरत बिमन तुम बीन नही छूटत दयन।
त्यजो शयन कमल नयन सुन्दर सुखदाई ॥३॥
मुखते पट दूर कीजो, जननी कु दर्श दीजो।
दधी खीर माग लीजो खाड मिठाई ॥४॥
जपत-जपत शाम राम सुन्दर मुख सदा राम।
थाटी की छूट कछु भानुदास पायी।

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत
राखत है गैया, मोहन मेरो सैया
मोर पत्र सिर छत्र सुहाये, गोपी धरत बहिंया।
भानुदास प्रभु भगत को वत्सल, करत छत्र छइया।

श्री एकनाथ

भानुदास के प्रपौत्र श्री एकनाथ का जन्म शक सवत् १४५० के लगभग पैठण मे हुआ। आपकी ग्रन्थ-रचनाओ का आरम्भ ही चतु श्लोकी भागवत की टीका से हुआ। आपके गुरु श्री जनार्दन स्वामी भगवान् दत्तात्रेय के उपासक थे। श्री एकनाथ बचपन से ही ईश्वरानुरागी थे। छ वर्ष की अवस्था मे आपके पितामह ने आपका यज्ञोपवीत सस्कार किया। माता पिता शैशवावस्था मे ही कालवश हो गये थे। आपके भरण-पोषण का भार आपके दादा (पितामह) दादी ने वहन किया। व्रतबन्ध के पश्चात् अल्पकाल मे ही आपने ब्रह्मकम का अध्ययन पूर्ण कर लिया। एक दिन उन्हे स्वप्नदृष्टान्त हुआ और वे गुरु-अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से देवगिरि गढ के अधिकारी श्री जनार्दन स्वामी के पास गये। वहाँ दत्तचित्त रहकर पठन-पाठन पूरा किया। गुरु की अनन्यभाव से सेवा की। फाल्गुन बदी ६, शके १४८० को गुरु जनार्दन स्वामी ने आपको उपदेश दिया। फाल्गुन बदी ६, का

लगाया और कहा, "तू स्वय सिद्ध आत्माराम है। सद्गुरुकृपा से पागल बहिरा अच्छा हो गया। उसने तत्पश्चात् पढरपूर जाकर श्री विट्ठल का दशन किया। इस बहिरा जातवेद ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर अत्यन्त सुरस टीका लिखी है। इस टीका का मूल आधार 'श्रीधर स्वामी की टीका' है। यशोदा माता की गोद मे भगवान कृष्ण बैठे है, उन्हे उपहार देने के लिये गोपललनाएँ आयी, उस समय का वणन देखिए।

पाणवरी बालातिणी। त्या बैसविती कामिणी ॥
मग करिती आक्षवाणी। कृष्णे सहित ॥
गोपिका कृष्ण वोवालतो। बोवालिता ऐसे भागती।
'चिरकाल आमुते श्रीपती। पालिता होये ॥
मग अलकार अर्पिले। पूर्णास अगुल लेउविले।
जसवतिनदा बैसविले। पाटावरी ॥
मग वस्त्रे अर्पिती। मगुलतुरे वाजती।
त्यासह पुत्रा पडती। वोवालणि ॥
हलदि स्नेहे मिश्रित। उदकयात्रे सिंचन करित।
तो सवद्रष्टा पाहत। टकमकित ॥

उन महिलाओ ने बालक और जच्चा दोनो को को पटे पर बिठाया और उनका नीराजन किया। गोपिकाओ ने कृष्ण का नीराजन किया। नीराजन करते समय भगवान् से वर मागा कि श्रीपति हमारा हमेशा पालन करे। तत्पश्चात् भगवान् को अलकार आभूषणादि भेट किये और पूर्ण को अगुलिभर वस्त्र से सुशोभित किया। जसोदानन्द को पटे पर (आसन) पर बिठाया। वस्त्रादि अपण किये। उस समय मगलवाद्य बजाये गये। पुत्र का नीराजन किया। हरिद्रा मिश्रित पानी का सिञ्चन किया। यह सब सवद्रष्टा भगवान् टकटकी लगाकर देख रहे थे।

बहिरा जातवेद ने अनेक पदों की भी रचना की है परन्तु उनकी रचनाए आज अप्राप्य हैं।

शालिवाहन शक की चौदहवी शताब्दि के उत्तरार्द्ध मे और पन्द्रहवी शती के प्रारभ काल मे मराठी मे ग्रन्थ रचना हुई ही नही, इस प्रकार की धारणा बहुत दिन से प्रचलित थी, किन्तु यह धारणा गलत है। महाराष्ट्रसारस्वतकार श्री भावे का कथन है कि इस काल की अधिकाश रचनाएँ धर्मान्ध मुसलमानो ने और ईसाइयो ने जला डाली।

भानुदास—एकनाथ महाराज के प्रपितामह भानुदास (शके १३७०-१४३५) का भी कुछ साहित्य उपलब्ध है। आप परम वष्णव एव कृष्णोपासक थे। अनागोंदी के विजयानगर के विख्यात राजा श्रीकृष्णराय भक्ति से पढरपूर की श्री विट्ठल मूर्ति को अपनी राजधानी मे ले गये। इसमे उसकी सुरक्षा की भी कल्पना निहित थी। परन्तु विट्ठल मूर्ति पढरपूर मे न रहने के कारण वारकरी भक्तो को बडा दुख हुआ। भानुदास जी से न रहा गया। वे अनागोंदी गये और मध्यरात्रि मे उस मन्दिर के सामने (जहाँ श्री विट्ठल का मूर्ति रखी थी।) जा खडे हुए मन्दिर के पट अपने आप खुल गये और श्री विट्ठल ने अपने गले का हार भजन मे निमग्न भानुदास के गले मे डाल दिया। प्रात हारकी चोरी हो गई जान सिपाही उसका पता लगाने

लगे तब भजन म निमग्न भानुदास पर (जो मन्दिर मे विट्ठल मूर्ति के सम्मुख खडे थे) उनकी दृष्टि गई। हार समेत चोर मिल गया।

मराठी साहित्य मे भानुदास विट्ठल भक्ति के लिए प्रसिद्ध हैं। विट्ठल भक्ति कृष्णभक्ति का ही एक रूप है। एकनाथ जी के कुल मे कृष्ण भक्ति की परम्परा बहुत प्राचीन है जैसाकि स्वय एकनाथ ने लिखा है—

एकनाथ लिहितो कि आपले कुलात कृष्ण भक्ति पूर्वी पासून चालत होती ?

भानुदास जी का मराठी तथा हिन्दी दोनो मे ही साहित्य उपलब्ध है। मराठी म उनके अनेक अभग मिलते हैं जिनमे कृष्ण-लीलाओ का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है इनके हिन्दी के पद भी भक्ति-भाव पूर्ण है दो पद देखिए—

उठो तात मात भये प्राप्त रजनी सो तीमीर गई।
मीलत बाल सकल गुवाल सुन्दर कन्हाई ॥१॥
जागो गोपाल लाल जागो गोविन्दलाल जननी बलि जाई ॥२॥
सगी सब फिरत बिमन तुम बीन नही छुटत दयन।
त्यजो शयन कमल नयन सुन्दर सुखदाई ॥३॥
मुखते पट दूर कीजो, जननी कु दर्षं दीजो।
दधी खीर माग लीजो खाड मिठाई ॥४॥
जपत-जपत शाम राम सुन्दर मुख सदा राम।
थाटी की छुट कछु भानुदास पायी।

(२)

जमुना के तट धेनु चरावत
राखत है गैया, मोहन मेरो सैया
मोर पत्र सिर छत्र सुहाये, गोपी धरत बंहिया।
भानुदास प्रभु भगत को वत्सल, करत छत्र छइया।

श्री एकनाथ

भानुदास के प्रपौत्र श्री एकनाथ का जन्म शक सवत् १४५० के लगभग पैठण में हुआ। आपकी ग्रन्थ-रचनाओ का आरम्भ ही चतु श्लोकी भागवत की टीका से हुआ। आपके गुरु श्री जनादन स्वामी भगवान् दत्तात्रेय के उपासक थे। श्री एकनाथ बचपन से ही ईश्वरानुरागी थे। छ वष की अवस्था मे आपके पितामह ने आपका यज्ञोपवीत सस्कार किया। माता पिता शैशवावस्था मे ही कालवश हो गये थे। आपके भरण-पोषण का भार आपके दादा (पितामह) दादी ने वहन किया। व्रतबन्ध के पश्चात् अल्पकाल मे ही आपने ब्रह्मकम का अध्ययन पूर्ण कर लिया। एक दिन उन्हे स्वप्नदृष्टान्त हुआ और वे गुरु-अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से देवगिरि गढ के अधिकारी श्री जनार्दन स्वामी के पास गये। वहाँ दत्तचित्त रहकर पठन-पाठन पूरा किया। गुरु की अनन्यभाव से सेवा की। फाल्गुन बदी ६, शके १४८० को गुरु जनादन स्वामी ने आपको उपदेश दिया। फाल्गुन बदी ६, का

श्री एकनाथ जी के जीवन मे बहुत महत्त्व है। यही दिन आपके गुरु का और आपका निर्वाण दिन भी है। महाराष्ट्र मे यह एकनाथ षष्ठी के रूप मे आज भी अत्यन्त श्रद्धाभाव से मनाया जाता है। एक बार जनादन स्वामी के साथ आप तीथ यात्रा पर गये। एक दिन गोदावरी नदी के किनारे पर एक ब्राह्मण के घर पर चतुश्लोकी भागवत पर प्रवचन हो रहा था। इन दोना ने वह सुना। थोडे दिन बाद जब आप दोनो ने पुन अपनी तीथ-यात्रा प्रारम्भ की तब यह ब्राह्मण भी उनके साथ हो लिया। प्रति रात्रि मे वह भागवत पर प्रवचन करता था। थोडे दि। बाद वह तीनो त्र्यवकेश्वर (नासिक) पहुँचे। वहा जनादन स्वामी ने श्रीएकनाथ चतुश्लोकी भागवत पर टीका लिखने की आज्ञा दी। गुर्वाज्ञा के अनुसार श्रीएकनाथ ने टीका लिखना प्रारम्भ किया और नासिक मे ही उसे पूरा किया। इसकी ओवी सख्या १०३६ है। आपने हस्तामलक, शुकाष्टक, स्वात्मसुख आदि ८ १० अध्यात्मपरक ग्रन्थ लिखे है। इनके अतिरिक्त भागवत के एकादश स्कव पर भी आपने विस्तृत टीका लिखी है। यह ग्रन्थ महाराष्ट्र मे अत्यन्त लोकप्रिय है। ज्ञानेश्वरी के बाद लोकप्रियता मे और पूज्यता मे नाथ-भागवत का ही क्रमाक लगता है। आपने रुक्मिणी स्वयवर पर भी एक काव्य ग्रथ लिखा है। इसमे भी अध्यात्मपरकता है। आपने रामायण भी लिखी है। स्फुट अभग और पदो की भी आपने रचना की है। अभगो मे भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला वर्णित है। अन्य विषयो पर भी आपने अभग रचना की है। बाललीला के अभगो का आधार श्रीमद्भागवत का दशम स्कध है। श्रीकृष्ण भगवान् की मुरली के अद्‌भुत सामथ्य का वर्णन आपके अभगो मे अनेक स्थान पर मिलता है। उदाहरण के लिये निम्नाकित अभग द्रष्टव्य है—

भुल विले वेणुनादे। वेणु वाजीवला गोंविदे ॥१॥
पागुलले यमुना जल। पक्षी राहिले निश्चल ॥२॥
तृण चरे लब्ध झाली। पुच्छ वाहू निया ठेली ॥३॥
नाद न समाये त्रिभुवनी। एका भुलला जर्नादिनी ॥४॥

गोवि द की मुरली की ध्वनी ने सबको मोहित कर लिया है। मानवी सृष्टि भी इस वेणुनाद से मोहित है, इसमे तो कुछ आश्चर्य नही किन्तु यमुना जल उस ध्वनि से मोहित हो, बहना बन्द हो जाता है। तृण यही जिनका खाद्य है ऐसे पशु भी उस से लुब्ध हो जाते हैं, पक्षी भी उडना भूल कर निश्चल हो जाते हैं। त्रिभुवन मे भी वह नाद नही समाता। जनादन स्वामी का शिष्य एकनाथ उस ध्वनि से मोहित हो गया है। इन पक्तियो को पढकर भक्तप्रवर सूरदास की 'मुरली स्तुति' का सहसा स्मरण हो आता है।

सूरदास कहते है—

जब हरि मुरली अधर धरत।
थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुना जल न बहत ॥
खग मोहै, मृग-जूथ भुलाही, निरखि मदन-छबि छरत ॥
पसु मोहै, सुरभी विथकित, तृन दतनि टेकि रहत ॥
सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत ॥
सूरजदास भाग है तिनके जे या सुखहि लहत ॥

साम्य की दृष्टि से दोनो पदो की निम्नाकित पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं —

'नाम महिमा' वर्णन देखिए—

नामापाशी तिष्टे देव। नामापाशी वसे भाव।
नामापाशी मुक्ति गौरव। अहर्निशी वसतसे ।।१।।
नामापाशी ऋद्धि सिद्धि। नामापाशी ते समाधि।
नामे तुटती उपाधि। जन्मो जन्मीच्या ।।२।।
नामापाशी भुक्ति मुक्ति। नामापाशी ते विरक्ति।
नामे पातके नासती। बहुत जन्माची ।।३।।
एका जर्नादनी नाम। गाता निरसे भवभ्रम।
साधन उत्तम। कलियुगा माझारी ।।४।।

नाम के पास 'देव' खडा रहता है। नाम के पास ही भक्ति रहती है। नाम के पास दिनरात मोक्ष-सुख (गौरव) रहता है। नाम के पास ऋधि-सिद्धि, समाधि रहती है। नाम क कारण ससार यातनाएँ दूर होती हैं। भुक्ति और मुक्ति तथा विरक्ति नाम के पास रहती हैं। नाम से जन्मजन्मातर के सब पाप भस्म हो जाते हैं। जर्नादन स्वामी क शिष्य एकनाथ कहते है कि नाम-गान से भव-भ्रम दूर होता है, इसलिये इस कलियुग मे यह उत्तम साधन है।

कृष्ण भक्ति परक अभगो और पदो के अतिरिक्त श्री एकनाथ ने लीला विनोदपरक काव्य-रचना भी की है। उनमे आध्यात्मिकता अधिक है, कि तु मूल कथा-भाग कृष्ण चरित्र विषयक ही है। 'हलदुली' नामक स्फुट काव्य मे भगवान् कृष्ण और रुक्मिणी ने विवाह समारोह मे परस्पर हल्दी लगाने के प्रसग का वर्णन है। 'कृष्णदान' नामक अन्य काव्य मे, 'सत्यभामा ने नारद को कृष्ण भगवान् का दान 'दिया' इस सुन्दर और विनोद पूर्ण कथा का निरूपण किया है। एकनाथ ने भक्त चरित्रो का वर्णन किया है, उसमे कृष्ण सखा सुदामाजी का चरित्र वर्णित है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत का प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप मे आधार लेकर श्री एकनाथ जी ने प्रचुर मात्रा मे रचना की है। वारकरी सम्प्रदाय मे श्री एकनाथ जी को ज्ञानेश्वर का अवतार माना जाता है। महाराष्ट्र मे भागवत धर्म का प्रसार करने वाले सतो और भक्तो मे एकनाथ अग्रगण्य हैं। आपने 'रुक्मिणी स्वयवर' नामक काव्य की भी रचना की है। मराठी साहित्य मे रुक्मिणी स्वयवर पर अनेक काव्य रचे गये हैं किन्तु एकनाथ का काव्य श्रेष्ठ है। रुक्मिणी कृष्ण (जीव और शिव का) विवाह इसमे वर्णित है। इसका मूलाधार दशम स्कध अध्याय ५२-५४ हैं। एकनाथ की रचनाओं मे भागवत ग्रथ सर्वप्रिय और सर्वपूज्य है। उसने परवर्ती कवियो को भी प्रभावित किया है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कध पर की यह टीका विस्तृत एव हृदय ग्राही है। यह टीका शके १४१५ में काशी-क्षेत्र मे पूर्ण हुई थी।

इस टीका मे श्री एकनाथ ने भक्ति का माहात्म्य स्पष्ट किया है। वे कहते है कि 'ज्ञान-भक्ति' यह 'पचम पुरुषार्थ' सन्त और भक्तों ने ससार को दिया है। एक स्थान पर आपने भक्ति और मुक्ति का सम्बन्ध निम्न रूपमे स्पष्ट किया है—

भक्तीच्या पोटा मुक्ति पैं आली । भक्तीने मुक्तीते वाढविले ।।
भक्ती ते माता मुक्ति ते दुहिता । जाणोनि तत्त्वता भजन करी ।।

भक्ति के गभ से मुक्ति का जन्म हुआ । भक्ति ने मुक्ति का भरणपोषण किया । भक्ति माता है और मुक्ति दुहिता, यह जानकर परमेश्वर-भजन करना चाहिये ।

एक स्थान पर भक्ति और ज्ञान का सम्बन्ध स्पष्ट करते समय वे कहते है—

भक्तीचे उदरी जन्मले ज्ञान । भक्तीने ज्ञानासी दिधले महिमान ।
भक्ती ते मूल ज्ञान ते फल । वराग्य केवल तेथीचे फूल ।।

भक्ति के गभ से ज्ञान का जन्म हुआ । भक्ति ने ज्ञान का माहात्म्य बढाया । भक्ति मूल है और ज्ञान फल, वैराग्य तो केवल उस का फूल ही है ।

इसलिये—

भक्ति प्रेमावाण ज्ञान नको देवा । अभिमान नित्यनवा तयाभाजी ।
प्रेमसुख देई प्रेम सुख दई । प्रेमेवीण नाही समाधान ।।

हे भगवन् ! भक्ति प्रेम के बिना मुझे ज्ञान नही चाहिए । ज्ञान से तो नित्य नवीन प्रकार से गर्व बढता है । इसलिये मुझे भक्ति सुख दो, भक्ति-सुख के बिना समाधान नही । एकनाथ का यह ग्रथ यद्यपि टीकात्मक है, तथापि उसमे स्थान स्थान पर उनकी स्वतत्र प्रज्ञा और पूर्णानुभव तथा ज्ञान का दशन होता है ।

एकनाथ के पश्चात् श्रीमद्भागवत पर जिन कवियो ने टीका लिखी, उनमे शिवकल्याण नामक कवि भी एक है । आपने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध पर टीका लिखी है । यह टीका शके १५५० के लगभग लिखी गई । इसमे कवि की स्वतत्र प्रज्ञा के दशन अनेक स्थानों पर होते है । कवि कृष्णोपासक थे । अध्यात्म प्रेमी होने के कारण आपने अध्यात्मपरक अथ लगाते हुए, कृष्णचरित्र का ज्ञान किया है । दशम स्कध पर आधारित श्रीकृष्ण 'जन्मपचाध्यायी', 'रासपचाध्यायी', 'ब्रह्म स्तुति', 'वेदस्तुति और 'प्रकरण' रसपूण है । सगुण परमात्मा ही निर्गुण है, उन दोनो मे अभेद है, यह तथ्य कवि ने निम्नाकित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है–

जेवि नटासी अर्पिता दान । नट्यासीच जाले अपण ।
तेवि प्रतिपादिता सगुण । निर्गुणताचि लाभे ।।

नट को पारितोषिक दिया तो वह जिस प्रकार स्वाग करने वाले को ही मिलता है, उसी प्रकार सगुण ब्रह्म के प्रतिपादन से निर्गुणता ही प्राप्त होती है ।

एकनाथ की भागवत की टीका ने इस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से परवर्ती कवियो पर प्रभाव डाला है ।

शके १४१० के आसपास महाराष्ट्र मे रमावल्लभ नाम के एक कवि विद्यमान थे । आपने श्रीमद्भागवत के दशम स्कध के आधार पर 'दशकनिर्धार' नामक प्रकरण की रचना की है । आपने कृष्ण-भक्तिपरक अनेक पदो की भी रचना की है । आप कृष्णभक्ति का प्रसार करने हेतु नीचे दक्षिण मे भी गए । कारबार जिले मे आपकी शिष्या आवडी के मठ मे आज भी कृष्ण जन्मोत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है । आपने 'श्रीकृष्ण जयन्ती व्रतोत्सव-भजन' नामक एक पुस्तिका लिखी है । उसमे श्रीकृष्ण जन्मोत्सव मनाने का विधि-विधान

वर्णित है। उसमें प्रात स्मरण, काकड आरती, नित्य भजन सप्ताह के प्रत्येक दिन के भजन, ध्यानोपासना, पूजोपचार श्रीकृष्ण-जन्म महोत्सव, होलोत्सव आदि पर आपके द्वारा रचित अनेक सुन्दर पदो का सग्रह है। आपका—

"चिमरणेसे मूल याचा चिमरणासा पावा।" (छोटा-सा बालक उसकी छोटी-सी बांसुरी') यह पद अत्यन्त सरस है। इसमे भगवान् कृष्ण का बाल स्वरूप वर्णित है।

जनी, जनादन नामक कवि ने भी श्रीमद्भागवत के आधार पर 'निर्विकल्प ग्रथ' अर्थात् 'उद्धव बोध' नामक ग्रथ लिखा है। इस कवि का समाधि शक १५२३ है।

परमात्मा सृष्टि से अलिप्त है—किस प्रकार ?

जैसे अग्नि बिना। लोहो न पिटवे जागा।
परन्तु लोखडासी अग्नि जाना। अलिप्त असे ॥
कि फुलाचा परिमलु जैसा। फुली सामावला आपैसा।
अलिप्त रूपे जैसा। फुली असे ॥
फुलाभाजि जैसा परिमलू। तसा जगाभाजि मी गोपालु।
ऐसा ही सव भूगोलू। अलिप्त पर्णे रचिला ॥

अग्नि के बिना लोहा पीटा नही जा सकता, किन्तु जिस प्रकार अग्नि लोहे से अलिप्त है जिस प्रकार पुष्प का परिमल सहजता से पुष्प मे ही रहते हुए भी पुष्प से अलिप्त है, वह परिमल जिस प्रकार पुष्प मे समाया हुआ है उसी प्रकार मैं गोपाल भी इस जगत् मे समाया हूँ। मैंने अलिप्त रहकर इस भूगोल की रचना की है।

शिव कल्याण के समकालीन कवि लोलिंबराज ने भी दशम स्कध पर एक विस्तृत टीका लिखी है।

इसी काल मे वारकरी सम्प्रदाय के आधार-स्तभ श्री तुकाराम महाराज का (शके १५३०) प्रादुर्भाव हुआ। आप एक महान् विट्ठल भक्त थे। प्रपच से आपको वैराग्य हो गया था। आपने भडारा पर्वत पर श्री एकनाथ के भागवत का पारायण किया। आपके सहस्रावधि अभग उपलब्ध हैं। आपकी रचना पर श्रीमद्भागवत का प्रभाव स्पष्ट रूपेण दृष्टिगोचर होता है। नाम सकीर्तन की महत्ता आपने अनेक स्थानो पर प्रकट की है—

नाम सकीतन साधन पैं सोपें। जलतील पापे जन्मा तरीची ॥
न लागती सायास जावे वनान्तरा। सुखे येतो घरा नारायण ॥

नाम सकीतन एक अत्यन्त सरल साधन है। उसका अवलम्ब करने से जन्म जन्मान्तर के पाप भस्म हो जावेगे। इस साधन को अपनाने मे कुछ विशेष कष्ट नही उठाने पडते। नारायण मकान पर सुख से आते हैं।

आपके नाम संकीर्तनपरक, उपदेशपरक, समाज-सुधारक-परक अनेक अभग हैं। आप महान् वैष्णव थे। वारकरी सम्प्रदाय मे आपके सम्बन्ध मे बहुत पूज्य भाव है। आपको भागवत मन्दिर का कलश माना जाता है। 'तुका झालासे कलस', आपका निर्माणकाल शके १५७१-७२ है। आपकी अभग-रचना बहुत प्रसिद्ध है। 'अभगवाणी प्रसिद्ध तुकयाची' ॥ तुकाराम महाराज कहते हैं—

ज्याचे जया ध्यान। नेचि होय त्याचें मन ॥
म्हणउनि अवघे सारा। पाडुरग दृढ धरा ॥पृ०॥

जो जिसका ध्यान करता है वह उसी के रूप मे जाकर मिलता है, इसलिये सब कुछ छोडकर पाडुरग विठ्ठल (श्रीकृष्ण) के चरणो का ध्यान करो।

× × × ×

महाराष्ट्र मे भागवत मन्दिर की रचना करने वाले चार महाकवि ज्ञानेश्वर, नामदेव एम्नाथ व तुकाराम हुए। इन सबको भागवन सम्प्रदाय (वारकरी सम्प्रदाय) मे अत्यन्त पूज्य भाव से देखा जाता है। इस सम्बन्ध मे निम्नाकित अभग बहुत प्रसिद्ध है—

सत कृपा झाली। इमारत फला आली ॥
ज्ञानदेवे रचिला पाया। उमारिले देवालया ॥
नामा तयाचा किंकर। त्याने केला हा विस्तार ॥
जनादनी एकनाथ। स्तम्भ दिला भागवत ॥
भजन करा सावकाश। तुका झालासे कलस ॥

सत कृपा मे भागवत-मन्दिर की यह इमारत फलित हुई है। ज्ञानदेव ने नीव डालकर यह मन्दिर खडा किया। नामदेव उसके सेवक है, उन्होंने इस मन्दिर का विस्तार किया। जनादन-स्वामी के शिष्य एकनाथ थे। ये इस मदिर के आधार स्तम्भ है। आनन्द से सावकाश भगवद् भजन कीजिये। इस मन्दिर के कलश श्री तुकाराम है।

तुकाराम महाराज के अनेक शिष्य थे। उनमे सोलह बहुत प्रसिद्ध थे। इन्हे टालकरी कहते थे। इनकी भक्तिपरक रचना उपलब्ध है। इस रचना पर भी श्रीमद्भागवत का अप्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

× × × ×

शके १५८६ के आस-पास देवदास नामक कवि ने 'व्यकटेशस्तोत्र' नामक स्तोत्र लिखा है। व्यकटेश अर्थात् वैकुण्ठ नायक। सगुण भक्ति से यह स्तोत्र ओत प्रोत है। शके १५९४ के आस पास महाराष्ट्र मे 'वामन' नामक एक महान् सगुणोपासक भक्त विद्यमान थे। आपने भगवद् गीता पर यथाथ दीपिका नामक टीका लिखी श्रीकृष्ण मे अव्यभिचारिणी सगुण भक्ति रखना यही भगवद् गीता का सार है। ये कवि महान् विद्वान् थे। इसलिये इन्हे वामनपण्डित कहा जाता है। आपके गुरु सच्चिदानन्द स्वामी थे। सच्चिदानन्द स्वामी ने वामनपण्डित को भागवी वारुणी' विद्या की शिक्षा दी। ये शक १५९४ के आसपास विद्यमान थे। 'भगवद्गीता पर टीका लिखने वाले कवि को श्रीकृष्ण भगवान् का अनन्य भक्त होना चाहिए, उसे अन्य किसी देवता की भक्ति नही करनी चाहिये' इस प्रकार का स्पष्टमत आपने अपने ग्रन्थ मे अनेक बार स्पष्ट किया है। आपने भागवत के आधार पर अनेक प्रकरण लिखे हैं—जैसे ब्रह्म स्तुति' चतु श्लोकी भागवत, अपरोक्षानुभूति, ध्यानमाला' आदि। भगवान् कृष्ण की बाललीला वनविहार, रासोत्सव आदि पर भी भागवत दशमस्कन्ध के आधार पर आपके द्वारा रचित काव्य अत्यत सरस और मनोहारी है। आपके 'राधा भुजग' 'राधा विलास' कात्यायनी व्रत, आदि प्रकरण भी सरस है। किन्तु इनमे यत्र तत्र उत्तान शृङ्गार परक वर्णन भी आता है। आपके द्वारा किया हुआ भगवान् कृष्ण की लीलाओं का वणन आज भी मराठी भाषी लोगो को अत्यन्त प्रिय है। इन सब काव्य ग्रन्थो मे शब्द लालित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है।

भावनाओ का चित्रण भी सरल तथा स्वाभाविक है। मानिनी सत्यभामा का यह चित्र देखिए। भगवान् कृष्ण की पटरानी सत्यभामा भगवान् से जब रुष्ट हो गयी, उस समय का यह वर्णन है।

गडबडा धरणीवर लोलते। वदवती नकवीसहि लोलते।
रडत मूर्छित होय घडी घडी। पवन निश्चल नेत्र न ऊघडी।
अलकहार गलयातिल तोडिते कुरल केश मुखावरि सोडिते।
कर युगे उर मस्तक ताडिते। वसन आणिक कचुकि फाडिते॥

वे भूमि पर लेटी हुई है, कवि भी उसकी दशा का वर्णन करने मे असमर्थ हैं। वे रोती है और बार बार मूर्छित हो जाती है। नेत्र-पलक निश्चल है उन्हे वे खोलती ही नही हैं। गले का हार तोड रही हैं और घुघराले बाल मुख पर बिखेर रही है। दोनो हाथो से सीना और मस्तक पीट रही है और वस्त्र और कचुकी फाड रही हैं।

वामन पण्डित का जिन पर प्रभाव पडा है ऐसे दो कवियो ने भागवत दशमस्कन्ध के आधार पर रुक्मिणी स्वयवर काव्य की रचना की। इनमे से एक का नाम है नागेश और दूसरे का विठ्ठल। नागेश के काव्य मे अश्लील वर्णनो का आधिक्य है। विठ्ठल ने अपने रुक्मिणी-स्वयवर काव्य की रचना सस्कृत काव्यो के अनुसार करने का भरसक प्रयत्न किया है। इस काव्य मे भिन्न भिन्न छन्द, भिन्न भिन्न बध, चमत्कृतिजनक यमक, आह्लाददायक अनुप्रास आदि का प्राचुर्य है। अपना छन्द-शास्त्र नैपुण्य और चित्रकाव्य रचना कौशल का प्रदर्शन कर विद्वज्जनों से प्रशसा प्राप्त करने की इनकी हार्दिक इच्छा थी। इस कारण उसके काव्य मे अनेक स्थलो पर क्लिष्टता आ गई है। लगभग शके १६५६ मे कृष्णदयार्णव नामक कवि ने भागवत के दशम स्कन्ध पर टीका लिखी। शके १६४० मे महारोग से पीडित हो जाने के कारण उन्होंने गुर्वाज्ञा से यह टीका लिखना शुरू किया था। छ साल की उपासना से इन्हे महारोग से तो छुटकारा मिल गया, किन्तु साठ वर्ष की अवस्था मे स्वीकृत कार्य पूरा हो सकेगा या नही इस सम्बन्ध मे उन्हे आशका थी। किन्तु भगवान् पर भरोसा रखकर उत्तरार्ध लिखने का कार्य आपने किया। शके १६६२ मे आप समाधिस्थ हुए तब तक उत्तरार्ध के केवल ३७ अध्याय पूर्ण हो पाये थे। इनके पश्चात् इनकी आज्ञा से इनके शिष्य 'उत्तमश्लोक' ने यह ग्रन्थ पूर्ण किया। भगवान् कृष्ण के जन्मकाल के समय का वर्णन देखिये —

दिशा सुप्रसन्न सकल। गगन निरभ्र निर्मल। उदय पावला तारकमेल। वर्षा काल भ्रमता ही॥१॥ मगलोत्साह घरोघरी। शोभा आनन्द नगरो नगरी। दुःख शोक दोष दरिद्री। सुखसागरी बुडाले॥२॥ (तुलनीय भागवत)

सब दिशायें प्रसन्न थीं। आकाश निर्मल और निरभ्र था और वर्षाकाल होते हुए भी तारे उदित थे प्रत्येक घर मे मगल-उत्सव हो रहे थे और नगर नगर में आनन्द का वातावरण था। दुखी और दरिद्री सुख समुद्र मे मज्जन कर रहे थे।

कवि आगे कहता है।—

श्रीकृष्णाचा जन्मकाल। तेणे आनन्द भरित जल। सर्वभूतात्मा गोपाल। सुख सुकाल

सर्वासी ।। नद्या वाहति प्रसन्न जले । शुद्ध सत्वात्मके सुविमली । त्यजिली रजतमाची डहुले। शुद्ध मेले ज्याचेनी ।।

भगवान् कृष्ण का जन्मकाल होने से जल भी आनन्द से युक्त था । गोपाल कृष्ण के सब भूतात्मा होने से सब चराचर सृष्टि सुखी थी । सरिताएँ प्रसन्न एव सात्विक जल से परिपूर्ण हो प्रवाहित हो रही थी । रजतम के कीचड का उन्होने त्याग कर दिया था ।

कृष्ण दयार्णव के इस ग्रन्थ की ओवी सख्या ४२,००० है ।

इसी काल के दूसरे कवि हैं, श्रीधर स्वामी । आपने 'हरिविजय' नामक एक काव्य ग्रन्थ लिखा है । आबालवृद्ध और महिलाएँ भी आपके ग्रन्थ का पाठ करती है । आपकी भाषा सरल एव ओजवती है । इस ग्रन्थ मे रसपूर्ण वाणी मे भगवान् कृष्ण की लीलाओ का वर्णन है । इस ग्रन्थ का मूल आधार श्रीमद्भागवत ही है । श्रीकृष्ण की बाललीलाओ का वर्णन अत्यन्त सरस है । एक बार श्रीकृष्ण के नटखटेपन से त्रस्त यशोदा माता ने गोपियो के परामर्श से गणेश चतुर्थी का व्रत किया । सकटा चतुर्थी को माता ने पूजा सामग्री और इक्कीस 'मोदको' का प्रसाद तैयार कर थाल मे श्रीगणेश के सम्मुख रखा । वे अन्दर धूप दीप आदि लाने गईं, यह देख भगवान् ने चुपचाप सब लड्डू मोदक खा डाले । यशोदा माता को वापस आने पर थाल खाली दीखा तब कृष्ण के सम्बन्ध मे आशका उत्पन्न हुई । उनसे इस सम्बन्ध मे जब पूछताछ की तब भगवान् ने कहा, "माँ, अभी-अभी यहाँ एक सहस्र चूहे आये थे एक बडे चूहे पर गणेशजी बैठे हुए थे । उन्होने अपनी सूण्ड से सबके सब लड्डू खीच लिये । डर के मारे मै कुछ बोल न सका । माँ, अब मुझे बहुत भूख लगी है, जल्दी कुछ खाने को दो ।" तब क्रुद्ध होकर माता बोली, "दिखा अपना मुँह ।" तब भगवान् ने कहा, "लड्डू तो बहुत थे, मेरे इस छोटे से मुख मे वे कैसे समायेगे, मुझे दड न दो । गणेशजी लड्डू ले गये और मुझ पर व्यथ मे ही आशका करती हो ।" यशोदाजी नही मानी, तब भगवान् ने मुख खोलकर दिखाया ।

इस प्रकार की अनेक बाललीलाएँ श्रीधर स्वामी के इस ग्रथ में वर्णित हैं। इस ग्रन्थ की रचना शके १६२८ में हुई । 'रामविजय', 'पाण्डवप्रताप' आदि अन्य ग्रन्थो की भी श्रीधर स्वामी ने रचना की है ।

शके १६५१ मे मोरोपत नामक सुप्रसिद्ध मराठी कवि का जन्म हुआ । आपने अनेक काव्य-ग्रथो की रचना की है । आप विद्वान्, बहुश्रुत एव भाषा पडित थे । आपकी रुक्मिणी-गीत नामक एक अत्यन्त सरस काव्य-रचना उपलब्ध है। यह अत्यन्त सरल भाषा मे है । कृष्ण विजय नाम का एक अन्य काव्य ग्रन्थ भी आपने लिखा है । यह ग्रन्थ सस्कृत प्रचुर शब्दो के कारण बहुत किलष्ट है । इस ग्रन्थ को 'बृहद्दशम' भी कहते है । मूल भागवत के अनुसार इसके भी ९० अध्याय है । प्रथम ५४ अध्याय 'आर्या' छद मे है । किन्तु आगे के २५ अध्याय बहु छन्दात्मक है और इसके बाद के अध्यायो का छन्द सुलभ-आर्या छन्द अर्थात् गीति छन्द है । अन्तिम १०-११ अध्याय अत्यन्त सरल, सरस एव मनोहारी है । सुदामाजी को मणिकनक मडित आसन पर बिठाकर भगवान् ने उन्हे स्वर्ण की थाली मे भोजन कराया, इस प्रसग का बडा ही मनोहारी वर्णन कवि ने किया है, उसमे की कुछ पक्तियाँ निम्नाकित है—

ब्राह्मण त्या रात्रीत प्रभुने मणिक नकमडिता पाटी ।
बैसविला, सन्माने जेवविला काचनाचिया ताटी ॥
स्वकरे साक्षात् लक्ष्मी या भावोजीस आग्रहे वाढी ।
काढी गुरुगोष्टी मुख करण युगाहि तृप्ती दे गाढी ॥

भगवान् ने उस रात उस ब्राह्मण को मणिकनकमडित आसन पर (पटे पर) सम्मान के साथ बिठाया और उसे काचन की थाली मे भोजन कराया। साक्षात् लक्ष्मीदेवी ने अपने हाथो से देवर को आग्रह के साथ भोजन परसा। इसी समय भगवान् ने गुरुग्रह की बाते सुनाकर उसके मुख और श्रवणेंद्रियो को तृप्त किया। (भोजन से मुख को और बचपन की बातो से श्रवणेन्द्रियो को) द्रौपदी कृष्ण सखियों से उनके विवाह समय की पुरानी बाते पूछ रही है, इस प्रसग का बहुत मनोरम चित्र कवि ने खीचा है—

द्रौपदी वैदर्भी से पूछती है—

हे वैदर्भि ! स्वमुखे स्वविवाहोत्सव कथा मला सागे ।
कैसे वरिले तुजला श्रीकृष्णे दीनवत्सले आगे ॥

हे वैदर्भी, दीनवत्सल श्रीकृष्ण ने तेरा वरण किस प्रकार किया। यह विवाहोत्सव कथा अपने मुख से मुझे सुना।

उसी प्रकार—हे सत्यभामा,

'भामे' या मेघाने कैसे सौदामिनीस तुज वरिलें ? ॥

तुझ सौदामिनी का इस मेघने कैसे वरण किया यह बता। और जाम्बवन्ति से,

हे जाम्बवन्ति ! त्वत्कर-सरसिज कैसे रमाधवे वरिले ?

तेरे कर-सरसिज का रमापति श्रीकृष्ण ने किस प्रकार ग्रहण किया, यह मुझे निवेदन कर।

इन प्रश्नो का कृष्ण-सखियो का दिया हुआ उत्तर भी उतना ही मनोरम है। जब वैदर्भी को रथ मे बिठाकर भगवान् जाने लगे उस समय का वर्णन देखिए—

हसे मुक्ता नेली मग केला कलकलाट काकानीं ।
हाकानी नभ भरिले जाय सुराँच्या हि नाद हाकानी ॥

हस मुक्ता को ले गया यह देख काक चिल्लाने लगे, उनकी इस चिल्लाहट से नभ भी निनादित हुआ और वह नाद सुरो के कानो तक पहुँचा।

सुभद्रा-हरण की कथा भी अत्यन्त मधुर है।

इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध और उत्तराध का कुछ अश क्लिष्ट होने से मोरापत ने दशम स्कध पर सरल भाषा मे दूसरा काव्य ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ मे हर गीति के आद्याक्षरों से 'नमो भगवते वासुदेवाय' यह मत्र पूरा किया है। इस प्रकार, ११८८ गीतियाँ लिखकर १०८ बार इस मत्र का पारायण किया है। प्रारभ मे 'श्रीमानुरु गायो मुकुन्दो जयति। इस मत्र से बारह आर्या पूर्ण की हैं और यह 'साष्टशत' मत्रमणियो की माला प्रभुचरणो मे अर्पण की है। केवल दशम स्कध पर समाधान न मान कर मोरोपत ने शेष ११ स्कधों पर भी

रचना की। इस सपूण ग्र थ मे 'नमो भगवते वासुदेवाय' इस एकादशाक्षरी मत्र की तीन मालाएँ पूर्ण की है। प्रत्येक माला मे ३३३ मत्र है।

इस ग्रन्थ के पश्चात् शके १७०८ के लगभग मोरोपत ने 'हरिवश' नामक काव्य ग्रथ की रचना की।

इसके अतिरिक्त आपने रामायण महाभारत आदि महाकाव्यो के आधार पर अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की है। आपकी कुछ स्वतत्र रचनाएँ भी है, कि तु वे सब भक्तिपरक ही है। आप वृत्ति स पौराणिक थे। आपका 'महाभारत' बहुत लोकप्रिय है। आपने १०८ रामायणो की भी रचना की है। उनमे से कई मे 'श्रीराम जयराम जयजयराम' नह मत्र साधना है। अनेक रामायण चित्र-रामायण हैं। आपकी सार-रामायण मे अनेक नवी छन्दो का प्रयोग हुआ है।

मोरोपत का अनुकरण कर अनेक कवियो ने आर्यागीति छन्द मे रचना की। इसी काल के नारायण नामक कवि की भागवत के अष्टम स्कध मे वर्णित शिवमोहिनी आख्यान पर आधारित रचना उपलब्ध हुई है। यह काव्य भी सरस है। इसमें वर्णित मोहिनी का यह चित्र देखिए—

रुण झुण पैजण वाजवि तैशा छुम छुम नितबकिंकिणिका।
वेणी फणिवत् लोले झलकति रद पक्ति रत्नमणिकणिका॥
उजव्या हस्ते खेले डरयाने सावरूनि वस्त्राते।
लाजे 'हर' वश केला तीने टाकूनि काम शस्त्राते॥

कन्दुक क्रीडा करने वाली उस मोहिनी ने अपने नूपुरो की 'रुमझुम रुमझुम' ध्वनि की और नितब किंकिणिकाओ का भी मधुर शब्द किया। फणि के समान उसकी चोटी हिल रही थी और रत्नमणिकणिकाओ जैसी दतपक्ति शोभायमान हो रही थी। वह अपने बाएँ हाथ से कन्दुक-क्रीडा कर रही थी और दाहिने हाथ से वस्त्र सम्हाल रही थी। धीरे से लज्जित होने का उसने अभिनय किया और इस प्रकार काम शास्त्र से उसने 'हर' को वश मे कर लिया।

मराठी मे सपूण भागवत पर टीका लिखने वाले जो कतिपय कवि हुए है उनमें ज्योतिपतदादा का नाम विशेष उल्लेखनोय है। आपने सम्पूण भागवत पर टीका लिखी है। यह टीका ओवी छन्द और अभग छन्द मे है। आप विट्ठल के परम भक्त थे। आप सतारा जिले के मूल निवासी थे। आपको पेशवा ने बडी जागीर देकर झाँसी प्रान्त मे भेजा था। पानीपत की लडाई मे आपने भाग लिया था। तत्पश्चात् आपको विरक्ति हुई। नौकरी छोडकर आप काशी गये। वहाँ आपको किसी ने श्रीमद्भागवत ग्रन्थ भेट किया। दैवी कृपा से प्राप्त इस ग्रन्थ पर आपने मराठी मे विस्तृत टीका लिखी है। आप एक बार पढ़रपूर विट्ठल दर्शनार्थ गये। वहाँ उन्होने एक सहस्र विट्ठल मन्दिर बनाने की प्रतिज्ञा की और उसे पूरी करने के लिए जावन पर्यन्त कोशिश की। इनके बनाये हुए लगभग ७५० देवालय आज भी विद्यमान हैं। ज्योतिपतदादा शके १७१० मे समाधिस्थ हुए। शके १६९६ में भिक्षु कवि द्वारा 'उद्धव-गीता' पर रचित 'भक्ति अनुभव' नामक एक और ग्रन्थ उपलब्ध है। यह रचना भी अत्यत सरस है।

इन कवियो के अतिरिक्त जानपद भाषा मे लावणी और पोवाडो की रचना भी इसी काल मे होने लगी थी। इनकी रचना करने वाले 'शाहीर' शृङ्गारपरक और वीर रसात्मक लोक गीतो की रचना तो करते ही थे, किन्तु इनमे से अनेक शाहीरो ने भागवतान्तगत कृष्ण-कथा पर भी लावणियो की रचना की है। रामजोशी नाम के एक बहुत प्रसिद्ध कवि ने राधा-सखि सवाद नामक एक अत्यत सरस प्रकरण की रचना की है। छेकापह्नुति का एक उत्कृष्ट उदाहरण देखिए—

अम्बरगत परि पयोधराते रगडुनि पलतो दुरी।
काय हाधीट म्हणावा तरी।
तो नदाचा मूल काय गे साग कन्हैया हरी?
नव्हे गे मारुत मेघोदरी।।

पयोधर अबरगत (वस्त्राच्छादित) होते हुए भी उसे रगडकर यह दूर भाग रहा है, देखो तो कितना ढीठ है।

सखि राधा से पूछती है—तो क्या यह नन्द का लडका, नटखट कन्हैया है?

राधा ने उत्तर दिया—नही सखि वह तो आकाश स्थित (अम्बरगत) मेघो (पयोधर) के अन्दर बहने वाली वायु है।

इस प्रकार अनेक श्लेषात्मक प्रश्नोत्तर इसमे वर्णित है। इसका मूल आधार दशम स्कध में वर्णित कृष्ण लीलाएँ हैं। यह एक लोक गीत है किन्तु एक विद्वान् परिष्कृत कवि द्वारा रचित। इसके रचयिता कविराय रामजोशी सोलापूर के निवासी थे। आपके कुल मे अनेक विद्वान् पुरुष हुए। आप भी स्वय विद्वान् थे। किन्तु आपने अपना वशपरपरागत व्यवसाय त्यागकर लोक गीतकारो का व्यवसाय अपनाया।

इन्ही लोक-गीतकारो मे साताप्पा नामक अहीर था। इसने भी कृष्ण लीलाओ पर लावणियो की रचना की है। इसका भतीजा होनाजी एक बहुत प्रसिद्ध लावणीकार था। इसकी कृष्ण चरित्र पर रचित लावणियाँ बहुत सरस एव मनोहारी हैं। 'राधे हा मुकुन्द उचलुनि कडिये घेई' हे राधा इस मुकुन्द को गोद में उठाले) 'मुकुन्द यमुने थडी थडी। खेलतसे मिलवून गडी (यमुना के तीर पर मुकुन्द बालगोपालो को एकत्र कर खेल खेलता है।) 'श्रीरगा कमलाकाता हरि पदरातें सोड' (हे श्रीरग, हे कमलाकात, हे हरि, मेरा आचल छोड दे) आदि लावणियाँ आज भी रसिको का मन मोह लेती हैं। होनाजी द्वारा रचित 'घनाश्याम सुन्दरा श्रीधरा' भी है। यह भूपाली (प्रभाती) उनकी रचनाओ मे सर्वोत्कृष्ट है। आज भी महाराष्ट्र मे प्रभात समय मे इस भूपाली का गान किया जाता है। अरुणोदय के समय जब इस भूपाली के मधुरस्वर सुनाई देते हैं, तब हृदय आनन्द से विभोर हो जाता है। इसकी प्रारभिक पक्तियाँ देखिये, कितनी मधुर है—माता यशोदा कन्हैयाजू को जगा रही है, वे कहती है—

घनश्याम सुन्दरा श्रीधरा, अरुणोदय झाला।
उठि लव करि वनमाली उदयाचली मित्र आला। ध्रु०।।

हे घन श्याम सुन्दर श्रीधर, उठो उठो अरुणोदय हो गया है,

उदयाचल पर भगवान् भास्कर आगये है। होनाजी अंतिम पेशवा बाजीराव के समय विद्यमान था। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक शाहिरो ने कृष्णभक्तिपरक लावणियो की रचना की है। 'सगन भाऊ' नामक एक मुसलमान लावणीकार ने भी कृष्णभक्तिपरक सुन्दर लावणियो की रचना की है।

गगूहैबती नामक लावणीकार की, कृष्ण लीलाओ का वर्णन करने वाली लावणियाँ प्रचुरमात्रा मे मिलती है। ये सब लावणियाँ नाद-मधुर एव सरस है।

गुजराती

मध्ययुगीन भक्ति भावना की दृष्टि से गुजराती भाषा साहित्य भी प्रौढ तथा विशाल है। गुजराती भाषा का प्रारम्भ प्राय १२वी शताब्दी से माना जाता है, परन्तु उसमे स्थिरता १५वी शताब्दी के लगभग आयी। गुजराती साहित्य के इतिहास को चार कालो मे विभाजित किया गया है। पहला काल १२५० ई०–१४५६ ई० तक का माना जाता है। गुजरात जैन धर्म का गढ रहा है। इसीलिए गुजराती का प्रारम्भिक साहित्य जैन धर्म प्रधान है। गुजराती भाषा के आदिकाल मे वीर रस प्रधान रचनाएँ भी पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। गुजराती भाषा मे वैष्णव साहित्य उसके दूसरे काल (१४५६–१६५०ई०) मे लिखा गया जबकि जैन धर्म साहित्य प्रेरणा का स्रोत नही रह गया था तथा उसका स्थान पौराणिक धर्म ने ले लिया था। श्रीमद्भागवत पुराण इस युग की रचनाओ का सबसे प्रबल प्रेरणा स्रोत रहा है। पन्द्रहवी शताब्दी मे गुजराती के प्रसिद्ध कवि श्रीधर व्यास ने भागवत दशम स्कध की सम्पूर्ण कथा कवित्त में लिखी। शायद इसीलिए इस ग्रन्थ को 'कवित्त भागवत' कहा जाता है। कवि ने अपने कल्पना-कौशल से भागवत के आधार पर बडे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये है।

मध्ययुग मे गुजराती भाषा के सबसे समर्थ कवि नरसिंह (१४१४-१४८० ई०) हुए है। उनकी रचनाओ मे भक्ति का बडा रोचक वर्णन हुआ है तथा साथ ही साथ दार्शनिकता का भी पुट है सगीत के समावेश से नरसिंह की रचनाएँ शीघ्र ही लोकप्रिय हो गयी। इनकी आकर्षक तथा प्रौढ रचनाओ के कारण ही इन्हे गुजराती का आदि कवि माना गया है। इनकी रचनाओ का आधार सर्वथा पौराणिक है। नरसिंह मेहता ने अपने आपको एक गोपी के रूप मे ही प्रस्तुत किया है तथा भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओ का वर्णन किया है। उनकी रचनाओ मे 'गोविन्दगमन', 'सुरत सग्राम' और 'सुदामा चरित्र' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राधाकृष्ण के रति-रास का एक चित्र देखिए—

"मर्यादा ने लोपी ने दु खकरी गोपी ने, धोत्री ने, धाइ रण बीच राधे,
दृग असि सज करी, ढाल उरनी धरी भुव शरासन बीच शने साँधे।"

नरसिंह का ११३ पदो वाला 'रास-सहस्र पदी' ग्रन्थ इसी प्रकार के वर्णनो से ओत-प्रोत है। बाल कृष्ण-लीला के वर्णन में भी उन्होंने अद्भुत कौशल दिखाया है। दही मथने के समय गोपियों की सहायता करते हुए बालक कृष्ण का एक चित्र देखिए—

"मोकलो जशोदा जी कुवर तमारो, अम घरे महिडा बोलववा रे जो,
तमारा कानजी ने धूमता रे आवडे, तेउवाने मसे आवी हुँ यारे जो।

सात समुद्रनी गोली रे कीधी, मेरु कीधो रैंवैये रे जो,
वासुकि नागना नेतरा रे कीधा चादा सूरज वे सखैया रे जो।
एक पास कान्हजी कालो रे घूमे, बीजि पास राधिका गोरी रे जो,
खमके छे ककणी, लपके छे वेलिया लटके ते नेतरानी दोरी रे जो।''

'रासहस्र पदी' के अतिरिक्त उनके कृष्ण लीला सम्बन्धी पदो के और भी कई सग्रह हैं, जैसे बाललीला रासलीला, दानलीला, कृष्ण जन्म की बधाई आदि।

श्रीमद्भागवत के लीला सम्बन्धी विशिष्ट पक्ष के अतिरिक्त उसके अद्वैतपरक सामान्य पक्ष का भी नरसिंह मेहना पर बडा प्रभाव पडा, वह सम्पूर्ण सृष्टि को भगवान् कृष्ण की लीलास्थली ही मानता है—

"सच्चिदानन्द आनन्द क्रीडा रे सोनाना पारण माहि झूले।"

उनके अध्यात्मपरक पदो को देखकर श्रीमद्भागवत के दार्शनिक पक्ष का स्मरण हो आता है। एक उदाहरण देखिए—

'नीरखने गगन मा कोन घूमी रह्यो ? तेज हुँ तेज हुँ शब्द बोले,
श्यामना चरणमा इच्छु छु मरणरे अहीया कोई न थी कृष्ण तोले।
श्याम शोभा घणी बुद्धि ना शके कली अनत ओच्छव मा पथ भूली,
जड अने ऐनेन रस करी जणायो पकडी प्रेम सजीबन मूली।
झलहल ज्योति उद्योत रवि कोटमा, हेमनी कोर ज्या नीसरे तोले,
सच्चिदानन्द आनन्द क्रीडा करे सोनाना पारणाँ माँहि झूले—
बत्ती विन तेल विण सूत्र विण जो वली अचप झलके सदा अनल दीवो,
नेत्र विण नीरखवो रूप विण परखवो विण जिह्वाए रस सरस पीवो।
अकल अविनाशी एमनाज जीए कलयो अरध ऊरध नी माहे मराले,
नरसैयाचो स्वामी सकल ब्यापी रह्यो प्रेमना तत या सन्त झाले।'

गुजराती साहित्य के इतिहासकार मीराबाई को भी गुजराती भाषा की कवयित्री मानते है। यह मान्यता विवाद का विषय हो सकती है परन्तु जहाँ तक हमारे विषय का सम्बन्ध है हम मीराबाई का विवेचन दशम अध्याय मे कर चुके हैं।

नरसिंह मेहता के उपरान्त भागवत के आधार पर रचना करने वालों में वीरसिंह का नाम आता है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'उषाहरण' है, जो एक सफल कृति है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर केशवदास कायस्थ ने ४० सर्गो मे 'श्रीकृष्ण क्रीडा-काव्य' की रचना की। यह ग्रथ भिन्न भिन्न रागों तथा तर्जो मे लिखा गया। इस ग्रथ मे कृष्ण के साथ राधा का चित्रण भी किया गया है—राधा प्रसग को छोडकर केशवदास ने कठोरता से भागवत का अनुसरण किया। केशवदास सस्कृत के भी प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होने स्वय लिखा है--

'सत्तावन श्रीभागवत रूपक छेत्रेवीस।
सोल स्वयकृत सस्कृत जपनी कथा जगदीश॥

केशवदास के पश्चात् भागवत के फुटकल प्रसगों को लेकर 'माडण बँधारो नाम के कवि ने रचना की। उनका ग्रथ 'सतभामा नू रूसणू" है। गुजराती मे प्रौढ आख्यानों का समय कवि

भालण मध्ययुगीन गुजराती साहित्य का एक देदीप्यमान रत्न है। इसकी आध्यात्मिकता भी भक्ति भावना से ओत-प्रोत है, राम कृष्ण और शक्ति सबकी समान भाव से उपासना की है। उनका झुकाव स्वामी रामानद की ओर अधिक है। उनकी रचनाओ मे कादम्बरी, दशमस्कन्ध नलाख्यान और राम बाल-चरित विशेषरूप से उल्लेखनीय है। भालण ने गुजराती को गुजर भाषा नाम से विभूषित किया। श्रीमद्भागवत के आधार पर उनके फुटकल आख्यान भी मिलते हैं जैसे ध्रुवाख्यान, मृगी आख्यान इत्यादि। वात्सल्य भाव के चित्रण मे उन्हे अद्भुत सफलता मिली है।

भीम--इनके दो ग्रथ प्रसिद्ध है—'हरि-लीला षोडश कला' तथा 'प्रबोध प्रकाश'। हरि-लीला षोडश कला, दो हजार पदो का एक सुन्दर ग्रन्थ है जो भागवत के आधार पर लिखा गया है। यद्यपि यह ग्रथ बोपदेव के 'हरि लीला विवेक' ग्रन्थ की परम्परा मे आता है, फिर भी इसका प्रसग क्रम भागवत के अनुसार ही है। ग्रथ की बारहवी कला मे रास-लीला के प्रसग मे कवि कहता है—

आनद एक अभिनवु रे वृन्दावन मझारि।
वश बजावइ विठलु रे तेणई छदइ नाचि नारि॥
वृन्दावनि गोपी नाचइ रे तेणइ रगि-राचि राम॥
नाद मधुर स्वरि झालयइ रे गाइ हरि विलास।
सुन्दरी सवि नव यौवन रे रगभरि खेलइ रास॥

जनार्दन त्रवाडी—इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'उषाहरण' भागवत के आधार पर लिखा गया है। यह ग्रन्थ गुजराती छन्द 'कडवा' मे हे। कथा मे कवि ने अपनी कल्पना से अनेक स्थानो पर मोड दिये है तथा उसे रुचिकर बनाने का सफल प्रयास किया है। एक उदाहरण देखिये—

निज गुरु मागइ वधामणी ए रा घरि बेटी पाऊ धारि।
रुपि ते त्रिभुवन मोहनी ए लक्षण नई गुणसार॥
नहि रम्भा नरि उरवसी ए मेनका नही एह समान।
द्विजवर नइ राय रीझि उए बूझिउ वचन प्रमाण॥
रा कहई कन्या दान देसु ए लेशु जगफल कोडि।
देव गधव नहि नागमाहीए जोस्यू एहनी जोडि॥
आकाश शब्द इम उच्चरइए इच्छावर वरसि कुमारि।
जनार्दन भणइ प्राणि काइ तुहई 'ए हुनि न टलइ ससारि॥
(कडवू ७)

नाकर तथा विष्णुदास—इन दोनो ही कवियो ने गुजराती के वैष्णव साहित्य की श्रीवृद्धि मे योग दिया है। नाकर ने, जो उच्चकोटि का सस्कृतज्ञ था भागवत के आधार पर 'ध्रुवचरित्र' लिखा है। इस तथ्य को उसने स्वय स्वीकार किया है—

शुणी भागवत रे कथाकरी ध्रुव तणी।
हरिकृपा ए रे ग्रहण थई एनी गति॥

नाकर तथा विष्णुदास दोनों ने ही रामायण, महाभारत तथा भागवत पुराण के आधार पर अनेक आख्यान लिखे हैं।

चतुर्भुज—चतुर्भुज कवि ने फागु पद्धति पर 'भ्रमर-गीता लिखी। इस ग्रन्थ की एक प्रति सम्वत् १६२२ की प्राप्त हुई।'

भ्रमरगीता की कविता मधुर है—

भारती प्रार्थी प्रणमु य वणवुग्र मदन मुरारि।
देव द्वारामती जई रहिया विरह हुउ ब्रजनारि ॥
गोप कन्या करइ वातडी रातडी किम्हइन विहाई।
वाहलु विदेसि जइ रहिउ अम्हे मेल्या गोकुल माहि ॥

गोपियों का उपालम्भ—

हरिती पारि आथे लाधी रे बाधी तिहाँ हसि प्रीति।
नगर नी नारीधूतारी रमती हुसि विपरीति ॥

गोपागनाओं की उद्धव को फटकार—

चालसि अम्हारि भगति पावइ अम्हनइ को किही कृष्ण दावि।
ज्ञान कहिउ तम्हेते न लहीउ, जाणीइ हरि गलि लागी रहीई ॥

भ्रमर की अवतारणा—

जाणिउ कमलभ्रम भूलु भ्रमर गोपी पाये बईठि।
चरण गुंजरव करतु रे मानिनी मधुकर दीठ ॥

श्रीमद्भागवत के भ्रमरगीत प्रसग को लेकर और भी कई रचनाएँ हुई हैं। भीम वैष्णव की 'रसिकगीता' इसी प्रसग की रचना है। इसी प्रकार ब्रेहदेव की 'भ्रमरगीता' भी भ्रमरगीत ही है।

सूरदास—गुजराती के आख्यानकारो मे सूरदासजी का नाम भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इन्होने भागवत के प्रह्लाद आख्यान और ध्रुवाख्यान के आधार पर बडी ही सरस तथा मार्मिक रचना की है। उन्होने अपने आख्यानो को भागवत के क्रम पर ही रखा है—प्रह्लाद आख्यान का एक चित्र देखिए—

हिरण्य कश्यपे माडीयो मनमाँहि विचार।
आ असभाव्य दीसे निर्मित गजने आकार ॥
सभा माँहि श्री नृसिंह जी गाजे गडेडे हलाल।
वुउहडे माहा दारुण कोपीयो माहाकाल ॥
सूवण सरखाँ पीत लोचन अति प्रोढा क्रूर।

ध्रुव के बन जाने के उपरान्त राजा उत्तानपाद शोकमग्न होकर कहता है—

ब्रह्मा न साकेलि।
सूत बालक माहारो। स्त्रीजीत अदयाल हु जेह।
पाँच वरसनो पूत्र मे काढियो। चतुर शरोमणि जेह ॥
अनाथ कुवर वन माहि अकेलो। भूष त्रस लागहि से हो बाल।

इस प्रकार कवि करुणरस का रससिद्ध कवि है।

कीकु वसही—यह औदीच्य ब्राह्मण था। इस का काव्य 'बाल चरित्र' है। भगवान् कृष्ण की बाललीलाओ के आधार पर इसने अपने काव्य की रचना की परन्तु कई स्थलो पर वह भागवत निरपेक्ष भी हो गया है जैसे कालियदमन लीला मे भागवत मे विषमय जल से गाय व गोपो के कारण ह्रद मे कृष्ण का कूदना लिखा हैं जबकि कीकु ने गेद के लिए कूदना लिखा है। कीकु ने यशोदा की विह्वलता का चित्रण बडे सुन्दर शब्दो मे किया है एक उदाहरण देखिए—

सुणी बात माता दडवडी, रुदन करि चाली अडवडी।
नदगोप मनि विह्वल थाइ, नयर लोक शूँ यमुना जाई।।
गोकुल सकल सुणी खलभल्यू नद केडि सवि आविमिल्यूँ।
गोपनारि सहू साथे जाइ, करि विलाप यशोदा माय।।

कवि भागवत कथा का अनुसरण करता चलता है। यद्यपि प्रेमानन्द की भाति वह कठोर भागवतानुसारी नही है फिर भी उसके अनेक वरणन अति सुन्दर है।

मेगल—भागवत के ध्रुवाख्यान के आधार पर इसने 'ध्रुवाख्यान' की रचना की। इसकी भाषा मँजी हुई गुजराती है। नाकर के ध्रुवाख्यान से इसका ध्रुवाख्यान उत्तानपाद की पत्नियो के नामो की दृष्टि से थोडा भिन्न पडता हे। नारद के उपदेश की कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

उपदेश कहो ते रुदे राखो मुनि वदे क्रीपाल।
सीस मुगट ने काने कुण्डल तीलक ओपीत भाल।।
अनेक सेवक रह्या उभा मला ढोले वाय।
गरुड आसन प्रभुजी ने पद्म झलके पाय।।

लक्ष्मीदास—ने भागवत के आधार पर रास पञ्चाध्यायी की रचना की। साथ ही दशम स्कन्ध का गुजराती अनुवाद भी किया है। गजेन्द्रमोक्ष के आख्यान के आधार पर इसने 'गजेन्द्रमोक्ष' काव्य भी लिखा है। दशम स्कन्ध के ९० अध्यायो को इसने १९५ कडवा छन्द मे लिखा है। भाषा प्रवाहमयी है।

जलहल पुरण कालाग्रेमां तेज ते नथमाय।
उचगे ते देवकाजी ने बालक वैकुठराय।।
देवकी ने वसुदेव नाँ लोहे भाँग्या बधन।
जीव सदु को अन्तरर्ज्यामी थया तेह प्रसन।।
चन्द्रनी कोर्णावली ते सकल माहि शोभाय।
वन सर्वे प्रसन फूल्या सौरम्य आव्या वाय।।

अखोजी—१६ वी शताब्दी मे गुजराती भाषा का समथ वेदान्ती कवि अखो हुआ। यह तो नहीकहा जा सकता कि उसकी रचनाओ पर भागवत का साक्षात् प्रभाव है, परन्तु अखो का ब्रह्म निरूपण भागवत के समान ही है। अखो ने ब्रह्म-निरूपण के लिए बडे कल्पनामय सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किये हैं तथा अद्वैतदर्शन की कवित्वमयी भाषा मे व्याख्या की है। भागवत के प्राय सभी सामान्य सिद्धान्त उसकी रचनाओं मे आ गये है। उसकी प्रमुख रचनाएँ है,

चित्तविचार सवाद, अनुभव विन्दु और अक्खोगीता। सूरदास की भाँति अखो ने माया को लेकर अनेक रूपक बाधे हैं। ब्रह्मानन्द को उसने सूर की भाँति अगम और अगोचर कहा है एक उदाहरण देखिए।

"आज आनन्द माए अगमा ऊपज्यो,
परिब्रह्मनी पुण्ये भाल लाधी।
गूगानी सानमा सामो समजे नही,
अदबद मूठडी रही रे बाधी।।
हु टल्यो तु ठर्यो करतार करुणा करी,
सुख दुख वृक्षनी मूली दाझी।
सपन समाई गयु ज्यम हतु त्यम थयु
अखो आ लखो सूतो सुखनी गादी।"

प्रेमानन्द—१७ वी शताब्दी मे भागवतानुसारी रचना करने वालों मे प्रेमानन्द का नाम अग्रगण्य है। पौराणिक साहित्य लिखने वालों मे ये गुजरात के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनके पिता का नाम कृष्ण था तथा इनका जन्म बडौदा मे हुआ था। आख्यान शैली को इन्होंने चरमोत्कष पर पहुँचाया। अपनी रचनाओ को ये गागरिया भट्ट के रूप मे स्वय ही गाकर सुनाया करते थे। इनकी रचनाओ मे मधुर सगीत की ध्वनि गूज उठती है। अपने पूववर्त्ती सभी कवियो की विशेषताओ को इन्होने ग्रहण किया। प्रेमानन्द की चालीस के लगभग प्रमाणिक रचनाएँ प्राप्त है। इनमे कई आख्यान हैं जिनका आधार श्रीमद्भागवत है। भागवत के आधार पर इनकी 'दशमस्कन्ध' नाम की अलग ही रचना है। प्रेमानन्द को 'गुजराती का सूर कहा जा सकता है। इनकी रचनाओ मे सम्पूण मानवता के लिए सदेश निहित है। भक्ति के के क्षेत्र मे उन्होने सुदामा को अपना आदश माना है। कृष्ण-लीला से सम्बन्ध रखने वाले इनके दो उदाहरण देखिए—

(१)

कान्हि दीनु कालु पाणी, माहे वसे कालो काली,
हवे आशा ते शी मलवानी, केम आवे वनवासी रे।
काने कुण्डल, मुखमा मोरली, साजे गोकुल आवे,
भुख्यो छो कही पेट देखाडे, मा कहीने बोलावे रे।
पीत पछोडी काछ कछे, मुज कने नेतरू मागे
हुँ घरडी माने थाकी जाणी कौण बोलववा लागे रे।

(२)

चौद लोक तरणे महाराज रे महता माहे थया बजाज रे।
वागो शोभे केशर छाँटे रे बाँधि पागडी अवले आँटे रे।
काने कुण्डल हीर जडिया रे, नेत्र प्रलम्ब श्रवणे अडिया रे।
एक लेखण काने खोसी रे, धरयु नाम दामोदर दोषी रे।
झीणा जामा ने पटका भारे रे, हरि हलवे हल वे पधारे रे।
खोधे पछेडी ओढी नाथे रे बेऊ छेडा ग्रहि आछे हाथे रे।

इनके 'नलाख्यान' और 'सुदामा-चरित्र' दोनो ही काव्य बडे सरस तथा हृदय-ग्राही हैं। इनकी कविताओ मे सूरदास जैसी कल्पना तथा साज सज्जा है।

अठारहवी शताब्दी मे गुजराती भाषा मे और भी अधिक धार्मिक साहित्य लिखा गया। गुजरात मे वल्लभ मत की पूर्ण प्रतिष्ठा इसी शताब्दी मे हुई। साथ ही सहजानन्द के प्रभाव से धर्म मे नैतिकता का समावेश हुआ। सहजानन्द ने स्वामी नारायण सम्प्रदाय का प्रवर्त्तन किया था। राधा और कृष्ण को लेकर परवर्ती काल मे प्रेमानन्द के शिष्यो तथा डभोई निवासी रत्नेश्वर ने सगीतमयी बारामासियो की रचना की। रत्नेश्वर ने तो भागवत का अनुवाद भी किया।

बगला

भागवतानुसारी चैतन्य सम्प्रदाय के ब्रजभाषा काव्य का विवेचन करते हुए हम यह सकेत कर चुके हैं कि ब्रजभाषा के अतिरिक्ति सस्कृत तथा बगला मे भी भागवतानुसारी विशाल साहित्य मिलता है। बगाल प्रारम्भ से ही एक धर्म प्रवण प्रदेश रहा है तथा बगला के साहित्य मे आदिकाल से ही धार्मिकता का रूप मिलता है। कहना न होगा कि मध्य युगीन वैष्णव साहित्य पर विशेषकर हिंदी साहित्य पर भाव तथा विषय दोनो ही दृष्टियों से बगला साहित्य का बडा प्रभाव है। बौद्धो के सहजयान सम्प्रदाय की भावुकता तथा उपासना पद्धति वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के माध्यम से मध्ययुगीन वैष्णव साहित्य मे प्रतिफलित हुई। बगला साहित्य मे बौद्ध सिद्धाचार्यों के रहस्यवादी चर्यागीत उसकी आदि रचनाएँ मानी जाती हैं। सरहपाद और कान्ह के अपभ्र श मे लिखे गये दोहाकोशो मे बगला का प्रारम्भिक रूप मिलता है। सहजिया सम्प्रदाय के गीतो मे हमे भक्ति का सहज रूप प्राप्त होता है। इसी सहज रूप की अभिव्यक्ति भागवतकार का चरम उद्देश्य है। यह तो नही कहा जा सकता कि इन चर्यागीतो पर श्रीमद्भगवत का साक्षात् प्रभाव है, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि चर्यागीत श्रीमद्भागवत की भाँति लोकभवना का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन चर्यागीतो की रचना १० वी, ११ वी शताब्दी के लगभग हुई। इनके माध्यम से उस क्षेत्र की विभिन्न धार्मिक भावनाओ का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। यह समन्वय हमे उस समय की कला और शिल्प मे भी मिलता है। इस युग का बगला का साहित्य जन प्रवृत्तियो को धार्मिक रूप देने का प्रयास करता हुआ प्रतीत होता है, उदाहरण के लिए चर्यागीतो के अतिरिक्त 'शून्य पुराण' और 'धर्म पूजा विधान' कृतियो को प्रस्तुत किया जा सकता है। बगाल मे इस प्रकार की रचनाएँ पालवश के समय मे हुई। विशुद्ध वैष्णव साहित्य की रचना सेन राजाओं के समय मे प्रारम्भ हुई। कहा जाता है कि सेन परिवार दक्षिण से ही बगाल मे आया था और शायद इसीलिए कर्नाटक देश की भक्ति-पद्धति का प्रभाव सेन राजाओ के आश्रय मे लिखे गये वैष्णव साहित्य पर पडा। जयदेव का 'गीत गोविन्द' लक्ष्मणसेन (सन् ११७५-१२००) के समय मे लिखा गया था। जयदेव के गीत गोविन्द मे जो राधाकृष्ण का विवेचन प्राप्त होता है वह निश्चित रूप से भागवतेतर सूत्र से सम्बद्ध है। बगला के गीति काव्य को जयदेव के 'गीत गोविन्द से बडी प्रेरणा मिली। १४ वी शताब्दी से आजतक बगला मे धार्मिक गीतों की परम्परा जारी है। चण्डीदास ने राधाकृष्ण विषयक सहस्रो गीत लिखे। इधर हाल मे एक 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' नाम की रचना प्राप्त हुई है—जिसके लेखक के सम्बन्ध मे अभी तक निर्णय नही हो सका है परन्तु

चण्डीदास का नाम इससे सम्बद्ध अवश्य है। यह विचारणीय है कि यह रचना प्रसिद्ध गीतकार चण्डीदास की ही है अथवा किसी अन्य चण्डीदास की। राधा और कृष्ण की जीवन-गाथा को इसमे काव्यबद्ध किया गया है। इस ग्रन्थ मे प्रेम भावना का ही विशेष रूप से चित्रण हुआ है।

बगला के मध्ययुगीन भक्ति साहित्य की सबसे बडी विशेषता है मगलकाव्यो की रचना। इन मगलकाव्यो मे अनेक देवी देवताओ, धार्मिक सस्कारो तथा लोक कहानियो का सुन्दर काव्यात्मक शैली मे विवेचन प्रस्तुत किया गया है। पुराणो का विवेचन करते हुए हमने ब्रह्म-वैवर्त्त पुराण के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह महापुराण सम्भवत बगाल मे लिखा गया था। ऐसा लगता है कि इस महापुराण के समकक्ष बगाल मे और भी कई पुराण अथवा उपपुराण रहे होगे जिनका प्रभाव चैतन्य पूर्ववर्ती वैष्णव साहित्य पर पडा।

विशुद्ध भागवतानुसारी साहित्य बगला मे चैतन्य के प्रभाव से लिखा गया तथा लगभग दोसौ वर्षों तक यह परम्परा चलती रही। हम पहले लिख चुके हैं कि चैतन्य सम्प्रदाय मे श्रीमद्भागवत की आर्ष ग्रन्थवत् मान्यता होने पर भी राधा को भागवत निरपेक्ष रूप मे स्वीकार किया गया है तथा उसे बडी मान्यता प्रदान की गयी है—यह क्षेत्रीय परम्पराओ का प्रभाव था। चैतन्य महाप्रभु के समय मे ही अनेक गीति काव्य तथा चरित काव्य लिखे गए। राधाकृष्ण के प्रेमगीत लिखने वाले बगला मे असख्य कवि हुए हैं जिनमे कई मुसलमान भी है। कृष्ण लीलाओ का अनेक ग्रन्थो मे वर्णन हुआ है। बगला के वैष्णव कवियो के विषय प्राय वही है जो बगाल के ब्रजभाषा कवियो के हैं बगाल मे श्रीमद्भागवत के कई अनुवाद प्राप्त होते है। १५ वीं शताब्दी का मालाधर वसु का भागवतानुवाद प्रसिद्ध है। १६ वी शताब्दी मे माधवाचार्य, रघुनाथ पण्डित तथा श्यामदास आदि ने भी भागवत के अनुवाद प्रस्तुत किए।

असमिया

बगला की भाँति असमिया का भी आदिकालीन साहित्य गीत साहित्य ही है जो 'चर्या' के नाम से विख्यात है। भाषा विज्ञानी तो प्रारम्भिक असमिया को बगला का ही रूप मानते है परन्तु असमिया पर और भी कई परिवारो की भाषाओ का प्रभाव है। परन्तु शब्दावली मे सस्कृत भाषा का प्राधान्य है। असमिया साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण तेरहवी शताब्दी से प्राप्त होते है। इस काल की रचनाएँ प्राय धार्मिक है जो अधिकाश मे पुराणो पर आधारित हैं। हेम सरस्वती के 'प्रह्लाद चरित' का आधार 'वामन पुराण' है। इसी प्रकार उनकी एक दूसरी रचना 'हर गौरी सम्वाद' अनेक पौराणिक आख्यानो के आधार पर लिखा गया है। हेम सरस्वती के समान हरिहर विप्र की भी कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं। असमिया का सबसे पहला जनकवि माधवकन्दली था। माधवकन्दली की रामायण असमिया भाषा की एक प्रख्यात रचना है। माधव कन्दली ने अपनी दूसरी रचना 'देवजित्' मे कृष्ण चरित्र लिखा है। माधव कन्दली के पश्चात् असमिया मे अनेक गीतकार हुए हैं जिन्होंने अनेक प्रेम-गीत लिखे हैं। असमिया में वैष्णवधारा को विशेष बल देने वाले कवि शकर देव थे जिनका जन्म सन् १४४९ ई० मे हुआ था। उन्होने असम मे भागवतधर्म का प्रचार किया। असम मे भागवत धर्म को 'एकाशरणीय' कहते हैं। उनके ग्रन्थो पर विष्णु पुराण तथा भागवत पुराण

दोनों का ही प्रभाव स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। उन्होने कई नाटक लिखे जिनमे रुक्मिणी-हरण, कालीदमन, रसक्रीडा विशेष रूप मे उल्लेखनीय है। उन्होने भागवत पुराण का भी रूपान्तर प्रस्तुत किया। भागवत पुराण का रूपान्तर उन्होने गेय पदो मे किया हे। उनके पद 'कीतन' नामकी पुस्तक मे सुरक्षित हे। महाकवि सूरदास के 'सूर सागर' के समान उनका 'कीतन' ग्रन्थ भी भागवतानुसारी है तथा गेय पदो मे लिखा गया हे। यह नही कहा जा सकता कि गीतों का सकलन तथा सम्पादन उन्होने स्वय ही किया था अथवा वह सूरसागर की भाति उनके बाद किया गया था। इस कीतन सग्रह मे २२६१ पद है जो अधिकाश भागवत पुराण की कथाओ के रूपान्तर है। प्रत्येक पद मे सूर के पदों की भाति टेक भी हे। असमिया का 'सयुक्त कीतन घोषा' नामक ग्रन्थ भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमे अनेक कीतनो तथा बडगीतो का सकलन है। इस सकलन मे शकरदेव के शिष्य माधवदेव के बडगीत भी सम्मिलित है। वास्तव मे माधवदेव ने बडगीतो की रचना मे शकरदेव की बडी सहायता की थी। शकरदेव तथा माधवदेव का असमिया मे विशाल वैष्णव साहित्य है। असमिया के बडगीत भागवत से बहुत अनुप्राणित है। उनमे बालकृष्ण की लीलाओ तथा यशोदा के वात्सल्य का बडा सुन्दर चित्रण हुआ है। ये बडगीत महाकवि सूरदास के पदो से तुलनीय हैं। माधवदेव के प्रत्येक बडगीत मे कृष्ण की बाललीला का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है। असमिया के इन दो महान् कवियो के प्रभाव से अनेक कवियो ने भक्ति-रचनाएँ की। अनन्तकदली ने भागवत के ४, ५, ६ ९ और १० स्कन्धो का असमिया मे अनुवाद भी किया तथा और भी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ की।

असमिया के मेधावी लेखक भट्टदेव (१५२८-१६३८ ई०) ने भागवत का गद्यानुवाद प्रस्तुत किया तथा गीता का भी अनुवाद किया। असमिया मे भागवत का अनुवाद करने वालो में अनन्त कन्दली, केशवशरण, गोपालशरण, कल्पचन्द्र विष्णुभरत, रत्नाकर मिश्र, श्रीचन्द्रदेव तथा अनिरुद्ध कायस्थ विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

उडिया

उडिया साहित्य का प्रारम्भ ८ वी-९ वी शताब्दी के आसपास माना जाता है, परन्तु इस भाषा को स्थिरता तेरहवी शताब्दी मे प्राप्त हुई। उडिया के साहित्य मे कई धम साधनाएँ प्राप्त होती हैं, जैसे बौद्ध, शैव शाक्त और वैष्णव। वैष्णव-धम-साधना की राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति दोनो का साहित्य उडिया मे प्राप्त होता है। १४ वी शताब्दी मे सारलादास ने उडिया मे छोटे छोटे ग्रथो की रचना की जो महाभारत पर आधारित है। इसीलिए सारलादास को 'उडिया का व्यास' कहा जाता है। उडिया साहित्य का यह युग 'पचसखा' नाम से प्रख्यात है। इन पचसखाओ मे बलरामदास, जगन्नाथदास, अनन्तदास, यशवन्तदास तथा अच्युतानन्ददास सम्मिलित हैं। इन पच-सखाओ मे से जगन्नाथदास ने 'उडिया भागवत' की रचना की। जगन्नाथप्रसाद सस्कृत के प्रौढ पण्डित थे। उन्होने उडीसा मे भक्ति के प्रचार के लिए जनभाषा मे भागवतपुराण को प्रस्तुत किया, अपने ग्रन्थ मे उन्होने वही माधुर्य तथा प्रसाद गुण लाने का प्रयास किया है जो मूल भागवत मे है। परन्तु भाषा बडी सरल तथा सुबोध है। उनके भागवत का उडीसा मे बडा मान है तथा उसे उडिया जनता की 'बाइबिल' के नाम से पुकारा जाता है। जगन्नाथदास ने अपने ग्रथ मे नवीन तथा लोकप्रिय छन्दो का प्रयोग किया है जिस

विशिष्ट छन्द का इस ग्रन्थ मे प्रयोग हुआ है, उसका नाम ही भागवत 'छन्द' है। एक जनश्रुति के अनुसार जगन्नाथ अपने ग्रथ की सरलता तथा बोधगम्यता का परीक्षण जगन्नाथ जी के मन्दिर मे साधारण जनता को सुनाकर किया करते थे। शायद इसीलिए इनके ग्रथ का प्रचार साधारण जनता मे बडी सरलता से हो गया। उडीसा के घर घर मे भागवत का पाठ होने लगा। जनता मे इस ग्रथ का इतना प्रचार होने लगा कि मजदूरों तक मे इसका पाठ लोकप्रिय हो गया तथा वे मुक्त भाव से इसका पाठ करने लगे। इस प्रकार जगन्नाथदास के भागवत ने इस क्षेत्र की आध्यात्मिक तथा सास्कृतिक एकता में बडा योगदान किया। आज भी यह ग्रथ उडीसा की जनता का प्रेरणा स्रोत है। साथ ही उडीसा के सीमावर्ती क्षेत्रो मे भी इसका प्रचार है। इस ग्रथ के अनेक अश कहावतो के रूप मे जनता मे प्रचलित है।

सोलहवी शताब्दी मे उडिया का भक्ति-साहित्य चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित हुआ तथा उडिया मे असख्य प्रेम-गीत लिखे गए। भक्त चरणदास का 'मथुरा मगल' प्रसिद्ध ग्रथ है जिसमे कवि ने कृष्ण के मथुरा चले जाने पर गोपियो के वियोग-प्रसग मे भक्ति का विवेचन किया है। विवेचन का आधार 'श्रीमद्भागवत' है। उद्धव-सवाद बडी सशक्त तथा मोहक भाषा में लिखा गया है। ब्रज-भाषा के कवियों की भाँति भक्त चरणदास ने भी गोपियो के प्रेम की ही विजय दिखाई है।

पंजाबी

पजाबी का वैष्णव साहित्य बहुत कुछ हिंदी मे ही लिखा गया, इसलिए उसका भागवतानुसारी साहित्य ब्रजभाषा मे निबद्ध होने के कारण हिन्दी के अन्तगत ही आता है, चाहे वह गुरुमुखी लिपि मे हो अथवा देवनागरी लिपि मे। गुरुमुखी लिपि के आविष्कर्त्ता गुरु अङ्गददेव जी थे। गुरुमुखी लिपि का आविष्कार होने के अनन्तर भी पजाब में देवनागरी लिपि का प्रचार रहा। यह बात अवश्य है कि पजाब मे जो हिन्दी के साहित्यकार हुए उनकी भाषा मे काफी पजाबीपन रहा है। पजाबी साहित्य के इतिहास को सामान्यरूप से तीन कालों मे बाँटा गया है। पहला काल आदिकाल है जिसकी सीमा सवत् १००० से १५०० तक मानी गयी है। दूसरा काल मिश्रित काल के नाम से अभिहित किया गया जिसकी सीमा स० १५०१ से स० १६०० तक है। तीसरा काल आधुनिक काल के नाम से स० १६०१ से आज तक का है। हमारा विषय द्वितीय काल की सीमा मे पडता है। प्रसिद्ध गीतिकार जयदेव को पजाबी के साहित्यकार पजाबी मानते हैं। जयदेव १२ वी शताब्दी के कवि हैं। जयदेव के सम्बन्ध मे एक किम्वदन्ती है कि उनके प्रपितामह पण्डित गिरिधारीलालजी एक मन्दिर मे पुजारी थे तथा उन्होने पुत्रोत्पत्ति के निमित्त श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। इस किंवदन्ती से यह सकेत अवश्व मिलता है कि ११ वी शदी मे भी पजाब मे श्रीमद्भागवत की काफी मान्यता थी।

आदिकाल से ही पजाब राजनीतिक क्रान्तियो का केन्द्र रहा है तथा धार्मिक दृष्टि से भी वहाँ अनेक धम तथा सम्प्रदाय पल्लवित होते रहे है। आदिकाल मे पजाब मे कोई उल्लेखनीय भक्ति-ग्रन्थ नही लिखा गया। मिश्रितकाल मे प्रधानता सिख साहित्य की रही। बात यह है कि मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन का पजाब पर प्रभाव बाद मे पडा। इसीलिए वहाँ का सगुण भक्ति-साहित्य १७ वी शताब्दी के बाद का है। १७ वी और १६ वी शताब्दी के बीच

हमें कृष्णभक्ति शाखा के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं जिन पर भागवत का प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। कृष्णलीला से सम्बन्ध रखने वाले कई मगलकाव्य भी लिखे गये हैं। इस युग में महाभारत के आधार पर अनेक काव्य लिखे गये।

भागवत के दशम स्कध के आधार पर पजाब मे कई रचनाएँ हुई परन्तु उनकी भाषा ब्रजभाषा ही है। इसलिए यहाँ उनका उल्लेख आवश्यक प्रतीत नही होता है।

भारतीय भाषाओं के मध्ययुगीन साहित्य का अनुशीलन करने पर हम इस निष्कष पर पहुँचते हैं कि भारतीय धार्मिक चेतना सदा एक सास्कृतिक तथा रागात्मक एकता की ओर अग्रसर रही है। चौदहवी शताब्दी के अन्त तक लगभग सभी भारतीय भाषाएँ विकसित हो चुकी थीं। भारतीय मनीषियो के सामने अब तीन आदश उपस्थित थे—(१) प्राचीन भारतीय धम-साधना। (२) नाथों और सिद्धों का क्रान्तिकारी स्वर और (३) मुस्लिम धम और सस्कृति के तत्त्व। हम पहले कह चुके ह कि दक्षिण के आलवार भक्तो की लोकप्रियता के भय से भारतीय धम-शास्त्र मे वैष्णव भक्ति का स्वरूप प्रेम के परिधान मे उपस्थित हो रहा था। मुस्लिम धम की अपेक्षा सूफियो की प्रेम पद्धति से इसे और भी बल मिला। नाथ-सम्प्रदाय आचार की कट्टरता के कारण जनता को अग्राह्य हो चुका था। साहित्य चेतना प्रेम का सदेश चाहती थी जो उसे श्रीमद्भागवत से प्राप्त हुआ। यही कारण है कि प द्रहवी शताब्दी से सत्रहवी शताब्दी तक का भारतीय भाषाओ का सम्पूण साहित्य प्रेम के रग मे रँगा हुआ है। मध्ययुगीन धम-साधना का यही मूलस्वर है तथा यही वह सगम-स्थल हे जहा भारतीय तथा अभारतीय सस्कृतियो का समन्वय हुआ। इस सम वय के फलस्वरूप जिस साहित्य की सजना हुई वह वैष्णव साहित्य के नाम से अभिहित किया जाता है। सामान्य रूप से अवतारवाद इस साहित्य का मूलस्वर है। दक्षिण की भाषाओ मे यह भावना अधिक प्रबल रही या यो कहना चाहिए कि इस नवीन विधा को विशेष बल दक्षिण से ही मिला।

मध्ययुगीन भाषाओ के साहित्य के अध्ययन से यह बात सहज ही हृदयगम हो जाती है कि भाषाओं के कारण साहित्य परिधान चाहे जैसा भी रहा हो, उसमे धार्मिक तथा सास्कृतिक एकता सवत्र उपलब्ध होती है। वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रेम तथा आनन्द भारतीय सस्कृति के मूल तत्त्व है और इसीलिए उसमे अन्य सभी विशिष्ट सस्कृतियो के विशिष्ट तत्त्वो को आत्मसात् करने की अपूव क्षमता है। प्रेम तथा शृङ्गार मानव की मौलिक वृत्तियाँ है, उनके परिष्कार तथा उदात्तीकरण का जैसा प्रयास भारत के मध्ययुगीन साहित्य मे हुआ है वैसा अन्यत्र दुलभ है। एक बात और भी लक्ष्य करने की यह है कि साहित्य ने प्रेम और शृङ्गार को लोकप्रिय, मधुर और आकषक बनाने के लिए सगीत का आश्रय लिया। इसीलिए सगीत और काव्य का जैसा सुन्दर मणि-काचन योग मध्ययुग मे हुआ वैसा और किसी भी काल मे नही हो सका। एक प्रकार से वह सगीत के विकास का युग था।

उपसंहार

भारतीय वाङ्मय मे श्रीमद्भागवत के आविर्भाव को नि सदेह एक चमत्कार समझना चाहिए। उसकी रचना कब और कहा हुई ? यह विषय आलोचको तथा इतिहासकारो के लिए उपादेय हो सकते हैं, सामान्य सहृदय पाठक के लिए तो श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य ही महत्त्वपूर्ण है। महाभारत हि दू धर्म तथा इतिहास का विश्वकोश कहा जाता है परन्तु धर्म-साधना के स्तर पर उसमे कोई समन्वय का प्रयास दृष्टिगोचर नही होता। महाभारत के अश श्रीमद्भागवद्गीता में भी यह प्रयास किया गया था परन्तु उसे हम विकसित सूत्र शैली मे लिखा हुआ एक स्वतत्र ग्रथ ही मानते हैं। धम के तीनों काण्ड ज्ञान, कम तथा उपासना-उसमे प्रतिपादित तो अवश्य हुए है परन्तु गीताकार ने उनका विश्लेषण प्रस्तुत नहीं किया है। श्रीमद्भागवद्गीता के पश्चात् धम के दाशनिक पक्षो का समन्वय ब्रह्मसूत्रो मे प्रस्तुत किया गया परन्तु ब्रह्मसूत्रो मे मीमासा का स्वरूप विधानात्मक न होकर निवारणात्मक ही है। इसमे कोई सदेह नही कि दशन-साहित्य की परम्परा मे ब्रह्मसूत्रो का विशेष स्थान है तथा श्रुतिवादी मतों मे उनकी मान्यता भी है पर सूत्रकार का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मकारणवाद की स्थापना ही है। सूत्रकार श्रुतिप्रतिपादित सिद्धान्तो को एक समन्वित वेदा त दशन के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। ब्रह्मसूत्रो के दो भाग है—प्रथम भाग मे सूत्रकार ने तत्त्व-मीमासा प्रस्तुत की है तथा द्वितीय भाग मे आचार मीमासा। धम के दो ही पक्ष माने जाते हैं—तत्त्वनिरूपण तथा आचार-प्रतिपादन। आचार प्रतिपादन तत्त्व निरूपण का ही व्यावहारिक पक्ष है। ब्रह्मसूत्रो पर अनेक भाष्य लिखे गये है। परन्तु मेरी दृष्टि मे वे सब एकागी ही हैं। शकराचाय से पहले कई भाष्यकारो का उल्लेख शाकरभाष्य तथा श्रीभाष्य मे मिलता है परन्तु सबसे पहला क्रातिकारी भाष्य शाकरभाष्य ही था। शकराचाय ने परमोच्च सत्ता को निर्विशेष मानकर तत्त्व मीमासा की प्रतिष्ठा तो की पर आचारमीमासा को दुर्बल कर दिया। श्रुति, स्मृति विहित सामान्य आचार भी उस तत्त्वमीमासा के आगे गौण पड गये। बौद्ध मत के शून्यवाद को तो शाकरभाष्य से अवश्य ठेस पहुँची परन्तु वह जन-साधारण के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत न कर सका। वह बौद्धिक वैभव की वस्तु बनकर दाशनिक पण्डितो तक सीमित रह गया। जनता की क्रातिकारी प्रवृत्तियो को शाकरभाष्य मे प्रश्रय प्राप्त न हो सका। इस रिक्त स्थान की पूर्ति भागवत महापुराण ने की। उसकी रचना चाहे जब भी हुई हो, उसका प्रकाश-पुञ्ज दसवी शताब्दी से ही विकीर्ण होना प्रारम्भ हुआ है। भागवत पुराण मे ब्रह्म सूत्रो की तत्त्व-मीमासा के साथ आचारमीमासा पर विशेष बल दिया गया। इसमे धम की सभी प्राचीन परम्पराओं से अलग एक क्रान्तिकारी धार्मिक परम्परा की स्थापना हुई है तथा धर्म के सम्बन्ध मे एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। वैष्णव भाष्यो मे भागवतकार को ब्रह्मसूत्रो के भाष्यकार के रूप मे ही प्रस्तुत किया गया है। भागवत पुराण का प्रारम्भ ही ब्रह्मसूत्र के द्वितीय सूत्र से हुआ है तथा समाप्ति 'हरिम् परम्' से हुई है जिसस यह ध्वनि निकलती है कि ब्रह्मसूत्रो का प्रतिपाद्य परात्पर तत्त्व' 'हरि अर्थात् श्रीकृष्ण है। धर्म की व्याख्या करते हुए भागवतकार ने भगवान् की उपासना को निष्प्रयोजन तथा अहैतुक कहा है

जिसमे किसी प्रकार का राग द्वेष या भेद-भाव नही है। धर्म मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिसकी प्राप्ति विकृतियो के निराकरण से ही सम्भव है। वाह्य विकृतियाँ जब नष्ट होजाती है तब धम की सिद्धि होती है। इसीलिए धम का यह रूप व्यक्तिगत तथा एकान्तिक है। श्रीमद्-भागवत इसी धर्म भावना का रसार्णव है—

धर्मं प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणा सता, वेद्य वास्तवमत्र वस्तु शिवद तापत्र योन्मूलनम्। श्रीमद्भागवते महामुनिकृते कि वा परैरीश्वर, स्द्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभि शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥

निगम कल्पतरोगलित फल शुकमुखादमृतद्रवसयुतम्।
पिबत भागवत रसमालय मुहुरहो रसिका भुवि भावुका ॥
(श्रीमद्भागवत १-१-२-३)

उपर्युक्त तृतीय श्लोक मे भागवतकार ने निगम से आगे की परम्परा का सकेत किया है, जो निगमानुसारी होते हुए भी अमृतद्रव सयुत तथा रसपूर्ण है। मैं समझता हूँ कि भागवतकार का यह सकेत आगमो की ओर है। धम के आचार पक्ष के महत्त्व को भागवतकार ने प्रथम स्कध के द्वितीय अध्याय मे और भी स्पष्ट कर दिया है तथा अहैतुकी तथा अप्रतिहत भक्ति को ही धम का श्रेष्ठ रूप बताया है। भगवान् के लिए 'अधोक्षज' विशेषण का प्रयोग कर भागवतकार ने स्पष्ट कर दिया है कि धम इच्छाओ की पूर्ति नही, बल्कि इच्छाओ की परिष्कृति का नाम है। श्रीमद्भागवद्गीता मे प्रतिपादित धम की ही यह व्याख्या है जो धम को श्रुति विहित कर्म से अलग करती है।

भागवतकार ने अपने प्रतिपाद्य को स्पष्ट करते हुए प्रथम अध्याय के पहले ही श्लोक मे भगवान् को परम सत्य बताया है—"सत्यम् परम्धीमहि"। सत्य का साक्षात्कार धम की सिद्धि है। सत्य यथाथ होता है, उस सत्य के प्रसार जगत् को उसी रूप मे ग्रहण किया किया जाना चाहिए। भागवतकार यही से जगन्मिथ्या के सिद्धा त का प्रत्याख्यान प्रारम्भ कर देता है। भागवत के द्वितीय अध्याय के ग्यारहवे श्लोकमे इस सिद्धान्त का और भी स्पष्टी-करण हो जाता है—

"वदन्ति तत्तत्त्व विदस्तत्त्व यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥
(श्रीमद्० १-२-११)

इन तीन नामो मे भागवतकार को इष्ट है भगवान् जिसका स्पष्टीकरण उसने आगे के श्लोको मे कर दिया है तथा भगवान् को 'सात्वतापति' कहकर उसका वासुदेव कृष्ण से अभेद स्थापित कर दिया है।

भागवतपुराण में दर्शन के जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ है वे समन्वयात्मक तथा मौलिक है। साख्यदशन की सभी शाखाओ का ही उसमे समाहार नही हुआ, अन्य दशनो के सिद्धान्त भी उसमे खोजे जा सकते है। विभिन्न धम सम्प्रदाओ के आचार पक्षो का भी भागवत मे समावेश हुआ है। हमे भागवत मे एक समन्वित धम भावना के दशन होते हैं तथा उसमें सभी दर्शनो तथा धर्ममार्गो मे अविरोधस्थापित करने का सफल प्रयास किया गया है।

श्रीमद्भागवत मे जिस तत्त्व पर अधिक बल दिया गया है, वह है भगवान् की शक्ति अथवा माया। भगवान् स्वय अरूप तथा चित् स्वरूप है तथा अपनी त्रिगुणमयी माया से वह सृष्टि की रचना करता है। उस शक्ति अथवा माया के तीन रूप है—अन्तरग, बहिरग तथा कृतित्व। अन्तरग शक्ति के भी तीन रूप है—ह्लादिनी सन्धिनी और सविन्। इसी त्रिरूपा अन्तरग शक्ति का चित् शक्ति और आत्ममाया भी कहते है जबकि, बहिरग शक्ति तटस्थ शक्ति कहलाती है। यह आत्म माया सदसद् रूपा है। भागवतकार ने इसी माया को केन्द्रीभूत करके सभी धम-साधनाओ तथा दाशनिक मान्यताओ का समन्वय प्रस्तुत किया है।

अवतार-वाद पुराणो की विशेषता है। यह निश्चित रूप से तन्त्रों का प्रभाव है। तन्त्र-साहित्य क्रान्तिकारी जनता का साहित्य रहा है। यही कारण है कि भारतीय धम-साधना मे शक्ति का समावेश बहुत प्राचीनकाल से हो गया था। वैदिक-साहित्य के उत्तर काल मे शक्ति का रूप खोजा जा सकता है। महाभारत मे कीर्ति, लक्ष्मी, श्रद्धा, क्रिया और बुद्धि आदि शक्ति के ही स्वरूप हैं। तन्त्र-साहित्य मे शक्ति उपासना को व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत किया गया है। पौराणिक युग मे शक्ति उपासना का प्राबल्य तत्रो के प्रभाव के कारण ही है। प्रत्येक पुराण मे इष्ट के साथ किसी न किसी शक्ति का योग किया गया है। यह शक्ति-पूजा शिव और पावती के रूप मे ही पहले अधिक प्रचलित हुई। ऐसा लगता है कि शिव और पावती की लीलाओ के आधार पर ही गोपी कृष्ण की लीलाओ का इतना अधिक विस्तार हुआ। तत्रागमो मे युगल उपासना का ही विस्तार से विवेचन मिलता है तथा उनमे युगल उपासना के माध्यम से वैदिक विधि विधानो को सरल तथा लोक-प्रिय बनाने का प्रयास किया गया है। पुराण-साहित्य आगमो की भाँति ही धम-साधना को सरल तथा जन-प्रिय बनाने मे प्रयास करता दीख पडता है। वैदिक-यज्ञ तथा औपनिषदिक-ज्ञान-प्राप्ति के स्थान पर जनता के सामान्य विश्वासो को महत्त्व देकर उपासना-पद्धति मे आमूल-चूल परिवतन किये गये। इसीलिए इस नवीन उपासना-पद्धति मे अनेक आय तथा अनाय देवी देवताओ की अवतारणा हुई। शायद इसीलिए प्रारम्भ मे पुराणों को अवैदिक कहा गया है। पद्मपुराण मे तो स्पष्ट ही भक्ति को अवैदिक घोषित किया गया है—'उत्पन्ना द्रविडे चाह् कर्णाटे वृद्धिमागता'।

एक बात लक्ष्य करने की यह है कि पुराणो का दृष्टिकोण समन्वयकारी रहा है। नवीन धम-साधना का आर्यीकरण करने का प्रयास पुराणों मे स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है। शायद इसीलिए पुराणो का नैतिक स्वर ऊँचा रहा है। तत्रो मे यह बात नही मिलती। वे सामान्यत यथाथ भूमि पर ही रहे। परन्तु तत्र-साधना को सभी सम्प्रदायों ने किसी न किसी रूप मे अपनाया है। ऐसा लगता है कि जिस प्रकार पुराणो की रचना बौद्ध, जैन शैव, शाक्त तथा वैष्णव सभी सम्प्रदायों मे हुई, उसी प्रकार तत्र रचना भी सभी सम्प्रदायों का आवश्यक अग माना गया। जनता के निचले स्तर का प्रतिनिधित्व करने मे बौद्धतान्त्रिक साधना सबसे अग्रणी थी। इस बौद्धतान्त्रिक-साधना से पाञ्चरात्र तान्त्रिक साधना बहुत अधिक प्रभावित हुई। मध्ययुग मे यह तत्र-साधना सम्पूर्ण भारतीय धर्म साधना पर छाई हुई सी लगती है। एक बडी विचित्र बात यह है कि बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त तथा वैष्णव सभी तन्त्रों मे समान तत्त्व मिलते हैं। कुछ स्थानीय परम्पराओं तथा देवी, देवताओ के कारण कुछ भेद अवश्य हो गया है क्योकि निम्न स्तर पर तन्त्र-साहित्य जनता का साहित्य रहा है और उसकी

धार्मिक-साधना जनता की प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करती है। उस मे सैकडों परम्पराओ, सस्कृतियो तथा धार्मिक साधनाओ का समावेश है। साथ ही उसमे उच्च भावनाएँ भी कम नही है।

हमने इस ग्रन्थ मे यह बात कई बार स्पष्ट की है कि मध्ययुगीन भक्ति-आन्दोलन मे दक्षिण के आचार्यों का सबसे अधिक हाथ रहा है। यामुनाचाय के प्रशिष्य रामानुजचाय सबसे पहले आचाय थे जिन्होने भक्ति को सवसुलभ बनाने का प्रयास किया था। जनता की आवाज को पहिचान कर स्वय यामुनाचाय ने विष्णु के साथ लक्ष्मी शक्ति को स्वीकार करके इस मान्यता पर मुहर लगा दी। दक्षिण मे आलवार भक्तो की लोक-प्रियता बढ रही रही थी। तन्त्र साहित्य की भाँति उनकी भक्ति-साधना मे प्रेम और सौन्दय का पक्ष ही प्रबल था। इसलिए दक्षिण के आचार्यो ने भक्ति के क्षेत्र मे इन दोनो तत्त्वों का मुक्त-भाव से समावेश किया तथा जाति पाँति के भेद-भाव को अमान्य घोषित किया। यामुनाचाय ने 'सिद्धि-त्रय', 'आगम प्रामाण्य' तथा 'गीताथ सग्रह रक्षा' मे इस नवीन भक्ति-भावना की व्याख्या की है। पर तु ब्रह्मसूत्रो द्वारा सगति के अभाव मे वह भक्ति-भावना पडितो को मान्य नही हो सकती थी। इस अभाव की पूर्ति रामानुजाचाय ने अपने 'श्रीभाष्य' द्वारा की। 'श्रीभाष्य' मे यामुनाचाय के ग्र थो का पूरा उपयोग किया गया है। ब्रह्म सूत्रो का यह पहला वैष्णव-भाष्य है। श्री सम्प्रदाय का व्यावहारिक-पक्ष आलवारो की भक्ति-पद्धति से बहुत प्रभावित हुआ है। रामानुजाचाय ने अपनो अलौकिक प्रतिभा से ब्रह्मसूत्रो की व्याख्या अपने सिद्धान्तो के अनुरूप की तथा शकर, भास्कर तथा यादवप्रकाश के सिद्धान्तो का निराकरण किया तथा जगत् को सत्य सिद्ध कर ब्रह्म के सविशेषत्व रूप का प्रतिपादन किया। श्रीमद्भागवत मे जिन दाशनिक सिद्धान्तो का विवेचन हुआ वे प्राय सभी वैष्णव-भाष्यो मे समान है। मुख्य रूप मे ये सिद्धान्त निम्नलिखित है—

१—जगत् का सत्यत्व, सत्योपादानकत्व। २—जीव का ज्ञानस्वरूपत्व, नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ब्रह्मवश्यत्व तथा बहुत्व। ३—ब्रह्म का परमार्थत सविशेषत्व, निर्दोषत्व, परमेश्वरत्व, जगत्कतृत्व, सवव्यापकत्व सर्वान्तिर्यामित्व, उपास्यत्व तथा सवकल्याण-गुण सम्पन्नत्व आदि। ४—भक्ति का महत्व तथा उसका साध्यत्व। ५—उपाधि का अस्वीकार ६—माया का ब्रह्म की शक्ति के रूप मे स्वीकरण, तथा ७—काय-कारण सम्बन्ध मे परिणाम-वाद का स्वीकार।

उपर्युक्त सिद्धान्तो का सकेत भागवतकार ने प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय मे ही कर दिया है —

स एवेद ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया। सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभु॥
तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव। अन्त प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भित॥
यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेक स्वयोनिषु। नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान्॥
असौ गुणमयैर्भावैर्भूत सूक्ष्मेन्द्रियात्मभि। स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुड्क्ते भूतेषु तद्गुणान्।
भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावन। लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ् नरादिषु॥

(श्रीमद्भागवत १।३।३०—३४)

यह नही कहा जा सकता कि रामानुजाचाय ने श्रीमद्भागवत पुराण का स्पष्ट विवेचन अपने ग्रन्थो मे क्यो उपयोगी नही समझा ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं जिनका सकेत हमने भागवत के तिथि निर्णय प्रकरण में किया है। परन्तु इसमे कोई सदेह नही किया जा सकता कि ब्रह्मसूत्रो की नवीन व्यख्या के अनुसार भागवत पुराण ही सबसे पहला व्यावहारिक तथा प्रमाणिक ग्रन्थ है जिसके द्वारा ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित पर ब्रह्म स्वरूप नैषकम्य का आविष्कार हुआ।

श्रीमद्भागवत में भक्ति तथा लीला इन्ही दो तत्वो पर विशेष बल दिया गया है। इसके आदि, मध्य और अन्त मे भक्ति का ही प्रतिपादन हुआ है। भक्ति और लीला वास्तव मे अनन्योन्याश्रित हैं, इसीलिए भागवतकार ने भगवान् को 'लीलावतारानुरत' कहा है। भागवत मे भक्ति के सभी मार्गों मे अविरोध स्थापित करने का प्रयास किया गया है तथा प्रेमलीलाओं का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है। भागवत के उपाख्यानो स्तुतियों तथा भक्ति-प्रसगो के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें सभी मतो एव साधनाओं का समावेश हैं। तन्त्रागमों की शृङ्गार परक साधनाओ को अलौकिक लीलाओ का रूप देकर भागवतकार ने परिष्कृत किया है। एक बात जो भागवतकार स्पष्ट रूप से नही कह सका वह है, केन्द्रीभूत भगवान् की एक शक्ति। यो तो ब्रज की अनेक गोपियाँ कृष्ण की प्रेमपात्राएँ हैं, परन्तु भगवान् की शक्ति के रूप में उन्हे ग्रहण नही किया जा सकता। इसीलिए भागवतानुसारी वैष्णव सम्प्रदायों ने राधारूप में इस शक्ति का विशदीकरण किया। यह बात दूसरी है कि उनके प्रवर्तकों तथा आचार्यों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भागवत में भी राधा को खोज लिया। यह बात निर्विवाद है कि भक्ति के व्यवहार पक्ष की आधार-शिला सबसे पहले भागवतकार ने ही रखी क्योकि प्रेमलीलाओ का जितना विस्तार भागवत पुराण में है उतना अन्य पुराणो में नही। फर्कुंअर ने भागवत के प्रेम लीलापरक पदो के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"A careful study of those passages will convince the student that they are expressions of a living religious experience"

(J N Farquhar, Outlines of the Religious Literature of India P 229)

और वे आगे कहते हैं—"Bhakti in this work is a surging emotion which chokes the speech, makes the tears flow and the hair thrill with pleasurable excitement, and often leads to hysterical laughing and weeping by turns, to sudden fainting fits and to long trances of unconsciousness."

(J N Farquhar, Outlines of the Religions Literature of India, P 230)

फर्कुंअर ने भागवत पुराण को अन्य पुराणो से अधिक महत्त्व इसलिए प्रदान किया है कि इसमें उस लौकिक प्रेम और शृङ्गार का समावेश है जो और किसी पुराण मे नही है लौकिक प्रेम और शृङ्गार का यह तत्त्व भक्ति का साधक है, बाधक नही—

'Meditation on these scenes is expected to produce that passionate Bhakti which is regarded as the highest religious experience'

(Ibid Pp 230-231)

धार्मिक-साधना जनता की प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। उस मे सैकडों परम्पराम्रो, सस्कृतियो तथा धार्मिक साधनाम्रो का समावेश है। साथ ही उसमे उच्च भावनाएँ भी कम नही है।

हमने इस ग्रन्थ मे यह बात कई बार स्पष्ट की है कि मध्ययुगीन भक्ति-म्रान्दोलन मे दक्षिण के म्राचार्यों का सबसे अधिक हाथ रहा है। यामुनाचाय के प्रशिष्य रामानुजचाय सबसे पहले म्राचाय थे जिन्होने भक्ति को सवसुलभ बनाने का प्रयास किया था। जनता की म्रावाज को पहिचान कर स्वय यामुनाचाय ने विष्णु के साथ लक्ष्मी शक्ति को स्वीकार करके इस मान्यता पर मुहर लगा दी। दक्षिण मे म्रालवार भक्तो की लोक-प्रियता बढ रही रही थी। तन्त्र साहित्य की भाति उनकी भक्ति-साधना मे प्रेम म्रौर सौन्दय का पक्ष ही प्रबल था। इसलिए दक्षिण के म्राचार्यों ने भक्ति के क्षेत्र मे इन दोनो तत्त्वों का मुक्त-भाव से समावेश किया तथा जाति-पाँति के भेद-भाव को अमान्य घोषित किया। यामुनाचाय ने 'सिद्धि-त्रय', 'म्रागम प्रामाण्य' तथा 'गीताथ सग्रह रक्षा' मे इस नवीन भक्ति-भावना की व्याख्या की है। परन्तु ब्रह्मसूत्रो द्वारा सगति के अभाव मे वह भक्ति-भावना पडितो को मान्य नही हो सकती थी। इस अभाव की पूर्ति रामानुजाचाय ने अपने 'श्रीभाष्य' द्वारा की। 'श्रीभाष्य' मे यामुनाचाय के ग्र थो का पूरा उपयोग किया गया है। ब्रह्म सूत्रो का यह पहला वैष्णव-भाष्य है। श्री सम्प्रदाय का व्यावहारिक-पक्ष म्रालवारो की भक्ति-पद्धति से बहुत प्रभावित हुम्रा है। रामानुजाचाय ने अपनो अलौकिक प्रतिभा से ब्रह्मसूत्रो की व्याख्या अपने सिद्धान्तो के अनुरूप की तथा शकर, भास्कर तथा यादवप्रकाश के सिद्धान्तो का निराकरण किया तथा जगत् को सत्य सिद्ध कर ब्रह्म के सविशेषत्व रूप का प्रतिपादन किया। श्रीमद्भागवत मे जिन दाशनिक सिद्धान्तो का विवेचन हुम्रा वे प्राय सभी वैष्णव-भाष्यो मे समान है। मुख्य रूप मे ये सिद्धान्त निम्नलिखित है—

१—जगत् का सत्यत्व, सत्योपादानकत्व। २—जीव का ज्ञानस्वरूपत्व, नित्यत्व, अणुत्व, ज्ञातृत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ब्रह्मवश्यत्व तथा बहुत्व। ३—ब्रह्म का परमार्थत सविशेषत्व, निर्दोषत्व, परमेश्वरत्व, जगत्कतृत्व, सवव्यापकत्व सर्वान्तिर्यामित्व, उपास्यत्व तथा सवकल्याण-गुण सम्पन्नत्व म्रादि। ४—भक्ति का महत्व तथा उसका साध्यत्व। ५—उपाधि का अस्वीकार ६—माया का ब्रह्म की शक्ति के रूप मे स्वीकरण, तथा ७—कार्य-कारण सम्बन्ध मे परिणाम-वाद का स्वीकार।

उपर्युक्त सिद्धान्तो का सकेत भागवतकार ने प्रथम स्कन्ध के तृतीय अध्याय मे ही कर दिया है —

स एवेद ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया। सदसद्रूपया चासौ गुणमय्यागुणो विभु ॥
तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव। अन्त प्रविष्ट म्राभाति विज्ञानेन विजृम्भित ॥
यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेक स्वयोनिषु। नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥
असौ गुणमयैर्भावैर्भूत सूक्ष्मेन्द्रियात्मभि। स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान्।
भावयत्येष सत्त्वेन लोकान् वै लोकभावन। लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ् नरादिषु ॥

(श्रीमद्भागवत १।३।३०—३४)

यह नही कहा जा सकता कि रामानुजाचाय ने श्रीमद्भागवत पुराण का स्पष्ट विवेचन अपने ग्रन्थो मे क्यो उपयोगी नही समझा ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं जिनका सकेत हमने भागवत के तिथि निर्णय प्रकरण में किया है। परन्तु इसमे कोई सदेह नही किया जा सकता कि ब्रह्मसूत्रो की नवीन व्यख्या के अनुसार भागवत पुराण ही सबसे पहला व्यावहारिक तथा प्रमाणिक ग्रन्थ है जिसके द्वारा ज्ञान, वैराग्य, भक्ति सहित पर ब्रह्म स्वरूप नैषकम्य का आविष्कार हुआ।

श्रीमद्भागवत में भक्ति तथा लीला इन्ही दो तत्वो पर विशेष बल दिया गया है। इसके आदि, मध्य और अन्त मे भक्ति का ही प्रतिपादन हुआ है। भक्ति और लीला वास्तव मे अनन्योन्याश्रित हैं, इसीलिए भागवतकार ने भगवान् को 'लीलावतारानुरत' कहा है। भागवत मे भक्ति के सभी मार्गों मे अविरोध स्थापित करने का प्रयास किया गया है तथा प्रेमलीलाओं का बडे विस्तार से वर्णन हुआ है। भागवत के उपाख्यानो स्तुतियों तथा भक्ति-प्रसगो के अनुशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसमें सभी मतो एव साधनाओं का समावेश है। तन्त्रागमों की शृङ्गार परक साधनाओ को अलौकिक लीलाओ का रूप देकर भागवतकार ने परिष्कृत किया है। एक बात जो भागवतकार स्पष्ट रूप से नही कह सका वह है, केन्द्रीभूत भगवान् की एक शक्ति। यो तो ब्रज की अनेक गोपियाँ कृष्ण की प्रेमपात्राएँ हैं, परन्तु भगवान् की शक्ति के रूप मे उन्हे ग्रहण नही किया जा सकता। इसीलिए भागवतानुसारी वैष्णव सम्प्रदायों ने राधारूप मे इस शक्ति का विशदीकरण किया। यह बात दूसरी है कि उनके प्रवर्तको तथा आचार्यों ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भागवत में भी राधा को खोज लिया। यह बात निर्विवाद है कि भक्ति के व्यवहार पक्ष की आधार-शिला सबसे पहले भागवतकार ने ही रखी क्योंकि प्रेमलीलाओ का जितना विस्तार भागवत पुराण में है उतना अन्य पुराणो में नही। फर्कुंअर ने भागवत के प्रेम लीलापरक पदो के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

"A careful study of those passages will convince the student that they are expressions of a living religious experience"

(J N Farquhar, Outlines of the Religious Literature of India P 229)

और वे आगे कहते हैं—"Bhakti in this work is a surging emotion which chokes the speech, makes the tears flow and the hair thrill with pleasurable excitement, and often leads to hysterical laughing and weeping by turns, to sudden fainting fits and to long trances of unconsciousness."

(J. N Farquhar, Outlines of the Religions Literature of India, P 230)

फर्कुंअर ने भागवत पुराण को अन्य पुराणो से अधिक महत्त्व इसलिए प्रदान किया है कि इसमें उस लौकिक प्रेम और शृङ्गार का समावेश है जो और किसी पुराण मे नही है लौकिक प्रेम और शृङ्गार का यह तत्त्व भक्ति का साधक है, बाधक नही—

'Meditation on these scenes is expected to produce that passionate Bhakti which is regarded as the highest religious experience'

(Ibid Pp 230-231)

भागवत के आलोचक कुछ भी कहे, हमारी यह निश्चित धारणा है कि भागवतकार ने पहली बार लीलाओ के माध्यम से प्रेम को सात्विक तथा विशुद्ध रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। धम के दो पक्ष है—श्रद्धा और विश्वास। हम श्रद्धा को ज्ञान मानते है और विश्वास को विज्ञान, विश्वास प्रेम का ही दूसरा नाम है इसलिए प्रेम धर्म का विज्ञान है, लीला इस विज्ञान की प्रयोगशाला है जिसमे प्रेम का क्रमिक विकास होता है तथा सस्कारो का परिष्कार होता है। बिना वासनाओ के परिष्कार के प्रेम की सिद्धि सम्भव नहीं है। रासपञ्चाध्यायी के अन्त मे राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से यही प्रश्न किया है कि सवशक्तिमान् तथा लोककल्याणकारी भगवान् कृष्ण ने परस्त्री स्पश का पाप क्यो किया—

सस्थापनाय धमस्य प्रशमायेतरस्य च। अवतीर्णो हि भगवानशेन जगदीश्वर ॥
स कथ धमसेतूना वक्ता कर्ताभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिस्पशनम् ॥
आप्तकामो यदुपति कृतवान् वै जुगुप्सितम्। किमभिप्राय एत न सशय छिन्धि सुव्रत ॥
(श्रीमद्० १०।३३।२७-२९)

महर्षि शुकदेवजी ने इस प्रश्न का बडे स्पष्ट शब्दो मे उत्तर दे दिया कि भगवान् कृष्ण का आचरण सामा य जनों के लिए अनुकरणीय नही है। वे सब समर्थ हैं। जो स्वय निर्दोष है उसका दोषो से सपृक्त होने का प्रश्न ही नही उठता—

'तेजीयसा न दोषाय वह्नेः सवभुजो यथा।' (श्रीमद्० १०।३३।३०)

प्रेम के परिपाक की यह प्रक्रिया हमे किसी भी धम-सिद्धान्त में दुलभ है। विश्वधर्मों के सदभ मे इसे हम मानव-प्रेम का प्रतीक कह सकते हैं। मानव-प्रेम का ऐसा क्रमिक विकास अन्य किसी धम मे नही मिलता। यह मन, बुद्धि और आत्मा के परिष्कार का साधन है।

सम्पूर्ण भक्ति-आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे एकमात्र भागवत पुराण ही वैष्णवों का प्रेरणास्रोत रहा है। वैष्णव आचार्यों ने 'प्रस्थानत्रयी' की व्याख्या भागवतपुराण के सदभ मे की। अपने-अपने सम्प्रदायो के विशिष्ट सिद्धान्त भी उन्होने भागवत मे खोज लिए। यही कारण है कि साम्प्रदायिक सिद्धान्तो मे मतभेद होने पर भी सब वैष्णव सम्प्रदायो मे भागवत-पुराण की समान मान्यता है। श्री सम्प्रदाय मे विष्णु को परब्रह्मत्व रूप दिया गया था शायद इसीलिए उसमे तथा उसके उपजीवी सम्प्रदायों में स्पष्टरूप से भागवत की दुहाई आवश्यक नही समझी गयी वैसे सिद्धान्तरूप मे उनकी भक्ति प्रक्रिया भागवतानुकूल ही है।

१२ वी शताब्दी से आजतक श्रीमद्भागवत की लोकप्रियता बढ़ती ही रही है। भारत की सास्कृतिक तथा धार्मिक एकता मे जितना योगदान भागवत पुराण का है उतना अन्य किसी एक ग्रन्थ का नही। यही कारण है कि देश की सभी भाषाओ मे इतना विशाल भागवतानुसारी साहित्य प्राप्त होता है।
